सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

७६

(१ अप्रैल, १९४२ – १७ दिसम्बर, १९४२)

बम्बईमें अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

७६

(१ अप्रैल, १९४२ – १७ दिसम्बर, १९४२)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

इस खण्डमें जिस अवधि (१ अप्रैलसे १७ दिसम्बर, १९४२) की सामग्री दी गई है वह भारतके स्वतन्त्रता-संग्रामका सबसे महत्त्वपूर्ण दौर है। संगठन और मनोबलसे सम्बन्धित जैसी विकट समस्याओंका सामना राष्ट्रीय आन्दोलनको इस अवधिमें करना पड़ा वैसी समस्याओंसे अपने लम्बे इतिहासमें इसका वास्ता पहले कभी नहीं पड़ा था। सुदूर पूर्वमें ज्यों-ज्यों लड़ाई जोर पकड़ती गई, ब्रिटिश साम्राज्यकी प्रतिरक्षा-व्यवस्था सर्वत्र छिन्न-भिन्न होती चली गई, क्योंकि उसे स्थानीय जनताकी सहानुभूति और सहयोग प्राप्त नही था। ब्रिटेनके मित्र-राष्ट्र चीन और संयुक्त राज्य अमेरिकाके राजनेताओंने इसपर चिन्ता व्यक्त करते हुए ब्रिटेनसे आग्रह किया कि वह राष्ट्रीय भावनाका आदर और कांग्रेससे समझौता करे, जिससे भारत युद्ध-प्रयत्नमें स्वेच्छासे और पूरे दिलसे भाग ले सके। लेकिन ब्रिटेनने दोनोंसे साफ कह दिया कि वे भारतके मामलेमें हाथ न डालें। मगर उधर क्रिप्सको दिल्ली रवाना कर दिया, जिसका उद्देश्य भारतकी आकुल माँगकी पूर्तिके बजाय मित्र-राष्ट्रोंको सन्तुष्ट करना ही था।

इसमें सबसे अधिक दुर्गति स्वयं क्रिप्सकी हुई, क्योंकि उन्होंने न केवल भारतके सभी राजनीतिक मतोंके लोगोंको नाराज कर दिया, बल्कि वे वाइसराय और भारत मन्त्रीके भी कोप-भाजन बने। भारतकी प्रतिरक्षाको वास्तवमें भारतीय प्रतिनिधियोंको सौंपे बिना उसे टुकड़ोंमें बांट देने के क्रिप्सके प्रस्तावपर टिप्पणी करते हुए गांधीजी ने लिखा: "मुझे उनकी शुभेच्छाके बारेमें कतई सन्देह नहीं है। . . . मगर उन्हें यह जानना चाहिए था कि कमसे-कम कांग्रेस तो औपनिवेशिक दर्जेकी ओर देखेगी भी नहीं . . .। वे यह भी जानते थे कि उस प्रस्तावमें हिन्दुस्तानको ऐसे तीन टुकड़ोंमें बांटने की कल्पना की गई थी जिनकी शासन-प्रणालीकी कल्पना ही भिन्न-भिन्न थी। इसमें पाकिस्तानकी स्थापनाकी कल्पना की गई थी, परन्तु उस पाकिस्तानकी नहीं जो मुस्लिम लीग चाहती थी। और अन्तमें यह बात भी थी कि प्रस्तावमें उत्तरदायी मन्त्रियोंको प्रतिरक्षाके बारेमें कुछ भी असली अधिकार नहीं दिये गये थे" (पृ० ३२)।

क्रिप्स मिशनकी विफलतासे खाई और भी चौड़ी हो गई और कांग्रेस तथा ब्रिटिश सरकारके बीच आगे वार्त्ताकी सम्भावना खत्म हो गई। उससे मित्र-राष्ट्रोंके इस दावेका भी खोखलापन साबित हो गया कि वे विश्वमें लोकतन्त्रको सुरक्षित करने के लिए लड़ रहे थे। इसपर गांधीजी ने लिखा: "अमेरिका और ब्रिटेन दोनों जबतक . . . अपने घरोंको ठीक नहीं कर लेते . . . तबतक इस युद्धमें हिस्सा लेने का उनके पास कोई नैतिक आधार नहीं है। जबतक श्वेत जातियोंको श्रेष्ठ मानने का नासूर पूरी तरह नष्ट नहीं हो जाता, तबतक उन्हें प्रजातन्त्रकी रक्षा तथा सभ्यता और मानव-स्वतन्त्रताकी रक्षा करने की बात करने का कोई हक नहीं है" (पृ० १२७)।

गांधीजी और कांग्रेस नेतृत्वको ऐसी स्थितिमें डाल दिया गया कि अब उन्हें न केवल भारतके सिर मँडराते जापानी आक्रमणके खतरेका मुकाबला करने के लिए, बल्कि इस कामको ज्यादा कारगर ढंगसे करने के लिए विदेशी शासनके चंगुलसे देशको छुड़ाने के लिए भी भारतवासियोंको तैयार करना था। एक अंग्रेज मित्रसे गांधीजी ने कहा, "मेरा दृढ़ मत है कि अंग्रेजोंको इसी समय व्यवस्थित ढंगसे भारत छोड़ देना चाहिए।" अंग्रेजोंकी व्यवस्थित वापसीको वे भारत और इंग्लैण्ड दोनोंके लिए एक सैनिक आवश्यकता मानते थे। "ब्रिटेन भारतकी रक्षा करने में असमर्थ है, और भारतकी भूमिपर अपनी रक्षा करने में तो और भी अक्षम है। सबसे अच्छा काम वह यही कर सकता है कि भारतको उसके भाग्यपर छोड़ दे" (पृ० ६७-६८)। इसका कारण बताते हुए बादमें उन्होंने अ० भा० कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावके मसौदेमें लिखा: "भारत और ब्रिटेनके हितोंमें एक शाश्वत संघर्ष है। परिणामस्वरूप उनके रक्षा-सम्बन्धी विचार भी भिन्न होंगे। ब्रिटिश सरकारको भारतके राजनीतिक दलोंमें कोई विश्वास नहीं है। भारतीय सेना अबतक मुख्य रूपसे भारतको आधीन बनाये रखने के लिए ही रखी गई है" (पृ० ७०)।

एक विचारणीय बात देशमें गहरी अंग्रेज-विरोधी भावना भी थी, जो इन दिनों इतनी प्रबल हो उठी थी कि वह जापान-समर्थक रुखके रूपमें प्रकट होने लगी थी। गांधीजी का विश्वास था कि अगर अंग्रेज स्वेच्छासे यहाँसे चले जायें तो यह दुर्भावना सद्भावनामें बदल जायेगी, जिससे भारतीय नेताओंके लिए अपने देशवासियोंको जगाना और जापानके खिलाफ प्रतिरोधका संगठन करना तथा चीन और रूसको अधिक कारगर सहायता देना शक्य होगा। इसीमें वे विश्व-शान्तिका मार्ग भी प्रशस्त होते देखते थे। इसलिए उन्हें यह विश्वास हो चला था कि "अंग्रेजों और हिन्दुस्तानियोंको अपने आपसी सम्बन्ध-विच्छेदके लिए लड़ाईके बाद नहीं, बल्कि लड़ाईके दरम्यान ही राजी हो जाना चाहिए। इसमें, और सिर्फ इसी एक तरीकेमें उन दोनोंकी — और दुनियाकी भी — सलामती है" (पृ० ९५)।

अंग्रेजोंकी व्यवस्थित वापसीके गांधीजी के प्रस्तावको कई क्षेत्रोंमें शंकाकी दृष्टिसे देखा गया — यहाँतक कि उनके कुछ घनिष्ठ सहयोगी भी इस मसलेपर उनके खिलाफ जा खड़े हुए। किन्तु गांधीजी धीरजके साथ उन्हें अपने दृष्टिकोणका कायल करने तथा भारत और भारतके बाहर भी इसके पक्षमें लोकमत तैयार करने के प्रयत्नमें लगे रहे। यह भी स्पष्ट था कि अंग्रेज भारतीयोंकी ओरसे किसी संघर्षके बिना यह उचित कदम उठाने को तैयार नहीं हो सकते थे। इस जिल्दमें हम इस संघर्षको गांधीजी की प्रेरणा और व्यक्तिगत नेतृत्वमें स्वरूप ग्रहण करते देखते हैं। इसकी चरम परिणति अगस्तके प्रसिद्ध "भारत छोड़ो" प्रस्तावमें होती है, जिसके पश्चात् अंग्रेजी दमन-चक्र अपने पूरे जोरके साथ चल पड़ता है।

ऐसे आन्दोलनका संगठन एक दुष्कर कार्य था। प्रथम तो नेतृत्वमें ही मतभेद था, जिसे खुलेआम स्वीकार करते हुए गांधीजी ने एक पत्रकारसे कहा, "मुझे आपको यह बताने में कोई झिझक नहीं कि कार्य-समिति और मेरे बीच मतभेद हैं। अहिंसाके

प्रश्नपर सारा राष्ट्र मेरे साथ नहीं है" (पृ० ३)। ज्यों-ज्यों जापानी भारतकी सीमाके निकट पहुँचते गये, ये मतभेद और भी स्पष्ट होते गये। विशाखापटनम्, काकिनाडा और फिर चटगाँवपर जापानियोंने बमबारी की। नेहरू, आजाद और राजगोपालाचारीने सशस्त्र प्रतिरोध, छापामार युद्ध और इससे भी आगे जाकर कुछ परिस्थितियोंमें सम्पत्ति-ध्वंसकी नीतिकी हिमायत की। इस सबसे गांधीजी के मनको बहुत क्लेश पहुँचा: "मेरे लिए अपना रास्ता निर्धारित है। अगर मैं अकेला भी होऊँ तो भी अपनी श्रद्धामें अटल रहकर उसपर चलूँगा और विश्वास रखूँगा कि हिन्दुस्तानकी जनता हिंसाके रास्तेको कभी नहीं अपनायेगी। वह या तो निष्क्रिय रहेगी या अहिंसक कार्रवाईको अपनायेगी। छापामार युद्धसे हमें कुछ नहीं मिल सकता। अगर बड़े पैमानेपर इसपर अमल हुआ तो उसके परिणाम विनाशकारी होंगे" (पृ० ५८)।

अप्रैलके अन्तमें इलाहाबादमें होनेवाली कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल होने की उनकी इच्छा नहीं हुई। उनका कहना था: "मैं आकर भी क्या करूँगा? मेरे पास [देने को] वही चीज है . . ." (पृ० ५९)। वल्लभभाई पटेलसे उन्होंने कहा कि अगर कार्य-समितिने अहिंसक असहयोगपर कोई स्पष्ट प्रस्ताव स्वीकार न किया तो फिर उससे त्याग-पत्र दे देना मेरा कर्त्तव्य हो जायेगा। उन्होंने उन्हें "सम्पत्ति-ध्वंसकी नीतिका और बाहरी सेनाएँ लाने का भी कड़ा विरोध" करने की सलाह दी (पृ० ६८)। किन्तु साथ ही उन्होंने मीराबहनकी मार्फत अ० भा० कांग्रेस कमेटीके लिए एक प्रस्तावका मसौदा (पृ० ७०-७२) भी भेज दिया, जिसमें भारतसे अंग्रेजोंकी वापसीकी माँग की गई थी, जापानियोंके भारतपर आक्रमण करने पर उनके खिलाफ पूर्ण अहिंसक असहयोगकी हिमायत की गई थी, सम्पत्ति-ध्वंसकी नीति और भारतमें विदेशी फौजें लाने का विरोध किया गया था तथा रचनात्मक कार्यक्रमको पूरे मनसे हाथमें लेने और साम्प्रदायिक क्लेश-कलह तथा अस्पृश्यताको मिटाने के लिए जनताका आह्वान किया गया था। उन्होंने नेहरूको लिखा, "अगर मेरा प्रस्ताव आप लोगोंको अच्छा न लगे तो मेरा आग्रह हो नहीं सकता है। हमारे लिए मौका ऐसा आया है कि हरेकको अपना मार्ग सोच लेना है" (पृ० ७३)। यद्यपि अ० भा० कांग्रेस कमेटीने गांधीजी का मसौदा स्वीकार नहीं किया, लेकिन जो दूसरा मसौदा स्वीकार किया गया उसमें उनके मसौदेके सभी मुद्दे शामिल थे, जिनमें जापानियोंके विरुद्ध इस वजहसे अहिंसक असहयोग करने का सुझाव भी था कि "ब्रिटिश सरकारने जनताकी राष्ट्रीय प्रतिरक्षाका संगठन किसी अन्य तरीकेसे करने पर रोक लगा रखी है" (पृ० ४६९)।

साम्प्रदायिक एकताको गांधीजी न केवल स्वराज्य-प्राप्तिके लिए, बल्कि जापानके सफल प्रतिरोधके लिए भी आवश्यक मानते थे। इस एकताकी जरूरतपर जोर देते हुए उन्होंने कहा: "अब जब कि आक्रमणकारी दरवाजेपर है, भारतमें एकताकी पहलेसे कहीं अधिक जरूरत है। मेरी सबसे बड़ी इच्छा यही है कि उसके विरुद्ध और स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए मिलकर संघर्ष किया जाये। यह बहुत सम्भव है कि ऐसा करते हुए एक समान उद्देश्यकी प्राप्तिके प्रयत्नमें हम अपने झगड़ोंको भूल जायें" (पृ० २९ और

३४)। किन्तु मुस्लिम लीग दो राष्ट्रोंके सिद्धान्तकी दुहाई देते हुए देशके विभाजनका आग्रह करती रही। राजगोपालाचारी इस माँगकी स्वीकृतिके पक्षमें थे। गांधीजी को यह कतई स्वीकार नहीं थी। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की: "मैं हिन्दुस्तानके अंगच्छेदको पाप समझता हूँ। श्री राजगोपालाचारी . . . उस पापमें शामिल होना चाहते हैं। . . . इसके अलावा मेरी पक्की राय है कि जबतक तीसरा पक्ष यहाँ बाधक बननेको मौजूद है, एकता हो ही नहीं सकती। उसने यह बनावटी फूट पैदा की है और वह इसे बनाये हुए है" (पृ० १३३-३४)। एक पत्रमें उन्होंने लिखा, " . . . जबतक तीसरी ताकतका प्रभुत्व है तबतक सांस्कृतिक, राजनीतिक या अन्य किसी भी तरहकी एकता सम्भव नहीं है। इसलिए ब्रिटिश शासनका हटना एकताके लिए पहली जरूरी चीज है" (पृ० २५२)। यहाँ हम गांधीजी की दृष्टिमें एक परिवर्त्तन पाते हैं। जहाँ पहले वे साम्प्रदायिक मतभेदको विदेशी शासनका कारण मानते थे वहाँ अब उसे उसका परिणाम मानते दिखाई देते हैं। जो भी हो, दोनोंका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध था, और एकके विरुद्ध संघर्ष करनेका मतलब दूसरेके विरुद्ध भी संघर्ष था। उन्होंने लिखा, "आज तो हम यह भी नहीं जानते कि मुस्लिम लीग और कांग्रेसका ध्येय एक है। और स्वतन्त्रताके लिए लीगका सहयोग रिश्वतसे नहीं खरीदा जा सकता" (पृ० १८४)।

पाकिस्तानके सम्बन्धमें गांधीजी के रवैयेको मुस्लिम लीग और लीगी अखबारोंने उसी तरह सरासर गलत रूपमें पेश किया जिस तरह जापानके प्रति उनके रुखको ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश तथा अमेरिकी समाचारपत्र पेश कर रहे थे। गांधीजी को जिन्नाकी कल्पनाका पाकिस्तान, जो एक ऐसा प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य होता जो देशके शेष भागके साथ लड़ाई भी छेड़ सकता था या अन्य राष्ट्रोंके साथ स्वतन्त्र रूपसे सन्धियाँ भी कर सकता था, स्वीकार्य नहीं था (पृ० ३५१)। लेकिन उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें यह स्वीकार किया कि अगर मुसलमान सचमुच पाकिस्तान चाहते हैं तो उसे वे जरूर हासिल करेंगे, बशर्ते कि हिन्दू इस मसलेपर उनसे लड़नेको तैयार न हों। लेकिन इस तरहकी लड़ाईको वे आत्मघातका रास्ता मानते थे और इसे देखनेके लिए जीवित रहनेकी उनकी कोई इच्छा नहीं थी (पृ० ३३-३४)। इस निर्दोष कथनका अर्थ हिन्दुओंको लड़ाईके लिए आमन्त्रण देना लगाया गया (पृ० ७८)। कार्य-समितिके प्रस्तावके बारेमें जिन्नाने विदेशी पत्रकारोंसे कहा कि वह अंग्रेजोंपर दबाव डालकर उन्हें एक ऐसी शासन-व्यवस्था स्थापित करने और उसे [कांग्रेसको] सत्ता सौंप देनेको बाध्य करनेकी नीति और योजनाका चरम बिन्दु है जिससे हिन्दू-राज्य कायम हो जायेगा (पृ० ४०९)। किन्तु वास्तविकता यह थी कि कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आजादने सार्वजनिक रूपसे यह प्रस्ताव रखा था कि अगर ब्रिटिश सरकार मुस्लिम लीगको कामचलाऊ सरकार बनानेको आमन्त्रित करे तो कांग्रेस उसमें सहयोग करेगी, और गांधीजी ने तो यहाँतक कहा कि मुस्लिम लीग द्वारा गठित सरकारमें शरीक होने और स्वतन्त्र राज्यके शासन-तन्त्रके संचालनमें सहायता देनेको कांग्रेस तैयार है। "यह प्रस्ताव गम्भीरतापूर्वक और सच्चे दिलसे किया जा रहा है" (पृ० ४२४-२५)।

किन्तु जिन्ना स्वतन्त्रताके राष्ट्रीय आन्दोलनके सम्पूर्ण विरोधके मार्गसे विचलित होनेवाले नहीं थे। गांधीजी को लगा कि जिन्ना सहमतिपर आधारित पाकिस्तान नहीं चाहते। गांधीजी मुस्लिम लीगके नेताओंसे बातचीत करने और यदि उनका पक्ष उचित हो तो उनकी माँगकी आवश्यकताके बारेमें कायल होने को तैयार थे, लेकिन जिन्नाका आग्रह था कि गांधीजी उनसे मिलें तो हिन्दुओंकी ओरसे हिन्दू नेताकी हैसियतसे। स्वभावतः उनके इस रुखने दोनों नेताओंके बीच आगे वार्त्ताका रास्ता बन्द कर दिया। इस प्रकार जिन्ना और मुस्लिम लीग सबसे अलग और वास्तवमें राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-आन्दोलनके खिलाफ जा खड़े हुए।

त्रावणकोर, मैसूर, जोधपुर आदि रियासतोंकी स्थिति समस्याकी गम्भीरताको और भी बढ़ा रही थी। कुछ रियासतोंमें प्रशासकोंके अत्याचार और जनताकी स्वतन्त्रताका दमन इस हदतक पहुँच चुका था कि उसे सिवा "अन्धेरगर्दीके और कोई नाम दिया ही नहीं जा सकता" था (पृ० ९३)। गांधीजी लोगोंको शान्त रहने और "जहाँतक हो सके, शासकोंके साथ कोई संघर्ष मोल नहीं लेने" की ही सलाह देते रहे (पृ० ९२)। देशी नरेशोंसे उन्होंने अपनी निरंकुश सत्ताका त्याग करके प्रजाके ट्रस्टी बन जाने का अनुरोध किया (पृ० २०३-४, ३७४-७६ और ४३५-३६)। साथ ही उन्होंने ब्रिटिश सरकारसे लोगोंको देशी नरेशोंके अत्याचारसे बचाने की अपील की: "देशी राज्योंमें होनेवाली ऐसी हरएक घटनाके लिए ब्रिटिश सरकार भी दोषी है। वह अपने इस दोष और जिम्मेदारीसे बच नहीं सकती। आज जोधपुरमें . . . जिस तरहकी अमानुषिक कार्रवाइयाँ हो रही हैं, देशी राज्योंकी जनताको उनसे बचाने के लिए भारत सरकार अपनी सन्धिकी शर्तोंके अनुसार बँधी हुई है" (पृ० २४४)।

कानून और व्यवस्था पूरे देशमें छिन्न-भिन्न होती दिखाई दे रही थी। सिन्धमें जनजातीय नेता पीर पगारोकी गिरफ्तारीपर हूर लोग आपेसे बाहर हो उठे, और उन्होंने लूट-पाट तथा हत्याका सिलसिला शुरू कर दिया, और रेलवे स्टेशनोंपर हमले किये। सरकार उनपर काबू पाने में असमर्थ रही। गांधीजी ने कांग्रेसी सदस्योंको विधान-सभाका त्याग कर देने तथा खानबहादुर अल्लाबख्श और उनके साथी मन्त्रियोंको अपने पदोंसे इस्तीफा दे देने की सलाह दी, और "अपना एक शान्ति-दल बनाकर निर्भीक भावसे हूरोंके बीच" बस जाने "और अपने इन पथ-भ्रष्ट देशवासियोंको ऐसे जुर्म न करने के लिए समझाने के लिए" अपनी जानकी जोखिम उठाने का परामर्श दिया (पृ० १३६)। डाकाजनी बढ़ती जा रही थी—खासकर गुजरातमें। गांधीजी की राय थी कि लोगोंको अपनी रक्षा आप करनी चाहिए और अगर जरूरत हो तो लाठियों का इस्तेमाल करके भी। इसके लिए उन्हें हर हालमें तैयार हो जाना चाहिए (पृ० २५०-५१)। जब उनसे पूछा गया कि अगर उन्हें आत्म-रक्षाके लिए अपनेको संगठित करने की अनुमति नहीं दी जाये तो वे क्या करें तो गांधीजी ने बेझिझक कहा: "लोगोंको अधिकारियोंसे, डाकुओंसे और सम्भवतः जापानियोंसे भी अपनी रक्षा करनी होगी। अगर वे ऐसा नहीं करेंगे तो इस दुनियामें जी न सकेंगे। इस लिए अपनी तैयारीमें उन्हें किसी किस्मकी रोक-टोक बरदाश्त नहीं करनी चाहिए। . . . तैयारीसे मेरा मतलब कसरत, कवायद और लाठी वगैरहके अभ्याससे है" (पृ० १४८)।

पंजाव, राजस्थान और वंगालके कुछ क्षेत्रोंमें अन्नके अभावके कारण अकाल-जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी। गांधीजी ने इन स्थानोंके धनी लोगोंसे दान देने और खाद्य पदार्थोंको वरवादीसे वचाने की अपील की। सरकारने अनाज वाहर भेज दिया था और जो-कुछ देशमें वच रहा था उसे वेईमान व्यापारी अपने पास दवाये वैठे थे। गांधीजी ने सुझाव दिया कि "डाकखानोंकी तरह जगह-जगह गल्लेकी दुकानें खुलनी चाहिए, जहाँसे लोग टिकटकी तरह अनाज खरीद सकें।" उन्होंने व्यापारी-समुदायसे अनुरोध किया कि "वह सारे मामलेको अपने हाथमें ले और ऐसा प्रवन्ध करे जिससे गरीवोंको वरावर उचित मूल्यपर गल्ला मिलता रहे।" उन्होंने चेतावनी देते हुए कहा: "इसमें देरकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है। भूख धर्म-अधर्मकी परवाह नहीं करती। अगर समय रहते लोगोंकी सहायताका उदारतापूर्वक और जोर-शोरसे प्रवन्ध न किया गया तो इसमें शक नहीं कि सारे देशमें रोटी या अनाजके सवालको लेकर जगह-जगह दंगे होने लगेंगे" (पृ० ३१२-१३)।

एक दूसरी चुभनेवाली वात यह थी कि सैनिक लोग जहाँ-कहीं नागरिक आवादीके आसपास रखे गये थे वहाँ वे वहुत वुरा वरताव कर रहे थे। इस विषयपर गांधीजी की सलाह विलकुल स्पष्ट थी: "दुराचार करनेवाले व्यक्ति कोई भी क्यों न हों, लोगोंको चाहिए कि वे उनसे अपनी रक्षा करने की वृत्ति और शक्तिका विकास करें। इसमें अहिंसा या हिंसाका सवाल खड़ा ही नहीं होता। इसमें शक नहीं कि अहिंसाका मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है। लेकिन अगर वह सहज भावसे न सूझे तो हिंसाका मार्ग न सिर्फ आवश्यक, वल्कि सम्मानास्पद भी है। ऐसे समयमें निष्क्रियता घोर कायरता और नामर्दी वन जाती है" (पृ० २६८)।

वंगालके लोगोंको सवसे अधिक मुसीवतें उठानी पड़ रही थीं। पहले वह साम्प्रदायिक दंगोंसे तवाह हुआ, फिर अकालसे पीड़ित हुआ और अव जापानी हमलेका खतरा उसके सामने था। इस सवके ऊपरसे सैनिक आवश्यकताके नामपर वहाँके गाँव-के-गाँव खाली कराये जा रहे थे। लोगोंकी डोंगियों और साइकिलों तकको नहीं वख्शा जा रहा था (पृ० ३८)। गांधीजी ने इस अन्यायकी तीव्र निन्दा करते हुए लोगोंको इसका प्रतिरोध करने की सलाह दी। उनकी दृष्टिमें गाँवोंको खाली कराने के लिए अधिकारियोंका यह कर्त्तव्य था कि वे लोगोंको ठीक जमीन और मकान तैयार करके दें, उनका माल-असवाव पहुँचाने के लिए सवारीका वन्दोवस्त करें और जवतक उन्हें उनके लायक कोई धन्धा न मिल जाये तवतक उनके गुजारेका खर्च दें। लेकिन "अगर लोगोंके लिए जाने को कोई जगह न हो" तव तो हर हालतमें "उन्हें हटने से साफ इनकार कर देना चाहिए और इसके कारण जो-कुछ सहना पड़े, सह लेना चाहिए" (पृ० २६९)।

गांधीजी और कांग्रेसको ऐसी ही चिन्ता उन लाखों प्रवासी भारतीयोंकी भी थी जो वर्मामें जापानकी फौजोंकी वढ़ती तथा व्रिटिश प्रशासनके विखर जाने के कारण उस देशमें फँस गये थे। वहाँसे भागनेवाले अंग्रेजोंको तो परिवहन तथा अन्य प्रकारकी हर सुविधा दी गई, किन्तु भारतीयोंको भाग्यके भरोसे छोड़ दिया गया। उनके पास

जो वाहन थे वे भी गोरोंके उपयोगके लिए कभी-कभी उनसे छीन लिये जाते थे। फलतः, जैसा कि गांधीजी ने लिखा, "बर्मासे लौटते हुए अगर हजारों नहीं तो सैकड़ों लोग तो भूखे-प्यासे मर गये, और उन अभागे लोगोंको भी घृणित भेद-भावका अनुभव करना पड़ा। गोरोंका रास्ता जुदा था, कालोंका जुदा! गोरोंके लिए रहने-खाने का पूरा बन्दोबस्त था, कालोंके लिए कुछ भी नहीं था! और हिन्दुस्तान पहुँचने पर भी वही भेदभाव है! जापानियोंका अभी कहीं पता नहीं है, पर हिन्दुस्तानियोंको अभीसे बुरी तरह पीसा और अपमानित किया जा रहा है। वह सब हिन्दुस्तानकी हिफाजतके लिए तो हरगिज नहीं है; भगवान जाने किसकी हिफाजतके लिए है" (पृ० २१६)। इन परिहार्य कष्टों और धृष्टतापूर्ण भेदभावोंका वर्णन करते हुए गांधीजी ने कहा: "सवाल इतना बड़ा है कि कोई भी मौजूदा संस्था इसे हल नहीं कर सकती। इसके लिए अनुभवी व्यक्तियोंकी एक ऐसी विशेष अस्थायी समितिकी आवश्यकता है जिसका एकमात्र काम यह होगा कि वह आठ-नौ लाख आदमियोंको शीघ्र ही व्यवस्थित ढंगसे बर्मासे हिन्दुस्तान ले आये और यहाँ आने पर उनका समुचित प्रबन्ध करे" (पृ० ६१)।

इस प्रकार देशकी परिस्थितियाँ सार्वजनिक अहिंसा आन्दोलन आरम्भ करने की दृष्टिसे अनुकूल नहीं थीं; किन्तु ठीक इन्हीं परिस्थितियोंपर पार पाने के लिए इस प्रकारका आन्दोलन आवश्यक हो गया था। गांधीजी ने कहा: "मैं हमेशा सोचता रहा कि जबतक देश अहिंसक संघर्षके लिए तैयार नहीं है, तबतक मुझे रुकना होगा। लेकिन अब मेरे रुखमें परिवर्तन हो गया है। मुझे लगता है कि अगर मैं तैयारीके लिए रुका रहा तो शायद मुझे प्रलय कालतक रुके रहना होगा, क्योंकि जिस तैयारीके लिए मैंने दुआ माँगी है और काम किया है वह कभी हो सकता है कि न हो पाये और शायद इस बीच चारों तरफ फैलनेवाली हिंसाकी ज्वालाएँ मुझे भी घेर लें, निगल लें" (पृ० १७६)।

हम देख चुके हैं कि अ० भा० कांग्रेस कमेटी तो मईमें ही अंग्रेजोंके भारतसे चले जाने की माँग करते हुए प्रस्ताव पास कर चुकी थी। जैसा कि गांधीजी ने कहा, "अंग्रेजोंकी कामयाबीकी पहली शर्त यह है कि वे इस अन्यायको अभी दूर करें। यह काम विजयसे पहले होना चाहिए, बादमें नहीं। हिन्दुस्तानमें अंग्रेजोंकी मौजूदगी जापानियोंके लिए हिन्दुस्तानपर आक्रमण करने के लिए निमन्त्रण-जैसी है" (पृ० ९६)। "हर ब्रिटेनवासीसे" एक अपीलमें उन्होंने लिखा: "कहा जा सकता है कि ब्रिटेनका हिन्दुस्तानके साथ निरन्तर एक युद्ध चल रहा है। वह हिन्दुस्तानपर विजेताके नाते और एक आधिपत्य-सेना द्वारा कब्जा किये हुए है। . . . जापानी संकट अभी हिन्दुस्तान पर आया भी नहीं है और पहलेसे ही हिन्दुस्तानियोंके घर-बारपर ब्रिटिश सेना — हिन्दुस्तानी और गैर-हिन्दुस्तानी — ने कब्जा जमा लिया है" (पृ० १०९)। अपनी अपीलके अन्तमें उन्होंने कहा: "मैं एक अप्राकृतिक प्रभुत्वको बिना रक्तपातके समाप्त करने और एक नये युगकी स्थापनाकी माँग कर रहा हूँ, भले ही हममें से कुछ इसका विरोध करें और इसके खिलाफ चीखें-चिल्लायें" (पृ० ११०-११)।

अंग्रेज देशका प्रशासन किसे सौंपें, इस प्रश्नका गांधीजी का उत्तर था: "... उन्हें हिन्दुस्तानको भगवानके भरोसे छोड़ना है — जिसे आजकलकी भाषामें अराजकता कहते हैं। इस अराजकताके फलस्वरूप देशमें कुछ समयके लिए आपसी युद्ध मच सकता है, या बेरोक लूट-मार फैल सकती है। लेकिन ... इसीमें से ... सच्चे हिन्दुस्तानका जन्म होगा" (पृ० ११६)। सच तो यह था कि तब भी तो देशमें "व्यवस्थित और अनुशासित अराजकता" की ही स्थिति थी, और अगर अंग्रेजोंके चले जाने के कारण भारतमें अव्यवस्था फैलनेवाली थी तो गांधीजी यह खतरा उठाने को तैयार थे (पृ० १२६)। उन्हें यह भय जरूर था कि जब वह स्थिति आयेगी तब "अकेली अहिंसा ही काम न करती होगी। ... [लेकिन] अराजकताके समय सबकी सच्ची कसौटी हो जायेगी" (पृ० २४३)।

कांग्रेसके इलाहाबाद प्रस्तावके बाद भी मतभेदके स्वर तो कायम थे ही। इनमें से सबसे मुख्य था राजगोपालाचारीका स्वर। वे इस विचारका प्रतिपादन करते रहे कि कांग्रेसको मुस्लिम लीगको सन्तुष्ट करना चाहिए और युद्ध-प्रयत्नमें अपना पूरा जोर लगा देना चाहिए। इसपर गांधीजी को उनसे कांग्रेससे और मद्रास विधान-सभासे, जिसकी सदस्यता उन्होंने कांग्रेसी प्रत्याशीके रूपमें चुनाव जीतकर प्राप्त की थी, त्यागपत्र देने को कहना पड़ा। उन्होंने गांधीजी की बात मानकर अपना "गौरव" बढ़ाया (पृ० ३२६)। आजादकी भी अपनी आशंकाएँ थीं। वे उनकी माँगसे या उसे मनवाने के तरीकेसे सन्तुष्ट नहीं थे (पृ० २५१), और गांधीजी के इस विचारसे भी सहमत नहीं थे कि "कोई देश अपनी रक्षा बिना शस्त्र-बलके कर सकता है" (पृ० ३२५)। नेहरूके नाम एक पत्रमें गांधीजी ने लिखा: "मैं पाता हूँ कि हम दो एक-दूसरोंसे दूर हो गये हैं। मैं उनको नहीं समझता हूँ, न वे मुझको समझते हैं। ... इसलिए मेरी दरख्वास्त है कि मौलाना सिदारत छोड़ दें ...। यह भारी जंग एकमतके सिवाय और सोलह आना साथ देनेवाले सदर सिवाय" ठीक नहीं चलेगा (पृ० ३२७)। किन्तु अन्तमें मौलाना रास्तेपर आ गये और कांग्रेसके सदरकी हैसियतसे काम करते रहे।

जुलाईके दूसरे हफ्तेमें कार्य-समितिके निमित्त तैयार किये गये प्रस्तावके मसौदोंमें गांधीजी ने इस बातकी स्पष्ट सूचना दे दी कि अगर अंग्रेजोंने वापसीकी अपीलपर कान नहीं दिया तो वे सार्वजनिक आन्दोलन छेड़ देंगे। उन्होंने लिखा: "इस बारका संघर्ष बहुत ही व्यापक जन-आन्दोलनका रूप लेगा, जिसमें सरकारी कर्मचारी और सरकारसे किसी भी रूपमें सम्बद्ध अन्य विभागोंके कर्मचारी भी स्वेच्छासे हड़ताल और असहयोग करेंगे तथा इसमें लगानबन्दी और करबन्दी भी हो सकती है" (पृ० ३१६)। १४ जुलाईको कार्य-समितिने गांधीजी द्वारा मनाने-समझाने पर इस प्रस्तावको पास कर दिया, लेकिन कुछ बदले रूपमें, और गांधीजी को आन्दोलनका सूत्रधार बनने का अधिकार भी दे दिया।

अंग्रेजोंके सामने अब भी गांधीजी से वार्ता चलाकर इस दरारको भरने का अवसर था, किन्तु उन्होंने इस प्रस्तावके आधारपर कांग्रेसको जापान-समर्थक बताकर उसे

बदनाम करने तथा गांधीजी और अन्य नेताओंको दबाने की खातिर ही उसका उपयोग करना ठीक समझा। अब ब्रिटिश सरकारकी ओरसे जो प्रलेख प्रकाशित हो रहे हैं उनसे प्रकट होता है कि किस प्रकार गांधीजी को गिरफ्तार करके उन्हें ब्रिटिश आफ्रिकाके किसी स्थानमें भेज देने की पृष्ठभूमि और योजना तैयार कर ली गई थी। एमरीने अपनी यह इच्छा व्यक्त की कि ऐसी स्थिति पैदा की जानी चाहिए जिससे कांग्रेस "बिखर जाये" और दिल्लीके गृह-विभागने उन्हें इस आन्दोलनको रोकने, विफल करने और दबाने की अपनी योजनाकी सूचना दी।

ब्रिटेनके प्रचारका प्रतिकार करने के लिए गांधीजी ने जापान-विरोधी युद्धके प्रति कांग्रेसकी स्थितिको समझाते हुए च्यांग काई-शेक और रूजवेल्टको पत्र लिखे। उन्होंने च्यांगको आश्वस्त किया कि "मैं जल्दबाजीमें कोई कदम नहीं उठाऊँगा। और मैं जिस कदमकी भी सिफारिश करूँगा उसके पीछे यह ध्यान रहेगा कि उससे चीनको कोई चोट न पहुँचे या भारत अथवा चीनमें जापानी आक्रमणको प्रोत्साहन न मिले। . . . ब्रिटिश सत्ताके साथ संघर्ष बचाने की मैं पुरजोर कोशिश कर रहा हूँ। लेकिन यदि स्वतन्त्रताकी, जो इस समय हमारी तात्कालिक आवश्यकता बन गई है, प्राप्तिके प्रयत्नमें, यह अनिवार्य बन जाता है तो मैं बड़ीसे-बड़ी जोखिमको भी उठाने में नहीं हिचकिचाऊँगा" (पृ० २४९)। रूजवेल्टको उन्होंने लिखा: ". . . मैंने यह सुझाव दिया है कि मित्र-राष्ट्र यदि आवश्यक समझें तो अपने खर्चेपर भारतमें अपनी सेनाएँ रख सकते हैं, पर वे आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए नहीं, बल्कि जापानी आक्रमणको रोकने और चीनकी प्रतिरक्षाके लिए होंगी" (पृ० २९४ और यत्र-तत्र)। उनका कहना था कि ये सेनाएँ भारतमें स्वतन्त्र भारतके साथ एक सन्धिके आधीन काम करेंगी, और मित्र-राष्ट्रोंकी सहायताके लिए भारतके भी "जरूरतके अनुसार फौजी कार्रवाई" करने की सम्भावना रहेगी (पृ० ३४९ और यत्र-तत्र)।

गांधीजी ने यह स्वीकार किया कि "किसी भी स्वतन्त्र देशके लिए ऐसी स्थितिमें रहना एक अजीब-सी बात है।" लेकिन ईमानदारीका तकाजा यही था (पृ० ३४९)। उन्होंने लिखा : "मेरे लिए एक और केवल एक ही चीज तर्कसंगत और असंदिग्ध है, और वह यह कि अगर मित्र-राष्ट्रोंकी जीतको सुनिश्चित करना है तो यह जरूरी है कि हिन्दुस्तान-जैसा एक महान् राष्ट्र — यह गलत है कि वह बहुत-सी कौमों या जातियोंका एक समूह है — आज जिस अप्राकृतिक दीनावस्थामें पड़ा है, उसका अन्त हो। मित्र-राष्ट्रोंके पास आज कोई नैतिक आधार नहीं है" (पृ० २०७)।

भारतकी अविलम्ब स्वतन्त्रता आवश्यक थी, क्योंकि "अगर हिन्दुस्तान इसी समय आजाद न हुआ तो लोगोंका छिपा असन्तोष जापानियोंके हिन्दुस्तानकी जमीन पर कदम रखने पर उनके स्वागतके रूपमें फूट पड़ेगा। हम महसूस करते हैं कि अगर ऐसा हुआ तो वह इस देशके लिए एक बहुत बड़ी विपत्ति होगी। अगर हिन्दुस्तान आजादी हासिल कर ले तो हम इस विपत्तिको टाल सकते हैं" (पृ० ३६९)।

गांधीजी ने सुभाष बोसकी स्थितिसे अपना पूर्ण अलगाव बताते हुए कहा: "जब सुभाष बाबू मेरे कामको ठीक बताते हैं तो मैं उससे फूल नहीं उठता। . . . क्योंकि वे मुझपर जापानका प्रेमी होने की भावना मढ़ रहे हैं। अगर किसी तरह मुझे यह

मालूम हो जाये कि . . . मैं जापानियोंको हिन्दुस्तानमें घुसने के काममें मदद पहुँचा रहा हूँ तो मैं अपने कदम पीछे हटाने में जरा भी नहीं झिझकूँगा। जहाँतक जापानियोंका सम्बन्ध है, मैं निश्चित रूपसे यह मानता हूँ कि हमें अपनी जान देकर भी उनका विरोध करना चाहिए — उसी तरह जिस तरह कि हम अंग्रेजोंका विरोध करना चाहते हैं" (पृ० ३६७-६८)।

उन्होंने यह स्पष्ट कर देने के लिए विशेष प्रयत्न किया कि उनका यह "सबसे बड़ा आन्दोलन" (पृ० ३३३) "खुला अहिंसक विद्रोह" था (पृ० ३३१)। आन्दोलनका संचालन करते हुए वे ऐसी परिस्थितिसे बचना चाहते थे "जिसमें अचानक अराजकता फूट पड़े या जिसके कारण जापानको हिन्दुस्तानपर हमला करने का बढ़ावा मिले। . . . आन्दोलनको धीमी गतिसे चलाने के लिए जिन एहतियातोंकी जरूरत" हो सकती थी उन सबका वे पूरा खयाल रखनेवाले थे, लेकिन साथ ही उनका कहना यह भी था कि "अगर मैंने देखा कि अंग्रेज सरकारपर . . . उसका कोई असर नहीं पड़ रहा है तो मैं उसे चरम सीमातक ले जाने में भी नहीं झिझकूँगा" (पृ० ३३३)। तब अगर कोई हिंसा हुई तो उसका "दोष उस सत्ताके सिर पड़ेगा जो अराजकताके अथवा किसी-न-किसी बहाने अपनी अराजकताको बराबर दृढ़ बनाया ही करती है" (पृ० २४३)।

वे इस बातका भी खयाल रखने को तैयार थे कि ब्रिटेनके युद्ध-प्रयत्नमें उस आन्दोलनसे प्रत्यक्ष रूपमें कोई बाधा न पड़े। इसके लिए उन्होंने कहा, "हड़तालमें सरकारी दफ्तरों, कारखानों, रेलवे, डाकघर वगैरहमें काम करनेवालों को हिस्सा नहीं लेना चाहिए। इस तरह हम यह बताना चाहते हैं कि जापानी, नाजी या फासी हमलेको हम कभी बरदाश्त न करेंगे। इसलिए फिलहाल हम अंग्रेजी हुकूमतकी ऊपर बताई गई चीजोंमें दखल नहीं देंगे" (पृ० ४०७)।

सरकार वस्तुतः जो-कुछ कर रही थी वह था अपनी "अराजकता" को स्थायी बनाना। समाचारपत्रोंपर कड़ा सेंसर लागू था, सभी डाक खोलकर देखी जा रही थी। २८ मईको इलाहाबादमें कांग्रेस कार्यालयपर छापा मारकर उसके कागजात जब्त कर लिये गये थे। सभी प्रमुख कांग्रेसियोंके पीछे खुफिया महकमेके लोग बराबर लगे हुए थे और उनकी हर गतिविधिकी सूचना दी जा रही थी। बम्बईके लिए रवाना होने से पहले आश्रमवासियोंको दिये गये अपने निर्देशमें गांधीजी ने कहा: "जो लोग आश्रममें हैं उनको समझना चाहिए कि आश्रमपर कुछ भी संकट आ सकता है। हो सकता है कि सरकार हमारा खाना भी बन्द कर दे। तो जिनकी पत्ते खाकर भी यहाँ रहने की तैयारी हो वे लोग यहाँ रहें, बाकी सब चले जायें" (पृ० ३९०)। १३ जुलाईको ही एमरीने वाइसरायको निर्देश दिया कि "पहले आप ही प्रहार कर दें" ताकि गांधीजी को "अपना आन्दोलन छेड़ने का अवसर ही न मिले"।

इसी वातावरणमें ७ और ८ अगस्तको बम्बईमें "भारत छोड़ो" प्रस्ताव पास करने के लिए अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठक हुई। इस अधिवेशनमें गांधीजी के भाषणोंमें सबसे प्रबल स्वर अहिंसाका था। सदस्योंको सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा: "मैं चाहूँगा कि आप अहिंसाको अपनी नीतिकी तरह अपनायें। मैं तो इसे

अपना धर्म समझता हूँ, परन्तु जहाँतक आपका सम्बन्ध है, मैं चाहूँगा कि आप इसे अपनी नीतिके रूपमें स्वीकार कर लें। अनुशासनबद्ध सैनिकोंकी भाँति आपको इसे पूर्णतया स्वीकार करना होगा और जब आप संघर्षमें शामिल हों, तब इसपर पूरा आचरण करना होगा" (पृ० ४२३)। आन्दोलन छिड़ जाने पर गांधीजी के निर्देश इस प्रकार थे: "हर व्यक्तिको इस बातकी खुली छूट है कि वह अहिंसापर आचरण करते हुए अपना पूरा जोर लगाये। हड़तालों और दूसरे अहिंसात्मक तरीकोंसे पूरा गतिरोध [पैदा कर दीजिए]। सत्याग्रहियोंको मरने के लिए, न कि जीवित रहने के लिए, घरोंसे निकलना होगा। उन्हें मौतकी तलाशमें फिरना चाहिए, और मौतका सामना करना चाहिए। जब लोग मरने के लिए घरसे निकलेंगे केवल तभी कौम बचेगी" (पृ० ४४५-४६)।

प्रस्ताव पारित हो जाने का मतलब आन्दोलन आरम्भ हो जाना नहीं था। उन्होंने कहा: "वास्तविक संघर्ष इस क्षण नहीं शुरू हो रहा है। आपने अपने सारे अधिकार मुझे सौंप दिये हैं। अब मैं वाइसरायसे भेंट करने जाऊँगा और उनसे कांग्रेसकी माँग स्वीकार करने का अनुरोध करूँगा। इस काममें दो-तीन सप्ताह लग जाने की सम्भावना है" (पृ० ४३३)।

किन्तु अंग्रेजोंका इरादा गांधीजी को जरा भी समय देने का नहीं था। ९ अगस्तको प्रातः पाँच बजे उन्हें तथा बम्बईमें उपस्थित सभी शीर्षस्थ कांग्रेसी नेताओंको सोतेसे जगाया गया और गिरफ्तार करके उनकी नजरबन्दीके लिए पहलेसे ही तय स्थानोंमें ले जाया गया। उसी दिन देश-भरमें इसी तरहकी गिरफ्तारीकी कार्रवाइयाँ की गईं। और तब आरम्भ हुआ आतंकका वह दौर जो देशके अबतकके इतिहासमें अभूतपूर्व था। इसके उत्तरमें देश-भरके विद्यार्थी, कारखाना मजदूर, किसान और बुद्धिजीवी उठ खड़े हुए। यत्र-तत्र कुछ हिंसक घटनाएँ — सम्पत्तिका विनाश — भी अवश्य हुईं। सरकारी प्रचारतन्त्रने इस सबका दोष गांधीजी के मत्थे मढ़ा। इस दोषारोपणका प्रत्याख्यान करते हुए गांधीजी ने कहा कि "यदि सरकारने महामहिम वाइसरायके नाम मेरे संकल्पित पत्र और उसके परिणामकी प्रतीक्षा की होती तो देशपर कोई मुसीबत न आई होती। जिसकी खबरें सुनने को मिल रही हैं वह शोचनीय बरबादी तो निश्चय ही न हुई होती। . . . लगता है कि बड़े पैमानेपर कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ्तारीसे लोग गुस्सेसे इतने पागल हो गये हैं कि उन्होंने आत्मसंयम खो दिया है। मेरा खयाल है कि जो तबाही हुई है उसके लिए सरकार जिम्मेवार है, न कि कांग्रेस" (पृ० ४५७)। सरकारने इस पत्र (२३ सितम्बर, १९४२) को जानबूझकर दबा दिया और गांधीजी तथा वाइसरायके बीच हुआ जो पत्र-व्यवहार समाचारपत्रोंको प्रकाशनार्थ दिया गया उसमें इसे शामिल नहीं किया (पृ० ४५८, पा० टि० १)।

इसी अवधिमें गांधीजी को एक दुस्सह व्यक्तिगत क्षति भी हुई। आगाखाँ पैलेसमें गांधीजी के साथ नजरबन्दीके दिन बिताते महादेव देसाई १५ अगस्तको चल बसे। चिमनलाल शाहको तार द्वारा यह समाचार देते हुए गांधीजी ने लिखा: "महादेवने एक योगी और देशभक्तकी भाँति प्राण दिये हैं। . . . अन्त्येष्टि मेरे सामने ही होगी। फूल रख लूँगा" (पृ० ४५३)। लेकिन जेल-अधिकारियोंने इस तारको पत्रकी तरह इत्मीनानसे भेजा!

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखित संस्थाओं, व्यक्तियों, पुस्तकोंके प्रकाशकों तथा पत्र-पत्रिकाओंके आभारी हैं:

संस्थाएँ : राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय और पुस्तकालय, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्ली; नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता; साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद; इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन; विश्वभारती, शान्तिनिकेतन; पुलिस कमिश्नर कार्यालय, बम्बई और उप-महानिरीक्षक कार्यालय, गुप्तचर विभाग, पश्चिम बंगाल।

व्यक्ति : श्रीमती अमृतकौर; श्रीमती इन्दुमती तेंडुलकर; श्री एस० वरदाचारी; श्री कनुभाई एन० मशरूवाला, अकोला; श्री कान्तिलाल गांधी, बम्बई; श्री के० सुब्बाराव; श्री घनश्यामदास बिड़ला; श्री जीवणजी डा० देसाई; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री प्यारेलाल; श्री प्रतापराय एम० मोदी; श्रीमती प्रेमा कंटक, सासवाड; श्री बालकृष्ण भावे, उरुलीकांचन; श्रीमती मंजुला म० मेहता, बम्बई; श्रीमती मीराबहन; श्री मुन्नालाल गं० शाह, सेवाग्राम; श्रीमती रामेश्वरी नेहरू; लाला जगन्नाथ; श्रीमती वनमाला एम० देसाई; श्री वल्लभराम वैद्य, अहमदाबाद; श्रीमती वांदा दीनोवस्का; श्रीमती विजया म० पंचोली, सनोसरा; श्री शान्तिकुमार न० मोरारजी, बम्बई; श्रीमती शारदा गो० चोखावाला, सूरत; श्री सी० आर० नरसिंहन्, मद्रास और श्रीमती हरिइच्छा कामदार।

पुस्तकें : 'आरोग्यकी कुंजी', (द) 'इंडियन ऐनुअल रजिस्टर', जिल्द २, 'गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट', (द) 'ट्रान्सफर ऑफ पॉवर', जिल्द २, 'डेड एनिमल्स टु टैण्ड लेदर', 'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'बापुना पत्रो —२ : सरदार वल्लभभाईने', 'बापुनी प्रसादी', 'बापू : मैंने क्या देखा क्या समझा ?', 'बापूकी छायामें', 'बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष', 'बापूज लेटर्स टु मीरा', 'महात्मा', जिल्द ६, 'राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी', भाग १, 'सुतरने तांतणे स्वराज', और (द) 'हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस', जिल्द २।

पत्र-पत्रिकाएँ : 'अमृतबाजार पत्रिका', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'मराठी हरिजन', 'सर्वोदय', 'स्टेट्समैन', 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु', 'हरिजनसेवक', 'हितवाद' और 'हिन्दू'।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजी के स्वाक्षरोंमें मिली है, उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जों की स्पष्ट भूलें सुधार दी गई हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके समीप रखने का पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनाने का भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके हैं, उनका हमने मूलसे मिलान और संशोधन करने के बाद उपयोग किया है। नामोंको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखने की नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणमें संशय था, उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजी ने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजी ने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। लेकिन यदि ऐसा कोई अंश उन्होंने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमें छापा गया हैं। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजी के कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजी के नहीं हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है, लेकिन जिन लेखों, टिप्पणियों आदिके अन्तमें लेखन-तिथि दी गई है उनमें उसे यथावत् रहने दिया गया है। जहां वह उपलब्ध नहीं है, वहां अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई है और आवश्यक होने पर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है, उन्हें प्रसंगानुसार मास तथा वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशन की है। गांधीजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उनका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है, वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका, 'एम० एम० यू०' राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय और पुस्तकालय

की मोबाइल माइक्रोफिल्म यूनिट द्वारा तैयार कराई गई रीलोंका, 'एस० जी०' राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध सेवाग्रामकी सामग्रीके फोटोस्टेटोंका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत दस्तावेजोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देने के लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

भूमिका	पाँच
आभार	सोलह
पाठकोंको सूचना	सत्रह
१. तार : अमृतकौरको (१-४-१९४२)	१
२. पत्र : वनमाला न० परीखको (१-४-१९४२)	१
३. पत्र : रामनारायण चौधरीको (१-४-१९४२)	२
४. बातचीत : एक आस्ट्रेलियाई पत्रकारसे (३-४-१९४२ के पूर्व)	३
५. भेंट : बर्ट्रम स्टीवेन्सको (४-४-१९४२ या उसके पूर्व)	४
६. अहिंसात्मक प्रतिरोध (५-४-१९४२)	५
७. विचित्र अहिंसा (५-४-१९४२)	७
८. अहिंसा : धर्म या नीति? (५-४-१९४२)	८
९. पत्र : जगन्नाथको (५-४-१९४२)	९
१०. पत्र : प्रभावतीको (५-४-१९४२)	१०
११. प्रश्नोत्तर (६-४-१९४२)	१०
१२. पत्र : कान्तिलाल गांधीको (६-४-१९४२)	११
१३. पत्र : वनमाला न० परीखको (६-४-१९४२)	१२
१४. प्रश्नोत्तर (७-४-१९४२)	१३
१५. सम्पत्ति-ध्वंसकी नीति (७-४-१९४२)	१४
१६. स्वर्गीय हीरजी जेराम : एक मूक सेवक (७-४-१९४२)	१६
१७. पत्र : मूलचन्द पारेखको (७-४-१९४२)	१७
१८. पत्र : चिमनलाल न० शाहको (८-४-१९४२)	१७
१९. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको (८-४-१९४२)	१८
२०. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको (८-४-१९४२)	१८
२१. पत्र : परचुरे शास्त्रीको (८-४-१९४२)	१९
२२. पत्र : जे० सी० कुमारप्पाको (९-४-१९४२)	१९
२३. पत्र : निम्बकरको (९-४-१९४२)	२०
२४. पत्र : गोविन्ददासको (९-४-१९४२)	२०
२५. तार : हसरत मोहानीको (१०-४-१९४२)	२१
२६. पत्र : मनुबहन सु० मशरूवालाको (१०-४-१९४२)	२१
२७. पत्र : पुरुषोत्तमदास टण्डनको (१०-४-१९४२)	२२

२८. पत्र : मीराबहनको (११-४-१९४२) २२
२९. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (११-४-१९४२) २३
३०. पत्र : कान्तिलाल गांधीको (११-४-१९४२) २३
३१. भाषण : स्वराज्य भण्डारके उद्घाटनके अवसरपर (११-४-१९४२) २४
३२. टिप्पणियाँ : भाषाई आधार; हिसारका अकाल
और कताई (१२-४-१९४२) २४
३३. पत्र : अमृतलाल चटर्जीको (१२-४-१९४२) २६
३४. पत्र : वालजी गो० देसाईको (१२-४-१९४२) २६
३५. पत्र : कृष्णचन्द्रको (१२-४-१९४२) २७
३६. भारतमें एकता अत्यन्त आवश्यक है (१२-४-१९४२ के पश्चात्) २७
३७. टिप्पणियाँ : स्व० आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव;
लाला शंकरलाल; यात्रामें कटौती (१३-४-१९४२) २९
३८. प्रश्नोत्तर (१३-४-१९४२) ३१
३९. वह अभागा प्रस्ताव (१३-४-१९४२) ३२
४०. पत्र : अन्नपूर्णाको (१३-४-१९४२) ३४
४१. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको (१३-४-१९४२) ३५
४२. पत्र : वल्लभभाई पटेलको (१३-४-१९४२) ३५
४३. पत्र : मीठूबहन पेटिटको (१३-४-१९४२) ३६
४४. पत्र : चिमनलाल न० शाहको (१३-४-१९४२) ३७
४५. एक पुर्जा (१३-४-१९४२) ३७
४६. पत्र : विद्यावतीको (१३-४-१९४२) ३८
४७. बंगालमें संकट (१४-४-१९४२) ३८
४८. पत्र : मगनभाई प्र० देसाईको (१४-४-१९४२) ३९
४९. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको (१४-४-१९४२) ४०
५०. पत्र : हरिइच्छा कामदारको (१४-४-१९४२) ४०
५१. पत्र : सुरेन्द्रराय मेढको (१४-४-१९४२) ४१
५२. पत्र : वल्लभभाई पटेलको (१४-४-१९४२) ४१
५३. खादी और ग्रामोद्योग (१५-४-१९४२) ४२
५४. पत्र : चुन्नीलालको (१५-४-१९४२) ४३
५५. पत्र : ए० एस० पटवर्धनको (१५-४-१९४२) ४४
५६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको (१५-४-१९४२) ४४
५७. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको (१५-४-१९४२) ४५
५८. भेंट : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिको (१५-४-१९४२) ४५
५९. पत्र : प्रेमा कंटकको (१६-४-१९४२) ४६
६०. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको (१६-४-१९४२) ४७
६१. सूतकी मुद्राका महत्त्व (१७-४-१९४२) ४७

६२. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (१७-४-१९४२) ४९
६३. पत्र : एस० सत्यमूर्तिको (१७-४-१९४२) ४९
६४. पत्र : कृष्णदास शाहको (१७-४-१९४२) ५०
६५. पत्र : कृष्णचन्द्रको (१८-४-१९४२) ५०
६६. राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी दस प्रश्न (१९-४-१९४२) ५१
६७. हिन्दुस्तानमें विदेशी सिपाही (१९-४-१९४२) ५५
६८. प्रश्नोत्तर (१९-४-१९४२) ५७
६९. पत्र : प्रेमा कंटकको (१९-४-१९४२) ५९
७०. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको (१९-४-१९४२) ५९
७१. दीनबन्धु एण्ड्रयूज-स्मारक (२०-४-१९४२) ६०
७२. बर्माके शरणार्थी (२०-४-१९४२) ६१
७३. तार : मीराबहनको (२०-४-१९४२) ६१
७४. पत्र : मीराबहनको (२०-४-१९४२) ६२
७५. पत्र : जीवणजी डा० देसाईको (२०-४-१९४२) ६२
७६. पत्र : माधवदास गो० कापड़ियाको (२०-४-१९४२) ६३
७७. पत्र : कान्तिलाल गांधीको (२१-४-१९४२) ६३
७८. पत्र : माधवदास गो० कापड़ियाको (२१-४-१९४२) ६४
७९. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको (२१-४-१९४२) ६५
८०. पत्र : पद्मपत सिंहानियाको (२१-४-१९४२) ६५
८१. हिन्दुस्तानी प्रचार सभा (२२-४-१९४२) ६६
८२. पत्र : होरेस अलेक्जेंडरको (२२-४-१९४२) ६७
८३. पत्र : वल्लभभाई पटेलको (२२-४-१९४२) ६८
८४. पत्र : अमृतलाल चटर्जीको (२३-४-१९४२) ६९
८५. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके लिए प्रस्तावका मसौदा (२४-४-१९४२ के पूर्व) ७०
८६. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको (२४-४-१९४२) ७३
८७. पत्र : रामेश्वरी नेहरूको (२४-४-१९४२) ७४
८८. प्राक्कथन : 'डेड एनिमल्स टु टैण्ड लेदर' का (२६-४-१९४२) ७४
८९. प्रश्नोत्तर (२६-४-१९४२) ७४
९०. पत्र : वनमाला न० परीखको (२६-४-१९४२) ७६
९१. पत्र : वियोगी हरिको (२६-४-१९४२) ७६
९२. प्रश्नोत्तर (२७-४-१९४२) ७७
९३. सम्पत्ति-ध्वंसकी नीतिके बारेमें कुछ और (२७-४-१९४२) ७९
९४. सेवाग्रामके सेवकोंके लिए (२७-४-१९४२) ८०
९५. पत्र : एन० एस० वरदाचारीको (२७-४-१९४२) ८१
९६. पत्र : दत्तात्रेय बा० कालेलकरको (२७-४-१९४२) ८१

९७. पत्र : मुन्नालाल गं० शाहको (२७-४-१९४२) ८२
९८. उर्दू 'हरिजन' (२८-४-१९४२) ८२
९९. त्रावणकोर (२८-४-१९४२) ८३
१००. अहिंसक व्यायाम संघ (२८-४-१९४२) ८४
१०१. एक पुर्जा (२८-४-१९४२) ८५
१०२. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको (२९-४-१९४२) ८५
१०३. पत्र : शारदा गो० चोखावालाको (१-५-१९४२) ८५
१०४. पत्र : प्रभावतीको (१-५-१९४२) ८६
१०५. पत्र : वलवन्तसिंहको (१-५-१९४२) ८६
१०६. पत्र : हीरालाल शास्त्रीको (२-५-१९४२) ८७
१०७. पत्र : सोहनलाल दूगड़को (२-५-१९४२) ८७
१०८. वक्तव्य : हिन्दुस्तानीके वारेमें (२-५-१९४२) ८८
१०९. हरिजन सेवक संघ (३-५-१९४२) ८८
११०. पत्र : दत्तात्रेय वा० कालेलकरको (३-५-१९४२) ९१
१११. पत्र : इन्दुमती ना० गुणाजीको (३-५-१९४२) ९२
११२. टिप्पणियाँ : देशी रियासतें और उनकी रिआया;
अफीमचियोंके वारेमें (४-५-१९४२) ९२
११३. जरूरी चीज (४-५-१९४२) ९४
११४. प्रश्नोत्तर (४-५-१९४२) ९७
११५. पत्र : मगनलाल प्रा० मेहताको (७-५-१९४२) ९८
११६. पत्र : कृष्णचन्द्रको (७-५-१९४२) ९९
११७. तार : चुन्नीलाल सेनको (७-५-१९४२ या उसके पश्चात्) ९९
११८. पत्र : परचुरे शास्त्रीको (८-५-१९४२) १००
११९. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको (९-५-१९४२) १००
१२०. पत्र : कृष्णचन्द्रको (९-५-१९४२) १०१
१२१. मैसूर (१०-५-१९४२) १०१
१२२. प्रश्नोत्तर (१०-५-१९४२) १०२
१२३. प्रश्नोत्तर (१०-५-१९४२) १०४
१२४. पत्र : अमृतकौरको (१०-५-१९४२) १०६
१२५. प्रश्नोत्तर (११-५-१९४२) १०७
१२६. हर ब्रिटेनवासीसे (११-५-१९४२) १०८
१२७. पत्र : कस्तूरबा गांधीको (११-५-१९४२) १११
१२८. पत्र : नारणदास गांधीको (११-५-१९४२) १११
१२९. पत्र : शान्तिकुमार न० मोरारजीको (११-५-१९४२) ११२
१३०. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको (११-५-१९४२) ११२
१३१. पत्र : अमृतकौरको (११-५-१९४२) ११३

१३२. पत्र : अमतुस्सलामको (११-५-१९४२) ११३
१३३. पत्र : बलवन्तसिंहको (११-५-१९४२) ११४
१३४. पत्र : शारदा गो० चोखावालाको (१२-५-१९४२) ११४
१३५. पत्र : अमृतकौरको (१२-५-१९४२) ११५
१३६. पत्र : प्रेमा कंटकको (१४-५-१९४२) ११५
१३७. भेंट : 'न्यूज क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिको (१४-५-१९४२) ११६
१३८. भेंट : बम्बई उपनगरवासी और गुजराती कांग्रेसजनोंको (१५-५-१९४२) ११८
१३९. भेंट : समाचारपत्रोंको (१६-५-१९४२) १२३
१४०. बातचीत : दान देनेवालोंसे (१७-५-१९४२ के पूर्व) १२९
१४१. पत्र : अमृतकौरको (१७-५-१९४२) १३०
१४२. टिप्पणियाँ : दीनबन्धु-स्मारक; हरिजनोंके लिए चन्दा (१८-५-१९४२) १३१
१४३. टिप्पणियाँ : एक भ्रम; क्या किया जा सकता था? (१८-५-१९४२) १३२
१४४. प्रश्नोत्तर (१८-५-१९४२) १३३
१४५. पत्र : मीराबहनको (१८-५-१९४२) १३५
१४६. पत्र : अमृतकौरको (१८-५-१९४२) १३५
१४७. सिन्धमें अराजकता (१९-५-१९४२) १३६
१४८. पत्र : तैयबुल्लाको (१९-५-१९४२) १४२
१४९. कत्तिनोंकी मजदूरीमें से अधिकाधिक कितनी रकम काटी जाये (२०-५-१९४२) १४२
१५०. पत्र : अमृतकौरको (२०-५-१९४२) १४३
१५१. पत्र : अमृतलाल चटर्जीको (२०-५-१९४२) १४४
१५२. पत्र : लक्ष्मी गांधीको (२०-५-१९४२) १४५
१५३. पत्र : ना० र० मलकानीको (२१-५-१९४२) १४५
१५४. पत्र : अमृतकौरको (२१-५-१९४२) १४६
१५५. पत्र : हीरालाल शास्त्रीको (२१-५-१९४२) १४६
१५६. पत्र : कृष्णचन्द्रको (२१-५-१९४२) १४७
१५७. प्रश्नोत्तर (२२-५-१९४२) १४७
१५८. पत्र : मीराबहनको (२२-५-१९४२) १५१
१५९. पत्र : कृष्ण वर्माको (२२-५-१९४२) १५२
१६०. अन्तर क्यों? (२३-५-१९४२) १५२
१६१. दोस्ताना सलाह (२३-५-१९४२) १५३
१६२. प्रश्नोत्तर (२३-५-१९४२) १५४
१६३. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (२३-५-१९४२) १५६
१६४. पत्र : रथीन्द्रनाथ ठाकुरको (२३-५-१९४२) १५७

१६५. पत्र : वल्लभभाई पटेलको (२३-५-१९४२) १५७
१६६. पत्र : अमृतकौरको (२३-५-१९४२) १५८
१६७. राजाजी के विषयमें (२४-५-१९४२) १५९
१६८. पत्र : तुफैल अहमदको (२४-५-१९४२) १६०
१६९. पत्र : जे० सी० कुमारप्पाको (२४-५-१९४२) १६१
१७०. पत्र : प्रतापराय एम० मोदीको (२४-५-१९४२) १६१
१७१. पत्र : चिमनलाल न० शाहको (२४-५-१९४२) १६२
१७२. पत्र : कृष्णचन्द्रको (२४-५-१९४२) १६२
१७३. एक पुर्जा (२४-५-१९४२) १६३
१७४. पत्र : परचुरे शास्त्रीको (२४-५-१९४२) १६३
१७५. अगर सच है तो भयंकर है (२५-५-१९४२) १६३
१७६. हिन्दुस्तानी सैनिक क्या पागल हो गये हैं? (२५-५-१९४२) १६४
१७७. पत्र : गोपराजू सत्यनारायण मूर्तिको (२५-५-१९४२) १६६
१७८. पत्र : पुरातन बुचको (२५-५-१९४२) १६६
१७९. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको (२५-५-१९४२) १६७
१८०. पत्र : मूलजीभाई तु० शर्माको (२५-५-१९४२) १६७
१८१. पत्र : अब्दुल हकको (२५-५-१९४२) १६८
१८२. पत्र : हीरालाल शर्माको (२५-५-१९४२) १६८
१८३. पत्र : डॉ० ए० यू० काजीको (२५-५-१९४२) १६९
१८४. पत्र : अमृतकौरको (२६-५-१९४२) १६९
१८५. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको (२६-५-१९४२) १७०
१८६. पत्र : हनुमन्तरावको (२६-५-१९४२) १७०
१८७. पत्र : मोतीलाल रायको (२६-५-१९४२) १७१
१८८. पत्र : अमृतकौरको (२७-५-१९४२) १७६
१८९. पत्र : वल्लभभाई पटेलको (२७-५-१९४२) १७२
१९०. बातचीत : राष्ट्रीय युवक संघके सदस्योंसे (२८-५-१९४२) १७२
१९१. पत्र : अमृतकौरको (२८-५-१९४२) १७८
१९२. पत्र : वल्लभराम वैद्यको (२८-५-१९४२) १७८
१९३. भेंट : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिको (२८-५-१९४२) १७९
१९४. तार : 'सन्डे डिस्पैच' को (२९-५-१९४२ या उसके पूर्व) १८१
१९५. सरदार पृथ्वीसिंह (२९-५-१९४२) १८२
१९६. मतभेद वास्तविक हैं (२९-५-१९४२) १८२
१९७. जोधपुर (३०-५-१९४२) १८५
१९८. प्रश्नोत्तर (३०-५-१९४२) १८६
१९९. अन्न सुलभ करने का मार्ग (३०-५-१९४२) १८७
२००. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको (३०-५-१९४२) १८९

२०१. पत्र : विजया म० पंचोलीको (३०-५-१९४२) १८९
२०२. पत्र : कृष्णचन्द्रको (३०-५-१९४२) १९०
२०३. तिहरी दुःखद स्थिति (३१-५-१९४२) १९०
२०४. पत्र : मीराबहनको (३१-५-१९४२) १९१
२०५. पुर्जा : पेरीन कैप्टेनको (मई, १९४२) १९३
२०६. गुजरातमें हरिजनोंके लिए पानी (१-६-१९४२) १९४
२०७. कराड़ीमें खादीका उत्पादन और शिक्षा (१-६-१९४२) १९४
२०८. पत्र : अमृतलाल चटर्जीको (१-६-१९४२) १९५
२०९. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको (१-६-१९४२) १९५
२१०. पत्र : प्रभावतीको (१-६-१९४२) १९६
२११. पत्र : प्रभावतीको (१-६-१९४२) १९७
२१२. पत्र : अमृतकौरको (२-६-१९४२) १९७
२१३. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (२-६-१९४२) १९८
२१४. पत्र : नागजीभाईको (२-६-१९४२) १९८
२१५. प्रश्नोत्तर (३-६-१९४२) १९९
२१६. पत्र : अमृतकौरको (३-६-१९४२) २००
२१७. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (३-६-१९४२) २००
२१८. पत्र : अम्बालाल साराभाईको (३-६-१९४२) २०१
२१९. पत्र : वल्लभभाई पटेलको (३-६-१९४२) २०२
२२०. पत्र : ना० र० मलकानीको (३-६-१९४२) २०३
२२१. प्रश्नोत्तर (५-६-१९४२) २०३
२२२. मृतकी मुद्रा (५-६-१९४२) २०४
२२३. पत्र : अमृतकौरको (५-६-१९४२) २०४
२२४. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको (५-६-१९४२) २०५
२२५. महत्त्वपूर्ण प्रश्न (६-६-१९४२) २०५
२२६. डॉ० ताराचन्द और हिन्दुस्तानी (६-६-१९४२) २०८
२२७. पत्र : अमृतकौरको (६-६-१९४२) २१०
२२८. पत्र : बाकरअली मिर्जाको (६-६-१९४२) २१०
२२९. पत्र : जगन्नाथको (६-६-१९४२) २११
२३०. पत्र : परचुरे शास्त्रीको (६-६-१९४२) २११
२३१. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको (६-६-१९४२) २१२
२३२. भेंट : अमेरिकी पत्रकारोंको (६-६-१९४२) २१२
२३३. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (६/७-६-१९४२) २१९
२३४. काठियावाड़में खादी (७-६-१९४२) २१९
२३५. राजाजी (७-६-१९४२) २२०
२३६. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (७-६-१९४२) २२१

२३७. विना बलिदानके मुक्ति नहीं (८-६-१९४२) २२१
२३८. पत्र : अमृतकौरको (८-६-१९४२) २२२
२३९. पत्र : दत्तात्रेय बा० कालेलकरको (८-६-१९४२) २२२
२४०. पत्र : वल्लभराम वैद्यको (८-६-१९४२) २२३
२४१. पत्र : कृष्णचन्द्रको (८-६-१९४२) २२४
२४२. पत्र : अमृतकौरको (९-६-१९४२) २२४
२४३. पत्र : भगवानदासको (९-६-१९४२) २२५
२४४. पत्र : कृष्णचन्द्रको (९-६-१९४२) २२५
२४५. पत्र : दत्तात्रेय बा० कालेलकरको (१०-६-१९४२) २२६
२४६. पत्र : दत्तात्रेय बा० कालेलकरको (१०-६-१९४२) २२६
२४७. पत्र : वल्लभभाई पटेलको (१०-६-१९४२) २२७
२४८. पत्र : कृष्णचन्द्रको (१०-६-१९४२) २२८
२४९. पत्र : डॉ० ताराचन्दको (१०-६-१९४२) २२८
२५०. भेंट : प्रेस्टन ग्रोवरको (१०-६-१९४२) २२९
२५१. भेंट : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिको (११-६-१९४२ के पूर्व) २३६
२५२. दस्तकारी द्वारा शिक्षा (११-६-१९४२ या उसके पूर्व) २३७
२५३. प्रश्नोत्तर (१२-६-१९४२) २३८
२५४. पत्र : अमृतकौरको (१२-६-१९४२) २४०
२५५. पत्र : शान्तिकुमार न० मोरारजीको (१२-६-१९४२) २४०
२५६. पत्र : कृष्णचन्द्रको (१२-६-१९४२) २४१
२५७. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (१३-६-१९४२) २४१
२५८. पत्र : वालजी गो० देसाईको (१३-६-१९४२) २४२
२५९. प्रश्नोत्तर (१४-६-१९४२) २४२
२६०. जोधपुरमें दारुण स्थिति (१४-६-१९४२) २४४
२६१. पत्र : च्यांग काई-शेकको (१४-६-१९४२) २४७
२६२. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (१४-६-१९४२) २५०
२६३. पत्र : वल्लभभाई पटेलको (१४-६-१९४२) २५०
२६४. पत्र : प्रभावतीको (१४-६-१९४२) २५१
२६५. पत्र : अमृतकौरको (१५-६-१९४२) २५१
२६६. पुर्जा : अमृतकौरको (१५-६-१९४२) २५२
२६७. पत्र : प्रभावतीको (१५-६-१९४२) २५३
२६८. पत्र : मदालसाको (१५-६-१९४२) २५३
२६९. पत्र : कमलनयन बजाजको (१५-६-१९४२) २५४
२७०. पत्र : अमृतकौरको (१४/१६-६-१९४२) २५४
२७१. एक चुनौती (१८-६-१९४२) २५५
२७२. पत्र : रामनारायणको (१८-६-१९४२) २५७

२७३. पत्र : अमृतकौरको (१९-६-१९४२) २५८
२७४. पत्र : के० सुब्बारावको (१९-६-१९४२) २५९
२७५. पत्र : कृष्णचन्द्रको (१९-६-१९४२) २५९
२७६. पत्र : कृष्णचन्द्रको (१९-६-१९४२) २६०
२७७. भेंट : यूनाइटेड प्रेसके प्रतिनिधिको (१९-६-१९४२) २६०
२७८. भेंट : रायटरके प्रतिनिधिको (२१-६-१९४२ के पूर्व) २६१
२७९. पत्र : अमृतकौरको (२१-६-१९४२) २६३
२८०. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको (२१-६-१९४२) २६३
२८१. एक समस्या (२२-६-१९४२) २६३
२८२. दो बातें (२२-६-१९४२) २६८
२८३. पत्र : नारणदास गांधीको (२२-६-१९४२) २६९
२८४. स्वर्गीय डॉ० दत्त (२३-६-१९४२) २७०
२८५. बातचीत : होरेस अलेक्जैंडरसे (२३-६-१९४२ या उसके पश्चात्) २७०
२८६. पत्र : अमृतकौरको (२४-६-१९४२) २७२
२८७. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको (२४-६-१९४२) २७३
२८८. पत्र : अब्दुल वदूद सरहदीको (२४-६-१९४२) २७३
२८९. पत्र : कंचन मु० शाहको (२५-६-१९४२) २७४
२९०. सिख भाइयोंके लिए (२६-६-१९४२) २७४
२९१. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको (२६-६-१९४२) २७७
२९२. पत्र : कृष्णचन्द्रको (२६-६-१९४२) २७७
२९३. भाषण : खादी विद्यालयके छात्रोंके समक्ष (२६-६-१९४२) २७८
२९४. चर्चा : खादी-सेवकोंके साथ (२६-६-१९४२) २७९
२९५. सेनाओंका प्रश्न (२७-६-१९४२) २८१
२९६. हुल्लड़बाजी (२८-६-१९४२) २८३
२९७. प्रश्नोत्तर (२८-६-१९४२) २८३
२९८. पत्र : अमृतकौरको (२८-६-१९४२) २८५
२९९. पत्र : वल्लभराम वैद्यको (२८-६-१९४२) २८५
३००. प्रश्नोत्तर (२९-६-१९४२) २८६
३०१. जोधपुर (२९-६-१९४२) २८७
३०२. पत्र : एच० ई० बी० कैटलीको (२९-६-१९४२) २८८
३०३. पत्र : एफ० ए० फजलभाईको (२९-६-१९४२) २८९
३०४. पत्र : गजानन त्र्यंबक माडखोलकरको (२९-६-१९४२) २८९
३०५. पत्र : परचुरे शास्त्रीको (२९-६-१९४२) २९०
३०६. बादशाह खाँकी लोकप्रियता (३०-६-१९४२) २९०
३०७. पत्र : सैयद जमील वास्तीको (३०-६-१९४२) २९१
३०८. पत्र : भगवानदास हरखचन्दको (३०-६-१९४२) २९२

३०९. पत्र : नारणदास गांधीको (३०-६-१९४२) २९२
३१०. पत्र : फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्टको (१-७-१९४२) २९३
३११. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको (२-७-१९४२) २९५
३१२. पत्र : कृष्णचन्द्रको (२-७-१९४२) २९६
३१३. प्रश्नोत्तर (३-७-१९४२) २९६
३१४. पत्र : अमृतकौरको (३-७-१९४२) २९७
३१५. पत्र : अमृतकौरको (३-७-१९४२ के आसपास) २९८
३१६. गुरु गोविन्दसिंह (४-७-१९४२) २९८
३१७. 'सर्वोदय' (४-७-१९४२) ३०२
३१८. पत्र : अमृतकौरको (४-७-१९४२) ३०३
३१९. पत्र : बालकृष्ण मार्तण्ड चौंडेको (४-७-१९४२) ३०४
३२०. प्रश्नोत्तर (५-७-१९४२) ३०४
३२१. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (५-७-१९४२) ३०६
३२२. पत्र : प्रेमा कंटकको (५-७-१९४२) ३०७
३२३. मुसलमान पत्र-लेखकोंसे (६-७-१९४२) ३०७
३२४. अ० भा० चरखा संघ और इसी तरहकी अन्य संस्थाएँ (६-७-१९४२) ३१०
३२५. पत्र : अमृतकौरको (६-७-१९४२) ३११
३२६. पत्र : डी० को (६-७-१९४२) ३१२
३२७. विर्चालियोंसे (७-७-१९४२) ३१२
३२८. पत्र : जगदीश और चन्द्रमुखीको (८-७-१९४२) ३१३
३२९. तार : अमृतकौरको (९-७-१९४२) ३१३
३३०. पत्र : होरेस अलेक्जैंडरको (९-७-१९४२) ३१४
३३१. कांग्रेस कार्य-समितिके प्रस्तावका मसौदा (९-७-१९४२) ३१४
३३२. कांग्रेस और युद्ध-सामग्रीके ठेके (१०-७-१९४२) ३१७
३३३. प्रश्नोत्तर (१०-७-१९४२) ३१७
३३४. भेंट : 'डेली एक्सप्रेस' के प्रतिनिधिको (११-७-१९४२ के पूर्व) ३१९
३३५. 'हरिजन' बन्द किया गया तो (१२-७-१९४२) ३२०
३३६. टिप्पणियाँ : बीमार पड़ने पर;
समयोचित्त कार्रवाई (१२-७-१९४२) ३२२
३३७. उचित प्रश्न (१२-७-१९४२) ३२३
३३८. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (१२-७-१९४२) ३२६
३३९. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको (१३-७-१९४२) ३२६
३४०. भेंट : समाचारपत्रोंको (१४-७-१९४२) ३२७
३४१. एक सन्देश (१५-७-१९४२) ३३२
३४२. भेंट : विदेशी पत्रकारोंको (१५-७-१९४२) ३३२
३४३. तार : प्यारा सिंहानियाको (१६-७-१९४२) ३३८

३४४. पत्र : अमृतकौरको (१६-७-१९४२) ३३९
३४५. पत्र : रथीन्द्रनाथ ठाकुरको (१६-७-१९४२) ३३९
३४६. पत्र : पद्मपत सिंहानियाको (१६-७-१९४२) ३४०
३४७. पत्र : अमृतकौरको (१७-७-१९४२) ३४१
३४८. पत्र : जे० सी० कुमारप्पाको (१७-७-१९४२) ३४१
३४९. पत्र : भगवानदासको (१७-७-१९४२) ३४२
३५०. प्रश्नोत्तर (१८-७-१९४२) ३४२
३५१. हर जापानीसे (१८-७-१९४२) ३४४
३५२. अपने आलोचकोंसे (१९-७-१९४२) ३४८
३५३. प्रश्नोत्तर (१९-७-१९४२) ३५०
३५४. मुसलमान भाइयोंके लिए (२०-७-१९४२) ३५१
३५५. पण्डित काचरूका निर्वासन (२०-७-१९४२) ३५३
३५६. अहिंसक आन्दोलनमें उपवासका स्थान (२०-७-१९४२) ३५४
३५७. पत्र : नजीर अहमदको (२०-७-१९४२) ३५६
३५८. पत्र : अमृतकौरको (२०-७-१९४२) ३५७
३५९. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (२०-७-१९४२) ३५८
३६०. पत्र : वियोगी हरिको (२०-७-१९४२) ३५९
३६१. प्रश्नोत्तर (२१-७-१९४२ या उसके पूर्व) ३५९
३६२. पत्र : मीराबहनको (२१-७-१९४२) ३६०
३६३. पत्र : रणवीरसिंहको (२१-७-१९४२) ३६१
३६४. चरखा जयन्ती (२२-७-१९४२) ३६१
३६५. पत्र : बालकृष्ण भावेको (२२-७-१९४२) ३६२
३६६. पत्र : प्रभावतीको (२२-७-१९४२) ३६३
३६७. पत्र : प्रेमा कंटकको (२३-७-१९४२) ३६३
३६८. तार : रथीन्द्रनाथ ठाकुरको (२३-७-१९४२ या उसके पश्चात्) ३६४
३६९. पहला शिकार (२४-७-१९४२) ३६४
३७०. पत्र : मुन्नालाल गं० शाहको (२४-७-१९४२) ३६६
३७१. भेंट : एक पत्रकारको (२५-७-१९४२ के पूर्व) ३६६
३७२. समझसे काम लीजिए (२६-७-१९४२) ३६९
३७३. सन्देश : 'डेली हेरल्ड' को (२६-७-१९४२) ३७१
३७४. बातचीत : विनोबा भावे तथा अन्य लोगोंसे (२६-७-१९४२) ३७२
३७५. राजाओंसे (२७-७-१९४२) ३७४
३७६. उर्दूकी परीक्षा (२७-७-१९४२) ३७६
३७७. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको (२७-७-१९४२) ३७८
३७८. पुर्जा : बलवन्तसिंहको (२७-७-१९४२) ३७८
३७९. प्रश्नोत्तर (२८-७-१९४२) ३७९

३८०. पत्र : आसफ अलीको (२८-७-१९४२) ३८०
३८१. पत्र : मॉरिस फ्रिडमैनको (२८-७-१९४२) ३८१
३८२. पत्र : अब्दुल हकको (२८-७-१९४२) ३८२
३८३. पत्र : सैयद महमूदको (२८-७-१९४२) ३८२
३८४. पत्र : अमृतकौरको (२९-७-१९४२) ३८३
३८५. पत्र : तेजबहादुर सप्रूको (२९-७-१९४२) ३८३
३८६. तार : एगथा हैरिसनको (३०-७-१९४२) ३८४
३८७. पत्र : ग्लैडिस ओवेनको (३०-७-१९४२) ३८५
३८८. पत्र : जयसुखलाल गांधीको (३०-७-१९४२) ३८५
३८९. पत्र : दत्तात्रेय बा० कालेलकरको (३०-७-१९४२) ३८६
३९०. पत्र : कृष्णचन्द्रको (३०-७-१९४२) ३८६
३९१. पत्र : अमृतकौरको (३१-७-१९४२) ३८७
३९२. पत्र : तेजासिंहको (३१-७-१९४२) ३८७
३९३. पत्र : वान्दा दीनोवस्काको (३१-७-१९४२) ३८८
३९४. पत्र : कृष्णचन्द्रको (३१-७-१९४२) ३८८
३९५. भाषण : प्रार्थना-सभामें (जुलाई, १९४२) ३८९
३९६. पत्र : अमृतकौरको (१-८-१९४२) ३८९
३९७. आश्रमवासियोंको निर्देश (१-८-१९४२) ३९०
३९८. भाषण : हिन्दुस्तानी तालीमी संघ भवनके उद्घाटनके अवसरपर (१-८-१९४२) ३९०
३९९. प्रश्नोत्तर (२-८-१९४२ या उसके पूर्व) ३९१
४००. हिन्दुस्तानी (२-८-१९४२ या उसके पूर्व) ३९३
४०१. खादी पैदा करो (२-८-१९४२) ३९४
४०२. 'मगनदीप' (२-८-१९४२) ३९४
४०३. एक मौजूं सवाल (२-८-१९४२) ३९५
४०४. पत्र : दत्तात्रेय बा० कालेलकरको (२-८-१९४२) ३९७
४०५. मारवाड़ लोक-परिषद्की माँगें (२-८-१९४२) ३९७
४०६. अमेरिकी मित्रोंसे (३-८-१९४२) ३९९
४०७. प्रश्नोत्तर (३-८-१९४२) ४०२
४०८. टिप्पणी : होरेस अलेक्जैंडरके पत्रपर (३-८-१९४२) ४०३
४०९ पत्र : होरेस अलेक्जैंडरको (३-८-१९४२) ४०४
४१०. पत्र : अमृतलाल चटर्जीको (३-८-१९४२) ४०५
४११. सत्याग्रहियोंको दिये जानेवाले निर्देशोंका मसौदा (४-८-१९४२) ४०६
४१२. तार : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (४-८-१९४२) ४०९
४१३. पत्र : अमृतकौरको (४-८-१९४२) ४१०
४१४. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (४-८-१९४२) ४१०

४१५. पत्र : तेजबहादुर सप्रूको (४-८-१९४२) ४११
४१६. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको (५-८-१९४२) ४१२
४१७. प्रस्तावना : गुप्त सरकारी परिपत्रके लिए (६-८-१९४२) ४१५
४१८. पत्र : बालकृष्ण भावेको (६-८-१९४२) ४१६
४१९. भेंट : एसोशिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको (६-८-१९४२) ४१७
४२०. तार : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (७-८-१९४२) ४१८
४२१. सन्देश : चीनको (७-८-१९४२) ४१९
४२२. भाषण : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें (७-८-१९४२) ४१९
४२३. तार : मदनमोहन मालवीयको (७-८-१९४२ या उसके पश्चात्) ४२४
४२४. पत्र : एक मुसलमानको (८-८-१९४२) ४२४
४२५. भेंट : समाचारपत्रोंको (८-८-१९४२) ४२५
४२६. भाषण : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें (८-८-१९४२) ४२६
४२७. भाषण : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें (८-८-१९४२) ४३८
४२८. सन्देश : कर्नाटकके लिए (८-८-१९४२) ४४३
४२९. सच हो तो अशोभनीय (९-८-१९४२) ४४४
४३०. सन्देश : देशके लिए (९-८-१९४२) ४४५
४३१. सन्देश : देशके लिए (९-८-१९४२) ४४६
४३२. पत्र : सर रॉजर लमलीको (१०-८-१९४२) ४४६
४३३. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको (१३-८-१९४२) ४४८
४३४. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको (१४-८-१९४२) ४४८
४३५. तार : चिमनलाल न० शाहको (१५-८-१९४२) ४५३
४३६. प्रस्तावना (२७-८-१९४२) ४५४
४३७. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको (२७-८-१९४२) ४५५
४३८. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको (१९-९-१९४२) ४५६
४३९. पत्र : भारत सरकारके गृह-सचिवको (२३-९-१९४२) ४५७
४४०. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको (२६-९-१९४२) ४५८
४४१. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको (२६-१०-१९४२) ४५९
४४२. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको (५-११-१९४२) ४६०
४४३. तार : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको (२४-११-१९४२) ४६०
४४४. पत्र : जेल-महानिरीक्षकको (२५-११-१९४२) ४६१
४४५. पत्र : बम्बई सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको (४-१२-१९४२) ४६२

परिशिष्ट

१. बातचीत : प्यारेलालके साथ ४६३
२. ब्रिटिश सरकारका प्रस्ताव : औपनिवेशिक विषयोंके मन्त्रीकी टिप्पणी ४६६
३. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा पारित प्रस्ताव ४६८

४. हिन्दुस्तानी प्रचार सभाके संविधानमें सभाके उद्देश्य व कार्य निर्धारित करनेवाली धाराएँ ४७०
५. भेंट : लुई फिशरको ४७१
६. कांग्रेस कार्य-समिति द्वारा पारित प्रस्ताव ५०१
७. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी तथा अन्य लोगोंका पत्र ५०४
८. चक्रवर्ती राजगोपालाचारीका फार्मूला ५०७
९. समाचारपत्रोंके लिए जवाहरलाल नेहरूका वक्तव्य ५०८
१०. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा पारित प्रस्ताव ५०९
११. चक्रवर्ती राजगोपालाचारीका पत्र ५१३
१२. भारत सरकारका प्रस्ताव ५१५
१३. प्यारेलालके साथ मार्क्सवादपर चर्चा ५१८
सामग्रीके साधन-सूत्र ५२१
तारीखवार जीवन-वृत्तान्त ५२३
शीर्षक-सांकेतिका ५२५
सांकेतिका ५२९

१. तार : अमृतकौरको

नई दिल्ली
१ अप्रैल, १९४२

राजकुमारी
सेवाग्राम
वर्धा

खेद है, शायद तीन दिन और रुकना पड़ेगा। सप्रेम।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१२१) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७८३० से भी

२. पत्र : वनमाला न० परीखको

१ अप्रैल, १९४२

चि० वनुड़ी,[1]

तेरा पत्र मिला। तुझे या तो वहाँ अच्छी हो जाना चाहिए या फिर यहाँ आना चाहिए। धीरज और हिम्मत मत खोना। निश्चय कर ले कि कानका यह मर्ज ठीक करना ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७८९) से। सी० डब्ल्यू० ३०१२ से भी; सौजन्य : वनमाला म० देसाई

१. नरहरि परीखकी पुत्री, जिनका बादमें महेन्द्र वा० देसाईसे विवाह हुआ।

३. पत्र : रामनारायण चौधरीको

दिल्ली
१ अप्रैल, १९४२

चि० रामनारायण,

तुमारा १२-३-१९४२ का खत मैं साथ लाया हूं। कल सब नियम और तुम्हारे लिए जो अभ्यास-क्रम है पढ़ गया। अच्छा है। नियम भी ठीक हैं।

छात्रालयमें सफाई, हिन्दी वगैराका काम कर रहे हो वह भी अच्छा लगता है। जितना सुवास फैला सकते हो फैलाओ।

महादेवभाई अच्छे हैं।

बापूके आशीर्वाद

बापू : मैंने क्या देखा, क्या समझा?, पृ० १३२

४. बातचीत : एक आस्ट्रेलियाई पत्रकारसे[1]

[३ अप्रैल, १९४२ के पूर्व][2]

मनुष्य मनुष्यसे घृणा करे और उसके खूनका प्यासा हो, यह बात मेरी समझमें नहीं आती। जो युद्ध चल रहा है और अपनी लपटोंमें तेजीसे सारी दुनियाको लपेटता जा रहा है उसका मैं कोई औचित्य नहीं समझ पाता। यह घृणा और प्रतिशोधपर आधारित है और अपने पीछे घृणा और प्रतिहिंसाकी ही पौध छोड़ जायेगा। मानव-जीवन तथा सम्पत्तिका — जो अन्यथा विश्वके लिए उपयोगी होती — ऐसा अपव्यय भयावह और घृणास्पद है। आपके और मेरे देशका इसमें उलझना क्यों जरूरी होना चाहिए? आप व्यावहारिक सूझ-बूझवाले बढ़िया लोग हैं। बेहतर तो यह होता कि आप अपने देशका निर्माण करते और उसे शेष विश्वके लिए उपयोगी बनाते। आपसे अपनी मानव-शक्तिका बलिदान करने को क्यों कहा जा

१. महादेव देसाईके लेख "टू आस्ट्रेलियन विजिटर्स" (दो आस्ट्रेलियाई मुलाकाती) से उद्धृत। साधन-सूत्रमें पत्रकारके नामका उल्लेख नहीं है। वह एक युद्ध-संवाददाता था। गांधीजी ने उससे बाहर घूमते हुए बातचीत की थी।

२. महादेव देसाईने पत्रकारके आने का जिक्र ३ अप्रैलके एक लेख "हाउ टु बी वर्दी ऑफ अवर हेरीटेज" मे (हम अपनी विरासतके लायक कैसे बन सकते हैं) किया है, जो १२-४-१९४२ के हरिजनमें प्रकाशित हुआ था।

रहा है? और इससे भी ज्यादा दुःखकी बात तो यह है कि इस सबसे कुछ लाभ नहीं। मैं नही जानता कि यह सब लड़ाई क्यों चल रही है, किसके लाभके लिए चल रही है और इसके पीछे कौन-सा वड़ा उद्देश्य है।

पत्रकार: यह तो शायद ही कोई जानता हो।

गांधीजी : वात ऐसी है कि शायद भगवान चाहता है कि इस नर-संहारसे मिलनेवाली शिक्षाके रूपमें शान्ति स्थापित हो।

प० : जो-कुछ इस समय हो रहा है उसके वारेमें क्या आप कुछ कह सकते हैं?

गां० : इसके लिए आपको पदाधिकारियोंके पास ही जाना होगा। मैं कुछ नही कह सकता।

प० : लेकिन, श्रीमन्, आप उनके साथ हैं।

गां० : फिर भी. मेरे यह बताने पर आपको आश्चर्य होगा कि मुझे उन वातों में दिलचस्पी नहीं है। मैंने कांग्रेसकी अपनी सदस्यता आठ वर्ष पूर्व ही त्याग दी थी।[1] मैं कांग्रेसमें जाता हूँ, कार्य-समितिकी बैठकोंमें शरीक होता हूँ तथा जब मेरी सलाह ली जाती है तो तटस्थ भावसे सलाह भी दे देता हूँ। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मैंने कभी रेडियो नहीं सुना और न कभी कोई सिनेमा देखा है।

प० : क्या आपका खयाल है कि ये चीजें बुरी हैं?

गां० : मैं ऐसा नहीं कहूँगा। अलबत्ता, मैं यह कह सकता हूँ कि सिनेमाकी फिल्में बहुधा बुरी होती हैं। रेडियोके बारेमें मैं नहीं जानता। यह मैं निश्चय ही कह सकता हूँ कि मैं आधे-आधे घंटेके अन्दर विश्वके हर कोनेसे समाचार पाने की चिन्ता नहीं करता। इससे व्यक्तिके पास सोचने का समय नही रहता और फिर हर आध घंटे पर विश्वके हर कोनेका समाचार क्यों जानना चाहिए? मैं तो अपने आसपासकी परिस्थितियों और घटनाओंको जानकर और उनके विषयमें मैं जो-कुछ कर सकता हूँ उतना करके सन्तुष्ट हो जाऊँगा।

लेकिन उस नवयुवकने कार्य-समितिके वारेमें धीरेसे कोई प्रश्न पूछा।

गां० : मुझे आपको यह बताने मे कोई झिझक नहीं कि कार्य-समिति और मेरे बीच मतभेद हैं। अहिंसाके प्रश्नपर सारा राष्ट्र मेरे साथ नहीं है। यदि समूचा राष्ट्र सर्वथा शान्तिप्रिय होता तो मैं निःशंक कह सकता हूँ कि हम युद्धमें न होते, और हमपर यह विदेशी प्रभुत्व न होता। विदेशी शासक हमें आदेश न देते होते। तब हम मित्रताके आधारपर विदेशोंके लोगोंको अपने यहाँ रखते और अपनी इच्छानुसार उनकी प्रतिभाका सहर्ष उपयोग करते। लेकिन मैं इस वातकी चिन्ता नहीं कर रहा हूँ कि राष्ट्र मेरे साथ नहीं है। जब मैं अपने निकटतम साथियों — कार्य-समितिके सदस्यों — की राय नहीं बदल सका, तो मुझे अपने देशके लोगोंके प्रति

1. देखिए खण्ड ५९, पृ० ४-१३, १८५-८६, २१२, २२४-३१ और २४२-४४।

अधीरता दिखानेका कोई अधिकार नहीं है। इसमें मेरा ही दोष होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि मुझमें इतनी अहिंसा नहीं है कि मैं सबको अपने साथ लेकर चल सकूँ। लेकिन अहिंसामें मेरा विश्वास अक्षुण्ण और अडिग है। वास्तवमें वह दिनोंदिन बढ़ रहा है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३-५-१९४२

५. भेंट: बर्ट्रम स्टीवेन्सको[1]

दिल्ली
[४ अप्रैल, १९४२ या उसके पूर्व][2]

बर्ट्रम स्टीवेन्स: मैंने आपके बारेमें श्री बिड़लासे बहुत-कुछ सुना है। आप इंग्लैंड गये, यूरोप गये और दक्षिण आफ्रिकामें काफी समय तक रहे हैं। लेकिन आप आस्ट्रेलिया कभी नहीं गये।

गांधीजी: नहीं, और इसका कारण आप लोग हैं।

ब० स्टी०: आपने बहुत सुन्दर जवाब दिया है, श्री गांधी।

गां०: दिया है न? आपके यहाँ रहने की बहुत जगह है। आप अपने यहाँ लाखों-करोड़ों मनुष्योंको खपा सकते हैं। लेकिन मैं जानता हूँ कि आप क्या कर रहे हैं। आपके देशमें जो-कुछ हो रहा है उसे मैं ३५ वर्षसे ज्यादा समयसे देखता आ रहा हूँ। आपकी नीति है श्वेत आस्ट्रेलिया और उसके परिणामस्वरूप आपके पास वह अद्भुत ताकत नहीं है जो आपके पास यदि आप सबसे भाईचारेकी नीति अपनाकर चलते तो होती।

ब० स्टी०: मैं मानता हूँ। लेकिन हमारा देश केवल १५० वर्ष पुराना है। पूर्वग्रह कठिनाईसे समाप्त होते हैं, लेकिन वे समाप्त हो रहे हैं।

गां०: आप बड़ी अच्छी तरहसे हमारे लोगोंको खपा सकते थे। वे लोग जहाँ-कहीं भी गये हैं, यह दिखा सके हैं कि वे व्यावहारिक, योग्य और अपनी देख-भाल कर सकने में काफी समर्थ हैं। यदि ये भारतीय प्रवासी वहाँ पहुँचे होते तो आपका देश, जिसमें अपरिमित साधन हैं, एक दूसरा ही देश बन गया होता।

ब० स्टी०: हाँ, आस्ट्रेलिया भारतसे डेढ़ गुना बड़ा है। लेकिन वह भारत-जैसा उपजाऊ नहीं है। परन्तु आप जो-कुछ कहते हैं उससे मैं सहमत हूँ। विभिन्न देशोंके

१. महादेव देसाईके "टू आस्ट्रेलियन विजिटर्स" (दो आस्ट्रेलियाई मुलाकाती) से उद्धृत। बर्ट्रम स्टीवेन्स ईस्टर्न ग्रुप कान्फरेंसके सदस्य थे और कुछ समय आस्ट्रेलियामें न्यू साउथ वेल्सके मुख्य मन्त्री भी रह चुके थे।

२. गांधीजी ४ अप्रैल को दिल्लीसे रवाना हो गये थे।

लोगोंके बीच जीवन्त सम्बन्ध विकसित करने-जैसी अच्छी बात कोई और नहीं हो सकती। भारतमें अपने अल्प वासके दौरान में बहुतेरे लोगोंसे मिला हूँ। मैंने उन्हें काफी योग्य और उद्यमी पाया है। और हमारे व्यवसायी लोग आपके व्यवसायी लोगोंको जितना ज्यादा जान सकें और परस्पर जितने पास आ सकें, आस्ट्रेलिया और भारत दोनोंके लिए यह उतना ही अच्छा होगा। और, श्रीमन्, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पुराना युग बीत रहा है, पुराने विचार तेजीसे बदल रहे हैं और हम आनेवाले एक नये विश्वके लिए तैयार हो रहे हैं।

गां० : यह तो पक्की बात है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३-५-१९४२

६. अहिंसात्मक प्रतिरोध

जापान हमारे द्वारतक आ पहुँचा है। अहिंसात्मक तरीकेसे हम इस सम्बन्धमें क्या कर सकते हैं? अगर हिन्दुस्तान आजाद होता तो जापानको देशमें घुसने से रोकने के लिए अहिंसक उपायोंसे काम लिया जा सकता था। आज भी जापानियोंके हमारी भूमिपर पैर रखने के साथ ही अहिंसक प्रतिरोध आरम्भ किया जा सकता है। उदाहरणके लिए, अहिंसक प्रतिरोधी उन्हें किसी भी तरहकी मदद देने से इनकार करेंगे। पानी तक न देंगे। क्योंकि अपने देशको हड़पने में किसीकी मदद करना उनका कोई फर्ज नहीं। हाँ, अगर कोई जापानी रास्ता भूल गया हो और प्याससे मर रहा हो, और एक इन्सानके नाते मदद माँगता हो, तो सत्याग्रही उस प्यासे जापानीको पानी दे देगा, क्योंकि अहिंसक प्रतिरोधी किसीको अपना दुश्मन नहीं मानता। मान लीजिए कि जापानी इन प्रतिरोधियोंको पानी देने के लिए मजबूर करें, तो उस हालतमें उन्हें उनका विरोध करते-करते मर मिटना होगा। यह सोचा जा सकता है कि वे तमाम प्रतिरोधियोंको मौतके घाट उतार देंगे। हमारे इस अहिंसात्मक प्रतिरोधका आधार यह आस्था है कि आखिर आक्रमणकारी अहिंसक प्रतिरोधियोंको कत्ल करते-करते मन और शरीरसे भी थक जायेगा। वह सोचमें पड़ जायेगा कि आखिर यह कौन-सी नई ताकत है — उसके लिए तो यह नई ही होगी — जो चोट पहुँचाने की कोशिश तक नहीं करती और फिर भी सहयोग देने से इनकार करती है; और शायद वह और अधिक कत्ल न करेगा। लेकिन हो सकता है कि प्रतिरोधी जापानियोंको अत्यन्त हृदयहीन पायें और देखें कि उन्हें इस बातकी जरा भी चिन्ता नहीं है कि वे कितनोंको कत्ल करते हैं। उस हालतमें भी जीत प्रतिरोधियोंकी ही रहेगी, क्योंकि उन्होंने झुकने के बजाय मर मिटना पसन्द किया।

लेकिन जिस तरह मैंने लिखा है, उस तरह बिलकुल आसानीसे यह सब नहीं हो जायेगा। आज देशमें कमसे-कम चार पक्ष हैं। पहला पक्ष अंग्रेजोंका और उनके द्वारा खड़ी की गई फौजोंका है। जापानियोंने घोषणा की है कि हिन्दुस्तानपर

उनकी कोई बुरी नजर नही है, उनका झगड़ा सिर्फ अंग्रेजोंके साथ है। इसमें उन्हें कई हिन्दुस्तानियोंकी, जो इस वक्त जापानमें हैं, मदद मिल रही है। उनकी तादाद का अन्दाज लगाना तो मुश्किल है, मगर निश्चय ही ऐसे लोगोंकी काफी तादाद है जो जापानी घोषणापर भरोसा करते हैं और मानते हैं कि जापानी उन्हें अंग्रेजी हुकूमतके जुएसे आजाद करके अपने घर लौट जायेंगे। लेकिन यदि सबसे बुरी स्थिति भी आ जाये, तो भी वे अंग्रेजी हुकूमतका बोझ ढोते-ढोते इतने थक चुके हैं कि परिवर्तनकी दृष्टिसे वे जापानी जुएका स्वागत करने को भी तैयार हो सकते हैं। यह दूसरा पक्ष है। तीसरा पक्ष तटस्थ लोगोंका है। वे अहिंसक तो नहीं हैं, फिर भी ब्रिटेन या जापान दोनोंमें से किसीकी भी मदद करना नहीं चाहते।

चौथा और आखिरी पक्ष अहिंसक प्रतिरोध करनेवालों का है। अगर वे मुट्ठी-भर ही रहे तो उनका प्रतिरोध भविष्यके लिए एक उदाहरणरूप ही रहेगा, इससे अधिक और कोई प्रभाव वह पैदा न कर सकेगा। ऐसे प्रतिरोधी शान्तिके साथ अपनी-अपनी जगहपर अटल रहकर मर मिटेंगे, किन्तु आक्रमणकारीके आगे घुटने न टेकेंगे। वे वायदोंके धोखेमें नहीं फँसेंगे। वे किसी तीसरे पक्षकी मददसे अंग्रेजी हुकूमतसे छुटकारा नहीं चाहेंगे। वे पूरी तरह अहिंसक युद्धके अपने तरीकेमें ही विश्वास रखते हैं, दूसरे किसीमें नही। उनकी लड़ाई उन करोड़ों बेजबान लोगोंके लिए है, जो जानते तक नहीं कि मुक्ति किसे कहते हैं। उनके हृदयमें न तो अंग्रेजोंके प्रति कोई द्वेष है और न जापानियोंके लिए कोई प्रेम। वे उन दोनों का उसी तरह भला चाहते हैं जिस तरह और सबोंका। वे तो यही चाहेंगे कि अंग्रेज तथा जापानी दोनों सही मार्गपर चलें। वे मानते हैं कि सिर्फ अहिंसा ही सब हालतोंमें मानवको ठीक रास्तेपर चला सकती है। इसलिए यदि पर्याप्त साथियोंके अभावमें अहिंसक प्रतिरोधियोंका ध्येय सिद्ध न हो सके, तो भी वे अपना मार्ग नहीं. छोड़ेंगे; बल्कि मरते दमतक उसपर डटे रहेंगे।

अहिंसाके साधकोंके सामने आज एक कठिन काम उपस्थित है। लेकिन जिन्हें अपने ध्येयमें श्रद्धा है, उन्हें कोई भी कठिनाई परास्त नहीं कर सकती।

एक विषम और लम्बी यातनाका समय हमारे सामने है। अहिंसक प्रतिरोधियोंको चाहिए कि वे असम्भव काम करने की कोशिशमें न पड़ें। उनकी शक्तियाँ सीमित हैं। आज असम आसन्न संकटमें है, लेकिन केरलके प्रतिरोधीकी यह जिम्मेदारी नहीं कि वह उसकी रक्षाके लिए वहाँ दौड़ा जाये। अगर असममें अहिंसात्मक वृत्ति है, तो वह अपने-आपको अच्छी तरह सँभाल लेगा। और अगर उसमें वह चीज नहीं है तो केरलके अहिंसक प्रतिरोधियोंका कोई भी जत्था उसकी या किसी दूसरे प्रान्तकी मदद नहीं कर सकेगा। केरलवाले केरलमें ही अपनी अहिंसाका परिचय देकर असम वगैरहकी मदद कर सकते हैं। अगर जापानी फौजके पाँव हिन्दुस्तानमें जम गये तो वह असममें ही नहीं अटकी रहेगी। अंग्रेजोंको हराने के लिए उसे सारे देशमें छा जाना होगा। अंग्रेज चप्पा-चप्पा जमीनके लिए लड़ेंगे। अगर हिन्दुस्तान उनके हाथसे निकल गया तो शायद यह कहा जा सकेगा कि उन्होंने अपनी पूरी-पूरी हार कबूल कर ली है। लेकिन ऐसा हो या न हो, इतनी बात

तो बिलकुल साफ है कि जापान तबतक दम न लेगा जबतक सारा हिन्दुस्तान उसके हाथमें न आ जायेगा। इसलिए अहिंसक प्रतिरोधियोंको, वे जहाँ भी हों वहीं अपनी-अपनी जगहपर डटे रहना चाहिए।

यहाँ एक बातको स्पष्ट कर देना जरूरी है। जहाँ अंग्रेजी फौजकी "दुश्मन" के साथ वास्तविक भिड़न्त हो रही हो, वहाँ सीधा अहिंसक प्रतिरोध करना शायद अनुचित होगा। अगर अहिंसक प्रतिरोधमें हिंसाका मिश्रण हो जाये या वह हिंसासे गठबन्धन कर ले तो वह प्रतिरोध अहिंसक नहीं रहेगा।

इसलिए जो बात मैं बार-बार कहता रहा हूँ उसीको यहाँ फिर दुहराता हूँ। दृढ़ निश्चयके साथ रचनात्मक कार्यक्रमको चलाना ही अहिंसात्मक कार्रवाईकी सबसे अच्छी तैयारी और अभिव्यक्ति भी है। जो भी कोई यह मानता है कि रचनात्मक कार्यक्रमके आधारके बिना भी वह परीक्षाके समय अहिंसक बल दिखा सकेगा, वह बुरी तरह नाकामयाब होगा। यह तो वैसी ही बात होगी कि कोई बिलकुल निहत्था और भूखका मारा आदमी किसी अच्छी तरह खाये-पीये हुए और हथियारोंसे लैस सिपाहीका सामना अपनी शारीरिक शक्तिसे करनेकी कोशिश करे। उसकी हार तो निश्चित ही है। मेरी रायमें जिसे रचनात्मक कार्यक्रममें विश्वास नहीं है उसमें भूखसे पीड़ित करोड़ों देशवासियोंके प्रति कोई ठोस भावना नहीं है। और जिसमें यह भावना नहीं, वह अहिंसक लड़ाई नहीं लड़ सकता। व्यावहारिक जीवनमें मैंने यह पाया है कि ज्यों-ज्यों मैं भूखे लोगोंके साथ तद्रूप होता गया, त्यों-त्यों मेरी अहिंसाका विस्तार होता गया। अपनी कल्पनाकी अहिंसासे अब भी मैं दूर हूँ, क्योंकि मूक जनसाधारणके साथ तन्मय होने की अपनी कल्पनासे मैं अब भी बहुत दूर नहीं हूँ क्या?

वर्धा जाते हुए रेलमें, ५ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १२-४-१९४२

७. विचित्र अहिंसा[1]

सीदी अली रैसने १६वीं सदीमें अपनी यात्राका वर्णन करते हुए एक ग्रंथ लिखा था। एक मित्रने उस ग्रन्थके ए० वैम्बेरी[2] कृत अंग्रेजी अनुवाद 'ट्रैवल्स ऐंड ऐडवेन्चर्स' से नीचे लिखा अवतरण भेजा है:

> बनियोंके इस देश (गुजरात)में सुशिक्षित लोगोंकी एक जाति है, जो बाट (भाट) कहलाती है; इस जातिके लोगोंका पेशा यह है कि वे व्यापारियों या यात्रियोंके साथ एक देशसे दूसरे देशमें अनुरक्षककी तरह जाते हैं और उनसे बहुत ही कम मेहनताना लेकर उनकी सम्पूर्ण सुरक्षाकी जिम्मेदारी लेते हैं। राजपूत,

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

२. (१८३२-१९१३), हंगेरीके एक यात्री और लेखक

अर्थात् देशके घुड़सवार सैनिक, जब किसी यात्री-दलपर हमला करते हैं, तो बाट (भाट) लोग अपने खंजरोंकी नोंक अपनी छातीसे अड़ाकर उन्हें यह धमकी देते हैं कि अगर उनकी देखरेखमें चलनेवाले यात्रियोंको उन्होंने थोड़ा भी नुकसान पहुँचाने का साहस किया तो वे अपनी जान दे देंगे। नतीजा यह होता है कि राजपूत लोग बाटों (भाटों)के प्रति जो आदर-भाव रखते हैं, उसके कारण आम तौरपर वे अपने बुरे इरादोंपर अमल करने से बाज आते हैं और यात्रीदल निर्विघ्न रूपसे आगे बढ़ जाता है। लेकिन कभी-कभी बाट (भाट) लोग अपनी धमकीपर अमल भी करते हैं; न करें, तो धमकीका कोई महत्त्व ही न रह जाये। किन्तु जब कभी ऐसा होता है — यात्रीदल पर हमला किया जाता है और बाटों (भाटों)को आत्महत्या करनी पड़ती है — तो वह एक भयानक विपत्ति समझी जाती है और लोगोंमें ऐसा अन्धविश्वास है कि इस तरह हमला करनेवाले अपराधियोंको मार ही डालना चाहिए। और राजपूतोंका सरदार तो यह जरूरी समझता है कि न सिर्फ अपराधियोंको बल्कि उनके बेटे-बेटियोंको भी मार डालना चाहिए — वस्तुतः उनके सारे वंशको समूल नष्ट कर डालना चाहिए। अहमदाबादके मुसलमानोंने हमें ऐसे ही दो बाट (भाट) अनुरक्षकके रूपमें दिये थे, जिससे उस साल 'सफर' महीनेके लगभग मध्यमें हम स्थल-मार्गसे तुर्किस्तानकी यात्राको रवाना हुए थे।

वर्धा जाते हुए रेलमें, ५ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १२-४-१९४२

८. अहिंसा : धर्म या नीति ?[1]

एक महीनेसे कुछ ऊपर हो गया जब डॉ० काटजूने श्री किशोरलाल मशरूवालाको अहिंसापर एक लेख भेजा था, जिसे छोटा-मोटा शोध-प्रबन्ध कहा जा सकता है। श्री मशरूवालाको तय करना था कि उसका क्या किया जाये। अगर वह उन्हें पसन्द आये तो मुझे दिखाने की बात थी। कुछ दिन हुए श्री मशरूवालाने वह मुझे दिया। लेकिन उसे पढ़ने का समय मुझे अपनी यात्रामें ही मिला। मैं उसे ध्यानपूर्वक पढ़ गया। लेख इतना लम्बा था कि 'हरिजन' में नहीं दिया जा सकता था, फिर भी मैंने महसूस किया कि उसे किसी-न-किसी रूपमें 'हरिजन' के पाठकोंके सामने रखना तो चाहिए। नीचे दिया गया लेख उसीका परिणाम है। आवश्यक दलीलों को छोड़े बिना मूल लेखको संक्षिप्त करने में मैंने काफी समय खर्च किया है। डॉ० काटजूकी इस रायसे मैं पूरी तरह सहमत हूँ कि यदि कांग्रेसने अहिंसाको धर्मके रूपमें स्वीकार न किया, तो अहिंसा आगे नहीं बढ़ सकेगी। उनका सुझाव है कि कोई

१. इस शीर्षकके अन्तर्गत लिखा कैलाशनाथ काटजूका लेख यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

ऐसी योजना बननी चाहिए जिससे मालूम हो कि अमुक परिस्थितियोंमें अहिंसापर अमल किस तरह किया जा सकता है। उन्होंने यह भी सुझाव दिया है कि अहिंसा के अनुयायियोंके मार्गदर्शनके लिए एक ग्रन्थ या ग्रन्थमाला होनी चाहिए। इस विषय पर बहुतेरा साहित्य निकल चुका है। रिचर्ड ग्रेगने इस विषयकी शोधपर बरसों परिश्रम किया है। पश्चिमके अहिंसावादियोंके मार्ग-दर्शनके लिए उन्होंने पाठ्य पुस्तकें लिखी हैं। उनकी पुस्तकें बहुत सुपाठ्य हैं। डॉ० काटजूको मैं सलाह दूँगा कि वे एक ऐसी पुस्तक तैयार करने का समय निकालें जो संकटकी इस घड़ीमें हिन्दुस्तानमें हमारा मार्ग-दर्शन कर सके।

वर्धा जाते हुए रेलमें, ५ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २६-४-१९४२

९. पत्र : जगन्नाथको

रेलगाड़ीमें
५ अप्रैल, १९४२

प्रिय जगन्नाथ,

मैं जितने समय दिल्लीमें रहा, आपका पत्र बराबर ध्यानमें रहा। अब आपको अलगसे कोई उत्तर नहीं चाहिए।[1]

आपका,
बापू

लाला जगन्नाथ
लाजपतराय भवन
लाहौर, पंजाब

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९८८) से। सौजन्य : लाला जगन्नाथ

१. लाला जगन्नाथने गांधीजी को सर स्टैफर्ड क्रिप्ससे बातचीतके बारेमें सावधान किया था।

१०. पत्र : प्रभावतीको

रेलगाड़ीमें
५ अप्रैल, १९४२

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मुझे कल शाम दिल्लीमें मिला था। आज ट्रेनमें उसे पूरा पढ़ा।

जयप्रकाशके विषयमें तूने जो लिखा है पढ़कर दुःख हुआ। उसके बीमार पड़ने का कोई कारण नहीं था। उसका शरीर कैसा है, यह देखे बिना कुछ लिखना बहुत मुश्किल है। तू पूछती है कि उसे फलाहारपर कबतक रहना पड़ेगा। यह कहना भी मुश्किल है। तबीयतमें सुधार लगातार हो रहा होता तो मैं पत्रके द्वारा मार्गदर्शन कर सकता था। किन्तु अपने पत्रकी जो नकल[1] मैं तुझे भेज रहा हूँ, उससे मेरी बात तू समझ जायेगी।

महिलाओंके विषयमें जो तुझे सूझे, सो करना। अपनी सामर्थ्यसे अधिक काम मत लेना। जो कर रही है वह काफी है। राजेन्द्र बाबूसे पूछना।

पिताजी के विषयमें तूने कुछ नहीं लिखा।

राजकुमारी मईमें चली जायेगी, ऐसा मानता हूँ।

खुर्शेदबहन[2] मेरे साथ है। महादेव दिल्लीमें रह गये हैं। सोमवार या मंगलवारको सरदारके साथ बम्बई जायेंगे। वहाँ थोड़ा इलाज कराने के बाद सेवाग्राम आयेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५७४) से

११. प्रश्नोत्तर

न्यासित्वका सिद्धान्त[3]

प्र० : आपके लेखोंसे यह धारणा बनती है कि आपका 'न्यासी' एक बहुत बड़ा लोकहितैषी, परोपकारी और दानी व्यक्ति है, उससे ज्यादा कुछ नहीं — वैसा ही जैसे कि प्रथम पारसी बेरोनेट, टाटा, वाडिया, बिड़ला, श्री बजाज और इसी श्रेणीके अन्य

१. यह उपलब्ध नहीं है।
२. दादाभाई नौरोजीकी पौत्री
३. देखिए परिशिष्ट १ भी।

देवदास[1] और लक्ष्मी[2] मजेमें थे।

दिल्लीमें कुछ नहीं था। इतने दिन व्यर्थ गये ऐसा समझ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

हरिलाल मिला था। उसका हाथ टूट गया था। मैंने उसे अस्पताल भिजवाकर हड्डी जुड़वाई। उसने मेरे पास लौट आनेकी बात करनी शुरू की, लेकिन वह तो मात्र पैसे ऐंठने का बहाना था। उसमें सच और झूठका विवेक नहीं रहा। वह हमेशा शराबमें चूर रहता है। तू चिन्ता मत करना।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७३६५) से। सौजन्य: कान्तिलाल गांधी

१३. पत्र : वनमाला न० परीखको

६ अप्रैल, १९४२

चि० वनुड़ी,

तेरा पुर्जा मिला। जब तू अच्छी हो जायेगी, तब परीक्षा देने तो कुछ दिनके लिए तुझे यहाँ आना पड़ेगा न? महादेवभाई आ गये हों तो उनसे कहना कि उनके दो छोटे लेख भेजे नहीं हैं। जब वे यहाँ आयेंगे, तब न भेजने का कारण उन्हें समझा दूंगा। अगर उन्होंने समझना चाहा और यदि मुझे तबतक याद रहा तो।

आज तो सब ठीक है। कलकी भगवान जाने। मौसम जरा अजीब है। बारिश भी बीच-बीचमें हो जाती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७९०) से। सी० डब्ल्यू० ३०१३ से भी; सौजन्य: वनमाला म० देसाई

१. गांधीजी के कनिष्ठ पुत्र

२. देवदास गांधीकी पत्नी

१४. प्रश्नोत्तर

कार्य-साधकता

प्र० : कई साल पहले मैंने आपसे यह पूछने की धृष्टता की थी कि चूँकि आपने अहिंसाको कांग्रेसमें धर्मके रूपमें नहीं, बल्कि एक कार्य-साधकके रूपमें स्थान दिया है, इसलिए क्या यह डर नहीं है कि ऐन संकटके समय यह अहिंसा बेकार साबित हो जाये। आपने कहा था, मैं ऐसा नहीं समझता। क्या अब भी आपका वही विचार बना हुआ है? क्या आपके पास आज अहिंसामें विश्वास रखनेवालोंका एक ऐसा संगठित दल नहीं होना चाहिए था जिसे आप टोलियोंमें सारे देशमें भेज सकते? आज तो कुछ ऐसा लगता है मानों हमने समय खो दिया है और अब हम इतने तैयार नहीं हैं कि जिम्मेदारी उठा सकें।

उ० : हाँ, मैं अपनी इस रायपर कायम हूँ कि कांग्रेसके सामने अहिंसाको एक कार्य-साधकके रूपमें पेश करके मैंने ठीक ही किया था। अगर मुझे अहिंसाको राजनीतिमें दाखिल करना था, तो जो मैंने किया उसके सिवा और कुछ मैं कर ही नहीं सकता था। दक्षिण आफ्रिकामें भी मैंने उसे एक कार्य-साधकके रूपमें ही दाखिल किया था। वहाँ वह इसलिए सफल हुई कि सत्याग्रहियोंकी संख्या कम थी और उन्हें एक सुसम्बद्ध क्षेत्रमें काम करना था, जिससे उन्हें आसानीके साथ नियन्त्रित किया जा सकता था। यहाँ हमारे लिए एक विशाल देशमें फैले हुए अनगिनत लोग थे। फलतः उन्हें न तो आसानीसे नियन्त्रणमें रखा जा सकता था और न प्रशिक्षण दिया जा सकता था। तो भी उन्होंने जिस तरह काम करके दिखाया वह अद्भुत है। वे इससे भी अच्छा काम और अच्छा परिणाम दिखा सकते थे। लेकिन जो फल मिला उसको देखकर मेरे मनमें कोई निराशा नहीं है। यदि मैंने अहिंसाको धर्म माननेवाले व्यक्तियोंसे आरम्भ किया होता, तो शायद मुझे अपनेसे ही उसकी समाप्ति करनी पड़ती। मैं स्वयं अपूर्ण हूँ और अपूर्ण स्त्री-पुरुषोंसे मैंने उसका आरम्भ किया और एक अनजान समुद्रमें मैं चल पड़ा। भले ही नाव अपने मुकामपर न पहुँची हो, पर यह तो साबित हो चुका है कि वह आँधी-तूफानका ठीक-ठीक सामना कर सकी है, और यह ईश्वरकी कृपा है।

रोमन लिपि

प्र० : रोमन लिपिके खिलाफ आपके दिलमें पूर्वग्रह है, क्योंकि अंग्रेजीके खिलाफ आपके दिलमें पूर्वग्रह है। अगर ऐसा न होता तो आप बिना किसी हिचकिचाहटके देवनागरी और फारसी लिपिके बदले उसीकी हिमायत करते।

उ० : आप गलतीपर हैं। मेरे दिलमें किसीके विरुद्ध कोई पूर्वग्रह नहीं है। लेकिन मैं हर उस चीज या व्यक्तिके विरुद्ध हूँ जो दूसरेके अधिकार या पदको हड़पता है। रोमन लिपिने हिन्दुस्तानमें अपने पैर जमा लिये हैं। लेकिन वह हिन्दुस्तानी लिपियोंकी जगह नहीं ले सकती। अगर मेरी चले, तो सब प्रान्तीय भाषाओंके लिए देवनागरी लिपिका ही इस्तेमाल हो और अखिल भारतीय भाषाके लिए देवनागरी व फारसी लिपियोंका। अरबी लिपि, जिससे फारसी लिपि निकली है, मुसलमानोंके लिए उतनी ही आवश्यक है जितनी हिन्दुओंके लिए संस्कृत। रोमन लिपिका सुझाव उसकी अपनी खूबियोंके कारण नहीं, बल्कि बतौर समझौते के दिया गया है। सिवाय इसके कि वह पश्चिममें लगभग सर्वत्र फैली हुई है, उसमें और कोई खूबी नहीं है। मगर इसका यह मतलब नहीं कि वह देवनागरी लिपिकी — जो हमारी ज्यादातर प्रान्तीय भाषाओंकी जननी है और सभी ज्ञात लिपियोंसे ज्यादा पूर्ण है — जगह ले ले, या फारसी लिपिकी जगह ले ले, जो उत्तरी हिन्दुस्तानके करोड़ों हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा लिखी जाती है। और हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच इन लिपियोंके कारण कायम अलगाव की बात लें तो वे किसी तीसरी और अपूर्ण लिपिको अपनाने से परस्पर करीब नहीं आ जायेंगे। लेकिन अगर दोनों एक-दूसरेकी मुहब्बतके खयालसे दोनों लिपियोंको सीखने की तकलीफ उठायें तो जरूर एक हो सकेंगे। रोमन लिपिका अपना एक महान और अद्वितीय स्थान है। उसे उससे ज्यादा महान स्थानकी आकांक्षा नहीं रखनी चाहिए।

सेवाग्राम, ७ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १२-४-१९४२

१५. सम्पत्ति-ध्वंसकी नीति

'हरिजन'में "स्कॉर्च्ड अर्थ" (सम्पत्ति-ध्वंस) शीर्षक मेरे लेखके[1] बारेमें एक सज्जन लिखते हैं:

> २२ मार्चके 'हरिजन' में "स्कॉर्च्ड अर्थ" शीर्षक अपने लेखमें आपने लिखा है:
>
> "युद्ध-विरोधीके नाते मेरा तो एक ही उत्तर हो सकता है। मुझे तो आक्रमण या आत्म-रक्षा किसी भी उद्देश्यसे जीवन और धन-सम्पत्तिके ध्वंसमें किसी प्रकारकी वीरता या बलिदानकी भावना दिखाई नहीं देती। अगर मुझे अपनी फसल और अपना घर-द्वार छोड़ना ही पड़े तो मेरा शत्रु उनका उपयोग न कर पाये, इस खयालसे उन्हें नष्ट करने की अपेक्षा मैं यह अधिक पसन्द करूँगा कि उन्हें ज्यों-का-त्यों छोड़ दूँ, भले ही मेरा शत्रु उनका उपयोग क्यों न

१. देखिए खण्ड ७५, पृ० ४४८-४९।

करे। यदि मैं भयके वशीभूत होकर नहीं, बल्कि इसलिए कि मैं किसीको अपना शत्रु मानने को तैयार नहीं हूँ — अर्थात् मानव-प्रेमसे प्रेरित होकर — यदि अपनी फसल और अपने घर-द्वारको ज्यों-का-त्यों छोड़ देता हूँ तो उसके पीछे विवेक होगा, बलिदान-वृत्ति होगी और वीरता होगी।"

पहली बात तो यह है कि रूसने दुश्मनका मुकाबला करने में जिस हिंसा से काम लिया, उसे यद्यपि मैं पसन्द नहीं करता, तो भी मेरी यह राय है कि आक्रमणकारीका सामना करने के लिए रूसवाले अपनी भूमि और सम्पत्तिके ध्वंसकी जो नीति अपना रहे हैं, उसमें बहुत ज्यादा वीरता और बलिदानकी भावना है। इसलिए आपने जो यह कहा कि रक्षाके विचारसे सम्पत्ति-ध्वंस करने में न वीरता है, न बलिदानकी भावना, सो मैं समझ नहीं सका हूँ। दूसरे, आपने लोगोंको आक्रमणकारीका सामना करने की सलाह तो दी है, लेकिन आप यह पसन्द करते हैं कि वे भयके वशीभूत होकर नहीं, बल्कि मानव-प्रेमसे प्रेरित होकर अपनी फसल और अपने घर-द्वार आक्रमणकारीके उपयोग के लिए छोड़ जायें। मेरी समझमें नहीं आता कि बुराईका विरोध करने की आपकी शिक्षाके साथ इसका मेल कैसे बैठाया जा सकता है। मैं तो यह मानता हूँ कि अहिंसक प्रतिरोध मुझसे यह आशा रखता है कि मैं फसल या घर-द्वार-जैसी किसी भी चीजको, जो आक्रमणकारीके लिए उपयोगी हो सके, उसके हाथमें जानेसे रोकूँ, चाहे इसके लिए मुझे अपनी जान ही क्यों न देनी पड़े। निवेदन है कि आप इस विषयका स्पष्टीकरण करें, क्योंकि जनताके लिए यह समझ लेना बहुत जरूरी है कि वह आक्रमणकारीका अहिंसक प्रतिरोध किस प्रकार करे।

मेरी बातका अर्थ तो स्पष्ट ही है। इस खयालसे कि मुझसे लड़नेवाले मेरे भाईको पानी न मिल सके, यदि मैं अपने कुएँमें जहर डाल दूँ या उसे पाट दूँ, तो इसमें कोई वीरता नहीं है। यहाँ हम यह मान लें कि मैं उसके साथ पुराने ढंगकी प्रचलित पद्धतिसे ही लड़ रहा हूँ। इसी तरह इसमें बलिदान भी नहीं है, क्योंकि यह मुझे शुद्ध नहीं बनाता, और बलिदानके लिए, जैसा कि इसके मूल अर्थमें निहित है, शुद्धि आवश्यक है। यह तो दूसरेका असगुन करने के लिए अपनी नाक काटने-जैसी बात हुई। पुराने जमानेके सैनिकोंमें लड़ाईके सिलसिलेमें भी मर्यादा-पालनके कुछ नियम प्रचलित थे। कुओंमें जहर डालना और खड़ी फसलोंको बरबाद करना निषिद्ध बातोंमें शामिल थे। लेकिन मेरा यह दावा जरूर है कि अगर मैं अपने कुएँ, फसल और घर-द्वारको ज्यों-का-त्यों छोड़ जाता हूँ, तो उसमें वीरता और बलिदानकी भावना है। वीरता इसलिए है कि मैं जान-बूझकर अपने सिर यह जोखिम लेता हूँ कि दुश्मन मेरे श्रमके बूते खाये-पीये और मेरा पीछा करे। बलिदान इसमें इसलिए है कि दुश्मनके लिए कुछ छोड़ जाने की भावना मुझे शुद्ध और उदात्त बनाती है।

"मुझे छोड़ना ही पड़े तो", मेरा यह शर्तसूचक वाक्य प्रश्नकर्त्ताके ध्यानमें नहीं रहा। मैंने एक ऐसी परिस्थितिकी कल्पना की है जिसमें मैं तुरन्त ही मरनेको तैयार नहीं हूँ और इसलिए व्यवस्थित रीतिसे पीछे हटना चाहता हूँ और यह आशा रखता हूँ कि दूसरी व अधिक अनुकूल परिस्थितियोंमें मैं शत्रुके सामने उठकर लड़ सकूँगा। यहाँ जिस चीजका विचार करना है वह प्रतिरोध नहीं, बल्कि अनाजकी फसलों और ऐसी ही दूसरी चीजोंको नष्ट न करनेकी बात है। प्रतिरोध हिंसक हो या अहिंसक, बहुत सोच-समझकर करना होता है। विचारशून्य प्रतिरोध युद्धकी शब्दावलीमें दिखावटी बहादुरी कहा जायेगा, और अहिंसाकी मापामें हिंसा या मूर्खता कहलायेगा। पीछे हटना अपने-आपमें प्रायः प्रतिरोधकी एक योजना होती है, और वह महान वीरता और बलिदानकी भूमिका भी हो सकती है। पीछे हटना हर हालतमें कायरताका सूचक नहीं; कायरता तो मौतके डरकी सूचक है। इसमें शक नहीं कि जो वीर होगा, वह अधिकतर तो उसे उसकी सम्पत्तिसे वंचित करनेके आक्रमणकारीके प्रयत्नोंका हिंसा या अहिंसासे विरोध करते-करते ही मर मिटेगा; लेकिन अगर उसे तत्काल पीछे हटनेमें समझदारी मालूम होती है, तो सिर्फ इसी कारण वह कोई कम बहादुर नहीं माना जायेगा।

सेवाग्राम, ७ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १२-४-१९४२

१६. स्वर्गीय हीरजी जेराम : एक मूक सेवक

पंड्या खादी-कार्यालय, चरालाके भाई नागरदास लिखते हैं:[1]

मुझे तो भाई हीरजीके देहावसानकी बिलकुल ही खबर नहीं थी। मुझे उनका चेहरा अच्छी तरह याद है। भाई हीरजीकी सारी सेवा मूक सेवा थी। थानाके पास की अपनी जमीन भी उन्होंने सकुचाते हुए ही दी थी। उनकी सेवामें आडम्बर बिलकुल नहीं था। वे साधारण स्थितिके, कम पढ़े-लिखे आदमी थे; लेकिन उनकी सारी सेवा ठोस सेवा थी। उन्हें यशका लोभ कभी नहीं रहा। उनकी सेवा ही उनके लिए इनाम और प्रमाणपत्र, दोनों थी। ऐसी आत्मा सदा अमर होती है।

सेवाग्राम, ७ अप्रैल, १९४२

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, १२-४-१९४२

१. पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। पत्र-लेखकने गांधीजी को हीरजीभाई जेराम मिस्त्रीके निधनकी सूचना दी थी। हीरजीभाई खादीके अच्छे कार्यकर्ता तो थे ही, साथ ही उन्होंने खादी तथा हरिजन-कार्योंमें काफी आर्थिक सहायता भी दी थी।

१७. पत्र : मूलचन्द पारेखको

सेवाग्राम
७ अप्रैल, १९४२

भाई मूलचन्द,

लगता है, भाई खुशाल तुम्हें जानता है। वह यहाँ बेकार आ गया है। मैंने उससे लौट जाने को कहा है। जो उचित समझो सो करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६८) से

१८. पत्र : चिमनलाल न० शाहको

८ अप्रैल, १९४२

चि० चिमनलाल,

विद्याको तो भेज देना चाहिए। असभ्य व्यवहारको बरदाश्त करना धर्म नहीं है।

बाबू और सरयूकी बात भी सोचने-जैसी तो है ही।[1] जो हो, मेरा प्रयत्न तो चल ही रहा है। बम्बईसे लौटकर फिर कोशिश करूँगा। मुझे आशा बहुत नहीं है। बाबू महात्माका जादू जबरदस्त मालूम होता है। आखिरी इलाज तो जो मैंने कहा है, वही है। अगर ये लोग हमारी न सुनें तो इनका त्याग करना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६०७) से

१. विद्या, बाबू और सरयू चिमनलालके सम्बन्धी थे। नई उम्रके ये तीनों व्यक्ति अहमदाबादके बाबू महात्मा नामक एक ठगके भुलावेमें आ गये थे और उन्हें उससे बचाने के प्रयत्न किये जा रहे थे।

१९. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

८ अप्रैल, १९४२

बापा,

तुम्हारी टिप्पणी पढ़ी। भाई जगन्नाथ-सम्बन्धी काम अटपटा है। लेकिन देखूँगा, क्या कर सकता हूँ। तुम्हारे ज्वरके वारेमें मैंने अधिक कुछ नहीं किया। बूढ़ोंको बुखारसे बचना चाहिए। आवश्यक आराम जरूर करना।

बालकृष्णने गाडोदियाजी का इलाज शुरू कर दिया होगा। उसके वारेमें मुझे कोई खबर नहीं मिली।

वापू

श्री बापा
हरिजन निवास
किंग्जवे
दिल्ली-७

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११९१) से

२०. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
८ अप्रैल, १९४२

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारे तारका उत्तर मैंने दिया है। तुम्हारा निवंध[1] अच्छा तो है, परंतु वहुत विवादास्पद हो गया है और राजप्रकरणसे भरा हुआ है। तुम्हारी कलमसे मैं शाश्वत वस्तुकी आशा रखता था। ज० का राजप्रकरणी हिस्सा उसका शाश्वत कार्य नहीं था। तुमने देखा होगा कि मैंने मिल-मंडलकी सभामें उनके राजप्रकरणकी वात तक न की। उनके राजप्रकरणको भी नैतिक जामा पहना सकते थे।

अंग्रेजोंकी टीकाको तुम्हारे निवंधमें स्थान नहीं होना चाहिये। मुझे आश्चर्य है काकाको यह वात न चुभी। हम मिलेंगे तव अधिक वातें करेंगे।

वापुके आशीर्वाद

१. जमनालाल बजाजके बारेमें; देखिए "पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको", पृ० ४४।

[पुनश्च:]

प्रकृति अच्छी होगी और मक्खनका प्रमाण मिल गया होगा।

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ८०५६) से; सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

२१. पत्र: परचुरे शास्त्रीको

८ अप्रैल, १९४२

शास्त्रीजी,

तुम्हारा चेहरा तो अब देखने में आता नहीं है। लेकिन उमीद है कि अच्छे होंगे और वहां कुछ सेवा-कार्य भी मिलता होगा।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६६७) से

२२. पत्र: जे० सी० कुमारप्पाको

९ अप्रैल, १९४२

प्रिय कु०,

ये त्रावणकोर राज्य कांग्रेसके अध्यक्ष श्री ताणु पिल्लै है। ये त्रावणकोर वापस जा रहे है। इनके पास जो थोड़ा-सा समय है उसमें जो-कुछ भी दिखाया जा सकता है वह इन्हें दिखला दो।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०१६८) से

२३. पत्र : निम्बकरको

९ अप्रैल, १९४२

प्रिय निम्बकर,

तुम्हारा पत्र पाकर और यह जानकर खुशी हुई कि तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक चल रहा है। सरकारको दिया गया तुम्हारा शालीनतापूर्ण जवाव मुझे पसन्द है। आशा है कि तुम जल्दी छोड़ दिये जाओगे।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२४. पत्र : गोविन्ददासको

९ अप्रैल, १९४२

भाई गोविन्ददास,

चि० जगमोहनदास और चि० विद्यावतीका विवाह निर्विघ्न हो और दोनों सुखी रहें।

बापूके आशीर्वाद

शेठ गोविन्ददास
राजा गोकुलदास महल
जबलपुर, म० प्रा०

सी० डब्ल्यू० १०२६९ से

२५. तार : हसरत मोहानीको[1]

सेवाग्राम
१० अप्रैल, १९४२

मौलाना हसरत मोहानी

बधाइयाँ किसलिए? मुझे तो कुछ नहीं मालूम। लेकिन आपका स्वागत है।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२६. पत्र : मनुबहन सु० मशरूवालाको

१० अप्रैल, १९४२

चि० मनुड़ी,[2]

तुझे अलगसे पत्र लिखूं, यह आशा तुझे मुझसे नहीं करनी चाहिए। मैं बहुत व्यस्त हूँ।

बापूके आशीर्वाद

श्री० मनोरमाबहन मशरूवाला
बालकिरण
साउथ एवेन्यू
सान्ताक्रूज
बम्बई

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २६८१) से। सौजन्य : कनुभाई ना० मशरूवाला

१. प्रस्तुत तार मौलाना हसरत मोहानीके ९-४-१९४२ के तारके उत्तरमें था। उस तारमें मौलानाने लिखा था: "बधाइयाँ। अतिवादी मार्ग कहीं जाकर मिल जाते हैं। मैं भी अलग रहने की नीतिका आग्रह करता हूँ, अर्थात् सरकारी युद्ध-प्रयासमें न तो कोई बाधा डालना और न उसे बढ़ावा देना। भेंटके लिए अनुमति दें।"

२. हरिलाल गांधीकी पुत्री

२७. पत्र : पुरुषोत्तमदास टण्डनको

सेवाग्राम
१० अप्रैल, १९४२

भाई टंडनजी,

आपका खत मिला।[1] इससे अधिक उदारताकी मैं आशा नहीं रख सकता था।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

२८. पत्र : मीराबहनको

सेगाँव
११ अप्रैल, १९४२

चि० मीरा,

मैंने तुम्हें कल पत्र लिखा था। मैं जानता हूँ कि तुम कैम्पके[2] लिए जो भी कर सकती हो सब करोगी। दूसरे कामके बारेमें मेरे ध्यानमें अभी तो कोई बात नहीं है और शायद आगे भी कभी न हो। लेकिन अगले क्षण क्या होगा, कोई नहीं जानता।

सप्रेम।

बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ६४९५) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९८९० से भी

१. टण्डनजीने गांधीजी को हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्थायी समिति द्वारा पारित प्रस्ताव भेजा था। प्रस्तावके पाठके लिए देखिए "हिन्दुस्तानी प्रचार-सभा", पृ० ६६।

२. महिलाओंका एक कैम्प, जिसे चलाने में मीराबहन मदद दे रही थीं।

२९. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

सेगाँव, बरास्ता वर्धा (म० प्रा०)
११ अप्रैल, १९४२

प्रिय सी० आर०,

यह सोचकर कि कदाचित आप आज जी० टी० में हों, खुर्शेदबहन आपको लेने जा रही है। आपको आकर यहीं राष्ट्रीय सप्ताह पूरा करना चाहिए और अपने कार्योंकी रिपोर्ट हमें देनी चाहिए।

स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०९१०) से। सौजन्य : सी० आर० नरसिंहन्

३०. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

११ अप्रैल, १९४२

चि० कान्ति,

तेरा पत्र मिला। सरस्वतीको तू ही तालीम दे सकता है। वहाँ तुम तीनों का काम बिगड़ रहा है। शान्ति[1] बहुत सीधा बच्चा है। मैं तो सरस्वतीको बार-बार लेनेको तैयार हूँ।[2] मैं तेरा बोझ कम करना चाहता हूँ।

हरिलालके बारेमें मैंने देवदाससे कहा है कि वह हरिलालसे बात करे कि अगर वह राजी हो, तो मैं उसे कुछ समयके लिए किसी जेल या पागलखानेमें रख सकता हूँ। लेकिन वह ऐसा नहीं है कि कोई भी सीधा-सच्चा प्रस्ताव स्वीकार कर ले। अपने बारेमें तूने जो सुझाव दिया है, वह तेरे योग्य है। लेकिन ऐसे किसी त्यागकी फिलहाल तो जरूरत नहीं है। उसके सामने भी यह प्रस्ताव रखना व्यर्थ है। ममत्व जैसी कोई चीज उसमें है ही नहीं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७३९६) से। सौजन्य : कान्तिलाल गांधी

१. कान्तिलाल गांधीका पुत्र
२. देखिए "पत्र : कान्तिलाल गांधीको", पृ० ११-१२।

३१. भाषण : स्वराज्य भण्डारके उद्घाटनके अवसरपर

वर्धा
११ अप्रैल, १९४२

दिल्लीमें बैठे पन्द्रह नेता तबतक कुछ खास हासिल नहीं कर सकते जब-तक कि उनके पीछे रचनात्मक कार्यक्रमका बल न हो।

कई दिनोंसे मैं सोच रहा हूँ कि सरकारी मुद्राकी तरह हम सूत-मुद्रा क्यों नहीं शुरू कर सकते। विनोबा भावेने मेरी सलाहसे सूत-मुद्रा शुरू की थी — एक पैसेसे लेकर पाँच रुपयेके नोटों तक की। उससे आप गल्ला, चमड़ेका सामान, चरखे तथा वर्धामें ग्रामसेवा मण्डलकी दुकानोंमें रखी अन्य चीजें खरीद सकते थे।

मैं लोगोंको चेतावनी देता हूँ कि ऐसे नोटोंकी नकल न करें। हमारी मुद्रा सूतके उत्पादन और खादीको प्रोत्साहन देगी और उसका महत्त्व बढ़ायेगी। मैं इस भण्डारको और इसके कार्योंको अपना आशीर्वाद देता हूँ। हमने इसका नाम स्वराज्य भण्डार रखा है, जो सार्थक है, क्योंकि रचनात्मक कार्य चलाकर हम स्वराज्य हासिल कर सकते हैं। हमें गाँवोंके लोगोंमें जाकर उनसे घुल-मिल जाना चाहिए और अपने-आपको संगठित व ताकतवर बनाना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि लेन-देन सूतमें हो।

मैं कह नहीं सकता कि दिल्लीमें हमारे नेता सफल हुए हैं या नहीं, लेकिन मैं यह बात जोर देकर कह सकता हूँ कि यदि हम रचनात्मक कार्यक्रम चलायें तो उनके हाथ मजबूत होंगे।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १२-४-१९४२

३२. टिप्पणियाँ

भाषाई आधार

आन्ध्र प्रान्तके बारेमें विजयनगरके महाराजकुमारको मैंने जो जवाब[1] दिया, उसके परिणामस्वरूप हिन्दी और मराठी भाषा-भाषी प्रान्तोंके बारेमें मुझे लम्बे पत्र मिले हैं। इन पत्रोंमें यह दलील दी गई है कि सारे हिन्दी-भाषी इलाकोंको एक प्रान्त माना जाये, और वैसे ही मराठी-भाषी इलाकोंको भी एक प्रान्त माना जाये। जहाँतक मेरा ताल्लुक है, इस सुझावके प्रति मेरी पूरी हमदर्दी है। मेरी मान्यता है कि प्रान्तोंकी हदबन्दीका सही आधार भाषाई आधार है। एक ही भाषा-भाषी दो

१. देखिए खण्ड ७५, "आन्ध्रजन", पृ० ४५४-५५।

प्रान्त अगर एक-दूसरेके साथ लगे न हों तो मुझे उनके दो होने में एतराज नहीं। केरल और कश्मीरकी अगर एक ही भाषा हो तो मैं उन्हें दो अलग प्रान्त ही मानूँगा।

लेकिन पत्र-लेखकोंका सुझाव है कि मुझे हिन्दी-भाषी और मराठी-भाषी इलाकोंके पुनर्विभाजनके लिए, या इस मामलेमें एकीकरणके लिए आन्दोलन चलाना चाहिए। यह एक अव्यावहारिक सुझाव है। एकीकरणकी माँग तो उन इलाकोंमें रहनेवाले कांग्रेसजनोंके द्वारा ही की जानी चाहिए। अगर वह सर्वसम्मतिसे हुई तो कांग्रेस उसका विरोध नहीं कर सकती। यह तो बिल्कुल उनके हाथकी बात है।

परन्तु, मेरे इन पत्र-लेखकों और ऐसे दूसरे लोगोंको अपने सुझावोंको आन्ध्र प्रान्तके आन्दोलनके साथ नहीं जोड़ना चाहिए। आन्ध्र तो पहले से ही कांग्रेसके लिए पृथक् प्रान्त है। लेकिन कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलके जमानेमें आन्ध्रवासियोंने इसकी कानूनी स्वीकृतिके लिए आन्दोलन किया था। इन पत्रोंमें लेखकोंकी माँग है कि कांग्रेस उनके सुझावोंको मान्यता दे दे।

हालाँकि गुण-दोषकी दृष्टिसे मैं इस सुझावका अनुमोदन करता हूँ, तो भी आज जापानके आसन्न आक्रमणको देखते हुए देशके आगे मुख्य प्रश्न यही है कि हरएक भारतीय इस संकटको ध्यानमें रखकर अपने कर्त्तव्यका पालन करे, और मैं ऐसे किसी आन्दोलन और प्रवृत्तिको, जो उसे उस कर्त्तव्यसे भटकाये, स्वीकृति नहीं दे सकता। आज जो सवाल दूसरे सब सवालोंसे बढ़-चढ़कर है, उसके सामने प्रान्तोंका पुनर्विभाजन जैसा सवाल अपना महत्त्व रखते हुए भी फीका पड़ जाता है। इन चीजोंके लिए आसानीसे युद्धके अन्त तक प्रतीक्षा की जा सकती है। हमें आशा है कि इस महान विपत्तिके बाद एक नई झाँकी और नई व्यवस्था देखने को मिलेगी।

हिसारका अकाल और कताई

डॉ० गोपीचन्द मुझसे हिसारके अकालके बारेमें बराबर चर्चा करते रहे हैं। हिसारमें अकाल करीब-करीब स्थायी बन गया लगता है। अखिल भारतीय चरखा संघ पिछले कई सालोंसे इस जिलेमें काम कर रहा है और कताईके जरिये गरीबोंको राहत दे रहा है। डॉक्टर गोपीचन्दका खयाल है कि अगर इस कामके लिए कुछ ज्यादा पूँजी मिल सके तो ज्यादा सहायता दी जा सकती है। इसके लिए हिसारके बाहर अपील करके सफलता पाना शायद मुमकिन न हो। सब जगह लोग मुसीबतमें फँसे हुए हैं और इस लड़ाईके भयंकर आतंकके कारण मुसीबत और भी बढ़ सकती है। इसलिए, हर जगह स्थानीय सहायतापर ही निर्भर रहना जरूरी हो जाता है। जैसा कि प्रायः होता है, गरीब इलाकोंमें भी पैसेवाले लोग पाये जाते हैं। हिसार जिलेमें भिवानी एक बड़ी व्यापारी मण्डी है, और वहाँ अनेक धनवान आदमी हैं। मुझे आशा है कि वे और हिसारके दूसरे समर्थ सज्जन आगे आकर अकाल-पीड़ितों की सहायताके इस अत्यन्त आवश्यक काममें यथाशक्ति मदद देंगे।

सेवाग्राम, १२ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १९-४-१९४२

३३. पत्र : अमृतलाल चटर्जीको

सेगाँव, वर्धा
१२ अप्रैल, १९४२

प्रिय अमृतलाल,

आशा है कि तुम्हारा सब ठीक चल रहा होगा। मैं आभाको[1] राजकोट भेजना चाहूँगा। वीणा[2] वहाँ बहुत ही अच्छा काम कर रही है। आभा भी यहाँकी अपेक्षा वहाँ ज्यादा अच्छी रहेगी। लेकिन उसे शायद तबतक राजकोट नहीं जाना चाहिए जबतक कनुसे[3] उसकी सगाई नहीं हो जाती। अपनी पत्नीसे सलाह करके मुझे बताओ। मुझे यकीन है कि आभा तभी सुखी होगी जब कनुके साथ उसका सम्बन्ध हो जायेगा।

सप्रेम।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३३७) से। सौजन्य : अमृतलाल चटर्जी

३४. पत्र : वालजी गो० देसाईको

१२ अप्रैल, १९४२

चि० वालजी,

तुम्हारा लेख मिला। [मैंने उसे] पास कर दिया है। तुम्हें यह लिखना तो मैं भूल ही जाता था कि तुम्हें और कुछ नहीं मिलेगा, यानी २५ रुपयेकी [बढ़ी हुई] दरसे नहीं मिलेगा। ट्रस्टियोंने इजाफेका सुझाव स्वीकार नहीं किया। उनसे आग्रह करने-जैसी बात तो थी नहीं। अतः बाकी पैसा मैं किसी दूसरी मदसे निकालूँगा। तुम्हें जल्दी तो नहीं है? बा मजेमें है।

बापूके आशीर्वाद

प्रोफेसर वा० गो० देसाई
देवगिरि
पूना-४

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७४९७) से। सौजन्य : वालजी गो० देसाई

१ और २. अमृतलाल चटर्जीकी पुत्रियाँ

३. गांधीजी के भतीजे नारणदासका पुत्र

३५. पत्र : कृष्णचन्द्रको

१२ अप्रैल, १९४२

चि० कृ० चं०,

चं० का बोझ तुम्हारे ही उठाना है। कोई दखल नहीं देंगे। प्रेमकी परीक्षा तब ही हो सकती है जब प्रेम स्वतन्त्रतासे काम कर सके।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४२१)से। एस० एन० २४४७७से भी

३६. भारतमें एकता अत्यन्त आवश्यक है[1]

[१२ अप्रैल, १९४२ के पश्चात्][2]

भारतके राजनीतिक गतिरोधको सुलझाने के लिए सर स्टैफर्ड क्रिप्स द्वारा प्रस्तुत सुझावोंमें देशको तीन भागोंमें बाँटने की कल्पना की गई थी, जिनमें से प्रत्येकमें अलग ढंगकी शासन-पद्धति होती।[3] लगता था कि ये सुझाव भारतके बहुत-से मुसलमान नेताओंको पसन्द आयेंगे, क्योंकि वे बहुत समयसे देशको हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच बाँट देने की वकालत कर रहे हैं। फिर भी, सर स्टैफर्डकी योजना बहुत बातोंमें मुस्लिम लीगकी योजनासे भिन्न थी, और इसलिए मुस्लिम लीगने उसके प्रति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी अपेक्षा कोई अधिक उत्साह नहीं दिखाया।[4]

१. यह लेख सबसे पहले एक अमेरिकी पत्रिका पिक्चर वर्ल्ड के नवम्बर, १९४२ के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

२. जाहिर है कि यह लेख १२ अप्रैल, १९४२ को सर स्टैफर्ड क्रिप्सके भारतसे लौट जाने के बाद लिखा गया था।

३. सर स्टैफर्ड क्रिप्स 'भारतीय गतिरोध' को सुलझाने के लिए २२ मार्च, १९४२ को दिल्ली आये थे। उनके सुझावोंके लिए देखिए खण्ड ७५, परिशिष्ट ६।

४. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनोंने क्रिप्स फार्मूलेको अस्वीकार कर दिया था— कांग्रेसने इसलिए कि उसमें तत्काल स्वतन्त्रता प्रदान करने की बात नहीं थी, भारतकी प्रतिरक्षा ब्रिटिश सरकारके नियन्त्रणमें छोड़ दी गई थी, और प्रान्तोंको, यदि वे चाहें तो, पृथक् होने का अधिकार देकर परोक्ष रूपसे भारत-विभाजनका विचार पेश किया गया था। मुस्लिम लीगने उस फार्मूलेका विरोध इसलिए किया कि मूल सुझावोंमें कोई भी संशोधन करने की गुंजाइश नहीं थी।

मुस्लिम लीग मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व करती है; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका दावा है कि वह हिन्दुओं और मुसलमानोंकी समान रूपसे प्रतिनिधि है। क्या कांग्रेसके दावेकी पुष्टि की जा सकती है? हाँ, की जा सकती है। शुरूसे ही कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था रही है, केवल किसी एकका नहीं बल्कि सभी मतोंका प्रतिनिधित्व करती रही है। इसका प्रवर्तक एक अंग्रेज था, यद्यपि यह बात कुछ लोगोंको बड़ी अजीब लग सकती है। इसके एक-दो मन्त्री सदा ही मुसलमान रहे हैं। मुसलमान, अंग्रेज, ईसाई और पारसी इसके अध्यक्ष रहे हैं। अपने पूरे इतिहासमें, जो अब आधी शताब्दीसे अधिक पुराना हो चला है, कांग्रेसने जिस तरह सारे भारतका प्रतिनिधित्व करने की चेष्टा की है उस तरह किसी और संगठनने नहीं की। कांग्रेसको जो-जो सफलताएँ मिली हैं उनसे सभी सम्प्रदायों — मुसलमानों और हिन्दुओंको समान रूपसे लाभ हुआ है।

मेरा विश्वास है कि कांग्रेस समस्त भारतकी आशाओं और आकांक्षाओंका मूर्त रूप है। इसकी परम्पराएँ ही ऐसी हैं कि वे इसे मुसलमानोंके विरुद्ध हिन्दुओंका अथवा हिन्दुओंके विरुद्ध मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व करनेके अयोग्य बनाती हैं। यह भारतकी सभी सन्तानोंके केवल समान हितोंका ही प्रतिनिधित्व कर सकती है।

फिर भी, हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच मतभेद हैं, और यह कहा जाता है कि हिन्दू धर्म और इस्लाम दो ऐसी परस्पर-विरोधी संस्कृतियों और विचार-धाराओंका प्रतिनिधित्व करते हैं जो शान्तिपूर्वक साथ-साथ नहीं रह सकतीं और इसलिए उनको अलग करके दो भिन्न राष्ट्र बना देने चाहिए।

मैं देशके बँटवारेका कभी समर्थन नहीं कर सकता — मैं हर साधनसे जो मुझे प्राप्त है, इसका विरोध करूँगा, लेकिन फिर भी मैं ऐलान करता हूँ कि जबतक भारतके लोग इस साम्प्रदायिक समस्याको हल नहीं कर लेते तबतक राष्ट्रीय स्वतन्त्रता असम्भव है।

इसे सुलझानेके दो तरीके हैं। एक तरीका अहिंसाका है और दूसरा हिंसाका।

दुर्भाग्यकी बात है कि इस समय वे हिन्दू भी जो हिंसासे, घातक हथियारोंसे काम लेना नहीं जानते, खुशीसे इस कामको सीखना चाहेंगे, ताकि वे जिसे मुसलमानोंकी हिंसा कहते हैं उसका मुकाबला करनेके लायक बन सकें। यदि इस तरह — दोनों पक्षोंके हिंसात्मक हथियारोंके इस्तेमालमें एक-दूसरेके बराबर बन जानेसे — कभी शान्ति स्थापित होनी हो तो मैं जानता हूँ कि वह मेरे जीवन-कालमें स्थापित नहीं हो सकती। और अगर स्थापित हो भी गई तो मैं उसे देखना नहीं चाहूँगा। क्योंकि वह तो सशस्त्र शान्ति होगी, जिसे किसी भी क्षण भंग किया जा सकता है।

मैं नहीं जानता कि क्या वे लोग जो दो राष्ट्रोंके सिद्धान्तमें विश्वास रखते हैं, एक राष्ट्रमें विश्वास रखनेवालोंके साथ दोस्तीसे रह सकते हैं। अगर मुसलमानों की भारी बहुसंख्या अपने-आपको एक अलग कौम समझती है, जिसकी हिन्दुओं और दूसरे लोगोंके साथ किसी बातमें समानता नहीं है, तो दुनियाकी कोई ताकत उनके विचार नहीं बदल सकती। अगर वे इस आधारपर भारतका बँटवारा चाहते हैं

तो बँटवारा करना ही पड़ेगा। हाँ, अगर हिन्दू इस तरहके बँटवारेको रोकने के लिए लड़ना चाहें तो बात अलग है। जहाँतक मुझे पता चला है, दोनों पक्ष ऐसी लड़ाईके लिए तैयारियाँ कर रहे हैं।

इस लड़ाईके खयालसे मेरा दिल दहल जाता है। यह तो राष्ट्रकी आत्महत्या का रास्ता है। एक-न-एक पक्ष बाहरवालों को सहायताके लिए बुलायेगा। अगर ऐसा हुआ तब तो स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती।

एकता और अहिंसाको अपनाना, एक-दूसरेको विरोधी संस्कृतियोंके अनुयायी मानने के बजाय सबको एक ही महान मातृभूमिकी सन्तान समझना एकमात्र सच्चा और सही रास्ता है। हिन्दू और मुसलमान मिलकर शान्तिपूर्वक काम करते रहे हैं और कर रहे हैं। अतीतमें वे शान्तिपूर्वक साथ-साथ रहते थे; वे भविष्य में भी शान्तिपूर्वक साथ-साथ रह सकते हैं। हमारा काम मातृभूमिके हर बेटेको इस बातका विश्वास दिलाना है कि उसका मत चाहे कुछ भी हो, लोकतान्त्रिक ढंगसे निर्वाचित राष्ट्रीय विधान द्वारा बनाये गये देशके कानून, उसके अधिकारों और धार्मिक और सांस्कृतिक हितोंकी रक्षा करेंगे।

अब जबकि आक्रमणकारी दरवाजेपर है, भारतमें एकताकी पहलेसे कहीं अधिक जरूरत है। मेरी सबसे बड़ी इच्छा यही है कि उसके विरुद्ध और स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए मिलकर संघर्ष किया जाये। यह बहुत सम्भव है कि ऐसा करते हुए एक समान उद्देश्यकी प्राप्तिके प्रयत्नमें हम अपने झगड़ोंको भूल जायें। लेकिन अगर हम देखें कि हम अपने झगड़ोंको नहीं भूल पाये, और हमें झगड़ना ही हो तो वह आपसमें झगड़ने का समय होगा। लेकिन यह समय झगड़ने का नहीं है। इस समय तो भारतका भाग्य ही अनिश्चित है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २५-४-१९४२

३७. टिप्पणियाँ

स्व० आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव[1]

स्व० श्री आनन्दशंकरभाईकी[2] कमी न सिर्फ गुजरातको परन्तु काशी हिन्दू विश्वविद्यालयकी उनकी वर्षोंकी अमूल्य सेवाके[3] कारण संयुक्त प्रान्तको भी उतनी ही महसूस होगी। आनन्दशंकरभाईकी जगह पूरी करना असम्भव नहीं, तो बेहद मुश्किल तो है ही। वे आखिर तक शिक्षक और शिक्षा-शास्त्री ही रहे। उनकी मृत्युसे अनेक विद्यार्थियोंने अपना निजी मित्र गँवाया है। मालवीयजीके तो वे दाहिने हाथ ही थे, इसलिए उनकी इस समयकी मनोदशाकी तो हम कल्पना ही कर सकते हैं।

१. यह टिप्पणी हरिजनबन्धु (गुजराती) से और शेष दो टिप्पणियाँ हरिजन (अंग्रेजी) से ली गई हैं।

२. उनकी मृत्यु अहमदाबादमें ७ अप्रैल, १९४२ को हुई थी।

३. वे १९२० से १९३७ तक बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके उप-कुलपति रहे थे।

परन्तु आनन्दशंकरभाई सिर्फ शिक्षा-शास्त्री ही न थे। उनकी रुचि अनेक प्रकार की थी। वे राजनीतिके गहरे अध्येता; स्वतन्त्रताके पुजारी और समाज-सुधारक थे। सनातनियोंके साथ उनकी खूब पटती थी, क्योंकि उनके बहुत-से विधि-विधानोंका वे पालन करते थे। परन्तु उनकी बुद्धि और उनका हृदय हमेशा सुधारकोंके साथ ही था। वे निर्भयतासे अपने विचार व्यक्त करते थे। संस्कृतके प्रकाण्ड विद्वान और शास्त्रोंके जानकार होने की वजहसे उनके विचारोंका सब आदर करते थे। हिन्दू धर्म को उन्होंने शोभान्वित किया था।

खुद मुझे तो उनकी मदद सदा मिला ही करती थी। वे मजदूरों और मालिकों के समान मित्र थे और दोनोंके विश्वासपात्र थे। इसलिए वे अहमदाबादमें दोनों की अच्छी सेवा कर सके थे।

आनन्दशंकरभाईके कुटुम्बी यह समझें कि उनके इस शोकमें बहुतेरे उनके साथ हैं, क्योंकि उन्होंने अपने कुटुम्बका बहुत विस्तार किया था।

लाला शंकरलाल

दिल्लीके लाला शंकरलालके साथ जेलमें हो रहे बरतावके बारेमें मुझे दो पत्र मिले हैं। उनमें लिखा है कि सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वरसे उनकी हालत बेहतर नहीं है। मुझे लाला शंकरलालकी राजनीति या विचारोंसे कोई वास्ता नहीं। मगर मैंने जो बात कवीश्वरजी के बारेमें कही थी, वही लाला शंकरलालपर भी लागू होती है। कवीश्वरजी के समान ही उन्हें भी अधिकार है कि उनके साथ सभ्य और मानवीय बरताव किया जाये। उनके भतीजेने जो लिखा है वह यह है:

> मैं अपनी चाची, लाला शंकरलालजी की पत्नीके साथ ता० २३ मार्चको तीसरे पहर साढ़े तीन बजे उनसे मुलाकात करने गया था। ज्यों ही वे सामने आये, मैंने लालाजी में बेहद कमजोरी और स्फूर्तिमें कमीके चिह्न देखे। उनका शरीर सूखा हुआ, रंग पीला और चेहरा मुरझाया हुआ था। मुझे यह जानकर बहुत ही बेचैनी और वहशत हुई कि वे रात-दिन एक ऐसी अँधेरी, सीलन-भरी और स्वास्थ्यके लिए हानिकारक कालकोठरीमें बन्द रखे जाते हैं जो लालाजी की-सी हैसियतवाले भद्रजनकी तो बात ही जाने दीजिए, एक अपराधी कैदीको बन्द रखने के लिए भी शायद उपयुक्त न समझी जाये।

अगर यह बयान ठीक है तो इस मामलेपर तुरन्त ध्यान देना चाहिए और स्थितिमें सुधार किया जाना चाहिए।

यात्रामें कटौती

बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवेका प्रबन्ध-मण्डल यथासम्भव इस बातकी कोशिश कर रहा है कि लोग रेल-यात्रामें भरसक कमी करें। यह समय रहते दी गई चेतावनी है। लोगोंको यथासम्भव कमसे-कम यात्रा करनी चाहिए। अत्यन्त आवश्यक काम होने पर ही रेल-यात्रा उचित मानी जा सकती है। हो सकता कि अचानक एक दिन हम पायें कि सारी नागरिक बुकिंग बन्द कर दी गई हैं। फौजियोंके

यातायातके लिए यह सावधानी बरतना बहुत ही जरूरी हो सकता है। अच्छा तो यह है कि हम जरूरत खड़ी होने से पहले ही इस बातके आदी बन जायें।

सेवाग्राम, १३ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजनबन्धु, १९-४-१९४२, और हरिजन, १९-४-१९४२

३८. प्रश्नोत्तर

विश्वविद्यालयोंमें क्यों नहीं?

प्र० : आपने क्रिकेटके खेलमें साम्प्रदायिकताके खिलाफ अपनी राय दी है। क्या इसी तरह साम्प्रदायिक विश्वविद्यालय भी शोचनीय नहीं हैं? जो कालेज और छात्रावास सबके लिए खुले हैं, उनमें पढ़ने और रहनेवालोंमें गहरी मित्रता पैदा हो जाती है, और धार्मिक सहिष्णुता एक स्वाभाविक चीज बन जाती है। यदि सर्वसामान्य विद्यापीठोंमें विद्वान अध्यापकों द्वारा शिक्षा दिलाने के लिए अच्छे पीठोंका प्रबन्ध किया जाये तो क्या उससे विभिन्न संस्कृतियोंका विकास न होगा?

उ० : आप ठीक कहते हैं। अगर हम साम्प्रदायिक संस्थाओंके बिना अपना काम चला सकें तो अच्छा हो। लेकिन जिस तरह मैं निश्चयपूर्वक यह कह सकता हूँ कि क्रिकेटमें साम्प्रदायिकता नहीं होनी चाहिए, उसी तरह मैं यह नहीं कह सकता कि मुस्लिम या हिन्दू विश्वविद्यालय नहीं होने चाहिए। अगर उनके मूलमें ही दोष न हो तो साम्प्रदायिक विश्वविद्यालयोंसे राष्ट्रकी सेवा हो सकती है। मसलन, हिन्दू विश्वविद्यालय और मुस्लिम विश्वविद्यालय साम्प्रदायिक एकताके केन्द्र बन सकते हैं, जैसा कि उन्हें बनना चाहिए। लेकिन साम्प्रदायिक खेल तो एक अन्तर्विरोधी बात मालूम होती है। मैं आपके साथ इस बातपर पूरी तरह सहमत हूँ कि देशमें साम्प्रदायिकतासे रहित कालेज और छात्रावास होने चाहिए और ऐसे कालेज और छात्रावास हैं भी। लेकिन दुर्भाग्यवश उनमें भी यह जहर घुस गया है। हमें आशा करनी चाहिए कि यह एक अस्थायी स्थिति सिद्ध होगी।

जब नेताओंमें मतभेद हो

प्र० : आप कहते हैं कि कुछ हालतोंमें शहरवालोंको शहर छोड़ देने चाहिए।[1] पण्डितजी और राजाजी कहते हैं कि उन्हें किसी भी हालतमें ऐसा नहीं करना चाहिए। ऐसी दशामें हम क्या करें?

उ० : मैं आपकी कठिनाईको समझता हूँ। आपको मैं यही सलाह दे सकता हूँ कि आप अपने विवेकसे काम लें और जो सलाह आपकी बुद्धिको जँचे, उसे अपनायें।

१. देखिए खण्ड ७५, पृ० ४३९-४१।

हम एक ऐसे कठिन समयमें रह रहे हैं जैसा इससे पहले हमने कभी नहीं देखा। मुझे अपनी बातपर पूरा विश्वास है। जो शहर खतरेकी सीमाके अन्दर हैं उनमें रहनेवाले अनावश्यक लोगोंको चाहिए कि वे शहर छोड़ दें। इस तरह व्यवस्थित रूपसे शहर छोड़ने में कोई कायरता नहीं है। स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों तथा उन सब लोगोंको जिनका शहरोंमें कोई काम नहीं है, शहर खाली कर देने चाहिए, ताकि रक्षा करनेवाले अपनी निगरानीके शहरोंकी रक्षा अधिक व्यवस्थित ढंगसे कर सकें। शहर छोड़नेवाले यदि देहातोंमें जाकर बस जायें और देहातियोंकी समस्याओंको सुलझायें तो वे इस तरह सच्चे साहसका परिचय देंगे। नेताओंके मतभेदसे जनता को परेशान नहीं होना चाहिए। शुद्ध मतभेद प्रायः प्रगति के शुभ-चिह्न होते हैं। और, आपने जिस मतभेदका जिक्र किया है वह शुद्ध है।

सेवाग्राम, १३ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-४-१९४२

३९. वह अभागा प्रस्ताव

हजारहा अफसोस कि ब्रिटिश सरकारने यहाँ राजनीतिक गतिरोधकी गुत्थी सुलझाने के लिए एक ऐसा प्रस्ताव[1] भेजा जो ऊपरी दृष्टिसे देखने पर भी इतना हास्यास्पद था कि कोई उसे मंजूर कर ही न सके। और बदकिस्मतीकी बात तो यह थी कि उसको लानेवाले सर स्टैफर्ड क्रिप्स थे, जो एक प्रबल बुनियादी सुधारवादी (रैडिकल) और हिन्दुस्तानके मित्रके रूपमें प्रख्यात हैं। मुझे उनकी शुभेच्छाके बारेमें कतई सन्देह नहीं है। उन्हें भरोसा था कि कोई भी इससे बेहतर चीज हिन्दुस्तानके लिए नहीं ला सकता था। मगर उन्हें यह जानना चाहिए था कि कमसे-कम कांग्रेस तो औपनिवेशिक दर्जेकी ओर देखेगी भी नहीं, चाहे उसके मिलते ही ब्रिटिश साम्राज्यसे रिश्ता तोड़ने का अधिकार क्यों न हो। वे यह भी जानते थे कि इस प्रस्तावमें हिन्दुस्तानको ऐसे तीन टुकड़ोंमें बाँटने की कल्पना की गई थी जिनकी शासन-प्रणालीकी कल्पना ही भिन्न-भिन्न थी। इसमें पाकिस्तानकी स्थापनाकी कल्पना की गई थी, परन्तु उस पाकिस्तानकी नहीं जो मुस्लिम लीग चाहती थी। और अन्तमें यह बात भी थी कि प्रस्तावमें उत्तरदायी मन्त्रियोंको प्रतिरक्षाके बारेमें कुछ भी असली अधिकार नहीं दिये गये थे।

बात यह है कि जब एक बार स्टैफर्ड क्रिप्स साम्राज्यवादी तन्त्रक अंग बन गये तो उनपर बिना जाने उस तन्त्रका रंग चढ़ गया। इतनी शक्ति इस तन्त्रमें है। हिन्दुस्तानमें हमारा लगभग बराबर यह अनुभव रहा है कि जो भारतीय इसमें

१. देखिए परिशिष्ट २।

खिंच जाते हैं, वे अपनी मौलिकता खोकर नौकरीमें लगे अपने सहयोगियों-जैसे ही बन जाते हैं, और बहुधा साम्राज्यवादके महिषासुरके प्रति वफादारीमें वे उनको भी मात करते हैं।

अगर सर स्टैफर्ड अनासक्त रहते तो वे अपने बुनियादी सुधारवादी भारतीय मित्रोंसे बातचीत करते और अपने अत्यन्त कठिन कार्यको हाथमें लेने के पहले उनकी स्वीकृति प्राप्त कर लेते। अगर इसके जवाबमें यह कहा जाये कि उनके लिए ऐसा करना गैरमौजूँ होता तो इसका वही मतलब हुआ जो मैं अबतक कहता आया हूँ, यानी इस तन्त्रका अंग बन जाने के बाद उनपर उसका जादू चले बिना रह ही नहीं सकता था, और जो साफ और सीधी बात थी वह उनसे हो नहीं सकती थी।

मगर बीते वक्तपर या अंग्रेजोंकी गलतियोंपर बैठे सोचते रहने से क्या फायदा? अधिक अच्छा तो यह होगा कि हम अपने भीतर देखें। अगर हम अपने को सँभाल सकें तो अंग्रेज खुद अपनेको सँभाल लेंगे। हमारी गलतियाँ या दोष अनेक हैं। अपनी कमियोंके लिए हम अंग्रेजोंके सिर दोष क्यों मढ़ें? जबतक हम साम्प्रदायिक गुत्थीको सुलझा नही लेते, आजादीका मिलना नामुमकिन है। इस नग्न सत्यकी ओरसे हमें अपनी आँखें बन्द नही करनी चाहिए। इस समस्याको किस तरह सुलझाया जाये, यह एक अलग सवाल है। जबतक दोनों या दोनोंमें से कोई भी पक्ष यह मानता है कि इस गुत्थीको सुलझाये बगैर हमें आजादी मिल जायेगी या मिल सकती है, तबतक इसको हम कभी नहीं सुलझा सकेंगे। इस सवालको, जो कि लगभग नाकाबिले हल बन चुका है, हल करने के दो तरीके हैं। एक तो अहिंसाका राजमार्ग है और दूसरा हिंसाका रास्ता। पहले तरीकेमें दूसरे पक्षकी बाकायदा रजामन्दी या सहयोग लेने की आवश्यकता नहीं है। फर्ज कीजिए कि दो लड़कोंमें एक सेवकी मिल्कियतके बारेमें झगड़ा उठ खड़ा हो तो उसको सुलझाने का अहिंसक रास्ता यह होगा कि दूसरे लड़केको वह सेब ले जाने दिया जाये, बशर्ते कि वह यह जानते हुए भी उस सेवको ले जाना चाहे कि उसपर से अपना हक छोड़नेवाले लड़केका सहयोग उसे हरगिज नहीं मिल सकता। दूसरा रास्ता हिंसाका सामान्य रास्ता है। उसमें दोनों पक्ष आपसमें तबतक लड़ेंगे जबतक उनमें से एक कुछ समयके लिए परास्त न हो जाये। आजादीमें दिलचस्पी रखनेवाले तमाम लोगोंको इन दोनोंमें चुनाव करना है। मैं समझता हूँ कि मुख्य पात्र तो चुनाव कर ही चुके हैं। परन्तु दोनों तरफके सामान्य जनोंको अभीतक खुद यह पता नहीं है कि वे क्या चाहते हैं। उनके लिए यह जरूरी है कि अगर हो सके तो वे स्वतन्त्र रूपसे विचार करें और एकताके लिए अहिंसक उपाय काममें लायें। और वह उपाय यह है कि हिन्दू और मुसलमान आम लोग आपसमें भाईचारेका सम्बन्ध पैदा करें, बशर्ते कि वे यह मानते हों कि उनके लिए आपस का संयुक्त जीवन न सिर्फ पूरी तरह मुमकिन है, बल्कि जरूरी भी है। जो लोग दो राष्ट्रवाले सिद्धान्त और हिन्दुस्तानके साम्प्रदायिक विभाजनके माननेवाले हैं, वे आपसमें सहयोग करते हुए मित्रोंकी तरह रह सकते हैं या नहीं, सो मैं नहीं जानता। अगर मुसलमानोंकी बड़ी तादाद अपने-आपको एक अलग कौम मानती है, जिसका हिन्दुओंसे और औरोंसे कुछ भी मेल नहीं हो सकता, तो दुनियाकी कोई

भी ताकत उन्हें अन्यथा सोचने को मजबूर नहीं कर सकती। और यदि वे इस आधार पर हिंदुस्तानका विभाजन करना चाहते हैं तो वे, यदि हिन्दू ऐसे विभाजनके विरुद्ध लड़ना न चाहें तो, विभाजन जरूर करा लेंगे। जहाँतक मैं देख सकता हूँ, ऐसी तैयारी दोनों तरफ चुपचाप हो रही है। यह आत्मघातका रास्ता है। सम्भवतः प्रत्येक पक्ष अंग्रेजी या दूसरी विदेशी सहायता चाहेगा। अगर ऐसा हुआ तो आजादी को अलविदा कहना होगा। उस हालतमें लड़ाई आजादी हासिल करने के लिए नहीं होगी, बल्कि ऊपरके दृष्टान्तके काल्पनिक लड़कोंकी तरह काल्पनिक सेवकी खातिर होगी। इस घटनाकी कल्पना करने की भी मेरी हिम्मत नहीं होती। अपने जीते-जी मैं इसका साक्षी बनना न चाहूँगा। जिस चीजके लिए मेरी आँखें तरस रही हैं, वह तो यह है कि दोनों मिलकर आजादीकी लड़ाई लड़ें। यह बहुत मुमकिन है कि आजादी हासिल करने की प्रक्रियामें ही हम अपने आपसके झगड़ोंको भूल जायें। लेकिन अगर हम न भूलें और हमें झगड़ना ही हो तो झगड़ने का वक्त भी तभी होगा।

सेवाग्राम, १३ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-४-१९४२

४०. पत्र : अन्नपूर्णाको

१३ अप्रैल, १९४२

चि० अन्नपूर्णा,

तुझे अच्छी सजा मिली। अब ऐसी भूल मत करना। आराम करते हुए भी बहुत सेवा की जा सकती है। चाहिए सेवा करने की वृत्ति। सो तो तुझमें है ही।

बापूके आशीर्वाद

श्री अन्नपूर्णा
स्वराज्य आश्रम
बारडोली
ताप्ती वैली रेलवे
बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९४३६) से

४१. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

सेगाँव
१३ अप्रैल, १९४२

चि० मणिलाल और सुशीला,

किशोरलालको लिखा तुम्हारा पत्र पढ़ा।

तुम दोनोंको अब स्वर्गवासीका[1] शोक करना छोड़ देना चाहिए। दोनों वहाँके अपने काममें डूबे रहो। झगड़ोंसे अलग रहना। जो निन्दा करे, उसे करने देना। आपसके झगड़े शान्त कर सको तो करना, और न कर सको तो दूर रहना।

तुम्हारा काम कठिन है, यह तो मैं इतनी दूर बैठे हुए भी सहज ही समझ सकता हूँ। उसमें से रास्ता निकालना। सभी दुःखोंके समय परमेश्वर तो हमारा रक्षक है ही। वह दिखाई नहीं देता, लेकिन है हमारे पास ही। यह विश्वास सँजो सको तो तुम कभी घबराओगे नहीं।

बा अब बहुत अच्छी है। और लोग भी अच्छे हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९२८) से

४२. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सेवाग्राम
१३ अप्रैल, १९४२

भाई वल्लभभाई,

तुम्हारा पत्र बहुत दिनों बाद मिला। मैं महादेवके नाम पत्र लिखता और लिखवाता रहा। परन्तु तुम तो राजधानीमें ही चिपक गये। ठीक है। अच्छा किया।

आँतें अभी ठिकानेपर नहीं आ रही हैं, यह जानकर आश्चर्य नहीं हुआ। उन्हें लम्बे आरामकी जरूरत है।

१. यहाँ आशय सुशीलाके पिता, नानाभाई इ० मशरूवालाकी मृत्युसे है।

लगता है, जवाहरलालने तो अब अहिंसाको तिलांजलि दे दी है। तुम अपना काम करते रहना। लोगोंको सँभाला जा सके तो सँभालो।

आजका उसका भाषण[1] भयंकर लगता है। उसे लिखने की सोच रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

सरदार वल्लभभाई पटेल
६८, मैरीन ड्राइव
बम्बई

चि० मणि,

तुम्हारी चिट्ठी भी मिली। वनुसे[2] कहना कि उसका पत्र मिल गया।

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–२ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २७२

४३. पत्र : मीठूबहन पेटिटको

१३ अप्रैल, १९४२

चि० मीठूबहन,

तुम्हारा पत्र मिला। बा जानेको राजी हुई तो मैं भेज दूंगा। लेकिन लगता है, ऐसे समय वह नहीं जायेगी। जो हो, मैं उससे बात तो करूँगा। उसे तुम्हारे यहाँ भेजने में मुझे कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती। तुम मजेमें होगी।

बापूके आशीर्वाद

श्री मीठूबहन
कस्तूरबा आश्रम
डाकखाना मरोली बाजार
बरास्ता नवसारी
बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २७२०) से

१. जवाहरलाल नेहरूने लोगोंसे जापानी आक्रमणकी स्थितिमें सम्पत्ति-ध्वंसकी नीति अपनाने और छापामार-युद्ध करने के लिए कहा था।

२. वनमाला न० परीख

४४. पत्र : चिमनलाल न० शाहको

१३ अप्रैल, १९४२

चि० चिमनलाल,

प्रभाशंकरको[1] जमीन देनेको मेरा मन बिलकुल नहीं कहता। लेकिन अगर वह पैसा खर्च करे तो घरपर उसका कोई हक स्वीकार किये बिना हम उसके लिए वह जरूर बनवा सकते हैं। चम्पाने[2] जो-जो सुधारने और बढ़ाने की माँग की है, वह सब उसीके खर्चेसे कर देना ज्यादा सुभीतेका होगा। चम्पा तथा उसके बच्चोंको आश्रय देना मेरा कर्त्तव्य है और आश्रमका भी। इसलिए इसे सामान्य नियम नहीं बनाया जायेगा। सामान्य नियम तो यही है कि किसीको न बसाया जाये।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६०८) से

४५. एक पुर्जा

१३ अप्रैल, १९४२

समर्पण सिर्फ ईश्वरको ही किया जा सकता है, मनुष्यको कदापि नहीं। इसलिये तुम्हारा समर्पण मुझको नहीं हो सकता है और न मैं स्वीकार कर सकता हूं। मैं संपूर्ण नहीं हूं, जीवनमुक्त नहीं हूं। मुझे साक्षात्कार नहीं हुआ है। लक्ष्य है। जब पहुंचुंगा तब दुनिया जानेगी।

बापूकी छायामें, पृ० २९२

१. प्रभाशंकर मेहता, रतिलाल मेहताके ससुर
२. रतिलाल मेहताकी पत्नी

४६. पत्र : विद्यावतीको

१३ अप्रैल, १९४२

चि० विद्या,

तुमारा खत मिला। वर-वधूको[1] मेरे और बा के आशीर्वाद। जोगेन्द्र[2] अच्छे हों।

बापुके आशीर्वाद

राणी विद्यावती
टी० आर० एन० सान्याल बिल्डिंग
११ ब्लाक, जोगेन्द्र पाठक रोड
लखनऊ

मूल पत्रसे : रानी विद्यावती पेपर्स। सौजन्य : राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय

४७. बंगालमें संकट[3]

बंगाल साम्प्रदायिक दंगोंसे पीड़ित रह चुका है, आज वह अकालसे पीड़ित है और अब जापानी हमलेका खतरा उसके सामने है। फौजी तैयारियोंका होना अनिवार्य है। इसका मतलब है ग्रामवासियोंकी बेदखली। चितपुरके नजदीक गाँवों को खाली करानेकी जो कार्रवाई की जा रही है उसका सजीव वर्णन सतीश बाबूने मुझे भेजा है। तेंतीस गाँव बहुत थोड़ समयका नोटिस देकर खाली कराये गये हैं। नोटिसोंपर १ अप्रैलकी तारीख डाली गई थी, २ अप्रैलको वे दिये गये और ४ अप्रैलको गाँववालोंको अपने गाँव खाली करने थे। ४ तारीखको वहाँ फौजें दाखिल हुईं। एक गाँवमें तो जिस रोज फौज दाखिल हुई उसी रोज लोगोंको नोटिस भी मिला। निवासियोंको उनके यूनियन-कर के अनुसार १० रुपयेसे १०० रुपये तक स्थानान्तरण खर्च दिया गया है। मुआवजेकी रकम अभी तय होनी है, और बादमें दी जायेगी। घर-बार छोड़नेके लिए बनाये गये नियम खूब विस्तृत और पढ़ने में माकूल लगते हैं। मगर नियम कितने ही माकूल क्यों न हों, अचानक घर छोड़ने में कष्ट अनिवार्य है, और चूँकि नियमोंको अमलमें लानेका काम अनेक छोटे अधिकारियों के हाथोंमें होगा इसलिए ग्रामवासियोंके साथ इन्साफका बरताव होगा ही, इसका कोई

१. विद्यावतीके पुत्र और पुत्रवधू
२. विद्यावतीके पुत्र
३. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

भरोसा नहीं। इन हालातमें सतीश बाबू-जैसे कार्यकर्त्ता ज्यादासे-ज्यादा यही कर सकते हैं कि लोगोंको हिम्मत बँधायें। उनका ठोस योगदान तो यही होगा कि वे ग्राम-वासियोंको अनिवार्य कष्टोंका शान्ति और वीरताके साथ सामना करना और अपने अन्दरसे ही तसल्ली प्राप्त करना सिखायें। अगर तथाकथित तसल्ली दिलानेवाले उनके दिलोंमें व्यर्थकी निराशा पैदा न करें तो वे ऐसे वक्तमें अपने सर्वोत्तम गुणोंका परिचय देंगे और बुरीसे-बुरी स्थितिका भी हिम्मतके साथ सामना करेंगे। इसका मतलब यह नहीं कि अधिकारी लोग गरीबोंके कष्टोंके प्रति हृदयहीन बन जायें। अगर फौजी रिसालोंको वहाँ रखना था जहाँ कि अचानक उन्हें लाया गया है, तो वे इस मामले में क्या कर सकते थे, मैं नहीं जानता। सामान्य लोग इस बातका निर्णय नहीं कर सकते कि फौजी अफसर पहलेसे ही इस चीजका अन्दाज लगाकर इसकी तैयारियाँ समयसे कर सकते थे या नहीं।

सेवाग्राम, १४ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १९-४-१९४२

४८. पत्र: मगनभाई प्र० देसाईको

सेवाग्राम

१४ अप्रैल, १९४२

चि० मगनभाई,

तुम्हारे और नानावटीके बीच हुए सारे पत्र-व्यवहारको मैं पढ़ गया हूँ। यह निश्चय किया गया है कि जबतक नई व्यवस्थापर सुचारु रूपसे काम नहीं होने लगता, तबतक मुझे ही तुम्हें लिखना होगा। तुम्हें मैंने ब्योरेवार जो पत्र लिखा था वह तो तुम्हें याद होगा न? इतने सारे प्रचारकोंको क्या तुम सँभाल सकोगे? इस नये कार्यमें तुम्हारी अभिरुचि है या मैं चाहता हूँ इसलिए तुम यह बोझ उठानेके लिए तैयार हो गये हो? कार्य महत्त्वपूर्ण है और मुझे लगता है कि इसके भारी परिणाम होंगे।

इसके साथ मैं नई योजनाकी रूपरेखा[1] भेज रहा हूँ। इसमें संशोधन-परिवर्तनका जो सुझाव देना चाहो, देना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

नानावटीके लिए आज एक पुस्तिका तैयार की है। उसकी एक प्रति तुम्हें भी भेजूंगा।

गुजरातीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१. सूतकी मुद्राके बारेमें, देखिए "सूतकी मुद्राका महत्त्व", पृ० ४७-४८।

४९. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको

१४ अप्रैल, १९४२

चि० पुरुषोत्तम,[1]

तेरा पत्र मिला। तूने एक तिहाई जीवन व्यतीत कर लिया। अब बाकी दो-तिहाई भी अच्छी तरह बिताना। तेरी सेवा उत्तरोत्तर बढ़ती रहे। 'रामायण' का पाठ प्रार्थनामें शामिल कर लिया, अच्छा किया। छन्द, चौपाई आदि कहना ठीक सीख लेना। अर्थ भी ठीक समझना। गांधी-परिवारमें 'रामायण' का बड़ा स्थान रहा है। परमानन्द गांधींका[2] कंठ बहुत मधुर था। उन्हें लगभग पूरी 'रामायण' याद थी। वे 'रामायण' के गूढ़ अर्थको समझते थे। उनका-सा कंठ मैंने और नहीं सुना। तू भी उन्हींके समान बन।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से

५०. पत्र : हरिइच्छा कामदारको

१४ अप्रैल, १९४२

चि० हरिइच्छा,

तेरा पत्र मिला। फिलहाल तो उसे जहाँ रख दिया है, वहीं रहने दे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७४७४) से। सी० डब्ल्यू० ४९२० से भी; सौजन्य : हरिइच्छा कामदार

१. गांधीजी के भतीजे नारणदास गांधीके पुत्र
२. गांधीजी के चचेरे भाई

५१. पत्र : सुरेन्द्रराय मेढको

१४ अप्रैल, १९४२

चि० सुरेन्द्र मेढ,[1]

तुम्हारा पत्र मिला। इस बार तुमने वहाँकी खबरें बिलकुल नहीं दीं। 'इंडियन ओपीनियन' यहाँ नहीं आने दिया जाता। पत्र भी क्वचित ही आते हैं। यदि भाई हमीद यहाँ मेरे पास आयेंगे तो मुझसे जो हो सकेगा, करूँगा। वैसे, ऐसे मामलोंमें मेरी कुछ बहुत चलती नहीं। फिर भी कोशिश करूँगा।

इन दिनों यहाँ खादी अथवा ऊनका माल कम मिलता है। इतना नहीं मिलता कि बाहर भेजा जा सके।

बा की तबीयत ठीक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९२९) से

५२. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सेवाग्राम
१४ अप्रैल, १९४२

भाई वल्लभभाई,

तुम्हारा फिर कोई पत्र नहीं। प्रोफेसरने[2] सारी बात[3] सुनाई। तुम्हारा स्वास्थ्य जाने लायक न हो तो इलाहाबाद मत जाना।[4] परन्तु तुम्हें अपने विचार उन्हें बता देने चाहिए। यदि कांग्रेस हिंसाकी नीति अपनाये तो मेरे खयालसे तुम्हें उससे निकल जाना चाहिए। यह समय ऐसा नहीं है कि कोई अपने विचार दबाकर बैठा रहे। बहुत-सी बातोंमें काम उलटा हो रहा है। इसे देखते-भर रहना ठीक नहीं मालूम होता — फिर भले ही लोग निन्दा करें या प्रशंसा।

मैं चाहता हूँ कि 'हरिजन' में मैं जो लिख रहा हूँ उसे तुम ध्यानसे पढ़ो।

१. दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजी के एक सहयोगी
२. जे० बी० कृपलानी
३. क्रिप्सके साथ बातचीतके बारेमें
४. कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकके लिए

उड़ीसामें एक तरफ साम्यवादी छापामार लड़ाईकी तैयारी कर रहे हैं, और दूसरी तरफ अग्रगामी दलवाले [फॉरवर्ड ब्लॉक] जापानको मदद देनेकी तैयारी कर रहे दीखते हैं। लेकिन ये दोनों अफवाहें हैं। कोई बात निश्चित नहीं है। परन्तु दोनों चीजें सम्भव हैं। उड़ीसापर हमला होने की बहुत सम्भावना मालूम होती है। सरकारने वहाँ काफी सेना इकट्ठी कर ली है।

तुम्हारी तबीयत कैसी है? वे साधु क्या कहते हैं? वनु कैसी है? उसे कोई फायदा होता नहीं दिखाई देता।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

पाटिलको[1] [ग्राम] उद्योग संघमें रखने की बात चल रही है। क्या उन्हें वेतन देना पड़ेगा? क्या देना पड़ेगा? उन्हें महाराष्ट्रकी जिम्मेदारी सँभालनी है।

बापू

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–२ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २७३-७४

५३. खादी और ग्रामोद्योग[2]

प्र० : आपने कई बार कहा है कि खादी व अन्य ग्रामोद्योग एक-दूसरेके पूरक हैं। परन्तु दोनोंके विकासकी दृष्टिसे उनके विशेषज्ञोंको अलग-अलग मण्डल बनाकर काम करने की नीति आपने रखी है। नतीजा यह आया है कि खादीके कार्यकर्त्ता देहातमें जाने पर भी ग्रामोद्योगका काम क्वचित् ही कर पाते हैं। खादी-उत्पादनके कामसे उन्हें उतनी फुरसत ही नहीं कि वे अन्य कामोंमें हाथ बँटायें। अभी-अभी आपने खादी व ग्रामोद्योग दोनोंके सहकारी भण्डार चलाने की सूचना दी है। अब समय पल्टा खा रहा है। दूर-दूर माल भेजना या दूरसे माल मँगवाना दुश्वार हो गया है। क्या इस दशामें खादी और ग्रामोद्योगके केन्द्रोंको एक कर देना ठीक नहीं होगा? खादी-उत्पादन में लगे कार्यकर्त्ता दूर-दूर खादी भेजने की चिन्ता छोड़कर मर्यादित सीमाके लिए ही खादी बनवायें और उसी सीमाके लिए ग्रामोद्योगका भी काम करें, यह ज्यादा हितावह नहीं होगा?

खादी-कार्यकर्ताओंको यह कहा जाता है कि वे चरखेके साथ कारीगरोंके घरोंमें प्रवेश करें। कारीगरोंको शिक्षा दें। उनमें ग्रामोद्योगी भावना जाग्रत करें। स्वच्छता,

१. एल० एम० पाटिल

२. यह *सर्वोदय* में भी प्रकाशित हुआ था और इसका अंग्रेजी रूपान्तर ३१-५-१९४२ के *हरिजन* में प्रकाशित हुआ था।

आरोग्य और उनके रहन-सहनमें सुधार करें। पर, संघकी नीतिके अनुसार कार्यकर्त्ता की हालत तो यह है कि खादी-उत्पादनके लेन-देन और हिसाब-किताबके कामसे उसे फुरसत ही नहीं। रात-दिन तन-मनसे संघका काम करते हुए यदि कारीगरोंके घरोंमें वह सुधारकका काम नहीं कर सका तो उसमें कार्यकर्त्ताको आप कितना दोष देंगे? वह क्या करे?

उ० : प्रश्न अच्छा है। खादी-कार्यकर्त्ताका सारा समय यदि खादीमें ही जाता है तो वह न दूसरे ग्रामोद्योगको सँभाल सकेगा, न ग्राम-सुधारको। तव तो दूसरे उद्योगोंको देखनेवाला अन्य सेवक होगा और ग्राम-सुधारका तीसरा। मेरा कुछ खयाल है सही कि सुव्यवस्थित ग्राममें एक ही सेवक तीनों काम देखेगा। जैसे खादी-कामके लिए सामान बांटना, सूतका लेन-देन करना, खादी बेचना आदि। इसमें दो घण्टेसे ज्यादा नहीं जाने चाहिए। ग्रामोद्योगमें उससे भी कम। और बाकी समय तालीम और ग्राम-सुधारमें जायेगा। ऐसा होता नहीं है, क्योंकि खादी-सेवकोंका समय लोगोंको कातनेका काम समझाने में और फालतू, लेकिन खादीके ही, कामोंमें जाता है। ऐसे ही ग्रामोद्योग का। यह ठीक है कि अव समय आया है जब खादीका बाजार वह जिधर पैदा होगी, वहीं प्राय: होगा। और ग्रामोद्योगका भी ऐसा ही होगा। तव तो एक खादी-सेवक खादीका, दूसरे ग्रामोद्योगोंका और सुधारका भी काम करेगा। आज तो इतना ही कहा जाये कि ये तीनों कार्य परस्पर-विरोधी कभी नहीं हैं। योग्यताके मुताबिक एक-दूसरेके साथ उन्हें मिल ही जाना है। यह काम कृत्रिमतासे नहीं होगा, स्वाभाविकतासे होगा। वस्तुस्थिति जैसी है, उसके लिए मैं किसी को दोष देना नहीं चाहता हूँ। मेरे पास गुण-दोषकी तुलना करनेका सामान भी नहीं है। वर्त्तमान स्थिति स्वाभाविक-सी लगती है। हमारी बुद्धि जहाँतक जा सकी है, गई है। उसके विकासके लिए तो विद्यालय निकला है। उसमें से पता चल जायेगा कि सव प्रवृत्तियोंका सम्मिश्रण कैसे हो सकता है।

सेवाग्राम, १५ अप्रैल, १९४२

खादी-जगत्, ३-५-१९४२

५४. पत्र : चुन्नीलालको

१५ अप्रैल, १९४२

भाई चुन्नीलाल,

चि० पुष्पा और चि० कंचनको उनके विवाहके उपलक्ष्यमें आशीर्वाद। दोनोंका विवाहित जीवन आदर्श बने।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००९३) से

५५. पत्र : ए० एस० पटवर्धनको

सेवाग्राम
१५ अप्रैल, १९४२

भाई पटवर्धन,

मेरी स्पष्ट राय है कि भैय्याको[1] पैसेका[2] ट्रस्ट शीघ्रातिशीघ्र कर देना चाहिये। उसके उपयोगके लिये पंच नियत होना चाहिये।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

५६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१५ अप्रैल, १९४२

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारा खत मिला। तुम्हारी कल्पना ठीक है। इंग्रेजोंकी कड़ी टीका जमनालाल जी की जीवनीमें अयोग्य जंचती है।[3] ऐसी टीकाको स्थान तो है, लेकिन इसमें नहीं।

जमनालाल राजप्रकरणमें कभी प्रवेश न करते अगर नीतिने उसको प्रलोभन नहीं दिया होता। इंग्रेजोंके द्वेषने उनके जीवनमें बहुत कम हिस्सा लिया था, ऐसा मेरा अभिप्राय है। कैसे भी हो, तुम्हारे इस लेखमें ऐसी टीका अनुचित लगती है। और तुम्हारे भविष्यके कार्यमें बाधा डालनेवाली है।

बापूके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ८०५८) से। सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. अन्नासाहब सहस्रबुद्धे
२. तिलक विद्यालयकी रकम
३. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", पृ० १८-१९।

५७. पत्र: जवाहरलाल नेहरूको

सेवाग्राम, वर्धा
१५ अप्रैल, १९४२

चि० जवाहरलाल,

प्रोफेसर यहां आये है। उनसे सब सुना। तुम्हारा प्रेस इन्टरव्यु भी सुना। मैं देखता हूं कि हमारे विचारोंमें तो भेद था ही, लेकिन अब अमल में हो रहा है। इस हालतमें वल्लभभाई वगैरा क्या करें? तुम्हारी नीति का स्वीकार किया जाये तो कमिटी जैसी आज है ऐसे नही रहनी चाहीये।

ज्यों-ज्यों मै सोचता हूं मुझे लगता है कि तुम कुछ गलती कर रहे हो। अमेरीकन लश्कर हिंदुस्तान में आवे और हम गैरिला लड़ाईमें पड़े इसमें मै कुछ भी भला नहीं पाता हूं।

मेरा धर्म है मैं तुम्हें सावधान करूं।

इंदु, फिरोज ठीक होंगे।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

मैंने कल सुना कि उत्कलमें फोरवर्ड ब्लोकवाले हथियारबंद है और कोम्युनिस्ट गेरिला लड़ाईके लिये। सत्य कितना है मैं नहीं जानता।

मूल पत्रसे: गांधी-नेहरू पेपर्स। सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

५८. भेंट: 'हिन्दू' के प्रतिनिधिको

वर्धा
१५ अप्रैल, १९४२

मैंने गांधीजी से पूछा कि क्या आप दिल्लीमें जो बातचीत चल रही है उसके सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं। उन्होंने कहा:

मुझे कुछ नही कहना है। मै कार्य-समितिकी बैठकको[1] बीचमें ही छोड़कर चला आया था और फिर मैं तो युद्ध-मात्रका विरोधी हूँ। लेकिन क्या मेरा उनके साथ रहना जरूरी था?

१. कार्य-समितिकी बैठक दिल्लीमें २९ मार्चसे ११ अप्रैल, १९४२ तक हुई थी। गांधीजी ५ अप्रैलको ही दिल्लीसे वर्धाके लिए चल दिये थे।

जब मैंने इस बातकी ओर संकेत किया कि कार्य-समितिकी बैठक बीचमें ही छोड़कर चले आने का जो कारण उन्होंने बताया वह बहुत लोगोंको विश्वासप्रद नहीं लगा, तो गांधीजी ने कहा :

जो लोग विश्वास नहीं करना चाहते उन्हें शायद वह विश्वासप्रद न लगे। लेकिन वह शत-प्रतिशत सच है, और वह अपनी पत्नीकी अपेक्षा आचार्य नरेन्द्रदेवकी[1] खातिर ज्यादा था, क्योंकि मैंने फोनपर सुन लिया था कि मेरी पत्नीकी तबीयत बिलकुल ठीक है। लेकिन आचार्य नरेन्द्रदेवके बारेमें खबर चिन्ताजनक थी और मौलाना आजादने मुझे बड़े बेमनसे आने दिया।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १६-४-१९४२

५९. पत्र : प्रेमा कंटकको

सेवाग्राम
१६ अप्रैल, १९४२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला।

शंकररावकी धोती देखकर सब ईर्ष्या करते हैं।[2] तू जो व्यवस्था करे वह स्वीकार है।[3]

शंकररावकी गिरफ्तारीकी सम्भावना नहीं है।[4] अपने लेखोंमें मैं भरसक विचार भरता हूँ। तू ध्यानपूर्वक उन्हें पढ़ना और न समझे तो पूछना।

शंकररावको जो शंका थी उसका उत्तर दे दिया है। वह तूने पढ़ा होगा।

अन्तमें तो सबको, जैसा मैंने लिखा है, अपनी जिम्मेदारीपर ही काम करना है। जिस हदतक हम गाँवोंमें फैलेंगे उसी हदतक सुशोभित होंगे, इस बारेमें मुझे शंका नहीं है।

सूत-मुद्राके बारेमें मेरी योजनाको समझना। यह 'खादी-जगत्' में प्रकाशित होगी।[5]

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ६८६४)से। जी० एन० १०४२५ से भी; सौजन्य : प्रेमा कंटक

१. एक समाजवादी नेता, जो उन दिनों काशी विद्यापीठके आचार्य थे।

२. शंकरराव देवके काते सूतकी बनी और प्रेमा कंटक द्वारा गांधीजी को भेंट की गई।

३. प्रेमा कंटकने गांधीजी को सूचना दी थी कि वे अपने काते हुए सूतसे बनी दो धोतियोंके साथ, जो वे गांधीजी को नियमसे भेजती थीं, शंकरराव देवके काते हुए सूतसे बनी दो चादरें भी प्रत्येक वर्ष देंगी।

४. सविनय अवज्ञा करने के कारण

५. देखिए "सूतकी मुद्राका महत्त्व", पृ० ४७-४८।

६०. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

सेवाग्राम
१६ अप्रैल, १९४२

भाई घनश्यामदास,

भाई शांतिकुमार, रायबहादुर वीरजी शेठ और भाई दादाजन भी आये हैं। बर्मा में करीब आठ लाख आदमी पड़े है। वे पीड़ित है। उनको लाना हमारा धर्म है। ये भाई चाहते है एक खास कमिटी बनाई जाय उसमें तुम्हारा नाम भी होना चाहिये। जो बन सके वह किया जाय।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ८०५७) से। सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

६१. सूतकी मुद्राका महत्त्व[1]

मैं देखता हूँ कि सूतकी मुद्राके बारेमें अपनी कल्पना साथियोंको मैं पूरी तरह समझा नहीं सका हूँ। यहाँ समझानेका प्रयत्न करता हूँ। धातुके सिक्के या कागजके नोट सच्ची मुद्रा नहीं हैं, क्योंकि उनकी कीमत कृत्रिम है। पाँच रुपये का नोट एक पैसेका भी कागज का टुकड़ा नहीं है। उसपर सरकारी मुहर है, इसलिए उसकी कीमत है। फिर भी यह मुद्रा या ऐसी मुद्रा बड़े पैमानेपर व्यापार करने के लिए आवश्यक है। खादी और अन्य ग्रामोद्योगोंके पीछे उलटी कल्पना है। हम बड़े पैमानेपर व्यापार नहीं चाहते हैं। हमारी दृष्टि सात लाख देहातोंमें से कोई एक गाँव तक सीमित है। हम उस देहातकी स्वतन्त्रता ऐसी चाहते हैं, जैसी ७ लाख की, और सारे जगतकी। इसलिए हमारे देहात कमसे-कम खाने-पहनने में यथासम्भव स्वावलम्बी होने चाहिए।

ऐसे देहातमें पारस्परिक व्यवहारके लिए धातुकी या अन्य किसी कृत्रिम मुद्रा की आवश्यकता नहीं हो सकती है। हमारी मुद्रा तो कोई ऐसी देहाती चीज होनी चाहिए जिसे हर कोई बना सकता है, जिसका आसानीसे संग्रह हो सकता है, और जिसका दाम हर रोज बदलता नहीं है। ऐसी वस्तु क्या हो सकती है? साबुन नहीं, तेल नहीं, तरकारी नहीं। इस तरह गिनते-गिनते खाली सूत रह जाता है। उसे सब उत्पन्न कर सकते है। उसकी हमेशा जरूरत रहती है। उसका संग्रह भली-भाँति हो

१. यह सबसे पहले *खादी-जगत्* के अप्रैल अंकमें प्रकाशित हुआ था।

सकता है। अगर सूतकी मुद्रा हम देहातोंमें प्रचलित कर सकें तो देहातकी बहुत उन्नति कर सकेंगे और वे शीघ्रतासे स्वावलम्बी बन सकेंगे। सूतकी मुद्राके सभी लाभ बतलाने का यह प्रयत्न नहीं है। उसका अर्थ क्या है और वह कैसे काम करेगा, यही बताना है।

इसके लिए एक दूकानकी आवश्यकता रहती है, जिसमें देहातियोंके नित्य उपयोग की चीजें मिल सकें। यह बात निरपवाद होनी चाहिए कि देहाती उस दूकानसे कोई भी वस्तु सूत देकर ही खरीद सकें। इसका परिणाम यह होगा कि उक्त दूकानोंसे माल लेने के लिए लोगोंको सूत कातना ही होगा। इन दूकानोंमें अमुक जातिका ही और अमुक मापोंमें ही सूत लिया जायेगा। इसलिए देहाती जो सूत कातेंगे वह अच्छी तरहसे बाँधा हुआ होगा। और क्योंकि सूतसे अनेक चीजें खरीदी जा सकती हैं, इसलिए सूतका एक धागा भी व्यर्थ नहीं जाने दिया जायेगा। सूतकी प्रतिष्ठा एकाएक बढ़ जायेगी। सूतके बदलेमें जो माल मिलेगा वह अच्छा होगा और महँगा नहीं होगा। एक बच्चा भी उस दूकानसे निर्भय होकर माल खरीद सकेगा; क्योंकि जैसा-तैसा सूत दूकानमें नहीं लिया जा सकेगा, इसलिए आरम्भमें इस कामके लिए एक सूत जाँचनेवाले की आवश्यकता होगी, जिसका काम सूतका माप जाँचने का होगा। सूत मैला न हो जाये, इसलिए उसे कागज या अन्य किसी वस्तुमें रखने की आवश्यकता होगी। सूत जाँचनेवाले के द्वारा कागजमें बन्द किया हुआ सूत दूकानवाले आँख मूँद कर ले लेंगे।

सूत जाँचनेवाले का और दूकानदारका सम्बन्ध चरखा-संघ जैसी संस्थाके साथ होने पर सूत नित्य संघके दफ्तरमें जायेगा। वहाँसे बुननेवालोंके हाथोंमें।

ऐसी दूकानोंमें नुकसानकी गुंजाइश नहीं है। वहीं बिकनेवाली वस्तुओंके दामोंमें बहुत घट-बढ़ होने की सम्भावना नहीं होगी। दूकानमें ऐसी ही वस्तु करीब-करीब रखी जायेगी जो देहातमें ही मिल सके। ऐसी वस्तुओंकी संख्या धीरे-धीरे बढ़ती ही रहेगी।

इस योजनामें प्रत्येक घर टकसाल बन जाता है, और जितने चाहिए उतने पैसे (सूत) बना सकता है। साफ है कि ऐसी दूकानोंमें मादक पदार्थ, विदेशी पदार्थ, नुकसानकारक पदार्थ नहीं बिक सकते हैं। इसलिए सूतका सम्बन्ध जहाँतक बन सके पवित्र होगा।

सेवाग्राम, १७ अप्रैल, १९४२

हरिजन-सेवक, ३-५-१९४२

६२. पत्र: चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

१७ अप्रैल, १९४२

प्रिय सी० आर०,

तो तुम मुझे एक दिन भी नहीं दे सके! मान लो तुम्हें दिल्लीमें एक दिन और लगाना पड़ता तो। लेकिन कब क्या करना है इसे तुम बेहतर जानते हो। मैं आशा करता हूँ कि तुम इलाहाबाद जाते हुए कमसे-कम एक दिन सेवाग्रामके लिए निकाल लोगे।

सप्रेम।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०८५) से

६३. पत्र: एस० सत्यमूर्तिको

१७ अप्रैल, १९४२

प्रिय सत्यमूर्ति,

आपका पत्र मिला।

आसन्न संकटका मुकाबला अहिंसाके द्वारा किस तरह किया जा सकता है, यह दिखानेके लिए मैं जो-कुछ भी कर सकता हूँ, कर रहा हूँ। लेकिन अगर कांग्रेसकी नीति पल-पल बदलती रहे तो मैं लाचार हूँ।

हिन्दू-मुस्लिम समझौता किस तरह कराया जा सकता है, मैं नहीं जानता। हमारी भेंट आसानीसे हो सकती है। मुझे केवल उनके स्थान तक चलकर जाना है। लेकिन वहाँ जाकर मुझे करना या कहना क्या है? यदि मैं वह जान लूँ तो मैं जाऊँ। मुझे तो मिलने का कोई आधार दिखाई नहीं देता।

वा बिलकुल ठीक है। धन्यवाद।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजीसे: एस० सत्यमूर्ति पेपर्स; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय। सी० डब्ल्यू० १०३७१ से भी

६४. पत्र : कृष्णदास शाहको

१७ अप्रैल, १९४२

भाई कृष्णदास,

तुम्हारा पत्र मिला। आयुर्वेदमें मेरा विश्वास तो है, लेकिन जब वैद्योंका कोई ठौर-ठिकाना नहीं है तो मैं क्या करूँ? तो भी मैं उनसे सम्बन्ध रखता हूँ। उनसे जो मिल सकता है, लेता भी हूँ। लेकिन बहुत कम मिल पाता है।

बापूके आशीर्वाद

श्रीयुत कृष्णदास शाह
भारतीय उद्योग प्रचार
१४ भास्कर लेन, तीसरी मंजिल
भूलेश्वर, बम्बई

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११५३६) से

६५. पत्र : कृष्णचन्द्रको

१८ अप्रैल, १९४२

चि० कृ० चं०,

चावल के बारे में मैं तो अब भी स्पष्ट हूं। लेकिन जब औरतों को चाहिये वही तो देना चाहिये। पीछे मरदों का क्या? उनको पूछकर ही . . .[1] चाहिये। ऐसी चीजों में विवेक, उदारता इ० का उपयोग बहुत है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४२२) से

१. यहाँ एक शब्द अस्पष्ट है।

६६. राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी दस प्रश्न

प्रश्न १ : फारसी लिपिका जन्म हिन्दुस्तानमें नहीं हुआ। मुगलोंके राज्य-कालमें यह हिन्दुस्तानमें आई, जैसे अंग्रेजोंके राज्य-कालमें रोमन लिपि आई। लेकिन राष्ट्रभाषाके लिए जब हम रोमन लिपिका प्रचार नहीं करते तो फिर फारसी लिपिका प्रचार हमें क्यों करना चाहिए?

उत्तर : अगर रोमन लिपिने फारसी लिपिके समान ही हिन्दुस्तानमें घर कर लिया होता तो आप जैसा कहते हैं वैसा ही होता। लेकिन रोमन लिपि तो मात्र मुट्ठी-भर अंग्रेजी पढ़े लोगोंकी रही है, जब कि फारसी करोड़ों हिन्दू-मुसलमान लिखते हैं। इस लिपिके लिखनेवालों तथा रोमन लिपिके लिखनेवालों की संख्या आपको खोज निकालनी चाहिए।

प्रश्न २ : अगर आप हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए उर्दू सीखनेको कह रहे हैं, तो हिन्दुस्तानके बहुतेरे मुसलमान उर्दू नहीं जानते। बंगालके मुसलमान बँगला बोलते हैं। महाराष्ट्रके मराठी बोलते हैं। गुजरातमें भी गाँवोंमें गुजराती बोलते हैं। दक्षिण हिन्दुस्तानमें भी तमिल वगैरह ही बोलते होंगे। ये सारे मुसलमान अपनी प्रान्तीय भाषासे मिलते-जुलते जो शब्द हिन्दुस्तानीमें होते हैं, उन्हें ज्यादा आसानीसे समझ सकते हैं। उत्तर भारतकी सभी भाषाएँ संस्कृतसे उत्पन्न हुई हैं, अतः उन भाषाओंमें बहुत समानता है। दक्षिण भारतकी भाषाओंमें भी संस्कृतके बहुत-से शब्द आ गये हैं। तो फिर इन सब भाषाओंके बोलनेवालों में अरबी-फारसी-जैसी अपरिचित भाषाओंके शब्दोंसे भरपूर उर्दूका प्रचार क्यों करना चाहिए?

उत्तर : आपके प्रश्नमें तथ्य अवश्य है, लेकिन मैं आपसे थोड़ा अधिक विचार करवाना चाहता हूँ। मुझे मान लेना चाहिए कि फारसी लिपि सीखनेके मेरे आग्रहमें हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यकी दृष्टि तो समाविष्ट है ही। देवनागरी तथा फारसी लिपि और इसी प्रकार हिन्दी तथा उर्दू भाषाके बीच झगड़ा बरसोंसे चला आ रहा है। अब उसने जहरीला रूप धारण कर लिया है। १९३५ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनने हिन्दीकी व्याख्यामें फारसी लिपिको स्थान दिया।[1] १९२५ में कांग्रेसने राष्ट्रभाषाको "हिन्दुस्तानी" नाम दिया,[2] दोनों लिपियोंकी छूट दी और इस तरह हिन्दी और उर्दू, दोनोंको राष्ट्रभाषा माना। इस सबमें हिन्दू-मुस्लिम एकताका हेतु तो था ही। यह

१. देखिए खण्ड ६०, पृ० ४८६-९७।
२. देखिए खण्ड २९, पृ० ३७२।

सवाल मैंने आज नया नहीं उठाया, मैंने तो इसे केवल मूर्त रूप दिया है, जो समयके अनुकूल भी है। अतः यदि हम राष्ट्रभाषाको पूर्णतया विकसित करना चाहते हैं तो हमें हिन्दी एवं उर्दूको तथा देवनागरी एवं फारसी लिपिको एक-जैसा स्थान देना होगा। आखिर तो जिसे लोग ज्यादा पचायेंगे, वही ज्यादा फैलेगी।

बहुतेरी प्रान्तीय भाषाओंका संस्कृतके साथ निकट-सम्बन्ध है और यह सच है कि भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके मुसलमान अपने-अपने प्रान्तकी भाषा बोलते हैं, और इसलिए यह भी ठीक है कि उर्दू और फारसी लिपिकी अपेक्षा देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा उन्हें आसान पड़ेगी। लेकिन यह कुदरती लाभ मेरी योजनासे जाता नहीं रहता। बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि मेरी योजनामें इसके साथ ही फारसी लिपि सीखने का लाभ भी जुड़ जाता है। आप इसे बोझ मानते हैं, इसलिए आपको यह कठिन मालूम होता है। लेकिन लाभ मानना या बोझ मानना, यह तो सीखनेवाले की वृत्तिपर निर्भर करता है। जिसमें देशप्रेम उमड़ रहा होगा, वह फारसी लिपि अथवा उर्दू भाषाको बोझ कभी नहीं मानेगा। फिर, मेरी योजनामें जबरदस्तीको तो स्थान ही नहीं है। जो लाभ समझेगा, वही दोनों लिपियाँ और दोनों भाषाएँ सीखेगा।

प्रश्न ३ : हिन्दुस्तानका बहुत बड़ा भाग देवनागरी लिपि जानता है, क्योंकि बहुत-सी प्रान्तीय भाषाओंकी लिपि नागरी है अथवा नागरीसे मिलती-जुलती है। पंजाब, सिन्ध और पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्तमें नागरीका प्रचार कम है। लेकिन क्या ये लोग आसानीसे नागरी नहीं सीख सकते?

उत्तर : इसका जवाब ऊपर दिया जा चुका है। सीमा-प्रान्तवालों तथा दूसरोंको भी देवनागरी तो सीखनी ही है।

प्रश्न ४ : भाषा मुख्य रूपमें तो बोलने के लिए है। बोलने और बातचीत करने के लिए लिपिकी जरूरत नहीं है। लिपि बहुत गौण चीज है। राष्ट्रभाषा यदि मातृभाषाकी लिपिके द्वारा सीखी जाये तो क्या वह अधिक आसानीसे नहीं सीखी जा सकती? और यदि ऐसा किया जाये तो राष्ट्रीय दृष्टिसे उसमें क्या नुकसान होगा?

उत्तर : आपका कहना सच है। मैं मानता हूँ कि अगर हिन्दी और उर्दू प्रान्तीय भाषाओंके द्वारा ही सिखाई जायें तो वे आसानीसे सीखी जा सकती हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि दक्षिण भारतमें ऐसा प्रयत्न हो रहा है, लेकिन वह ठीक पद्धतिके अनुसार नहीं हो रहा। मैं देखता हूँ कि आपका सारा विरोध इस मान्यतापर आधारित है कि लिपिकी शिक्षा बोझ-रूप है। मैं लिपिकी शिक्षाको इतना कठिन नहीं मानता। लेकिन प्रान्तीय लिपिके द्वारा राष्ट्रभाषाका प्रचार किया जाये तो उसमें मेरा कोई विरोध हो ही नहीं सकता। जहाँ लोगोंमें उत्साह होगा, वहाँ अनेक पद्धतियाँ साथ-साथ चलेंगी।

प्रश्न ५ : अगर हम मान भी लें कि जबतक पंजाब सिन्ध और पश्चिमोत्तर सीमाके लोग नागरी नहीं सीख लेते, तबतक उन लोगोंसे मिलने-जुलनेके लिए उर्दू

जानने की आवश्यकता है तो इसके लिए कुछ लोग उर्दू सीख लें। जो प्रचारक हैं, वे उर्दू सीख लें; सारे हिन्दुस्तानको उर्दू सीखने की क्या जरूरत है?

उत्तर : सारे हिन्दुस्तानके सीखने का यहाँ सवाल ही नहीं है। मैं मानता ही नहीं कि सारा हिन्दुस्तान राष्ट्रभाषा सीखेगा। जिन्हें राष्ट्रमें पर्यटन करना है और सेवा करनी है, उन्हींके लिए यह प्रश्न है। उनकी सेवाशक्ति दो भाषाएँ और दो लिपियाँ सीखने से बढ़ जायेगी, इतना आप स्वीकार कर लें तो आपका विरोध और आपकी शंका शान्त हो जायेगी।

प्रश्न ६ : राष्ट्रभाषा आजकल नागरी और उर्दू दोनों लिपियोंमें लिखी जाती है। जिसे जिस लिपिमें सीखना हो, उस लिपिमें सीख ले। प्रत्येकको अनिवार्यतः दोनों लिपियाँ जाननी ही चाहिए, यह आग्रह क्यों किया जाता है?

उत्तर : इसका भी एक ही जवाब है। मेरा आग्रह होते हुए भी उसे स्वीकार वे ही करेंगे जो उसमें लाभ देखेंगे, लेकिन एक ही लिपि और एक ही भाषासे जिन्हें सन्तोष हो जायेगा, वे मेरी दृष्टिमें आधी राष्ट्रभाषा जाननेवाले कहे जायेंगे। जिन्हें पूरा प्रमाणपत्र चाहिए वे दोनों लिपियाँ और दोनों भाषाएँ सीखेंगे। ऐसे लोगों की भी काफी संख्या देशमें होनी चाहिए, इससे आप इनकार नहीं करेंगे। अगर यह संख्या बढ़ती नहीं गई तो हिन्दी और उर्दूका सम्मिलन नहीं हो पायेगा, न कांग्रेसकी व्याख्याके अनुरूप हिन्दुस्तानी भाषा कभी बनेगी। हिन्दू और मुसलमान दोनों एक-दूसरेको आसानीसे समझ सकें, ऐसी भाषाका निर्माण होना सदैव वांछनीय है। यह स्वप्न हममें से बहुतेरे देख रहे हैं। किसी दिन वह सच भी होगा।

प्रश्न ७ : जो लोग राष्ट्रभाषा नहीं जानते, ऐसे गैर-हिन्दी प्रान्तोंके लोगोंके लिए एक साथ दोनों लिपियोंमें राष्ट्रभाषा सीखना क्या अधिक भार-रूप नहीं हो जायेगा? पहले एक लिपिके द्वारा अच्छी तरह सीख लें तो फिर दूसरी लिपि सीख लेना आसान होगा।

उत्तर : इसका पता तो अनुभवसे लगेगा। जो दो में से एक भी लिपि नहीं जानते, वे दोनों लिपियाँ एक साथ नहीं सीखेंगे, यह मैं मानता हूँ। वे अपनी इच्छा से पहली अथवा दूसरी लिपि पहले सीखेंगे और फिर बची हुई। शुरूकी पाठ्य पुस्तकोंमें शब्द दोनों में लगभग एक-जैसे ही होंगे। मेरी दृष्टिमें मेरी योजना एक महान और आवश्यक प्रयोग है। यह प्रयोग राष्ट्रकी शक्तिको बढ़ानेवाला सिद्ध होगा, तथा कांग्रेसके प्रस्तावको कार्यान्वित करने में इसका बहुत बड़ा हाथ होगा। अतः मुझे आशा है कि लाखों सेवक और सेविकाएँ इसका स्वागत करेंगे।

प्रश्न ८ : भाषाके कलेवरमें देश-कालकी परिस्थितिके अनुसार परिवर्तन होते ही रहेंगे। उसे कोई रोक नहीं सकता। अतः राष्ट्रभाषामें विदेशी भाषाओंके जो बहुत-से शब्द आ गये हैं और आकर रूढ़ हो गये हैं, वे अब निकाले नहीं जा सकते। लेकिन राष्ट्रभाषाकी लिपि तो परम्परासे नागरी ही चली आ रही है। बीचमें मुगल राज्यके समय फारसी लिपि आ गई थी। अब मुगल राज्य नहीं है, इसलिए जिस प्रकार

गुजराती-मराठीमें बहुत-से फारसी, अरबी तथा अंग्रेजी शब्दोंके होते हुए भी अपनी लिपि इन भाषाओंने नहीं छोड़ी है, उसी प्रकार राष्ट्रभाषाको भी विदेशी शब्दोंको कायम रखते हुए अपनी परम्परागत नागरी लिपिसे क्यों नहीं चिपके रहना चाहिए?

उत्तर: परम्परागत चीजको छोड़ने की बात यहाँ नहीं है; उसमें कुछ जोड़ने की बात है। मैं संस्कृत जानता होऊँ और उसमें अरबीको और जोड़ लूँ तो इसमें बुराई क्या है? हो सकता है, इससे संस्कृतको पुष्टि न मिले, अरबीको भी न मिले। लेकिन अरबीसे मेरा परिचय तो बढ़ ही जायेगा न? सद्ज्ञानकी वृद्धिसे भी क्या कभी द्वेष हो सकता है?

प्रश्न ९ : भारतीय भाषाओंके उच्चारणको व्यक्त करने की सबसे अधिक योग्यता नागरी लिपिमें है, और आजकलकी फारसी लिपि इसके लिए बहुत ही दोषमय है, क्या यह सच नहीं है?

उत्तर: आप ठीक कहते हैं। लेकिन आपके विरोधमें आपके इस प्रश्नके लिए स्थान नहीं है। क्योंकि जो चीज है, उसका तो विरोध है ही नहीं। परस्पर वृद्धि करने की बात है।

प्रश्न १० : राष्ट्रभाषाकी आवश्यकता क्या है? एक मातृभाषा और दूसरी विश्व-भाषा, क्या ये दो भाषाएँ काफी नहीं हैं? इन दोनों भाषाओंके लिए यदि एक रोमन लिपि हो तो क्या बुरा है?

उत्तर: आपका यह प्रश्न आश्चर्यमें डालता है। अंग्रेजी विश्व-भाषा तो है ही, लेकिन क्या यह हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा हो सकती है? राष्ट्रभाषा तो लाखों लोगोंको जाननी ही चाहिए। वे अंग्रेजी भाषाका बोझ कैसे उठा सकेंगे? हिन्दुस्तानी स्वाभाविक रूपसे यहाँकी राष्ट्रभाषा है, क्योंकि वह लगभग इक्कीस करोड़ लोगोंकी मातृभाषा है। इक्कीस करोड़की भाषाको बाकी लोगोंमें से अधिकांश सरलतासे समझ सकें, यह सम्भव है। लेकिन अंग्रेजी तो एक लाखकी भी मातृभाषा मुश्किलसे कही जा सकती है। अगर हिन्दुस्तानको एक राष्ट्र होना हो, अथवा यदि हिन्दुस्तान एक राष्ट्र है तो हिन्दुस्तानको एक राष्ट्रभाषा अवश्य चाहिए। अतः मेरी दृष्टिमें तो अंग्रेजी विश्व-भाषाके रूपमें ही रहे, इसीमें उसकी शोभा है; और रोमन लिपि भी विश्व-लिपिके रूपमें रहे, इसीमें उसकी शोभा है और रहेगी — हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषाकी लिपिके रूपमें कभी नहीं।

सेवाग्राम, १९ अप्रैल, १९४२

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २६-४-१९४२

६७. हिन्दुस्तानमें विदेशी सिपाही

मेरे पत्र-व्यवहारमें पूछे गये अनेक सवालोंमें एक सवाल हिन्दुस्तानमें विदेशी सिपाहियोंके आगमनका है। हमारे यहाँ विदेशी युद्धबन्दी काफी हैं। अब ऐसा दिखाई देता है कि अमेरिकासे, और सम्भवतः चीनसे भी, निरन्तर सिपाहियोंका ताँता लगेगा। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मैं इस घटनासे अविचलित नहीं रह सकता। क्या हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंमें से असंख्य सैनिक तैयार नहीं किये जा सकते? क्या वे लड़ने में दुनियाकी किसी भी फौजकी टक्करके नही होंगे? तो फिर ये विदेशी सिपाही क्यों? हम जानते हैं कि अमेरिकी सहायताके क्या माने हैं। आखिर इसके माने यही होंगे कि ब्रिटिश हुकूमतके साथ-साथ अमेरिकी हुकूमत नहीं तो अमेरिकी प्रभाव अवश्य ही हमारे देशमें घुस आयेगा। मित्र राष्ट्रोंकी सेनाओंकी सम्भावित विजयके लिए इतनी भारी कीमत देना एक महँगा सौदा है। हिन्दुस्तानकी रक्षा के नामसे की जानेवाली इस तैयारीमें मुझे हिन्दुस्तानकी आजादीकी झलक कहीं नहीं दिखलाई देती। यह तैयारी तो शुद्ध रूपसे ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाके लिए ही है, चाहे इसके विपरीत कुछ भी क्यों न कहा जाये। अगर अंग्रेज सिंगापुरकी तरह हिन्दुस्तानको उसके अपने हालपर छोड़ दें तो अहिंसक हिन्दुस्तान कुछ भी खोयेगा नहीं। मुमकिन है कि जापानी हिन्दुस्तानके साथ कोई छेड़छाड़ न करें। अगर हमारे यहाँके मुख्य पक्ष आपसके झगड़ोंको सुलझा लें, जैसा कि सम्भवतः वे कर भी लेंगे, तो शायद हिन्दुस्तान शान्ति-स्थापनामें चीनको कारगर मदद दे सकता है और आगे चलकर विश्व-शान्तिकी स्थापनामें भी निर्णयात्मक भूमिका निभा सकता है। लेकिन अगर हिन्दुस्तानसे अंग्रेज बिलकुल मजबूरीकी हालत पैदा होने पर ही विदा होंगे, तो शायद हमारी ये मंगल आशाएँ पूरी नहीं हो पायेंगी। अगर ब्रिटेन पश्चिमको ही अपना रणक्षेत्र बनाये रखे, और पूर्वको अपना प्रबन्ध खुद करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दे, तो ब्रिटेन के लिए यह कितनी तारीफ और बहादुरीकी बात होगी! इसका कोई भरोसा नहीं कि इस युद्धमें वह अपने दूर-दूरतक फैले तमाम अधिकृत प्रदेशोंकी रक्षा कर सकेगा। ये सब उसके गलेमें चक्कीके पाट बनकर लटके हैं। अगर वह अक्लमन्दीसे अपने इस बोझको खुद हलका कर ले और फिर नाजी, फासिस्ट या जापानी हिन्दुस्तानको अकेला छोड़ देने के बजाय अपने अधीन करने की कोशिश करें, तो उन्हें नाकों चने चबाने पड़ेंगे। यह काम उनके लिए अंग्रेजोंसे भी ज्यादा दुश्वार साबित होगा। उनकी कठोरता ही उनका दम घोटेगी। ब्रिटिश शासन-तन्त्रमें एक प्रकारका लचीलापन था, जिसने बलवान प्रतिस्पर्धियोंके अभावमें उसका आजतक काम चलाया। परन्तु आज वह लचीलापन उसके किसी कामका नहीं। मैं इन पृष्ठोंमें अनेक बार कह चुका हूँ कि नाजी सत्ताका उदय ब्रिटनसे उस पापका प्रायश्चित्त कराने के लिए

हुआ है जो उसने एशिया और आफ्रिकाकी कौमोंको गुलाम बनाने और उनका शोषण करने के रूपमें किया है।

अतः हिन्दुस्तानके लिए इसका नतीजा कुछ भी क्यों न हो, हिन्दुस्तान और ब्रिटेनकी सच्ची सलामती इसीमें है कि अंग्रेज समय रहते हिन्दुस्तानसे सुव्यवस्थित रूपसे हट जायें। नरेशोंके साथ की गई सन्धियों और अल्पसंख्यकोंके प्रति जिम्मेदारियोंकी सारी बातें तो अंग्रेजों द्वारा सिर्फ अपनी सल्तनत और हितोंकी रक्षाके लिए गढ़ी गई हैं। हम सबके सामने आज जो कठोर वास्तविकता है, उसके आगे वह सब काफूर हुए बिना न रहेगी। देशी राजा लोग, जहाँतक अपने शस्त्र-बलपर उनके भरोसेका सवाल है, इस निहत्थे हिन्दुस्तानके खिलाफ बहुत अच्छी तरह अपनी रक्षा कर सकते हैं। अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकोंकी काल्पनिक समस्या तो स्वतन्त्रता-रूपी सूर्यके उदयके साथ कुहरेकी तरह विलीन हो जायेगी। सच तो यह है कि हमें पंगु बनानेवाली अंग्रेजी फौजी ताकतके उठ जाने के बाद अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकोंकी कोई बात ही नहीं रह जायेगी। उस हालतमें हिन्दुस्तानके करोड़ों लोग मानव-जातिके एक अपरिभाषित किन्तु एकजुट समुदायका रूप धारण कर लेंगे। मुझे इसमें कोई शक नहीं कि उस समय हमारे देशके राष्ट्रीय नेताओंमें जरूर इतनी बुद्धि होगी कि वे अपनी कठिनाइयोंका सम्मानपूर्ण हल निकाल सकेंगे। इसमें यह मान लिया गया है कि जापान और दूसरी ताकतें हिन्दुस्तानको अकेला छोड़ देंगी। अगर वे ऐसा न भी करें, तो भी मुझे उम्मीद करनी चाहिए कि हमारे मुख्य पक्षोंको ईश्वर इतनी बुद्धि देगा कि वे एक ऐसी योजना गढ़ सकें जिससे नये खतरे का सामना एकदिल होकर किया जा सके।

मेरे इन विचारोंको देखते हुए, अब पाठकोंको यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि क्यों मैं विदेशी सिपाहियोंके हिन्दुस्तानमें प्रवेशको निश्चित रूपसे एक खतरा समझता हूँ। इसकी पूरी तरह निन्दा की जानी चाहिए और उसपर कतई विश्वास नहीं करना चाहिए। मौजूदा परिस्थिति और इसको कायम रखने की कोशिशें भारतीय समाजको लगे उस क्षय रोगकी स्पष्ट निशानी है जो उसे अन्दर-ही-अन्दर खा रहा है।

सेवाग्राम, १९ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २६-४-१९४२

६८. प्रश्नोत्तर

सचमुच यही मंशा है तो?

प्र० : यदि जापानी जो-कुछ कहते हैं, वही उनकी मंशा हो, और वे हिन्दुस्तानको अंग्रेजोंकी गुलामीसे मुक्त कराने के लिए मदद करने के इच्छुक हों, तो हमें खुशी-खुशी उनकी मदद स्वीकार क्यों नहीं कर लेनी चाहिए?

उ० : यह मानना कि आक्रमणकारी कभी हितैषी भी हो सकते हैं, महज हिमाकत है। जापानी हिन्दुस्तानको अंग्रेजोंकी गुलामीसे आजाद करेंगे भी तो सिर्फ अपनी गुलामीमें जकड़ने के लिए। मैं हमेशासे कहता आया हूँ कि हिन्दुस्तानको अंग्रेजोंकी गुलामीसे मुक्त करने के लिए हमें किसी दूसरी ताकतकी मदद लेने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। यह अहिंसा-वृत्तिका सूचक न होगा। अगर हम कभी अंग्रेजोंके खिलाफ विदेशी सहायता लेने पर राजी हो गये तो हमें इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। अहिंसक कार्रवाई द्वारा अपने ध्येयको प्राप्त करने में तिल-भरकी ही कसर रह गई थी। अहिंसामें मेरी श्रद्धा आज भी कायम है। जापानियोंसे मेरी शत्रुता नहीं है। मगर हिन्दुस्तानके विषयमें उनके मनसूबोंको मैं शान्त भावसे नहीं देख सकता। वे यह क्यों नहीं समझते कि एक आजाद देशकी हैसियतसे हमारा उनसे कोई झगड़ा नहीं? वे हिन्दुस्तानको उसके हालपर छोड़ दें। अगर वे इतने ही नेकनीयत हैं तो चीनपर इतनी बरबादी लाने के क्या माने हैं? उसने उनका क्या बिगाड़ा है?

छापामार युद्ध

प्र० : आपने अभी उस रोज वर्धामें कहा था कि जवाहरलाल नेहरू आपके 'कानूनी वारिस' हैं।[1] आपके कानूनी वारिसने जापानियोंके खिलाफ छापामार युद्धकी हिमायत की है, आपको यह विचार कैसा लगता है? जब जवाहरलाल खुल्लमखुल्ला हिंसाका प्रचार करेंगे और राजाजी सारे देशको शस्त्र और फौजी प्रशिक्षण देना चाहेंगे तो आपकी अहिंसाका क्या होगा?

उ० : जिस रूपमें आपने इसे पेश किया है, उस रूपमें तो परिस्थिति भयंकर मालूम होती है। मगर आपको जितनी भयंकर यह लगती है, दरअसल उतनी है नहीं। पहली बात तो यह है कि मैंने 'कानूनी वारिस' शब्द कहा ही नहीं। मेरा भाषण हिन्दीमें था। मैंने तो कहा था कि वे मेरे 'कानूनी वारिस' नहीं हैं किन्तु व्यवहारमें मेरे वारिस हैं। मतलब यह कि जब मैं न रहूँगा तो वे मेरी

१. देखिए खण्ड ७५, पृ० २४८।

जगह लेंगे। उन्होंने मेरे तरीकेको कभी पूरे तौरपर अंगीकार नहीं किया है। उन्होंने तो उसकी खुल्लमखुल्ला आलोचना की है। परन्तु बावजूद इसके कांग्रेसकी नीतिका उन्होंने वफादारीके साथ पालन किया है। और वह नीति यदि पूरी तरह मेरी निर्धारित की हुई नहीं थी तो भी अधिकांशमें मुझसे प्रभावित थी। सरदार वल्लभभाई-जैसे नेता, जिन्होंने हमेशा बगैर किसी किस्मकी शंका व सवालके मेरा अनुसरण किया है, मेरे वारिस नहीं कहे जा सकते। यह तो हर कोई स्वीकार करता है कि और किसीमें जवाहरलाल-जैसा क्रियात्मक उत्साह नहीं है। और, क्या मैं यह नहीं कह चुका हूँ कि मेरे चले जाने के बाद वे उस तमाम मतभेदको, जिसका जिक्र वे अक्सर किया करते हैं, भूल जायेंगे? मुझे इस बातका खेद है कि छापामार युद्धकी प्रणालीने उनके दिलमें घर कर लिया है। मगर मुझे इसमें जरा भी शक नहीं कि वह चार दिनकी चाँदनी ही साबित होगी। उसपर अमल नहीं किया जायेगा। भारतकी धरतीके लिए वह विदेशी चीज है। २२ वर्ष तक जिस अहिंसाका लगातार आचार और प्रचार हुआ है — चाहे वह कितनी ही अपूर्ण क्यों न रही हो — उसका असर जवाहरलाल या राजाजी की इच्छा-मात्रसे एक क्षणमें नहीं मिट सकता, फिर वे कितने ही प्रभावशाली क्यों न हों। इसलिए मैं जवाहरलाल या राजाजी के अहिंसा-मार्गसे च्युत होने से विचलित नहीं हूँ। अपने प्रयत्नके निष्फल होने पर वे नई शक्ति और नये उल्लासके साथ अहिंसा-मार्ग पर लौटेंगे। उनमें से कोई भी हिंसाको इसलिए ग्रहण नहीं करना चाहता कि उनका उसमें विश्वास है। अगर आज वे हिंसाकी शरण लेते भी हैं तो सम्भवतः इसलिए कि उनको लगता है कि अहिंसापर आने से पहले हिन्दुस्तानको हिंसाके एक दौरसे गुजरना ही चाहिए। भावी घटनाओंकी रूपरेखा क्या होगी, कोई भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। हो सकता है कि उनकी अन्तःप्रेरणा ठीक साबित हो, और मेरी, अनुभवके आधारके बावजूद, गलत। परन्तु मैं यह जानता हूँ कि मेरे लिए अपना रास्ता निर्धारित है। अगर मैं अकेला भी होऊँ तो भी अपनी श्रद्धामें अटल रहकर उसपर चलूँगा और विश्वास रखूँगा कि हिन्दुस्तानकी जनता हिंसाके रास्तेको कभी नहीं अपनायेगी। वह या तो निष्क्रिय रहेगी या अहिंसक कार्रवाईको अपनायेगी। छापामार युद्धसे हमें कुछ नहीं मिल सकता। अगर बड़े पैमानेपर इसपर अमल हुआ तो उसके परिणाम विनाशकारी होंगे। अहिंसक असहयोग हर तरहके हिंसक युद्धका स्थान सफलताके साथ ले सकता है। अगर समूचा राष्ट्र अहिंसक कार्रवाई करे तो पूरी कामयाबी मिल सकती है। अंग्रेजी हुकूमतके सामने वह इस हदतक कामयाब न हो सकी, क्योंकि उसकी जड़ें इस मुल्कमें बहुत गहरी जम चुकी थीं। जापानियोंका तो यहाँ अभी पैर भी नहीं पड़ा। मुझे उम्मीद है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी अपने अगले अधिवेशनमें फिर अहिंसाके तरीकेपर जायेगी और अहिंसात्मक असहयोगके बारेमें देशको साफ-साफ हिदायत देगी। समझौतेकी हालकी बातचीतके टूट जाने के बाद और सरकारके साथ किसी किस्मका बाजाब्ता सम्बन्ध न होने पर भी उसके

युद्ध-प्रयत्नमें हिंसात्मक रीतिसे मदद देना मुझे तो देशकी आबरूको बट्टा लगाना लगता है।

सेवाग्राम, १९ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २६-४-१९४२

६९. पत्र : प्रेमा कंटकको

सेवाग्राम, वर्धा
१९ अप्रैल, १९४२

चि० प्रेमा,

तेरे सब पत्र मिल गये हैं। उन सबके उत्तर दे दिये हैं। उत्तर लम्बे थे, परन्तु डाकका ठिकाना न हो तो मैं क्या करूँ? तू ही बता। 'हरिजन' पढ़कर जो ठीक लगे सो करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४२६) से। सी० डब्ल्यू० ६८६५ से भी; सौजन्य : प्रेमा कंटक

७०. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेवाग्राम, बरास्ता वर्धा
१९ अप्रैल, १९४२

चि० जवाहरलाल,

मौलानाका ग्वत आज आया। वे मुझे लिखते हैं मुझे इलाहाबाद जाना है। मैं कैसे जाऊं? मैंने वही कह दिया था मैं अब मुसाफरीके लायक नहीं रहा हूं। और मैं आकर भी क्या करूंगा? मेरे पास वही चीज है और मैंने यहां तीन मीटींग बुलाई है। एक तो कवर्स बुलाई गई थी। एक भी मैं छोड़ नहीं सकता हूं। इसलिये तुम्हारे मुझे बचा लेना। मौलाने से लिखो कि मुझे रिहाई दे दें।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

जानकीबहनने तुमको खत लिखा की दोनों मीटींग वर्धामें करो। मैंने उसे रोक लिया। जब मेरी हाजरी की जरूरत मानी जाय तब मीटींग वर्धा में ही करना चाहिये।

मूल पत्रसे : गांधी-नेहरू पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

७१. दीनबन्धु एण्ड्रयूज-स्मारक

दीनबन्धु एण्ड्रयूज-स्मारक और गुरुदेव-स्मारक दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। गुरुदेवने दीनबन्धु-स्मारकका आरम्भ किया था। लेकिन उसकी पूर्तिके पहले ही वे दीनबन्धुके अनुगामी बन गये।[1] इसलिए दीनबन्धुका स्मारक अब गुरुदेवका भी स्मारक बन गया है। स्मारकका हेतु इन दो महान आत्माओंके अनुरूप ही है— शान्तिनिकेतन, विश्वभारती और श्रीनिकेतनकी समृद्धि और रक्षा ही वह हेतु है। ये सब संस्थाएँ वास्तवमें एक ही हैं। यह बड़े दुःख और शर्मकी बात है कि पाँच लाख रुपये की छोटी-सी रकम धनिकों, विद्यार्थियों या मजदूरोंकी ओरसे अभी तक इकट्ठा नहीं हो पाई है। हर कोई यह मानता है कि गुरुदेव और उनकी संस्थाके कारण हिन्दुस्तानको वह नाम और यश प्राप्त हुआ है जो अन्य किसी व्यक्ति या संस्थाके कारण उसे कभी प्राप्त नहीं हुआ। शान्तिनिकेतनसे ही प्रभावित होकर चीनके जनरलिसिमो च्यांग काई-शेक और श्रीमती च्यांग काई-शेकने इतनी बड़ी रकम भेंटमें दी थी। शान्तिनिकेतनमें जो काम हो रहा है, उसको देखते हुए उसका खर्च नहीं के बराबर ही है। कारण यह है कि जो लोग वहाँ शुद्ध अवैतनिक काम नहीं करते, वे भी अपेक्षाकृत कम वेतन लेकर ही काम कर रहे हैं। अबतक स्मारक-निधिमें करीब एक लाख रुपये इकट्ठे हुए हैं। मुझे आशा है कि बाकी रकम जल्दी ही जमा हो जायेगी, और मुझे धन-संग्रहके लिए दौरा करने की जरूरत नहीं रह जायेगी। स्मारककी रकम पूरी करने के लिए मैं वचनबद्ध हूँ। जब गुरुदेव मृत्यु-शय्या पर थे, मैंने उन्हें अपने आखिरी पत्रमें लिखा था कि अगर ईश्वरकी यही मर्जी हुई तो मैं ही दीनबन्धु-स्मारककी पूरी रकम इकट्ठी करूँगा। दीनबन्धुको शान्तिनिकेतन की आर्थिक स्थितिकी चिन्ता दिन-रात बनी रहती थी। वे इस चिन्ताको मेरे पास बतौर धरोहरके छोड़ गये हैं। हिन्दुस्तान और मानवताके इन दो सेवकोंकी इस पुकारकी मैं उपेक्षा नहीं कर सकता। जिनके मनमें इन दोनों महापुरुषोंकी स्मृतिके लिए आदर है और जो गुरुदेवकी जीवन्त कृतिके मूल्यको समझते हैं, उनसे निवेदन है कि वे स्वेच्छासे लिये हुए इस दायित्वको निबाहने में मेरी मदद करें।

सेवाग्राम, २० अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २६-४-१९४२

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुरका देहान्त ७ अगस्त, १९४१ को हुआ था।

७२. बर्माके शरणार्थी[1]

बर्मासे भागकर आये हुए लोगोंकी मुसीबतोंके बारेमें बहुत-कुछ लिखा जा चुका है। मुमकिन है कि इनमें कुछ बातें बढ़ा-चढ़ाकर लिखी गई हों। उन्हें छोड़ देने पर भी जो-कुछ बचता है, वह अपने-आपमें दुःखकी एक भयानक कहानी है। आज जो परिस्थिति हमारे सामने है, उसमें कुछ मुसीबतें तो अनिवार्य ही हैं। पर हमें तो उन मुसीबतोंको दूर करना है जो दूर की जा सकती हैं, और अंग्रेजों और हिन्दुस्तानियोंके बीच जैसा घोर भेदभाव बरते जाने की चर्चा है उसे मिटाना है। मुझे पता चला है कि बर्मामें आज भी आठ लाखसे ऊपर हिन्दुस्तानी हैं, जिन्हें हिन्दुस्तानमें लाने का इन्तजाम करना है। बर्मामें वे किसी भी तरह नहीं रह सकते। सवाल इतना बड़ा है कि कोई भी मौजूदा संस्था इसे हल नहीं कर सकती। इसके लिए अनुभवी व्यक्तियोंकी एक ऐसी विशेष अस्थायी समितिकी आवश्यकता है जिसका एकमात्र काम यह होगा कि वह आठ-नौ लाख आदमियोंको शीघ्र ही व्यवस्थित ढंगसे बर्मासे हिन्दुस्तान ले आये और यहाँ आने पर उनका समुचित प्रबन्ध करे। हम आशा करें कि देशमें सार्वजनिक सेवाकी वृत्ति रखनेवाले ऐसे काफी लोग निकल आयेंगे जो अपनी एक समिति बनाकर इस परम मानव-दयाके कार्यको पूरा करेंगे।

सेवाग्राम, २० अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २६-४-१९४२

७३. तार : मीराबहनको

[२० अप्रैल, १९४२][2]

तुम ऐसा सोचती हो तो तुरन्त चली आओ।

[अंग्रेजीसे]

बापूज लेटर्स टु मीरा, पृ० ३३४

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत छपा था।

२. मीराबहन लिखती हैं: "ठीक इसी समय बापू हरिजन के लिए 'विदेशी सिपाही' शीर्षक अपना अग्रलेख लिख रहे थे। लगभग यही समय रहा होगा जब मैंने बापूको एक लम्बा खत लिखा था, जिसमें लगभग वही भाव प्रकट किये गये थे। मैंने यह भी लिखा था कि बापू सहमत हों तो मैं थोड़े ही दिनमें इलाहाबादमें होनेवाले अ० भा० कां० कमेटीके अधिवेशनमें जाना चाहूँगी और वहाँ पर्देके पीछे रहकर नेताओंको समझाऊँगी कि जापानियोंके प्रति राष्ट्रव्यापी अहिंसक प्रतिरोध संगठित किया जाये।" देखिए अगला पत्र भी।

७४. पत्र : मीराबहनको

सेवाग्राम
२० अप्रैल, १९४२

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें यहाँ आने की अनुमति देनी ही होगी। फिर तुम देख सकोगी कि क्या किया जा सकता है। तुम ऐसे कामका बीड़ा उठा रही हो जिसमें किसी और बातका विचार करने की गुंजाइश ही नहीं है। मैंने तुम्हें एक तार भेजा है। पता नहीं, वह तुम्हारे पास पहुँचेगा या नहीं। आजकल सभी बातें बड़ी अनिश्चित हो गई हैं।

सप्रेम ।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६४९६) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९८९१ से भी

७५. पत्र : जीवणजी डा० देसाईको

२० अप्रैल, १९४२

भाई जीवणजी,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने तार करने का विचार तो किया था, लेकिन फिर लोभ कर गया। वह लेख इस बार भी छप जाये तो ठीक रहे। आज भी बहुत-सारी सामग्री भेजी जा रही है। इसमें से मेरे लेख तो देने ही पड़ेंगे। मेरे लेखोंके अनुवाद भी छपने चाहिए। फिर महादेवके लेख हैं और एक कुमारप्पाका। लेकिन देखना क्या अधिक पन्ने अंग्रेजीके लिए बचाकर समस्या हल की जा सकती है। उर्दूकी बात समझा। तुम्हें यहाँसे जल्दी कुछ और भेजना पड़ेगा क्या? अंग्रेजीकी सामग्री कम कैसे पड़ गई?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९९५२) से। सी० डब्ल्यू० ६९२७ से भी; सौजन्य: जीवणजी डा० देसाई

७६. पत्र : माधवदास गो० कापड़ियाको

२० अप्रैल, १९४२

चि० माधवदास,[1]

यह घबराहट किसलिए? बीमारी तो आती है और चली जाती है। आदमी जन्म लेता है और मरता है, कोई जल्दी तो कोई देरसे। जिसे ईश्वरमें विश्वास है उसे भय काहे का? जिसे भय नहीं है उसे घबराहट कैसी? हिम्मत रखनी चाहिए। मुझे लिखते रहना। यह पत्र बा की ओरसे भी है, ऐसा समझना। कृष्णाको[2] शान्त रहना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

श्री माधवदास गोपालदास
नवी खड़की
पोरबन्दर, काठियावाड़

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से

७७. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

२१ अप्रैल, १९४२

चि० कान्ति,

पत्रमें जो तेरी समझमें नहीं आया, वह उसीमें सुधारकर पत्र वापस भेज रहा हूँ। अब तो समझा न? साधारणतः सरस्वती-जैसी चंचल वृत्तिकी लड़कीको अपने पास रखने की मेरी इच्छा नहीं होती; लेकिन तेरी कठिनाई समझता हूँ, इसलिए मैंने सरस्वतीको रखने की हामी भरी। उसकी कुंजी तेरे ही हाथमें है। तू दृढ़ताके साथ उसे समझा सके, तभी वह यहाँ रहेगी।

मेरी ऐसी स्त्री है जिसके दिमाग ही नहीं है। मुझे उसपर दया ही आती है। फिर उसे मैथ्यूका सहारा मिला। आश्रममें हर प्रकारके आदमी आ घुसे हैं, इसलिए निन्दा होती है, चुगली होती है। तू उसे समझा सका, यह अच्छा हुआ।

१. कस्तूरबाके भाई
२. माधवदासकी पत्नी

मुझे तो वह प्यारे पत्र लिखती ही है। उसकी कहानी करुणाजनक है। अब रामचन्द्रन और ताणु पिल्लै जेल चले गये हैं, इसलिए उसकी स्थिति और अधिक असहाय हो गई है।

तेरे द्वारा उद्धृत दोनों वाक्य सच कहे जा सकते हैं। सिद्धान्तकी सचाई उसके अनुसरणपर निर्भर नहीं होती, ऐसा भी कहा जा सकता है; और होती है, ऐसा भी कहा जा सकता है। नैतिक सिद्धान्तके विषयमें दूसरी बात ज्यादा ठीक है। जिसका कोई अनुसरण ही नहीं करता, उस सिद्धान्तका उपयोग क्या? उसकी सचाई की जाँचका फिर क्या उपाय रहा? अहिंसाका यदि कोई अनुसरण ही न करे तो फिर उसका क्या मूल्य?

हरिलालको अगर किसी कानूनके अनुसार जेलमें रखा जा सकता तो मैं उसे कब-का रखवा देता। लेकिन ऐसा कोई कानून ही नही है, और यह वह खुद भी जानता है। यह तो अब तभी हो जब वह खुद ही पिघले। मैं यह आशा करता तो हूँ, लेकिन इस बार उसने जो चाल चली उससे मेरी आशा मन्द पड़ गई है। देवदास तो जो हो सकता है कर ही रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७३६७) से। सौजन्य: कान्तिलाल गांधी

७८. पत्र: माधवदास गो० कापड़ियाको

२१ अप्रैल, १९४२

चि० माधवदास,

कल तुम्हें पत्र लिखा था, वह मिला होगा।[१] आज फिर तुम्हारा दूसरा पत्र मिला। तुमने एक साथी खो दिया, लेकिन कृष्णा तो कष्टोंसे छूट गई। उसकी सद्गति निश्चित है। धीरज रखना चाहिए। शान्त रहना चाहिए। अगर कोई कर्ज हो तो उसे चुकाने का प्रयत्न करना चाहिए और भगवानके भजनमें लीन हो जाना चाहिए। बा की भी यही इच्छा समझो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से

१. देखिए पृ० ६३।

७९. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

सेवाग्राम, वरास्ता वर्धा
२१ अप्रैल, १९४२

चि० हेमप्रभा,

तुम्हारा खत मिला, हृदयद्रावक है। सतीश बाबुका खत[1] मैंने 'हरिजन' में लिया है। गो-सेवाके बारेमें तुम्हारी योजना बनाकर भेजो। सभा २९ ता० को होगी। आना चाहती है तो आओ भी।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १७१५) से

८०. पत्र : पद्मपत सिंहानियाको

सेवाग्राम
२१ अप्रैल, १९४२

भाई पदमपतजी,

आपके खतका उत्तर मैंने जान-बूझकर रोक रक्खा। ट्रस्टिसे तो अभी भी नहीं मिला हूं। लेकिन आपको हिंदुस्तानी प्रचार सभाका ढाँचा भेजा है। उसपर अपनी राय जाहर कर सकें तो मुझे निर्णय करनेमें सुभिता होगी। लेकिन नहीं देना चाहे तो मेरा कोई आग्रह नहीं हो सकता है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. यह "सिम्पल ट्रीटमेण्ट फॉर कॉलरा" (हैजेका सरल इलाज) शीर्षकसे २६-४-१९४२ के हरिजनमें प्रकाशित हुआ था।

८१. हिन्दुस्तानी प्रचार सभा

जिस हिन्दुस्तानी प्रचार सभाका जिक्र मैंने 'हरिजन-सेवक' में किया था, वह अब बनने जा रही है। उसका कच्चा ढाँचा बन गया है। वह कुछ मित्रोंके पास भेजा गया है। थोड़े ही दिनोंमें सभाकी योजना वगैरह जनताके सामने रखी जायेगी। अनेक लोगोंका यह खयाल बन गया है कि यह सभा हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी विरोधिनी होगी। जिस सम्मेलनके साथ सन् १९१८ से मेरा सम्बन्ध बना हुआ है, उसका विरोध मैं जान-बूझकर कैसे कर सकता हूँ? विरोध करने का कोई ठोस कारण भी तो होना चाहिए न? लेकिन, वैसा कुछ है नहीं। हाँ, यह सही है कि उर्दूके बारेमें मैं सम्मेलनके चन्द सदस्योंसे आगे जाता हूँ। वे मानते हैं, मैं पीछे जा रहा हूँ। इसका फैसला तो वक्त ही करेगा।

यह स्पष्ट करने के लिए कि सम्मेलन के प्रति मेरे मनमें कोई विरोधी भाव नहीं है, मैंने श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनसे पत्र-व्यवहार किया था, जिसके फलस्वरूप सम्मेलनकी स्थायी समितिने नीचे लिखा प्रस्ताव पास किया है:

> **हिन्दी साहित्य सम्मेलन अपने प्रारम्भसे ही हिन्दीको राष्ट्रभाषा मानता आया है और मानता है। उर्दू हिन्दीसे उत्पन्न अरबी-फारसी मिश्रित एक विशेष साहित्यिक शैली है। सम्मेलन हिन्दीका प्रचार करता है, उसका उर्दूसे विरोध नहीं है।**
>
> **इस समितिके विचारमें महात्मा गांधीकी प्रस्तावित हिन्दुस्तानी प्रचार सभाके सदस्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन और उसकी उप-समितियोंके सदस्य बन सकते हैं, किन्तु व्यावहारिक दृष्टिसे उचित यह होगा कि राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके पदाधिकारी प्रस्तावित हिन्दुस्तानी प्रचार सभाके पदाधिकारी न हों।**

मैं इससे अधिक उदारताकी आशा नहीं कर सकता था। मेरी यह राय रही है और अब भी है कि अगर पदाधिकारी एक ही रह सकते तो संघर्ष का सवाल ही न उठ पाता। इसमें कुछ उठ सकता है, लेकिन दोनों ओरसे सज्जनताका व्यवहार होने पर संघर्ष हो ही नहीं सकता। हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी सफलतासे राष्ट्र-भाषाका सवाल राजनीतिक मसला नहीं रह जायेगा। राजनीतिसे तो उसका कभी सम्बन्ध होना ही न चाहिए था।

सेवाग्राम, २२ अप्रैल, १९४२

हरिजन-सेवक, २६-४-१९४२

८२. पत्र : होरेस अलेक्जेंडरको

सेवाग्राम, वरास्ता वर्धा (म० प्रा०)
२२ अप्रैल, १९४२

प्रिय होरेस,

मैं तुम्हें और एगथाको पत्र लिखने की बात लगातार सोचता रहा हूँ, लेकिन मेरी व्यस्तताके कारण बाधा पड़ती रही। लेकिन उससे भी ज्यादा बड़ा कारण तो यह था कि मैं तुम्हें निराशाजनक पत्र नहीं भेजना चाहता था। वह कारण अब भी बना हुआ है और पहलेसे ज्यादा है। तथापि अब तो मुझे जैसा भी लगता है लिख डालता हूँ।

आशा है, तुम्हें ऑलिवके[1] बारेमें मेरा तार मिला होगा। स्थायी शारीरिक अक्षमताके बावजूद दमकता हुआ उसका चेहरा मुझे कितनी अच्छी तरह याद है। ईश्वरने दिया और अब उसीने उसे वापस ले लिया। मैं जानता हूँ कि उसे सद्‌गति ही मिली है, क्योंकि वह ईश्वरीय प्रकाशका अनुसरण करती थी।

सर स्टैफर्ड आये और चले गये। कितना अच्छा होता यदि वे यह निरर्थक काम लेकर न आये होते। औरोंकी बात अलग है, किन्तु उन्हें तो कमसे-कम जवाहरलाल की इच्छा जाने बिना कभी नहीं आना चाहिए था। इस नाजुक घड़ीमें ब्रिटिश सरकार इस तरहका बरताव आखिर कैसे कर सकी? मुख्य पक्षोंसे बातचीत किये बिना उसे प्रस्ताव भला क्यों भेजने चाहिए थे? एक भी पक्ष सन्तुष्ट नहीं हो सका। सबको प्रसन्न करने की चेष्टामें प्रस्तावोंने किसीको भी प्रसन्न नहीं किया।

मैंने उनसे खुले दिलसे बात की, लेकिन मित्रके नाते ही, जो कमसे-कम एण्ड्रयूजका खयाल रखते हुए जरूरी था। मैंने उनसे कहा कि मैं आपसे एण्ड्रयूजकी आत्माको साक्षी मानकर बात कर रहा हूँ। मैंने सुझाव दिये पर उस सबसे कुछ न बना। हमेशाकी तरह उन्हें यह कहकर उड़ा दिया गया कि वे व्यावहारिक नहीं हैं। मैंने जाना नहीं चाहा था। युद्ध-मात्रका विरोधी होनेके कारण मुझे कुछ कहना ही नहीं था। मैं गया इसलिए कि वे मुझसे मिलने को उत्सुक थे। मैं यह सब इसलिए बता रहा हूँ कि तुम्हें पृष्ठभूमिका पता चल जाये। कार्य-समितिके साथ बातचीतमें मैं पूरे समय उपस्थित भी नहीं रहा। मैं तो वापस आ गया था। नतीजा क्या हुआ सो तुम्हें मालूम ही है। वह अनिवार्य था। जो हुआ उससे मन खिन्न-सा हो गया है।

मेरा दृढ़ मत है कि अंग्रेजोंको इसी समय व्यवस्थित ढंगसे भारत छोड़ देना चाहिए और वह जोखिम नहीं उठानी चाहिए जो उन्होंने सिंगापुर, मलाया और बर्मामें उठाई। ऐसे कदमका अर्थ होगा उच्च कोटिका साहस, मानवीय सीमाओंकी स्वीकृति

१. होरेस अलेक्जेंडरकी पत्नी

और भारतके प्रति न्याय करना। ब्रिटेन भारतकी रक्षा करने में असमर्थ है, और भारतकी भूमिपर अपनी रक्षा करने में तो और भी अक्षम है। सबसे अच्छा काम वह यही कर सकता है कि भारतको उसके भाग्यपर छोड़ दे। मुझे जाने क्यों ऐसा लगता है कि उस स्थितिमें भारतकी कोई हानि नहीं होगी। लेकिन यदि यह बात तुम्हें स्पष्ट न दिखती हो तो मैं बहस नहीं करूँगा।

मैं इसकी एक नकल एगथाको भेज रहा हूँ। निश्चय ही तुम इस पत्रको जिसे चाहो उसे पढ़वा सकते हो।

सप्रेम।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४३४) से

८३. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

२२ अप्रैल, १९४२

भाई वल्लभभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। मौलानाके तारसे लगता है कि तुम्हें जाना ही पड़ेगा, यद्यपि ऐसा करना ठीक नहीं मालूम होता। तुम दृढ़तासे काम लो। अगर अहिंसक असहयोगका स्पष्ट प्रस्ताव स्वीकार न हो तो तुम्हारा धर्म कांग्रेससे निकल जाने का ही है। सम्पत्ति-ध्वंसकी नीतिका और बाहरी सेनाएँ लाने का भी कड़ा विरोध होना ही चाहिए। मुझे बुलाने का आग्रह हो रहा है, परन्तु मैंने तो इनकार ही लिखा है। मैंने इसी अरसेमें यहाँ तीन-चार बैठकें रखी हैं। मुख्य बैठक तो बहुत पहलेसे ही तय कर ली गई थी। उसे बदला नहीं जा सकता।

प्रयागसे लौटते समय यहाँसे होकर जाओ, भले एक-दो दिनके लिए ही क्यों न हो। प्रयागसे तो यहाँ सौ-गुना अच्छा मौसम है। राजेन्द्र बाबू और देवको[1] भी साथ लेते आना।

मैंने पाटिलके बारेमें तुमसे पूछा था,[2] लेकिन तुमने कुछ लिखा नहीं।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–२ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २७४

१. शंकरराव देव
२. देखिए "पत्र : वल्लभभाई पटेलको", पृ० ४१-४२।

८४. पत्र : अमृतलाल चटर्जीको

सेवाग्राम, वर्धा
२३ अप्रैल, १९४२

प्रिय अमृतलाल,

तुम्हारा पत्र[1] मिला।

आभाके विषयमें तुम्हारा जवाब मुझे अच्छा नहीं लगता। तुम्हारी हार्दिक सहमतिसे मैंने आभाको लिया था। मैंने तुम्हें यह भी बताया था कि मैं शायद उसे राजकोट भेजना चाहूँगा। मैं उसके भलेके लिए सब करना चाहता हूँ। लेकिन अब मैं उसे नहीं भेजूंगा। न ही मैं तुम्हारी पत्नीकी इच्छाके विपरीत कुछ करूँगा। इन परिस्थितियोंमें जैसा भी होना होगा, होगा। मैंने उनके अकेलेमें मिलने की मनाही कर दी है, लेकिन कनुके उसे पढ़ाने की नहीं। वह तो अस्वाभाविक बात होगी। आभा अपनी माँके आशीर्वादके बिना विवाह नहीं करेगी, लेकिन वह किसी भी हालतमें अन्य व्यक्तिसे विवाह नहीं करेगी। यह उसकी शर्त है और कनुकी भी। अब तुम मुझे बताओ कि आभाके सम्बन्धमें मुझसे तुम क्या करवाना चाहते हो।

जहाँतक तुम्हारे सन्देश चाहने की बात है, मुझे बख्शो। तुम्हें अपने ढंगसे और अपनी जिम्मेदारीपर काम करना चाहिए। मुझे वहाँ के कामका कोई अन्दाज नहीं हो सकता।

सप्रेम।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३३८) से। सौजन्य: अमृतलाल चटर्जी

१. १७ अप्रैलका, जिसमें अमृतलाल चटर्जीने लिखा था कि उनकी पत्नी आभाका विवाह कनु गांधीसे करने के विरुद्ध है।

८५. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके लिए प्रस्तावका मसौदा[1]

[२४ अप्रैल, १९४२ के पूर्व][2]

सर स्टैफर्ड क्रिप्स द्वारा प्रस्तुत ब्रिटिश युद्ध-मन्त्रिमण्डलके प्रस्तावोंने ब्रिटिश साम्राज्यवादको क्योंकि पहलेसे कहीं अधिक नग्न रूपमें प्रकट कर दिया है, अतः अ० भा० कां० क० निम्नलिखित निष्कर्षोंपर पहुँची है :

अ० भा० कां० क० की राय है कि ब्रिटेन भारतकी रक्षा कर सकनेमें असमर्थ है। यह स्वाभाविक है कि वह जो-कुछ करता है, अपनी खुदकी रक्षाके लिए करता है। भारत और ब्रिटेनके हितोंमें एक शाश्वत संघर्ष है। परिणामस्वरूप उनके रक्षा-सम्बन्धी विचार भी भिन्न होंगे। ब्रिटिश सरकारको भारतके राजनीतिक दलोंमें कोई विश्वास नहीं है। भारतीय सेना अबतक मुख्य रूपसे भारतको अधीन बनाये रखने के लिए ही रखी गई है। उसे आम जनतासे बिलकुल अलग-थलग रखा गया है और जनता उसे किसी भी तरह अपनी सेना नहीं मान सकती। अविश्वासकी यह नीति अभी तक जारी है और यही कारण है कि राष्ट्रीय प्रतिरक्षाका कार्य भारतके चुने हुए प्रतिनिधियोंको नहीं सौंपा गया है।

जापानका भारतसे झगड़ा नहीं है। वह ब्रिटिश साम्राज्यके विरुद्ध युद्ध कर रहा है। युद्धमें भारतको जो शरीक किया गया है वह भारतीय जनताके प्रतिनिधियों की सहमतिसे नहीं किया गया है। वह पूरी तरह ब्रिटेन द्वारा की गई कार्रवाई है। यदि भारतको आजाद कर दिया जाता है तो उसका पहला कदम शायद जापानसे समझौतेकी बातचीत करना होगी। कांग्रेसकी यह राय है कि यदि अंग्रेज भारतसे हट जायें तो भारत जापानी अथवा किसी अन्य हमलावरका हमला होने पर अपनी रक्षा कर सकेगा।

इसलिए अ० भा० कां० क० की राय है कि अंग्रेजोंको भारतसे हट जाना चाहिए। यह दलील कि उन्हें भारतीय राजाओंकी रक्षाके लिए यहाँ बने रहना चाहिए, बिलकुल लचर है। यह इस बातका एक और प्रमाण है कि भारतपर

१. चूँकि गांधीजी ने बैठकमें हिस्सा नहीं लिया, मीराबहन प्रस्तावके इस मसौदेको वर्धासे इलाहाबाद लाई थीं। अ० भा० कां० क० की २७ अप्रैलकी बैठकमें इस प्रस्तावपर विचार-विमर्श शुरू हुआ। राजेन्द्रप्रसादने इसमें कुछ संशोधन पेश किये, जिनको लेकर प्रस्तावपर १ मई तक बहस जारी रही। वह संशोधित पाठ ट्रांसफर ऑफ पॉवर, पृ० ६६-७० पर उपलब्ध है। अन्ततः १ मईको नेहरू द्वारा पेश किया एक दूसरा प्रस्ताव पास किया गया, जिसके पाठके लिए देखिए परिशिष्ट ३।

२. देखिए "पत्र: जवाहरलाल नेहरूको", पृ० ७३।

अपना कब्जा बनाये रखने का उनका दृढ़ विचार है। राजाओंको निहत्थे भारतसे डरने की कोई जरूरत नहीं है।

बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकोंका प्रश्न ब्रिटिश सरकारका पैदा किया हुआ है और उनके हटने पर समाप्त हो जायेगा।

इन सब कारणोंसे समिति ब्रिटेनसे उसकी अपनी सुरक्षा, भारतकी सुरक्षा और विश्व-शान्तिकी खातिर अपील करती है कि यदि वह अपने सभी एशियाई और आफ्रिकी अधिकृत क्षेत्र छोड़ने को तैयार न हो तो भी भारतपर से अपना आधिपत्य समाप्त कर दे।

यह समिति जापानकी सरकार और जनताको यह विश्वास दिलाना चाहती है कि भारतकी जापान या किसी भी अन्य राष्ट्रसे शत्रुता नहीं है। भारत केवल सभी विदेशी प्रभुत्वसे मुक्ति चाहता है। लेकिन आजादीकी इस लड़ाईमें समितिकी राय है कि भारत विश्वकी सहानुभूतिका स्वागत तो करेगा, लेकिन उसे विदेशी सैनिक सहायताकी आवश्यकता नहीं है। भारत अपनी आजादी अपनी अहिंसात्मक शक्तिसे प्राप्त करेगा और उसी प्रकार उसे कायम रखेगा। इसलिए समिति आशा करती है कि जापान भारतपर आक्रमण करने की कोई नीयत नहीं रखेगा। लेकिन यदि जापान भारतपर आक्रमण करता है और ब्रिटेन अपीलपर कोई ध्यान नहीं देता तो समिति उन सब लोगोंसे जो कांग्रेससे दिशा-निर्देशकी अपेक्षा रखते हैं, आशा करेगी कि वे जापानी फौजोंसे अहिंसात्मक असहयोग करें और उन्हें कोई मदद न दें। जिन लोगोंपर हमला किया गया हो उनका यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे आक्रमणकारीको कोई मदद दें। उनका कर्त्तव्य है कि पूर्ण असहयोग करें।

अहिंसात्मक असहयोगके सरल सिद्धान्तको समझना कठिन नहीं है:

१. हम आक्रमणकारीके सामने घुटने न टेकें और उसके किसी आदेशका पालन न करें।

२. हम उससे कोई कृपा न चाहें और न उसके घूसके जालमें फँसें। लेकिन हम उसके प्रति कोई दुर्भावना न रखें और न उसका बुरा चाहें।

३. यदि वह हमारे खेतोंपर कब्जा करना चाहे तो हम उन्हें छोड़ने को तैयार न हों, चाहे उसको रोकने के प्रयत्नमें हमें मरना ही क्यों न पड़े।

४. यदि वह बीमार हो या प्याससे मर रहा हो और हमारी मदद माँगे तो हम उससे इनकार न करें।

५. ऐसी जगहोंपर जहाँ ब्रिटिश और जापानी सेनाएँ लड़ रही हों, हमारा असहयोग व्यर्थ और अनावश्यक होगा। अभी ब्रिटिश सरकारसे हमारा असहयोग सीमित है। यदि हम उनसे उस समय पूर्ण असहयोग करें जब वे सचमुच लड़ रहे हों तो उसका अर्थ यह होगा कि हम अपने देशको जान-बूझकर जापानियोंके हाथमें देते हैं। इसलिए ब्रिटिश फौजोंके रास्तेमें कोई रुकावट न डालना ही जापानियोंके प्रति हमारे असहयोगके प्रदर्शनका एकमात्र रास्ता होगा। न ही हमें किसी सक्रिय ढंगसे अंग्रेजोंकी मदद करनी चाहिए। यदि हम उनके हालके रुखसे निर्णय करें तो

ब्रिटिश सरकार सिर्फ यही चाहती है कि हम बीचमें दखल न दें। इससे ज्यादा कोई मदद वह हमसे नहीं चाहती। वे हमारी मदद सिर्फ गुलामोंकी तरह चाहते हैं और यह एक ऐसी स्थिति है जिसे हम कभी स्वीकार नहीं कर सकते।[१]

समितिके लिए यह जरूरी है कि वह सम्पत्ति-ध्वंसकी नीतिके सम्बन्धमें अपने मतकी साफ घोषणा कर दे। यदि हमारे अहिंसात्मक प्रतिरोधके बावजूद, देशका कोई भाग जापानियोंके हाथमें चला जाता है तो हम अपनी फसल, पानीके स्रोत आदि नष्ट न करें — अन्य किसी कारणसे नहीं तो इसीलिए कि हमारा प्रयत्न उन्हें फिर वापस ले लेने का होगा। युद्ध-सामग्रीको नष्ट करना दूसरी बात है और वह किन्हीं परिस्थितियोंमें सैनिक दृष्टिसे आवश्यक हो सकता है। लेकिन कांग्रेसकी यह नीति कभी नहीं हो सकती कि जो चीजें जनताकी या उसके उपयोगकी हैं वह उनको नष्ट करे।

जापानी फौजोंके विरुद्ध असहयोग तो अनिवार्य रूपसे अपेक्षाकृत कम लोगों तक सीमित होगा और यदि वह पूर्ण और सच्चा हुआ तो वह सफल भी अवश्य होगा, लेकिन स्वराज्य का सच्चा निर्माण भारतके लाखों लोगों द्वारा पूरे मनसे रचनात्मक कार्यक्रम चलाने में ही निहित है। उसके बिना पूरा राष्ट्र अपनी युगों पुरानी जड़तासे जाग ही नहीं सकता। अंग्रेज चाहे रहें या न रहें, हमारा यह कर्त्तव्य सदा रहेगा कि बेरोजगारी खत्म करें, अमीर और गरीबके बीचकी खाई पाटें, साम्प्रदायिक झगड़े खत्म करें, अस्पृश्यताके भूतको भगायें, डाकुओंका सुधार करें और जनताको उनसे बचायें। यदि करोड़ों लोग राष्ट्र-निर्माणके इस कार्यमें जीवन्त रुचि नहीं लेते तो आजादी निश्चय ही एक स्वप्न बनी रहेगी और वह न अहिंसासे हासिल हो सकेगी, न हिंसासे।

विदेशी सिपाही

अ० भा० कां० क० की राय है कि भारतमें विदेशी सिपाहियोंका लाया जाना भारतके हितोंके लिए नुकसानदेह और भारतकी आजादीके उद्देश्यके लिए खतरनाक है। इसलिए अ० भा० कां० क० ब्रिटिश सरकारसे अपील करती है कि वह इन विदेशी सेनाओंको यहाँसे हटा ले और भविष्यमें उनका यहाँ प्रवेश बन्द कर दे। भारतकी अनन्त जनशक्तिके रहते विदेशी सेनाओंको यहाँ लाना बड़े शर्मकी बात है, और यह उस अनैतिकताका प्रमाण है जो ब्रिटिश साम्राज्यवादके रूपमें मौजूद है।

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीज़ कॉरस्पॉण्डेन्स विद गवर्नमेन्ट, १९४२-४४, पृ० २८३-८५; ट्रांसफर ऑफ पॉवर, १९४२-४७, जिल्द २, पृ० ६६-७० भी

१. ट्रांसफर ऑफ पॉवरमें "और यह एक ऐसी स्थिति है जिसे हम कभी स्वीकार नहीं कर सकते", ये शब्द केवल मसौदेके संशोधित पाठमें दिये गये हैं।

८६. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेवाग्राम, वर्धा
२४ अप्रैल, १९४२

चि० जवाहरलाल,

मीराबहनने मान लिया कि मुझे कुछ-न-कुछ कदम उठाना होगा। और उसे कुरबानी करनी होगी। मै इलाहाबाद न जाऊं तो भी वह जाना चाहती थी।[1] इसलिये मैंने उसे यहां बुला लीया। उसके साथ मैं अपने ख्याल प्रस्तावके[2] रूपमें भेजता हूं। मौलाना साहबका आग्रह था कि मैं इलाहाबाद जाऊं। मैंने लाचारी बताई। इन दिनोंमें मुसाफरी करना मेरे लिये कठिन बात है, इतना ही नहीं, लेकिन मैंने उसी अरसेमें तीन मीटिंग बुलाई है। इसलिये मैंने मौलानाकी माफी मांग ली और लिखा कि मैं अपने विचार प्रस्तावके रूपमें भेजुंगा।

प्रस्तावके समर्थनमें दलील देनेकी आवश्यकता मैं नहीं समझता हूं। अगर मेरा प्रस्ताव आप लोगोंको अच्छा न लगे तो मेरा आग्रह हो नहीं सकता है। हमारे लिये मौका ऐसा आया है कि हरेकको अपना मार्ग सोच लेना है।

फेनी वगैरामें सलतनतका वर्ताव ऐसा चल रहा है कि वह बरदाश्तके काबिल नहीं है। ऐसी सलतनत बचकर भी क्या करेगी? और आज तो वह बचने की कोशिश कर रही है। मेरा विश्वास हो गया है कि सलतनत उठ जाने से हम जापानके साथ अच्छी तरहसे हिसाब कर सकते हैं। यह दूसरी बात है कि सलतनत उठ जाने पर हम आपसमें लड मरेंगे। भले ऐसा भी हो। हम थोड़े सलतनतकी महेरबानीसे आपस आपसके झगडोंसे बचना चाहते हैं?

आचार्य नरेन्द्रदेवने प्रस्ताव देखा है, और पसंद किया है।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्रसे : गांधी-नेहरू पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. देखिए पृ० ६१, पा० टि० २।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

८७. पत्र : रामेश्वरी नेहरूको

सेवाग्राम, वर्धा
२४ अप्रैल, १९४२

प्रिय भगिनि,

बापाने पिताजीके चोटकी बात लिखी है। तुम्हारा दुःख समझ सकता हूं। नहिं आ सकेगी तो कोई हर्ज नहीं। तुम्हारे प्रस्ताव तो लिये जायेंगे। लेकिन आशा तो है कि राजा साहेब अच्छे हो जायेंगे।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ८००३) से। सी० डब्ल्यू० ३१०१ से भी; सौजन्य : रामेश्वरी नेहरू

८८. प्राक्कथन : 'डेड एनिमल्स टु टैण्ड लेदर' का

सेठ जमनालालजी ने अपनी मृत्युके कुछ ही दिन पूर्व इस विषयपर एक पुस्तिकाकी माँग बहुत आग्रहसे की थी। यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तिका उसीका परिणाम है। जो लोग मृत जानवरोंके अवशेषोंका अच्छेसे-अच्छा उपयोग करना चाहते हैं और इस दृष्टिसे उनके शरीरका कैसे-क्या किया जाये, इसके बारेमें और ज्यादा जानना चाहते हैं उनके लिए जमनालालजी एक निर्देश-पुस्तिका चाहते थे। यह जिस उद्देश्यके लिए छपी है उसे पूरा करे।

सेवाग्राम, २६ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]

डेड एनिमल्स टु टैण्ड लेदर

८९. प्रश्नोत्तर

क्या आप जापानियोंको निमन्त्रण नहीं दे रहे हैं?

प्र० : आप लोगोंसे बहादुरी दिखाने को कहते हैं सो तो बहुत अच्छी बात है, लेकिन अंग्रेज शासकोंको यहाँसे विदा होने को कहकर क्या आप जापानियोंको हिन्दुस्तान पर हमला करने का निमन्त्रण नहीं दे रहे हैं?

उ० : मैं ऐसा कुछ नहीं कर रहा। मेरा विश्वास है कि अंग्रेजोंकी यहाँ मौजूदगी जापानियोंको हमला करने के लिए प्रोत्साहन है। अगर अंग्रेज अक्लमन्दीके साथ यहाँ

से हट जाने का फैसला करें, और हिन्दुस्तानको इस बातके लिए स्वतन्त्र छोड़ दें कि उसे जिस तरह ठीक लगे, वह अपने मामले सुलझा ले, तो जापानको अपनी योजनाओंपर पुनर्विचार करना पड़ेगा। अंग्रेजोंका यह युक्तिपूर्ण व्यवहार जापानियोंके लिए इस कदर अद्भुत और अनोखा होगा कि वे भौचक्के रह जायेंगे, अंग्रेजोंके खिलाफ दिलोंमें दबा हुआ द्वेष मिट जायेगा, और जिस अप्राकृतिक स्थितिसे भारतीय जीवन अभिभूत और अवरुद्ध है, उसके अन्तके लिए भी अनुकूल वातावरण बन जायेगा। जहाँतक मैं देख सकता हूँ, जापानियोंने अपनी योजना भारतीय लोकमतका कोई खयाल किये बिना गढ़ी है। मेरे किसी भी लेखसे उनपर कोई असर नहीं पड़ेगा। परन्तु जिस कामकी सलाह मैंने अंग्रेजोंको दी है, उससे जापानी जरूर भौचक्के रह जायेंगे।

निष्क्रमण

प्र० : सेवाके लिए या दूसरे कारणोंसे जिनकी शहरोंमें जरूरत न हो, उनको आपने सलाह दी है कि वे शहर छोड़ दें।[1] लेकिन जिन गरीबोंके घर ही नहीं हैं जहाँ वे जा सकें, और जो जहाँ जाते हैं वहाँ दुत्कार ही पाते हैं, वे क्या करें?

उ० : यह वास्तवमें एक कठिनाई है। ऐसे लोग जिस प्रान्तके हों, उस प्रान्तके लोगोंको उनका प्रबन्ध करना चाहिए। अगर हम एक राष्ट्र हैं तो आनेवाली हर मुसीबतके मुकाबलेके लिए प्रबन्ध करने में हमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। यदि हमें एक नई समाज-व्यवस्था कायम करनी है तो आज से ही उसका काम शुरू कर सकते हैं। मैं तो केवल अहिंसाकी दृष्टिसे ही अपनी बात कह सकता हूँ, दूसरी किसी दृष्टिसे नहीं। अगर राष्ट्रका मानस इस दिशामें काम कर रहा है तो क्या व्यक्ति और क्या संस्थाएँ, सभी जाने-अनजाने और बिना किसी हड़बड़ीके, उन सब लोगोंको अपने अन्दर मिला लेंगे जिनका आपने जिक्र किया है। मैं जानता हूँ कि यह काम हो रहा है, लेकिन इतने बड़े पैमानेपर नहीं हो रहा जिसका असर पड़े। किसी भी हट्टे-कट्टे आदमीको भीख या दान देकर न निबाहना चाहिए; बल्कि उसे इतना काम देना चाहिए जिससे वह अच्छी तरह अपना पेट भर सके। यदि लोगोंको एक जगहसे दूसरी जगह बुद्धिमानीके साथ हटाया और बसाया जाये तो गाँवोंका पुनर्निर्माण बिना किसी हो-हल्लेके हुए बिना न रहे।

सेवाग्राम, २६ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३-५-१९४२

१. देखिए "प्रश्नोत्तर" के अन्तर्गत उप-शीर्षक "जब नेताओंमें मतभेद हो", पृ० ३१-३२।

९०. पत्र : वनमाला न० परीखको

सेवाग्राम, वर्धा
२६ अप्रैल, १९४२

चि० वनमाला,

तू भाग गई, अच्छा किया, लेकिन तुझे फिर लौटकर आना ही पड़ेगा। सुशीला के आने में अभी देर है। उसकी परीक्षाकी तारीख आगे बढ़ गई है। वह आये, तब आना। अपनी क्रियाएँ जारी रखना, और विश्वास रखना कि तेरे कान ठीक हो ही जायेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५७९१) से। सी० डब्ल्यू० ३०१४ से भी, सौजन्य : वनमाला म० देसाई

९१. पत्र : वियोगी हरिको

२६ अप्रैल, १९४२

भाई वियोगी हरि,

रामकृष्णजी का दु:ख तो हम समज सकते हैं, मैंने तार दे दिया था। उनसे कहो ब्रजकृष्ण थोडे हि दिनोंमें छुटने चाहिये। महादेवको वचन मिल गया है। कुछ नहीं होगा तो अपील करने में कोई हर्ज नहीं है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०१) से

१२. प्रश्नोत्तर

संकीर्ण प्रान्तीयतासे बचें

प्र० : कई क्षेत्रोंमें कुछ लोग ऐसे हैं जो अन्य प्रान्तोंसे आये हैं लेकिन जो एक तरहसे उन जगहोंमें पक्की तरह बस गये हैं। कुछ प्रान्तोंमें ऐसी भावना है ही कि जब समय अच्छा था तब ये लोग बाहरसे आये, पैसा कमाया और मजेसे रहते रहे, लेकिन जब संकट करीब आ रहा है और प्रान्तके निवासियोंको उनकी सहायताकी जरूरत होगी, तब वे अपने 'घरों' को भागने की सोच रहे हैं। आपको उन लोगों को क्या यह सलाह नहीं देनी चाहिए कि वे जहाँ हैं वहीं रहें और किसी तरहकी संकीर्ण प्रान्तीयताका परिचय न दें?

उ० : यह सवाल मेरे पास कई रूपोंमें आया है। बंगाल और असमसे यह सवाल पूछा गया है। अन्य प्रान्तोंसे गये व्यापारी वहाँ पीढ़ियोंसे बसे हुए हैं। यद्यपि ये व्यापारी उन प्रान्तोंमें अपने लाभके लिए गये, तथापि उन्होंने वहाँ एक जरूरत —अवसर उपयोगी जरूरत पूरी की। इस बातमें कोई सन्देह नही कि उनके अचानक चले जाने से उन लोगों को बड़ी कठिनाई होगी जो अबतक नित्यका सौदा इन व्यापारियोंसे खरीदने के आदी रहे हैं। उनकी जगह आसानीसे और एकदम अन्य लोग नहीं ले सकते, खासकर ऐसे संकटके समयमें। इसलिए अगर ये व्यापारी वहाँसे हटने के पूर्व अपनी दुकानोंको ठीकसे चलाते रहने के लिए अपनी जगह किसी ठीक व्यक्तिकी सुनिश्चित व्यवस्था किये बिना ही अपना कारोबार समेट लेते हैं तो उनका ऐसा करना कर्त्तव्यसे भागना ही होगा। हाँ, यदि ग्राहक खुद स्थान छोड़कर चले जायें और उनके पीछे व्यापारी जायें तो बात दूसरी होगी। देशके सामने जो स्थिति है वह इतनी अजीब है कि किसी भी राय या हलको अचूक नहीं माना जा सकता और न सभी तथ्योंको सावधानीसे जाँचे बिना कोई निर्णय ही किया जा सकता है। लेकिन मुझे लगता है कि व्यापारिक संगठनोंका यह कर्त्तव्य है कि वे स्थितिकी जाँच करें और सम्बद्ध व्यापारियोंका मार्ग-दर्शन करें।

भड़कानेवाला नहीं है

प्र० : आपने लिखा है :

"यदि मुसलमानोंकी बड़ी तादाद अपने-आपको एक अलग कौम मानती है... तो दुनियाकी कोई भी ताकत उन्हें अन्यथा सोचने को मजबूर नहीं कर सकती। और यदि वे इस आधारपर हिन्दुस्तानका विभाजन करना चाहते हैं तो वे विभाजन जरूर करा लेंगे। हाँ, यदि हिन्दू ऐसे विभाजनके विरुद्ध लड़ना न चाहें तो बात दूसरी है। जहाँतक मैं देख सकता हूँ ऐसी तैयारी दोनों तरफ चुपचाप हो रही है।"[१]

१. देखिए "वह अभागा प्रस्ताव", पृ० ३२-३४।

जहाँतक मुसलमानोंका सवाल है, मैं आपसे अधिक जानकारी रखते हुए कह सकता हूँ कि ऐसी कोई तैयारी नहीं हो रही है। मौजूदा समयमें जब कि विश्वके बड़े राष्ट्रोंके बीच महायुद्ध हो रहा है, ऐसा करना मूर्खता होगी। लेकिन चूँकि ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दुओंकी ओरसे लड़ाईकी तैयारीके बारेमें आप जानते हैं, क्या आपका अपने सहधर्मियोंको ऐसी आत्मघाती कार्रवाईसे न रोकना अपराधपूर्ण कार्य नहीं है? आपका लेख कायरतापूर्ण और शरारत-भरा है, वस्तुतः वह हिन्दुओंको भड़कानेवाला है।

उ० : मुझे जो अनेक अभियोग-पत्र मिले हैं उनमें से मैंने यह सबसे नरम पत्र चुना है, और इसमें से भी मैंने काफी जहर निकाल दिया है। मेरी जो आलोचना हो रही है उसमें से कुछपर अपने विचार व्यक्त करना शायद ठीक होगा। मुझे इसका बुरा नहीं मानना चाहिए। मेरे सार्वजनिक जीवनमें यह तो मेरे साथ हमेशा ही होता रहा है। मेरा खयाल है कि हर जनसेवकका यही भाग्य होता है। लेकिन जब आलोचना अज्ञानपूर्ण होती है, जैसी कि यह है, तो वह आलोचक तथा उस ध्येयको, जिसका वह पक्षपोषण करता है, नुकसान पहुँचाती है। मैं इस आशासे इस आलोचनापर विचार कर रहा हूँ कि विचारशील लोग अज्ञानपूर्ण आलोचना को रोकने में अपने प्रभावका उपयोग करेंगे। हिन्दुओंकी ओरसे हो रही तैयारीके बारेमें मुझे कोई विशेष जानकारी नहीं है। मुझे जो-कुछ भी जानकारी है वह दोनों पक्षोंके नेताओंके भाषणों तथा पत्र-लेखकोंसे मिलनेवाली कतरनोंसे प्राप्त हुई है। मैंने जिन तैयारियोंका उल्लेख किया है उनके वे पक्के प्रमाण हैं। लेकिन आप जो कहते हैं वह मुस्लिम समाचार-पत्रोंमें छपनेवाले लेखोंके बावजूद यदि ठीक है तो केवल एक तरफकी किसी तैयारीसे झगड़ा नहीं भड़क सकता। झगड़ेके लिए दो की जरूरत होती है। आपका यह कहना कि "अपने सहधर्मियोंको ऐसी आत्मघाती कार्रवाईसे न रोकना" मेरे लिए "अपराधपूर्ण कार्य" होगा। उस हालतमें ठीक होता यदि मैं ऐसा न कर रहा होता। आप मेरे सहधर्मियोंके बारेमें लिखते हैं। लेकिन मैं ऐसे मामलोंमें किसीको अपना सहधर्मी नहीं समझता और न वे मुझे वैसा समझते हैं। क्योंकि मैं तो सभी धर्मोंके भारतीयोंको अपना बराबरका भाई मानता हूँ, चाहे वे मेरी बातका विश्वास करें या न करें। इसलिए मैं हर किसीको लड़ने से रोकना चाहूँगा। मैं इन स्तम्भोंमें जो-कुछ भी लिखता हूँ वह इस उद्देश्यसे लिखता हूँ कि प्रतिद्वन्द्वी पक्षोंके झगड़ेका फैसला हिंसाके बजाय विवेकसे हो। और इसीलिए मेरे लेखमें वह वाक्य है जिसे आपने उद्धृत किया है। आपसे मैं अनुरोध करता हूँ कि शान्तिके मेरे इस प्रयत्नमें आप मेरी सहायता करें। इसकी शुरुआत आप मुझे और मेरे लेखोंको ठीकसे समझने से कर सकते हैं।

सेवाग्राम, २७ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३-५-१९४२

९३. सम्पत्ति-ध्वंसकी नीतिके बारेमें कुछ और

एक पत्र-लेखक लिखते हैं:

> सम्पत्ति-ध्वंसकी नीतिके बारेमें जो विवाद उठा है, उसका सम्बन्ध इस बातसे है कि अगर 'दुश्मन' लोगोंके खेतों वगैरहपर कब्जा करने आये तो वे क्या करें। यह मौका शायद आये, शायद न भी आये। लेकिन लड़ाईकी तैयारीके नामपर आज फसलों, कुँओं, तालाबों, घरों, नावों और बाइसिकलों वगैरहका जो नाश हो रहा है, उसके बारेमें आपको क्या कहना है? लोगोंको उनके गाँवों और शहरके घरोंसे एकाएक निकाला जा रहा है। अगर आप इस बरबादीको सहन करते हैं तो फिर आप विनाशसे बचने के लिए किये जानेवाले ध्वंसका विरोध कैसे कर सकते हैं?

यह बड़ा कठिन सवाल है। आज जो विनाश हो रहा है वह तो निश्चित है। परन्तु दुश्मनके या पीछे हटती हुई जनताके हाथों जो विनाश हो सकता है वह अनिश्चित है। और, जो भी हो, आनेवाले खतरेको रोकने के लिए इस देशसे करोड़ों रुपयोंका जो हरण आज हो रहा है उसके मुकाबले उस तरहका ध्वंस, अगर हुआ भी तो, नगण्य ही होगा। इसके सिवा, टैक्सों द्वारा जो रुपया लिया जाता है वह उतना असह्य नहीं लगता है जितना कि हजारों लोगोंको उनके घर-बारसे साफ-साफ वंचित किया जाना, जैसा कि फेनीमें हुआ। जो लोग अपने घरोंसे बेदखल किये जा रहे हैं उनको भविष्यमें मिलनेवाले मुआवजेके वादोंसे कोई सान्त्वना नहीं मिल सकती। गरीब लोगोंके घर-बारका हरण गोया उनका प्राणहरण ही है। बेचारे देहातियोंको उनकी नावोंसे वंचित करने की बात घरोंसे बेदखली-जैसी ही है। पूर्वी बंगालके लोगोंसे उनकी नावें छीन लेना उनके हाथ-पाँव काट लेने-जैसा है। मैंने फेनीके अधिकारियोंकी कार्रवाईका करीब-करीब बचाव ही किया था। इसके विरुद्ध मुझे नम्र, किन्तु नाराजगीके कई पत्र मिले हैं। ये पत्र-लेखक मुझे लिखते हैं कि पूर्वी बंगालकी जिन्दगीके हालातकी मुझे कोई जानकारी नहीं है। मैं यह आरोप स्वीकार नहीं कर सकता। बात यह है कि मुझे लगा कि जो अनिवार्य है उसे धीरज और शान्तिके साथ सहने की सलाह मुझे लोगोंको देनी चाहिए। मगर उसके बाद मुझे फेनीसे जो खबरें मिली हैं वे मुझको अपनी नीति बदलने के लिए मजबूर कर रही हैं। मैंने मान लिया था कि खतरेको सरपर मँडराते देख अधिकारी लोग बहुत सोच-विचारसे काम लेंगे। लेकिन मुझे अभी किसी आखिरी नतीजेपर नहीं पहुँच जाना चाहिए। ऐसी खबर मिली है कि सरकार मामलेकी जाँच-पड़ताल कर रही है। मुझे आशा है कि जाँच विस्तृत और सम्पूर्ण होगी।

जब खतरा सिरपर आ जायेगा उस वक्त भी हमें कई तरहकी जोखिमें उठानी पड़ेंगी। मसलन, इस डरसे कि कहीं जापानी हमारे रसदके सामान और

पीने के पानीका उपयोग न कर लें, लोगोंको भूखे-प्यासे मरने की सलाह नहीं दी जा सकती। जापानियोंको इन चीजोंका इस्तेमाल करने से रोकने के लिए वे उनसे लड़ सकते हैं, मगर इन चीजोंके छिन जाने की जोखिम तो उन्हें उठानी ही होगी। इस जोखिमसे बचने के लिए उन्हें मौतसे पहले मरने को नहीं कहा जा सकता।

अब मैं इस प्रश्नका अन्तिम और सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा लेता हूँ। पूछा गया है कि युद्ध-मात्रके विरोधीके नाते, क्या मेरा यह धर्म नहीं है कि मैं पीड़ित लोगोंको सलाह दूँ कि वे अहिंसक प्रतिरोध द्वारा अपनी सम्पत्ति और नाव वगैरहके छीने जाने का विरोध करें। परन्तु मेरी अहिंसाने ही मुझे उस हदतक विरोधसे रोका है जिससे सरकारको परेशानी हो। फेनीमें विरोधके कारण सरकारको जो परेशानी हुई वह टाली जा सकती थी या नहीं, यह प्रश्न वहाँके तथ्योंपर निर्भर करता है और इसपर मैं अभी अपनी राय कायम करने में असमर्थ हूँ। मेरे मनमें आखिरी घड़ीतक हिचक रहेगी। मैं तो यही आशा रख सकता हूँ कि जिस प्रकारकी विपदा फेनीमें पैदा की गई है उससे बचने का कोई रास्ता अधिकारी निकाल लेंगे।

सेवाग्राम, २७ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३-५-१९४२

९४. सेवाग्रामके सेवकोंके लिए

२७ अप्रैल, १९४२

आश्रममें हममें से कोई स्वादके लिए न खाये, जीने के लिए खाये। जीना भी जीने के कारण नहीं लेकिन सेवाके लिए। इसलिए एकको देखकर दूसरे न करें। जैसे कि अगर किसीको भातकी आवश्यकता है तो उसके लिए पकाया जाय, इसलिए दूसरे भी मांगें ऐसा नहीं होना चाहिए। सामान्यतया कोई रोटी और भात दोनों न खायें, लेकिन किसीके लिए आवश्यक है तो दोनों दिये जायें। नियम वही है, स्वाद नहीं।

इसमें से यह तो सहज प्राप्त होता है कि जिनको ईश्वरने धन दिया है वे हकसे स्वाद न करें। यहां रहने का सब फायदा वे गुमा देंगे, अगर स्वादके कारण कुछ भी चीज खरीदेंगे।

आजकल अच्छा होगा यदि सब कमसे-कम दो बार लाल पानीसे कुल्ला करें। लाल पानी किसे कहा जाये डाक्टर दाससे समझ लें। सामान्य नियम यह है कि पानीका रंग गुलाबके फूल-सा होना चाहिए।

बापु

बापूकी छायामें, पृ० ३८७-८८

९५. पत्र : एन० एस० वरदाचारीको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
२७ अप्रैल, १९४२

प्रिय वरदाचारी,

आपका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। इसमें सन्देह नहीं कि राजाजी के दृष्टिकोणके पीछे पूरी ईमानदारी है। किन्तु कांग्रेस यदि हिंसाको अपना भी ले तो भी मैं यह सोचने के लिए विवश हूँ कि राजाजी पूर्णतया गलतीपर हैं। आपका कहना सही है, किन्तु उस दिशामें मेरा विचार आपसे कहीं अधिक दूर तक जाता है। मेरे कहने का आशय क्या है, यह आप 'हरिजन'के[1] हालके ही अंकमें देखेंगे। यदि तब भी आपके मनमें कुछ शंकाएँ रह जायें तो मुझे लिखिएगा।

स्नेह।

बापूके आशीर्वाद

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० १०९४१) से। सौजन्य : एन० एस० वरदाचारी

९६. पत्र : दत्तात्रेय बा० कालेलकरको

सेवाग्राम
२७ अप्रैल, १९४२

चि० काका,

समय नहीं था, फिर भी तुम्हारी टिप्पणी पढ़ गया। इसके साथ जो पत्र है वह और अपनी टिप्पणी जैसी-की-तैसी अथवा नानावटीसे लिखवाकर भेज दो। नकलें रखना, एक मुझे भी भेजना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९५६) से

१. देखिए "प्रश्नोत्तर", उपशीर्षक "छापामार युद्ध", पृ० ५७-५९।

९७. पत्र : मुन्नालाल गं० शाहको

२७ अप्रैल, १९४२

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारा लम्बा पत्र मिला। उसमें मतलबकी बात तो एक ही है। मैंने तो निर्णय दे ही दिया है कि संसारमें अबतक ऐसा कोई तन्त्र चला ही नहीं जिसके प्रत्येक विभागमें किसी एक व्यक्तिकी आवाज सर्वोपरि न रही हो। छोटे-से रसोई-घरमें भी जो एक व्यक्ति कहता है, वही होता है। अब यह व्यक्ति कौन हो, यह अलग सवाल है। कुएँकी देख-रेख एक ही आदमी कर सकता है, बनती इमारतकी देख-रेख एक ही व्यक्ति कर सकता है। व्यवस्थापक-मण्डल सब-कुछ नहीं देख सकता। उसकी ओरसे एक व्यक्ति इसके लिए भी होता है, और भिन्न-भिन्न विभागोंके लिए मुखिया नियुक्त किये जाते हैं। इसके सिवाय और किसी रीतिसे काम हो ही नहीं सकता। यों यह तो तुम्हारे पत्रके उत्तरमें लिखा गया है। तुम करना वही जो तुमने सोचा हो। किसी दिन तुम अपनी भूल समझ जाओगे, या फिर मुझे मेरी समझाओगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८४७३) से। सी० डब्ल्यू० ७१७० से भी; सौजन्य : मुन्नालाल गं० शाह

९८. उर्दू 'हरिजन'

डॉ० गोपीचन्द भार्गव लाहौरसे उर्दूमें 'हरिजन' साप्ताहिक निकालने जा रहे हैं। अबतक लखनऊके 'हिन्दुस्तान' में 'हरिजन' के लेख छपते रहे हैं। नवजीवन प्रेससे 'हरिजन' का एक अधिकृत [उर्दू] संस्करण निकालने का प्रबन्ध किया जा रहा है। लेकिन यह तभी हो सकेगा जब उर्दूका कोई ऐसा विद्वान मुझे मिल जायेगा जो मेरे साथ काम करने को तैयार हो। दोनों का अपना अलग-अलग व्यक्तित्व है। और अगर नवजीवन प्रेस अपने प्रयत्नमें सफल हो सका तो वह एक तीसरा पत्र होगा, जिसका अपना व्यक्तित्व होगा। प्रस्तावित हिन्दुस्तानी प्रचार सभाके जरिये उर्दूके अध्ययनको जो प्रोत्साहन दिया जा रहा है, उसके कारण इस प्रकारका उपक्रम सम्भव हो गया है।

सेवाग्राम, २८ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३-५-१९४२

९९. त्रावणकोर

त्रावणकोरके स्त्री-पुरुषोंमें शिक्षितोंकी संख्या बहुत ज्यादा होने पर भी उस अभागे प्रदेशमें सच्ची स्वतन्त्रता-जैसी कोई चीज नहीं है। त्रावणकोर राज्य कांग्रेसके अध्यक्ष श्री ताणु पिल्लै और राज्य कांग्रेसकी कार्यकारिणीके सदस्य श्री रामचन्द्रन्‌को राज्य कांग्रेसकी सभाओंपर लगाई गई पाबन्दीको न मानने के लिए छह महीनेकी सख्त सजा दी गई है। अगर सार्वजनिक सभाओंपर सिर्फ इसलिए रोक लगाई जाती है कि ये उत्तरदायी शासनकी माँग करनेवाली संस्थाओंके तत्त्वावधानमें की जाती है तो उसको न मानना जरूरी हो जाता है। ऐसे आन्दोलनोंके नेता अपने मुँह बिलकुल ही बन्द करके अपने किये-करायेको मिट्टीमें नहीं मिलने दे सकते। नाममात्रकी स्वतन्त्रताके लिए यह कीमत बहुत ज्यादा हो जाती है। जबानबन्दीके इन हुक्मोंको मानने के बजाय श्री ताणु पिल्लै और श्री रामचन्द्रन् जेलके अन्दर बन्द रहकर अपने ध्येयकी कहीं ज्यादा सेवा कर सकेंगे। मजिस्ट्रेटके सामने श्री रामचन्द्रन्‌ने जो बयान दिया वह इस प्रकार है:

> सबसे पहले त्रावणकोर सरकारके मुख्य सचिवने एक विज्ञप्ति जारी की थी, जिसमें उन्होंने यह बताया था कि राज्यमें अखिल भारत देशी राज्य प्रजा दिवस नहीं मनाने दिया जायेगा। इसके बाद हममें से कुछ लोगोंके नाम त्रिवेन्द्रमके जिला मजिस्ट्रेटने एक हुक्म जारी किया, और हमें देशी राज्य प्रजा दिवस मनाने से रोका। मेरा अपराध जिला मजिस्ट्रेटके इस हुक्मको लेकर है। इस हुक्ममें कहा गया था कि अगर ऐसी सभा हुई और उसमें भाषण दिये गये तो उससे त्रिवेन्द्रममें शान्ति भंग हो सकती है। उसमें यह भी कहा गया था कि अगर ऐसी सभा हुई और भाषण दिये गये तो जनता और सरकारके बीच मनमुटाव पैदा हो सकता है। इस मनाही हुक्मके मिलते ही श्री पट्टम ताणु पिल्लै और मैंने जिला मजिस्ट्रेटको एक पत्र लिखा, जिसमें हमने यह स्पष्ट किया कि यह सभा राज्यमें किसी आन्दोलनको शुरू करने के लिए नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तानमें मनाये जानेवाले दिवसके सिलसिलेमें ही की जानेवाली है। यह सभा किसी सार्वजनिक स्थानमें न होकर कांग्रेस भवनके अहातेमें ही होगी। हमने यह भी स्पष्ट किया कि शान्ति-भंग होने का डर बिलकुल बेबुनियाद है, और लिखा कि अगर इस स्पष्टीकरणके बाद भी सभापर रोक लगाई जायेगी तो हम उस आज्ञाको भंग करेंगे। जिला मजिस्ट्रेटकी ओर से स्पष्टीकरणके इस पत्रका कोई जवाब नहीं मिला। अतएव सभा की गई। श्री ताणु पिल्लैकी गिरफ्तारीके बाद सभाका नेतृत्व मैंने अपने हाथमें ले लिया और मैं

एक घंटे तक बोला। मैं यहाँ यह कहूँ कि उस सभासे बढ़कर शान्त सभा मैंने अपने जीवनमें कभी नहीं देखी थी। अतः हमने जो यह कहा था कि शान्ति कतई भंग नहीं होगी सो उस सभाने ही सही साबित कर दिया। जिला मजिस्ट्रेटके हुक्मका दूसरा मुद्दा यह था कि सभाकी वजहसे सरकार और जनताके बीच मनमुटाव पैदा होगा। मेरी रायमें सभाका ऐसा कोई परिणाम निश्चय ही नहीं निकला। इसलिए अब यह निःसन्देह सिद्ध हो चुका है कि जिला मजिस्ट्रेटका डर बिलकुल बेबुनियाद था। अतः यद्यपि तकनीकी दृष्टिसे मैं अवश्य अपराधी हूँ — क्योंकि निश्चय ही मैंने जिला मजिस्ट्रेटके हुक्मकी अवज्ञा की थी — लेकिन दरअसल बात मेरी नहीं, बल्कि जिला मजिस्ट्रेटकी ही गलत थी। इसलिए मुझे हक है कि मैं सम्मानपूर्वक छोड़ दिया जाऊँ। तकनीकी दृष्टिसे यह अपराध भी मुझे सिर्फ इसलिए करना पड़ा कि जिस चीजको मैं बिलकुल सही मानता था और जिसे करनेके लिए मेरा स्वाभिमान मुझसे कहता था, उसे न करनेकी बात मैं मान नहीं सकता था।

सेवाग्राम, २८ अप्रैल, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३-५-१९४२

१००. अहिंसक व्यायाम संघ

पाठकोंको विदित ही है कि मलाडमें कुछ दिनोंसे अहिंसक व्यायाम संघका काम शुरू हुआ है। सरदार पृथ्वीसिंह इस संघके प्राण हैं। सर्वश्री रामेश्वरदास बिड़ला, पुरुषोत्तम कानजी और केशवदेव नेवटिया इसके ट्रस्टी हैं। पृथ्वीसिंह अपने चुने हुए युवकों और युवतियोंको प्रशिक्षण दे रहे हैं। लेकिन प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ जब अपने चुने हुए व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त करनेके लिए भेजेंगी तभी संघका कार्य सचमुच सार्थक होगा। संघका कार्यक्रम अपने ढंगका एक ही है; क्योंकि शरीरके सर्वांगीण विकासके साथ-साथ अहिंसाका पालन कहाँतक सम्भव है, इसका प्रयोग सरदार पृथ्वीसिंह स्वयं ही कर रहे हैं। हिन्दुस्तानका उद्धार हिंसासे ही होगा, ऐसे विश्वासमें जिनके जीवनका पूर्वार्ध बीता है, वे ही आज अहिंसाके अनुयायी बन गये हैं। उनका प्रयत्न प्रामाणिक है, ऐसा मेरा विश्वास है। यह काम बहुत कठिन है। किसी सिद्धान्तमें विश्वास करना एक बात है, और उसे कार्यमें परिणत करना दूसरी बात है, और वह भी ऐसे साधनों द्वारा जिनसे हम स्वयं परिचित हैं और जो आज दो बिलकुल विपरीत दिशाओंमें ले जानेवाले मालूम होते हैं। जिन्हें सरदार पृथ्वीसिंहके पास प्रशिक्षणके लिए भेजा जाये उनकी अहिंसामें कमसे-कम कामचलाऊ श्रद्धा तो होनी ही चाहिए।

सेवाग्राम, २८ अप्रैल, १९४२

[मराठीसे]

मराठी हरिजन, ३-५-१९४२

१०१. एक पुर्जा

२८ अप्रैल, १९४२

इसका अर्थ इनकार है, इसीलिये तो मैंने कहा कि बलवन्तसिंह और पारनेरकरको पूछो और वे लोग राजी हों तो मुझे कुछ अडचन नहीं होगी। वे लोग तुम्हारी बात समझे भी नहीं हैं। उनसे बात करो।

बापु

बापूकी छायामें, पृ० ३०३

१०२. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

२९ अप्रैल, १९४२

भाई हरिभाऊ,

चि० बृहस्पति और चि० रामकुंवरको आशीर्वाद। आशा है वे दोनों देशसेवा में हिस्सा लेंगे।

बापुके आशीर्वाद

श्री हरिभाऊ उपाध्याय
पो० राजकोट, चड़नगर होकर
मारवाड़

मूल पत्रसे : हरिभाऊ उपाध्याय पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१०३. पत्र : शारदा गो० चोखावालाको

१ मई, १९४२

चि० बबुड़ी,

तेरा पत्र मिला। तू गई, यह अच्छा हुआ। गाँठ गल गई, वह भी अच्छा हुआ। मुझे लगता है, आनन्दको[1] खाँसी तो नहीं ही होगी। तेरी तबीयत सुधर

१. शारदा चोखावालाका पुत्र

जाये, यह स्वागत योग्य बात है। हजीरा एक हफ्तेके लिए भी जा सके तो अच्छा हो। यहाँ गर्मी चली गई है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १००४३) से। सौजन्य: शारदा गो० चोखावाला

१०४. पत्र: प्रभावतीको

१ मई, १९४२

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिल गया था। तू केवल परवल और ककड़ी ही ले सकती है। तू अपनी तबीयत बिगाड़े, यह ठीक नहीं होगा। पिताजी के विषयमें चिन्ता न करना। बा प्रसन्न है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३३७५) से

१०५. पत्र: बलवन्तसिंहको

१ मई, १९४२

चि० बलवंतसिंह,

तुम्हारा सब लेख पढ गया। मुझे बड़ा दुःख होता है। यहां ईश्वरका नाम लेना अज्ञानसूचक है। तुम्हारे लेखमें अहंकार भरा है। तुमको बुलाकर क्या फैसला करना था? गोसेवा-संघ हमारा सब काम ले ले तो हमें खुश होना है। उनमें से किसीको स्वार्थ नहीं है, तो भी तुमको स्वार्थकी बू आती है। तुमको धमकी देने की बात कहां है? . . . .[1] को तो बेचारीको मैंने भेजा था। तुमको विनय करने आई थी। मैंने भी कहा, विनय करो। ठीक है, जो अच्छा लगे सो करो। मैं तो अब भी कहता हूं कि जैसा संघवाले कहे वैसा करो। इसमें तुम्हारी शोभा है। तुम्हें मुझको कुछ समझाना है तो समझाओ। वे लोग भी तो सब मुझको पूछकर ही करनेवाले हैं; वे भी तुम्हारे जैसे ही सेवक हैं। वे भी उसी ईश्वरको भजते हैं जिसको तुम। फरक इतना है तुम नाम ईश्वरका लेकर काम अपना ही करना

१. साधन-सूत्रमें नाम छोड़ दिया गया है।

चाहते हो। अहंता तुममें इतनी है कि किसीके साथ काम नहीं कर सकते हो। जरा नीचे उतरो, जरा समझो।

बापुके आशीर्वाद

बापूकी छायामें, पृ० ३०६-७

१०६. पत्र : हीरालाल शास्त्रीको

सेवाग्राम, वर्धा
२ मई, १९४२

भाई हीरालाल शास्त्री,

आपका पत्र मिला। यह समझकर कि शायद वर-कन्या विवाहके बाद खादी नहीं पहनेंगे तो भी मात-पिता वर-कन्याको खादी ही विवाहके समय पहनावे तो कुछ मिथ्याचार नहीं होगा।

दूगडजीका खत इसके साथ है।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्रसे : हीरालाल शास्त्री पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१०७. पत्र : सोहनलाल दूगड़को

सेवाग्राम, वर्धा
२ मई, १९४२

भाई सोहनलाल,

आपके सुपुत्रके विवाहपर दोनोंको मेरे आशीर्वाद। आशा है कि दोनों सच्ची सेवा करेंगे।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्रसे : हीरालाल शास्त्री पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१०८. वक्तव्य : हिन्दुस्तानीके बारेमें[1]

२ मई, १९४२

लोगोंमें राष्ट्रभाषाको फैलाने का काम करने से यह पता चला है कि जिस भाषा को कांग्रेसने 'हिन्दुस्तानी' का नाम दिया है, वह मिली-जुली उर्दू-हिन्दीका आसान रूप है। यही जबान है जो उत्तर हिन्दुस्तानमें बोली और समझी जाती है, और हिन्दुस्तानके दूसरे हिस्सोंमें भी लोग इसे बहुत-कुछ समझते और वरतते हैं। इसीके साहित्यिक (अदबी) रूप हिन्दी और उर्दू एक-दूसरेसे दूर होते चले जा रहे हैं। जरूरत इस बातकी है कि इन दोनों रूपोंको भी एक-दूसरेके नजदीक लाया जाय, और देशके उन हिस्सोंमें, जहाँ दूसरी जबानें बोली जाती हैं, हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषाके तौरपर फैलाया जाय। इसलिए हम एक ऐसी सभा बनाना चाहते हैं जो आसान हिन्दी और आसान उर्दू दोनोंका साथ-साथ प्रचार करे, और जिसका हर मेम्बर हिन्दुस्तानीको इन दोनों शकलों और लिपियोंको जाने और जरूरतके वक्त बरत सके। इससे एक तो यह होगा कि सारे देशमें एक आसान और साफ जबान चल जायेगी और दूसरे, होते-होते इसी आसान जबानमें ऐसा अदब या साहित्य पैदा होने लगेगा जिसमें ऊँचे खयालों और भावोंको भी जाहिर किया जा सकेगा। इस कामको पूरा करने के लिए हम लोग 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' के नामसे आज ता० २-५-१९४२ को एक सभा बनाते हैं।[2]

राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, भाग १, पृ० १५१-५२

१०९. हरिजन सेवक संघ

हरिजन सेवक संघकी एक बैठक २८ और २९ अप्रैलको वर्धामें हुई। सेठ घनश्यामदास बिड़लाने मेरा बहुत खयाल रखा और बहुत ही कम समय लिया। आजकल भाषण देने की मेरी इच्छा ही नहीं होती। लेकिन २९ की सुबह मैं सदस्यों द्वारा लाये कुछ प्रश्नोंके उत्तर देनेको राजी हो गया। प्रश्नोंमें कुछ ऐसे थे जिनके उत्तर सब सेवकोंके कामके हैं। कई सेवकोंके प्रश्न हिन्दुस्तानीमें थे, कुछ अंग्रेजीमें थे और एक गुजरातीमें था। मैंने उनसे कहा कि भविष्यमें सब प्रश्न हिन्दुस्तानीमें ही होने चाहिए। जो लोग हिन्दी या उर्दू नहीं जानते, वे जरूर सीख लें, और इस बीच किसीसे लिखवा लिया करें।

१. इसपर गांधीजी, राजेन्द्रप्रसाद तथा अन्य लोगोंने हस्ताक्षर किये थे।

२. हिन्दुस्तानी प्रचार सभाके कार्यों व उद्देश्योंके लिए देखिए परिशिष्ट ४।

प्र० : हरिजन सेवक संघको कांग्रेसका एक भाग माना जाता है। फिर भी बहुत कम कांग्रेसी हरिजन-सेवक हैं। ऐसा क्यों?

उ० : हरिजन सेवक संघ कांग्रेसका भाग नहीं है। मैंने १९३२ में जेलमें जो उपवास किया था उससे इसकी उत्पत्ति हुई थी।[1] उस समय पण्डित मालवीयजी के सभापतित्वमें एक सभा हुई थी, जिसमें हर वर्गके हिन्दू मौजूद थे और उस सभामें इस संघकी नींव डाली गई थी। सभामें इसे जान-बूझकर कांग्रेससे अलग एक गैर-राजनीतिक संस्था बनाने का निर्णय किया गया था। संघकी इसी खूबीकी वजहसे सेठ घनश्यामदासजी इसके अध्यक्ष और ठक्कर बापा मन्त्री बने। लेकिन ऐसा होते हुए भी संघमें कांग्रेसी काफी संख्यामें हैं और होने भी चाहिए, क्योंकि करीब-करीब सब सुधारक कांग्रेसमें आ ही जाते हैं। लेकिन यह सच है कि हरिजन सेवक संघमें दूसरे लोग भी काफी हैं। यह भी सच है कि जो कांग्रेसी सिर्फ राजनीतिमें ही रस लेनेवाले हैं, वे हरिजन सेवक संघमें नहीं आते। इसलिए कभी-कभी यह भ्रम पैदा होता है कि कांग्रेसजन हरिजन सेवक संघमें दिलचस्पी नहीं लेते। हरएक कांग्रेसीका फर्ज है कि वह अपने जीवनमें अस्पृश्यताको जड़-मूलसे दूर कर दे।

प्र० : इधर हरिजनोंका उत्थान ही हरिजन-सेवाकी मुख्य प्रवृत्ति बन गया है। इसलिए सवर्णोंमें अस्पृश्यता-निवारण कार्य मन्द पड़ गया है। इसका क्या उपाय करना चाहिए?

उ० : अनुभव बताता है कि सवर्णोंमें प्रचार-कार्य तभी सफल हो सकता है जब कुछ प्रभावशाली व्यक्ति निकलें, जिनकी बातका आम जनतापर असर पड़ता हो। ऐसे लोग आसानीसे नहीं मिल सकते। लेकिन सेवक अगर चाहें तो मूक प्रचारक बन सकते हैं। सवर्ण सेवक हरिजनोंके उत्थानका काम करके ही सन्तुष्ट रहते हैं, यह अच्छी बात नहीं। ऐसे भी हरिजन-सेवक हैं जो खुद तो छुआछूत नहीं मानते, लेकिन वे अपने कुटुम्बी जनोंपर भी असर नहीं डाल पाते। फिर भला वे दूसरोंपर क्या असर डालेंगे? मेरी एक निश्चित राय यह भी है कि सेवकोंको अपने परिचयमें आनेवाले सवर्णोंसे एक-एक पैसेकी भी भीख माँगनी चाहिए। अगर सब सच्चे दिलसे यह काम करें तो इसका बड़ा अच्छा परिणाम निकल सकता है।

प्र० : हरिजन सेवक संघ उन हरिजनोंकी सेवा भी अपने हाथमें क्यों न ले जो ईसाई या मुसलमान हो चुके हैं, परन्तु फिर भी अछूत समझे जाते हैं? क्या हमारा मकसद यह नहीं कि हम भारतवर्षसे छुआछूतको जड़-मूलसे मिटा दें, और जो भी उसके शिकार हैं उनकी सहायता करें?

उ० : इस सवालकी चर्चा 'हरिजन' में हो चुकी है। लेकिन जबतक प्रश्न उठता रहता है तबतक उसका उत्तर देना भी ठीक ही है। जब हिन्दू जातिसे छुआछूत

1. देखिए खण्ड ५१, पृ० १२४-२८।

सर्वथा निकल जायेगी, तब अन्य जातियोंमें से भी वह अपने-आप निकल जायेगी। इसके गुण-दोष कुछ भी हों, पर यह साफ है कि ईसाई या मुसलमान हरिजनोंमें काम करना, झगड़ा मोल लेना होगा। ये हरिजन हिन्दुओंसे सम्बन्ध तोड़ चुके हैं या हिन्दुओं द्वारा वहिष्कृत हो चुके हैं। अब इनका सम्बन्ध नये धर्मोंसे हो चुका है। उस नये समाजके नेता स्वभावतः यह चाहेंगे कि उनके पुराने सम्बन्ध टूट जायें। इन सब कारणोंसे हरिजन सेवक संघने शुरूसे ही अपनी यह नीति कायम की है कि उसका क्षेत्र उन हरिजनों तक ही मर्यादित रहे जिन्होंने दूसरे धर्मको स्वीकार नहीं किया है। यह ठीक भी है। जब कोई व्यक्ति अपना मूल धर्म छोड़ देता है तब उसपर उसका कोई नियन्त्रण नहीं रह जाता।

प्र० : यदि कोई हरिजन लड़का फौजमें भर्ती होना चाहे तो संघ क्या करे?

उ० : उसको भर्ती होने देना चाहिए। उसपर न कांग्रेसकी नीति लागू की जा सकती है, और न अहिंसाकी नीति ही। जिस चीजमें वह अपना विशेष हित समझे, वही करे।

प्र० : हरिजन मानते हैं कि जिन मन्दिरोंमें उनको जाने की मनाही है, सवर्ण हिन्दुओंको उनका वहिष्कार करना चाहिए।

उ० : उनकी यह माँग बिलकुल सही है। हरिजन-सेवकका तो यह आवश्यक कर्त्तव्य है कि जहाँ हरिजन न जा सकते हों वहाँ वह न जाये और दूसरे सवर्णोंको भी जाने से रोकने की कोशिश करे।

प्र० : कई पाठशालाओंमें हरिजनोंको अपने बच्चोंको भेजनेका कानूनी हक है। इसी तरह कुओंका इस्तेमाल करने का भी हक है। लेकिन जनताका विरोध तो जारी ही है। तो क्या हरिजन अदालतोंका आश्रय लेकर उनका उपयोग करें या जबतक जनता अनुकूल न हो जाये तबतक ठहरे रहें?

उ० : जहाँ हरिजनोंको मार-पीटका डर नहीं है वहाँ वे अवश्य अपने कानूनी हकका उपयोग करें और जहाँ आवश्यक हो वहाँ अदालतोंका सहारा लें। दूसरी तरफ हरिजन-सेवक सवर्णोंमें आन्दोलन जारी रखें, सिर्फ कानूनी मददके आधारसे सन्तुष्ट न रहें।

प्र० : क्या मेहतरोंकी स्थितिको सुधारनेके लिए पाखाना-सफाई आदि के ढंगमें सुधार करना आवश्यक नहीं है?

उ० : बहुत आवश्यक है। जबतक यह सुधार नहीं होता उनकी हालत दयनीय रहेगी। इस सुधारके लिए यह आवश्यक है कि सवर्ण लोग और हरिजन-सेवक खुद भी भंगीका काम करें। जिस ढंगसे आज भंगी काम करते हैं, कोई भी सवर्ण उस ढंगका काम नहीं करेगा। वह शास्त्रीय ढंग अख्तियार करेगा। वह बाँसके टोकरेमें कभी मैला नहीं ढोयेगा। वह मैले पर साफ व सूखी मिट्टी डालेगा

और उसे धातुके वर्तनमें ही उठायेगा। वह भरसक मैलेको हाथ लगाने से बचेगा। वह पानी और झाड़ू आदिकी मददसे मैलेके वर्तनको साफ करेगा। काम करने के बाद तुरन्त नहायेगा, और मैला साफ करने के समय खास कपड़े पहनेगा। इन सब सुधारोंके लिए बहुत पैसोंकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है विचारकी, उद्यमकी और आदर्श-प्रेमकी। दूसरे धन्धोंकी तरह इसके लिए किसी खास जातिकी भी आवश्यकता नहीं है। यह क्रिया सबको ऐसे ही सीख लेनी चाहिए जैसे खाना पकाने की क्रिया। प्रत्येक मनुष्यपर अपना मैला खुद साफ करने की जिम्मेदारी होनी चाहिए। यदि समाजमें इस आदर्शपर अमल किया जाये तो भंगियोंकी दयनीय हालत फौरन ठीक हो सकती है।

सेवाग्राम, ३ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १०-५-१९४२

११०. पत्र : दत्तात्रेय बा० कालेलकरको

३ मई, १९४२

चि० काका,

तुमने कल पूरी रुचि नहीं ली। छोटी-मोटी बातें मैं सचमुच भूल जाता हूँ। मैंने तो तुम्हारा नाम सुझाया था। तुमने नाही की, इसलिए फिर चुप रह गया। उपाध्यक्षके[1] पदके लिए तुम्हींको किसीका नाम सुझाना था। लेकिन यह सब सुधारा जा सकेगा। अभी तो जैसे-तैसे नावको नदीमें डालना था। सम्मेलन समितिके लिए हम कुछ करेंगे। श्रीमनके आने पर न? तुम पत्र-व्यवहार चलाना। अमृतलालसे कहना कि कलका विवरण भेजे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९५७) से

१. हिन्दुस्तानी प्रचार सभाके

१११. पत्र : इन्दुमती ना० गुणाजीको

सेवाग्राम, वर्धा होकर
३ मई, १९४२

चि० इन्दु,

तेरा खत मिला। भारतानंदजीका[1] प्लॅन तो काल्पनिक है। कुछ हुआ नहि है। मैंने जो 'हरिजन' में लिखा है उसमें से कुछ लिया जाय तो भले।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०९४५) से। सौजन्य: इन्दुमती तेंदुलकर

११२. टिप्पणियाँ

देशी रियासतें और उनकी रिआया

मैंने इन पृष्ठोंमें बार-बार यह सुझाया है कि देशी रियासतोंकी रिआयाको शान्त रहना चाहिए और जहाँतक हो सके, शासकोंके साथ कोई संघर्ष मोल नहीं लेना चाहिए।[2] क्योंकि हमारे न चाहते हुए भी स्थिति बदलती जा रही है। लेकिन इस तरहके हर सुझावकी अपनी एक मर्यादा है। त्रावणकोर, मैसूर और जोधपुरमें बात बरदाश्तके बाहर हो गई मालूम होती है।

त्रावणकोरके बारे में पहले ही लिख चुका हूँ। वहाँके दो अच्छे कार्यकर्त्ताओंको[3] सिर्फ इसलिए जेलमें बन्द कर दिया गया है कि सार्वजनिक सेवाकी उनकी भावना इतनी कमजोर नहीं है कि वे निरंकुश सत्ताके आगे सिर झुका सकें।

मैसूरमें भी यही सब हो रहा है, लेकिन जरा दूसरे ढंगसे। वहाँ भी कारण तो यही है। सरकार, मैसूर राज्य कांग्रेसकी हस्तीको बरदाश्त नहीं कर पाती। मैं जानता हूँ कि राज्य कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंने सरकारको खुश करनेकी कितनी कोशिशें की हैं। मैसूरकी जनताके सामने एक स्वतन्त्रताके ध्येयको रखने के सिवा उन्होंने बाकीके तमाम महत्त्वपूर्ण मुद्दोंको उठाना छोड़ रखा है।

१. मॉरिस फ्रिडमैन, पोलैंडके एक इंजीनियर जो गांधीजी के अनुयायी बन गये थे।

२. देखिए खण्ड ७५, पृ० ४१२।

३. राज्य कांग्रेसके अध्यक्ष पट्टम ताणु पिल्लै और कार्यकारिणीके सदस्य रामचन्द्रन्; देखिए "त्रावणकोर", पृ० ८३-८४।

और अब जोधपुरसे गम्भीर समाचार मिले हैं। दूसरे राज्योंकी तरह वहाँ भी स्थानीय प्रजा परिषदने सरकारके साथ सहयोगसे काम करने की कोशिश की। सरकारको परेशान करनेवाली कोई बात उन्होंने छेड़ी नहीं। लेकिन, बहुतेरी दूसरी रियासतोंकी तरह राजपूतानेकी इन रियासतोंमें भी कई जागीरदार हैं। वे राजाओंके भागीदार हैं, और उनसे सत्ता प्राप्त करते हैं। उनकी जागीरोंको राज्यके अन्दर राज्य कहा जा सकता है। उनपर किसी कानूनकी सत्ता नहीं चलती। अंग्रेजी हुकूमतका भी उनपर सीधा अंकुश नहीं है। राजा लोग हमेशा उनसे डरते ही रहते हैं। अपनी जागीरमें रहनेवाली प्रजापर वे जिस तरह चाहें हुकूमत कर सकते हैं। राजा-महाराजा उसमें हस्तक्षेप करने की हिम्मत नही कर सकते। फलत: इन जागीरोंमें रहनेवाली प्रजाकी स्थिति देशी रियासतोंकी दुनियामें सबसे बुरी है। मुझे पता चला है कि एक जागीरदार और उसकी प्रजाके बीच कोई झगड़ा हुआ है। इसमें से एक महत्त्वका प्रश्न खड़ा हो सकता है। ब्रिटिश भारतकी तरह देशी रियासतोंमें भी लोकप्रिय प्रजा परिषदके विरोधमें शासकोंकी कृपापात्र संस्थाएँ खड़ी करवाई जा रही हैं। अगर प्रजा मण्डलोंको कुचल देने के लिए जान-बूझकर ऐसी कोशिशें की जाती हों तो उन्हें इस चुनौतीको स्वीकार करके हर तरह का जोखिम उठाने को तैयार हो जाना चाहिए। उन्हें विश्वास रखना चाहिए कि स्वतन्त्रता और सत्यको सदाके लिए कभी दबाया ही नहीं जा सकता। लेकिन मैं तो अब भी यह आशा रखता हूँ कि राजा-महाराजा और उनके सलाहकार, अपने और हिन्दुस्तानके भलेके लिए, कई रियासतोंमें पाई जानेवाली उस वृत्तिको रोकेंगे जिसे सिवा अंधेरगर्दीके और कोई नाम दिया ही नहीं जा सकता।

अफीमचियोंके बारेमें

एक पत्र-लेखक लिखते हैं:

राजपूताना (मारवाड़)में लोग अफीमके पक्के व्यसनी होते हैं, इस बात का पता आपको है या नहीं, मैं नहीं जानता। शादी हो, गमी हो, या कोई उत्सव-समारोह हो, मेहमानोंको अफीम देनी ही पड़ती है। इसके लिए जर और जायदाद गिरवी और रहन रखनी पड़े तो परवाह नहीं, मगर अफीम तो देनी ही होती है। इधर एक आदमीके लिए रोज डेढ़ या दो तोला और कभी-कभी इससे भी ज्यादा अफीम तो मामूली चीज मानी जाती है। पाँच-पाँच तोले अफीम खानेवालों को भी मैं जानता हूँ। पिछले दिनों जब मेरे पिताजी का स्वर्गवास हुआ तो मैं अपने घर गया। एक ब्राह्मण मित्र मातम-पुर्सीके लिए आये। सबसे पहले उनके सामने अफीम पेश की गई, जो आम तौरपर एक खास डिब्बीमें रखी जाती है। डिब्बीमें तीन तोला अफीम थी। ब्राह्मण मित्रने कहा, रखिए, मैं स्वयं ले लूंगा। उन्होंने तुरन्त ही तीनों तोला अफीम अपनी हथेलीपर रख ली और उसे गटसे निगल गये। मैं तो यह देखकर दंग ही रह गया। इसपर भी मेरे वे मित्र कहने लगे कि अभी उनका मन नहीं भरा। मैंने पूछा कि कितनी अफीम हो तो आपका मन भरेगा।

वह बोले, चार तोला। अगर इन अफीमचियोंको समयपर अफीम न मिले तो वे मांसके लोंदोंकी तरह निकम्मे बन जाते हैं। अफीमका यह व्यसन हमारे समाजको घुन की तरह खा रहा है।

दीनबन्धु एण्ड्रयूज और पियर्सनने[1] अफीमचियोंके लिए बहुत मेहनत की थी। शराबियोंकी हमने जितनी चिन्ता की उसकी आधी भी अफीमचियोंकी नहीं की है। जहाँतक समाजका सम्बन्ध है, शराबका प्रभाव जितना स्पष्ट दिखाई पड़ता है उतना अफीमका नहीं। लेकिन इन दोनोंमें चुनाव करने की कोई बात ही नहीं है। अफीमके गुलामोंकी बुद्धि पथरा जाती है। वे जीते-जागते यन्त्र बन जाते हैं, और सिवा अफीम के दूसरी किसी बातमें उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती। उनकी इस समस्याको कैसे हल किया जाये, यह सचमुच एक बहुत ही कठिन सवाल है। जबतक हमारे पास अच्छे, अनुभवी और मँजे हुए सेवकोंकी अपार सेना न हो, तबतक समाजके इन लाचार लोगोंको प्रभावित करना सम्भव नहीं है। यदि डाक्टरी पेशे के लोग इस सामाजिक रोगके विषयमें छानबीन करके इसे दूर करने के उपाय ढूँढ़ निकालें तो उनकी वह सेवा अमूल्य हो सकती है।

सेवाग्राम, ४ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १०-५-१९४२

११३. जरूरी चीज

हममें से जिन्हें हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानके लोगोंसे प्रेम है और जिन्होंने वफादारीके साथ उनकी सेवा करने की कोशिश की है, उनके लिए यह बहुत ही दुःखकी बात है कि हमारी मुसीबतकी घड़ीमें हमारे खिलाफ द्वेष-भाव बढ़ता चला जा रहा है। मैं कबूल करता हूँ कि हिन्दुस्तानके साथ हमारा बरताव अच्छा नहीं रहा और अब भी अच्छा नहीं है। परन्तु स्याहीका दाग क्या स्याहीसे धुल सकता है? जब 'दुश्मन' भी सख्त मुसीबतमें हो तो क्या उसपर थोड़ी दया नहीं करनी चाहिए? जब आप हमें हिन्दुस्तानसे हट जाने को कहते हैं तो क्या आप अपने लोगोंको जापानके आगे घुटने टेकने की सलाह नहीं देते, क्योंकि आप अच्छी तरह जानते हैं कि एक देशके रूपमें आपकी अहिंसा इतनी बलवान नहीं है कि किसी विदेशी आक्रमण या आधिपत्यका मुकाबला कर सके? अगर आपमें वह शक्ति होती तो हम आपको अपने अधीन कभी न रख सकते। लेकिन क्या आप बीते गुनाहोंको भूलकर

१. डब्ल्यू० डब्ल्यू० पियर्सन, एक ब्रिटिश मिशनरी जिन्होंने बंगालमें कार्य किया था और कुछ समय शान्तिनिकेतनमें शिक्षक रहे थे।

नई पीढ़ीके उन अंग्रेज स्त्री-पुरुषोंकी नेकनीयतीपर भरोसा नहीं रख सकते जिन्होंने साम्राज्यवादी मनोवृत्ति छोड़ दी है? क्या, आपको छोड़कर, कांग्रेसके अन्दर एक भी ऐसा नेता है जो अहिंसामें पूरे दिलसे यकीन रखता हो? सिर्फ आपकी ही नीति तर्कसंगत है, और एक आप ही ब्रिटेनके सच्चे दोस्त हैं।

एक अंग्रेज पत्र-लेखकके करुणाजनक पत्रका यह सार है। युद्धकी घोषणाके बाद लॉर्ड लिनलिथगोके साथ अपनी पहली मुलाकातके वक्त मेरी जो मनोदशा थी, उसका वर्णन करते हुए मैंने अपने पत्रमें[1] उन्हें जो-कुछ लिखा था, उसे मैं यहाँ दोहरा-भर सकता हूँ। उस पत्रमें मैंने जो कहा था उसमें से आज न तो मुझे कुछ वापस लेना है, न किसी चीजके लिए पछताना है। जैसा मित्र मैं अंग्रेजोंका उस समय था वैसा ही आज भी हूँ। मुझमें उनके प्रति तनिक भी द्वेष नहीं है। परन्तु उनके महान गुणों की तरह उनकी कमजोरियोंकी तरफसे भी मैं कभी आँखें मूँद नही सका।

मैं इस बातसे इनकार नहीं करता कि आम जनतामें अंग्रेजोंके प्रति द्वेष है और घटनाचक्रने उसे और भी तीव्र बना दिया है। परन्तु मेरा दावा है कि मैंने देशको जो नुस्खा दिया है उसीका यह असर है कि वह द्वेष काबूमें रहा है और कुछ हदतक उसका जहर भी निकल गया है।

इसलिए मेरा यह विश्वास हो गया है कि अंग्रेजों और हिन्दुस्तानियोंको अपने आपसी सम्बन्ध-विच्छेदके लिए लड़ाईके बाद नहीं, बल्कि लड़ाईके दरम्यान ही राजी हो जाना चाहिए। इसमें, और सिर्फ इसी एक तरीकेमें उन दोनोंकी — और दुनियाकी भी — सलामती है। मैं खुली आँखों यह देख रहा हूँ कि उनके और हमारे बीच मनमुटाव बढ़ रहा है। अंग्रेज सरकारकी हर बातका यही अर्थ लगाया जाता है कि उसका हेतु अपनी रक्षा और अपना फायदा करना ही है; और मुझे लगता है कि यह मान्यता है भी ठीक। इंग्लैंड और हिन्दुस्तान दोनोंके समान और संयुक्त हित-जैसी कोई चीज है ही नहीं। एक परा कोटिकी मिसाल लीजिए। फर्ज कीजिए कि अंग्रेज जापानियोंसे जीत गये, तो इसका यह मतलब नहीं होगा कि जीत हिन्दुस्तानकी हुई। लेकिन यह कोई निकट भविष्यमें होनेवाली बात नहीं है। इस बीच विदेशी सिपाहियोंका हिन्दुस्तानमें लाया जाना, बर्मा वगैरहसे भागकर आनेवाले गोरों और हिन्दुस्तानियोंके साथ उस भेद-भावयुक्त बरतावका होना जो एक निर्विवाद तथ्य है और सिपाहियोंका जाहिरा तौरपर मनमाना व्यवहार — ये कुछ ऐसी बातें हैं जो अंग्रेजोंके इरादों और वादोंके प्रति अविश्वासको और भी बढ़ा रही हैं। मुझे लगता है कि वे एकाएक अपने परम्परागत स्वभावको बदल नही सकते। जातीयताके गर्वको वे दोष नहीं, बल्कि गुण समझते हैं। और यह बात सिर्फ हिन्दुस्तानके बारेमें ही नहीं, बल्कि आफ्रिका, बर्मा और लंकाके बारेमें भी उतनी ही सही है। जातीयताके अभिमानका प्रतिपादन किये बिना ये देश पराधीन रखे ही नही जा सकते थे।

१. अनुमानतः ५-९-१९३९ का "शिमला यात्रा" शीर्षक लेख जिसे गांधीजी ने वाइसरायको भेजा था; देखिए खण्ड ७०, पृ० १७८-८०।

यह एक तीव्र रोग है और इसका उपचार भी तीव्र ही होना चाहिए। उपचार मैं बता चुका हूँ कि कमसे-कम हिन्दुस्तानसे तो अंग्रेजोंको फौरन ही, पूरी तरह, व्यवस्थित रीतिसे हट जाना चाहिए। असलमें उनके लिए मुनासिब तो यह होगा कि वे उन तमाम गैर-यूरोपीय देशोंसे हट जायें जो इस समय उनके कब्जेमें हैं। यह अंग्रेजोंका सबसे अधिक वीरतापूर्ण और शुद्धतम कार्य होगा। इससे मित्र-राष्ट्रोंके पक्षको पूरी तरह नैतिक आधार मिल जायेगा और हो सकता है कि इसके परिणाम-स्वरूप युद्धरत राष्ट्रोंके बीच अत्यन्त सम्मानपूर्ण सुलहका रास्ता भी खुल जाये। और सम्भव है कि साम्राज्यवादके इस शुद्ध अन्तके कारण फासिज्म और नाजीवादका भी अन्त हो जाये। जो उपाय मैंने सुझाया है वह फासिस्ट और नाजी तलवारको भोथरा तो अवश्य ही कर डालेगा, क्योंकि ये दोनों भी साम्राज्यवादकी उपज हैं।

जैसी पत्र-लेखकने सुझाई है, राष्ट्रवादी हिन्दुस्तानकी वैसी मददसे ब्रिटेनकी विपत्ति कम नहीं हो सकती। अगर हिन्दुस्तानको इस कामके लिए किसी तरह प्रोत्साहित भी किया जा सके तो भी इसके लिए उसके पास आवश्यक साधन नहीं हैं। और राष्ट्रवादी भारतके उत्साहको बढ़ाने के लिए यहाँ है ही क्या? जिस तरह सूरजके न होने पर उसकी दीप्ति अनुभव नहीं की जा सकती, उसी तरह जबतक स्वतन्त्रताका सूर्य सचमुच प्रकट नहीं होता तबतक उसकी दीप्ति भी अनुभव नहीं की जा सकती। हममें बहुत लोग ऐसे हैं जो शान्तिके साथ और सन्तुलित मनसे हिन्दुस्तानकी सम्पूर्ण स्वतन्त्रताकी कल्पना भी नहीं कर सकते। स्वतन्त्रताके तेजके अनुभवसे पहले शुरूमें एक धक्का लग सकता है। इस धक्केकी आवश्यकता है। हिन्दुस्तान एक बड़ा राष्ट्र है। इस धक्केके लगने का उसपर क्या असर होगा और वह उसका क्या जवाब देगा, सो कोई नहीं कह सकता।

इसलिए मैं महसूस करता कि मुझे अपनी सारी शक्ति अपने इस परम ध्येयकी प्राप्तिमें लगा देनी चाहिए। ऊपरके पत्रमें लेखकने यह स्वीकार किया है कि अंग्रेजोंने हिन्दुस्तानके साथ अन्याय किया है। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि अंग्रेजोंकी कामयाबीकी पहली शर्त यह है कि वे इस अन्यायको अभी दूर करें। यह काम विजयसे पहले होना चाहिए, बादमें नहीं। हिन्दुस्तानमें अंग्रेजोंकी मौजूदगी जापानियोंके लिए हिन्दुस्तानपर आक्रमण करने के निमन्त्रण-जैसी है। अगर अंग्रेज यहाँसे चले जायें तो प्रलोभन भी दूर हो जायेगा। परन्तु मान लीजिए कि ऐसा न हो तो भी आजाद हिन्दुस्तान आजकी अपेक्षा आक्रमणका सामना ज्यादा अच्छी तरह कर सकेगा। शुद्ध असहयोगको तब अपना जौहर दिखाने का अवसर मिलेगा।

सेवाग्राम, ४ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १०-५-१९४२

११४. प्रश्नोत्तर

बाँझ गायें

प्र० : बाँझ गायोंसे हल जोतने या अनाज पीसने की चक्की चलाने-जैसा काम क्यों न लिया जाये? क्या यह उन्हें बूचड़खानोंमें जाने से रोकने का एक रास्ता नहीं होगा?

उ० : किसी समय यह सवाल एक पंजाबी सज्जनके उत्साहके कारण बहुत चर्चा का विषय बन गया था। उनका कहना था कि दुधारू गायोंसे भी हल जोतने का काम लेना चाहिए। उनका दावा यह था कि गायोंको कसरत मिलने से वे अधिक दूध देंगी और वह दूध अधिक पौष्टिक होगा। कुछ भी हो यदि गाय अपने शरीरको थोड़ी भी हानि पहुँचाये बिना कोई मेहनतका काम कर सकती है तो उससे वैसा काम लेने में मेरी गो-भक्ति बाधक नहीं होती। सच तो यह है कि जुताई में काम आनेवाले पशुओं के प्रति हमारे व्यवहारमें बहुत ही त्रुटि रही है। इसलिए मैं बाँझ गायोंसे हलकी मेहनतवाले काम लेने का स्वागत तभी करूँगा जब उसके कारण लोग दूसरे पशुओंके प्रति आजसे अधिक दयालु बन सकें।

कुएँसे बचे तो खाईमें

प्र० : आप लोगोंको सलाह देते हैं कि जिन शहरोंपर बम गिरने का डर है, उन्हें छोड़कर वे गाँवोंमें चले जायें।[1] तो क्या आप सोचते हैं कि गाँव सुरक्षित हैं? वास्तवमें गाँववाले तो शहरवालों से भी ज्यादा डरे हुए हैं। वहाँ रक्षाके लिए पुलिसका भी पूरा प्रबन्ध नहीं है, और लोग डाकुओं तथा लुटेरोंके त्राससे रात-दिन थरथराते रहते हैं। क्या यह कुएँसे बचे तो खाईमें गिरने-जैसा नहीं है?

उ० : मैंने गाँवोंमें जाने की सलाह इसलिए नहीं दी है कि लोग वहाँ आराम का जीवन बिता सकेंगे। मेरी योजनामें भयका कोई उपादान नहीं था। अब यह बात बिलकुल साफ हो चुकी है कि सैनिक दृष्टिसे भी यह योजना *अच्छी थी और अच्छी* है। आपने जिन खतरोंका जिक्र किया है वे गाँवमें जानेवालों के साथ लगे ही हुए हैं, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन मेरे खयालमें इसीलिए गाँवोंमें जाना और भी जरूरी है। देहातियोंमें हिम्मत पैदा करने और उनके डरको मिटाने का काम सुयोग्य अनुभवी शहरी नहीं करेंगे तो और कौन करेगा? वे न सिर्फ गाँवोंमें जानेवाले बूढ़ों और अपंगोंको सहारा देंगे, बल्कि इन पृष्ठोंमें सुझाये जा चुके अनेक उपायों द्वारा

1. देखिए पृ० ३१-३२ और ७५।

गाँववालों की सहायता और सेवा भी करेंगे। इस समय हर सच्चे कामके लिए हिम्मतकी सख्त जरूरत है।

पारी-पारीकी हुकूमत

प्र० : साम्प्रदायिक समस्याको सुलझाने के लिए हिन्दुस्तानकी आबादीके दो भाग क्यों न कर दिये जायें? उदाहरणार्थ एक भागमें मुसलमान, ईसाई और पारसी हों, तथा दूसरेमें हिन्दू, सिख और दलित वर्ग। पहला भाग चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा पाँच सालतक शासन चलाये और इसी तरह दूसरा भाग उसके बाद अगले पाँच सालतक शासन करे। क्या इस तरीकेसे मौजूदा अविश्वास दूर नहीं हो जायेगा? देशी रियासतोंके सम्बन्धमें क्या चुने हुए राजाओंकी एक समितिको सभी देशी रियासतों पर राज करने का काम नहीं सौंपा जा सकता ?

उ० : कागजपर तो आपका प्रश्न अच्छा मालूम होता है, लेकिन अगर आपके सुझावपर अमल किया गया तो व्यवहारमें वह भहराकर गिर पड़ेगा। शासन चलाने का काम जितना आप मानते लगते हैं उतना आसान नहीं है। हाँ, जब कोई सशस्त्र सत्ता सूत्रधारका काम करती हो तो आपकी यह योजना कठपुतलीकी तरह जरूर चल सकती है। लेकिन वह हमारी सरकार न होगी। जो सूत्रधार होगा वह शासन चलायेगा। और वह पुराना तरीका है। मैंने इससे अच्छा तरीका — अहिंसाका तरीका बताया है। किसी भी तरीकेमें पहली शर्त यह है कि देशसे विदेशी सत्ताका नामोनिशान मिटा दिया जाये। तब, और तभी हम अपने सच्चे स्वरूपको — अपनी शक्ति और अपनी दुर्बलताओंको — पहचान पायेंगे। जब हम विदेशी या पराई सत्तासे मुक्त और स्वतन्त्र होंगे तभी हम यह जान पायेंगे कि रोजमर्राके सवालोंको किस तरह हल किया जाये। उस समय हमारा शासन आपके बताये साफ-सुथरे ढंगसे नहीं चलेगा। उस वक्त निर्णय या तो तलवारसे होगा या विवेकसे।

सेवाग्राम, ४ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १०-५-१९४२

११५. पत्र : मगनलाल प्रा० मेहताको

७ मई, १९४२

चि० मगन,

तेरा पत्र मुझे अच्छा नहीं लगा। सगा भाई इस तरह बोझ माना जाये, यह ठीक नहीं लगता। लेकिन इस मामलेमें मैं तुझपर कोई दबाव नहीं डाल सकता। मेरा तो विश्वास है कि यदि उसपर प्रेम उँडेला जा सके तो रतिलाल[1] सुधर सकता

१. मगनलाल मेहताका भाई

है। यह प्रेम तेरे सिवा उसे और कहीं से नहीं मिलेगा। उसके अलग रहने का प्रबन्ध मैं नहीं कर सकता। यदि वह यहाँसे गया तो उसका बुरा हाल होगा, इसमें मुझे सन्देह नहीं है। चम्पा[1] उसके साथ कैसे रह सकती है? अतः जो तुझे ठीक लगे सो कर।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १०२८) से। सौजन्य: मंजुला म० मेहता

११६. पत्र: कृष्णचन्द्रको

७ मई, १९४२

चि० कृ० चं०,

मैंने मथुरानाथको कहा है कि तुमारी इजाजत लेकर ही गोशालामें काम कर सकते हैं। अगर करे भी तो आश्रममें कैसे रह सकते हैं? मैं यह भी मानता हूं कि जो आश्रममें काम नहीं देते हैं वे न रहे। यही सही नीति है।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

मुझे जो पूछना है सो पूछो। मेरा जाने का कुछ निश्चय नहीं है।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४२३) से

११७. तार: चुन्नीलाल सेनको[2]

[७ मई, १९४२ या उसके पश्चात्][3]

अँगूठेकी छाप अवश्य दे दी जाये।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१. रतिलालकी पत्नी

२. यह चुन्नीलाल सेनके ४ मई, १९४२ के इस तारके जवाबमें था: "सतीन सेनको छह महीनेकी सजा हो गई। अधिकारी भारत-रक्षा नियमोंके अन्तर्गत अँगूठेकी छाप लेने पर जोर देते हैं। तार द्वारा हिदायत भेजें।"

३. चुन्नीलाल सेनका तार ७ मईको वर्धा पहुँचा था।

११८. पत्र : परचुरे शास्त्रीको

सेवाग्राम, वरास्ता वर्धा
८ मई, १९४२

शास्त्रीजी,

आपका पत्र मिला था। मनहरजी ने सब हाल सुनाये। जानकीबहन पैसे भेज देगी। और सब-कुछ कर रहा हूं।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६७०) से

११९. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेवाग्राम, वर्धा
९ मई, १९४२

चि० जवाहरलाल,

तुमारे खतकी मैं रोज आशा रखता था। आज आया। तुमारे थोडा तो आराम चाहीये ही। इंदुके कामका बयान मुझे वहोंतोंसे मिला। हमेशा अच्छी तबीयत रहे तो इंदु बिलकुल अच्छी हो जायेगी।

फिरोज भी बहूत काम कर रहा है, ऐसा सबने सुनाया।

चंद्रसिहके लिये जो-कुछ शक्य है सो होता है। माध्वीको बडी खांसी हो गई है। मैं रोज देखने जाता हूं। चंद्रसिह और भागीरथी खुश देखने में आते हैं। गरमीकी भी अब तो बहूत शिकायत नहीं करते हैं। चंद्रसिहकी पढ़ाईकी समस्या कठिन है। मैं दीनबंधु स्मारकके लिये आठ दिनके लिये मुंबई जा रहा हूं। वापस आने के बाद जो हो सके करुंगा। चिंता न करें।

मौलानाके खत आते रहते हैं। वे भी बीमार हैं। लिखते हैं इस महीनेकी आखरीमें वर्धा आवेंगे। शायद उन्हींके साथ तुम भी आओगे।

बा अच्छी है।

तुम दोनोंको,

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्रसे : गांधी-नेहरू पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१२०. पत्र : कृष्णचन्द्रको

९ मई, १९४२

चि० कृ० चं०,

धीरेन और प्रतापके वारेमें जो-कुछ योग्य है सो किया जाय। चंद्रसिंहका किस्सा अलग है। उनको आस्ते-आस्ते चलाना। ऐसे अपवाद करना ही होगा। सच्चा इलाज तो एक ही ऐसे लोगोंको लेना ही नहीं तो आश्रम अपनापन खो बैठेगा।

अस्वादकी फिकर न करना। व्यक्तियां जहां तक जा सके जांय। हमेशा याद दिलाते रहें। आश्रम आश्रम नहीं है, ऐसा समझो। लेकिन हम थोड़े आश्रमी होने की कोशीश करनेवाले हैं। यहां उदारता ही काम दे सकती है। दूध-घी की तो लाचारी है। वाटकर हमें मिले उसका उपयोग करना।

दतून तो कोई इधर-उधर नही कर सकते हैं।

पानीका हो सके सो करो। मेरे आने पर वताओ।

इससे आगे आज नहीं। ता० १८को आनेकी आशा है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४२५) से। एस० एन० २४४७९ से भी

१२१. मैसूर

मैसूर सरकारने अपने यहाँ की राज्य कांग्रेसके खिलाफ जो दमन-नीति चलाई है, उसका जिक्र इन स्तम्भोंमें पहले किया जा चुका है।[1] अब वहाँ से खबर मिली है कि भद्रावतीमें पुलिसके हमलेके फलस्वरूप एक उससे भी अधिक शोकजनक घटना घटी है। पुलिसने जनताकी निहत्थी भीड़पर गोलियाँ चलाईं; जिससे तीन आदमी मारे गये, जिनमें तीन सालका एक बच्चा भी था। मैं यहाँ इस घटनाकी तफसीलमें नहीं उतरना चाहता। कांग्रेसके बयानके मुताबिक यह सारी शोकजनक घटना मजदूरोंके एक शान्त प्रदर्शनसे घटी है। मैसूर सरकारकी तरफसे ऐसा जाहिर किया गया है कि लोगोंकी भीड़ने भद्रावतीके पुलिस थानेपर हमला किया था, जिसके कारण पुलिसको गोली चलानी पड़ी। मैसूर राज्य कांग्रेसके अध्यक्षने इस आरोपसे इनकार

१. देखिए "टिप्पणियाँ" के अन्तर्गत उप-शीर्षक "देशी रियासतें और उनकी रिआया", पृ० ९२-९३।

किया है और जाँचकी माँग की है। अगर इस जाँचकी निष्पक्षताके बारेमें सबको सन्तोष न हुआ तो यह निकम्मी ही साबित होगी। अगर लोगोंने पुलिस थानेपर हमला किया तो उसका कारण क्या था? और अगर लोग अहिंसक थे तो क्या पुलिसका गोली चलाना एक मनमाना और दहशत फैलाने के लिए ही किया गया काम न था? हर हालतमें लोगोंको आत्मबलि देने की कला सीख लेनी चाहिए। जो अहिंसक हैं उन्हें तो बिना कारण, या यों कहिए कि अपने देशप्रेमके ही कारण गोलीका शिकार बनना होगा। उस हालतमें मौतका सामना भी उसी तरह हँसते-हँसते करना जिस तरह आज जेलखानोंका करते हैं, हमारा कर्त्तव्य है। मेरी समझसे तो जीवनका ऐसा तात्कालिक अन्त जेल-जीवनकी उस लम्बी यातनासे, जो कभी-कभी भुगतनी पड़ती है, अधिक स्वागत-योग्य है। जैसे-जैसे हमारी लड़ाई अधिक व्यापक, अधिक तीव्र और अधिक वास्तविक बनती जायेगी, वैसे-वैसे जेल-जीवन भी अधिकाधिक कठोर और असह्य होता जायेगा — हमारा पिछला अनुभव हमें यही सिखाता है। उस हालतमें बहादुर और दृढ़ संकल्प लोगोंके लिए मौत राहत पहुँचानेवाली एक स्वागत-योग्य चीज बन जायेगी।

बम्बई जाते हुए, १० मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १७-५-१९४२

१२२. प्रश्नोत्तर

कांग्रेस और लीग

प्र० : मेरी रायमें मौलाना साहबने यह बड़ी अक्लमन्दीका और देशप्रेमसे भरा सुझाव रखा है कि जब भी मुस्लिम लीगकी इच्छा होगी, कांग्रेसकी कार्य-समिति उसके प्रतिनिधियोंके साथ परामर्श करने के लिए अपने पाँच प्रतिनिधि नियुक्त कर देगी। मुझे विश्वास है कि मौलाना साहबका यह सुझाव आपको अच्छा लगेगा। अगर आपको यह पसन्द हो तो मैं चाहूँगा कि आप इसका सार्वजनिक रूपसे समर्थन करें। हिन्दुओं और मुसलमानोंको मिलाने में यह चीज बहुत काम देगी।

उ० : मुझे मौलाना साहबके सुझावका समर्थन करने में जरा भी हिचक नहीं है। अगर, मेरे समर्थनसे या उसके बिना भी, ये दोनों पक्ष मिल सकें तो मुझसे बढ़कर खुशी और किसीको न होगी। मुझे हमेशा ऐसा लगा है कि दोनों पक्षोंमें जरूर कहीं कोई बुनियादी नुक्स है कि इतनी सीधी-सी बात भी अबतक नहीं हो सकी कि वर्त्तमान गतिरोधको मिटाने का दृढ़ निश्चय लेकर दोनों पक्षोंके सयाने लोग आपसमें मिलें।

चतुराई-भरी युक्ति

प्र० : राष्ट्रभाषाके, जिसे आप हिन्दुस्तानी कहते हैं, एक अंगके रूपमें उर्दू सीख लेने की आपकी सलाह तो अच्छी ही है। लेकिन निजाम राज्यमें उर्दूकी तरफसे जो प्रचार किया जा रहा है उसके बारेमें आप क्या कहते हैं? तेलुगुकी परीक्षाके एक प्रश्नपत्रका पहला प्रश्न इस प्रकार है :

> "यदि संघ-शासनके उपयोगके लिए हिन्दुस्तानको एक सर्वसामान्य भाषा की अनिवार्य आवश्यकता हो, और हिन्दुस्तानीका पक्ष काफी मजबूत हो, तो मुझे यह लगता है कि इस विश्वविद्यालयको चाहिए कि वह उर्दूको तुरन्त ही शिक्षाका माध्यम बना दे — खासकर इसलिए कि वह इस प्रान्तकी मातृभाषा है। जो लोग इस भाषाके अधिक समृद्ध बनने तक राह देखना चाहते हैं, वे बड़ी गलती करते हैं और उनकी दलीलें उलटी-जैसी हैं। जबतक विश्वविद्यालय ज्ञानकी सभी शाखाओंकी शिक्षाके लिए इस भाषाका उपयोग नहीं करते तबतक यह दरिद्र ही बनी रहेगी।"

यहाँ यह याद रखना चाहिए कि देशके इस भागमें अधिकांश लोगोंकी मातृभाषा उर्दू नहीं, तेलुगु है। परीक्षाके प्रश्नपत्रों द्वारा उर्दूके पक्षमें प्रचार करने की इस चतुराई-भरी युक्तिके विषयमें आप क्या कहिएगा?

उ० : मैं जानता हूँ कि यह एक चतुराई-भरी और विचित्र युक्ति है। जो प्रश्न तीव्र मतभेदका विषय बना हुआ है उसके प्रचारके लिए परीक्षाके प्रश्नपत्रोंका उपयोग शायद ही उचित कहा जा सके। मैं यह भी मानता हूँ कि निजाम राज्यकी प्रजाकी मातृभाषा उर्दू नहीं है। राज्यकी कुल आबादीमें कितने फीसदी लोग तेलुगु जाननवाले हैं, मैं नहीं जानता। राष्ट्रभाषाकी मेरी कल्पनामें महान प्रान्तीय भाषाओंको उनके स्थानसे च्युत करने की बात नहीं है, बल्कि उसके अनुसार तो राष्ट्रभाषाका ज्ञान प्रान्तीय भाषाके ज्ञानके अतिरिक्त प्राप्त करना है। और न मैं यह अपेक्षा ही रखता हूँ कि देशके करोड़ों लोग कभी राष्ट्रभाषा सीखेंगे। जिन लोगोंकी राजनीतिमें रुचि है और जिन्हें अन्तर्प्रान्तीय सम्बन्ध रखने हैं, वे ही इसे सीखेंगे। एक पत्र-लेखक तो यह सुझाते हैं कि मुझे राष्ट्रभाषाके बदले पड़ोसी प्रान्तोंकी भाषाएँ सीखने की सलाह देनी चाहिए। और वे कहते हैं :

> असमवालों को हिन्दी अथवा उर्दू, और अब आपके अनुसार हिन्दी और उर्दू सीखने की अपेक्षा बँगला सीखने में अधिक लाभ है।

अगर अंग्रेजीको केवल अन्य भाषाके रूपमें ही नहीं, बल्कि समूची उच्च शिक्षाके माध्यमके रूपमें सीखने का असह्य बोझ हमारे सिर न होता तो अपने पड़ोसियोंकी भाषा सीखना और अखिल भारतीय व्यवहारके लिए राष्ट्रभाषा सीखना तो निश्चय ही हमारे लिए बायें हाथका खेल बन जाता। मेरी राय तो यह है कि जो भी लड़का या लड़की हिन्दुस्तानकी छह भाषाएँ न जाने, मानना चाहिए कि उसके

संस्कार और शिक्षणमें कमी रही है। अंग्रेजी जाननेवाले भारतीय जब अंग्रेजीके सिवा दूसरी किसी भाषाको — अपनी मातृभाषाको भी — सीखने के विचार-मात्रसे काँपते हैं तो यह उनके थके हुए मस्तिष्कका अचूक प्रमाण होता है। क्योंकि विरोधियोंमें अधिकतर अंग्रेजी जाननेवाले हिन्दुस्तानी ही होते हैं। मैंने कभी यह अनुभव नहीं किया कि हिन्दीके साथ-साथ उर्दू सीखने में आश्रमवासियोंको कोई कठिनाई हुई है। और मैं यह जानता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकामें तमिल और तेलुगु मजदूर एक-दूसरेकी भाषा बोल सकते थे और वे कामचलाऊ हिन्दी भी जानते थे। किसीने उनसे कहा नहीं था कि उन्हें हिन्दी सीख लेनी चाहिए। किसी तरह अपने-आप ही उन्होंने यह जान लिया था कि उनको हिन्दी आनी चाहिए। निःसन्देह वे हिन्दीके विद्वान नहीं थे, लेकिन आपसी व्यवहारके लिए जितनी जरूरी थी उतनी हिन्दी वे सीख चुके थे, और वे अपने पड़ोसी जुलुओंकी भाषा भी सीख गये थे। न सीखते तो वे अपना काम-धन्धा न चला पाते। इस प्रकार वहाँ अधिकतर हिन्दुस्तानी अपनी मातृभाषाके सिवा हिन्दुस्तानकी दो भाषाएँ और जानते थे, तथा जुलू और टूटी-फूटी अंग्रेजी भी बोल लेते थे। यह कहने की जरूरत नहीं कि उनमें से अधिकतर कोई भी भाषा लिख नहीं सकते थे, और अधिकतर तो अपनी मातृभाषा भी व्याकरणकी दृष्टिसे अशुद्ध ही लिख सकते थे। इससे जो शिक्षा मिलती है वह स्पष्ट ही है।

अगर लिपिके सवालको छोड़ दें तो आप अपने पड़ोसीकी भाषा बिना किसी कोशिश और कठिनाईके सीख सकते हैं, और यदि आप ताजे हैं और आपका दिमाग थक नहीं गया है तो आप जितनी चाहें उतनी लिपियाँ भी बिना किसी कठिनाईके सीख सकते हैं। इस तरहका अभ्यास हमेशा रोचक और स्फूर्तिदायक होता है। भाषाओंका अभ्यास एक कला है और बहुमूल्य कला है।

बम्बई जाते हुए, १० मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १७-५-१९४२

१२३. प्रश्नोत्तर

बौद्धिक विश्वास

प्र० : मेरी बुद्धि तो इस बातको कबूल करती है कि मनुष्य-मनुष्यके बीच झगड़ोंको मिटाने का एकमात्र उपाय अहिंसा ही है, लेकिन अगर कोई मुझपर या मेरे देशपर हमला करे तो मेरी स्वाभाविक प्रतिक्रिया उसका जवाब हिंसासे देने की ही होती है। इसलिए जापानियोंका केवल अहिंसक विरोध करने से मुझे सन्तोष नहीं होता। मुझे यही लगता है कि अहिंसा द्वारा जो-कुछ हो सके उसके साथ-साथ मुझे उनके विरुद्ध युद्ध-प्रयत्नमें भी भरसक मदद करनी चाहिए। भले ही आज मेरा देश हमारे नहीं, बल्कि अंग्रेजोंके हाथोंमें है, परन्तु इससे जापानियोंको उसपर चढ़ाई

करने का कोई अधिकार नहीं हो सकता। लेकिन जब मैं युद्ध-प्रयत्नमें मदद देने का विचार करता हूँ तो अहिंसामें मेरा बौद्धिक विश्वास मुझे शान्त मनसे ऐसा करने नहीं देता।

उ० : आपकी कठिनाई एक सर्वसामान्य कठिनाई है। लेकिन अगर सचमुच आपकी बुद्धि अहिंसामें 'विश्वास' करती है तो वह विश्वास आपके स्वभावपर — जो असलमें सिर्फ आदत है — काबू पा लेगा। उस हालतमें आपका विश्वास आपको बतायेगा कि हिंसाकी अपेक्षा अहिंसा कहीं उच्च कोटिकी शक्ति है। इसलिए हिंसात्मक सहायतापर भरोसा करने की आपको जरूरत नहीं है। इसके सिवा आप एक बुद्धि-भ्रममें फँसे हैं। आप यह क्यों कहते हैं कि आपका देश विदेशियोंके कब्जेमें होने पर भी जापानको उसपर चढ़ाई करने का हक नहीं है? पहली बात तो यह है कि जबतक आपका देश दूसरोंके कब्जेमें है, वह आपका है ही नहीं। क्योंकि आप अपनी इच्छानुसार उसके लिए कुछ कर ही नहीं सकते। विदेशी जो चाहें कर सकते हैं और करते हैं। दूसरे, अगर जापानियोंकी आपके मालिकके साथ दुश्मनी है तो उन्हें हर तरहसे इस बातका हक है कि वे आपके मालिक की मिल्कियतपर हमला करें। हम यहाँ इस बातपर विचार नहीं कर रहे हैं कि जापानका ब्रिटेनके खिलाफ युद्धमें उतरना ठीक था या नहीं। मेरा आशय तो सिर्फ उस चीजको दिखाना है जो मुझे आपका मनोभ्रम लगता है। आपके लिए मुनासिब यही है कि आप अपने देशपर अन्यायपूर्वक कब्जा करके बैठे व्यक्तियोंको देशसे निकल जाने के लिए कहें। उनके देशसे निकल जाने के बाद आपके लिए यह तय करने का अवसर आयेगा कि यदि जापानी हमला हो तो उसका मुकाबला आप हिंसासे करें या अहिंसासे। परन्तु जितनी आसानीसे मैं यह सब कह रहा हूँ उतनी आसान यह चीज नहीं है। आपकी कठिनाई वास्तविक है। आपको लगता है कि आप अपने देशकी रक्षा करने में असमर्थ हैं। आप उसे खो चुके हैं। अंग्रेज उसकी रक्षा कर सकते हैं, बशर्ते कि आप उनकी मदद करें। अगर अंग्रेज इस देशको खाली करके चले जायें तो और कुछ नहीं तो सामरिक महत्त्वकी दृष्टिसे ही अरक्षित हिन्दुस्तानपर जापानकी चढ़ाई की सम्भावना बढ़ जायेगी और आप आक्रमणकारी सेनाका मुकाबला करने में बिलकुल असमर्थ होंगे। इसलिए इस बातको देखते हुए कि अंग्रेज तो भारतमें हैं और वे उसकी रक्षा कर सकते हैं, क्यों न हम अंग्रेजोंसे मिलकर इस आसन्न आक्रमणका सामना करें? क्या वे यह नहीं कह चुके कि जीतके बाद, अगर यहाँ उनकी कोई जरूरत न समझी गई, तो वे यहाँसे चले जायेंगे? मैं समझता हूँ कि यही आपकी दलील है। मेरी रायमें यह दलील सिर्फ देखने में ही ठीक लगती है। अंग्रेज आपकी शर्तोंपर आपकी मदद नहीं चाहते — क्रिप्स मिशनकी असफलता इसका एक प्रमाण है। उन्हें आपकी मदद अपनी शर्तोंपर चाहिए। इसलिए अगर अंग्रेजोंकी जीत हुई तो हिन्दुस्तान पर उनका कब्जा पहलेसे कहीं ज्यादा मजबूत हो जायेगा। अगर आज वे आपका विश्वास नहीं करते तो यह मानने के लिए जरा भी कारण नहीं है कि जीतके बाद वे करेंगे। तब तो वे आजसे भी ज्यादा जोरके साथ आपसे कहेंगे कि पहले कौमी

एकता कायम करो। और यह एक ऐसी चीज है जो उनके रहते इस देशमें कभी कायम नहीं हो सकती। अगर आप मेरा तरीका अपनाते हैं तो आप इस सारी उलझनसे बच जाते हैं। अगर आपकी बुद्धि अहिंसामें विश्वास रखती है तो आप पूर्ण आत्मविश्वासके साथ इस समस्याको अपने हाथमें ले सकेंगे। आप सबके मित्र हैं। आप अंग्रेजोंसे अत्यन्त सद्भावपूर्वक कहें कि अगर वे हिन्दुस्तानसे चले जायें तो हिन्दुस्तान अपनी फिक्र आप कर लेगा और शायद जापानी हमलेसे भी बच जायेगा, और अगर न बच सका तो अहिंसाके द्वारा उसका जवाब देगा। इस शुद्ध न्यायके फलस्वरूप अंग्रेजोंको हमेशाके लिए आपकी मित्रता प्राप्त हो जायेगी। और वह मित्रता इस युद्धमें भी उनके काम आ सकती है। क्योंकि उस हालतमें हिन्दुस्तान स्वेच्छासे चीन, रूस और दूसरे राष्ट्रोंकी मदद करेगा। अगर हिन्दुस्तान अपने घरको ठीक कर लेता है — और मुझे इसमें शक नहीं कि वह ऐसा कर सकेगा — तो वह चमत्कार दिखा सकता है।

बम्बई, १० मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १७-५-१९४२

१२४. पत्र : अमृतकौरको

बम्बई
१० मई, १९४२

चि० अमृत,

कल दस बजेके बाद गाडी आई। जगा बहुत अच्छी मिली। उसके मिलनेमें रंगस्वामीका बड़ा हिस्सा था। हम आरामसे १ बजे पहोंचे। अब मौन लेकर यह लिख रहा हूं। २-३५ बजे। उमेद है कि ८ दिनसे अधिक नहीं ठहरना होगा। बा और दूसरे दरदी अच्छे होंगे। बलवंतसिंह शांत होंगे।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ४२७०) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७९०२ से भी

१२५. प्रश्नोत्तर

अगर 'हरिजन' पर रोक लगी तो

प्र० : आपकी कलम दिनों-दिन तेज होती जाती है। आपको यह जानना चाहिए कि अगर जनताने आपका अनुसरण किया तो उससे सरकारके आजके युद्ध-प्रयत्नमें विघ्न पड़े विना न रहेगा। और सरकार यह कभी न होने देगी। अगर होने दे तो आपको मानना होगा कि सिर्फ ब्रिटिश सरकार ही ऐसी उदारता दिखा सकती है। और अगर 'हरिजन' पर रोक लगा दी गई तो आप क्या करेंगे?

उ० : कोई भी सरकार उदारता नही दिखा सकती। आदमी उदार तभी कहा जाता है जब अपनी क्षति करके वह कुछ करता है। परन्तु सरकारें कुछ भी अपनी क्षति करके नहीं कर सकतीं। अलबत्ता, सामान्य न्याय या उससे भी कुछ कम करके वे उदारताकी छाप लोगोंपर डाल देती हैं। न्याय ऋणकी तरह है, जिसे चुकाना ही होता है। इसलिए अगर सरकार 'हरिजन'को निर्विघ्न चलने देती है तो वह सिर्फ इसीलिए होगा कि उसकी दृष्टिसे ऐसा करना उचित है। जैसे ही उसे लगेगा कि रोक न लगाना ठीक नहीं है, वह 'हरिजन' पर रोक लगानेमें झिझकेगी नहीं। 'हरिजन'को फिरसे प्रकाशित करते समय मैंने निवेदन किया था कि प्रतिबन्ध का विरोध कर उसे चलाते रहनेकी मेरी मंशा नहीं है। इसलिए जैसे ही सरकार चाहेगी मैं उसका प्रकाशन फिरसे बन्द कर दूंगा। इससे जनताकी क्षति जरूर होगी, क्योंकि तीन साप्ताहिकोंके सिवा उसके लेख उर्दू 'हिन्दुस्तान' (लखनऊ), उर्दू 'हरिजन' (लाहौर) और मराठी 'हरिजन' (वर्धा) में खास इजाजतके साथ छपते हैं। तेलुगु और उड़ियामें भी यह छपता है। इन सब पत्रोंको ये लेख अगाऊ भेज दिये जाते हैं। और भी बहुत-से पत्र प्रति सप्ताह इसके लेखोंको या तो उद्धृत करते हैं या अनुवाद करके छापते हैं। इस प्रकारके लोकप्रिय साप्ताहिकको निकलने देनेमें उदारता-जैसी कोई बात नहीं है। इसके अलावा, अगर युद्ध-प्रयत्न स्वेच्छापूर्ण है तो मेरे लेखोंसे उसमें कोई रुकावट नही पड़ेगी। और अगर उनका लोगोंपर वैसा असर हुआ तो उसका अर्थ यह होगा कि कहीं कुछ खोट जरूर है। इसका जवाब 'हरिजन'को बन्द करके नहीं, बल्कि जिस खोटका यह पर्दाफाश करता है उसको बन्द करके दिया जाना चाहिए। मैं मानता हूँ कि मेरे लेख युद्ध-प्रयत्नमें ठोस मदद पहुँचा रहे हैं, क्योंकि जो किसी ध्येय या उसके प्रतिनिधियोंकी कमजोरियोंको उजागर करता है वह उस ध्येयकी सर्वोत्तम सेवा करता है।

आप पूछते हैं कि अगर 'हरिजन' पर रोक लगा दी गई तो मैं क्या करूँगा। मैं साफ-साफ कबूल करता हूँ कि यह मैं खुद नहीं जानता। मैंने अपनी यह आदत बना ली है कि मैं पहलेसे ही यह मानकर नहीं बैठता कि अमुक बुराई आनेवाली

हैं। जब कोई बुराई मेरे सामने आती है तो उसका इलाज मुझे अपने-आप अन्तःप्रेरणासे सूझ जाता है। ईश्वरसे डरकर चलनेवाले आदमीका हमेशा यही तरीका होता है। ईश्वरका भय अन्य सभी प्रकारके भयको निकाल देता है। परन्तु मैं आपको इतना यकीन जरूर दिला सकता हूँ कि 'हरिजन'को दबानेसे मुझे कदापि नहीं दबाया जा सकेगा।

बम्बई, ११ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १७-५-१९४२

१२६. हर ब्रिटेनवासीसे

दक्षिण आफ्रिकामें अपना सार्वजनिक जीवन शुरू करनेके साथ ही मैंने "दक्षिण आफ्रिकावासी प्रत्येक अंग्रेजके नाम एक खुला पत्र"[1] लिखा था। उसका असर हुआ था। मुझे लगता है कि संसारके इतिहासके इस नाजुक मौकेपर मुझे अब फिर वही करना चाहिए। इस बार मेरा निवेदन संसारके प्रत्येक अंग्रेजसे होगा, अपने देशके राष्ट्रीय निर्णयोंमें चाहे उसकी कोई गिनती न हो। अहिंसाके साम्राज्यमें हरएक सच्चे विचारका महत्त्व होता है, हरएक सच्ची आवाजकी पूरी कीमत होती है। 'आवाजे खल्कको नक्कार-ए-खुदा समझो' यह महज एक किताबी वाक्य नहीं है। इसमें मानव-जातिका ठोस अनुभव भरा हुआ है। हाँ, इस सूत्रकी एक मर्यादा है। यह अहिंसाके क्षेत्रतक ही सीमित है। हिंसा जनताकी आवाजको कुछ समयके लिए बिलकुल नाकाम कर सकती है। परन्तु चूँकि मेरा काम सिर्फ अहिंसाके क्षेत्रसे ही है इसलिए मेरे निकट हर सच्चा विचार, चाहे वह प्रकट हो या अप्रकट, महत्त्वका है।

हरएक अंग्रेजसे मेरी प्रार्थना है कि वह मेरी इस अपीलका समर्थन करे कि अंग्रेज आफ्रिका और एशियाके अपने सब अधीन देशों या कमसे-कम हिन्दुस्तानसे इसी घड़ी हट जायें। दुनियाकी सलामती और फासिज्म और नाजीवादके नाशके लिए यह कदम आवश्यक है। इसमें मैं जापानके 'वाद' को भी शामिल करता हूँ, क्योंकि वह इन दो वादोंकी एक खासी नकल है। अगर मेरी यह अपील स्वीकार कर ली जाये तो सब धुरी राष्ट्रोंकी और ब्रिटेनके फौजी सलाहकारोंकी भी सब जंगी योजनाएँ गड़बड़ा जायेंगी।

अगर मेरी अपील मान ली जाती है तो मुझे यकीन है कि इस समय युद्धके दिन-ब-दिन बढ़ते हुए खर्चका जो बोझ ब्रिटेनके सिर पड़ रहा है, उसकी तुलनामें हिन्दुस्तान और आफ्रिकामें जो हित उसे छोड़ने पड़ेंगे, वे तुच्छ ही होंगे। और

१. वास्तवमें शीर्षक था — "खुली चिट्ठी", देखिए खण्ड १, पृ० १७५-९५।

अगर नैतिक पहलूको भी तराजूके पलड़ेपर रख दिया जाये तब तो ब्रिटेन, हिन्दुस्तान और दुनियाका इसमें नफा-ही-नफा है।

यद्यपि अंग्रेजोंसे मेरी प्रार्थना तो यह है कि वे एशिया और आफ्रिकासे हट जायें, तो भी मैं अपनेको फिलहाल सिर्फ हिन्दुस्तान तक ही सीमित रखूंगा। अंग्रेज राजनीतिज्ञ बड़े मजेसे हिन्दुस्तानके युद्धमें शरीक होने की बात करते हैं। परन्तु युद्धका ऐलान करते समय रस्मी तौरपर भी हिन्दुस्तानसे कभी सलाह नहीं ली गई। और ली भी क्यों जाये? हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियोंका नहीं, अंग्रेजोंका है। उसको अंग्रेजी मिल्कियत कहा ही गया है। हकीकत यह है कि अंग्रेज उसके साथ जो चाहें सो करते हैं। मुझ-जैसे युद्धमात्रके विरोधीसे भी वे अनेक रीतिसे युद्ध-कर वसूल कर लेते हैं। मसलन, हरएक पत्रपर, जो मैं डाकमें डालता हूँ, युद्ध-कर के रूपमें मुझे दो पैसे, हरएक पोस्टकार्डपर एक पैसा और हर तारपर दो आने देने पड़ते हैं। इस निराशाजनक तसवीरका यह तो एक हलकेसे-हलका पहलू है। परन्तु यह अंग्रेजों की चतुराईका प्रमाण है। अगर मैं अर्थशास्त्रका अध्येता होता तो चौंका देनेवाले आँकड़ोंके साथ यह बताता कि जिसे भाषाका दुरुपयोग करके स्वेच्छापूर्ण मदद कहा जाता है उसके अलावा भी हिन्दुस्तानसे जबरदस्ती कितना-कुछ वसूल किया जा रहा है। सच तो यह है कि विजेताको किसी भी रूपमें दी गई मदद सच्चे अर्थोंमें स्वेच्छापूर्ण नहीं कही जा सकती। और अंग्रेज-विजेताके तो क्या ठाठ हैं! वह काठीपर जमकर बैठा हुआ है। अगर मैं यह कहूँ कि हिन्दुस्तानमें उसकी इच्छा कानोंकान भी कहीं मालूम पड़ जाये तो उसकी तत्काल पूर्ति होती है, तो यह अतिशयोक्ति न होगी। इसलिए यह कहा जा सकता है कि ब्रिटेनका हिन्दुस्तानके साथ निरन्तर एक युद्ध चल रहा है। वह हिन्दुस्तानपर विजेताके नाते और एक आधिपत्य-सेना द्वारा कब्जा किये हुए है। इस तरह ब्रिटेनके इस युद्धमें मजबूरन शरीक होने से हिन्दुस्तानको भला क्या फायदा हो सकता है? हिन्दुस्तानी सिपाहियोंकी बहादुरी हिन्दुस्तानके किसी भी काम नहीं आ रही।

जापानी संकट अभी हिन्दुस्तानपर आया भी नहीं है और पहलेसे ही हिन्दुस्तानियोंके घर-बारपर ब्रिटिश सेना — हिन्दुस्तानी और गैर-हिन्दुस्तानी — ने कब्जा जमा लिया है। उनमें रहनेवालोंको एकाएक उनके घरोंसे निकाला जा रहा है और आशा की जाती है कि वे खुद जैसे बने वैसे अपना बन्दोबस्त कर लें। बेदखलीके खर्चके रूपमें उन्हें एक तुच्छ-सी रकम दी जाती है, जो उनको किसी भी मंजिलपर नहीं पहुँचाती। वे अपना धन्धा खो बैठे हैं, उन्हें आसरेके लिए झोंपड़ी खड़ी करनी है और आजीविकाका साधन भी ढूंढ़ना है। ये लोग किसी देशप्रेमकी भावनासे अपने घर-बार नहीं छोड़ते। कुछ रोज पहले जब इस घटना की ओर मेरा ध्यान खींचा गया था तो मैंने इन पृष्ठोंमें लिखा था[1] कि बेदखल लोगोंको शान्ति और सबके

१. देखिए "सम्पत्ति-ध्वंसकी नीतिके बारेमें कुछ और", पृ० ७९-८०।

साथ अपनेपर आये संकटका सामना करना चाहिए। परन्तु मेरे साथियोंने इसपर आपत्ति की और मुझसे कहा कि मैं खुद इन बेदखल लोगोंके बीच जाकर उन्हें तसल्ली दूँ, या इस नामुमकिन कामको करनेके लिए अपने किसी आदमीको भेजूँ। उनकी बात सच थी। इन गरीब लोगोंके साथ जो बरताव किया गया है, वह कभी नहीं किया जाना चाहिए था। उन्हें घर खाली करनेका हुक्म देनेके साथ ही उनके रहनेका भी उपयुक्त प्रबन्ध होना चाहिए था।

पूर्वी बंगालके लोगोंको हम लगभग जल-स्थलचर प्राणी कह सकते हैं। वे अंशतः जमीनपर और अंशतः नदियोंकी जलधारापर निवास करते हैं। एक जगहसे दूसरी जगह जानेके लिए उनके पास हलकी-सी नौकाएँ होती हैं। इस डरसे कि कहीं जापानी इन नावोंका इस्तेमाल न करें, उन्हें सरकारके हवाले कर देनेका हुक्म निकाला गया है। एक बंगालीसे उसकी नाव छीनना उसके प्राणहरण-जैसा ही है। इसलिए जो उनकी नावें छीनते हैं, उन्हें वे अपना दुश्मन ही समझते हैं।

माना कि ग्रेट ब्रिटेनको यह युद्ध जीतना है। पर क्या यह जरूरी है कि वह हिन्दुस्तानकी आहुति देकर ही इसे जीते? क्या उसे ऐसा करना चाहिए?

परन्तु मुझे इस दुःखद प्रकरणका अभी कुछ और ब्योरा देना है। हिन्दुस्तानके जीवनमें आज असत्यका जो वायुमण्डल फैल गया है, उससे दम घुटता है। आप आज किसी भी हिन्दुस्तानीसे मिलें उसे आप असन्तुष्ट ही पायेंगे। परन्तु वह इस बातको खुले तौरपर कबूल नहीं करेगा। छोटे-बड़े सरकारी नौकर भी इसके अपवाद नहीं हैं। मैं यहाँ सुनी-सुनाई बात नहीं कह रहा। बहुत-से अंग्रेज अधिकारी यह बात जानते हैं। परन्तु इस प्रकारके लोगोंसे काम लेनेकी कला उन्होंने विकसित कर ली है। अगर इस व्यापक अविश्वास और असत्यका हम अपनी सारी आत्मासे विरोध नहीं करेंगे तो यह हमारे जीवनको निकम्मा बना देगा।

आप चाहें तो मैंने जो-कुछ कहा है उसपर यकीन न करें। बेशक मेरी बातका खण्डन किया जायेगा। परन्तु इन खण्डनोंका मेरी स्थितिपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

मैंने तो अपनी मान्यताके अनुसार सत्य, पूर्ण सत्य और सत्यके अतिरिक्त कुछ नहीं कहा है।

मेरे इस प्रकट चिन्तनसे मेरे देशवासी सहमत हो भी सकते हैं, और नहीं भी। मैंने इसमें किसीसे मशविरा नहीं किया है। यह अपील मैं अपने मौन-दिवसपर लिख रहा हूँ। इस समय मैं अंग्रेजोंके कर्त्तव्यका ही विचार कर रहा हूँ। जब अमेरिकामें गुलामीकी प्रथा बन्द की गई तो बहुत-से गुलामोंने उसका विरोध किया था, कुछने उसपर आँसू भी बहाये थे। परन्तु उनके विरोध और आँसुओंके बावजूद, गुलामीकी प्रथा कानूनन बन्द कर दी गई थी। लेकिन चूँकि अमेरिकामें गुलामोंकी मुक्ति उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकाके बीच हुए खूनी युद्धके परिणामस्वरूप आई थी, इसलिए वहाँके हब्शियोंकी हालत आज पहलेसे अच्छी होते हुए भी समाजके उच्च वर्ग उन्हें बहिष्कृत ही समझते हैं। मैं जो चीज माँग रहा हूँ, वह उससे बहुत उच्च कोटिकी है। मैं एक अप्राकृतिक प्रभुत्वको बिना रक्तपातके समाप्त करने और एक

नये युगकी स्थापनाकी माँग कर रहा हूँ, भले ही हममें से कुछ इसका विरोध करें और इसके खिलाफ चीखें-चिल्लायें।

बम्बई, ११ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १७-५-१९४२

१२७. पत्र : कस्तूरबा गांधीको

बम्बई
११ मई, १९४२

बा,

मेरी तबीयत ठीक है। यहाँ वहाँ-जैसी गर्मी तो होती ही नहीं। हाँ, उमस होती है। रातको काफी सर्दी थी। सब तुझे याद करते हैं। लेकिन मैं समझाता हूँ, तू वहीं अच्छी है। यहाँ तुझे बीमार पड़ते देर न लगती, और बीमार पड़ती तो यहीं रुक जाना पड़ता। दूसरोंसे सेवा करानी पड़ती, सो अलग।

खूब आराम करना। वर्मा अभी मिले नहीं हैं। आज मेरा मौन है।

रतिलालको देखना। मैं १८को लौटूंगा, ऐसा समझना। आगे भगवान जाने।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती की माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

१२८. पत्र : नारणदास गांधीको

बम्बई
११ मई, १९४२

चि० नारणदास,

जमनाको[1] पत्र लिखने के लिए कलम उठाई ही थी कि तुम्हारा लेख देखा। उसे छापने का आशय समझमें नहीं आया। इसलिए मैंने उसे अभी छापा नहीं है। मुझे लिखना।

कनैयो[2] प्रसन्न है।

समय नहीं है इसलिए यहीं समाप्त करता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

१. नारणदास गांधीकी पत्नी
२. नारणदास गांधीका पुत्र

[पुनश्च :]

हम लोग रविवारको वापस लौट रहे हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफ़िल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८६०४ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

१२९. पत्र : शान्तिकुमार न० मोरारजीको

बम्बई
११ मई, १९४२

चि० शान्तिकुमार,

तुम्हारी भेंट मिली। मैं उसे दीनबन्धु-स्मारक कोषमें डाल रहा हूँ। खूब जियो और अनेक सत्पात्र भिखारियोंकी झोली भरो।

मुझे ही गुजरातीमें और महादेवको अंग्रेजीमें क्यों लिखा? गुजरातीकी महारत डालने से लिखावट और भाषा दोनोंमें सुधार होगा। जब बहुत जल्दी हो तो गुजरातीमें बोलकर किसी लिपिकसे लिखवा लेना चाहिए। जो भी कमियाँ रह गई है उन्हें प्रयत्नपूर्वक दूर करना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७३८) से। सौजन्य: शान्तिकुमार न० मोरारजी

१३०. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको[1]

बम्बई
११ मई, १९४२

बड़े दुःखकी बात है कि मैं नासिकसे गुजरा,[2] फिर भी तुझसे नहीं मिल सका। लेकिन मेरी स्थिति ही ऐसी है। अब मैं वहाँ किसीको भेजने का प्रबन्ध कर रहा हूँ। तेरा पत्र पढ़ा। मैं समझता था कि तू सहाराके रेगिस्तानसे निकल आया है; लेकिन ऐसा नहीं हुआ।[3] कौन जाने अभी तुझे कितने रेगिस्तान पार करने हैं। हिम्मत मत हारना। तेरे-जैसे अनेक खटियासे उठ बैठे हैं। मैं भी ऐसे लोगोंमें से ही एक हूँ न?

१. गांधीजी के भतीजे
२. एन्ड्रयूज-स्मारक कोषके लिए निधि एकत्र करने गांधीजी नासिक होते हुए बम्बई गये थे।
३. मथुरादासको क्षय था और इस समय उनकी हालत बहुत खराब थी।

इसलिए मैंने आशा नहीं छोड़ी है। हाँ, दुःख इस बातका तो रहता ही है कि ऐसे समय भी मैं तुझे अपने पास नहीं रख सकता। लेकिन उसका भी क्या दुःख? तूने बहुत दिया है, और भाग्यमें होगा तो तू आगे भी देगा।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृ० १८२

१३१. पत्र : अमृतकौरको

बम्बई
११ मई, १९४२

चि० अमृत,

तुमको कल लिखा था,[1] मिला होगा।

आज मौनमें यह लिख रहा हूं। २-३५ को मौन खुलेगा। हरिजनका १२ बजे खतम किया। काफी लिखा है।

सब दर्दी ठीक होंगे।

मंजुला मगनवाडी गई होगी।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४२६३) से; सौजन्य। अमृतकौर। जी० एन० ७८९५ से भी

१३२. पत्र : अमतुस्सलामको

११ मई, १९४२

चि० अमतुलसलाम,

वारी खां फोन किया करता है अ० स० को आने दो। वह कहते हैं 'अ० स० कहती है बापुकी इजाजत लो और मैं आउं' यह ठीक नहीं लगता है। वहां रहने का धर्म है तो रही है। ऐसी समज भी थी। तो कैसे कह सकती है इजाजतसे आउं। मां तो पतीयाला जाती है। उनसे मिलना है तो रास्तेमें कोई स्टेशन पर मिल लो। मैंने तो कहा वर्धाके रास्ते से जाय और वहाँ दो चार रोज ठहरे।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४७३) से

१. देखिए पृ० १०९।

१३३. पत्र : बलवन्तसिंहको

११ मई, १९४२

चि० बलवंतसिंह,

तुम शांत हुए होंगे सचमुच जो कुछ बना है वह हसने लायक था रोने लायक कभी नहीं। अपमानकी तो बात ही नही थी। हसते हो न?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९४३) से

१३४. पत्र : शारदा गो० चोखावालाको

बम्बई
१२ मई, १९४२

चि० बबुड़ी,

आनन्दके लिए धीरजके सिवाय और दूसरी दवा नहीं है। उसके-जैसी खाँसी वाले बच्चे अच्छे हो जाते हैं। तू अकेली रात-रात भर मत जागा कर। आनन्द जितना कम खाये, उतना अच्छा। वह गरम पानी ज्यादा ले, उसमें शहद या ग्लूकोज डालकर। दूध पिये तो कम पिये। यदि आमका रस उसे दिया जाये तो वह बिलकुल मीठा होना चाहिए। उसमें सोडा डालना। मैं यहाँसे रविवारको वर्धाके लिए रवाना होऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १००४४) से। सौजन्य: शारदाबहन गो० चोखावाला

१३५. : अमृतकौरको

बम्बई
[१२ मई, १९४२][1]

चि० अमृत,

आशादेवी आई। डाक पहोंची। आज लिखना मुश्कील है। पैसे इकट्ठे कर रहा हूं। ठीक चलता है। दिल्लीमें बालकृष्णका कर लेना। २८ को तो जाना ही।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ४२६२) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७८९४ से भी

१३६. पत्र : प्रेमा कंटकको

बम्बई
१४ मई, १९४२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। तू मेरे पत्रोंकी शिकायत करती है, यह ठीक नहीं है। पत्र इधर-उधर चले जायें तो इसका क्या किया जाये?

सुचेताने[2] जो लिखा है उस विषयमें तो मैं यही कहूँगा कि अगर तू वह भार[3] उठा सके तो स्वीकार कर लेना। परन्तु ब्योरेवार यह तो जान ले कि तुझे क्या करना है। इसके सिवा मेरी तैयारियोंमें उसका स्थान कहाँ रहेगा, यह भी सोच लेना। इसमें तो शंकरराव ही तेरा अधिक मार्गदर्शन कर सकते हैं, क्योंकि उन्हींको वहाँका भार वहन करना है। मैं क्या करूँगा, यह तो एकाएक कह नहीं सकता। परन्तु जो निश्चित होगा वह तुरन्त ही करना होगा।

मैं स्वयं नेता बनना चाहता हूँ, यह कहना तो ज्यादती है।

यहाँसे मैं शनिवारको रवाना होनेकी आशा रखता हूँ। मेरी तबीयत ठीक ही है।

१. साधन-सूत्रमें अप्रैल है, जो जाहिर है भूलसे लिखा गया है। क्योंकि डाककी मुहरपर तारीख १२-५-१९४२ पढ़ी है।

२. सुचेता कृपलानी; उस समय वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके महिला-विभागकी प्रधान थीं।

३. महाराष्ट्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके महिला-विभागका कार्यभार

सुशीलाका मेरे पास आना तो दूर, उसके यहाँ होने का भी पता मुझे नहीं!

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मेरे साथ महादेव, प्यारेलाल और कनैयो[1] हैं। प्यारेलाल मथुरादासको देखने नासिक गये हैं।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४२७) से। सी० डब्ल्यू० ६८६६ से भी; सौजन्य : प्रेमा कंटक

१३७. भेंट : 'न्यूज क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिको

बम्बई
१४ मई, १९४२

प्र० : आपने हालमें अंग्रेजोंसे कहा है कि वे हिन्दुस्तान छोड़कर चले जायें। क्या आप समझते हैं कि आजकी हालतमें उनके लिए यहाँसे तुरन्त चले जाना मुमकिन है? वे देशका शासन किसको सौंपकर जायें?

उ० : मुझे इस निष्कर्षपर पहुँचने में काफी मनोव्यथा झेलनी पड़ी है कि अंग्रेजोंको हिन्दुस्तान छोड़कर चले जाना चाहिए, और उसका अमल रूप तय करना मेरे लिए और भी व्यथापूर्ण साबित हो रहा है। अपने प्रियजनोंको अलग हो जाने के लिए कहने में जो कष्ट है, वही इसमें है। लेकिन आज तो यह एक परमधर्म बन गया है। इसकी खूबी और जरूरत इस बातमें है कि यह काम फौरन हो, यानी अंग्रेज तुरन्त यहाँसे चले जायें। क्या अंग्रेज और क्या हिन्दुस्तानी, दोनों इस वक्त आगके बीचोंबीच घिरे हैं। अगर अंग्रेज चले जायें तो ऐसी सम्भावना है कि हम दोनों बच जायें। अगर वे नहीं गये, तो भगवान ही जाने कि क्या होगा। मैं बिलकुल साफ शब्दोंमें यह कह चुका हूँ कि मेरे प्रस्तावमें किसी व्यक्ति या दलके हाथोंमें शासन सौंपने की कोई बात ही नहीं है। अगर अंग्रेज किसी समझौतेके फलस्वरूप हिन्दुस्तान छोड़ने को तैयार होते तो इस सवालपर विचार करना जरूरी हो जाता। मेरे प्रस्तावके अनुसार तो उन्हें हिन्दुस्तानको भगवानके भरोसे छोड़ना है — जिसे आजकलकी भाषामें अराजकता कहते हैं। इस अराजकताके फलस्वरूप देशमें कुछ समयके लिए आपसी युद्ध मच सकता है, या बेरोक लूटमार फैल सकती है। लेकिन हम देखेंगे कि इसी में से आजके इस झूठे हिन्दुस्तानकी जगह एक सच्चे हिन्दुस्तानका जन्म होगा।

प्र० : अंग्रेजोंको परेशान न करने की आपकी नीतिके साथ इस सलाहका मेल कैसे बैठाया जा सकता है?

१. नारणदास गांधीका पुत्र, कनु गांधी

उ० : परेशान न करनेकी अपनी नीति मैंने जिन शब्दोंमें व्यक्त की थी, उनकी दृष्टिसे वह इस सलाहके बावजूद वैसी ही कायम है। अगर अंग्रेज चले जाते हैं तो निश्चय ही उन्हें कोई परेशानी नहीं होगी; यही नहीं, बल्कि उनके सिरसे एक जबरदस्त बोझ उतर जायेगा, बशर्ते कि वे ठंडे दिलसे यह सोचें कि एक समूचे राष्ट्रको गुलाम बनाये रखनेके क्या मानी होते हैं। लेकिन अगर, यह जानते हुए भी कि देशमें उनके विरुद्ध चारों ओर घृणा फैली हुई है, वे अपनी जिदपर कायम रहते हैं तो वे खुद परेशानीको न्योता देते हैं। मैं सत्यका उल्लेख करके उस परेशानीको पैदा नहीं करता, फिर भले ही यह सत्य आज उन्हें कितना ही कड़वा क्यों न लगे।

प्र० : देशमें नागरिक अनुरक्षाके चिह्न अभीसे नजर आ रहे हैं। ऐसी हालतमें अगर मौजूदा सरकार अचानक हट जाये तो क्या उससे लोगोंका जीवन और भी ज्यादा अरक्षित नहीं हो जायेगा?

उ० : मैं मानता हूँ कि देशमें नागरिक अनुरक्षा है, और यह तो मैं पहले ही कबूल कर चुका हूँ कि सम्भव है, यह अनुरक्षा बहुत ज्यादा बढ़ जाये। लेकिन इसीमें से सच्ची सुरक्षाका जन्म होगा। वर्तमान अनुरक्षा जीर्ण हो चुकी है और लोग उसे उतना महसूस नहीं करते। लेकिन जो रोग महसूस न हो, वह महसूस होनेवाले रोगसे बदतर होता है।

प्र० : अगर जापानियोंने हिन्दुस्तानपर हमला किया तो आप हिन्दुस्तानकी जनताको क्या सलाह देंगे?

उ० : मैं अपने लेखोंमें पहले ही यह कह चुका हूँ कि अगर जापानियोंके शिकार, यानी अंग्रेज, हिन्दुस्तान छोड़कर चले जायें तो बहुत मुमकिन है कि जापान हिन्दुस्तानपर हमला करना ही न चाहे। लेकिन यह भी हो सकता है कि भारतके बन्दरगाहोंसे अपने सामरिक उद्देश्य पूरा करनेके लिए जापान हिन्दुस्तानपर हमला करना चाहे। उस हालतमें मैं अपने लोगोंको वही करनेकी सलाह दूंगा, जो कुछ करनेकी मैंने उन्हें आज सलाह दी है, यानी वे आक्रमणकारीके साथ दृढ़तापूर्वक अहिंसात्मक असहयोग करें। और मैं दावेके साथ कहता हूँ कि अगर अंग्रेज चले जायें और हिन्दुस्तानकी जनता मेरी सलाहपर चले तो उस हालतमें असहयोग आजसे कहीं ज्यादा पुरअसर होगा। इस समय उसकी उतनी कद्र नहीं हो सकती, क्योंकि आज तो यहाँ अंग्रेजोंकी हिंसा भी साथ-साथ काम कर रही है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २४-५-१९४२

१३८. भेंट : बम्बई उपनगरवासी और गुजराती कांग्रेसजनोंको[1]

१५ मई, १९४२

प्र० : कहा जाता है कि आप अंग्रेजोंको भारत छोड़नेकी सलाह देने जा रहे हैं। क्या यह सच है? और यदि उन्होंने आपकी सलाह न मानी, तो क्या आपका इरादा उनके साथ असहयोग करनेका है?

गांधीजी : प्रायः सलाह इसी खयालसे दी जाती है कि वह मानी जायेगी। लेकिन हो सकता है कि वह न भी मानी जाये। अतः सलाह देने में दोनों सम्भावनाओंके लिए तैयार रहना पड़ता है। मैं अंग्रेजोंको भारत छोड़ने की सलाह अवश्य देता हूँ। मेरा उनसे कहना है कि वे चले जायें। ऐसा मैं क्यों कहता हूँ? क्योंकि उन्हें हर हालतमें जाना ही होगा। वे सिंगापुरसे लेकर वर्मा और अब भारतके प्रवेश-द्वार तक बराबर हार खाते आ रहे हैं। उनके यहाँ बने रहनेका अर्थ भारतके लिए यन्त्रणा होगा। हाँ, मैं उनसे जाने के लिए कहता हूँ। यदि वे नहीं गये तो? तब मुझे सोचना होगा। यदि उन्होंने मेरी सलाहपर ध्यान नहीं दिया, तो मुझे असहयोग या सविनय अवज्ञा द्वारा उन्हें जाने के लिए मजबूर करना पड़ेगा। हो सकता है हमें दोनों ही करने पड़ें। बेशक, आप पूछ सकते हैं कि लड़ाई शुरू होने के दिनोंमें तो मैं अंग्रेजोंको परेशान न करने की नीति के पक्षमें था, तो अब वह नीति क्या है? क्या इस नीतिका उससे मेल बैठता है? यहाँ मैं आपको बता दूँ कि इस नीतिका उसके साथ पूरी तरह मेल बैठता है, क्योंकि अंग्रेजोंको मेरी सलाहकी जरूरत है। उन्हें इससे कोई परेशानी नहीं होगी। क्योंकि मेरा कहना है कि इस समय युद्ध उनके तटसे काफी दूर हो रहा है। भारतीय मोर्चेपर उनके पास युद्ध-सामग्रीका अभाव है। स्वदेशमें वह उनके पास प्रचुर मात्रामें है। इसलिए, वे स्वदेश लौट जायें। इस तरह वे जापानियोंसे अधिक अच्छी तरह लड़ सकेंगे। अतः मेरी नीति सुसंगत है। हाँ, यदि वे इसपर गौर नहीं करेंगे तो मुझे उनके लिए परेशानी पैदा करनी पड़ेगी। मैं उसके लिए विवश हूँ। मैं नहीं समझता कि इस बार व्यक्तिगत सत्याग्रह किया जा सकता है। नहीं, वह सार्वजनिक सत्याग्रह होगा — यह माँगते हुए कि अंग्रेज यहांसे तुरन्त चले जायें, अंग्रेजोंके खिलाफ इस प्रकारका पूर्ण सत्याग्रह होगा। याद रखें, मैं जापान-समर्थक नहीं हूँ।

१. साधन-सूत्रके अनुसार, लगभग ८५ मिनिटकी इस भेंट-वार्ताके समय वल्लभभाई पटेल, भूलाभाई देसाई, बा० गं० खेर, मोरारजी देसाई और अन्य प्रमुख कांग्रेसजन उपस्थित थे। एक कम्युनिस्ट कार्यकर्ता शरफ अथर अली द्वारा पी० सी० जोशीको भेजी गई इस भेंट-वार्ताकी रिपोर्ट बीचमें रोक ली गई थी। इसकी विश्वसनीयताकी जिम्मेदारी नहीं ली जा सकती, लेकिन सरकारने इसे अत्यन्त विश्वसनीय माना था और वाइसरायने २७ मईको एमरीको इस भेंटका सारांश तार द्वारा भेजा था।

असलमें जापान इतना अधिक आक्रामक है कि मैं जापान-समर्थक हो ही नहीं सकता। लेकिन राजाजी के साथ मेरा जबरदस्त मतभेद है, क्योंकि जापानियोंके साथ मैं किस चीजसे लड़ सकता हूँ? प्रत्यक्ष आक्रामक तो अंग्रेज हैं। सचमुच मेरा विश्वास है कि यदि अंग्रेज यहाँसे चले जायें तो भारतके लिए सारा खतरा कम हो जायेगा। मेरा खयाल है कि तब जापान भारतपर हमला नहीं करेगा। जापान ब्रिटेनसे लड़ना चाहता है। भारतसे उसका कोई मतलब नहीं है। जापानका कोपभाजन बनने के लिए भारतने क्या किया है? ब्रिटेनने ही जापानसे लड़ाई की है, उसका रास्ता काटा है। इसलिए जापान उससे मोर्चा लेना चाहता है। अतः यह सम्भव है कि अंग्रेजोंके भारतसे चले जाने के बाद हम जापानके साथ समझौता कर पायें। और यदि तब भी जापान हमारी बातपर ध्यान नहीं देगा तो जापानके खिलाफ भी मेरे पास वही हथियार है जो कि ब्रिटेनके खिलाफ है। भारतमें जापानियोंको एक बूँद पानी तक नसीब नहीं होगा। हमारी कोशिश पूरी तरह यही होगी। लेकिन जापानियोंका मुकाबला कौन करेगा? आजाद भारत करेगा, वह भारत नहीं जिससे यह पूछा तक नहीं गया है कि वह युद्धमें शामिल भी होना चाहता है या नहीं। यहाँ मैं ध्यान दिला दूँ कि राजाजी से मेरा मतैक्य नहीं है। राजाजी मेरे एक पुराने सहयोगी हैं और उनके प्रति मेरे मनमें वैसा ही प्रगाढ़ प्रेम है जैसा कि हमेशा रहा है। लेकिन राजाजी की तरह मैं यह नहीं सोचता कि ब्रिटेन और जापानमें से ब्रिटेन बेहतर है, और उससे बादमें भी निपटा जा सकता है — इस समय तो जापानसे निपटना है। अन्य देशों का शोषण करनेवाला चाहे साम्राज्यवादी हो अथवा अधिनायकवादी — मेरे लिए तो वह शोषक ही है। नामोंसे कुछ नहीं होता। इसके अलावा, कौन कहता है कि अंग्रेज बेहतर हैं? मैं यह कभी नहीं कहना चाहता कि राजाजी कांग्रेससे बाहर, यानी बिना कांग्रेसकी स्वीकृतिके बनी राष्ट्रीय सरकारको स्वीकार कर लेंगे। लेकिन क्या अंग्रेजोंने उसके लिए पेशकश की है? राजाजी जापानियोंके खिलाफ उनकी हर प्रकारसे मदद करना चाहते हैं। तब इसमें हिचक क्यों? सिर्फ इसलिए कि वे नहीं चाहते कि हमें सत्ता प्राप्त हो।

वे सत्ता नहीं प्रदान करेंगे। वे जो हैं वही हैं, उन्हें कोई चीज बदल नहीं सकेगी। हाँ, क्रिप्स वापस चले गये हैं। लेकिन वे फिरसे समझौता-वार्त्ता क्यों नहीं करते? सप्रू, जयकर या राजाजी के माध्यमसे ही क्यों नहीं करते? इसलिए कि, जैसा मैं कह चुका हूँ, वे करना ही नहीं चाहते। उनके जाने का वक्त आ गया है। राजाजी पाकिस्तान देनेको तैयार हैं। लेकिन क्या इस मामलेमें उनसे बातचीत करने के लिए जिन्ना एक इंच भी हिले हैं? नहीं। क्योंकि जिन्नाकी चाल तो यह है कि कांग्रेसपर सरकारका दबाव पड़े, और सरकारपर कांग्रेसका, या फिर दोनों पर एक-दूसरेका दबाव पड़े। राजाजी का कहना है कि भारतके टुकड़े होने दो। लेकिन मैं इससे सहमत नहीं हो सकता। मैं भारतके टुकड़े होने की बात अपने गले नहीं उतार सकता। इस बातको मेरा ही दिल जानता है कि इस विचारसे मुझे कितना कष्ट हुआ है। राजाजी मेरे पुराने मित्र और एक चतुर राजनीतिज्ञ हैं। उनके अलग

होने से मुझे कितनी तकलीफ पहुँची है, यह सिर्फ मैं ही जानता हूँ। लेकिन वे दृढ़-संकल्प व्यक्ति हैं। उन्हें विश्वास है कि वे हिन्दू-मुस्लिम एकता करवा देंगे। लेकिन पाकिस्तान आखिर है क्या? उसका अर्थ क्या है? इसके अलावा, जब क्रिप्स आये, तो राजाजी उनका प्रस्ताव स्वीकार करने के पक्षमें थे। जवाहरलालने माँगको मनवाने की भरसक कोशिश की। आप जानते ही हैं कि जवाहरलाल कितने साफ व्यक्ति हैं। लेकिन कुछ नहीं किया गया और मैं भयानक मानसिक यन्त्रणाके साथ निरन्तर यही कहता आया और स्टेशनपर भी लाखों लोगोंने मुझसे यही कहा। कोई समझौता नहीं। समझौता मत करो! कलकत्तेमें भी कुछ मुसलमानोंने — आप जानते ही हैं कि काफी भले लोगोंने — मुझसे पूछा: "आप मान तो नहीं गये?" भारतीय जनताकी भावना यही थी। और सरकार इससे कैसे इनकार कर सकती है? वह तो यहाँतक कहती है कि एक भी बर्मीने जापानियोंकी मदद नहीं की (हँसी)। लेकिन राजाजी अभी भी उस चीजको पाने की आशा बाँधे हुए हैं जिसे हासिल न होने देने का अंग्रेजोंने दृढ़ संकल्प कर रखा है — यानी हिन्दू-मुस्लिम एकता। वास्तवमें पाकिस्तान है क्या? जिन्नाने यह वस्तुतः कभी भी स्पष्ट नहीं किया है। क्या आप बता सकते हैं? हाँ, हाँ, इससे कौन इनकार करता है?[1] लेकिन माँग है क्या? अवामको उल्लू बनाया जा रहा है। अच्छे मुसलमान मुझे इस बातको समझाने में असफल रहे हैं। असलमें जब मुझसे गतिरोध समाप्त करने के लिए कहा जाता है तो मैं कबूल करता हूँ कि मैं कुछ नहीं कर सकता। अंग्रेज हमें लड़वाते हैं, यद्यपि हम भी लड़ना चाहते हैं यह बात मैं एक पल भी नहीं छिपाता। अन्यथा हम कभी लड़ें ही नहीं। लेकिन एकता स्थापित करने का एक ही रास्ता है कि हिन्दुस्तान हमारा हो जाये, हम इसे हासिल कर लें। राजाजी लाहौर-प्रस्तावकी[2] बात करते हैं। लेकिन यह प्रस्ताव तो सोचने से बाहरकी बात हो गई। क्योंकि आजादी है कहाँ? अराजकता ही एकमात्र रास्ता है। किसीने मुझसे पूछा, अंग्रेजोंके जाने पर यदि अराजकता हो गई तो? हाँ, वह तो होगी। लेकिन मैं अंग्रेजोंसे कहता हूँ: हमें अराजकता दे दो। दूसरे शब्दोंमें मेरा कहना है कि भारतको भगवानके सहारे छोड़ दो। लेकिन यह तो मेरी भाषा हुई, ऐसी भाषा जिसे जनता नहीं समझेगी। इसलिए, मैं कहता हूँ — भारतको अराजकतामें छोड़ दो। हमें उसका सामना करना ही होगा। आजके हालातकी अपेक्षा अराजकताका सामना करना बेहतर होगा। कांग्रेसी मानस न हिन्दू है, न मुसलमान, न ईसाई, न पारसी। इसी कांग्रेसी मानसको — जो एक जीवन्त सत्य है — अराजकताका भार ग्रहण करके उसे हिन्दुस्तानका स्वरूप प्रदान करना होगा। अतः मैं अंग्रेजोंसे कहता हूँ कि हमें अराजकता का उपहार दे दो। अगर अंग्रेज चले जायें तो वह उपहार हमें स्वयं मिल जायेगा। अगर न गये तो हम सत्याग्रह छेड़कर अराजकता पैदा करेंगे। मैं जानता हूँ कि

१. किसीने कहा था कि यह मुस्लिम अवामकी माँग है।

२. यह प्रस्ताव ३१ दिसम्बर, १९२९ को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ४४वें अधिवेशनमें पारित हुआ था। इसमें घोषणा की गई थी कि कांग्रेसका लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता है।

आम लोगोंमें आज भ्रान्ति फैली है। आप देखते हैं कि मौलाना एक बात कहते हैं और जवाहर दूसरी, राजाजी एक तीसरी ही बात कहते हैं और मैं अब एक चौथी बात कह रहा हूँ। ऐसी हालतमें हम क्या करें? मेरी सलाह है कि आप चारों बातोंको तौलें, और आपको कौन-सी स्वीकार करनी है, इसका निर्णय स्वयं करें। मैं जवाहर या मौलानासे अभीतक नहीं मिला हूँ। लेकिन, जैसा कि आप भलीभाँति जानते हैं, यद्यपि कई बार मेरे और जवाहरके भिन्न-भिन्न मत रहे हैं, लेकिन जहाँ कार्रवाईका सवाल आया वे हमेशा मेरे साथ रहे हैं। और मुझे आशा है कि मैं उनको अपने पक्षमें कर लूँगा। जहाँतक मौलानाका सवाल है, हम वर्षोंसे सदा एक-दूसरेका साथ देते आये हैं। इस तरह मैं चार विभिन्न सुरोंको घटाकर दो कर देने की आशा करता हूँ। तब केवल मेरी और राजाजी की बात रह जायेगी, और आप फैसला कर सकते हैं कि दोनोंमें से किसकी बात माननी है। यह मैं नहीं बता सकता। लेकिन इतना कह सकता हूँ कि आप किसी भूलाभाई या किसी खेर साहबके असरमें आकर निर्णय न करें। आप खुद फैसला कीजिए। लेकिन बुद्धिसे सोच-समझकर फैसला कीजिए, क्योंकि अगर आप यों ही मेरे साथ हो जायेंगे तो मेरे लिए रुकावट बनेंगे। और जहाँतक आपका सम्बन्ध है आपका कोई निजत्व नहीं रह जायेगा।

बा० गं० खेर: लेकिन क्या इस तरहकी सामूहिक सविनय अवज्ञाका अर्थ जापानियोंकी सीधी मदद न होगा?

उ०: जी नहीं, हम अंग्रेजोंको भगा रहे हैं, जापानियोंको बुला नहीं रहे हैं। जी नहीं, जो लोग जापानियोंको मुक्तिदाता समझते हैं मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। चीनी इतिहास इसका द्योतक है। वास्तवमें, जब च्यांग काई-शेक यहाँ आये थे, तब मैंने उन्हें जापानियोंसे मेरे तरीकेसे लड़ने की सलाह दी थी। असलमें, मैं मानता हूँ कि हमें सुभाष बोसका प्रतिरोध करना होगा। मेरे पास प्रमाण तो नहीं है, लेकिन मेरा खयाल है कि हिन्दुस्तानमें फॉरवर्ड ब्लॉकका एक बड़ा जबरदस्त संगठन है। खैर, सुभाषने हमारी खातिर भारी खतरा उठाया है; लेकिन यदि वे भारतमें जापानियोंके मातहत सरकार बनाना चाहेंगे तो हम उनका प्रतिरोध करेंगे। मुझे आशंका है कि फॉरवर्ड ब्लॉकके लोग ऐसा करने का पूरा प्रयास करेंगे। और फिर जैसा कि मैं कह चुका हूँ, हम अपना आन्दोलन केवल अंग्रेजोंके खिलाफ छेड़ेंगे। जापानी हमारे साथ तटस्थता-सन्धि करने की आशा कर सकते हैं। क्यों नहीं? वे हमपर हमला क्यों करेंगे? लेकिन यदि उन्होंने किया तो हम उनका प्रतिरोध करेंगे।

प्र०: मेरे ऊपर एक सार्वजनिक न्यासके भवनका भार है। सैनिक उसे लेना चाहते हैं। उनका कहना है कि मैं हस्ताक्षर करके कागजपर यह लिख दूँ कि मैंने यह भवन खुशीसे उन्हें दिया है और दे दूँ। अन्यथा वे उस भवनको जबरदस्ती ले लेंगे। क्या मुझे उनका प्रतिरोध करना होगा?

उ०: बिलकुल नहीं। हाँ, यदि आप अपनी जिम्मेदारीपर सत्याग्रह शुरू करना चाहते हैं तो बात दूसरी है। क्योंकि लड़ाई अभी शुरू नहीं हुई है। उसे शुरू करने में

मुझे अभी दो माहका समय और लगेगा। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि आप सब लोगोंके साथ हुई आजकी बातचीत गुप्त रखी जाये। कृपया ध्यान रखें कि यह बात समाचार-पत्रोंमें न जाने पाये। यह भाषा इतनी ऊँची है कि समाचारपत्र इसे ठीक-ठीक समझ नहीं सकेंगे। जहाँतक सम्भव हो, अपने मित्रोंको भी इसका पता न चलने दें।

प्र० : मैं आपसे सिर्फ यह पूछना चाहता हूँ कि एक आदमी मेरा गला दबा रहा है। तभी एक दूसरा आदमी आकर उसका गला दबाने लग जाता है। तो क्या मुझे उस दूसरे आदमीकी मेरा गला दबानेवाले व्यक्तिका गला दबाने में मदद नहीं करनी चाहिए?

उ० : मैं एक अहिंसक व्यक्ति हूँ, और कहता हूँ कि अपनी स्वतन्त्रताके लिए अवश्य संघर्ष करो, लेकिन उसके बाद रुक जाओ। मेरा आत्म-सम्मान मुझे यह अनुमति नहीं देगा कि मैं अपना गला दबानेवाले का गला दबाने में मदद करूँ। जी नहीं, मैं जापानियोंकी मदद नहीं कर सकता। अपनी स्वतन्त्रता हासिल हो जाने के बाद मैं तटस्थ रहूँगा। लेकिन यह तो मेरे-जैसा अहिंसक व्यक्ति करेगा। लेकिन हिंसाको माननेवाले, जैसे कि आपमें से कई हैं, की नैतिकता अलग ही होती है। रूस, जो आजतक ब्रिटेनसे घृणा करता रहा है, ब्रिटेनसे मदद ले सकता है, और ब्रिटेन, जो रूससे वैसी ही घृणा करता रहा है, रूसको अपनी मदद दे सकता है, क्योंकि दोनों ही हिंसाप्रिय मनोवृत्तिके हैं। अतः आप लोगोंमें से, जिनके लिए अहिंसा आस्था न होकर मात्र एक अस्त्र है, उनसे मेरा कहना है कि आपको जापानकी मदद करने से बाज आने की जरूरत नहीं है, बल्कि अपने प्रति सच्चा रहने के लिए आपको उनकी हर तरहसे — सम्भव हो तो हिंसात्मक तरीकोंसे भी — मदद करनी चाहिए।

गु० प्र० हठीसिंह : लेकिन बापू . . .

गांधीजी : ओह, मुझे मालूम नहीं था कि तुम यहाँ मौजूद हो (जोरोंकी हँसी)।

गु० प्र० हठीसिंह : लेकिन बापू, कुछ लोग कहते हैं कि हमें अपना दृष्टिकोण व्यापक रखना चाहिए, भारतको अपनी ही आजादीकी बात नहीं सोचनी चाहिए, बल्कि उसे स्वतन्त्रताके लिए संघर्षशील अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियोंका साथ देना चाहिए। उदाहरणार्थ, कम्युनिस्टोंको ही लीजिए। वे कहते हैं कि यह जनयुद्ध है और भारतको, चीनकी तरह, जापानसे लड़ना चाहिए। यह कहने की जरूरत नहीं कि मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। लेकिन आपकी क्या राय है?

उ० : इससे बड़ी मूर्खता और नहीं हो सकती (जोरोंकी हँसी)। लेकिन भारत है कहाँ? भारतके रूपमें भारतका अस्तित्व ही नहीं है। वह तो ब्रिटेनकी जेबमें है। ऐसा भारत कैसे मदद कर सकता है? और क्यों करे? अंग्रेज हमें देते कुछ नहीं हैं और हमसे माँगते हर चीज हैं, फिर भी उन्हें हम कौन-सी मदद नहीं दे रहे हैं? आपकी तरह मैं अखबार चाटता नहीं हूँ। लेकिन मुझे खबर मिली है कि डेढ़ लाख रंगरूट हर माह भर्ती किये जा रहे हैं, जिनमें से पचास हजार चुने

जाते हैं। यह कोई छोटी-मोटी बात नहीं है। इसके अलावा, ब्रिटेनको आर्थिक सहायता मिलती है। सरकारी करोंका विरोध भला कौन करेगा? पोस्टकार्डके दाम, जो छः पाई थे, बढ़ा दिये गये हैं, लेकिन यदि एक रुपया भी हो जायें तो क्या मैं पत्र लिखना बन्द कर दूँगा? फिर हमारी मदद पानेके लिए इतना हो-हल्ला क्यों? इसके अलावा, चीनकी बात और है। उसके पास विशाल मानव-शक्ति है और उसकी सेना भी हमारी तरह भाड़ेकी सेना नहीं है। सबसे बड़ी बात यह है कि उसके सारे-के-सारे लोग सैनिक प्रवृत्तिके हैं। और यह नई जीवन-प्रणाली और अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्रताकी सारी चर्चा क्या है? क्या हम ब्रिटेन और अमेरिका पर भरोसा कर सकते हैं, जब कि दोनोंके ही हाथ खूनसे रँगे हुए हैं? अटलांटिक चार्टरमें भारतका नाम कहीं नहीं मिलता। कम्युनिस्टोंके कहने के बहुत पहलेसे ही मैं एक नई जीवन-प्रणालीके बारेमें विचार करता आया हूँ। लेकिन वह तबतक असम्भव है जबतक कि अंग्रेज भारतीयों और हब्शियोंको आजाद करके वापस नहीं चले जाते। नई जीवन-प्रणालीकी बात मुझसे उसके बाद कीजिए। क्योंकि मेरा विश्वास है कि उस तरहका भारत तब सचमुच, एक आदर्श राष्ट्रके रूपमें, विश्वको अपनी सेवा अर्पित करेगा।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सफर ऑफ़ पॉवर, १९४२-४७, जिल्द २, पृ० १२८-३२

१३९. भेंट : समाचारपत्रोंको[1]

बम्बई

१६ मई, १९४२[2]

प्र० : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी इलाहाबादकी बैठकसे जो परिस्थिति पैदा हो गई है, क्या आप उसकी समीक्षा करेंगे? और राजाजी ने अपनी हालकी चेष्टाके समर्थनमें पाकिस्तानके बारेमें आपके शब्दोंका जो हवाला दिया है, उसके बारेमें आपकी क्या राय है?

उ० : मैं इलाहाबादके प्रस्तावोंकी चर्चामें नहीं पड़ूँगा। राजाजी ने मेरे कहे शब्दोंका जो हवाला दिया है, वह सही है, और मैं फिरसे कहता हूँ कि अगर मुसलमान कोई चीज चाहें — फिर वह कुछ भी क्यों न हो — तो दुनियाकी कोई ताकत उन्हें उसको पाने से रोक नहीं सकती। क्योंकि उनकी माँग न मानने का अर्थ होगा लड़ाई। फर्ज कीजिए कि मुसलमान कोई ऐसी चीज माँगें जो गैर-मुसलमान उन्हें देना न चाहें या दे न सकें तो उसका मतलब होगा, लड़ाई। यह बात दोनों कौमोंपर लागू होती है। अगर हिन्दू कोई चीज माँगें और उस माँगमें तमाम हिन्दू

१. महादेव देसाईके लेख "बॉम्बे इन्टरव्यू" से उद्धृत। हिन्दू, १८-५-१९४२ के अनुसार भेंट-वार्ता एक घंटे चली थी और इसमें करीब ६० पत्र-प्रतिनिधि मौजूद थे।

२. हिन्दू से

शामिल हों तो गैर-हिन्दू उनको उससे रोक नहीं सकते, जबतक कि वे उनसे लड़ना ही न चाहें। मगर मुझे आशा है कि किसी-न-किसी दिन सभी पक्षोंके होश ठिकाने आ जायेंगे और वे इस बातका आग्रह छोड़ देंगे कि उनकी सभी माँगें पूरी हों, और तब वे पंच-फैसलेके लिए राजी हो जायेंगे। यह एक सनातन और सभ्य तरीका है, और मैं आशा करता हूँ कि सब इसे स्वीकार कर लेंगे।

परन्तु बहुत-से दूसरे लोगोंकी तरह एकता स्थापित करने की मेरी हरएक कोशिश बेकार हुई है और उसीसे मुझे यह तर्कयुक्त बात सूझी है कि जबतक अंग्रेजी सत्ता हिन्दुस्तानसे बिलकुल हट नहीं जाती, हिन्दुस्तानमें सच्ची एकता कायम नहीं हो सकती, क्योंकि तबतक सभी पक्ष विदेशी सत्ताका मुँह जोहते रहेंगे। आज यह सत्ता अंग्रेजोंकी है, कल वह फ्रांस, रूस या चीनकी हो सकती है। बात एक ही होगी। इसलिए मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सच्चा हार्दिक ऐक्य, वास्तविक एकता, तबतक लगभग असम्भव है जबतक कि अंग्रेजी सत्ता यहाँसे हट नहीं जाती। साथ ही यह भी शर्त है कि कोई अन्य सत्ता अंग्रेजोंकी जगह न लेने पाये। दूसरे शब्दोंमें, यह तभी होगा, जब हिन्दुस्तान न सिर्फ स्वतन्त्रताका अनुभव करेगा, बल्कि दरअसल स्वतन्त्र हो जायेगा, यानी किसी भी रूपमें उसका कोई मालिक न रह जायेगा। फिर भी मैं शान्ति-स्थापनाकी कोशिश करूँगा, और इस सम्बन्धमें किये जानेवाले हर प्रयत्नका स्वागत करूँगा, यद्यपि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि ये सब प्रयत्न शायद निष्फल ही जानेवाले हैं।

प्र० : सुना गया है कि आपने अहिंसक असहयोग द्वारा हिन्दुस्तानकी विदेशी आक्रमणसे रक्षा करने की कोई नई योजना तैयार की है, जिसे आप 'हरिजन'के किसी लेखमें प्रकट करना चाहते हैं। क्या आप हमें उसके बारेमें कुछ बता सकेंगे?

उ० : आपको गलत खबर मिली है। मेरे मनमें कोई योजना नहीं है। अगर होती तो उसे आपके सामने जरूर रखता। परन्तु मुझे लगता है कि शुद्ध अहिंसक असहयोगकी आवश्यकताके सम्बन्धमें जो-कुछ मैं पहले कह चुका हूँ, उसके बाद कुछ भी कहने को नहीं रहता। अगर सारा हिन्दुस्तान साथ दे और एक होकर असहयोग करे तो मैं यह दिखा सकता हूँ कि रक्तकी एक बूँद भी गिराये बिना जापानी शस्त्रबलको — या किसी भी संयुक्त शस्त्रबलको — बेकार बनाया जा सकता है। इसके लिए शर्त यह है कि हिन्दुस्तान किसी भी हालतमें, रंचमात्र भी, अपने संकल्पसे न हटने का दृढ़ निश्चय कर ले और लाखों मनुष्योंकी आहुति देने को तैयार रहे। लेकिन मेरी दृष्टिमें यह एक सस्ता सौदा होगा, और इस कीमतपर हासिल की हुई जीत शानदार जीत होगी। हो सकता है, यह सच हो कि शायद हिन्दुस्तान इतनी कीमत देने को तैयार न हो। मुझे आशा है कि यह सच नहीं है; लेकिन किसी भी देशको, जो अपनी आजादी कायम रखना चाहता है, इस तरहकी कोई कीमत तो देनी ही होगी। रूसियों और चीनियोंने जो कुरबानी दी है वह बहुत बड़ी है, और वे अपना सर्वस्व तक स्वाहा करने को तैयार हैं। यही बात दूसरे देशोंके बारेमें भी कही जा सकती है, फिर चाहे वे चढ़ाई करनेवाले हों या आत्म-रक्षा करनेवाले।

उन्हें भारी कीमत देनी पड़ रही है। इसलिए हिन्दुस्तानके सामने अहिंसक तरीका रखकर मैं उसे उससे बढ़कर कोई जोखिम उठाने को नहीं कह रहा जो दूसरे देश आज उठा रहे हैं, या जो हिन्दुस्तानको, अगर वह सशस्त्र विरोध करता, तो उठानी पड़ती।

प्र० : परन्तु विशुद्ध अहिंसक असहयोग जब अंग्रेजी सल्तनतके आगे सफल नहीं हुआ तो नये आक्रमणकारीके सामने वह कैसे सफल होगा ?

उ० : मै आपके इस कथनका पूर्णतया खण्डन करता हूँ। मुझे अभी तक किसीने यह नहीं कहा कि विशुद्ध अहिंसक असहयोग असफल रहा है। हाँ, यह सच है कि ऐसा असहयोग किया नहीं गया। इसलिए आप यह कह सकते हैं कि जो अबतक किया नहीं गया वह हिन्दुस्तानपर जापानी चढ़ाई होने पर एकाएक किया भी नहीं जा सकेगा। मैं तो यही उम्मीद करूँगा कि जब सचमुच खतरा सामने आ जायेगा, तब हिन्दुस्तान अहिंसक असहयोगके लिए आजसे ज्यादा तैयार मिलेगा। शायद हिन्दुस्तान बहुत वर्षोसे अंग्रेजी हुकूमतका इतना आदी हो गया है कि भारतीय मानस या भारतकी जनताको जितना किसी नई सत्ताका आना चुभेगा उतना मौजूदा सरकारका रहना नहीं चुभता। लेकिन आपने सवाल अच्छा पूछा है। सम्भव है कि मौका आने पर हिन्दुस्तान अहिंसक असहयोग न कर सके। परन्तु ठीक यही शंका सशस्त्र प्रतिरोधके बारेमें भी उठाई जा सकती है। इस किस्मके कई प्रयत्न किये जा चुके है, और वे असफल रहे हैं। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि यह जापानियोंके सामने भी असफल रहेगा। इससे हम इस बेहूदे नतीजे पर पहुँचते हैं कि हिन्दुस्तान कभी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए तैयार ही नहीं होगा। लेकिन चूंकि मैं इस बातको मानने के लिए तैयार नहीं हूँ, इसलिए जबतक हिन्दुस्तान अहिंसक असहयोगके आह्वानपर अमल करने को तैयार नहीं हो जाता, तबतक मैं तो बार-बार प्रयत्न करता रहूँगा। लेकिन अगर वह इस आह्वानपर अमल न करे तो फिर यह जरूरी है कि वह हिंसक तरीके पर चलनेवाले किसी नेता या संगठनके आह्वानपर अमल करे। उदाहरणके लिए, आज हिन्दू महासभा हिन्दुओंके मानसको सशस्त्र युद्धके लिए तैयार कर रही है। देखना है कि उसका यह प्रयत्न सफल होता है या नहीं। मैं तो नहीं मानता कि वह सफल होगा।

प्र० : क्या आप जनताको सलाह देंगे कि वह अहिंसक असहयोग द्वारा सम्पत्ति-ध्वंसकी नीतिका विरोध करे ? अन्न और पानीके स्रोतोंको नष्ट करने की कोशिशका क्या आप विरोध करेंगे ?

उ० : हाँ, ऐसा वक्त आ सकता है जब मैं इस तरहका विरोध करने की सलाह अवश्य दूँ, क्योंकि मैं ऐसी कार्रवाईको विनाशक, आत्मघातक और अनावश्यक मानता हूँ—फिर चाहे हिन्दुस्तान अहिंसक असहयोगमें विश्वास रखता हो, चाहे हिंसामें। रूस और चीनके उदाहरणोंका मुझपर कोई असर नहीं होता। जिन तरीकों को मैं अमानुषिक समझता हूँ, उनकी नकल मुझे महज इसलिए नहीं करनी चाहिए कि दूसरे देशोंने वैसा किया है। अगर मुझे अपनी फसल इसलिए छोड़नी पड़ती है

कि मैं उसकी रक्षा नहीं कर सकता या करने को तैयार नहीं हूँ, और दुश्मन आकर उसे इस्तेमाल करता है, तो मुझे वह सह लेना चाहिए। इसके समर्थनमें हमारे पास एक अच्छा दृष्टान्त भी है। एक सज्जनने मुझे इस्लामी साहित्यका एक अवतरण भेजा था, जिसमें बताया गया है कि किस तरह खलीफाने मुस्लिम फौजोंको सख्त ताकीद दी थी कि वे उपयोगी सेवाओंको नष्ट न करें, और न बूढ़ों, स्त्रियों या बच्चोंको सतायें। इन मानवतापूर्ण आदेशोंके पालनके कारण इस्लामकी फौजोंका कोई नुकसान तो नहीं हुआ।

प्र० : लेकिन कारखानों, और खासकर युद्ध-सामग्री तैयार करनेवाले कारखानोंके बारेमें आप क्या कहते हैं?

उ० : अगर कारखाने आटा पीसने या तेल पेरने के हों, तब तो मैं उन्हें नष्ट नहीं करूँगा। लेकिन अगर युद्ध-सामग्रीके हों तो उन्हें नष्ट करूँगा, क्योंकि अगर मेरी चली तो स्वतन्त्र हिन्दुस्तानमें मैं उन्हें बरदाश्त नहीं करूँगा। कपड़ेकी मिलोंको मैं नष्ट नहीं करूँगा, और मैं इस तरहके सारे विनाशका विरोध करूँगा। लेकिन इस सवालका निर्णय तो हमें अपनी विवेकबुद्धि द्वारा ही करना होगा। अंग्रेजोंके यहाँसे हट जाने की अपनी माँगके सम्बन्धमें मैंने अपनी सारी-की-सारी योजना को इसी दम अमलमें लाने की सलाह नहीं दी है। हाँ, मेरी कल्पनामें वह है तो सही। लेकिन यदि मुझे लोकमतको तैयार और शिक्षित करते रहने दिया गया तो मैं यह दिखाने की कोशिश कर रहा हूँ कि मेरी इस माँगकी तहमें कोई द्वेष या वैर-भाव नहीं है। मेरा सुझाव बिलकुल तर्कयुक्त है। इसमें सबका हित है और चूँकि इसमें शुद्ध मित्र-भाव ही है, इसलिए मैं बहुत सावधानीसे चल रहा हूँ, और फूंक-फूंककर हर-एक कदम उठा रहा हूँ। मैं उतावलेपनमें कुछ नहीं करूँगा। परन्तु मेरे हरएक काम के पीछे मेरा यह दृढ़ निश्चय तो है ही कि अंग्रेजोंको यहाँसे अवश्य चले जाना चाहिए।

मैंने अराजकताका जिक्र किया है। मुझे अब यह विश्वास हो गया है कि हमारी आजकी हालत व्यवस्थित अराजकता की है। आज जो शासन हिन्दुस्तानमें चल रहा है, उसे लोकहितकारी कहना भाषाका दुरुपयोग करना होगा। इसलिए यह व्यवस्थित और अनुशासित अराजकता खत्म होनी चाहिए, और अगर इसके परिणामस्वरूप हिन्दुस्तानमें पूर्ण अव्यवस्था फैल जाती है तो मैं उसका खतरा भी उठा लूँगा। वैसे मेरा यह विश्वास है और मैं यह विश्वास करना चाहूँगा कि हिन्दुस्तानकी जनताको अहिंसक नीतिकी तालीम देने का हमारा पिछले २२ सालका सतत प्रयत्न व्यर्थ नहीं जायेगा, और अराजकतामें से जनता सच्ची जनवादी व्यवस्थाकी स्थापना कर सकेगी। इसलिए, अगर मैं देखूंगा कि मेरे सारे अच्छेसे-अच्छे प्रयत्न व्यर्थ हो रहे हैं तो मैं अवश्य ही लोगोंको यह सलाह दूंगा कि वे अपनी सम्पत्तिके विनाशका विरोध करें।

प्र० : क्या हिन्दुस्तान युद्धमें शामिल राष्ट्रोंमें से किसीको भी अपनी नैतिक सहानुभूति या समर्थन दे सकता है?

उ० : इस सम्बन्धमें मेरे अपने विचार सबको अच्छी तरह मालूम हैं। अगर मैं हिन्दुस्तानको अपने विचारका बना सकूँ तो किसी भी पक्षको हिन्दुस्तानकी सहायता नहीं मिलेगी। लेकिन इसमें शक नहीं कि मेरी सहानुभूति चीन और रूसके साथ है।

प्र० : लेकिन ब्रिटेनके बारेमें आपका क्या विचार है?

उ० : एक समय था जब मैं कहा करता था कि मेरा नैतिक समर्थन पूरी तरह ब्रिटेनके लिए है। मुझे यह कहते हुए अफसोस होता है कि मेरा मन आज उसे यह समर्थन देने से इनकार करता है। अंग्रेजोंने हिन्दुस्तानके साथ जो सलूक किया है, उससे मुझे बड़ी पीड़ा हुई है। मैं एमरी साहबके कार्योंके लिए या सर स्टैफर्ड क्रिप्सके मिशनके लिए बिलकुल तैयार नहीं था। इनके कारण, मेरी रायमें, नैतिक दृष्टिसे ब्रिटेनकी स्थिति गलत हो गई है। इसलिए यद्यपि मैं नहीं चाहता कि ब्रिटेनकी प्रतिष्ठा भंग हो, और इसलिए उसकी हार नहीं चाहता, फिर भी मेरा मन उसे किसी भी तरहका नैतिक समर्थन देने से इनकार करता है।

प्र० : अमेरिकाके बारेमें आपका क्या कहना है?

उ० : कुछ समय पहले मैंने अपनी यह राय जाहिर की थी कि विश्व-शान्तिके लिए प्रयत्न करने के बजाय, जैसा कि वह कर सकता था, अमेरिकाका युद्धमें शामिल हो जाना उसके अपने लिए ठीक नहीं है, और विश्व-शान्तिके लिए दुर्भाग्यपूर्ण है।

प्र० : लेकिन क्या अमेरिकाके लिए कोई दूसरा रास्ता भी था?

उ० : मेरा यह विश्वास है कि अगर अमेरिका चाहता तो वह शान्ति स्थापित करवा सकता था। लेकिन यह मेरी पक्की राय है कि अमेरिकाने अवसरका सदुपयोग नहीं किया। मैं जानता हूँ कि मुझे अमेरिका-जैसे बड़े राष्ट्रकी आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं है। मैं उन सब तथ्योंको नहीं जानता जिनके कारण अमेरिकाने इस आगमें कूद पड़ने का निश्चय किया। परन्तु किसी-न-किसी तरह मेरे मनमें इस धारणाने घर कर लिया है कि अमेरिका इससे बाहर रह सकता था, और अगर वह अपनी अथाह दौलतके नशेसे अपनेको मुक्त कर ले तो अब भी वह ऐसा कर सकता है। और इस सिलसिलेमें मैं अंग्रेजी हुकूमतके भारतसे हटने के बारेमें जो-कुछ कह चुका हूँ, उसीको फिर दुहराना चाहता हूँ। अमेरिका और ब्रिटेन दोनों जबतक यह दृढ़ निश्चय करके अपने घरोंको ठीक नहीं कर लेते कि वे आफ्रिका तथा एशिया दोनों ही जगहोंसे अपना प्रभाव और सत्ता हटा लेंगे तथा रंग-भेदकी नीतिका त्याग कर देंगे, तबतक इस युद्धमें हिस्सा लेने का उनके पास कोई नैतिक आधार नहीं है। जबतक श्वेत जातियोंको श्रेष्ठ मानने का नासूर पूरी तरह नष्ट नहीं हो जाता, तबतक उन्हें प्रजातन्त्रकी रक्षा तथा सभ्यता और मानव-स्वतन्त्रताकी रक्षा करने की बात करने का कोई हक नहीं है।

प्र० : क्या आप भारत और इंग्लैंडकी समस्याके लिए पंच-फैसला कराने की हिमायत करेंगे? और अगर करेंगे तो किस किस्मके पंच-फैसले की?

उ० : मैं इसके लिए हमेशा ही तैयार हूँ। मैंने बहुत पहले यह सुझाव दिया था कि इस प्रश्नका निर्णय पंच-फैसले द्वारा हो सकता है। परन्तु मैं नहीं जानता कि इस पंच-फैसलेकी व्यवस्था किस तरह की जाये। किन्तु यदि अंग्रेजी शासक इस सिद्धान्तको स्वीकार कर लें तो निष्पक्ष पंच ढूँढ़ना असम्भव नहीं होना चाहिए, यद्यपि मैं मानता हूँ कि इस कामके लिए निष्पक्ष पंच प्राप्त करना बहुत ही कठिन है।

प्र० : लेकिन क्या देशकी घरेलू समस्याके लिए पंच ढूँढ़नेके बारेमें भी यही बात नहीं कही जा सकती?

उ० : नहीं। इसकी तुलनामें वह एक बहुत सरल बात है। जहाँतक अंग्रेजी सत्ताका सवाल है, इसका असर और ताकत आज इतनी है कि ऐसे पंच पाना मुश्किल होगा जो ग्रेट-ब्रिटेनके प्रति पक्षपातसे मुक्त रहकर निर्भीक और न्यायपूर्ण फैसला दे सकें।

प्र० : क्या स्वतन्त्रताके सवालको पंच-फैसले पर नहीं छोड़ा जा सकता?

उ० : नहीं, स्वतन्त्रताके सवालको नहीं। पंचके अधीन वही सवाल किये जा सकते हैं जिनके बारेमें मतभेदकी गुंजाइश हो। स्वतन्त्रताका जो असाधारण सवाल आज हमारे सामने है, वह तो समान ध्येय समझा जाना चाहिए। सिर्फ तभी मैं इंग्लैंड और हिन्दुस्तानके बीचके मसलेको पंच द्वारा तय करनेकी बात सोच सकता हूँ। लेकिन, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, यह एक बड़ा कठिन सवाल है। यदि हिन्दुस्तान और इंग्लैंडके बीच कभी सच्चा समझौता हुआ तो वह तभी होगा जब ब्रिटेन यह महसूस करेगा कि किसी दूसरे राष्ट्रपर शासन करना गलत है। लेकिन जब उसे यह प्रतीति हो जायेगी, तब पंचकी जरूरत नहीं रह जायेगी — कमसे-कम हिन्दुस्तानको तो नहीं रहेगी। परन्तु यदि फैसला कभी पंच द्वारा होना है तो वह तभी होगा, जब हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली जायेगी। मैं तर्कपूर्वक यह तो नहीं कह सकता कि पंच-फैसला होना ही नहीं चाहिए, क्योंकि अगर मैं ऐसा कहता हूँ तो मैं इस बातका दावा करता हूँ कि पूर्ण न्याय केवल मेरी ही तरफ है।

प्र० : बिशप फिशरका इतना आग्रहपूर्ण निमन्त्रण रहते हुए भी १९३१ में आप अमेरिका क्यों नहीं गये?

उ० : क्योंकि उस वक्त मुझे अपनेमें विश्वास नहीं था। बेशक, निमन्त्रण बहुत ही आग्रहके साथ तथा सच्चे दिलसे दिया गया था, और मैं आसानीसे उसके लिए एक पखवाड़ेका समय निकाल भी सकता था, पर मुझे इस बातका विश्वास नहीं था कि मैं वहाँ जाकर हिन्दुस्तानकी कोई सेवा कर सकूँगा। मेरा जाना वहाँकी जनताके लिए चन्द रोजका एक तमाशा-भर होता। अमेरिकावाले मेरा खूब स्वागत करते और मुझे चूर-चूर कर डालते। अमेरिकी जनता आपकी बातें सुन लेगी, आपका खूब स्वागत करेगी, मगर करेगी अपने मनका ही। गुरुदेव वहाँ गये थे, विवेकानन्द गये थे, और उनके अनुयायी तो आज भी वहाँ हैं। परन्तु अमेरिकाकी आत्मा उनके सन्देशोंसे अलिप्त रही है, क्योंकि वह 'कुबेरकी भक्तिमें निमग्न' है। कुछ भी कहिए, पर एक राष्ट्रके नाते तो अमेरिकावाले लक्ष्मीके ही उपासक हैं।

प्र० : क्या अमेरिका हिन्दुस्तानमें अपनी फौजें निजी और स्वार्थपूर्ण हेतुसे नहीं भेज रहा है?

उ० : मैं इस सवालको इससे अच्छे रूपमें रखता हूँ: "हिन्दुस्तानमें पर्याप्त जनशक्ति होते हुए भी विदेशी फौजोंका हिन्दुस्तानमें आना क्या विनाशकारी नहीं है?" अगर आप इस रूपमें यह सवाल पूछें तो मेरा जवाब होगा: "बेशक है।"

बम्बई, १८ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २४-५-१९४२

१४०. बातचीत : दान देनेवालोंसे[1]

बम्बई
[१७ मई, १९४२ के पूर्व][2]

अगर मैं यह कहूँ कि बंगलौर रिसर्च इन्स्टीट्यूटके मुकाबले, जिसे टाटाने तीस लाख रुपये दिये हैं, शान्तिनिकेतन कहीं ज्यादा सहायता पाने का अधिकारी है तो उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कह नहीं सकता कि रिसर्च इन्स्टीट्यूटको हिन्दुस्तानके बाहर कहीं कोई जानता है या नहीं। लेकिन शान्तिनिकेतनको तो जहाँ-जहाँ गुरुदेवका नाम पहुँचा है, वहाँ-वहाँ सब लोग जानते हैं, और उस संस्थाके रूपमें जानते हैं जिसने कविको अपनी महान रचनाओंके लिए प्रेरित किया। गुरुदेव उसे अपना खिलौना कहा करते थे। किन्तु अगर यह खिलौना न रहता तो उनकी काव्य-प्रतिभा भी उर्वर न बन पाती। शान्तिनिकेतनने तो अपने कला और संस्कृतिके विद्यालय द्वारा, जिसमें कोने-कोनेसे विद्यार्थी खिंचे चले आते हैं, अनेक चित्रकार, कवि और महान विद्वान तैयार किये हैं। आज जो लोग नम्र भावसे उसकी सेवामें लगे हुए हैं उनमें क्षिति बाबूके समान विद्वान और नन्द बाबूके समान कलाकार भी हैं। और, ये दोनों सज्जन अपने-अपने क्षेत्रमें अद्वितीय हैं। और हिन्दुस्तानमें इसके जोड़की दूसरी ऐसी कोई संस्था नहीं है जो इतने कम खर्चमें अपना काम चलाती हो।

गुरुदेवके प्रति तो हमारी भक्ति तबतक रहेगी जबतक हम जीवित हैं। लेकिन शान्तिनिकेतनके लिए भी वैसी ही भक्ति हम कैसे रख सकते हैं? यह कबतक चलेगी?

यदि गुरुदेवको शान्तिनिकेतनसे प्रेरणा मिलती थी तो शान्तिनिकेतनको भी गुरुदेवसे प्रेरणा मिला करती थी, और आप यह विश्वास रखिए कि आज भी वहाँ

१. महादेव देसाईके लेख "बॉम्बे रिस्पॉण्ड्स जेनरसली" (बम्बईका उदारतापूर्ण दान) से उद्धृत
२. गांधीजी बम्बईसे १७ मई, १९४२ को सेवाग्रामके लिए रवाना हो गये थे।

ऐसे लोग हैं जो उसकी सेवामें अपना सारा जीवन खपा देंगे। शान्तिनिकेतन एक 'मधुर काव्य' है। गुरुदेवके पिता शान्ति और संस्कृतिका एक निकेत स्थापित करना चाहते थे। शान्तिनिकेतन उनके उन्हीं विचारोंसे विकसित हुआ। यह बड़े दुःखकी बात है कि देशके धनी लोग, जिन्होंने शान्तिनिकेतनसे इतना पाया है, उसके महत्त्व की पूरी-पूरी कद्र नहीं कर रहे हैं। गुरुदेव देशकी और दुनियाकी एक शाश्वत निधि हैं, अतएव देशके धनपतियोंका यह कर्त्तव्य है कि उनकी संस्थाको आर्थिक दृष्टिसे सुदृढ़ बनायें . . .।

शान्तिनिकेतनको आप जितना दें कम है।

प्र० : किन्तु इस समय तो हम संकटकी स्थितिमें फँसे हैं। यह समय धन-संग्रहका नहीं है। क्या हम इसके लिए स्वराज्य-प्राप्ति तक ठहर नहीं सकते?

उ० : रवीन्द्रनाथ अपने जन्मके लिए स्वराज्य-प्राप्ति तक ठहरे नहीं थे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २४-५-१९४२

१४१. पत्र : अमृतकौरको

[१७ मई, १९४२][1]

चि० अमृत,

सब ठीक है। स्टेशनके लिए रवाना हो रहा हूँ। चन्दा पूरा हो गया।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१२२) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७४३१ से भी

१. डाककी मुहरसे

१४२. टिप्पणियाँ

दीनबन्धु-स्मारक

'हरिजन' के पाठकोंको मुझे यह खबर देते हुए खुशी होती है कि सरदार वल्लभभाई पटेल और सेठ घनश्यामदास बिड़लाका, जिन्होंने मुझे दीनबन्धु-स्मारककी रकम इकट्ठा करने के लिए आठ दिनके लिए बम्बई आनेको कहा था, प्रयत्न पूर्णतः सफल हुआ है। समाचारपत्रोंमें प्रकाशित अपीलके परिणामस्वरूप सिर्फ ६०,००० रुपयेसे कुछ ज्यादा रकम इकट्ठा हुई थी। पाँच लाखकी रकमका बाकी सारा हिस्सा इन आठ दिनोंके निरन्तर परिश्रमके फलस्वरूप इकट्ठा हुआ है। जब भी मैं चन्दा इकट्ठा करने के लिए बम्बई गया हूँ, मुझे कभी निराश नहीं होना पड़ा है। मैं चन्दा देनेवालों की उनकी उदारताके लिए अत्यन्त आभारी हूँ। उन्होंने मेरे मनका एक बड़ा बोझ उतार डाला है। मुझे इसमें जरा भी शक नहीं कि उन्होंने इससे अधिक उत्तम हेतुके लिए कभी भी रकम नहीं दी होगी। दीनबन्धु-स्मारकका आरम्भ गुरुदेव द्वारा और उन्हींकी इच्छासे किया गया था। उनकी मृत्युके बाद वह गुरुदेव-स्मारकमें समा गया, और यों उसने गुरुदेव-स्मारकका ही रूप ले लिया। दोनोंका उद्देश्य एक और अभिन्न ही हो सकता था। कोषकी आवश्यकता कुछ तो शान्तिनिकेतनका ऋण चुकाने के लिए थी, किन्तु अधिकांश मूल निवेदनमें जिन इमारतों वगैरहका जिक्र था उनके लिए थी। यहाँ मैं यह उल्लेख कर दूँ कि जहाँ इस निधिमें धनाढ्य लोगोंकी बड़ी-बड़ी रकमें आई हैं, वहाँ सारे हिन्दुस्तानके अनेक अज्ञात लोगोंकी तरफसे छोटी-छोटी रकमें भी मिली हैं। इन रकमोंके देनेवालोंमें पारसी, ईसाई, यहूदी, मुसलमान, हिन्दू वगैरह सभी शामिल हैं। मैं अपनी ओरसे और अपने साथ स्मारक-कोष-सम्बन्धी अपीलपर दस्तखत करनेवालों की ओरसे दाताओंको उनके उदार दानके लिए फिर धन्यवाद देता हूँ और जिन मित्रोंने रकम इकट्ठा करने का आयोजन किया और उसे सफल बनाने के लिए अथक परिश्रम किया उन सबको भी धन्यवाद देता हूँ।

हरिजनोंके लिए चन्दा

जब कभी मैं सेवाग्रामसे बाहर जाता हूँ तो रेलवे स्टेशनों पर और शामकी प्रार्थनाके बाद हरिजनोंके लिए पैसे माँगा करता हूँ। अगर इन अवसरोंपर मिलनेवाले पैसे अस्पृश्यता-निवारणकी प्रगतिकी निशानी हैं तो हमें यह मान लेना चाहिए कि इस काममें खासी अच्छी प्रगति हुई है; क्योंकि मैं देखता हूँ कि आज लोग इस कामके लिए पहलेके मुकाबले कहीं ज्यादा खुले हाथों पैसे देने लगे हैं। स्टेशनों पर आनेवाले दर्शकों और प्रार्थनामें शामिल होनेवाले लोगोंमें से शायद ही कोई ऐसा

होगा, जो अपनी श्रद्धानुसार कुछ भी न देता हो। वैसे इसपर कोई किला तो खड़ा किया नहीं जा सकता, फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि अगर लोगोंको इस कार्यसे थोड़ी भी हार्दिक सहानुभूति न होती तो उनकी तरफसे अनुकूल प्रतिक्रिया या तो बिलकुल ही न होती या फिर होती तो बहुत कम। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि उन्होंने हृदयसे व स्वेच्छासे अनुकूल प्रतिक्रिया दिखाई है। पैसे देनेवालोंके खिले हुए चेहरे देखकर मेरा मन बल्लियों उछलता था। बम्बईमें सात सभाओंमें रु० ४,००० एकत्र हुए। हर दिनकी उगाही पिछले दिनसे ज्यादा हुई। उदाहरणके लिए, पहले दिन रु० २०५-५-६ आये थे, जब कि आखिरी दिन रु० १३४२-१०-९।

वर्धा जाते हुए, १८ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २४-५-१९४२

१४३. टिप्पणियाँ

एक भ्रम

अंग्रेजोंको हिन्दुस्तान छोड़कर जानेकी जो सलाह मैंने दी है, उसके बारेमें स्पष्ट ही कुछ लोगोंके मनमें एक भ्रम पैदा हो गया है; क्योंकि एक अंग्रेज सज्जन मुझे लिखते हैं कि उन्हें हिन्दुस्तान और उसके लोग अच्छे लगते हैं, और वे खुशीसे हिन्दुस्तान छोड़कर जाना नहीं चाहेंगे। वे मेरी अहिंसात्मक पद्धतिको भी पसन्द करते हैं। स्पष्ट ही उन्होंने सामान्य व्यक्तिको और सत्ताधारी व्यक्तिको एक ही मान लेनेकी भूल की है। अंग्रेजोंसे हिन्दुस्तानका कोई झगड़ा नहीं है। सैकड़ों अंग्रेज मेरे मित्र हैं। मुझे अंग्रेज जातिका मित्र बना देनेके लिए एक एन्ड्रयूजकी मित्रता ही काफी थी। लेकिन हम दोनों अपने इस निश्चयपर दृढ़ थे कि हिन्दुस्तानपर अंग्रेजोंकी हुकूमत किसी भी सूरत या शकलमें नहीं रहनी चाहिए। अबतक अंग्रेज शासक यह कहते आये हैं कि "हम खुशी-खुशी लौट जायेंगे, बशर्ते कि हमें यह मालूम हो जाये कि हुकूमतकी बागडोर हम किसे सौंपें।" इसपर आज मेरा जवाब यह है कि "हिन्दुस्तानको भगवानके भरोसे छोड़ जाओ। और अगर इतनी श्रद्धा न हो तो उसे अराजकताके हाथों सौंप जाओ।" मैं हर अंग्रेजको, जिसे इंग्लैण्डसे, हिन्दुस्तानसे और दुनियासे प्रेम है, आमन्त्रित करता हूँ कि वह ब्रिटिश हुकूमतके नाम निकाली गई मेरी इस अपीलमें शामिल हो, और अगर वह नामंजूर कर दी जाये तो ऐसे अहिंसक उपायोंसे काम ले जिससे हुकूमतको मजबूर होकर यह अपील मंजूर करनी पड़े।

क्या किया जा सकता था?

बम्बईमें कुछ पत्रकारोंने मुझसे पूछा था कि कांग्रेस और लीगके बीच किसी समझौतेके अभावमें सर स्टैफर्ड क्या कर सकते थे। मैंने इसका जवाब दिया था।

मैं नहीं जानता कि वह कहीं छपा है या नहीं।[1] जो भी हो, सर्वसाधारणके लिए यह जान लेना बेहतर है कि मैंने इस सवालका क्या जवाब दिया था। सर स्टैफर्ड कांग्रेस या लीगसे मन्त्रिमण्डल बनाने को कह सकते थे। अगर उन्होंने ऐसा किया होता तो मुमकिन था कि जिस पक्षको जिम्मेदारी सौंपी जाती वह दूसरे पक्षका सहयोग प्राप्त करने में सफल हो जाता। तब हर हालतमें सरकारको अपने नामजद लोगोंके बजाय उस पक्षके सच्चे नुमाइन्दोंके साथ व्यवहार करना पड़ता। मैं नहीं जानता कि सरकारकी तरफसे कांग्रेस या लीगके सामने ऐसी कोई पेशकश की गई। जहाँतक आम लोगोंको जानकारी है, समझौतेकी बातचीत दो संगठनोंके बीच कोई समझौता न हो सकने के कारण नहीं टूटी थी, बल्कि सर स्टैफर्डके साथ इस मुद्दे पर मतभेद होने के कारण टूटी थी कि ब्रिटिश सरकार लड़ाईके दरम्यान कितनी सत्ता छोड़ने को तैयार है।

सेवाग्राम, १८ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २४-५-१९४२

१४४. प्रश्नोत्तर

फर्क

प्र० : बम्बईमें समाचारपत्रोंके प्रतिनिधियोंके साथ अपनी भेंटमें आपने अपनी इस बातको, जिसे आप अकसर कह चुके हैं, फिर दुहराया है कि मुसलमान जो चाहते हैं, उसे पाने से उन्हें तबतक कोई रोक नहीं सकता जबतक कि विरोध करनेवाले इस सवालपर उनसे लड़ने को तैयार न हों।[2] तो फिर आपके और श्री राजगोपालाचारी के रुखमें फर्क क्या रहा?

उ० : यद्यपि राजाजी ने मेरे कथनका हवाला अपने समर्थनमें दिया है तो भी मुझे अपने और उनके बीच वही फर्क मालूम होता है, जो चूनेमें और चूनमें है। वे अलग होने का अधिकार आज ही इस आशासे दे देते हैं कि उससे देशके लिए एकता खरीदी जा सकेगी और जापानियोंको दूर रखा जा सकेगा। मैं हिन्दुस्तानके अंगच्छेदको पाप समझता हूँ। मेरे वक्तव्यसे इस स्थापनाका प्रतिपादन होता है कि मैं अपने पड़ोसीको पाप करने से रोक नहीं सकता। श्री राजगोपालाचारी, यदि पड़ोसी पाप करना पसन्द करे तो, उस पापमें शामिल होना चाहते हैं। मैं उसमें

१. देखिए "भेंट: समाचारपत्रोंको", पृ० १२३-२९। परन्तु यह प्रश्न और इसका जवाब भेंट-वार्ताकी प्रकाशित रिपोर्टमें नहीं था।
२. देखिए "भेंट: समाचारपत्रोंको", पृ० १२३-२९।

शरीक नहीं हो सकता। इसके अलावा मेरी पक्की राय है कि जबतक तीसरा पक्ष यहाँ बाधक बनने को मौजूद है, एकता हो ही नहीं सकती। उसने यह बनावटी फूट पैदा की है और वह इसे बनाये हुए है। जबतक वह मौजूद है, हिन्दू और मुसलमान दोनों, बल्कि वे सभी तत्त्व जो परस्पर-विरोधी या असन्तुष्ट मालूम होते हैं, हमेशा मददके लिए उसका मुँह ताकेंगे और वह मदद उन्हें मिलेगी। उन्हें अपने देशकी आजादीसे अपना स्वार्थ ज्यादा बड़ा मालूम होता है। इसके जवाबमें कोई उलटकर मुझे मेरे इस कथनकी याद न दिलाये कि बिना एकताके स्वतन्त्रता सम्भव नहीं है। मैं अपनी इस बातका एक शब्द भी वापस नहीं लेता। यह तो एक प्रकट सत्य है। इसीका ध्यान करते-करते मुझे यह सूत्र मिला कि मैं अंग्रेजी सत्ताको हिन्दुस्तान छोड़कर चले जाने की सलाह दूँ। पर उसके जाने-मात्रसे हमें आजादी नहीं मिल जाती। उसके जाने से या तो देशमें एकता स्थापित हो सकती है या अराजकता फैल सकती है। एक जोखिम यह भी है कि ऐसे समय मौका पाकर कोई दूसरी हुकूमत अंग्रेजोंकी जगह ले ले, बशर्ते कि वह जगह खाली हो। लेकिन अगर अंग्रेज शासक स्वेच्छासे और व्यवस्थित ढंगसे हिन्दुस्तान छोड़कर चले जायें तो उससे न सिर्फ उनकी नैतिक महत्ता बढ़ जायेगी, बल्कि वे एक महान राष्ट्रकी सद्भावपूर्ण मित्रता भी प्राप्त कर सकेंगे। मैं चाहता हूँ कि देशके सभी परस्पर-विरोधी स्वार्थ और तत्त्व मिलकर इस बातकी कोशिश करें कि हिन्दुस्तानसे विदेशी हुकूमत हट जाये। अगर वे ऐसा नहीं करते तो उनके साथ किया गया कोई भी समझौता बालूकी नींवपर खड़े किये गये मकानकी तरह होगा। इस डरसे कि कहीं जापानी हिन्दुस्तानपर कब्जा न कर लें, राजाजी ने इस प्रकट सत्यकी ओरसे अपनी आँखें बन्द कर ली हैं। स्वतन्त्रता सब प्रकारके भयको मिटा देती है — फिर वह भय चाहे जापानियोंका हो, अराजकताका हो, या ब्रिटिश सिंहकी गुर्राहटका हो।

सेवाग्राम, १८ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २४-५-१९४२

१४५. पत्र : मीराबहनको

सेवाग्राम, वर्धा
१८ मई, १९४२

चि० मीरा,

तुम्हारा पहला पत्र बम्बईमें मिला था। मुझे खबर देती रहना। सब ठीक चल रहा है। सप्रेम,

बापू

श्री मीराबहन
कांग्रेस हाउस
कटक
उड़ीसा

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६४९७) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९८९२ से भी

१४६. पत्र : अमृतकौरको

१८ मई, १९४२

चि० अमृत,

आज तो 'हरिजन' दिन। खत लिखने का वक्त कहांसे? गरमी तो हैं बहुत नहिं लगती। सब अच्छे हैं। मेथ्यु बीमार है। मैं जयसुखलालकी छोटी लड़कीको[1] लाया हूं।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ४२६४) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७८०६ से भी

१. मनु गांधी

१४७. सिन्धमें अराजकता

थरपारकरके एक कार्यकर्त्ता श्री अस्सनदासके साथ प्रोफेसर घनश्याम हालमें ही उस क्षेत्रका दौरा करके आये हैं, जहाँ हूरोंके बलवे हो रहे हैं।[१] उन्होंने अपने इस दौरेका एक विस्तृत विवरण तैयार किया है और उसकी एक नकल मेरे पास भेजी है। नीचे विवरणका संक्षिप्त सार उन्हींके शब्दोंमें दिया जा रहा है:

> हूरोंकी कार्रवाइयोंके कारण जो गम्भीर स्थिति पैदा हो गई है, उसे सिन्धके बहुत कम लोग समझ पा रहे हैं। हूर लोग पीर पगारोके अनुयायी हैं, जिन्हें सरकारने गिरफ्तार करके, कहा जाता है, नागपुरमें नजरबन्द कर रखा है। उनके सभी अनुयायी हूर नहीं हैं। उनके अनुयायियोंकी संख्या लाखोंमें मानी जाती है। हूरोंकी ज्यादातर बस्तियाँ संघड़, सिंझोड़ो और शाहदादपुर तालुकोंमें हैं। वे जरायमपेशा माने जाते हैं और उनमें से कई जरायमपेशा लोगोंकी बस्तियोंमें रखे गये थे। ये बस्तियाँ कुछ साल पहले तोड़ दी गईं। लेकिन तब भी उनको सरकारी हुक्मके मुताबिक पुलिस थाने में अपनी हाजिरी बराबर लिखानी पड़ती थी। हूरोंका विश्वास है कि उनके पीर पुलिस द्वारा उनके खिलाफ की गई झूठी रिपोर्टपर गिरफ्तार किये गये हैं। उनकी एक शिकायत है कि उनमें से किसीको अपने पीरसे मिलने नहीं दिया जा रहा। कहते हैं कि उन्हें पुलिसकी इस ज्यादतीके खिलाफ भी शिकायत है कि उन्हें हर रोज थानेमें अपनी हाजिरी देनी पड़ती है।
>
> पीर पगारोकी गिरफ्तारीके बाद संघड़के पासवाले उनके मकानकी तलाशी ली गई थी। साथ ही, पीरके बँगलेसे लगी हुई झोंपड़ियाँ, जिनमें उनके अनुयायी इकट्ठा हुआ करते थे, जलाकर खाक कर दी गई थीं। इन कारणोंसे आज हूर इतने गुस्सा हो गये हैं कि उन्होंने बतौर चुनौतीके सरकार के खिलाफ एक भयंकर हलचल शुरू कर दी है। उन्होंने हत्याएँ और डाकेजनी शुरू कर दी है, वे रेलवे स्टेशनोंपर हमला करते हैं, पी० डब्ल्यू० डी०

१. इस क्षेत्रमें १ अप्रैल, १९४२ से मार्शल लॉ घोषित कर दिया गया था। एक सरकारी विज्ञप्तिमें कहा गया था: "छह माहसे भी ज्यादा समयसे हूरोंने अन्धाधुन्ध हत्याओं, तोड़फोड़ और डाकेजनी द्वारा पूरे जिलेमें आतंक फैला रखा है. . . ।" १३ मई, १९४१ को सिन्ध सरकारने गैर-सरकारी लोगोंको दिये बन्दूक, राइफल और पिस्तौल रखनेके सभी लाइसेन्स आर्म्स ऐक्ट तथा भारत रक्षा कानूनके अन्तर्गत रद्द करनेका आदेश जारी कर दिया था। (इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२, जिल्द १, पृ० ६५ और ८३-८४)

के बँगलोंकी सम्पत्तिको बरबाद करते हैं, तार और टेलीफोनके तार काटते हैं, नहरोंके बाँध तोड़ते हैं, वगैरह-वगैरह। एक दिन भी ऐसा नहीं जाता जब इन वारदातोंकी खबरें न आती हों। शुरूमें उनकी ये कार्रवाइयाँ ज्यादातर संघड़, सिंझोड़ो और शाहदादपुर तालुकों तक ही सीमित थीं, लेकिन अब ये सिन्धके दूसरे हिस्सोंमें भी, खासकर खिपड़ो तालुकेमें, जो संघड़से लगा हुआ है, फैल गई हैं। कहा जा सकता है कि पीर पगारोको छुड़वानेके लिए हूरोंने सरकारके खिलाफ विद्रोह कर दिया है। अपने पीरमें उनकी इतनी गहरी श्रद्धा है कि वे उनके लिए अपना सब-कुछ, अपनी जान तक, कुरबान करनेको तैयार हैं। पीर पगारोको गिरफ्तार हुए आज छह माहसे भी ज्यादा हो चुके हैं। इस अर्सेके शुरूमें हूरों द्वारा ये वारदातें इतनी ज्यादा नहीं की जाती थीं जितनी अब की जाने लगी हैं। जैसे-जैसे वक्त बीतता गया है, उनकी ये कार्रवाइयाँ न सिर्फ तादादमें बढ़ती गई हैं, बल्कि प्रारम्भिक तीन तालुकोंके अलावा दूसरे तालुकोंमें भी फैल गई हैं। हूरोंने अपनी एक सरकार शुरू कर दी है। उन्होंने न सिर्फ अपना एक सरदार चुन लिया है, जिसे वे अपना बादशाह कहते हैं, बल्कि कमाण्डर, कप्तान वगैरह भी मुकर्रर कर दिये हैं। कहा जाता है कि उन्होंने अपनेको कुछ समूहोंमें बाँट लिया है और हरएक समूहको अलग-अलग हल्के सौंप दिये हैं। शुरूमें उनकी कार्रवाइयाँ सरकारके खिलाफ और उन लोगोंके खिलाफ हुआ करती थीं जिन्हें वे पीर पगारोका दुश्मन समझते थे, या जो उनके खिलाफ सरकारकी किसी भी तरह मदद करते थे। लेकिन अब ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने अपना तौर-तरीका बदल दिया है, और अब वे हर किसी पर हमला करने लगे हैं। जमींदार हो या सेठिया, हिन्दू हो या मुसलमान, ऊँची तनख्वाहवाला अफसर हो या छोटा-मोटा कोटर या बेलदार, अमीर हो या गरीब, गुनहगार हो या बेगुनाह—कोई भी उनके हमलेसे सुरक्षित मालूम नहीं पड़ता। यहाँतक कि औरतोंके साथ भी कोई रियायत नहीं की जाती। परम्परा यह रही है कि हूर कभी किसी औरतपर या बेगुनाहपर हमला नहीं करते। लेकिन कहते हैं कि इधर उनके कुछ नौजवान और शरारती लोगोंने पुरानी परम्पराओंको ठुकरा दिया है, और अब वे किसीके साथ कोई रियायत नहीं कर रहे। अपनी कार्रवाइयोंको ज्यादा कारगर बनानेके लिए उन्होंने जान-बूझकर राइफलें, बन्दूकें, गोला-बारूद, कपड़े और पैसा बटोरनेका सिलसिला शुरू किया है। इधर उनके हमले ज्यादातर उन्हीं लोगोंपर हुए हैं जिनके पास ये चीजें पाई जाती हैं। कहा जाता है कि इस तरह उन्होंने बहुत-सी बन्दूकें इकट्ठा कर ली हैं और नकद व गहनोंके रूपमें बहुत-सा धन भी जमा कर लिया है। वे अपने हमले फौजी ढंगसे आयोजित करते हैं, और कभी-कभी उनकी पोशाक

भी खाकी कमीज और खाकी निकर होती है। १६ अप्रैलको जब खिपड़ो-संघड़ बसपर हमला किया गया तो उनकी टुकड़ीका सरदार न सिर्फ खाकी पोशाक पहने था, बल्कि सरपर टोप भी लगाये था। जिन लोगोंने शाहपुर चक्करके नजदीक भूतपूर्व फौजी जमींदार वियन्तसिंहपर हमला किया था, वे भी फौजी पोशाकमें थे। उन्हें फौजी पोशाकमें देख खालसा वियन्तसिंह धोखे में आ गये, और यह सोचकर कि वे कोई फौजी सिपाही हैं, वे उनसे मिलने आगे बढ़े। हूर अपने सरदारका हुक्म पाकर ही हमला करते और गोली चलाते हैं। कहा जाता है कि वे जमींदारों और व्यापारियोंसे कर भी वसूल करने लगे हैं। उन्हें इस मतलबकी धमकियाँ दी जाती हैं कि अगर वे उन्हें कर नहीं देंगे तो उनके गेहूँके खलिहानोंमें आग लगा दी जायेगी या उन्हें सजा देने का दूसरा कोई तरीका अख्तियार किया जायेगा, क्योंकि वे उन हल्कों में अपनेको ही सरकार घोषित करते हैं। कहा जाता है कि बहुत लोग उनकी इन धमकियोंके वश हो जाते हैं, क्योंकि अगर वे ऐसा न करें तो न सिर्फ उनकी जायदाद बल्कि जानतक खतरेमें पड़ जाती है। हूरोंसे प्रभावित इन हल्कोंमें आम तौरपर लोगोंका खयाल यही हो गया है कि सरकार अपने हाकिमोंकी मदद करनेवालों की, या हूरोंके आदेशोंको मानने से इनकार करनेवालोंकी रक्षा करने में असमर्थ है। कई आदमी, जिन्होंने ऐसा किया, या तो कत्ल कर डाले गये या दूसरे हमलोंके शिकार बने। लोग बिलकुल ही लाचार हो गये हैं। इससे कोई यह न मान ले कि सिन्धमें या ऊपरके इन तालुकोंमें जो भी फौजदारी वारदातें आज हो रही हैं, उन सबके लिए हूर ही जिम्मेदार हैं। हूरोंके कारण पैदा हुई हालतका लाभ उठाकर कई असामाजिक और जरायमपेशा लोगोंने, जिनकी सिन्धमें बड़ी इफरात है, मनमानी शुरू कर दी है। वे यह सोचते हैं कि या तो उनके किये गुनाहोंका शक हूरों पर पड़ेगा या हूरोंके आतंकको दबाने में लगी हुई पुलिस उनके खिलाफ कोई कारगर कार्रवाई नहीं कर सकेगी। इस तरह फौजदारीकी वारदातोंकी इन दो धाराओंने — एक हूरोंकी और दूसरी गैर-हूर जरायमपेशा लोगोंकी — मिलकर आज एक ऐसी जबरदस्त नदीका रूप ले लिया है कि जिसकी बाढ़में आम तौरपर समूचा सिन्ध और खास तौरपर उपर्युक्त तालुके बुरी तरह घिर गये हैं। हालत कितनी गम्भीर हो उठी है, इसका पता इस हकीकतसे चल सकता है कि इन तालुकोंमें शासनका सामान्य काम-काज बन्द हो गया है। जैसे, संघड़ तालुकेकी सभी पुलिस चौकियाँ उठा ली गई हैं, और सिर्फ तालुकेके सदर मुकामपर एक पुलिस थाना रखा गया है। यह सब इस डरसे किया गया है कि कहीं हूर लोग पुलिसपर हमला करके उसपर हावी न हो जायें और उसकी राइफलें न छीन लें। पुलिसके जो दस्ते फौजदारीकी वारदातोंकी तहकीकातके

लिए बाहर जाते हैं, वे सूरज डूबने से पहले ही सदर मुकामपर लौट आते हैं। इस डरसे कि कहीं रातमें हमला न हो जाये, वे सूर्यास्तके बाद अपना सामान्य काम-काज भी करने की हिम्मत नहीं करते। पुलिस चौकियोंके तोड़ देने और पुलिस दस्तोंके सूर्यास्तसे पहले तालुकेके सदर मुकामपर लौट आने का एक असर यह हुआ है कि हूरोंकी और दूसरे जरायमपेशा लोगोंकी हिम्मत इतनी ज्यादा बढ़ गई है कि वे यह सोचने लगे हैं कि उनके लिए अंग्रेज सरकार खत्म हो चुकी है। पुलिसकी तरह ही राजस्व-विभागका सामान्य कामकाज भी कुछ हदतक बन्द हो गया है। मुझे बताया गया था कि टप्पेदारोंको अपने टप्पोंमें जाते बहुत डर लगता है, और इसलिए वे तालुकेके सदर मुकाममें ही काम कर रहे हैं। महसूल-वसूलीका सारा काम इधर तालुकेके सदर मुकाममें ही होने लगा है, टप्पेदारके डेरे पर नहीं, जैसा कि आम तौरपर होता है। एक टप्पेदारसे उसके पास का वसूलशुदा महसूल लूट लिया गया, और दो कोटर जानसे मार डाले गये। यह बताया गया कि एक मुख्तियारकर को महसूल माफीकी कार्रवाईके लिए पुलिसकी रक्षामें जाना पड़ा था, और अपनी अफसरीको छिपाने के लिए एक मामूली देहाती की पोशाक पहननी पड़ी थी। सरकारी हाकिम और उनके मातहत कर्मचारी इतने डरे हुए हैं कि वे हस्वमामूल अपना काम नहीं कर पाते हैं। यहाँतक कि जिला मजिस्ट्रेट को भी कहीं जाते-आते अपनी हिफाजतके लिए बड़ा बन्दोबस्त रखना पड़ता है। यह बताया गया कि उनके बँगलेके पासके तमाम पेड़ इस डरसे काट डाले गये हैं कि कहीं डाकू उनकी आड़में छिपकर उनपर हमला न कर बैठें। यहाँ तक कि जब वे अपने बँगलेके पासवाले क्लबमें टेनिस खेलने जाते हैं तो उन्हें सख्त पहरेमें जाना पड़ता है। टेनिसकोर्टके पास और क्लबके चारों ओर हथियारबन्द पुलिस तैनात की जाती है। डिप्टी कलेक्टरका सामान लेकर जानेवाले ऊँटोंवालोंको भयानक धमकियाँ दी गईं। उन्होंने इसकी रिपोर्ट की और उनके साथ हथियारबन्द पुलिसका एक मजबूत दस्ता भेजा गया। उपद्रवग्रस्त क्षेत्रोंमें लोक-कार्य विभागका भी यही हाल है। उसके बँगलों पर हमले हुए हैं। इस प्रदेशके वे जमींदार भी, जिनके पास अपनी हिफाजतके लिए हथियार रहा करते हैं, आज सुरक्षित नहीं हैं, क्योंकि अब बन्दूकें और गोलियाँ आदि छीनने के खयालसे उनपर भी चुन-चुनकर हमले होने लगे हैं।

सरकारने परिस्थितिको काबूमें लाने के लिए कुछ कदम उठाये हैं। उपद्रवग्रस्त क्षेत्रोंमें सैकड़ोंकी तादादमें विशेष पुलिस तैनात की गई है। हूरोंके आतंक को दबाने के लिए एक विशेष जिला मजिस्ट्रेट और एक विशेष जिला पुलिस सुपरिंटेंडेंटकी नियुक्ति की गई है। इनका कार्यक्षेत्र थरपारकर और नवाबशाह दोनों जिलोंमें रहेगा, क्योंकि उपद्रवग्रस्त क्षेत्र इन दोनों जिलोंमें पड़ते हैं।

पुलिसकी मददके लिए फौज भी भेजी गई है। इस परिस्थितिका सामना करनेके लिए सिन्धकी विधान-सभाने अपने एक गुप्त अधिवेशनमें एक विशेष हूर संकट अधिनियम भी पास किया है, जिसके अनुसार हूरों और उनकी मदद करनेवालों के खिलाफ परिगणित अपराधोंके लिए जमानत और मुकदमेके मामलोंमें जाब्ता फौजदारीकी कार्रवाई छोड़ दी गई है। परिस्थितिको काबूमें लाने में ये सारे उपाय अबतक बेकार साबित हुए हैं। हालत बदसे बदतर होती जा रही है। सारी पुलिस ताल्लुकोंके सदर मुकामों में ही केन्द्रित की गई है, और उसके एक बड़े हिस्सेका उपयोग सरकारी दफ्तरों और अफसरोंकी रक्षामें किया जा रहा है। लोग शिकायत करते थे कि इतनी पुलिस इस कामके लिए काफी नहीं है। वारदातें इतनी ज्यादा हो रही हैं कि हरएकका सुराग पाना मुमकिन नहीं है। फौज महज कभी-कभी चक्कर लगा जाती है। हूरोंपर इसका कोई रोब नहीं पड़ता, इसलिए ये उपाय उनके बलवेको दबाने में बेकार रहे हैं। जनताको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अबतक इस सिलसिलेमें खास वारदातोंके लिए उपद्रवग्रस्त क्षेत्रोंमें जो गिरफ्तारियाँ हुई हैं, उनमें ज्यादातर गैर-मुरीद यानी उन लोगोंकी हुई हैं जो पीर पगारोके अनुयायी नहीं हैं। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि हूरोंके अलावा कुछ दूसरे असामाजिक और जरायमपेशा लोगोंने परिस्थितिका फायदा उठाते हुए अपराध करने शुरू कर दिये हैं। उनमें से कुछ लोग गिरफ्तार हुए हैं। लेकिन जहाँतक किसी खास वारदातसे सीधा सम्बन्ध रखनेवाले हूरोंका ताल्लुक है, इस बातको देखते हुए अबतक प्रायः कोई गिरफ्तारी नहीं हुई है कि वारदातोंकी फेहरिस्त बहुत लम्बी है। यह सच है कि बहुत-से हूरोंको, जिनकी संख्या पन्द्रह सौ से ऊपर मानी जाती है, पकड़ लिया गया है, लेकिन उनकी यह गिरफ्तारी किसी खास वारदातकी जाँच-पड़तालके सिलसिलेमें नहीं हुई है, बल्कि वे एक ऐसी तरकीबसे घेर लिये गये जिसका उन्हें पता नहीं था। जब वे हमेशाकी तरह पुलिस थानेमें अपनी हाजिरी लिखाने आये तो वहीं घेर लिये गये।

जो लोग फरार हैं और जो हत्याओं, डाकों, और लूटमार वगैरहके लिए जिम्मेदार माने जाते हैं, उनमें से प्रायः कोई भी गिरफ्तार नहीं किया गया है।

स्पष्ट ही शासन-तन्त्र टूट गया है। इसका सच्चा इलाज तो यही है कि विधान-सभाके कांग्रेसी सदस्य विधान-सभाका त्याग करें और खानबहादुर अल्लाबख्श और उनके साथी मन्त्री अपने पदोंसे इस्तीफा दे दें। इन सज्जनोंको चाहिए कि ये अपना एक शान्ति दल बनाकर निर्भीक भावसे हूरोंके बीच जा बसें और अपने इन पथभ्रष्ट देशवासियोंको ऐसे जुर्म न करने के लिए समझाने के लिए अपनी जान जोखिम में डालें। पीर पगारोके परिचित लोगोंका एक शिष्टमण्डल उनसे मिले और उन्हें

अपने अनुयायियोंके नाम ऐसी स्पष्ट आज्ञाएँ जारी करनेको राजी करे जिससे वे अपनी घातक कार्रवाइयोंसे बाज आयें। इसके साथ उनकी रिहाईकी शर्त नहीं होनी चाहिए। अगर वे समझते हैं कि उनके साथ ज्यादती हुई है तो उन्हें हक है कि वे उसकी जाँचकी माँग करें। सरकारको चाहिए कि वह जनताको अपने विश्वासमें ले। यह कहा जा सकता है कि यह सब तो कांग्रेसजनों और मन्त्रियोंके इस्तीफोंके बिना भी हो सकता है। मेरा जवाब यह होगा कि खानबहादुर, उनके साथी मन्त्रियों और सदस्योंकी इस सम्बन्धमें कुछ करनेकी तत्परताके प्रमाणके रूपमें उनके इस्तीफे जरूरी हैं। अगर वे विधान-सभामें बने रहते हैं तो वे इस काममें अपना पूरा ध्यान नहीं लगा सकते। लेकिन मेरी इस सिफारिशकी खास वजह तो यह है कि विधान-सभाकी मारफत इन विद्रोही कार्रवाइयोंको कारगर तरीकेसे बन्द न कर सकने की अपनी लाचारीको उन्हें मंजूर कर लेना चाहिए। यह उनकी इस इच्छा की सचाईका प्रमाण होगा कि वे उन लोगोंके लिए अपनी जगह खाली करने को तैयार हैं जो समझते हैं कि वे इस गम्भीर परिस्थितिका ज्यादा कारगर ढंगसे सामना कर सकते हैं। इस्तीफोंका असर लोगों पर अच्छा ही होगा। यह सम्भव है कि इस्तीफा देनेवालों की निःस्वार्थता और उनका साहस संक्रामक सिद्ध हो, और दूसरोंको भी उनके साथ शामिल होने के लिए प्रेरित करे। प्रो० घनश्यामकी इस रोमांचकारी रिपोर्टके समक्ष विधान-सभाके सदस्य सेठ सीतलदासकी हत्या, जो हर तरह शोकजनक है, एक मामूली-सी चीज बन जाती है। मैं चाहता हूँ कि इस हत्यासे विधान-सभाके अन्य सदस्योंको हूरोंके बीच जाने और मौतका वरण करते हुए भी उन्हें उनकी गैर-कानूनी और अमानुषी कार्रवाइयोंसे रोकने की प्रेरणा मिले।

वर्धा जाते हुए, १८ मई, १९४२

[पुनश्च:]

ऊपरकी पंक्तियाँ लिख चुकने के बाद मैंने उस भयंकर रेल-दुर्घटनाकी खबर सुनी है जिसमें सर गुलाम हुसैन हिदायतुल्लाके पुत्रके साथ और भी कई लोग मरे हैं। दुर्घटनाके बाद वहाँ हूरोंने गोलियाँ चलाईं, यह इस बातका सूचक है कि हूर किस हदतक आततायी हो गये हैं। इससे मैंने ऊपर जो सिफारिश की है, उसे बल ही मिलता है। इस तरहका वीरतापूर्ण कार्य ही हूरोंको होशमें ला सकेगा, दूसरी कोई चीज नहीं। उन्हें आतंकित करने की नीतिसे तो हालत और भी बिगड़ेगी। मुझे आशा है कि सिन्धको इस फैलते हुए विद्रोहसे मुक्त करने के लिए सब दल मिलकर कोशिश करेंगे।

सेवाग्राम, १९ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २४-५-१९४२

१४८. पत्र : तैयबुल्लाको

१९ मई, १९४२

प्रिय तैयबुल्ला,

मैं लाचार हूँ। तुम्हें अध्यक्षसे कहना चाहिए।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६३) से

१४९. कत्तिनोंकी मजदूरीमें से अधिकाधिक कितनी रकम काटी जाये[1]

प्र० : कत्तिनोंको दी जानेवाली मजदूरीमें से उन्हें खादी देने के लिए जो रकम काट ली जाती है, उसका परिमाण कितना हो, इस बारेमें कई तरहके विचार प्रकट किये जाते हैं। . . . आपसे प्रार्थना है कि इसमें नीति क्या हो, मर्यादा किस प्रकारसे जाँची जाये, इस बारेमें अपनी राय 'खादी-जगत्'में प्रकाशित करके खादी का काम करनेवालों का मार्गदर्शन कीजिए।

उ० : असल बात यह है कि जब कत्तिनोंकी मजदूरी बढ़ाई गई, तब एक ही खयाल रहा था कि जिनको कभी सच्ची मजदूरी नहीं मिली, उनको वाजिब मजदूरी देना चरखा संघ जैसी पारमार्थिक संस्थाका धर्म होता है। चरखा संघ खादी पहननेवालोंके लिए नहीं, वस्त्र-स्वावलम्बन करनेवालों के लिए नहीं बना, लेकिन मजदूरीसे खादी बनानेवालों के लिए था, उनमें भी कत्तिनोंके लिए। इसके पीछे विचार यह है कि कातने का काम करोड़ोंका है, और उन्हें धन्धा मिले तो भुखमरी मिटने में कुछ मदद मिल सकती है।

अब अगर कत्तिनोंकी मजदूरी बढ़ानी है तो यह मजदूरी तभी बढ़ सकती है, जब कि सभी खादी पहनें; अन्यथा सबको कातने का धन्धा नहीं मिल सकता। थोड़े ही लोगोंको मदद देने के लिए चरखा संघ-जैसी संस्थाकी आवश्यकता नहीं है। अगर सबको खादी पहननी है, तो कत्तिनोंको तो पहननी ही है। कत्तिनें खादी न पहनें

१. यह मूल रूपमें *खादी-जगत्* में प्रकाशित हुआ था।

और हम उन्हें माँगसे भी ज्यादा मजदूरी देते रहें तो वह केवल दान ही हो जायेगा। दान चरखा संघका ध्येय कभी नहीं था। इसलिए जैसे एक तरफ कत्तिनोंको ज्यादा मजदूरी देना हमारा धर्म था, वैसे ही दूसरी तरफ उन्हें और उनके परिवारको खादी पहनाने का भी धर्म था। इस दूसरे धर्मके पालनके लिए हम कत्तिनोंसे अवश्य ही यह कह सकते हैं कि उन्हें जो ज्यादा मजदूरी मिलती है, उसका प्रथम उपयोग तो वे खादीका खर्च निकालने में करें।

लेकिन हम ऐसा करने में सफल नहीं हो सकते थे, इसलिए हमने मध्यम मार्ग ग्रहण किया। जितना आगे जा सकते थे, उतना आगे बढ़े। हमारे पास किसीको मजबूर करने का साधन नहीं था, न हमने रखा है, न भविष्यमें रखना है। चरखा संघ अहिंसाका प्रतीक है, और अहिंसाका बड़ा प्रयोग है। इसके मूलमें शुद्धतम न्यायबुद्धि है। जिनके साथ हमेशा ही अन्याय हुआ है, उनको न्याय देने की चेष्टा है। इसलिए हमारे सब निर्णयोंको जड़में शुद्धतम न्यायबुद्धि होनी चाहिए।

इतना याद रखा जाये कि हमारा ध्येय तो हर कत्तिनको एक घंटेका एक आना दिलाने का है। लेकिन हम उससे दूर पड़े हैं। वहाँ तक पहुँचने का हमारे पास साधन नहीं है। हमारे औजार ऐसे नहीं हैं कि जिनसे कत्तिनोंके एक घंटेका एक आना दिया जा सके।

महँगाईके इन दिनोंमें अगर हम कत्तिनोंको ज्यादा दे सकें तो देने का धर्म होता है। इसका निर्णय तो चरखा-शास्त्री और इस क्षेत्रके अनुभवी ही कर सकते हैं।

सब निर्णयोंमें विवेककी आवश्यकता तो है ही। अगर विवेक कहता है कि कत्तिनोंकी मजदूरीकी बढ़तीमें से उन्हें एकाएक खादी पहनाने के लिए हम पैसे नहीं काट सकते है तो हरगिज न काटें; कत्तिनको अपनी और अपने घरवालोंकी आवश्यकतासे अधिक खादी लेनी पड़े, ऐसी कटौती हरगिज न की जाये। दूसरे शब्दोंमें कहें तो कत्तिनोंको कुटुम्बीजन समझकर ही उनसे पैसा लेना है। उनके अज्ञानका दुरुपयोग हमें कभी नहीं करना चाहिए। हम उनकी आवश्यकताओंको समझें और समझकर जैसा उचित लगे, वैसा करें।

सेवाग्राम, २० मई, १९४२

हरिजनसेवक, ३१-५-१९४२

१५०. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
२० मई, १९४२

चि० अमृत,

मुझे तुम्हारे सभी पत्र मिले। तुम्हारी हिन्दी पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं है। वह उतनी ही आसान है जितनी तुम्हारी अंग्रेजी। यह पत्र मैं तुम्हारी खुशीके लिए

अंग्रेजीमें लिख रहा हूँ। यह शत-प्रति-शत स्वदेशी कलमसे लिखा जा रहा है। वह अच्छा काम दे रही है।

तुमने जो प्रश्न उठाये हैं उन्हें मैं नोट करता हूँ। उनका जवाब अगले सप्ताह अवश्य देने की कोशिश करूँगा।

बा की तबीयत ठीक चल रही है।

मौसम बहुत ज्यादा कष्टदायक नहीं है। रातें काफी सुहावनी हैं। लौटने पर मैंने पाया कि मेरा वजन घटकर ९८½ हो गया है। इतना तो घटना ही था। काम कड़ी मेहनतका था। चिन्ताका कोई कारण नहीं है, क्योंकि वैसे मैं बिलकुल ठीक हूँ।

आज ही मिला एक पत्र साथ रख रहा हूँ; एक बादशाह खाँका भी है। यदि कुछ हिन्दू लड़कियाँ भगाई जायें या हिन्दू कत्ल किये जायें तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। सरकारी अधिकारियोंके विरुद्ध जो आरोप है उसमें कितना सत्य है, मै नहीं जानता। जो भी हो, हम प्रतीक्षा करें, देखें और प्रार्थना करें।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६८७) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६४९६ से भी

१५१. पत्र: अमृतलाल चटर्जीको

२० मई, १९४२

प्रिय अमृतलाल,

आखिरकार तुम्हारा जवाब मुझे मिल गया।

मैं तुम्हारे साथ आभाके बारेमें तर्क नहीं करूँगा। तुमने उसकी सगाईके लिए अनुमति दे दी थी। विवाह स्थगित करने का सुझाव तो मैंने उससे जो भूल हुई, उसके कारण, दिया था। सगाईके समय तुम्हें पूरा भरोसा था कि तुम इसमें अपनी पत्नीकी सहमति पा सकोगे। मैं नहीं जानता कि अब क्या हो गया है। लेकिन यह तो तुम्हारे सोचने का विषय है। मेरे लिए यह एक नया समाचार है कि बंगालमें लोग अपनी लड़कियोंका बंगालसे बाहर या तथाकथित जातिके बाहर जाना पसन्द नहीं करते। मैं अनेक बंगाली लड़कियोंको जानता हूँ जो बंगालसे बाहर विवाहित हैं और पूर्णतया सुखी हैं। तुमने स्वयं वीणाका विवाह कहीं भी करने की बात सोची है। तुम चाहते हो कि वह अपने-आप चुनाव कर ले। और यदि उसे कोई अपने मनका नवयुवक मिल गया तो सम्भव है वह ऐसा ही करेगी।

जो भी हो, मैं आभाको राजकोट भेजने की सोच रहा हूँ। यहाँपर लोग विश्वास ही नहीं करेंगे कि आभाका कनुसे विवाह अभी अनिश्चित है। स्वाभाविक

है कि न आभा और न कनु ऐसी बात पसन्द करते हैं। आभाको वीणाका साथ मिलेगा और नारणदास व्यक्तिगत रूपसे उसका खयाल रखेंगे।

जहाँतक 'हरिजन' के लेखोंका सम्बन्ध है, यदि अनुवाद सही हो और तुम मेरे नामका उल्लेख न करो तो तुम जो भी लेख चाहो ले सकते हो। इतना ही खयाल रखना है कि ऐसा न समझा जाये कि तुम जो काम कर रहे हो वह किसी रूपमें मेरा काम है। लेकिन किसी भी उचित सेवा-कार्यमें निश्चय ही तुम्हें मेरा आशीर्वाद है।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३४०) से। सौजन्य : अमृतलाल चटर्जी

१५२. पत्र : लक्ष्मी गांधीको

२० मई, १९४२

चि० लक्ष्मी,

तू पहली कक्षामें पास हुई यह अच्छा लगता है। आगे बढ़ो।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १९९४) से

१५३. पत्र : ना० र० मलकानीको

सेवाग्राम, वर्धा
२१ मई, १९४२

प्रिय मलकानी,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरे लेखोंसे मेरी राय तुम्हें साफ मालूम हो गई होगी। तुम्हारे लिए मैं बिलकुल स्पष्ट रूपसे कह सकता हूँ कि यदि तुम्हारा दिल कहता है कि तुम्हें तलवार उठानी चाहिए तो तुम वैसा करने में झिझको नहीं। इस समय हरएकको अपने विवेकपर छोड़ देना चाहिए कि वह जैसा ठीक लगे वैसा करे। यदि कांग्रेसका अनुशासन रास्तेमें रुकावट बनता है तो तुम्हें इस्तीफा दे देना चाहिए। यही सलाह मैंने मुन्शीको[1] दी थी। देशको तुम्हारी पूरी सेवा मिलनी चाहिए।

१. कन्हैयालाल मा० मुन्शी; देखिए खण्ड ७४, पृ० १२५-२७।

सिन्धसे लौटने के बाद डॉ० गोपीचन्द मुझसे मिले थे।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९४९) से

१५४. पत्र : अमृतकौरको

२१ मई, १९४२

चि० अमृत,

तुम्हारे दो खत साथ मिले। मैं तो खत लिख ही नहीं पाता हूं। महादेव सब हकीकत देते हैं। मैं जल्दबाजी नहीं करूंगा। तुम्हारे तो दिल्ली जाना होगा?

बापूके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ४२६५) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७८९७ से भी

१५५. पत्र : हीरालाल शास्त्रीको

सेवाग्राम, वर्धा
२१ मई, १९४२

भाई हिरालाल शास्त्री,

इतना परिताप अनावश्यक है। हम सावधान रहे। भूल तो सबसे होती है। सोहनलालजी अच्छे तो है ही।

बापूके आशीर्वाद

मूल पत्रसे : हीरालाल शास्त्री पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१५६. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेवाग्राम
२१ मई, १९४२

चि० कृष्णचंद्र,

अगले खतमें जो था उसका उत्तर मैंने तो दिया ऐसा लगा था। अब तो उत्तर आसान है। जो काम तुमको सिपुर्द किया जाय उसमें तो तुमारा ही चलना चाहीये। लेकिन अहिंसक संस्थामें कानून मिट जाता है और उसका बोज हम कभी महसुस नहीं करते हैं इसलिये जब कोई कानून-भंग करता है तो हम उसके प्रति उदार रहते हैं। यह समजमें आया है?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४२६) से। एस० एन० २४४८० से भी

१५७. प्रश्नोत्तर

ये छह[1] सवाल ऐसे कार्यकर्त्ताओं द्वारा पूछे गये हैं जो अंग्रेजी हुकूमतके हिन्दुस्तानसे हट जानेकी मेरी योजनाका समर्थन करते हैं। इसलिए इन सवालोंके मेरे जवाब भी इस योजनाको ध्यानमें रखकर ही पढ़े जाने चाहिए। कार्यकर्त्ताओंको समझ लेना चाहिए कि कोई भी योजना — चाहे वह कितनी ही होशियारीसे क्यों न तैयार की गई हो — अभीष्ट परिणाम नहीं ला सकती यदि जिनके लिए वह तैयार की गई है उन्हें वह न जँचे या उनमें उसपर चलने की शक्ति न हो। अब हम प्रश्नोत्तरों पर आयें:

ठीक नहीं

प्र० : क्या हमारा यह सोचना ठीक है कि आप कांग्रेस और जनतासे यह आशा रखते हैं कि वह जल्दीसे-जल्दी देशका शासन अपने हाथमें लेने के योग्य हो जाये और पहला अवसर मिलते ही वैसा करे?

उ० : आपका सोचना ठीक नहीं है। कांग्रेसकी तरफसे तो मैं बोल नहीं सकता। लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि कोई भी संस्था या व्यक्ति शासन अपने हाथमें लेनेके योग्य बने। अहिंसक तरीकेमें तो इसकी कल्पना भी नही की जा सकती। अहिंसामें सत्ता हाथमें लेनेकी बात नही रहती। लेकिन अगर जनता हमें सत्ता सौंपे तो उसका

१. साधन-सूत्रमें इस शीर्षकके अन्तर्गत वास्तवमें सात प्रश्नोंके उत्तर दिये गये हैं, लेकिन सातवें उत्तरकी लेखन-तिथि २३ मई होने के कारण वह उसी तिथि के अनुसार आगे पृ० १५४-५५ पर "प्रश्नोत्तर" शीर्षकसे ही दिया गया है।

बोझ हमारे ऊपर आता है। अराजकताकी स्थितिमें तमाम उपद्रवी तत्त्व सत्तापर कब्जा करने की कोशिश करेंगे। परन्तु जो लोग जनताकी सेवा करना चाहते हैं, और अराजकतामें से शान्ति और व्यवस्था पैदा करना चाहते हैं, वे अराजकताको मिटाने में अपने-आपको होम देंगे। और अगर इसके बाद भी वे रहेंगे तो हो सकता है कि लोकमत शासनकी बागडोर उनके सुपुर्द कर दे। परन्तु आपकी कल्पनामें और इस चीजमें जमीन-आसमानका फर्क है। जो लोग सत्ताको हथियाने की कोशिश करते हैं, वे आम तौरपर उसमें असफल रहते हैं।

प्र० : सरकारके अन्यायपूर्ण फौजी या गैर-फौजी आदेशोंका विरोध करने में आपका मुख्य उद्देश्य इनमेंसे क्या है (अ) सरकारी कार्रवाईके खिलाफ अपना विरोध प्रकट करना, (आ) जनताकी तकलीफोंको दूर करना, (इ) सत्ताको हथियाने की प्रारम्भिक तैयारी करना?

उ० : मेरी सारी कल्पनाका केन्द्र-बिन्दु अहिंसा है। अपनी जनताको अंग्रेजोंकी या दूसरी किसी भी ताकतकी मददके बिना अपना कारोबार चलाने की शिक्षा देने का जो प्रयत्न हम कर रहे हैं, उसमें मुख्य चीज यही है कि सब प्रकारके अन्यायका सामना किया जाये, फिर वह किसीके भी हाथों क्यों न होता हो। इस सबका उद्देश्य विरोध-प्रदर्शन नहीं है, सत्ता प्राप्त करने की प्रारम्भिक तैयारी तो हरगिज नहीं है। मैं चाहता हूँ कि हजारों लोग अन्यायका सामना करें। यदि वे सब ऐसा सत्ता हथियाने के उद्देश्यसे करेंगे तो वे कभी सफल नहीं होंगे। जिस अन्यायको वे खुद महसूस करते हैं, उसका वे सामना करें तो सचमुच उनके लिए यह काफी है। यह अपने-आपमें एक कर्त्तव्य है।

प्र० : क्या आप कांग्रेसजनोंसे इस बातकी अपेक्षा करते हैं कि जहाँ गाँववाले या आम जनता सामना करने के लिए आगे आनेको तैयार न हों, वहाँ वे खुद व्यक्तिगत रूपसे विरोध करें?

उ० : अगर मैं कांग्रेसजनोंकी तरफसे बोल सकूँ तो मैं जोरदार शब्दोंमें कहूँगा, 'हाँ'। जो लोग भयभीत हो गये हैं, उनमें साहस कहाँसे आयेगा? इसलिए जिनमें साहस है, उन्हें अपने प्राणोंकी आहुति देकर भी बीचमें पड़ना चाहिए।

आत्मरक्षा

प्र० : जहाँ अधिकारी आत्मरक्षक दलोंकी स्थापनाकी इजाजत न दें, क्या वहाँ हमें उन्हें समझानेकी कोशिश करनी चाहिए? और अगर वे हमारी न सुनें तो क्या फिर भी हमें अपना काम जारी रखना चाहिए?

उ० : लोगोंको अधिकारियोंसे, डाकुओंसे और सम्भवतः जापानियोंसे भी अपनी रक्षा करनी होगी। अगर वे ऐसा नहीं करेंगे तो इस दुनियामें जी न सकेंगे। इसलिए अपनी तैयारीमें उन्हें किसी किस्मकी रोक-टोक बरदाश्त नहीं करनी चाहिए। लेकिन उन्हें बिना लाइसेंसके कोई हथियार अपने पास नहीं रखना चाहिए। तैयारीसे मेरा मतलब कसरत, कवायद, और लाठी वगैरहके अभ्याससे है। इस किस्मकी तैयारी

में अधिकारी सम्भवतः रुकावट नहीं डालेंगे। लेकिन अगर डालें तो लोगोंको ऐसे प्रतिबन्धकी अवज्ञा करके परिणामके लिए तैयार रहना चाहिए।

नमक

प्र० : पहले यहाँ ज्यादातर नमक कलकत्तासे आया करता था। अब उसके बन्द हो जाने से गाँवके लोगोंको बहुत दिक्कत पेश आ रही है। नमक कानूनोंको भंग करके वे आसानीसे सारे प्रान्तकी आवश्यकताके लायक नमक बना सकते हैं। आजकल तो इधर पशुओंको नमक दिया ही नहीं जाता। अगर नमक-कर हट जाये तो यह कमी भी दूर की जा सकती है। क्या हमें लोगोंको यह सलाह देनी चाहिए कि प्रान्तकी आवश्यकताके लिए उन्हें जितने नमककी जरूरत हो, उतना वे खुद तैयार कर लें? बारिश शुरू होने के बाद तो वे नमक बना नहीं सकेंगे।

उ० : गांधी-अर्विन समझौतेके अनुसार हमें घरेलू उपयोगके लिए नमक बनाने की छूट है। दस मील घेरेकी मर्यादाका हालकी परिस्थितिमें पालन नहीं हो सकता। मेरी यह पक्की राय है कि आजकलके संकटके समयमें इस शर्तको ढीला कर देना चाहिए और लोगोंको यथासम्भव अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने की छूट मिलनी चाहिए। गरीब लोगोंको राहत पहुँचाने की गरजसे नमक-कानूनके अमलको थोड़ा शिथिल करने से नमक-करकी आमदनीमें बहुत फर्क नहीं पड़ेगा। मैं सलाह दूँगा कि स्थानीय अधिकारियोंसे मिल-जुलकर आपसमें समझौता कर लेना चाहिए।

मेरी योजनाके पीछे कल्पना यह है कि अगर परिवेश अहिंसाका हो और हमारे कार्यकर्त्ता समझदारीके साथ इस योजनापर अमल कर सकें तो बिना किसी खास गड़बड़ीके ब्रिटिश हुकूमत यहाँसे विदा हो सकती है — भले ही यह कल्पना किसीको हवाई या शरारत-भरी ही क्यों न लगे। उस दशामें जापानियोंके अंग्रेजों की जगह लेने की भी कोई गुंजाइश नहीं रह जायेगी। शर्त सिर्फ यही है कि लोकमत जापानियोंके पक्षमें न हो, जैसा कि कई लोगोंका कहना है कि यह है।

मैं यह टिप्पणी लिख ही रहा था कि राजेन बाबूका एक पत्र मिला, जिसमें वे नमकके बारेमें यों लिखते हैं:

> अपने दौरेमें मैं इस बातका खास ध्यान रखता हूँ कि जहाँ भी जाऊँ वहाँके व्यापारियों और दुकानदारोंसे मिलूँ, ताकि मैं खाद्य पदार्थों, मिट्टीके तेल, नमक और दैनिक उपयोगकी अन्य आवश्यक चीजोंके बारेमें परिस्थितिको समझ सकूँ। अपने दौरेमें हर जगह मुझे लोगों और व्यापारियोंसे यही जानने को मिला कि नमककी आपूर्तिके बारेमें बहुत ही गम्भीर परिस्थिति पैदा हो रही है। नमकके दुष्कालका अन्देशा लगभग हर जगह लग रहा है, और अगर इसको दूर करने के लिए तुरन्त ही आवश्यक उपाय न किये गये तो लोगोंको, खास तौरपर गरीबोंको, सख्त मुसीबतें उठानी पड़ेंगी, क्योंकि जो रूखा-सूखा खाना वे जैसे-तैसे जुटा पाते हैं, उसे निगलने के लिए अक्सर सिवा नमकके और कोई साधन उनके पास नहीं होता। नमकके मूल्य-नियन्त्रणके लिए जो उपाय किये गये हैं, वे बेकार साबित हुए हैं। जीवनके लिए अत्यन्त आवश्यक किसी वस्तुका

मूल्य-नियन्त्रण उस वस्तुकी माँगको पूरा करने की कोई व्यवस्था किये बिना करना व्यर्थ ही नहीं, हानिकर भी होगा। ऐसी हालतमें नियन्त्रित मूल्य सिर्फ सरकारी कागजों तक ही रहता है। जबतक उस चीजके लोगोंको मिलते रहने की व्यवस्था ही न हो, तबतक उसपर अमल कैसे हो सकता है? सरकारी मूल्य-नियन्त्रणके बावजूद, कई जगह, खास तौरपर मुफस्सिलमें, नमक महँगे भाव बिकता है। परन्तु अब महँगाईसे भी बढ़कर डर इस बातका लग रहा है कि कहीं बाजारमें और पंसारियोंके यहाँ नमक मिलना कमोबेश बिलकुल ही बन्द न हो जाये। मुझे बताया गया है कि खीवड़ा और सांभर-जैसे नमकके केन्द्रोंसे आर्डर देने पर भी व्यापारियोंको नमक नहीं मिलता। वहाँ मूल्य-नियन्त्रण-जैसी कोई चीज ही नहीं है और नमक मँगाने के लिए व्यापारियोंको सरकारी भावसे काफी ज्यादा कीमत देनी पड़ती है। ५५० मन नमकका मानक मूल्य १०७५ रुपये है, पर कहा जाता है कि आजकल व्यापारीको इसके ऊपर प्रति वैगन ३०० से ४०० रुपये तक और बाज दफा तो इससे भी ज्यादा देने पड़ते हैं। यद्यपि कलकत्तामें मूल्य-नियन्त्रण कमेटीने १०० मन नमककी कीमत १७० रुपये तय की है, परन्तु वास्तवमें ग्राहकोंको २७० रुपये देने पड़ते हैं। मूल्य-नियन्त्रणका यह हाल है। यों नमक मँगाने में जिन दिक्कतोंका सामना करना पड़ता है, उनमें वैगन प्राप्त करने की दिक्कत कोई मामूली दिक्कत नहीं है। जैसे-जैसे वैगनोंका मिलना कम होता जाता है, भविष्य और भी चिन्ताजनक बनता जाता है। सरकारको चाहिए कि नमककी माँगको पूरा करने के लिए तुरन्त ही नीचे लिखे उपायोंसे काम ले: (१) नियमित रूपसे वैगनोंका पूरी संख्यामें प्रबन्ध करे, (२) जितना नमक आये, वह व्यापारियोंमें निष्पक्ष और उचित ढंगसे बाँटा जाये, (३) नमक-उत्पादनके नये जरिये पैदा करे, और (४) समुद्र-किनारे समुद्रके पानीसे और भीतरी इलाकोंमें खारी मिट्टीसे नमक बनाने पर से सब पाबन्दियाँ उठा लें। यह समझना जरूरी है कि परिवहन व्यवस्थाके टूट जाने पर नमकको एक जगहसे दूसरी जगह दूर-दूर तक ले जाना नामुमकिन हो सकता है। इसलिए उसे ऐसी जगहोंपर सुलभ बनाने का प्रयत्न करना चाहिए जहाँसे परिवहनके मामूली देहाती साधनों, जैसे बैलगाड़ियों, नावों, लद्दू बैलों, घोड़ों और खच्चरों द्वारा वह जरूरतकी जगहोंपर ले जाया जा सके। बारिश सिरपर आ पहुँची है और पहले ही काफी देर हो चुकी है। अगर कारगर उपायोंसे फौरन काम न लिया गया तो जनताकी मुसीबतोंका कोई हिसाब न रहेगा।

मैं चाहता हूँ कि अधिकारी राजेन बाबूकी बातपर ध्यान देंगे और समय रहते पाबन्दियाँ उठा लेंगे, ताकि देशपर दुश्मनकी चढ़ाईसे पहले ही लोग संकटमें न पड़ जायें।

बेदखली की जाये तो?

प्र०: फौजी हवाई अड्डोंके लिए सरकार जमीन ले रही है और गाँववालोंको अपने गाँव खाली करने के हुक्म मिल रहे हैं। इस तरह बेदखल किये

गये लोगोंके लिए यदि कोई उचित और मुनासिब प्रबन्ध न किया जाये तो क्या ऐसे फरमानोंका विरोध करना चाहिए? या हम हर सूरतमें ऐसे फरमानोंका विरोध करें, क्योंकि ये हवाई अड्डे तो रक्षाके बजाय खतरे की चीज हैं, और इसलिए हमें इनकी जरूरत नहीं है। इसके अलावा, कोई भी मुआवजा किसानके उस नुकसानको ठीक तरह पूरा नहीं कर सकता जो उसे उसका घर और खेत छिन जाने से होता है।

उ० : मेरी इस योजनामें युद्ध-मात्रके विरोधके आधारपर ऐसे फरमानोंका विरोध करने की कोई गुंजाइश नहीं है। विरोध सिर्फ उसी हालतमें करना ठीक होगा जब गाँववालोंको अपनी जमीन और घरके बदलेमें वैसी ही सुविधाएँ दूसरी जगह न दी जायें। सिर्फ नकद मुआवजेसे बेदखल लोगोंको अपनी आवश्यकतानुसार जमीन नहीं मिल सकेगी। जुल्म और जबरदस्तीका विरोध तो होना ही चाहिए।

सेवाग्राम, २२ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३१-५-१९४२

१५८. पत्र : मीराबहनको

सेवाग्राम, वर्धा
२२ मई, १९४२

चि० मीरा,

तुम्हें मेरे पोस्टकार्ड या पत्र मिल गये होंगे। याद नहीं क्या भेजे थे। अगर तुम्हें 'हरिजन' मिलता हो तो वह मेरे साप्ताहिक पत्रसे अधिक है।

मैंने तुम्हारे सवालोंकी गोपबाबूसे पूरी चर्चा कर ली है। फिर भी तुम्हारे सारे महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंके उत्तर 'हरिजन' में दे रहा हूँ। उसकी एक नकल पहलेसे ही तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। 'हरिजन' में निकलने से पहले ये उत्तर प्रकाशित नहीं होने चाहिए।

तुम्हारा पत्र आशा, महादेव और किशोरलालको भी पढ़ा दिया है। तुम्हारी वर्णन-शक्ति उच्च कोटिकी है। इससे तुम्हारे पत्रोंको पढ़ने में आनन्द आता है।

मेरे उत्तरोंसे तुम देख लोगी कि मैं धीमी रफ्तारसे चलना चाहता हूँ। मैं जल्दबाजी नहीं करना चाहता। हमें दृढ़तासे किन्तु आहिस्ता-आहिस्ता कदम रखने चाहिए, ताकि जहाँतक सम्भव हो लोग उन्हें समझ सकें। एक समय ऐसा जरूर आयेगा जब मामला काबूसे बाहर हो जायेगा। हमें उसे जान-बूझकर काबूसे बाहर नहीं होने देना चाहिए। समझमें आ गया न?

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६४९८) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९८९३ से भी

१५९. पत्र : कृष्ण वर्माको

२२ मई, १९४२

भाई कृष्ण वर्मा,

काकासाहबको एक बरससे शरीरमें खुजली होती रहती है। उनकी जाँच करना और तुम्हारी समझमें आये तो इलाज करना। काकासाहब बड़े कामकाजी आदमी हैं, इसलिए ज्यादा समय तो वे वहाँ ठहर नहीं सकेंगे। लेकिन देखना तुम क्या कर सकते हो और मुझे लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९९२) से

१६०. अन्तर क्यों ?[1]

एक प्रोफेसर लिखते हैं:

> आपने अंग्रेजोंको हिन्दुस्तानसे हट जानेकी सलाह दी है। राजाओंके बारेमें आप कहते हैं: "लेकिन मैं तो अब भी यह आशा रखता हूँ कि राजा-महाराजा और उनके सलाहकार अपने और हिन्दुस्तानके भलेके लिए, कई रियासतोंमें पाई जानेवाली उस वृत्तिको रोकेंगे, जिसे सिवा अंधेरगर्दीके और कोई नाम नहीं दिया जा सकता।" राजाओंका जुल्म तो अंग्रेजोंसे भी पुराना है और शायद उसकी जड़ भी ज्यादा गहरी है। तो आप उन्हें यह सलाह क्यों नहीं देते कि वे तुरन्त ही गद्दीसे उतर जायें?

मुझे आश्चर्य होता है कि प्रोफेसर महोदय राजाओंमें और अधीश्वरी सत्तामें कोई भेद नहीं देख पाये। आजकलके हमारे राजा अधीश्वरी सत्ताकी सृष्टि हैं। उसीसे उन्हें सत्ता मिलती है। उनके गद्दीसे हट जानेसे रियासती शासनका खात्मा नहीं होगा। एक जायेगा, तो उसकी जगह दूसरा तुरन्त आ बैठेगा। और अगर कोई न आया तो रियासतपर अंग्रेजी शासन बिठा दिया जायेगा। इस तरह आप चाहे जिस ओरसे देखें, यही पायेंगे कि ब्रिटिश सत्ता अपनी प्रकृतिसे ही सत्यके रास्तेमें बाधा बनकर खड़ी है।

सेवाग्राम, २३ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३१-५-१९४२

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

१६१. दोस्ताना सलाह

एक मित्र अपने पत्रमें इस तरह दलील करते हैं:

> ज्यादातर लोग आपकी इस बातसे सहमत होंगे कि हिन्दुस्तानके साथ न्यायका बरताव न कर सकने की वजहसे अंग्रेजोंको हिन्दुस्तानसे नैतिक सहायता की आशा रखने का भी अधिकार नहीं रहता। सैद्धान्तिक दृष्टिसे भी अधिकतर लोग आपके साथ इस बातमें सहमत होंगे कि अंग्रेजोंके लिए शरीफाना रास्ता सिर्फ यही है कि वे हिन्दुस्तानसे हट जायें। लेकिन, जैसा कि आप खुद कबूल कर चुके हैं, उनके यहाँसे हट जाने से लाजिमी तौरपर हमारे सामने बड़ी भारी दिक्कतें आयेंगी। आप कहते हैं कि आप सब जोखिम उठाने को तैयार हैं। हर वीर पुरुषकी यही वृत्ति होगी। परन्तु इसके साथ ही क्या आपका यह कर्त्तव्य नहीं है कि आप ऐसा वातावरण तैयार करें जिससे, जहाँ तक हो सके, हमें कम जोखिम उठानी पड़े? उदाहरणार्थ, हमें लोगोंके दिलोंसे कायरता हटानी चाहिए और उनमें यह भाव पैदा करना चाहिए कि वे अपने पैरोंपर खड़े हो सकते हैं। उन्हें जापानी सहायताकी रंचमात्र भी इच्छा नहीं करनी चाहिए, जैसी कि कितने ही लोग आज कर रहे हैं; और न जापानी सत्ताके आगे सिर ही झुकाना चाहिए जैसा हमें अगर हम जापानी मदद लेंगे तो करना पड़ेगा। उन्हें, यथासम्भव, अपने दिलमें अंग्रेजोंके लिए द्वेष नहीं रखना चाहिए। इसके अलावा, हमें मुसलमानोंकी मदद हासिल करने की पूरी-पूरी कोशिश करनी चाहिए। हिन्दुस्तानको आजाद कराने के लिए यह आपकी आखिरी और सबसे बड़ी कोशिश है। इसलिए जल्दबाजीमें या बगैर जरूरी तैयारीके हमें कोई कदम नहीं उठाना चाहिए। यह मौका इतना नाजुक है कि इस बार हम असफलताकी जोखिम नहीं उठा सकते।

जैसा कि इस साप्ताहिकके पाठक जानते हैं, मुझे जो सत्य लगता है, उसे पूरी तरह ध्यानमें रखकर मैं पहले ही अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए वह सब कोशिश कर रहा हूँ जो इन्सानके लिए मुमकिन है। मैं जानता हूँ कि मेरी यह कल्पना इतनी नई किस्मकी है, खास तौरपर आजकी इस घड़ीमें, कि इससे कई लोग भौंचक्के हैं। मगर मेरे पास इसके सिवा कोई चारा न था। चाहे कोई मुझे पागल ही क्यों न कहे, पर यदि मुझे अपने प्रति सच्चा रहना था तो मैं सच्ची बात ही कह सकता था। मैं मानता हूँ कि मेरा यह कदम युद्धमें और इस समय उपस्थित तथा आनेवाले खतरेसे हिन्दुस्तानको छुटकारा दिलाने में एक ठोस योगदान है।

साम्प्रदायिक एकताके लिए भी मेरा यह एक सच्चा योगदान है। पर आज किसीके लिए भी यह कहना मुश्किल है कि उस एकताका क्या रूप होगा। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि हमारी अबतक की एकताकी तरह वह दिखावटी नहीं होगा। अबतक उसका असर थोड़े-से राजनीतिक विचारोंवाले लोगों तक ही सीमित रहा है। आम जनता उससे बिलकुल अछूती रही है।

इसलिए यद्यपि परिस्थितिकी गम्भीरताको ध्यानमें रखते हुए मैं हर वह एहतियात बरतूँगा जिसकी कल्पना की जा सकती है, पर मैं इस बातका यकीन नहीं दिला सकता कि आगे कोई कदम बढाने से पहले मैं जनतामें से बुजदिलीको पूरी तरह निकाल सकूँगा। इसके लिए तो हमें सम्भवतः बड़ी-बड़ी अग्नि-परीक्षाओंमें से गुजरना होगा। साथ ही जनतामें द्वेषका भाव ठंडा होने तक राह नहीं देखी जा सकती। इन्सानको गिरानेवाले द्वेषके इस चक्रसे देशको छुड़ाने का एकमात्र उपाय यही है कि घृणाकी पात्र अंग्रेजी सत्ता यहाँसे उठ जाये। कारणके दूर हो जाने से द्वेषाग्नि अपने-आप ठंडी पड़ जायेगी।

निस्सन्देह, अंग्रेजी हुकूमतसे छुटकारा पाने के लिए लोगोंको किसी भी सूरतमें जापानका सहारा नहीं लेना चाहिए। वह इलाज मर्जसे भी बदतर साबित होगा। लेकिन, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, इस संघर्षमें हमें अपनेको अपने इस सबसे बड़े रोगसे मुक्त करने के लिए हर किस्मकी जोखिम उठानी होगी। इस रोगने हमें निर्वीर्य बना दिया है और हम लगभग यह समझने लगे हैं कि हम हमेशा मानो गुलाम ही रहेंगे। यह चीज बरदाश्त नहीं की जा सकती। मैं जानता हूँ कि इसके इलाजके लिए हमें भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। लेकिन स्वतन्त्रताके लिए कोई भी कीमत महँगी नहीं कही जा सकती।

सेवाग्राम, २३ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३१-५-१९४२

१६२. प्रश्नोत्तर

जन-सम्पर्कसे दूर

प्र०: क्या आप जानते हैं कि आपके सेवाग्राममें ही बने रहनेके कारण आप जनताके सम्पर्कसे कितने दूर पड़ गये हैं? यदि आप जनतासे दूर न पड़ गये होते तो आप इस तरह जापानियोंका प्रतिरोध करने की बात नहीं करते। कारण, अंग्रेजों के प्रति घृणा इतनी ज्यादा है कि आम आदमी जापानियोंका स्वागत करने को तैयार है।

उ०: मैं आपकी इस बातका समर्थन नहीं कर सकता कि मैं जनताके सम्पर्कसे दूर पड़ गया हूँ। यद्यपि मैं सेवाग्राममें ही रहता हूँ, फिर भी मैं हर तरहके लोगोंसे मिलता हूँ और भारतके हर कोनेसे मेरे पास पत्र आते हैं। इसलिए आप एक बड़े शहरमें

रहकर लोगोंसे जितना सम्पर्क रख सकते हैं, सम्भवतः उससे अधिक सम्पर्क मेरा है। मुझे जनताके मनकी थाह लेनेका जो अवसर प्राप्त है वह आपको नहीं है। लेकिन चलिए, हम यह मान लें कि आप जो कहते हैं वह सही है — मैं समझता हूँ कि आपकी बात अंशतः ठीक है — तो भी सही इलाजको दबाने से तो जनताका मन नहीं बदलेगा। इसके विपरीत मैं घृणाकी निरर्थकता दिखा रहा हूँ। मैं यह दिखा रहा हूँ कि घृणा घृणा करनेवालेको ही चोट पहुँचाती है, उसे कभी नहीं जिससे कि घृणा की जा रही है। कोई साम्राज्यवादी सत्ता जैसा व्यवहार कर सकती है वैसा ही वह कर रही है; उससे भिन्न नहीं। यदि हम सशक्त हो जाते हैं तो अंग्रेजी सत्ता शक्तिहीन हो जाती है। इसलिए, मैं लोगोंको घृणासे विरत करने की कोशिश कर रहा हूँ, और इसके लिए मैं उनसे ऐसा मनोबल बढ़ाने को कहता हूँ जिससे वे अंग्रेज सरकारसे हटने को कहें और साथ ही जापानियोंका प्रतिरोध करें। अंग्रेज सरकारके हटने से जापानियोंके स्वागतका हेतु खत्म हो जायेगा और ब्रिटिश लोगोंको हटाने में जिस शक्तिका भान होगा वह जापानियोंको घुसने से रोकने में काम आयेगी। मैं सी० आर० की इस बातका समर्थन करता हूँ कि पुराने और नये हथियारोंके बिना भी भारतके करोड़ों लोग, यदि वे ठीक तरहसे संगठित हों तो, जापानियोंका प्रतिरोध कर सकते हैं। किन्तु मैं उनकी यह बात नहीं मानता कि भारतीय जनता तथा अंग्रेजी सत्ताके बीच तालमेलके बिना भी जब ब्रिटिश सशस्त्र सेनाएँ काम कर रही हों, जब आप अंग्रेजी सत्तापर अपनेको थोप रहे हों, तब भी ऐसा किया जा सकता है। अनुभवसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि जब परस्पर विश्वास और आदर नहीं होता है तो हार्दिक तालमेल और सहयोग असम्भव होता है। अंग्रेजोंकी मौजूदगी जापानियोंको न्योता देती है, वह साम्प्रदायिक झगड़े और अन्य मतभेद बढ़ाती है और जो शायद सबसे बुरी बात है वह यह कि बेबसीसे पैदा होनेवाली घृणाको तीव्र करती है। व्यवस्थित ढंगसे अंग्रेजी सत्ताके हट जाने से यह घृणा प्रेममें बदल जायेगी और साम्प्रदायिक मनमुटाव स्वतः समाप्त हो जायेगा। जहाँतक मैं देख सकता हूँ, दोनों जातियाँ जबतक किसी तीसरी ताकतके प्रभावके अधीन हैं, तबतक न तो वे सही ढंगसे सोच सकती हैं और न चीजोंको सही रूपमें देख ही सकती हैं।

सेवाग्राम, २३ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३१-५-१९४२

१६३. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

सेवाग्राम, वर्धा
२३ मई, १९४२

प्रिय सी० आर०,

तो लक्ष्मी प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुई है![1] यह तो मात्र आरम्भ है।

यद्यपि हम दोनोंमें दो ध्रुवोंका-सा अन्तर है, तो भी अपनी सभाओंमें होनेवाली हुल्लड़बाजी तुम जिस तरह झेल रहे हो, उससे मेरी हार्दिक सहानुभूति है।

मैंने देखा कि बम्बईमें मेरा कायदे आजमसे मिलने का प्रयत्न करना बेकार था। फिर वे वहाँ थे भी नहीं।

तुम जानते हो कि तुम्हें यहाँ लगभग हर महीने आराम करने और सभाओं में शरीक होने की चिन्तासे मुक्त रहने के लिए आना है।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

कमलनयन मुझसे पूछते हैं कि तुम जिस घरमें हो क्या वह तुम्हारे अथवा परिवारके किसी व्यक्तिके नाम कर दिया जाये।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०८६) से

१. देखिए "पत्र : लक्ष्मी गांधीको", पृ० १४५।

१६४. पत्र : रथीन्द्रनाथ ठाकुरको

२३ मई, १९४२

प्रिय रथी,[1]

चन्दा इकट्ठा करने का काम मैंने पिछले इतवारको पूरा कर डाला। देनेवालों को आते हुए देखना एक सुखद दृश्य था। कुछ शिकायतें सुनने में आई हैं। उनपर जब मेरे पास कुछ समय होगा तब तुमसे चर्चा करनी होगी।

सप्रेम,

बापू

श्री रथीन्द्रनाथ ठाकुर
शान्तिनिकेतन
पूर्वी बंगाल

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० १०३५२) से। सौजन्य : विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

१६५. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सेवाग्राम
२३ मई, १९४२

भाई वल्लभभाई,

पृथ्वीसिंहकी मुझपर से श्रद्धा उठ गई,[2] इसलिए मेरा सम्बन्ध तो समाप्त हुआ। गोपालराव[3] उसमें से हट जायेंगे। मैं मानता हूँ कि अब नाथजी[4] और किशोरलालका[5] संघके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। पृथ्वीसिंहका क्या होगा, यह तो बादमें पता चलेगा।

वहाँके समाचार लिखना। थोड़े समयमें कुछ-न-कुछ तो होना ही चाहिए।

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुरके पुत्र

२. पृथ्वीसिंहका मत था कि जापानके खिलाफ युद्धमें भारतको ब्रिटेनसे सहयोग करना चाहिए।

३. गोपालराव कुलकर्णी, जो पृथ्वीसिंह द्वारा प्रारम्भ किये गये अहिंसक व्यायाम संघमें शिक्षक थे।

४. केदारनाथ, अहिंसक व्यायाम संघके उपाध्यक्ष

५. किशोरलाल मशरूवाला

पृथ्वीसिंहको मैंने सूचित कर दिया है कि मुझमें उनकी श्रद्धा उठ जाने की बात उन्हींको प्रकाशित करनी होगी। वे कुछ नहीं करेंगे तो अन्तमें मुझे ही कुछ-न-कुछ कहना पड़ेगा। अपने आदमियोंसे इस सम्बन्धके टूट जाने की बात तुम कह ही सकते हो। लीमड़ीके बारेमें अभी तो चुप्पी ही साधूं न?[1]

बापूके आशीर्वाद

सरदार वल्लभभाई पटेल
६८, मैरीन ड्राइव
बम्बई

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – २: सरदार वल्लभभाईने, पृ० २७५

१६६. पत्र: अमृतकौरको

२३ मई, १९४२

चि० अमृत,

तुम्हारा खत मिला। सही है। तुमने तो रोज लिखा है। ऐसे ही लिखा करो।

मैं ता० १८ को ही सेवाग्राम पहुंचनेवाला था।

कायदे अंजम मुंबईमें थे ही नहीं। यों भी पता चला कि उनको मिलना फिजुल होगा। मुंबई फिर जाने की तो कोई बात ही नहीं है।

तुम्हारे आराम करना चाहिये। खूब करो और तबीयत अच्छी करो।

बालकृष्णका डेलाडझी पहूंचने का खत आया है। लाला हंसराजको तकलीफ होनी नहीं चाहीये। बा० का खत भेजता हूं।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ४२६६) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७८९८ से भी

१. राज्य-सरकारके जुल्मसे त्रस्त होकर वहाँके बहुत सारे लोग राज्य छोड़कर चले गये थे। देखिए खण्ड ६८, पृ० ४८१-८४ और खण्ड ७०, पृ० १६१-६२।

१६७. राजाजी के विषयमें

इसमें कोई शक नहीं कि राजाजी ने आज एक ऐसे कामको हाथमें लिया है जिसकी वजहसे वे अपने साथियोंसे जुदा पड़ गये हैं। मगर उनका सख्तसे-सख्त दुश्मन भी उनपर यह आरोप नहीं लगायेगा कि अपने ही खड़े किये इस विवादमें वे आज जिस असाधारण शक्तिके साथ जुट गये हैं उसमें उनका कोई निजी स्वार्थ है। इससे उनके प्रति हमारा आदर-भाव और भी बढ़ना चाहिए और वे जो-कुछ कहें, उसे अदबके साथ हमें सुनना चाहिए। उनका उद्देश्य ऊँचा है। हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयत्न एक महान कार्य है, और जापानियोंके हमलेसे देशको बचाने का प्रयत्न भी उतना ही महान कार्य है। उनकी रायमें ये दोनों एक-दूसरेसे जुड़े हुए हैं।

गुण्डागर्दी राजाजी की दलीलोंका कोई जवाब नहीं है। उनकी सभाओंमें हुल्लड़बाजी करना घोर असहिष्णुताका चिह्न है। अगर हम दूसरे पक्षको सुनने के लिए तैयार नहीं हैं तो लोकतन्त्रका विकास असम्भव है। जब हम अपने विरोधीकी बात सुनने से इनकार करते हैं या सुनकर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं तो हम अपनी बुद्धिके द्वार बन्द कर लेते हैं। अगर असहिष्णुता हमारी आदत बन गई तो डर है कि हम सत्यको पहचानने की शक्ति खो बैठेंगे। कुदरतने हमारी समझने की शक्ति सीमित रखी है तो भी हमारा परम कर्त्तव्य यही है कि ईश्वरने जो अन्तःज्योति हमें प्रदान की है, उसके अनुसार हम निर्भयतापूर्वक कार्य करें। लेकिन, इसके साथ ही हमें अपना दिमाग हमेशा खुला रखना चाहिए और इस बातके लिए सदा तैयार रहना चाहिए कि जिसे हम सत्य मानते हैं, वह अन्तमें असत्य भी निकल सकता है। दिमागको खुला रखने से हमारे अन्दरके सत्यकी पुष्टि होती है और अगर उसमें कुछ मैल हो तो उसकी शुद्धि होती जाती है। इसलिए उन तमाम लोगोंसे जो राजाजी की सभाओंमें हुल्लड़-बाजी करते हैं, मेरा निवेदन है कि वे ऐसा न करें, बल्कि उनकी बातोंको धीरज और आदरसे सुनें, क्योंकि वे इसके अधिकारी हैं।

पाठक मेरी इस मान्यताको जानते हैं कि राजाजी गलती पर हैं। वे एक मिथ्या वातावरण पैदा कर रहे हैं। वे खुद पाकिस्तानको नहीं मानते, और न राष्ट्रवादी मुसलमान और वे दूसरे लोग ही मानते हैं जो अलग होने के अधिकारको स्वीकार करना चाहते हैं। उनका और राजाजी का कहना है कि मुस्लिम लीगसे उसकी अलग होने की माँग छुड़वाने का यही एक रास्ता है। मुझे आश्चर्य होता है कि बहुत-से मुसलमान एक ऐसी रियायतसे खुश हो रहे हैं जिसकी अर्थवत्ताके बारेमें शंका है। मुझे इसमें आगे और झगड़ेके बीजके सिवा और कुछ नजर नहीं आता। इस चीजका ऐलान कर देना काफी होना चाहिए कि अगर मुसलमान सचमुच चाहें तो मुस्लिम लीगको पाकिस्तान लेने से कोई चीज रोक नहीं सकती। वे तो बहुमतसे या

तलवारके जोरसे इसे ले लेंगे, सिवाय उस हालतके कि वे इस मामलेमें पंच-फैसलेको मान लें। मगर यह सब तो तभी हो सकता है जब ब्रिटिश हुकूमत यहाँसे पूरे तौर पर हटा ली जाये और जापानी हमलेका खतरा कम हो जाये। जबतक यह नहीं होता, तबतक तो यहाँ न पाकिस्तान होगा, न हिन्दुस्तान और न ही कोई दूसरा 'स्तान'। आज तो यहाँ इंग्लिस्तान है, और अगर सावधान नहीं होते तो मुमकिन है कि कल जापानिस्तान आ जाये। अगर वे तमाम लोग जो हिन्दुस्तानको आज और हमेशाके लिए अपना वतन मानते हैं, उसे मौजूदा और आनेवाले खतरेसे बचाने में अपनी पूरी ताकत लगायें तो दोनों खतरोंके पूरी तरह मिट जाने के बाद वह समय आयेगा जब हम पाकिस्तानकी और दूसरे 'स्तानों'की बातें करेंगे, और तब या तो हम किसी मैत्रीपूर्ण समझौते पर पहुँच जायेंगे या फिर लड़ लेंगे। कोई तीसरा पक्ष हमारी किस्मतका फैसला नहीं कर सकता और न उसे करना ही चाहिए। इसका फैसला या तो दलीलसे होगा या तलवारसे। राजाजी का सराहनीय और देशभक्तिपूर्ण आग्रह अगर कोई ऐसा रास्ता खोल दे जिसका खुद उन्हें या और किसीको भी इल्म नहीं है, तो बात दूसरी है। नहीं तो उनका तरीका हमें एक अन्धी गलीमें ले जाकर छोड़ देनेवाला है। मगर हमारे मतभेदोंका कुछ भी नतीजा क्यों न हो, मेरी विनती तो आपसी सहिष्णुता और आदर-भावके लिए है।

सेवाग्राम, २४ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३१-५-१९४२

१६८. पत्र : तुफैल अहमदको[1]

सेवाग्राम, वर्धा
२४ मई, १९४२

प्रिय तुफैल अहमद,

तुम्हारा तर्क अच्छा है, फिर भी मुझे लगता है कि इस मौकेपर उसे छापने से कोई फायदा नहीं होगा।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११३९५)से

१. प्रस्तुत पत्र तुफैल अहमदके १९ मई, १९४२ के पत्रके जवाबमें था। उस पत्रके साथ उन्होंने *हरिजन* में प्रकाशित करने के लिए संयुक्त चुनाव-प्रणालीके बारेमें एक लेख भेजा था।

१६९. पत्र : जे० सी० कुमारप्पाको

२४ मई, १९४२

प्रिय कु०,

अजीब बात है कि मैं तुम्हारे आने की प्रतीक्षामें दिन गिन रहा था। तुम चूंकि मेहनत करने का वादा करते हो, इसलिए तुम्हें जो-कुछ दिया जा रहा है उसके पात्र समझे जाओगे।

मुझे खुशी है कि भारतन[1] वापस आ गये हैं। अच्छा है कि सीता वापस नहीं आई। गर्म हवा जूनके महीनेमें बन्द हो जाती है। वह इतनी नाजुक है कि यहांकी गर्मी आसानीसे नहीं झेल सकती।

तुम्हारे भाषणपर कुछ लिखने में मुझे अभी थोड़ा समय लगेगा। विषयके निरूपणके लिए मुझे काफी शान्तिकी जरूरत है।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०१६५) से

१७०. पत्र : प्रतापराय एम० मोदीको

२४ मई, १९४२

भाई प्रतापराय,

तुम्हारीं पुस्तक[2] मिली। उसे पढ़ना तो मुझे बहुत अच्छा लगेगा, लेकिन ऐसा कुछ भी पढ़ने के लिए मेरे पास एक क्षणका भी समय नहीं है। अतः मुझे क्षमा करना।

मो० क० गांधीके वन्देमातरम्

प्रोफेसर प्रतापराय मोदी
'परिमल'
तख्तेश्वर प्लाट
भावनगर (काठियावाड़)

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १६३७) से। सौजन्य : प्रतापराय एम० मोदी

१. भारतन कुमारप्पा
२. हिन्दू धर्मना मूळ तत्त्वो

१७१. पत्र : चिमनलाल न० शाहको

२४ मई, १९४२

चि० चिमनलाल,

मुझे लगता है, कृष्णचन्द्रको कोई पद दिया जाये तो अच्छा हो। हम उसे सहायक संचालक बना दें और उसका कार्यक्षेत्र निश्चित कर दें। अगर यह बात तुम्हें पसन्द हो तो कार्यकारिणीके सामने सुझाव रखना चाहो तो रखना। क्या करना उचित है, यह तो तुम्हीं जानते हो। मुझे नियम याद नहीं हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६०९) से

१७२. पत्र : कृष्णचन्द्रको

२४ मई, १९४२

चि० कृष्णचंद्र,

हमारे यहां कुछ प्रबंध ही ऐसा है जिसकी जैसी आवश्यकता रहती है ऐसे सब कहें। नाम तो सहायक संचालक रखें और क्षेत्र बनाया जाय। मेरी सूचनाका अर्थ हरगिज नहीं था कि तुमारे ऐलान करना है वह तो मैं ही करूं या चिमनलाल। मैंने तो इलाज बताया।

तुम्हारी सम्मतिके बाद दूसरा कदम उठाने की बात हो सकती थी। अब मैं कर लूंगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४२८) से

१७३. एक पुर्जा[1]

२४ मई, १९४२

इसका उपाय सीधा है। सबको बताया जाय कि किसका क्या क्षेत्र है।

बापु

पुर्जेकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४२७) से

१७४. पत्र : परचुरे शास्त्रीको

सेवाग्राम, वर्धा
२४ मई, १९४२

शास्त्रीजी,

तुम्हारा पत्र मिला। हां, गोमाताका तुम लिखते हैं ऐसा ही है। जानकीबहन यही रहती है। खुश है। मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। कोई रोज तो मिलेंगे ही। अच्छे हो जाओ।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६६९) से

१७५. अगर सच है तो भयंकर है[2]

खुर्जासे व्यवस्थित अराजकताकी एक दिल दहलानेवाली खबर मिली है। एक पत्र-लेखक लिखते हैं कि बिना किसी ऐसे कारणके जो समझमें आ सके, शहरका करीब-करीब सारा आम कारोबार बन्द कर दिया गया है।[3] यहाँतक कि अर्थीके लिए जरूरी बाँस और चटाईकी बिक्री भी रोक दी गई। इमारती काम भी रोक दिया गया है, जिससे लोगोंको बहुत ही ज्यादा परेशानी और नुकसान उठाना पड़ रहा है। किसी-न-किसी बहाने लोगोंसे पैसा वसूल किया जा रहा है, और सारे

१. यह कृष्णचन्द्रसे प्राप्त एक पत्रपर लिखा हुआ था।
२. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
३. देखिए "पत्र: हीरालाल शर्माको", पृ० १९८।

शहरमें आतंकका राज्य छाया हुआ है। खुर्जामें जो-कुछ हो रहा है, उसकी मात्र एक रूपरेखा मैंने यहाँ इस आशासे रखी है कि इस चीजकी पूरी-पूरी जाँच होगी और अगर बात सच निकली तो आगे और नुकसान नहीं होने दिया जायेगा।

सेवाग्राम, २५ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३१-५-१९४२

१७६. हिन्दुस्तानी सैनिक क्या पागल हो गये हैं?

बंगालके बारासात सब-डिवीजनमें दत्तपारकरके निकट निभोधाई गाँवमें इसी महीनेकी १७-१८ तारीखको इंडियन सिगनल कोरके सैनिकों द्वारा गोली चलाई जाने की जो खबर है, बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीने उसकी एक रिपोर्ट भेजी है। उसका एक अंश मैं यहाँ दे रहा हूँ:

> करीब ७ या ८ हिन्दुस्तानी सैनिकोंकी एक टुकड़ी, जो टेलीफोनके खम्भे गाड़नेमें लगी थी, १७ मईको दिनमें करीब एक बजे रवीन्द्रनाथ बोसके बगीचेमें घुसी और फल तोड़ने व कच्चे आम और कटहल वगैरहको मनमाने तौरपर नुकसान पहुँचाने लगी। रवीन्द्र और शशीन्द्रने उनकी इस हरकतका विरोध किया। इसपर सैनिकोंने दोनों पर हमला किया और शशीन्द्रके नीचे गिर जाने पर उन्हें ठोकर मारी। स्थानीय डाक्टर तुलसीदास सरकारने शशीन्द्रकी चोटोंका इलाज किया। सैनिकोंने हरिचरण दास और शशांक दासके घरों पर भी हमला किया और उनके रसोईके तथा दूसरे बरतनोंको नुकसान पहुँचाया और गाँवके लोगोंको इसका भयानक नतीजा होनेकी धमकी दी।
>
> . . . यूनियन बोर्डके प्रधान पाचू गोपाल मुखर्जी, ऑनरेरी मजिस्ट्रेट सुरेशचन्द्र दे और डाक्टर तुलसीदास सरकारने उसी दिन करीब साढ़े पाँच बजे बारासात थानेमें इसकी पहली खबर लिखाई और बारासातके एस० डी० ओ० को इस मामलेकी इत्तिला करके उनसे सुरक्षा देने की प्रार्थना की। इसपर एस० डी० ओ० ने थानेदारको हुक्म दिया कि वे ता० १८ और १९ को सुबह निभोधाई गाँवमें चार सिपाही तैनात कर दें। फरियादी अपने साथ थानेदारके नाम एस० डी० ओ० का लिखित आदेश लेकर उसके पास गये। लेकिन दुर्भाग्यसे १८ मईको सुबह गाँवमें जब वह दुर्भाग्यपूर्ण गोलीकाण्ड हुआ तो पुलिसका एक भी सिपाही नजर नहीं आया। . . . अगले दिन १८ मईको कोई ७ बजे सुबह करीब २५ सैनिक हथियारों-सहित घटनास्थलपर आये। इनमें से करीब १२ या १३ सैनिक कोई साढ़े आठ बजे सुबह निभोधाई गाँवमें घुसे और गाँवकी गलियों में गश्त लगाते हुए गाँवके स्त्री-पुरुषोंको गालियाँ देने और बन्दूकें तथा गोलियाँ

दिखाकर डराने लगे। इसके बाद उन्होंने रतनदास दर्जीकी दुकानमें घुसकर उसपर हमला किया। रतनदासको पीटने के बाद वे फिर रबीन बोसके बगीचेमें घुसे। उन्होंने दरवाजा खटखटाया और घरकी औरतोंपर हमला करने की धमकी दी। घरके लोग मारे डरके रोने और चिल्लाने लगे, जिसे सुनकर गाँवके काफी लोग (४०-५०) वहाँ उनकी रक्षाके लिए आ गये। इसपर सैनिकोंने अपने दूसरे साथियोंको, जो पास ही इंतजार कर रहे थे, संकेत दिया और वे भी दौड़ते हुए घटनास्थलपर आ पहुँचे।

गाँवके कोई चार या पाँच नौजवान—सुशील कांजीलाल, विजयकुमार मुखर्जी, शम्भुनाथ दत्त और सन्तोषनाथ—सैनिकोंके पास पहुँचे और उनसे प्रार्थना करने लगे कि वे निरपराध लोगोंको न धमकायें और वहाँसे चले जायें। इसपर सैनिक बिगड़ उठे और उन्होंने बन्दूकके कुन्देसे सुशील कांजीलालके सिरपर वार किया (उसे बादमें इलाजके लिए कलकत्ता मेडिकल स्कूल अस्पतालमें ले जाया गया)। यह देख गाँववाले डर गये और भागने की कोशिश करने लगे। उसी समय सैनिकोंने विजय मुखर्जीको धक्का देकर नीचे गिरा दिया और उनमें धक्कामुक्की होने लगी। इस धक्कामुक्कीमें विजय पासके एक तालाबमें जा गिरा, सैनिकोंने उसे पकड़ा और वे उसे पानीमें डुबकियाँ खिलाने लगे। यह देख गाँववालों का धीरज छूट गया, वे उसको बचाने दौड़े और उनमें से कुछने सैनिकोंपर पत्थर फेंके। इसपर सैनिकोंने विजय मुखर्जीको तो तालाब में छोड़ दिया और छह बार गोलियाँ चलाईं, जिससे विजय मुखर्जी घायल हुआ और गिर पड़ा। सन्तोषनाथ और शम्भुदत्तको भी गोलियाँ लगीं, और उन्हें बादमें इलाजके लिए कलकत्ता मेडिकल स्कूलमें ले जाया गया। सन्तोषनाथकी हालत बहुत खतरनाक बताई जाती है। गोली चलाने के बाद सैनिक तुरन्त ही वहाँसे चल पड़े और विजयको घसीटते हुए उस जगह ले गये जहाँ फौजी लारी खड़ी थी। सैनिकोंके चले जाने पर गाँववाले विजयकी तलाशमें निकले। सुदर्शन मुखर्जी, श्रीपाद मुखर्जी, ब्रजमोहन बोस और गाँवके कुछ दूसरे लोगोंने विजयको अन्तिम घड़ियाँ गिनते पाया। विजयकी आँतें बाहर निकल आई थीं और वह रवीन्द्रके बगीचेके पास एक गड्ढेमें रेलवे होम सिगनलके नजदीक एक झाड़ीके नीचे पड़ा कराह रहा था। लोग उसे उठाकर पास ही काली बाड़ीमें ले गये, जहाँ उसने मरते-मरते यह बताया कि सैनिकोंने उसे घसीटा, अपने बूटोंसे उसकी छाती और शरीरके दूसरे हिस्सोंको कुचला, और उसपर संगीनके वार भी किये। इससे अधिक वह कुछ नहीं कह सका और तुरन्त ही उसका देहान्त हो गया।

यह नृशंस हत्या जान-बूझकर और सोच-समझकर की गई थी। सारा गाँव बुरी तरह आतंकित नजर आता है। यद्यपि बारासातके एस० डी० ओ० ने खतरे का अन्देशा समझकर १८ मईकी सुबहसे निमोघाईमें पुलिस तैनात करने का

हुक्म दे दिया था तो भी १८ को सुबह गाँवमें पुलिस नहीं आई। अगर पुलिस अधिकारी थोड़े ज्यादा सजग रहते तो वह विपत्ति टाली जा सकती थी।

सन्तोषनाथका — जो दुर्घटनाके दिनसे नाजुक हालतमें था — २० मईको सुबह कलकत्ताके मेडिकल स्कूल अस्पतालमें देहान्त हो गया।

अगर यह वक्तव्य सच है तो हिन्दुस्तानके इन तथाकथित रक्षकोंकी इस निरंकुशतापर कोई भी टिप्पणी अनावश्यक है।

सेवाग्राम, २५ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३१-५-१९४२

१७७. पत्र : गोपराजू सत्यनारायण मूर्तिको

२५ मई, १९४२

प्रिय मूर्ति,

यदि आप और आपकी पत्नी यहाँका कठिन जीवन झेल सकते हों, अलग-अलग रह सकते हों और आपकी पत्नी आश्रमके अनुशासनका पालन कर सकती हो तो आप यहाँ आ सकते हैं।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०८९) से

१७८. पत्र : पुरातन बुचको

२५ मई, १९४२

चि० पुरातन,

तेरा पत्र मिला। तू जो मुझसे कह रहा है, वह . . .[1] से कह। अगर तू चाहता है कि मैं कहूँ तो मैं तेरे नामसे कहने को तैयार हूँ। रचनात्मक कार्यका प्रभाव ऐसा नहीं होना चाहिए। हमारे सब काम स्वराज्यके लिए हैं। जब उनके त्यागकी आवश्यकता होगी, हम उन्हें त्याग सकते हैं। तू अपने विचारोंकी चर्चा नरहरिभाईके साथ कर ले तो भी अच्छा हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१८५) से

१. मूलमें नाम छोड़ दिया गया है।

१७९. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

२५ मई, १९४२

चि० नरहरि,

अखबारमें समाचार है कि आश्रममें लुटेरे घुसे थे और चोरी कर गये। इसमें कितना सत्य है? ऐसा कुछ हो गया हो तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। मेरा उपाय तो तुम्हें याद है न? हम उसका पूरा प्रयोग नहीं कर सके। वह कभी भी शुरू कर दिया जाये, बेवक्त नहीं कहा जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९१२७) से

१८०. पत्र : मूलजीभाई तु० शर्माको

२५ मई, १९४२

भाई मूलजीभाई,

तुम बहुत नाजुक मनके हो। जो रूढ़ हो गई हैं, ऐसी निर्दोष कहावतोंमें हमें दोष नहीं देखना चाहिए। "अरे यार, तू तो आखिर बनिया ही रहा", इससे बनिया अपनेको हीन क्यों माने? बनिये पर डरपोक होने का आरोप लगाया जाता है तो इससे क्या? ब्राह्मणको 'पच्छम बुद्धि' का[1] माना गया है तो इससे क्या? मैं तो हजामत बनानेवालों के कामको भी सम्मानकी नजरसे देखता हूँ, क्योंकि उन्हें वैद्यकका भी कुछ ज्ञान होता है।

बापूके आशीर्वाद

भाई मूलजीभाई तुलसीदास शर्मा
नाई हिन्द सभा
दांडिया बाज़ार
बड़ोदा, बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९९६) से। सी० डब्ल्यू० १ से भी

१. अर्थात्, जिन्हें बादमें बुद्धि सूझती है।

१८१. पत्र : अब्दुल हकको

सेवाग्राम
२५ मई, १९४२

भाईसाहब,

आपने मुझको हिन्दुस्तानीके बारेमें स्कीम भेजने का वादा किया था लेकिन आजतक नहीं आई। महरबानी करके भेजिये।

वर्धामें एक अंजमन तो बन गई है। उसके कवायदकी एक नकल आपको भेजता हूं। क्या मैं आशा करूं कि आप इसके मेम्बर बनेंगे? वरकिंग कमिटीमें काफी नाम खाली रखे है इस लहाझसे कि आप जैसेको ले सके।

आबिद साहिब भी अंजमनमें आ जाय तो दा० ताराचंदने दाखल होने का कबूल किया है। आपके आ जाने से अच्छा होगा।

पत्रकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१८२. पत्र : हीरालाल शर्माको

सेवाग्राम
२५ मई, १९४२

चि० शर्मा,

तुम्हारे दो खत मिले। हृदय द्रावक है। मैं छोटीसी नोट 'हरिजन'के[1] लिये भेज रहा हूं। देखें क्या होता है। तुम्हारा धर्म ऐसे मौके पर मरने तक लड़ने का है। कैसे यह यहांसे नहीं बताया जा सकता है। जैसे की बांस मजरी लेवे और लाश उठा जाय, मकान बांधते रहे इ०। तुमने बांधना बंध तो किया है। अगर अबतक हुकम जारी है तो नोटीस देकर बांधना शुरु कर सकते हैं। हर चीजमें मुझे पूछने की आशा न रखी जाय। मैं हरिजनमें आजकल लिख रहा हूं सो देखते होगे?

बापुके आशीर्वाद

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृ० ३१० और ३११ के बीच प्रकाशित प्रतिकृतिसे

१. देखिए "*अगर सच है तो भयंकर है*", पृ० १६३-६४।

१८३. पत्र : डॉ० ए० यू० काजीको

२५ मई, १९४२

भाई काजी,

आपका खत मिला। आप मुझे बराबर याद हैं। आपसे मैं काम तो ले सकता हूं लेकिन मेरा खयाल है कि आपकी हाजत बड़ी है।[1] बताइये क्या है? आप अहमदाबादमें रह सकते हैं या सेवाग्राममें साथ?

बापुकी दुआ

मूल उर्दूसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१८४. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
२६ मई, १९४२

चि० अमृत,

तुमने भेंटका[2] बड़ा चित्रात्मक ब्योरा दिया है। अच्छा हुआ कि तुमने लिखा और तुम्हें मुलाकातका समय मिल गया। उनका व्यवहार अवश्य मीठा और मैत्रीपूर्ण रहा होगा और हमेशा रहेगा। लेकिन उससे योजनामें कोई फर्क नहीं पड़ता। वह धीरे-धीरे पक्की होगी। इसलिए तुम्हें चले आने की जल्दी नहीं करनी चाहिए। मौसम तुम्हारे लिए बहुत ज्यादा गर्म है।

सप्रेम,

बापू

राजकुमारी अमृतकौर
मैनरविले
शिमला वेस्ट

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१२३) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७४३२ से भी

१. डॉ० काजी उर्दू हरिजन के लिए काम करना चाहते थे।

२. अमृतकौर २३ मईको वाइसरायसे मिली थीं और, वाइसराय द्वारा एमरीको भेजी गई रिपोर्टके मुताबिक, उन्होंने कहा था कि "पहले अमेरिकियोंको और फिर अंग्रेजोंको अपना बोरिया-बिस्तर लेकर भारतसे चले जाना चाहिए"। ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द २, पृ० १३४।

१८७. पत्र : मोतीलाल रायको

सेवाग्राम, वर्धा
२६ मई, १९४२

भाई मोतीबाबु,

आशा रखता हूं आप देवनागरी लिपि पढ़ लेते हैं। मेरे लेख आपको पसंद आते हैं सो अच्छा लगता है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०५७) से

१८८. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
२७ मई, १९४२

चि० अमृत,

जवाहरलालने पूरा दिन यहाँ बिताया। हमारे बीच दिल खोलकर बातचीत हुई है। यह सब अच्छा हुआ। हम फिर मिलेंगे। उसे लखनऊकी बैठकके लिए जाना है।

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने जवाहरलालको बताया कि तुम उससे मिलनेको कितनी उत्सुक थीं, लेकिन शम्मीके फोड़ेके कारण यह सम्भव नहीं हुआ। वह समझता था कि वाइसरायसे अपनी भेंटके कारण तुम उससे न मिल सकीं। मुझे आशा है कि चीरा लगने से अब वह बेहतर होंगे।

गर्मी बढ़ रही है। वह बढ़ती तो है पर घटने के लिए। मैं नहीं चाहता कि तुम इस प्रक्रियाको देखो।

बा मजेमें है। क्या मैंने तुम्हें बताया कि मेरा वजन बढ़कर १०१ पौंड हो गया है? मेरा खयाल है कि बताया है।

सप्रेम,

बापू

श्री राजकुमारी अमृतकौर
मैनरविले
शिमला वेस्ट

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१२४) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७४३३ से भी

१८५. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको

२६ मई, १९४२

भाई विट्ठलदास,

तुम्हारे १२ तारीखके पत्रपर मैं विचार कर रहा हूँ। दावानल भड़क उठा तो क्या होगा, कौन कह सकता है? लेकिन उसकी चिन्ता किये बिना हमें इसका विचार तो करना ही चाहिए कि क्या किया जा सकता है। आगामी बैठकमें हम यह काम करेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९८०३) से

१८६. पत्र : हनुमन्तरावको

सेवाग्राम, वर्धा
२६ मई, १९४२

भाई हनुमंतराव,

तुम्हारे २ मइके खतको आज ही पहूंचता हूं। मुझे लगता है कि तुम्हें अधिक स्पष्टतासे लिखना चाहिये था। अगर तुम्हारा हृदय साफ हो गया है तो स्पष्ट रूपसे कह देना अच्छा है "फॉर ए लैप्स इन दि पर्फार्मेन्स ऑफ पब्लिक ड्यूटी आई हैव डिसाइडिड टु: . ."[1] ऐसा कुछ लिखने का धर्म मुझे प्रतीत होता है। अब भी सुधारणा हो सकती है एक सामान्य निवेदन निकाल कर भी हो सकता है।

आशा है मेरे अक्षर पढ़ सकोगे।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. उद्धरणमें प्रस्तुत अंश अंग्रेजीमें है, जिसका तात्पर्य है: "जनताके प्रति कर्तव्य-पालनमें भूल हो जाने के कारण मैंने निश्चय किया है कि ..."।

१८९. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सेवाग्राम, वर्धा
२७ मई, १९४२

भाई वल्लभभाई,

जवाहरलालसे दिन-भर बातें हुईं। वे सद्भावपूर्ण थीं और एक-दूसरेको हमने ठीक-ठीक समझा। सिन्धका मामला चोइथराम[1] तुमपर डाल रहे हैं। तुम्हें दृढ़ बनना चाहिए। अगर तुम मेरी रायसे सहमत हो तो तुम्हें पत्र लिखना चाहिए। जवाहरलालसे मैंने पूछा था। वह तो कहता है कि कांग्रेसी सदस्योंको हट जाना चाहिए और अल्लाबख्शको भी। ऐसी स्थिति है। परन्तु स्वयं तुम्हारा ही विचार यदि दूसरा हो तो फिर मुझे कुछ नहीं कहना है।[2]

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

आश्चर्य है कि तुम्हारी तबीयतमें फर्क नहीं पड़ रहा है। सरदी मिटनी ही चाहिए। नाकसे सोडा और नमक लेकर क्या नाक साफ करते हो? यदि आराम न मिले तो यहाँ आकर रहना चाहिए।

बापू

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–२ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २७६

१९०. बातचीत : राष्ट्रीय युवक संघके सदस्योंसे[3]

२८ मई, १९४२

शुरूमें सदस्योंके निर्बल शरीर देखकर खेद प्रकट करते हुए गांधीजी ने कहा :

आजकल हम लोगोंके शरीर बिल्कुल बगैर स्नायुके हो गये हैं। मेरे सामने बैठे हुए इन लड़कोंके शरीर मेरे शरीर जैसे स्नायुहीन हैं। इन्हें क्या उपदेश दूं? इन्हें तो एक

१. डॉ० चोइथराम गिडवानी, सिन्ध प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष

२. देखिए "सिन्धमें अराजकता", पृ० १३९-४१ भी।

३. राष्ट्रीय युवक संघ, म० प्रा० के लगभग १०० सदस्य वर्धामें अपना वार्षिक प्रशिक्षण शिविर समाप्त हो जानेके बाद सेवाग्राममें गांधीजी से मिले। सुबहकी सैरके समय वे गांधीजी के साथ करीब आधा घंटा रहे। इस भेंटका संक्षिप्त विवरण "टु रेजिस्ट द स्लेव ड्राइवर्स" (गुलामोंके मालिकोंका प्रतिरोध कैसे करें) शीर्षकके अन्तर्गत ७-६-१९४२ के हरिजन में भी प्रकाशित हुआ था।

ही उपदेश दे सकता हूँ, मोटे-ताजे और तगड़े बनो. . .। जो बातें मैं कई बार कह चुका हूँ, उन्हींको आज फिर दुहरा दूँ, इससे तो यही अच्छा होगा कि तुम लोग कुछ पूछो और उसका मैं उत्तर दूँ।

प्र० : अंग्रेजोंको हम यहाँसे कैसे भगा सकते हैं?

गांधीजी ने विनोदमें कहा : तुम लोग लाठी-काठी सीखते हो, तुम उन्हें लाठीसे भगाओ।

प्र० : मगर हमारे पास लाठी हो तब?

उ० : तब तो सब मेरे सम्प्रदायमें आ जाते हो। मैंने लाठी छोड़ दी है। तुम लोगोंने भी छोड़ दी है। तुम लाठी-काठी सीखते हो, मैं भी हाथमें यह लाठी रखता हूँ। लेकिन उससे किसीको मारता नहीं हूँ। वह केवल मुझे सहारा देने के लिए है। इसी तरह तुम्हारी लाठीके प्रयोग-सम्बन्धी ज्ञानका उपयोग होना चाहिए। तुम्हारी लाठियाँ किसीकी पीठमें मारने के लिए नहीं हैं।

तुम्हारे प्रश्नमें दरअसल दो प्रश्न आ जाते हैं : हम अंग्रेजोंको भगाना चाहते हैं 'या' उनका आधिपत्य समाप्त करना चाहते हैं?

सदस्य एक स्वरमें : आधिपत्य समाप्त करना चाहते हैं।

उ० : यही सही रुख है। बहुत-से अंग्रेज मेरे मित्र हैं। लेकिन सब अंग्रेजोंके लिए मैं यह नहीं कह सकता, हालाँकि चाहता तो हूँ कि सभी अंग्रेजोंका मित्र बनूँ। ऐसा एक भी अंग्रेज बाकी न रहे जो मेरा मित्र न हो। सिर्फ अंग्रेजोंका ही नहीं, मैं तो दुनिया-भरकी सभी कौमोंका मित्र बनकर रहना चाहता हूँ। लेकिन अंग्रेजोंका विशेष रूपसे दोस्त बनना चाहता हूँ। क्योंकि इतने वर्षोंसे उनसे मेरा सम्बन्ध रहा है। चाहे वह सम्बन्ध किसी भी तरहका रहा हो — वे मालिक और मैं गुलाम इस तरहका सम्बन्ध ही क्यों न रहा हो — फिर भी सम्बन्ध तो रहा है। इसलिए मैं अंग्रेजोंको खासकरके दोस्त बनाना चाहता हूँ। लेकिन इस देशमें उनके शासन, उनके साम्राज्यको मिटाना चाहता हूँ। मैं अंग्रेज शासकोंसे यहाँसे शान्तिपूर्वक चले जाने को कह रहा हूँ। हम उनके शासनको बिलकुल मिटा देना चाहते हैं। क्योंकि यह जहर जिस चीजको छूता है, उसे दूषित कर देता है। यह शासन हमारी सब तरहकी प्रगतिमें विघ्नरूप है।

साम्राज्यको हटाने के दो तरीके हैं : एक तो यह कि हम साम्राज्यको ही मिटा दें और दूसरा यह कि हम ही साम्राज्यमें से हट जायें। मैंने हट जाने का तरीका बतलाया है। इसके लिए लाठीकी जरूरत नहीं है। दो चीजोंकी जरूरत है; एक तो यह जानने की कि यह हुकूमत दूसरी किसी भी बुराईकी अपेक्षा ज्यादा बुरी चीज है। और दूसरी यह कि हमें चाहे जो भी कीमत अदा करनी पड़े, उसे अदा कर उससे पिंड छुड़ाना है। हमें अपने दिलके राजा बन जाना है। मेरा ही उदाहरण ले लो। मैं ऐसा महसूस नहीं करता कि मैं किसीका गुलाम हूँ। मुझे गुलाम बनाने की कोशिश सारी दुनिया भी करे तो वह निष्फल होगी। वह मुझे गुलाम नहीं बना सकती।

यानी वह मेरे दिल-दिमागकी शासक नहीं बन सकती। मेरे शरीरके साथ वह चाहे जो कर ले। समझ लीजिए कि कोई मुझसे कहता है कि यह लकड़ी उठाकर यहाँ रख दो। मेरे शरीरमें लकड़ी उठाने की ताकत तो है। लेकिन मैं उसका हुक्म नहीं मानना चाहता। वह सिपाहियोंसे कहेगा कि इसे इतनी मार मारो कि मर ही जाये। मैं मार खाना कबूल करता हूँ, लेकिन हुक्म नहीं मानता। मैं अपने मनका मालिक हूँ। मनुष्य जबतक किसीसे नहीं दबता, तबतक वह गुलाम नहीं होता। मैं मार खाकर मर जाऊँ तो मेरा काम निपट जायेगा। इसमें मेरी सम्पूर्ण विजय होगी। क्योंकि वह मुझसे जो कराना चाहता था, वह नहीं करा सका। मेरा शव भले ही वह ले ले। मेरी मौतके बादमें जो सुनेंगे वे, कमसे-कम इतना तो कहेंगे कि आदमी ऐसा बहादुर था कि मार खाते-खाते मर गया लेकिन किसीका हुक्म नहीं माना।

इसी तरह हमें अंग्रेजोंके साम्राज्यसे हट जाना है। अगर वे खुद हट जायें तो ठीक ही है। मैं उनको ऐसा करने के लिए समझा रहा हूँ। दुनियाको भी समझाने की कोशिश कर रहा हूँ। अगर वे न सुनें तो हम उन्हें कैसे हटा सकते हैं? लेकिन उनके आधिपत्यको हटा सकते हैं। यानी हम उनके साम्राज्यमें से हट सकते हैं। उनके हुक्मकी तामीली करने से इनकार कर सकते हैं। लकड़ी उठाने का मामूली दृष्टान्त देकर मैंने तुमको यही समझाया है। हमें अपनी जंजीरें फेंक देने का संकल्प करना है। हमें अपने शासकोंका हुक्म न मानने की संकल्पशक्ति बढ़ानी है। क्या यह बहुत मुश्किल है? कोई दूसरोंको जबरदस्ती गुलाम कैसे बना सकता है?

हमपर इस साम्राज्यकी सत्ता बड़ी कुशाग्रबुद्धिसे चलाई जाती है। इतनी बारीकीसे कि हमें पता नहीं चलता कि साम्राज्य चल रहा है। सेवाग्रामके पटेलके सिवा सेवाग्रामके किसानोंके पास क्या प्रमाण है कि यह राज्य चल रहा है? अगर पटेल न रहे, प्रशासनिक अधिकारोंसे युक्त, तो कोई सबूत नहीं होगा। किसान पटेल से डरते हैं। उनके लिए साम्राज्य एक अदृष्ट शक्ति है। इस सत्ताको लागू करने के तरीके बहुत सूक्ष्म हैं। इससे छुटकारा पाने का उपाय लाठीका प्रयोग नहीं है। हम दूसरेकी लाठीके आगे न झुकें तो हम विजय पा सकते हैं।

आज दोनों तरफसे एक ही तरहकी शक्तियाँ एक-दूसरेसे लड़ रही हैं। एक तरफ इंग्लैण्ड, अमेरिका, चीन और रूस तथा दूसरी तरफ जर्मनी, इटली, जापान, एक-दूसरेके प्रति हिंसाका प्रयोग कर रहे हैं। सभी राष्ट्र बुद्धिशाली, शक्तिशाली और वैभवशाली हैं। उनमें भयानक युद्ध चल रहा है। कोई नहीं जानता कौन जीतेगा। आज तो दोनों तरफसे जीवन व संपत्तिका विनाश हो रहा है। सबसे भयंकर चीज यह है कि इसमें सिर्फ लड़नेवालों को ही नहीं वरन् बेगुनाह बच्चों, बूढ़ों और औरतोंको, सबको मरना पड़ता है। ऐसी लड़ाईमें मुझे दिलचस्पी नहीं है। ईश्वरकी कृपासे हमारे पास उस तरहकी शक्ति नहीं है। मैं ईश्वरसे ऐसी शक्ति चाहता भी नहीं। मैं हिटलर या चर्चिल नहीं बनना चाहता। मैं तो हिन्दुस्तानका आजाद किसान बनना चाहता हूँ। अभीतक बन नहीं सका हूँ। मुझे तो दूध चाहिए, उसको दूध नहीं मिलता, दूधके बिना मेरा शरीर नहीं चल सकता। मैं चाहता हूँ कि मैं उस किसानसे स्पर्धा कर सकूँ। उसे देखकर मुझे ईर्ष्या होती है।

लेकिन हिन्दुस्तानका किसान परिस्थितिवश किसान है। वह चाहता तो है बादशाह बनना, लेकिन उसे परिस्थितियोंसे मजबूर होकर किसान बनकर रहना पड़ रहा है। मैं खुशीसे किसान और मजदूर बनकर रहना चाहता हूँ। उसमें और मुझमें केवल यह फर्क होगा कि मैं सन्तुष्ट रहूँगा, जबकि वह असन्तुष्ट है। मैं उसके जैसा असन्तुष्ट भिक्षुक नहीं बनना चाहता। मैं खुद अपना मालिक हूंगा। उसी जीवनमें खुशहाल रहूँगा। यह है मेरा आदर्श।

जिस दिन किसानको भी अपनी मर्जीसे किसान और मजदूर रहना मैं सिखा सकूँगा, उस दिन उसे वे बेड़ियाँ भी तोड़ देना सिखा सकूँगा जो उसे मालिकका हुक्म मानने को मजबूर करती हैं।

मैंने रास्तेकी ओर सिर्फ इशारा कर दिया है। इसीमें से तुम्हें मार्ग-दर्शन मिल जायेगा। मेरे आदर्शका जितना अनुसरण कर सको, करो। उसके लिए हमें तगड़े बनना होगा। नियमित व्यायाम करके स्नायु बढ़ाने होंगे। लेकिन हिंसाके लिए यह नहीं करना चाहिए। यदि हम हिंसा करनेके लिए तगड़े बनेंगे तो खेती और मज-दूरीके कामके नहीं रहेंगे। हमारा आदर्श सैंडो बनना नहीं है। अगर सैंडोसे कहा जाता कि लकड़ीका एक बोझ धूपमें यहाँसे वर्धा पैदल पहुँचा दो तो उसका खात्मा हो जाता। लेकिन एक मजदूर सिर्फ पाँच-छह पैसोंके लिए कड़ी धूपमें उतना बोझ सिरपर उठाकर चला जायेगा। इस तरहका तगड़ा मजदूर बनना हमारा आदर्श है। हमारा व्यायाम इसी उद्देश्यसे होना चाहिए। रात, दिन, धूप-ठंडकी चिंता भी नहीं होनी चाहिए। हमारे लिए शीत और उष्ण एक चीज हो जानी चाहिए।

हमें कूदना-फाँदना भी सीखना चाहिए, लेकिन दूसरोंको मारनेके लिए नहीं, बचानेके लिए। मान लीजिए कि एक आदमी बेहोश हो गया है, उसे उठाकर लाना है, बीचमें खाई है या कुँआ है, दीवार है, और उसको बचानेके लिए इस खाई या कुएँको फाँदना है। यह सब शक्ति हमारे शरीरमें होनी चाहिए। यही अहिंसक व्यायाम सिखलाता है। लेकिन हम सिर्फ शरीरसे ही तगड़े बनना नहीं चाहते। हमें प्रतिकारकी वृत्ति पैदा करनी है। उसके लिए अपनी बुद्धि और संकल्प-शक्तिको मजबूत बनाना है। तुममें अगर इस तरहकी शक्ति आ गई तो तुम बड़े अच्छे कार्यकर्त्ता बन जाओगे, इसमें सन्देह नहीं।

प्र० : आप नया आन्दोलन कब शुरू करेंगे?

उ० : एक तरहसे मुझे जल्दी भी है और एक तरहसे नहीं भी है। मैं उसके लिए उपयुक्त वातावरण बना रहा हूँ। मैं अपनी और लोगोंकी सीमाएँ जानता हूँ। लोगोंको समझाना जरूरी है। मैं जबतक लिख सकता हूँ, लोगोंको समझाता रहूँगा। मैं जानता हूँ कि मेरी योजनाका पूरा-पूरा रहस्य न तो सरकार समझती है और न जनता ही। इसलिए मैं इन सीमाओंको ध्यानमें रखकर ही जो-कुछ करना है, करूँगा।

प्र० : हम अगर किसी अत्याचारीको मारनेके बदले रस्सीसे कसकर बाँध दें तो क्या वह हिंसा होगी?

उ० : अगर किसी पागलको बाँध दो तो हिंसा नहीं है। लेकिन दूसरेको बाँधो तो उसमें हिंसा है। इस तरहके प्रश्न पूछकर हम अहिंसामें प्रगति नहीं कर सकते। अहिंसा तो अत्याचारीसे प्रेम करना सिखाती है। अहिंसक मनुष्य अत्याचारी से डरता नहीं है। उसपर दया करता है। दया-धर्म बतलाता है कि जिससे हम डरते हैं, उसपर दया नहीं कर सकते। 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'।

लेकिन जब हम ऐसे सवाल करते हैं, उस वक्त हमारे दिलमें अहिंसा नहीं होती। हम तो अत्याचारीको हिंसासे रोकना चाहते हैं। इसीलिए बाँधने की बात उठती है। ऐसी स्थितिमें तो मैं यही कहूँगा कि तुमसे जैसे बने, विरोध करो। क्योंकि दूसरा रास्ता भाग जाने का ही रह जाता है। भाग जाने की बात तो मैं सोच भी नहीं सकता। जो अहिंसक होता है, उसके दिलमें प्रेम और दया होती है। वह किसीसे डरता नहीं। ईश्वर उसे शक्ति देता है।

प्र० : लेकिन अंग्रेजोंका शासन समाप्त करने की कोशिशसे अराजकता पैदा होगी। सारी जनतामें अहिंसाकी वृत्ति तो है नहीं। इसलिए दंगा-फसाद, हिंसा और अत्याचार होंगे। क्या वह अराजकता इस वर्तमान व्यवस्थित अराजकतासे भी गई-बीती नहीं होगी? क्या दवा मर्जसे ज्यादा खतरनाक नहीं होगी? उसका प्रतिकार किस तरह किया जाये? या पहलेसे कोई कदम उठाने की जरूरत नहीं है?

उ० : तुम्हारा प्रश्न बहुत उपयुक्त और महत्त्वका है। बाईस-तेईस वर्षोंसे इसी कठिनाईका विचार मेरे सामने रहा है। मैं हमेशा सोचता रहा कि जबतक देश अहिंसक संघर्षके लिए तैयार नहीं है, तबतक मुझे रुकना होगा। लेकिन अब मेरे रुखमें परिवर्तन हो गया है। मुझे लगता है कि अगर मैं तैयारीके लिए रुका रहा तो शायद मुझे प्रलय कालतक रुके रहना होगा, क्योंकि जिस तैयारीके लिए मैंने दुआ माँगी है और काम किया है वह कभी हो सकता है कि न हो पाये और शायद इस बीचमें चारों तरफ फैलनेवाली हिंसाकी ज्वालाएँ मुझे भी घेर लें, निगल लें। मैंने अपनी अहिंसामें यह दोष पाया। लेकिन इस सबके बावजूद आजतक मैंने जो प्रयोग किये हैं उनका परिणाम अच्छा ही हुआ है। उनके लिए मुझे पश्चात्ताप नहीं है।

लेकिन आज हमें एक कदम और भी आगे बढ़ना होगा। आज हमपर गुलामीकी जो जबरदस्त आपत्ति है, उसमें से निकलने के लिए हमें खतरा भी उठाना पड़ेगा और हिंसा करनी होगी। लेकिन इसके लिए भी अहिंसक व्यक्तिकी अविचल निष्ठाकी जरूरत है। मेरी योजना या विचारमें भी हिंसा हो ही नहीं सकती। अहिंसक व्यक्तिका पूरा भरोसा ईश्वरपर रहता है। मेरी अहिंसा हमेशा अपूर्ण रही है। इसलिए, उस हदतक उसका प्रभाव कम रहा है। लेकिन मेरा भरोसा ईश्वरपर है। इस अर्थमें मेरे लिए 'निर्बलके बल राम' हैं। मेरे चित्तके किसी भी कोनेमें या मेरे जीवनके किसी छोटेसे-छोटे अंशमें तनिक भी हिंसा नहीं है। मेरी भावनामें हिंसा लेशमात्र नहीं है और न वह मेरे व्यक्तित्वके किसी कोने तकमें है। मेरा व्यक्तित्व भावनाओंसे भरा है। पचास वर्षसे जो आदमी एक निष्ठासे अहिंसा

का पालन करता आया है, वह एकाएक कैसे बदल सकता है? इसलिए मेरे दिलमें आज हिंसा पैदा हो गई है, ऐसा नहीं है।

परन्तु आम जनतामें मेरे जैसी अहिंसा नहीं है। इसलिए अगर मैं लोगोंकी हिंसाको न रोक सकूँ तो मुझे वह खतरा भी उठाना ही है। मैं निष्क्रिय बनकर नहीं बैठ सकता। मैं निश्चय ही अहिंसात्मक आन्दोलन करूँगा। लेकिन लोग उसे न समझ सकें और हिंसा होने लगे तो मैं उसे कैसे रोक सकता हूँ? मैं तो आजकी प्रशासनिक पद्धतिसे अराजकता भी पसन्द करूँगा। क्योंकि यह व्यवस्थित अराजकता उस वास्तविक अराजकतासे भी बदतर है। मुझे विश्वास है कि ऐसी भयानक अराजकता मिटाने के प्रयत्नमें जो अराजकता पैदा होगी वह कम भयानक होगी। उसमें जो हिंसा होगी, वह इस राज्यकी हिंसाके मुकाबिलेमें यत्किंचित् होगी। मनुष्य-स्वभाव की दुर्बलताके कारण जो-कुछ हिंसा होगी, वह तो होगी ही। हमारे देशमें करोड़ों लोगोंके पास हथियार नहीं हैं। वे आपसमें हिंसा करेंगे भी तो कबतक कर सकेंगे? आपसमें हिंसा करके यदि कुछ लोग मरेंगे भी तो आगे चलकर उन्हें मेरी ही बात माननी पड़ेगी। यदि ईश्वरकी ऐसी ही इच्छा है तो हमें अराजकताकी जोखिम उठानी ही है। फिर भी हम तो हिंसा रोकने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे। लेकिन उसके बावजूद भी यदि हिंसा होगी तो वह उसीकी मर्जीसे होगी। उसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँगा। लेकिन जब कि एक सम्भावित विदेशी आक्रमणके प्रतिकारके नामपर इतनी भयंकर हिंसा चल रही है और प्रशासनके नामपर इतनी भयानक व्यवस्थित अराजकता मौजूद है, तब यदि मैं निष्क्रिय बैठा रहूँ और निश्चिन्त रहकर दूध पीता रहूँ तो मैं गुनहगार साबित हूँगा। फिर मेरी अहिंसा बिलकुल प्रभावकारी नहीं होगी। मेरे लिए ऐसी स्थिति असह्य होगी। ऐसी अहिंसापर मुझे शर्म आयेगी। अहिंसा ऐसी निकम्मी नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि उस अराजकतामें से ही विशुद्ध अहिंसाका उदय होगा।

तुम्हारा प्रश्न बहुत उचित और विचारोत्तेजक है। वह मेरे लेखोंमें से ही निकलता है। मैंने अपने लेखोंमें उसका जवाब भी दिया है। लेकिन वह आसानीसे समझमें नहीं आयेगा। क्योंकि आखिर भाषा विचारोंका बहुत अपूर्ण और कमजोर वाहन है। मेरे दिलमें जितना है, उसमें से थोड़ा ही लिख सका हूँ। भाषाकी यही सीमा है। मैंने जो लिखा है, उसका अगर मनन करोगे तो मेरी बात समझमें आ सकती है। हिन्दी, मराठी और गुजरातीमें उसे पढ़ो। अंग्रेजीमें पढ़ोगे तो समझमें नहीं आयेगा। उसका मनन करो। देशके सामने अपनी अपूर्ण भाषामें एक महान विचार रख रहा हूँ। आज जो लोग मेरी बात समझ नहीं सकते या समझना नहीं चाहते, वे भी मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसे अनुभवसे समझेंगे — अगर वे इस भयंकर संकटमें से जिन्दा रहे तो।

सर्वोदय, जून, १९४२

१९१. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
२८ मई, १९४२

चि० अमृत,

आशा है कि तुम्हें मेरे पत्र नियमित रूपसे मिलते रहे होंगे। वे डाकमें तो डाले ही जाते हैं।

मौलाना साहब कल निश्चित रूपसे रवाना हो रहे हैं और परसों यहाँ पहुँच रहे हैं। खुर्शेद उनके साथ आ रही है। मीरा अब भी उड़ीसामें है।

मेरी तबीयत सचमुच बहुत अच्छी है। मैं जो-कुछ खा रहा हूँ वह काफी है। आशा है कि शम्मी अब बेहतर होंगे और तुम्हारा वजन बढ़ रहा होगा।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

सरूपका[1] यह एक पत्र भेज रहा हूँ। नीचे आने के बाद जो-कुछ करना हो, करना।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१२५) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७४३४ से भी

१९२. पत्र : वल्लभराम वैद्यको

२८ मई, १९४२

भाई वल्लभभाई;

मैं तुम्हें ऋषिकेश नाकाके पतेपर लिखने को सोच रहा था कि तुम्हारा पत्र मिला। मैं तुम्हें लिखना यह चाहता था कि आदमीके घूमने की भी एक सीमा होती है। जड़ी-बूटियोंको पहचानना अपने-आपमें कर्त्तव्य नहीं है। अतः जो ज्ञान तुमने प्राप्त कर लिया है उसे अमलमें लाकर जो सेवा हो सकती है, वह करो, और सेवा करने में अपना कौशल बढ़ाओ। देशी वैद्यक सरल है, सस्ती है और सौमें से निन्यानवे

१. विजयलक्ष्मी पण्डित

रोगियोंको आराम पहुँचाने की क्षमता रखती है — यह सिद्ध कर सको तो करो। और अगर इतना सिद्ध करने की क्षमता देशी वैद्यकमें नहीं है तो फिर इस धन्धेको तिलांजलि दे दो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९१८) से। सौजन्य : वल्लभराम वैद्य

१९३. भेंट : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिको

[२८ मई, १९४२][1]

एक संवाददाताके इस प्रश्नका जवाब देते हुए कि क्या आपके लेखोंमें व्यक्त आपकी मौजूदा नीति आपकी ही इस घोषणाको व्यर्थ नहीं कर देती कि आप चीन के मित्र हैं, गांधीजी ने कहा :

मेरा स्पष्ट जवाब है — 'नहीं'। मैं चीनका वैसा ही उत्साही मित्र हूँ जैसा होने का मैंने हमेशा दावा किया है। मैं जानता हूँ कि स्वतन्त्रता खो जाने का क्या अर्थ होता है। इसलिए मैं अपने बिलकुल निकटके पड़ोसी चीनकी विपत्तिमें उसके साथ सहानुभूति रखे बिना नहीं रह सकता। और यदि मैं हिंसामें विश्वास करता होता और भारतपर प्रभाव डाल पाता तो मेरे पास जितनी भी ताकत होती, उसे चीनको तरफसे उसकी स्वतन्त्रताकी रक्षामें लगा देता। इसलिए ब्रिटिश सत्ताके हटने का जो प्रस्ताव मैंने रखा, उसे रखते हुए मैंने चीनको नजरअंदाज नहीं किया है। लेकिन चूंकि चीन मेरे ध्यानमें है, मुझे लगता है कि चीनकी मदद करने के लिए भारतके पास एकमात्र कारगर रास्ता यही है कि ब्रिटेनको इस बातके लिए राजी किया जाये कि वह भारतको स्वतन्त्र कर दे और स्वतन्त्र भारतको युद्ध-प्रयत्नोंमें अपना पूरा योगदान देने दे। तब स्वतन्त्र भारत, नाराज और असन्तुष्ट रहने के बजाय, सारे मानव-समाजके कल्याणके लिए एक जोरदार ताकत सिद्ध होगा। यह सही है कि मैंने जो हल पेश किया है वह अंग्रेजोंकी समझसे परे एक बहुत ही बहादुरी-भरा हल है। लेकिन ब्रिटेन, चीन और रूसका सच्चा मित्र होने के नाते, मुझे उस हलको दबाना नहीं चाहिए जिसे कि मैं सर्वथा व्यावहारिक मानता हूँ। और मेरे खयालसे तो यह हल स्थितिको सँभालनेका तथा इस युद्धको, जो अभी तो मानवताके लिए एक संकट बना हुआ है, एक कल्याणकारी शक्तिमें परिवर्तित करने का एकमात्र उपाय है।

कल मुझे पण्डित नेहरूने बताया कि उन्होंने लाहौर और दिल्लीमें लोगोंको यह कहते सुना है कि मैं जापानियोंके पक्षमें हो गया हूँ। मैं इस बातपर हँस ही

१. तारीख हिन्दू से ली गई है।

सकता था, क्योंकि यदि स्वतन्त्रताके लिए मेरी उत्कंठा सच्ची है तो मैं जान-बूझकर या अनजानेमें ऐसा कोई कदम नहीं उठा सकता जिससे भारत सिर्फ मालिक बदलनेकी स्थितिमें फँस जाये। जापानी खतरेका प्रतिरोध मैं अपनी सम्पूर्ण आत्मासे कर रहा हूँ। यदि उसके बावजूद वह दुःखद घटना, जिसकी सम्भावनासे मैंने कभी इनकार नहीं किया है, घट जाती है, तो दोष पूरी तरह ब्रिटेनका होगा। मुझे इस विषयमें जरा भी सन्देह नहीं है। मैंने ऐसा कोई सुझाव नहीं रखा है जो सैनिक दृष्टिसे भी, ब्रिटिश या चीनी सत्ताके लिए जरा भी खतरनाक हो। यह स्पष्ट है कि भारतको चीनके पक्षमें अपना पूरा जोर लगाने की सुविधा नहीं दी जा रही है। यदि भारतसे ब्रिटिश सत्ता व्यवस्थित ढंगसे हटा ली जाती है तो ब्रिटेनको भारतमें शान्ति बनाये रखने के बोझसे राहत मिल जायेगी और साथ ही उसे स्वतन्त्र भारतके रूपमें एक मित्र मिल जायेगा, जो साम्राज्यकी रक्षा या विस्तारमें तो उसका मित्र नहीं होगा, क्योंकि ब्रिटेन तब अपने साम्राज्यवादी मन्सूबोंको पूरी तरह छोड़ चुका होगा, लेकिन मानव-स्वातन्त्र्यकी नकली नहीं बल्कि सच्ची प्रतिरक्षामें उसका मित्र होगा। इस बातपर मैं जोर देता हूँ और मेरे हालके लेखोंमें बार-बार यही बात कही गई है और मैं ऐसा तबतक करता रहूँगा जबतक कि ब्रिटिश सत्ता मुझे करने देगी।

प्र० : अब अपनी योजनाके बारेमें आपको क्या कहना है — बताया जाता है कि आपने कोई बड़ा आन्दोलन छेड़ने की योजना पक्की तरहसे बना ली है?

देखिए, मैंने कभी भी गोपनीयतामें विश्वास नहीं किया है और न ही अब करता हूँ। निश्चय ही मेरे दिमागमें कई योजनाएँ चल रही हैं। लेकिन अभी तो मैं उन्हें अपने दिमागमें केवल चलने दे रहा हूँ। मेरा पहला काम तो जहाँतक मुझे करने दिया जाता है, भारतके जनमानस तथा विश्वमतको शिक्षित करना है। और जब मैं यह काम सन्तोषजनक रूपसे पूरा कर चुकूँगा, तब शायद मुझे कुछ करना होगा। और यदि कांग्रेस मेरे साथ हुई और जनता मेरे साथ हुई तो वह कोई बहुत बड़ी चीज हो सकती है। लेकिन मैं जो-कुछ करना चाहूँगा उसे शुरू करनेसे पहले ब्रिटिश अधिकारियोंको उसकी पूरी जानकारी मिल जायेगी। स्मरण रखें कि मुझे अभी मौलाना साहबसे मिलना है। पण्डित नेहरूके साथ मेरी बातचीत अभी समाप्त नहीं हुई है। मैं कह सकता हूँ कि बातचीत पूरी तरह मित्रतापूर्ण थी और कलकी अधूरी बातचीतसे भी हम एक-दूसरेके ज्यादा करीब आ गये हैं। स्वाभाविक है कि मैं, यदि ले जा सकूँ तो पूरी कांग्रेसको साथ लेकर चलना चाहता हूँ, जैसे कि मैं पूरे भारतको साथ लेकर चलना चाहता हूँ। क्योंकि स्वतन्त्रताकी मेरी कल्पना कोई संकीर्ण कल्पना नहीं है। वह मानव-मात्रकी पूर्ण गरिमासे युक्त स्वतन्त्रता की सहगामिनी है। इसलिए मैं पूरी तरह सोच-विचार किये बिना कोई कदम नहीं उठाऊँगा।

सिन्धकी स्थिति और हूरोंके आतंकके बारेमें पूछे जाने पर गांधीजी ने कहा :

मुझे हैदराबादसे एक तार मिला है, जिसमें मुझसे सिन्ध जाने अथवा पीर पगारोसे मिलने का आग्रह किया गया है। मुझे लगता है कि मैं सिन्ध नहीं जा सकता।

मैंने इस समस्यासे निपटने का रास्ता सुझा दिया है। यदि उसे अपनाया गया तो सफलता अवश्य मिलेगी। जहाँतक पीर पगारोसे मिलने की बात है, यदि मुझे उनसे मिलने के लिए उचित अधिकार मिल जाता है तो मैं खुशीसे उनसे मिलूँगा।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ७-६-१९४२, और हिन्दू, ३०-५-१९४२

१९४. तार: 'सन्डे डिस्पैच' को[1]

[२९ मई, १९४२ या उसके पूर्व]

तार अभी मिला। जाहिर है कि आपके पास मेरा पूरा वक्तव्य नहीं है। अमेरिकासे सम्बन्धित अंश इस प्रकार है: "मैं जानता हूँ कि मुझे अमेरिका-जैसे बड़े राष्ट्रकी आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं है। मैं उन सब तथ्योंको नहीं जानता जिनके कारण अमेरिकाने इस आगमें कूद पड़ने का निश्चय किया। परन्तु किसी-न-किसी तरह मेरे मनमें इस धारणाने घर कर लिया है कि अमेरिका इससे बाहर रह सकता था, और अगर वह अपनी अथाह दौलतके नशेसे अपनेको मुक्त कर ले तो अब भी वह ऐसा कर सकता है। और इस सिलसिलेमें मैं अंग्रेजी हुकूमतके भारतसे हटने के बारेमें जो-कुछ कह चुका हूँ, उसीको फिर दुहराना चाहता हूँ। अमेरिका और ब्रिटेन दोनों जबतक यह दृढ़ निश्चय करके अपने घरोंको ठीक नहीं कर लेते कि वे आफ्रिका तथा एशिया दोनों ही जगहोंसे अपना प्रभाव और सत्ता हटा लेंगे तथा रंग-भेदकी नीतिका त्याग कर देंगे, तबतक इस युद्धमें हिस्सा लेने का उनके पास कोई नैतिक आधार नहीं है। जबतक श्वेत जातियोंको श्रेष्ठ मानने का नासूर पूरी तरह नष्ट नहीं हो जाता, तबतक उन्हें प्रजातन्त्रकी रक्षा तथा सभ्यता और मानव-स्वतन्त्रताकी रक्षा करने की बात करने का कोई हक नहीं है।"[2] मैं उस वक्तव्यपर कायम हूँ। अमेरिका युद्धसे किस तरह बच सकता था, इसका जवाब मैं अहिंसात्मक तरीकेकी सिफारिश करने के सिवा दूसरे ढंगसे नहीं दे सकता। अमेरिकियोंसे अपने मैत्री-सम्बन्धके आधारपर

१. महादेव देसाईके लेख "अनफेयर टु अमेरिका?" (अमेरिकाके साथ अन्याय), २९-५-१९४२ से उद्धृत। यह सन्डे डिस्पैच के एक तारके जवाबमें था जिसमें कहा गया था: "बताया गया है कि आप कहते हैं कि यदि अमेरिका चाहता तो इस युद्धसे बाहर रह सकता था। इस तथ्यको ध्यानमें रखते हुए कि अमेरिका युद्धसे अलग था, फिर भी जापानियोंने उसपर हमला किया और साथ ही उसके खिलाफ युद्ध घोषित कर दिया, आप इस तरहके वक्तव्यको किस तरह उचित सिद्ध करते हैं?"

२. देखिए "भेंट: समाचारपत्रोंको", पृ० १२३-२९।

मैंने शान्तिके पक्षमें अमेरिकाके योगदानकी बड़ी-बड़ी आशाएँ सँजोई थीं। आर्थिक तथा बौद्धिक दृष्टिसे और वैज्ञानिक कौशलमें अमेरिका इतना ज्यादा बड़ा है कि कोई राष्ट्र या कई राष्ट्र मिलकर भी उसे पराभूत नहीं कर सकते। इसलिए इस आगमें उसके कूद पड़ने पर मैं आँसू बहाता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ७-६-१९४२

१९५. सरदार पृथ्वीसिंह[1]

जब सरदार पृथ्वीसिंहने अपनेको पहचाना और स्वेच्छापूर्वक अपनेको गिरफ्तार करवा दिया,- तभीसे उनके साथ मेरा सम्बन्ध शुरू हुआ। लेकिन मुझे अफसोस है कि एकाएक और एक ही बारकी बातचीतके फलस्वरूप मुझपर से उनकी सारी श्रद्धा उठ गई है, और वे मुझसे अलग हो गये हैं।[2] जैसा कि स्वाभाविक था, इसके बाद उन्होंने अहिंसक व्यायाम संघसे त्यागपत्र दे दिया। उनके इस कदमका एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि संघके ट्रस्टियोंने संघको समेटने और व्यायामशालाको बन्द करने का फैसला किया है, क्योंकि इस व्यायामशालाकी स्थापनामें उनका एकमात्र हेतु यही था कि सरदार पृथ्वीसिंह मेरी देखरेखमें प्रयोग करके इस बातकी शोध करें कि अहिंसक व्यायामका क्षेत्र और उसकी विशेषता क्या है।[3] मुझे आशा तो यह है कि यद्यपि मुझपर से उनकी श्रद्धा उठ गई है, तो भी अहिंसापर से उनकी श्रद्धा नहीं उठी होगी, क्योंकि वह उनमें फरारीके सालोंमें सूक्ष्म और गहरे आत्म-निरीक्षणके बाद जागी थी।

सेवाग्राम, २९ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ७-६-१९४२

१९६. मतभेद वास्तविक हैं

आपने अंग्रेजोंको एशियाके अपने सभी अधिकृत देशोंसे या कमसे-कम हिन्दुस्तानसे विदा होने की हालमें ही जो सलाह दी है[4] वह हिन्दुस्तानके

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए "पत्र: वल्लभभाई पटेलको", पृ० १५७-५८।

३. देखिए "अहिंसक व्यायाम संघ", पृ० ८४।

४. देखिए "हर ब्रिटेनवासीसे", पृ० १०८-११।

अधिकांश लोगोंकी व्यापक परन्तु अपरिभाषित इच्छाके अनुरूप ही है। ठीक या गलत इस इच्छाके पीछे भावना यह है कि अगर अंग्रेज धुरी-राष्ट्रोंके विरुद्ध लड़ाईके लिए हिन्दुस्तानको अपना शस्त्रागार न बनायें तो जापानके पास शायद हमपर चढ़ाई करने का कोई सबल कारण न रहे और वह चढ़ाई न करे। फर्ज कीजिए, अंग्रेजोंने यह बात मान ली तो आप यह तो नहीं मान सकते कि फिर जापान हमपर किसी भी सूरतमें चढ़ाई करेगा ही नहीं। ज्यादा सम्भव यही है कि वह चढ़ाई करे, और मैं तो निश्चित रूपसे मानता हूँ कि वह करेगा, और कुछ नहीं तो हमारे विपुल भौतिक साधनोंपर कब्जा करने और उन्हें अपने दुश्मनके खिलाफ इस्तेमाल करनेके लिए ही करेगा। ऐसी हालतमें आपने हमें उसका अहिंसक प्रतिरोध करनेकी सलाह दी है। लेकिन अंग्रेज तो (जैसे आज बर्मा, स्याम, इण्डोचाइना और अधिकृत यूरोपपर हवाई-हमलों द्वारा कर रहे हैं, वैसे ही) तब भी हिन्दुस्तानमें अपने शत्रुके विरुद्ध युद्ध जारी रखेंगे, और कहेंगे कि केवल युद्धकी आवश्यकतासे वे मजबूर हैं। अगर युद्ध करनेवाले अपने झगड़ेका फैसला करनेके लिए आपके तरीकेको स्वीकार कर लें तो ये सब मुसीबतें टल सकती हैं। परन्तु इसकी न तो मुझे और न ही आपको कोई निकटस्थ सम्भावना नजर आती है। इस बीच हमारे देशमें युद्ध चलता रहेगा, क्योंकि दोनों पक्ष कहेंगे कि उनके लिए विरोधीको उसकी फौजी कार्रवाईमें मदद हासिल करनेसे रोकना अत्यावश्यक है। नतीजा यह होगा कि हमें यातना भोगनी होगी। आक्रमणकारीके विरुद्ध हमारा अहिंसक प्रतिरोध भी हमारे आजके शासकोंको आसमानसे मौत और बरबादी की वर्षा करनेसे न रोक सकेगा। बेशक वह बम-वर्षा की तो जायेगी शत्रुके खिलाफ, पर सब हमारी धरतीपर और बिलकुल हमारे सिरोंपर होगी। आक्रमणकारीके विरुद्ध एक राष्ट्रव्यापी प्रतिरोध संगठित करनेका राजाजी का प्रयत्न, फिर चाहे इसके लिए हमें अंग्रेजी सेनाके साथ सहयोग ही क्यों न करना पड़े, शायद देशको इस निरर्थक यातनासे बचानेके ही लिए है। उनके तरीकेमें भी कष्ट-सहन तो करना पड़ेगा, परन्तु क्योंकि उसका एकमात्र उद्देश्य आक्रमणकारीसे देशकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करना होगा, इसलिए क्या जनता ज्यादा उत्साह और खुशीसे उसके लिए तैयार न होगी? हो सकता है, राजाजी यह भी महसूस करते हों कि पारस्परिक सहयोगकी उस वास्तविक कार्यवाहीके दौरान और उसके फलस्वरूप इधर तो स्वतन्त्रता हासिल करनेके लिए हमारी शक्ति बढ़ जायेगी और उधर अंग्रेजोंको हमारी उस शक्तिका वास्तविक अनुभव होगा और उन्हें खुद लगने लगेगा कि हिन्दुस्तानकी आजादी की माँगसे इनकार करनेसे अब बिलकुल काम न चलेगा। . . . मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे बतायें कि क्या मेरा यह विश्लेषण ठीक है, और

अगर है तो क्या इससे यह प्रकट नहीं होता कि संकटकी इस घड़ीमें आपके और राजाजी के बीच मौलिक मतभेद है। ऐसी हालतमें बगैर यातना सहे इस संकटमें से निकलने का सच्चा और अच्छा रास्ता देशको अकेले आप ही बता सकते हैं।

यह एक मित्रका, जो मेरे और राजाजी के राजनीतिक मतभेदको मिटाने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं, बड़ा ही तर्क-संगत पत्र है। परन्तु यह बात झूठमूठके दिखावेसे नहीं हो सकती। उससे तो उलटा हमारा देश गलत रास्तेपर पड़ेगा और न तो उनका और न ही मेरा तात्कालिक हेतु सिद्ध होगा। हम दोनोंके हृदयमें देश-प्रेमकी एक-सी ही तीव्र लगन है। परन्तु इस समय हम दोनोंकी देश-सेवाकी रीतियोंमें उत्तर-दक्षिणका अन्तर आ गया है। वे ब्रिटिश सहायतासे जापानी हमलेके खतरेका मुकाबला करने में विश्वास करते हैं। मेरी मान्यता यह है कि अन्तमें यह असम्भव सिद्ध होगा। हिंन्दुस्तान अंग्रेज़ोंका अपना वतन नहीं है। अगर दुश्मन उनपर हावी हो जाये और उनके पास पर्याप्त सुविधाएँ हों तो वे हरएक अंग्रेज स्त्री-पुरुष और बच्चेको लेकर यहाँसे चले जायेंगे, जैसा कि उन्होंने सिंगापुर, मलाया और रंगूनमें किया। इसमें उनपर या उनकी बहादुरीपर कोई आक्षेप नहीं है। कोई भी सेना ऐसी परिस्थितिमें ऐसा ही करेगी। परन्तु ज्यादा सम्भावना यही है कि अंग्रेज हिन्दुस्तानी सेनाको अपने साथ नहीं ले जायेंगे, बल्कि उससे यह आशा रखेंगे कि वह अपने ही बल-बूतेपर लड़ाई जारी रखे। बेशक, अगर उनसे बन पड़ा तो वे जापानी सेनाको बाहरसे परेशान करने की कोशिश करेंगे। इस तरह जिस स्थितिकी रूपरेखा मैंने रखी है और जिस परिस्थितिकी कल्पना इन सज्जनने अपने पत्रमें की है, उनमें कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। केवल मेरी योजनामें अंग्रेजोंके यहाँसे इस तरह व्यवस्थित रीतिसे हट जाने की कल्पना की गई है जैसे वह एक पूर्वचिन्तित सैनिक कार्यवाही हो। इससे जहाँतक हम देख सकते हैं, करोड़ों हिन्दुस्तानियोंका दिल खुश हो जायेगा और आज घृणाके पात्र अंग्रेज सम्मानित मित्र और सहयोगी बन जायेंगे। वे अपने सहयोगियों — हिन्दुस्तानियोंके साथ मिलकर उसी तरह लड़ाई चला सकेंगे जैसे कि आज चीनियोंके साथ मिलकर चला रहे हैं। सारी परिस्थिति स्वाभाविक रूप धारण कर लेगी, और अंग्रेजोंको तथा हमें एक जबरदस्त ताकत अपने-आप मिल जायेगी। इससे ब्रिटेनको जो नैतिक प्रतिष्ठा मिलेगी, वह अलग।

अब रही साम्प्रदायिक एकताकी बात, तो तीसरे पक्षके यहाँसे बिदा होने के साथ ही वह निश्चित रूपसे ऐसे आयेगी जैसे रातके बाद प्रभात आता है। एकता स्वतन्त्रतासे पहले नहीं, उसके बाद ही आयेगी। आज तो हम यह भी नहीं जानते कि मुस्लिम लीग और कांग्रेसका ध्येय एक है। और स्वतन्त्रताके लिए लीगका सहयोग रिश्वतसे नहीं खरीदा जा सकता। या तो लीग यह मानती है कि हिन्दुस्तान मुसलमानोंका भी वैसा ही वतन है जैसा कि गैर-मुसलमानोंका, या वह यह बात नहीं मानती। अगर वह यह मानती है तो यह जरूरी है कि बँटवारेसे पहले वह उसे गुलामीसे छुड़ाये। आज हमारा है ही क्या जिसका हम बँटवारा करें? अपने वतनको

विदेशी सत्तासे मुक्त करने के बाद, अगर लीग चाहे तो बँटवारेकी माँग कर सकती है और उस माँगकी पूर्ति बातचीत अथवा बल द्वारा करवा सकती है। परन्तु अगर वह हिन्दुस्तानको मुसलमानोंका वतन मानती ही नहीं तो उसके साथ हिन्दुस्तानको गुलामीसे मुक्त करने के सवालपर बातचीत करने की बात ही नहीं उठती।

मेरी रायमें, राजाजी की योजना बिलकुल अस्वाभाविक है। वे ब्रिटिश सत्तापर अपने-आपको लादना चाहते हैं, जब कि ब्रिटिश सत्ता उन्हें नहीं चाहती; क्योंकि बतौर विजेताके वह तो आज हमारे देशपर सवार है और उसे जो चाहिए, सो यहाँसे मिल सकता है। ब्रिटिश सत्तापर अपने-आपको लादने के लिए राजाजी लीग को आत्मनिर्णयका अधिकार देते हैं, जब कि यह अधिकार तो प्रत्येक व्यक्तिको है, और किसी दूसरेकी स्वीकृति या अस्वीकृतिपर आधारित नहीं है। राजाजी को खुद बँटवारा पसन्द नहीं है और वे इस मान्यताको पाले हुए हैं कि एक जन्मसिद्ध अधिकारकी अनावश्यक स्वीकृतिसे वे देशको बँटवारेसे बचा सकेंगे।

मैं पत्र-लेखकको सलाह दूँगा कि वे हमारे मतभेदसे चिन्तित न हों। हम एक-दूसरेको इतना जानते हैं और हमारे बीच इतना प्रेम है कि गलती चाहे मेरी तरफसे हो या उनकी तरफसे, समय उसे अपने-आप सुधार देगा। इस बीच इन मतभेदोंको साफ-साफ और हिम्मतके साथ स्वीकार करने और इनके सही मर्मको समझ लेने से हम लोकमतको ठीक तरह शिक्षित कर सकेंगे। हमें जिस चीजसे बचना चाहिए, वह तो है क्रोध और असहिष्णुता। एक-दूसरेको ठीक-ठीक समझने में यही सबसे बड़ी बाधाएँ हैं।

सेवाग्राम, २९ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-६-१९४२

१९७. जोधपुर[1]

जोधपुरसे खबर मिली है कि श्री जयनारायण व्यास इसलिए गिरफ्तार कर लिये गये हैं कि उन्होंने महाराजा साहबके साथ मुलाकात माँगने की हिम्मत की थी और जोधपुरमें उत्तरदायी सरकारके लिए आन्दोलन जारी रखने का अपना इरादा जाहिर किया था।[2]

जाहिर है कि श्री जयनारायण व्यासके लिए इसके सिवा और कोई दूसरा रास्ता न था। जोधपुरके कार्यकर्त्ताओंको ईश्वर सफलता दे। परन्तु मुझे आशा है कि उन्होंने यह अच्छी तरह समझ लिया होगा कि उनको अपनी नाव अकेले ही खेनी

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
२. देखिए पृ० ९२-९३।

होगी। हिन्दुस्तानके सभी हिस्सोंसे उन्हें सहानुभूति तो खूब मिलेगी, लेकिन कोरी सहानुभूतिसे उन्हें कुछ मदद नहीं मिलेगी। उनका अपना दृढ़ संकल्प और अविचल साहस ही उनकी मदद करेगा।

सेवाग्राम, ३० मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-६-१९४२

१९८. प्रश्नोत्तर

प्र० : क्या यह सच है कि इंग्लैण्ड और जापानके प्रति आपका हालका रुख इस मान्यतासे प्रभावित हुआ है कि अंग्रेजों और मित्र-राष्ट्रोंकी इस युद्धमें हार होनेवाली है? इस सम्बन्धमें आपके लिए अपनी स्थिति साफ कर देना जरूरी है। कांग्रेसके एक बड़े नेताका ऐसा ही खयाल है। वे कहते हैं कि उन्हें इस बारेमें जरा भी शक नहीं है, क्योंकि आपके साथ खुद बातचीत करके उन्हें यह मालूम हुआ है।

उ० : मैं चाहता हूँ कि आपने उस नेताका नाम भी बताया होता। परन्तु वे कोई भी हों, मुझे यह कहने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं है कि यह बात सच नहीं है। इसके विपरीत, मैंने तो अभी-अभी '*हरिजन*' में लिखा है कि अंग्रेजोंको हराना कोई आसान बात नहीं है। हार किस चीजका नाम है, यह उन्होंने कभी जाना ही नहीं। अमेरिकियोंके सम्बन्धमें मेरी राय आपको इसी अंकमें '*सन्डे डिस्पैच*' पत्रको दिये गये मेरे उत्तरसे मालूम होगी।[1] उससे उन 'नेता' की बातका खण्डन होता है। इसलिए या तो उन नेताने मुझे या आपने उन नेताको समझने में भूल की है। लेकिन मैं तो पिछले बारह महीने से अधिक समयसे अपनी बातचीतके दौरान यह कहता आया हूँ कि इस युद्धका अन्त किसी भी पक्षकी निर्णायक जीत में नहीं होनेवाला है। शान्ति तभी होगी जब दोनों पक्ष थककर चूर हो जायेंगे। परन्तु यह केवल मेरी अटकल है। सम्भव है कुदरत ब्रिटेनकी मदद करे। धीरज रखने में उसका कुछ बिगड़ता नहीं। और अमेरिका जैसा राष्ट्र उसका मित्र होने से अपार भौतिक साधनों और वैज्ञानिक कुशलताका लाभ उसे मिल रहा है। धुरी राष्ट्रोंमें से किसीको यह सुविधा प्राप्त नहीं है। इसलिए युद्धके परिणामके बारेमें मेरी कोई निर्णायक राय नहीं है। परन्तु मेरे लिए निर्णायक बात यह है कि मैं स्वभावसे ही निर्बलका पक्ष लेता हूँ। परेशान न करने की मेरी नीति मेरे इस स्वभावपर ही आधारित है और वह आज भी कायम है। ब्रिटेनको यहाँसे हट जाने का जो सुझाव मैंने रखा है, वह जितना हिन्दुस्तानके हितमें है उतना ही ब्रिटेनके हितमें भी है। आपकी कठिनाईका कारण यह है कि आप यह मानने को तैयार नहीं हैं कि ब्रिटेन कभी अपनी खुशीसे

१. देखिए "तार: '*सन्डे डिस्पैच*' को", पृ० १८१।

न्याय कर सकता है। लेकिन अहिंसाकी शक्तिमें मेरा विश्वास है, इसलिए मैं इस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं कर सकता कि मनुष्य-प्रकृति कभी बदल ही नहीं सकती।

सेवाग्राम, ३० मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-६-१९४२

१९९. अन्न सुलभ करने का मार्ग

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटीके समाज-सेवा विभागके अवैतनिक मन्त्रीके पत्रका कुछ अंश नीचे दिया जाता है:

> आज खाद्य पदार्थोंके अकालका भयंकर संकट हमारे सामने है। हम "अधिक अन्न उपजाओ" की काफी बातें सुनते हैं, और इसमें शक नहीं कि यह एक सही कदम है। लेकिन मेरी तुच्छ रायमें हमारे नेताओंने अपने देशमें खाद्य-सामग्री मुहैया करने के एक खासे बड़े स्रोतपर पूरा-पूरा ध्यान नहीं दिया है। अगर इसको हम काममें ला सकें तो भूखसे पीड़ित ५० लाख देशवासियोंका पेट भर सकते हैं। मेरा मतलब खाद्य पदार्थोंके उस जबरदस्त अपव्ययसे है जो सुबह-शाम खाने के समय और खुशी तथा त्योहारके मौकों पर हम सब करते हैं। इस तरह जो खाद्य सामग्री कूड़े-करकटके ढेरोंमें फेंक दी जाती है, वह सब मिलकर हमारे ५० लाख देशवासियोंको आधा पेट खाकर जीने की स्थायी स्थितिसे बचाने के लिए काफी होगी। कलकत्ताकी गलियों में से गुजरते हुए यह देखकर मुझे सख्त धक्का लगा कि हमारे ही भाई-बहन कूड़े-करकटके ढेरमें से सड़े हुए खाद्य पदार्थ बीन-बीनकर खाते हैं। यह दिल दहला देनेवाला दृश्य, जो हमारे राष्ट्रके लिए लांछन ही कहा जा सकता है, रात-दिन मेरी आँखोंके सामने नाचता रहा है; यहाँतक कि घरपर खाना खाते वक्त मुझे लज्जा आती रही है।

आगे चलकर मन्त्री मुझसे यह भी कहते हैं कि पत्रमें जो योजना सुझाई गई है, उसके प्रचारके लिए एक अभियान संगठित करने के आप उपाय और तरीके सुझायें। उनकी योजनाकी मैं शौकसे सिफारिश कर सकता हूँ। युद्धरत सभी देशोंमें खाने-पीने का जो सामान लोगोंको मिलता है, वह इतना कम कर देना पड़ा है कि वहाँ उसका अपव्यय होने की बहुत गुंजाइश ही नहीं रह जाती। हमारे देशमें ऊपरसे देखने में प्रतीत यही होता है कि इन देशों-जैसी नौबत यहाँ नहीं आई है। परन्तु वस्तुतः जो अपव्यय सचमुच बहुत भारी है, वह सिर्फ शहरोंके कुछ लोगों द्वारा ही होता है। करोड़ों लोग तो बराबर आधा पेट खाकर ही जी रहे हैं। उनकी सारी जिन्दगी ही मानो युद्ध-कालमें बीत रही है। दिन हो या रात, उन्हें भरपेट खाना मिलता ही

नहीं। जिनके पास गुंजाइश नहीं है उनपर युद्धके कारण क्या बीत रही है, यह बताया नहीं जा सकता, मात्र कल्पनासे ही जाना जा सकता है।

मन्त्रीने जो सुझाव दिया है वह ध्यान देने योग्य है। खाने-पीने के सामानके अपव्ययके विरुद्ध तमाम शहरोंमें आसानीसे अभियान संगठित किया जा सकता है। हरएक गृहस्थको, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, यह ज्ञान होना ही चाहिए कि अन्नको बेकार जाने से कैसे रोका जाये। इसमें त्यागकी कोई बात नहीं है, सिर्फ गरीबके प्रति दया-भावका सवाल है। इस तरह जितनी खाद्य सामग्री बचेगी, उतनी मानो हम बिना परिश्रमके पैदा कर लेंगे। इस विषयपर हमें साहित्य तैयार करना होगा। वह बहुत विस्तृत नहीं होना चाहिए। सिर्फ पर्चोंसे काम चल सकता है। उनमें बहुत तर्क-वितर्ककी भी जरूरत नहीं है। हमें तथ्यों और आँकड़ों द्वारा नागरिकोंको बताना चाहिए कि वे खाने-पीने का कितना सामान बेकार करते हैं और उसे कैसे रोका जा सकता है। हमारा यह अन्धविश्वास कि अमीरोंके थाल खाद्यपदार्थोंसे भरे-पूरे होने चाहिए, जिससे कि काफी जूठन बचे, बहुत ही भयंकर है और इसे तुरन्त मिटना चाहिए। घर हो या होटल, थालीमें ढेर-सारी जूठन छोड़ना कुसंस्कारका चिह्न समझना चाहिए। खाना उतना ही परोसना चाहिए जितने की आवश्यकता हो। अगर वे तमाम लोग जिन्हें थालीमें ढेर-सारा भोजन लगवाकर उसे सिर्फ चखकर छोड़ देने की बुरी आदत पड़ गई है ऊपर बताये गये इस स्वस्थ नियमका पालन करें तो जरूरतमन्द लोगोंमें बाँटने के लिए अच्छी मात्रामें खुराक बचाई जा सकती है। मैं समझता हूँ कि मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी इस कार्यका संगठन आरम्भ करने के लिए सबसे उपयुक्त संस्था है, क्योंकि उसे समाज-सेवाका बहुत तरहका और प्रचुर अनुभव है। यद्यपि यह समस्या सभी शहरोंमें करीब-करीब एक-सी है तो भी लोगोंकी आदतोंमें अन्तर होने के कारण हर शहरमें इसका रूप कुछ विशिष्ट भी होगा। इसलिए मेरा सुझाव है कि यह काम कलकत्तासे ही आरम्भ हो। वहाँ जो अनुभव मिले उसका उपयोग इस सेवाके कार्यक्षेत्रको बढ़ाने में हो सकता है। कलकत्तामें इस कार्यके संगठनमें एक सप्ताहसे ज्यादा नहीं लगना चाहिए। यह साफ है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण और अत्यावश्यक कामके लिए अपनी शक्तिको एक जगह केन्द्रित करने की और बड़ी संख्यामें स्वेच्छासे काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओंकी जरूरत होगी।

सेवाग्राम, ३० मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-६-१९४२

२००. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

३० मई, १९४२

चि० सुशीला और मणिलाल,

लगता है तुम दोनों वहाँ अकेले पड़ गये हो। अच्छा है। इस स्थितिमें भी सुख मान सको तो काफी है। अनेक बार अकेले रह जानेमें जो मजा आता है, वह कई लोगोंको साथ लेकर चलनेमें नहीं आता, क्योंकि तब अनिच्छासे भी किसी भिन्न दिशामें खिच जानेका भय रहता है। तुम सब अपनी तबीयत सँभालो और कुशल-से रहो तो बस मुझे सन्तोष होगा।

यहाँ सब कुशलसे हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४९३०) से

२०१. पत्र : विजया म० पंचोलीको

३० मई, १९४२

चि० विजया,

तुझे मेरे पत्र नहीं मिले, इसके लिए मैं बिलकुल जिम्मेदार नहीं हूँ। तू डाक विभागसे झगड़ या फिर बर्दाश्त कर। मैंने तुझे पत्र अवश्य लिखे हैं। आम खानेमें मुझे कोई हर्ज नहीं मालूम होता। अच्छी गायका ताजा दूध अथवा मीठा (कुदरती मीठा) दही लिया जा सकता है। मिकदारसे मक्खन खाना चाहिए। बच्चा पेटमें हो तो माँको दूध, मक्खन, साग-भाजी और फल खाने ही चाहिए। आमोंके मौसममें आम खाये जा सकते है, फिर चाहे वे थोड़े खट्टे ही हों। किसी भी रीतिसे हो, २० ग्रेन सोडा पेटमें जाने देना। दौड़-धूप नहीं करनी चाहिए। चलना-फिरना जरूर चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

श्री विजयाबहन
ग्राम दक्षिणामूर्ति
आँबला, बरास्ता सोनगढ़
काठियावाड़

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७१४७)से। सी० डब्ल्यू० ४६३९ से भी; सौजन्य : विजया म० पंचोली

२०२. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेवाग्राम
३० मई, १९४२

चि० कृ० चं०,

इतनी अधिराई क्यों? मेरे पर कामका वोझ कितना होगा? और तुम्हारे खत मुझे भ्रममें डाल रहे हैं। तुम्हारे दुःख और अशांतिके जड़में तुम्हारा चि० के प्रति अनादर पाता हूं। उसका औषध मेरे कुछ भी लिखने से नहीं होनेवाला है। इसका औषध तो तुम्हारे ही हाथमें है। अगर चि० मूर्ख है और तुम्हारी दृष्टिमें ऐसे ही है तो उसकी एक भी वात तुमसे वरदाश्त नहीं होगी। यह वातका क्या किया जाये? तुम ही कहो।

वापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४२९) से

२०३. तिहरी दुःखद स्थिति[1]

'नेशनल हेरल्ड' सिर्फ एक समाचार-पत्र ही नहीं, वल्कि एक संस्था है। इसके संचालक-मंडलके सदस्योंका इसमें कोई व्यक्तिगत स्वार्थ या आर्थिक हित नहीं है। इसकी स्थापना जवाहरलाल नेहरूने की है। केवल हिन्दुस्तान ही एक ऐसा देश है जहाँ ऐसे प्रतिष्ठित पत्रकी जमानत जब्त हो सकती है। असलमें तो इससे जमानत[2] ली ही क्यों जाये? सरकारको अपने युद्ध-प्रयत्नमें उसकी जितनी मदद मिल सके, उस सवकी दरकार है। उसके इक्के-दुक्के वाक्योंको वास्तविक प्रसंगसे अलग करके उसने उनका नाजायज फायदा भी उठाया है। वहरहाल आखिर सरकार अपनी दमन-नीतिसे किस वातकी आशा रखती है? इस जमानत-जब्तीको संयुक्त प्रान्तके भूतपूर्व मन्त्री, कांग्रेस के संगठनकर्त्ता और 'नेशनल हेरल्ड'के निदेशक रफी अहमद किदवईकी गिरफ्तारी और नजरवन्दीके साथ मिलाकर देखिए। फिर इन दोनों कारंवाइयोंके साथ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके दफ्तरकी मनमानी और करीव-करीव वेहूदा तलाशीको देखिए तो इस दुःखद स्थितिकी पूरी तसवीर आँखोंके सामने खड़ी हो जाती है। मेरी रायमें

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

२. नेशनल हेरल्ड के मुद्रक और प्रकाशकसे लखनऊके जिला मजिस्ट्रेटने ६,००० रुपये नकद की जमानत माँगी थी।

यह तिहरी कार्रवाई राष्ट्रीय युद्ध-प्रयत्नके रास्तेमें एक बड़ी रुकावट है। यह जापानको हिन्दुस्तानमें पधारने का निमन्त्रण देने-जैसी दीवानी हरकत है। मैंने विदेशी सरकारको राष्ट्रके हकमें — यह राष्ट्र चाहे जो हो — यहाँसे विदा होने की जो मैत्रीपूर्ण सलाह दी है, उसका औचित्य इससे सिद्ध हो जाता है। इसके लिए अलबत्ता दिलेरीकी जरूरत है; इसमें खतरा तो है ही। परन्तु अंग्रेज जोखिम उठाने की इतनी सामर्थ्य रखते हैं जितनी कि बहुत कम लोग रखते हैं। उन्हें चाहिए कि जोखिम उठाने की मेरी सलाहको वे स्वीकार करें। तब वे देखेंगे कि वही उनका सबसे बड़ा युद्ध-प्रयत्न होगा। जहाँतक हिन्दुस्तानका सवाल है, अगर कोई चीज स्थितिको बचा सकती है तो सिर्फ वही। इस दिशामें उनका पहला कदम यह होना चाहिए कि जब्तीके हुक्मको रद्द करें, रफी साहबको रिहा करें और अ० भा० कां० कमेटीके दफ्तरसे लिये गये कागजात लौटा दें।

सेवाग्राम, ३१ मई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-६-१९४२

२०४. पत्र : मीराबहनको

सेवाग्राम, वरास्ता वर्धा, म० प्रा०
३१ मई, १९४२

चि० मीरा,

तुम्हारा बहुत ही पूर्ण और ज्ञानप्रद पत्र मिला। भेंटकी[1] रिपोर्ट अनिंद्य है और तुम्हारे उत्तर सीधे, स्पष्ट और साहसपूर्ण थे। ऐसा कुछ नहीं है जिसकी मैं आलोचना करूँ। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि 'जो कर रही हो किये जाओ।' मैं यह बिलकुल समझ रहा हूँ कि तुम ठीक वक्तपर ठीक जगह गई हो। इसलिए मैं और कुछ न करके सीधे तुम्हारे प्रश्नोंपर ही आऊँगा। प्रश्न सब अच्छे और उपयुक्त हैं।

१. मीराबहन, जो उन दिनों उड़ीसामें थीं, बापूज लेटर्स टु मीरा में लिखती हैं: "तत्कालीन सलाहकार मण्डलके दो अंग्रेज अधिकारियोंसे मेरी भेंट हुई थी। हमें इस तथ्यकी जानकारी थी कि जापानियोंके आने का समाचार मिलते ही सरकारी अधिकारी चालीस-पचास मील भीतर पहाड़ोंपर चले जायेंगे और जो फाइलें वे अपनी मोटर गाड़ियोंमें नहीं ले जा सकेंगे वे जला दी जायेंगी तथा सभी पुल उड़ा दिये जायेंगे। इसलिए भेंटमें मेरा उद्देश्य उनसे यह प्रार्थना करना था कि वे प्रशासन-तन्त्र हमारे हाथोंमें सौंपकर व्यवस्थित रीतिसे पीछे हटें। विशेष रूपसे मैंने उनसे यह अनुरोध किया कि वे जेलोंकी चाबियाँ हमें सौंप दें और असैनिक अस्पतालोंसे डॉक्टर और औषधियाँ आदि न ले जायें।"

(१) मेरे खयालसे हमें लोगोंको बता देना चाहिए कि उन्हें क्या करना है। वे अपनी शक्तिके अनुसार करेंगे। अगर हम उनकी शक्तिका अन्दाज लगाकर उसके अनुसार निर्देश देंगे तो हमारे निर्देश दुविधापूर्ण और हमारे आदर्शसे हटकर होंगे। ऐसे वे हरगिज नहीं होने चाहिए। इसलिए तुम मेरी हिदायतोंको इस दृष्टिसे पढ़ना। याद रखो कि हमारा रवैया जापानी सेनाके साथ पूर्ण असहयोगका है। इसलिए हमें उन्हें किसी तरहकी कोई मदद नहीं देनी चाहिए और न उनसे लेन-देन करके फायदा उठाना चाहिए। इसलिए हम उन्हें कोई चीज बेच नहीं सकते। अगर लोग जापानी सेनाका सामना करनेमें असमर्थ होंगे तो वे वही करेंगे जो सशस्त्र सैनिक करते हैं, यानी जब अधिक शक्ति देखेंगे तो पीछे हट जायेंगे। और अगर वे ऐसा करते हैं तो जापानियोंके साथ किसी लेन-देनका सवाल ही नहीं उठता और उठना भी नहीं चाहिए। लेकिन अगर लोगोंमें जापानियोंका मरते दमतक मुकाबला करनेकी हिम्मत नहीं है और जापानियोंका जिस प्रदेशपर आक्रमण हो उसे खाली करनेका साहस और सामर्थ्य भी नहीं है तो वे इन हिदायतोंको ध्यानमें रखकर जो-कुछ उनसे हो सकता है सो करेंगे। एक बात उन्हें कभी नहीं करनी चाहिए — यानी खुशीसे जापानियोंकी बात मानना। यह कायरताका काम होगा और स्वतन्त्रता-प्रेमी लोगोंको शोभा नहीं देगा। उन्हें एक आगसे बचनेके लिए दूसरी आगमें, जो शायद अधिक भयंकर होगी, नहीं पड़ना चाहिए। इसलिए उनका रवैया तो सदा जापानियोंका विरोध करना ही होना चाहिए। इसलिए ब्रिटिश नोट या जापानी सिक्के स्वीकार करनेका सवाल ही पैदा नहीं होता। वे जापानियोंकी किसी चीजको हाथ नहीं लगायेंगे। जहाँतक हमारे अपने ही लोगोंके साथ लेन-देनका प्रश्न है, वे या तो चीजोंकी अदला-बदली करेंगे या जो ब्रिटिश सिक्के उनके पास होंगे उन्हें काममें लेंगे। वे यह आशा रखेंगे कि जो राष्ट्रीय सरकार ब्रिटिश सरकारका स्थान ले सकती है, वह अपनी शक्तिके अनुसार लोगोंसे सारे ब्रिटिश सिक्के स्वीकार कर लेगी।

(२) पुल बनानेमें सहयोग देनेके सवालका जवाब उपर्युक्तमें आ जाता है। इस तरहके सहयोगका कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

(३) अगर भारतीय सैनिकोंका हमारे लोगोंसे सम्पर्क हो और उनका सद्भाव हो तो हमें उनसे भाईचारेका बरताव करना चाहिए और उनसे यथासम्भव राष्ट्रका साथ देनेको कहना चाहिए। सम्भवतः उन्हें यह वचन देकर लाया गया है कि वे देशको विदेशी जुएसे छुड़ायेंगे। विदेशी जुआ नहीं रहेगा तो उनसे आशा रखी जायेगी कि वे जनताके मित्र बनें और ब्रिटिश सरकारकी जगह जो राष्ट्रीय सरकार कायम हो उसकी आज्ञा मानें। अगर अंग्रेज भारतीयोंके हाथोंमें सब-कुछ छोड़कर व्यवस्थित ढंगसे चले जायेंगे तो सारी बातें खूबीके साथ हो सकेंगी और जापानियोंके लिए भारत या उसके किसी भी हिस्सेमें शान्तिसे जमकर बैठना कठिन हो सकता है; क्योंकि उनका वास्ता ऐसी आबादीसे पड़ेगा जो दिलमें नाराज और मुकाबलेके लिए तैयार होगी। क्या-क्या हो सकता है, यह कहना कठिन है। अगर लोगोंको प्रतिरोधकी शक्ति जगानेकी शिक्षा दे दी जाये तो वह काफी होगा, भले ही सत्ता जापानियोंकी हो या अंग्रेजोंकी।

(४)[1] इसका जवाब (१)में आ गया है।

(५)[2] सम्भव है ऐसा अवसर ही न आये, पर अगर आया तो सहयोग किया जा सकता है और वह जरूरी भी होगा।

(६) रास्तेमें पड़े पाये गये शस्त्रास्त्रके बारेमें तुम्हारा उत्तर अत्यन्त आकर्षक और पूरी तरह तर्कसंगत है।[3] इसके अनुसार बरता जा सकता है। परन्तु यह कल्पना भी की जा सकती है कि वे भले आदमियोंको मिल जायें और ऐसे लोग सम्भव हो तो उन्हें सुरक्षित स्थानपर जमा रखें। अगर उन्हें जमा करके रखना और शरारती लोगोंसे बचाये रखना असम्भव हो तो तुम्हारी योजना आदर्श है।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]

बापूज लेटर्स टु मीरा, पृ० ३४१-४२। गांधीजीज कॉरेस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४, पृ० २५०-५१ भी

२०५. पुर्जा : पेरीन कैप्टेनको[4]

मई, १९४२

मैं तुरन्त रवाना नहीं हो सकता। यदि वे लोग यह जानने के बाद भी कि मैं हिन्दुस्तानी प्रचार-सम्बन्धी कार्यमें भाग नहीं ले सकता, मुझे रखना चाहते हैं और यदि उन लोगोंकी नीति हिन्दुस्तानीके विरुद्ध नहीं है तो मैं हिन्दुस्तानी प्रचारसभामें बना रहूँगा। मेरा मन्तव्य तो वर्षोंसे, अर्थात् इन्दौरमें हुए सम्मेलनसे, यह है कि उर्दू के बिना हिन्दी लंगड़ी है। मेरे कहने से इस आशयका प्रस्ताव भी पास किया गया था।[5] लेकिन मेरा खयाल है कि बादमें इस नीतिमें परिवर्त्तन कर दिय गया। अब यदि दोनों काम एक साथ किये जा सकें तो मैं करना चाहूँगा। और यदि न किये जा सकें तो अलगसे करना चाहूँगा। यदि उर्दू भी हिन्दीका ही एक अंग हो और है तो उसका त्याग नहीं किया जा सकता।

गुजरातीकी प्रतिकृतिसे : कुलसुम सयानी पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. प्रश्न था कि अंग्रेजोंके मोर्चा छोड़ देने के बाद मुद्राका क्या किया जाये।

२. प्रश्न था कि लड़ाईके बाद मृत और घायलोंकी सार-सँभालमें क्या जापानियोंके साथ सहयोग किया जा सकता है।

३. मीराबहनने कहा था कि मेरा मन तो यही कहता है कि उन्हें ले जाकर समुद्रमें डुबो दिया जाये।

४. यह पेरीन कैप्टेनके नामसे, जो उस समय हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की अवैतनिक सेक्रेटरी थीं, १-८-१९४९ को जारी की गई एक पुस्तिकामें प्रकाशित हुआ था।

५. देखिए खण्ड १४, पृ० २८४-८५।

२०६. गुजरातमें हरिजनोंके लिए पानी[1]

गुजरातमें अस्पृश्यताका जो भयानक रूप देखने को मिलता है, वह उस मात्रामें और कहीं नहीं दिखाई देता। जहाँ हरिजनोंको पानी तक नहीं मिलता, वहाँ मनुष्य की निर्दयता कितनी विकराल होगी! इस निर्दयताके परिणामको थोड़ा हलका करने का प्रयत्न हरिजन सेवक संघ कर रहा है। भाई परीक्षितलालने उसका जो संक्षिप्त विवरण भेजा है उसे मैं नीचे दे रहा हूँ।[2]

सचमुच यह काम मुट्ठी-भर हरिजन-सेवकोंका ही नहीं होना चाहिए। यह तो शुद्ध मानवताका काम है। इसमें धनवान लोग बस जीभ हिलाकर और अपनी तिजोरी में हाथ डालकर जगह-जगह कुएँ खुदवा सकते हैं और गरीबोंकी आँतें ठंडी कर सकते हैं। धर्मकी गति मन्द होती है, यह तो मालूम है। लेकिन यहाँ तो मन्दसे मन्दतर मालूम होती है।

इस मन्दताका अनुमान कैसे कराया जाये!

सेवाग्राम, १ जून, १९४२

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, ७-६-१९४२

२०७. कराड़ीमें खादीका उत्पादन और शिक्षा

कराड़ीमें भाई दिलखुश दीवानजी बरसोंसे शान्तिपूर्वक खादीका काम और उसके द्वारा शिक्षाका काम कर रहे हैं। उन्होंने उसका रोचक विवरण मुझे भेजा है, जो मैं नीचे दे रहा हूँ।[3]

यह विवरण किसी प्रकारकी आलोचना अथवा प्रशंसाकी अपेक्षा नहीं रखता। पाठक इसे ध्यानपूर्वक पढ़ें और इसका अनुकरण करें।

सेवाग्राम, १ जून, १९४२

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, ७-६-१९४२

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

२. विवरणका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने लिखा था कि १९४१ के अन्त तक हरिजन सेवक संघने नये कुएँ खुदवाने तथा पुरानों की मरम्मत कराने में लगभग १,७०,००० रुपया खर्च किया। लेकिन उससे हरिजनोंकी समस्या हल नहीं हुई।

३. विवरणका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। उसमें कराड़ीके खादी-उत्पादन केन्द्रके कार्यकी सफलतामें छात्रोंके योगदानकी चर्चा थी। कई छात्र कताईके पारिश्रमिक से अपनी पढ़ाई का खर्च चलाते थे, और कुछ बहुत गरीब छात्र परिवारकी आय बढ़ाने में अपने माता-पिताकी सहायता तक करते थे।

२०८. पत्र : अमृतलाल चटर्जीको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
१ जून, १९४२

प्रिय अमृतलाल,

तुम्हारा पत्र साफ है। मैं अब आभाको राजकोट भेज रहा हूँ। यदि वे दोनों एक-दूसरेके प्रति एकनिष्ठ रहते हैं तो वे आभाकी उम्र विवाह-योग्य हो जाने पर विवाह कर लेंगे। मैं समझता हूँ कि वह यहाँकी अपेक्षा राजकोटमें ज्यादा खुश रहेगी। जो भी हो, मैं तो देख-भालसे मुक्त हो जाऊँगा। और वीणाको बंगाली साथिन मिल जायेगी।

आशा है कि उथल-पुथलके इन दिनोंमें तुम अपनी ओरसे अच्छा काम कर रहे होंगे।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३४१) से। सौजन्य : अमृतलाल चटर्जी

२०९. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको

१ जून, १९४२

भाई विट्ठलदास,

तुम्हारा नया प्रयास सफल हो और तुम उसे पूरा करने के लिए बहुत जियो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९८०२) से

२१०. पत्र : प्रभावतीको

१ जून, १९४२

चि० प्रभा,

आजकल मैं तुझे या ऐसे किसी भी व्यक्तिको जो मुझे नहीं लिखता लिखने की स्थिति में नहीं हूँ। बड़ी मुश्किलसे थोड़ा-सा समय मिलता है।

जयप्रकाशके पत्र आते रहते हैं। अन्तिम पत्रमें समाचार था कि उसकी तबीयत ठीक हो रही है। मैंने कोई नई सूचना नहीं लिखी। इसीलिए तुझे पत्र नहीं दिया। नरेन्द्रदेव अभी यहीं हैं। बहुत शान्त हैं। उपचार बराबर करा रहे हैं। लाभ भी हो रहा है। कमजोरी है। शक्ति धीरे-धीरे आ रही है। दिनमें दो बार घूमने जाते हैं। नींद ठीक आती है। यहाँसे अभी जल्दी नहीं जायेंगे।

अपने स्वास्थ्यके विषयमें तुझे सावधानी रखनी चाहिए। अब तो तुझे वहाँसे पैसा मिलने में कोई मुश्किल नहीं होनी चाहिए। जब भी सुविधासे आ सके, आ जाना। तबीयत सुधारने के लिए तो आ ही सकती है, आना ही चाहिए। राजेन्द्र बाबू की सम्मतिसे बहुत-कुछ किया जा सकता है। चिन्ता बिलकुल मत करना।

अब तो वहाँ मौसम ठंडा होने लगा होगा न? यहाँ अभी गर्मी है। गर्म हवा चलती रहती है।

राजकुमारी शिमलामें है; वहीं रहेगी। अमतुस्सलाम यहीं है, ठीक है। बा प्रसन्न है। वसुमती यहीं है।

सुशीलाकी परीक्षा हो गई है। बहुत करके वह पास हो जायेगी। कुछ ही दिनोंमें उसे यहाँ आ जाना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५७५) से

२११. पत्र : प्रभावतीको

१ जून, १९४२

चि० प्रभा,

इसके साथ एक दुखी बहनका पत्र भेज रहा हूँ। उसे मैंने तुझसे मिलने की सलाह दी है। यदि वह तेरे पास आये तो उसका मार्गदर्शन करना। मैंने उसे जो पत्र दिया है वह माँगना और पढ़ लेना। मृदुला[1] कल आ रही है। खुर्शेदबहन यहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५७६) से

२१२. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
२ जून, १९४२

चि० अमृत,

लगता है, आजका दिन तो तुमने खाली जाने दिया। पहली बार कोई पत्र नहीं है।

यह पत्र तुम्हें यह बताने के लिए है कि सुशीलाने अपना इम्तहान पास कर लिया है। ईश्वरका अनुग्रह है! वह पास होने योग्य थी।

मृदुला और ढेबरभाई[2] यहीं हैं। अस्तु।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१२६) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७४३५ से भी

१. मृदुला साराभाई

२. सौराष्ट्रके कांग्रेसी नेता उ० न० ढेबर

२१३. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
२ जून, १९४२

प्रिय सी० आर०,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे इससे अधिक खुशी किसी चीजसे नहीं होगी कि तुम मेरे निकट नहीं बल्कि मैं तुम्हारे निकट आऊँ। मुझे लगता है कि वह समय आ गया है कि तुम अपने प्रचार-कार्यको आगे बढ़ाने से पहले यहाँ आओ और मेरा हृदय-परिवर्तन करो। हम दोनोंका एक-दूसरे पर इस तरह वाक्य-प्रहार करना भद्दा मालूम देता है। मेरी राय है कि हम दोनों आपसमें बातचीत करें। यदि तुम अपने सबसे अच्छे मित्रका, जिसके प्रेमपर तुम्हें सन्देह नहीं है, हृदय-परिवर्तन नहीं कर सके तो यह भारी दुःखकी बात होगी।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०९१५) से। सौजन्य : सी० आर० नरसिंहन्

२१४. पत्र : नागजीभाईको

सेवाग्राम
२ जून, १९४२

भाई नागजी,

तुमने तो बढ़िया दान दिया। संघको ऐसी इमारतकी जरूरत थी। लेकिन तुमसे तो मुझे बड़ा दान चाहिए, इसलिए केवल इस इमारतसे मेरा पेट भरनेवाला नहीं है। आशा है, तुम्हारा कामकाज खूब चल रहा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२५२) से

२१५. प्रश्नोत्तर

अगर वे आ जायें

प्र० : (१) अगर जापानी आ जायें तो हम अहिंसा द्वारा उनका मुकाबला किस तरह करें?

(२) अगर हम उनके हाथ पड़ जायें तो हमें क्या करना चाहिए?

उ०: (१) ये प्रश्न आन्ध्रदेशसे आये हैं, जहाँ लोग, सही या गलत, यह महसूस करते है कि हमला शीघ्र ही होनेवाला है। मैंने अपना उत्तर इन पृष्ठोंमें पहले ही दे दिया है। उन्हें हम न खाने-पीने का सामान देंगे, न रहने के लिए जगह, और न उनसे लेन-देनका कोई सम्बन्ध ही रखेंगे। उन्हें यह महसूस करा देना चाहिए कि हम उन्हें यहाँ बिलकुल नहीं चाहते। परन्तु मैं मानता हूँ कि व्यवहारमें ये बातें इतनी सीधी और आसान नहीं हैं जितनी इस प्रश्नसे और मेरे उत्तरसे लगती हैं। यह समझना कि जापानी मित्र-भावसे यहाँ आयेंगे, केवल एक अन्धविश्वास है। किसी भी आक्रमणकारीने आजतक यह नहीं किया। वे तो जहाँ जाते हैं, वहाँकी जनतापर मौत और तबाही बरसाते हैं; और जो-कुछ उन्हें चाहिए, लूट-खसोटकर ले लेते हैं। इसलिए अगर किसी जगह लोग प्रचंड आक्रमणका सामना न कर सकें और मरने से डरते हों तो उन्हें उस जगहसे चले जाना चाहिए, ताकि दुश्मन उनसे जबरदस्ती बेगार न ले सके।

(२) अगर दुर्भाग्यवश कुछ लोग बन्दी बना लिये जायें या दुश्मनके हाथ पड़ जायें तो हुक्म मानने से इनकार करने, यानी बेगार न करने पर वे गोलीसे उड़ा दिये जा सकते हैं। अगर बन्दी हँसते हुए मौतका सामना करते हैं तो वे अपना कर्त्तव्य पूरा कर देते हैं। इस तरह वे अपनी और अपने देशकी लाज बचा लेते हैं। अगर वे सशस्त्र मुकाबला भी करते तो भी इससे अधिक और क्या कर सकते थे? बहुत करते तो कुछ जापानियोंको कत्ल कर डालते और बदलेमें उनके भयंकर अत्याचारोंको बुलावा देते।

अगर हम जिन्दा पकड़ लिये जायें और शत्रु हमें अपने आदेश मनवाने के लिए अकल्पनीय यन्त्रणाएँ दे, तब अलबत्ता मामला ज्यादा पेचीदा हो जाता है। उस सूरतमें हम न तो उसकी यन्त्रणा और न ही उसके हुक्मके आगे सिर झुकायेंगे। उसका मुकाबला करते हुए हम शायद अपनी जान दे देंगे और अपने मानकी रक्षा करेंगे। लेकिन कहा जाता है कि दुश्मन हमें जान भी नहीं देने देगा, क्योंकि उसका उद्देश्य तो हमपर ज्यादासे-ज्यादा जुल्म करना है, जिससे कि दूसरे नसीहत लें। परन्तु मैं समझता हूँ कि जो व्यक्ति अमानुषी यन्त्रणाओंकी अपेक्षा मृत्युको

सचमुच अच्छा समझता है, वह इज्जतके साथ मरने का कोई-न-कोई रास्ता निकाल ही लेगा।

सेवाग्राम, ३ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १४-६-१९४२

२१६. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
३ जून, १९४२

चि० अमृत,

आज तुम्हारे दो पत्र मिले।

मैं जो-कुछ हो रहा है उसपर गौर तो करता ही हूँ। निश्चय ही बहुत-कुछ होगा। एक बड़ी व्यवस्था बिना काफी प्रयत्नके समाप्त नहीं होगी।

यहाँ अभी भी बहुत ज्यादा गर्मी है। हवाके बदलने का कोई लक्षण नहीं है। इस महीनेके अन्तसे पहले मैं तुम्हें बुलानेवाला नहीं हूँ। तुम्हें इधरकी किसी बातकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।

आभा राजकोट, लक्ष्मी अपने पतिके पास और वसुमती अहमदाबाद जा रही है।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१२७)से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७४३६ से भी

२१७. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
३ जून, १९४२

प्रिय० सी० आर०,

मैं देखता हूँ कि तुमने मेरे विरुद्ध मेरा ही उद्धरण देकर मुझे जवाब दे दिया है।[1] आशा है कि तुम्हें मेरा कलका पत्र मिला होगा। यदि तुम जितना

१. चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने कोयम्बटूरमें एक भाषणमें कहा था कि क्रिप्स प्रस्तावकी असफलता का कारण प्रतिरक्षाका सवाल नहीं, बल्कि कुछ दूसरे ही मुद्दे थे। यह भाषण सम्भवतः गांधीजी के लेख "राजाजी के विषयमें", पृ० १५९-६० के जवाबमें था।

मैं दे रहा हूँ उससे ज्यादा कुछ नहीं दे रहे हो तो फिर मेरे वक्तव्यका स्वागत क्यों नहीं हुआ? लेकिन यदि हम दोनोंका आशय एक ही था तो तुम लीगसे एक वक्तव्य क्यों नहीं ले लेते? तुम अब कायदे-आजमके पास क्यों नहीं जाते और उनसे पूरी बातपर चर्चा क्यों नहीं कर लेते? और मेरे कलके प्रस्तावपर विचार करना। जो भी हो, मैं अब समाचारपत्रोंमें तुम्हारे साथ और वाक्युद्ध नहीं करूँगा।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०८७) से

२१८. पत्र : अम्बालाल साराभाईको

३ जून, १९४२

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मिला। पत्रके अनुसार मैंने आपका चेक स्वीकार करने की बात रामेश्वरदासजी को लिख दी है। हमारे बीच कोई गलतफहमी नहीं थी। जो गलतफहमी पैदा हुई है वह अंग्रेजी भाषाके उपयोगके कारण हुई है। आपके २२ मई, १९४२ के पत्रका पहला भाग तो बिलकुल ठीक है। गुरुदेव-स्मारक एन्ड्रचूज-स्मारकके समान होना चाहिए। इसके आगे आप कहते हैं कि गुरुदेव-स्मारक एन्ड्रचूज-स्मारकसे भिन्न रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कीर्तिके अनुरूप ही होना चाहिए और उसका सारा बन्दोबस्त मुझे करना चाहिए। सारा स्मारक ५,००० रुपयेमें कैसे बन सकता है? यह काम भला मैं कैसे कर सकता हूँ? एन्ड्रचूज-स्मारकका अर्थ हुआ शान्तिनिकेतनमें सुधार और परिवर्त्तन करना, और यही गुरुदेव-स्मारक भी होगा। यह एक अलग चीज है और आपने जिसकी इच्छा व्यक्त की है वह दूसरी चीज है। यह सम्भव है कि मैंने जो बात कही थी वही आपके मनमें भी थी और उसे आप अंग्रेजीमें ठीक तरहसे नहीं कह पाये। मैंने आपके अंग्रेजी पत्रके जिस भागकी चर्चा यहाँ की है उसका जैसा अर्थ मैंने किया है यदि उसका सचमुच वही अर्थ है तो आप देखेंगे कि वह हमारे बीच जो बातचीत हुई थी उससे सर्वथा असंगत है।

वस्तुस्थितिको अच्छी तरहसे समझने के लिए यह सब लिखना आवश्यक था।

रथी बाबू लिखते हैं कि उन्होंने परिवर्त्तन तो किये हैं तथा यदि और परिवर्त्तन करने उचित जान पड़े तो वह करने को तैयार हैं। हिसाब तो बिलकुल ठीक रखा जाता है।

मो० क० गांधीके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२१९. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सेवाग्राम, वर्धा
३ जून, १९४२

भाई वल्लभभाई,

ढेबरभाईसे जी-भरकर बातें की हैं। मेरा खयाल है कि लीमड़ी राज्यने समझौता किया ही नहीं था। लेकिन भगवानदासने[1] जरूर ऐसा समझ लिया था। जब हिजरती राज्यके अन्दर गये तो उन्होंने देखा कि समझौतेकी एक भी निशानी नहीं है।[2] इसलिए तुम्हारे वक्तव्यमें इतना सुधार होना चाहिए।

परन्तु ऐसा लगता है कि तुम्हारा वक्तव्य प्रकाशित होने से पहले कुछ करना शेष रह जाता है। ढेबरभाईका खयाल है कि फतेहसिंहजीकी[3] इच्छा तुमसे मिलने की है। यदि ऐसा हो और वे समझौता चाहते हों तो तुम्हें मिलने की तत्परता दिखानी चाहिए। उसके बाद ही तुम अपने वक्तव्यपर विचार करना।

अभी जो स्थिति है वह तो ठीक ही है।

जो हिजरती बाहर पड़े हैं वे भले पड़े रहें बाहर। रुईका बहिष्कार जारी है और जारी रहना चाहिए। इसलिए तुरन्त तुम्हारे वक्तव्यकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। यदि तुम मानते हो कि मुझे वक्तव्य देना चाहिए तो मुझे तार दे दो; मैं दे दूंगा। अगले हफ्तेके 'हरिजन'के लिए अभी समय है।

अपनी तन्दुरुस्तीके बारेमें एक बातका तो जरूर अच्छी तरह ध्यान रखना। कमोडपर कमसे-कम बैठो और जरा भी जोर न लगाओ। इसे अचूक नियम समझो।

बापूके आशीर्वाद

सरदार वल्लभभाई पटेल
६८, मैरीन ड्राइव
बम्बई

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २७६-७७

१. प्रजामण्डलके एक कार्यकर्त्ता

२. देखिए "पत्र : वल्लभभाई पटेलको", पृ० १५७-५८ और "पत्र : भगवानदास हरखचन्दको", ३०-६-१९४२ भी।

३. रीजेन्सी कौंसिलके सदस्य और लीमड़ीके राजाके पुत्र

२२०. पत्र : ना० र० मलकानीको

सेवाग्राम
३ जून, १९४२

भाई मलकानी,

पैसेके बारेमें तुम्हारा खत जाजूजी ने मुझे भेजा है। उनका उत्तर यह है:

मेरी रायमें इस खर्चकी जरूरत नहीं थी। मनाइ भी की थी। फिर भी खर्च कर डाला।

मुझे मनाहकी बात चुभी है। वह क्या है और कैसे हुआ?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ९४२) से

२२१. प्रश्नोत्तर

राजाओंका निश्चय

प्र० : राजाओंने यह निश्चय कर लिया लगता है कि अंग्रेजोंके यहाँसे विदा होने के बाद भी वे अपने विशेषाधिकारोंको कायम रखेंगे। इसलिए यह साफ-साफ ऐलान कर देने की जरूरत है कि आजाद हिन्दुस्तानमें उनके लिए कोई स्थान नहीं होगा। मुझे लगता है कि आप उनके प्रति ज्यादा उदार रहे हैं, जिसके कि वे अधिकारी नहीं हैं।

उ० : अगर आपका अनुमान ठीक है तो राजाओंके विशेषाधिकार ही उन्हें नष्ट कर देंगे। जनताकी सेवासे जो विशेषाधिकार मिलते हैं, वे तो हमेशा रहेंगे ही। लेकिन उनके ठाट-बाटका जो इतना आडम्बर आज देखने में आता है, उसका अन्त जरूर होगा।

लेकिन आप जो ऐलान मुझसे करवाना चाहते हैं, वह मैं नहीं कर सकता। वह अहिंसाकी भावनाके विरुद्ध है। अहिंसाका ध्येय विरोधीका विनाश नहीं, उसकी शुद्धि ही होता है। जो चीज शुद्धि-योग्य नहीं रह गई है, वह पूर्णतया रोगाक्रान्त शरीरकी भाँति अपने-आप बिना किसी बाह्य प्रयत्नके नष्ट हो जायेगी।

अगर अंग्रेजी सत्ताके यहाँसे बिलकुल हट जाने पर भी हिन्दुस्तानमें लोक-जागृति न हुई तो हिन्दुस्तान बहुत-सी सामन्ती सत्ताओंमें बँट जायेगा, जो एक-दूसरेको निगल जाने का वैसा ही प्रयत्न करेंगी जैसे बड़ी मछली छोटी मछलीको निगलने का करती है, और उनमें से कुछ सर्वोपरि बनने की कोशिश करेंगी। मेरी आशा और

प्रयत्न तो यह है कि एक ओर तो जनतामें जागृतिकी ऐसी लहर पैदा हो जाये जिसे कोई रोक न सके, और दूसरी ओर विशेषाधिकारी वर्गमें जनताकी माँगोंको बुद्धिपूर्वक स्वीकार करने की वृत्ति आ जाये। परन्तु मैं जानता हूँ कि आज तो यह मेरा एक कल्पना-चित्र ही है। इसीलिए मैं बुरीसे-बुरी स्थितिके लिए भी पूरी तरह तैयार हूँ। तभी तो मैंने कहा है कि मैं देशमें अराजकता फैलने की जोखिम उठाकर भी मौजूदा स्थितिका अन्त लाना चाहूँगा।[1]

सेवाग्राम, ५ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १४-६-१९४२

२२२. सूतकी मुद्रा[2]

ऊपरकी टिप्पणी[3] श्री कनुभाई जोशीने भेजी है। आरम्भ तो बहुत अच्छा हुआ है। वैसे मेरी तो इच्छा है कि पैसेके लोभसे नहीं, बल्कि कपड़ेकी तंगी मिटाने के लिए स्त्री और पुरुष घर-घर कातें और सूत भण्डारमें भेजें। एक चेतावनी दूँ — पूनी खरीदकर कातने की आदत अच्छी नहीं है। अन्तमें इससे खादीको नुकसान होगा। अब तो तुनाईकी खोजके बाद पूनी बनाना आसान हो गया है। यह सब लोग सीख लेंगे।

सेवाग्राम, ५ जून, १९४२

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १४-६-१९४२

२२३. पत्र: अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
५ जून, १९४२

चि० अमृत,

तुम्हारा अंग्रेजीका पत्र मिला।

ज[वाहरलाल]का पत्र आज मिला। वह कहता है कि जब मौलाना आयें तो वह आने को तैयार है। मौलानाकी ओरसे कोई खबर नहीं है।

१. देखिए "भेंट: न्यूज क्रॉनिकल के प्रतिनिधिको", पृ० ११३-१७।

२. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

३. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें कहा गया था कि बम्बईमें सूतका उपयोग मुद्राके रूपमें हो रहा है तथा अखिल भारतीय चरखा संघका स्थानीय बिक्री केन्द्र सूतके बदलेमें खादी या पैसे दे रहा है।

मैंने राजाजी को बता दिया है कि मैं उनके साथ सार्वजनिक विवादमें नहीं पड़ूँगा।[1]

गर्म हवा चल रही है। मैंने उम्मीद की थी कि इस समय तक मौसम ठंडा हो जायेगा। उम्मीद होने पर उम्मीदका पूरा न होना अच्छा नहीं लगता। "वे सुखी हैं जो किसी चीजकी उम्मीद नहीं करते।"

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१२८) से। सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७४३७ से भी

२२४. पत्र: जवाहरलाल नेहरूको

सेवाग्राम, वर्धा
५ जून, १९४२

चि० जवाहरलाल,

तुम्हारा खत मिला।

मौलानासे कुछ नहीं है। एक खत था जिसमें लिखा था तुम्हारे साथ आवेंगे। फिशर[2] आ गये हैं। रोज एक घंटा तो देता हूं। आश्रममें ही रहता है। यहां तो गरम पवन फूंक रहा है।

बापूके आशीर्वाद

मूल पत्रसे: गांधी-नेहरू पेपर्स। सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

२२५. महत्त्वपूर्ण प्रश्न

[६ जून, १९४२][3]

एक मित्र[4] मेरे नये सुझावके फलितार्थोंके बारेमें मुझसे चर्चा कर रहे थे। चूंकि चर्चा स्वभावत: छुटपुट रूपमें थी, मैंने उनसे अपने प्रश्न लिखकर देनेको कहा, जिससे कि मैं उनका उत्तर 'हरिजन' में दे सकूँ। उन्होंने यह मंजूर किया और आगे लिखे प्रश्न दिये:

१. देखिए "पत्र: चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको", पृ० २००-१।
२. लुई फिशर। गांधीजी के साथ उनकी बातचीतके विवरणके लिए देखिए परिशिष्ट ५।
३. ए वीक विद् गांधी से
४. लुई फिशर

प्र० : आप कहते हैं कि अंग्रेज सरकार फौरन हिन्दुस्तानसे हट जाये। क्या ऐसा होने पर हिन्दुस्तानके लोग अपनी राष्ट्रीय सरकार कायम करेंगे? उस राष्ट्रीय सरकारमें कौन-कौन से दल या पक्ष शरीक होंगे?

उ० : मेरा सुझाव एकपक्षीय है, अर्थात्, बिना इस बातकी परवाह किये कि हिन्दुस्तानके लोग क्या करेंगे और क्या नहीं, अंग्रेज सरकार इसपर अमल करे। मैंने तो उसके हट जानेके बाद कुछ समयके लिए अव्यवस्थाकी भी कल्पना कर ली है। लेकिन अगर वह सुव्यवस्थित रीतिसे विदा हो तो यह सम्भव है कि उसके चले जाने पर मौजूदा नेता आपसमें से ही एक अस्थायी सरकार स्थापित कर लें। लेकिन एक दूसरी सूरत भी पैदा हो सकती है, यानी वे सब लोग जिन्हें राष्ट्रका कुछ भी खयाल नहीं है, सिर्फ अपना ही है, सत्ता हथियानेकी कोशिश करें और, किसी भी तरह तथा जहाँ-कहीं भी उनसे हो सके, सत्तापर अपना अधिकार जमानेके लिए तमाम उपद्रवी ताकतोंको अपने साथ मिला लें। मैं आशा तो यह रखूँगा कि अंग्रेजी सत्ताके पूर्णतया, अन्तिम रूपसे और वस्तुतः यहाँसे हटने से देशके समझदार नेता अपनी जिम्मेदारी महसूस करेंगे, अपने मतभेदोंको उस घड़ी भूल जायेंगे और जो-कुछ सामग्री अंग्रेजी सत्ता पीछे छोड़ जायेगी, उसमें से ही एक अस्थायी सरकार कायम कर लेंगे। तब चूँकि कोई ऐसी सत्ता तो होगी नहीं जो इस बातका निर्णय करे कि इस परिषद मण्डलमें कौन-से दल या व्यक्ति रहें या न रहें, इसलिए उन्हें संयमका ही आधार लेना पड़ेगा। अगर ऐसा हो सका तो सम्भव है कि कांग्रेस, मुस्लिम लीग और देशी राज्योंके प्रतिनिधि मिलकर राज्यतन्त्र चला सकेंगे और एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बनानेके लिए मोटे तौरपर आपसमें समझौता कर लेंगे। पर यह सब केवल मेरा अनुमान ही है, और कुछ नहीं।

प्र० : क्या वह भारतीय राष्ट्रीय सरकार मित्र-राष्ट्रोंको जापान और धुरी-शक्तियोंके खिलाफ फौजी कार्रवाईके लिए हिन्दुस्तानको अपना अड्डा बनाने देगी?

उ० : मान लीजिए कि राष्ट्रीय सरकार कायम हो गई और वह मेरी आशाके अनुरूप हुई तो उसका पहला काम यह होगा कि वह आक्रमणकारी ताकतोंके विरुद्ध प्रतिरक्षात्मक कार्रवाईके लिए मित्र-राष्ट्रोंसे सन्धि करे, क्योंकि हमारा यह तो समान उद्देश्य है ही कि भारत फासिस्ट ताकतोंसे कुछ भी सरोकार नहीं रखेगा और मित्र-राष्ट्रोंको मदद देना उसका नैतिक कर्त्तव्य होगा।

प्र० : फासिस्ट आक्रमणकारी ताकतोंके विरुद्ध इस युद्धमें यह भारतीय राष्ट्रीय सरकार मित्र-राष्ट्रोंको और क्या मदद देनेको तैयार होगी?

उ० : जिस राष्ट्रीय सरकारकी मैंने कल्पना की है, अगर उसकी नीति निश्चित करनेमें मेरा कुछ हाथ होगा तो मित्र-राष्ट्रोंको सिवा इसके और कोई मदद नहीं दी जायेगी कि साफ-साफ निर्धारित शर्तोंपर हिन्दुस्तानकी भूमिपर उनकी मौजूदगी बर्दाश्त की जाये। यह स्वाभाविक है कि अगर कोई हिन्दुस्तानी निजी तौरपर फौजमें भर्ती होकर या रुपयेसे अथवा दोनों तरह मित्र-राष्ट्रोंकी मदद करना

चाहेगा तो उसपर कोई प्रतिबन्ध नहीं होगा। यहाँ इस बातकी कल्पना कर ली गई है कि ब्रिटिश सत्ताके यहाँसे विदा होने के साथ ही हिन्दुस्तानी फौज भी भंग कर दी जायेगी। फिर, यदि राष्ट्रीय सरकारके मशविरोंमें मेरी कुछ सुनवाई होगी तो उस सरकारकी सारी शक्ति, साधन और प्रतिष्ठाका उपयोग विश्व-शान्तिकी स्थापना के लिए किया जायेगा। मगर यह भी हो सकता है कि राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना के बाद मेरी आवाज अरण्य-रोदन जैसी हो जाये और युद्धका भूत राष्ट्रवादी भारतके सिरपर सवार हो जाये।

प्र० : क्या आप यह मानते हैं कि हिन्दुस्तान और मित्र-राष्ट्रोंके इस सहयोग-को एक मैत्रीकी सन्धि या आपसी सहायताके समझौतेका रूप दिया जा सकता है, या दिया जाना चाहिए?

उ० : मेरे खयालमें यह प्रश्न पूछने का अभी समय नहीं आया है। परन्तु हमारे आपसी सम्बन्ध चाहे सन्धिके हों चाहे समझौते के, इससे कुछ फर्क नही पड़ता। मुझे तो दोनों प्रकारके सम्बन्धोंमें भी कुछ अन्तर नहीं दिखाई देता।

मैं संक्षेपमें अपनी बात बता दूं। मेरे लिए एक और केवल एक ही चीज तर्क-संगत और असंदिग्ध है, और वह यह कि अगर मित्र-राष्ट्रोंकी जीतको सुनिश्चित करना है तो यह जरूरी है कि हिन्दुस्तान-जैसा एक महान राष्ट्र — यह गलत है कि वह बहुत-सी 'कौमों' या 'जातियों' का एक समूह है — आज जिस अप्राकृतिक दीना-वस्थामें पड़ा है, उसका अन्त हो। मित्र-राष्ट्रोंके पास आज कोई नैतिक आधार नहीं है। मैं फासिस्ट और नाजी ताकतों तथा मित्र-राष्ट्रोंमें आज कोई अन्तर नही देखता। सब शोषक हैं, और अपना हेतु सिद्ध करने के लिए जितनी क्रूरताको जरूरी समझते हैं, उसे काममें लाने में जरा भी नही झिझकते। अमेरिका और इंग्लैण्ड बहुत बड़े राष्ट्र हैं, परन्तु मूक मानव-जातिकी — फिर चाहे वह एशियाकी हो या आफ्रिका की — अदालतमें उनकी वह महानता मिट्टीकी तरह तुच्छ ही गिनी जायेगी। इस अन्यायका निवारण अकेले ये मित्र-राष्ट्र ही कर सकते हैं। जबतक वे इस दूषणको दूर करके अपने-आपको शुद्ध नही कर लेते, तबतक उन्हें मानव-स्वतन्त्रताकी और इसी तरहकी अन्य बातें करने का कोई अधिकार नहीं है। यह आवश्यक शुद्धि उनकी सफलताके लिए अमोघ साधन सिद्ध होगी; क्योंकि इससे एशिया और आफ्रिकाके करोड़ों मूक लोगोंकी मौन परन्तु सुनिश्चित सद्भावना उन्हें मिलेगी। तभी वे कह सकेंगे कि उनकी लड़ाई एक नई व्यवस्थाके लिए है, उससे पहले नही। यही सत्य है बाकी सब कल्पनाकी बात है। फिर भी, इन प्रश्नोंकी चर्चा मैंने अपनी सदाशयताका प्रमाण देने और अपने सुझावका अर्थ ठोस ढंगसे समझाने के लिए की है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १४-६-१९४२

२२६. डॉ० ताराचन्द और हिन्दुस्तानी

श्री मुरलीधर श्रीवास्तव, एम० ए० ने "प्रश्नोत्तर" के लिए नीचे लिखा प्रश्न भेजा था :

> जब मनमें किसी चीजके लिए पूर्वग्रह हो जाता है तो मनुष्यमें इतिहासमें तोड़-मरोड़ करने की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है। आपकी तरह डॉक्टर ताराचन्द भी हिन्दुस्तानीके उत्साही समर्थक हैं। उन्हें अपने विचार रखने का उतना ही अधिकार है, जितना आपको या मुझे अपने विचार रखने का है। उन्होंने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि हिन्दुस्तानी (खड़ी बोली) का साहित्य ब्रजभाषाके साहित्यसे पुराना है और उसके उत्साहमें उन्होंने यह कहकर कि १६वीं सदीसे पहले ब्रजमें कोई चीज लिखी ही नहीं गई, ब्रजभाषाके इतिहासको बहुत गलत तरीकेसे पेश किया है।[1] उनके कथनानुसार १६वीं सदीमें सूरदास ही पहले कवि थे, जिन्होंने ब्रजमें अपनी रचनाएँ कीं। चूँकि गत २९-३-४२ के 'हरिजन' में आपने इन विद्वान डॉक्टर साहबका पत्र उद्धृत किया है, और चूँकि 'हरिजन' की प्रतिष्ठा और उसका प्रचार व्यापक है, इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इस भूलकी ओर ध्यान दिलाया जाये। क्योंकि सूरदाससे पहलेके साहित्यके लिए केवल कबीरकी रचनाएँ ही पढ़ लेना काफी होगा — अमीर खुसरोकी तो बात ही क्या, जिनकी कुछ कविताएँ ब्रजभाषामें भी मिलती हैं। सूरदाससे पहलेके कई सन्तों और भक्तोंकी अनेक छोटी-छोटी रचनाएँ पाई जाती हैं, और वे हिन्दी साहित्यके किसी भी प्रामाणिक इतिहासमें देखी जा सकती हैं।

पत्र-लेखकके इस पत्रका जो अंश प्रस्तुत प्रश्नसे सम्बन्ध नहीं रखता था, उसे मन निकाल दिया है। यह पत्र मैंने काकासाहब कालेलकरके पास भेज दिया था। उन्होंने इसे डॉक्टर ताराचन्दके पास भेजा था। डॉक्टर ताराचन्दने इसका नीचे लिखा जवाब[2] भेजा है, जो अपने-आपमें बिलकुल साफ है।

> मेरी यह राय कि ब्रजभाषाका साहित्य सोलहवीं सदीसे ज्यादा पुराना नहीं है, निम्नलिखित बातोंपर आधारित है :
>
> १. ब्रजभाषा एक आधुनिक भाषा है, जो तृतीय प्राकृतोंके या नव भारोपीय वर्गकी मानी जाती है। इस वर्गका विकास द्वितीय प्राकृतों या

१. देखिए खण्ड ७५, "हिन्दुस्तानी", पृ० ४३६-३७।

२. केवल कुछ अंश ही उद्धृत किये गये हैं।

मध्यवर्ती भारोपीय (मिडिल इंडो-आर्यन) समूहसे हुआ है। . . . लेकिन ज्यादातर विद्वान इस बातमें एक राय हैं कि द्वितीय प्राकृतोंका समय ६०० ई० पू० से १००० ई० तक रहा।

२. द्वितीय प्राकृतोंको, जो बोलचालकी भाषाएँ थीं, महावीर और बुद्ध द्वारा चलाये गये धार्मिक आन्दोलनोंसे साहित्यिक विकासके लिए उत्तेजन मिला। इन प्राकृत भाषाओंमें पाली सबसे महत्त्वकी भाषा बन गई। . . .

३. ईस्वी सन्की छठीं सदी आते-आते प्राकृत भाषाएँ स्थिर और मृत भाषाएँ बन गई थीं। . . . इसी सदीमें सामान्य बोलचालकी भाषाओंका, जिनसे साहित्यिक प्राकृत भाषाएँ दूर हट गई थीं, साहित्यके लिए उपयोग होने लगा। प्राकृत भाषाओंके साहित्यिक विकासके इस रूपको अपभ्रंशका नाम दिया गया है। इसका समय ६०० से १००० ई० तक रहा। अपभ्रंशोंमें नागर नामक भाषाने महत्त्वका स्थान प्राप्त किया। उत्तर हिन्दुस्तानके ज्यादातर हिस्सोंमें इसी नागरके विविध रूप साहित्यिक अभिव्यक्तिके माध्यमके रूपमें काममें लाये जाने लगे। लेकिन नागर और उसके विविध रूपोंके अलावा शौरसेनी-जैसी कुछ दूसरी प्राकृत भाषाओंके भी अपभ्रंशका विकास हुआ।

४. हिन्दुस्तानकी आधुनिक भाषाओंका या तृतीय प्राकृतोंका विकास इन्हीं अपभ्रंशोंसे हुआ। नागर अपने एक प्रभेदके माध्यमसे राजस्थानी और गुजराती भाषाओंकी जननी बनी। तेस्सीतोरीने इस प्रभेदको प्राचीन पश्चिमी राजस्थानीका नाम दिया है।

शौरसेनी अपभ्रंशका रूप हेमचन्द्र (मृत्यु सन् ११७२)के प्राकृत व्याकरण में प्रकट हुआ है। लेकिन शौरसेनी अपभ्रंशका नागरके साथ कोई सम्बन्ध निश्चित करना कठिन है। ऐसा लगता है कि शौरसेनी अपभ्रंशमें और भी परिवर्त्तन हुआ और उसे प्राचीन पश्चिमी हिन्दी, अवहट्ठ, काव्य-भाषा आदि विविध नामोंसे पुकारा गया है।

५. इस भाषाके सामने आने पर द्वितीय प्राकृत भाषाएँ मंचसे हट जाती हैं और तृतीय प्राकृत या नव भारोपीय भाषाओंका समय शुरू होता है। पुरानी पश्चिमी हिन्दी, जो नवीन मध्यदेशीय बोलीका सबसे पहला रूप है, ११वीं सदीमें निश्चित रूप धारण करती मालूम होती है। इसी पुरानी पश्चिमी हिन्दीसे उत्तरी मध्यदेशकी हिन्दुस्तानी (खड़ी) निकली, मध्यदेशकी ब्रज निकली और दक्षिणकी बुन्देली निकली। १२वीं सदी में ये सब बोलियाँ थीं। आगेकी कुछ सदियोंमें इन्होंने साहित्यिक रूप धारण किया।

६. इन भाषाओंके विकासके अध्ययनसे मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि हिन्दुस्तानी (खड़ी) का साहित्यिक भाषाके रूपमें सबसे पहले विकास हुआ। १४वीं सदीके आखिरी पचीस सालोंसे लेकर अबतक हमें हिन्दुस्तानी (दक्षिणी उर्दू)

का सिलसिलेवार इतिहास मिलता है। दूसरी तरफ, सोलहवीं सदीसे पहलेके ब्रजभाषा साहित्यका इतिहास बहुत ही शंकास्पद है।

सेवाग्राम, ६ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १४-६-१९४२

२२७. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
६ जून, १९४२

चि० अमृत,

ऐसा लगता है कि दूसरे जितने पैंड थे उनमेंसे अब एक भी नहीं बचा। तुम्हारा पत्र आने के पहले नानावटीको एक रुपया दे दिया गया था।

महादेवकी ऐनकमें कुछ भी गड़बड़ी नहीं है। सारी तकलीफ भयानक गर्मीके कारण है। वह किसी दिन बीत जायेगी और ठंडी हवा और भी ज्यादा भली लगेगी।

बचतकी रकमके बारेमें तुम्हें अपना विचार सही साबित करना होगा।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

मैं समझता हूँ कि मैं तुम्हें सुशीलाके पास होने की खबर दे चुका हूँ।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१२९) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७४३८ से भी

२२८. पत्र : बाकरअली मिर्जाको

६ जून, १९४२

भाई बाकरअली मिरझासाहेब,

आपका खत मिला और आपकी किताब भी। मैं इधर-उधर नजर डाल गया। उससे ज्यादा तो कुछ कर ही नहीं सकता था।

मेरा ख्याल है कि मैंने जो गोल (उर्दू) मुलकके सामने रखा है उससे बड़ा कोई नहीं रख सकता था।

मूल पत्रसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२२९. पत्र : जगन्नाथको

सेवाग्राम, वर्धा, सी० पी०
६ जून, १९४२

भाई जगन्नाथ,

तुम्हारा खत मिला। तुम्हारी स्थिति मैं समझ सकता हूं। तुमको ईश्वर बल दे कि जिन भावनाओंका तुमने २० वर्ष तक पालन किया है वे सब नाबूद न हो जांय।

बापुके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ९९६ से। सौजन्य : जगन्नाथ

२३०. पत्र : परचुरे शास्त्रीको

सेवाग्राम, वर्धा
६ जून, १९४२

शास्त्रीजी,

तुमारा खत मिला। तुमारा खर्च तो मुझे उठाना ही था। मेरी इतनी आशा थी कि खर्च पर अंकुश रखोगे और आवश्यक खर्च ही करोगे।

सावधान रहो इतना बस है। मौका आने पर तुमारा भी बलीदान दे सकता हूं। हम सब ईश्वरके आधीन है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६७१) से

२३१. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

सेवाग्राम
६ जून, १९४२

भाई सतीशबाबु,

मैं तो कैसे बंगाल जाऊं? मेरा अभिप्राय साफ है। जिन लोगोंको इस तरह निकाले जायं वह साफ साफ इनकार करे और जबतक उनको जगह न दिलाई जाय और सब सुविधा पैदा न किया जाय न हटे, भले उनपर गोली चले। सिवाय इसके कोई और चारा नहीं है। ऐसे विरोधमें हममें से कोईको मरना पड़े तो हम मरें। पहलेसे उन लोगोंको नोटीस देनी चाहिये।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

२३२. भेंट : अमेरिकी पत्रकारोंको[1]

सेवाग्राम
[६ जून, १९४२][2]

गांधीजी : आप तो वातानुकूलित डिब्बेमें ही आये होंगे?

पत्रकार : जी नहीं; लेकिन कुछ बर्फ रखकर हमने अपना कुछ बचाव कर लिया था।

गां० : एक अमेरिकी[3] तो मेरी चीर-फाड़ करता ही रहा है। अब मैं आपके लिए हाजिर हूँ।

प्र० : जापानियोंका ईमानदारीसे सीधा मुकाबला करने के बजाय यह अहिंसक असहयोग किसलिए? जापानियोंको रोकने की बात तो दूर रही, यह तो उल्टा उन्हें यहाँ आने के लिए बुलावा सिद्ध होगा। क्या यह स्थिति ताड़से छूटकर भाड़में पड़ने-जैसी न होगी?

१. महादेव देसाईके लेख "एन इम्पोर्टेंट इंटरव्यू" (एक महत्त्वपूर्ण मुलाकात) से उद्धृत। पत्रकार थे — इंटरनेशनल न्यूज सर्विसके चैपलिन और लाइफ तथा टाइम पत्रोंके बेल्डन।

२. गांधी — १९१५-१९४८ के अनुसार

३. लुई फिशर

उ० : मान लीजिए कि मेरे सुझावपर नहीं, बल्कि सिर्फ रणनीतिके खयालसे अंग्रेज हिन्दुस्तानसे हट जायें — जैसा कि बर्मामें उन्हें करना पड़ा — तब क्या होगा? हिन्दुस्तान उस हालतमें क्या करेगा?

प्र० : ठीक यही बात हम आपसे समझने आये हैं। निश्चय ही हम यह जानना चाहेंगे।

उ० : बस, यहीं मेरी अहिंसा काम आयेगी; क्योंकि दूसरे हथियार तो हमारे पास हैं नहीं। याद रखिए, हम यह मान लेते हैं कि संयुक्त अमेरिकी और ब्रिटिश सेनाओंके प्रधान सेनापतिने यह फैसला कर लिया है कि युद्ध-संचालनके लिए अड्डेके रूपमें हिन्दुस्तान किसी कामका नहीं है, और उन्हें यहाँसे हटकर किसी और अड्डेपर अपनी सेनाको केन्द्रित करना चाहिए। इसमें हम तो कुछ भी नहीं कर सकते। तब जो-कुछ भी शक्ति हमारे पास है, हमें उसीका आधार होगा। हमारे पास न सेना है, न युद्ध-सामग्री है और न कोई उल्लेखनीय युद्ध-कौशल ही है। केवल अहिंसा ही हमारे पास है, जिसका हम आश्रय ले सकते हैं। सिद्धान्ततः मैं आपके सामने यह सिद्ध कर सकता हूँ कि हमारा अहिंसक असहयोग पूरी तरह सफल हो सकता है। एक भी जापानीको मारने की जरूरत नहीं है, हम केवल उनको रत्ती-भर भी सहयोग नहीं देंगे।

प्र० : परन्तु उस अहिंसासे हमला तो नहीं रुकेगा?

उ० : अहिंसक तरीकेसे हम हमलेको तो रोक नहीं सकते। वे यहाँ आ तो जायेंगे लेकिन उनका यहाँ विरोध होगा। यह सम्भव है कि वे नृशंस बन जायें, और चालीस-के-चालीस करोड़ लोगोंको साफ कर डालें। तब वह पूर्ण विजय होगी। मैं जानता हूँ कि आप इसपर हँसेंगे और कहेंगे कि ऐसी बात अतिमानवीय नहीं तो बेतुकी तो है ही। मैं कहूँगा, आप जो कहते हैं वह ठीक है। हम शायद उस आतंकका सामना न कर सकें और हमें आजसे भी बदतर गुलामीमें से गुजरना पड़े। परन्तु हम सिद्धान्तकी बात कर रहे हैं।

प्र० : लेकिन अगर अंग्रेज यहाँसे न हटे तो?

उ० : मैं नहीं चाहता कि वे हिन्दुस्तानके दबावमें आकर या परिस्थितिसे मजबूर होकर यहाँसे हटें। मैं तो चाहता हूँ कि वे अपने ही हितके लिए और अपनी सुकीर्तिकी खातिर यहाँसे हटें।

प्र० : लेकिन अगर आप पकड़े गये, जैसा कि हमने सुना है कि यह सम्भव है तो आपके आन्दोलनका क्या होगा? या अगर श्री नेहरू गिरफ्तार हो जायें? उस हालतमें क्या आपका आन्दोलन छिन्न-भिन्न नहीं हो जायेगा?

उ० : नहीं, अगर हमने जनताकी कुछ भी सेवा की है तो कहूँगा कि ऐसा नहीं होगा। हमारी गिरफ्तारी आन्दोलनको और तेज करेगी और हर भारतवासीको उसमें योग देने के लिए प्रेरित करेगी।

प्र० : फर्ज कीजिए, अंग्रेज यह निश्चय कर लेते हैं कि जबतक हिन्दुस्तानमें एक आदमी भी बाकी है, वे बराबर लड़ते रहेंगे, तो क्या आपके अहिंसक असहयोगसे जापानको मदद नहीं मिलेगी?

उ० : अगर हमारा अहिंसक असहयोग अंग्रेजोंके खिलाफ होता तो आपकी बात ठीक थी। लेकिन अभी हम उस हदतक नहीं आये हैं। मैं जापानियोंकी किसी भी हालतमें मदद नहीं करना चाहता — हिन्दुस्तानकी आजादीकी खातिर भी नहीं। हिन्दुस्तानने पिछले ५० सालके अपने स्वतन्त्रता-आन्दोलनसे अगर कोई पाठ सीखा है तो वह देशभक्तिका है, 'किसी भी' विदेशी ताकतके आगे सिर झुकानेका नहीं है। परन्तु जब अंग्रेज अपना हिंसक युद्ध चला रहे हैं, तब अगर हम अपना अहिंसक युद्ध — अहिंसक कार्यवाही — चलायें तो उसका सारा असर निष्फल हो जायेगा। जो लोग सशस्त्र मुकाबलेमें और अंग्रेजों को फौजी मदद देने में विश्वास करते हैं, वे तो आज भी उन्हें मदद दे रहे हैं, और देते रहेंगे। श्री एमरी कहते हैं कि उन्हें धन-जनकी जितनी मदद चाहिए, वह सब मिल रही है, और उनका यह कहना ठीक भी है। हिन्दुस्तानके करोड़ों गरीब लोगोंकी प्रतिनिधि संस्था कांग्रेस जितना पैसा सालोंमें इकट्ठा नहीं कर सकी, उतना इन लोगोंने तथाकथित "स्वैच्छिक चन्दे" से एक दिनमें इकट्ठा कर लिया। कांग्रेस तो अहिंसक सहायता ही दे सकती है। लेकिन अगर आपको पता न हो तो मैं बतलाता हूँ कि वैसी सहायता की अंग्रेजोंको जरूरत नहीं है, और न उनके नजदीक उसकी कोई कीमत ही है। परन्तु उनके नजदीक उसकी कीमत हो या न हो, अहिंसक और हिंसक, दोनों मुकाबले साथ-साथ नहीं चल सकते। इसलिए हिन्दुस्तानकी अहिंसा ज्यादासे-ज्यादा यही कर सकती है कि मौन धारण करे — अंग्रेजोंकी फौजी कार्रवाईमें रुकावट न डाले और जापानियोंको तो कोई मदद नहीं ही दे।

प्र० : परन्तु अंग्रेजोंको आप मदद तो नहीं देंगे न?

उ० : क्या आप देखते नहीं कि अहिंसा और कोई मदद दे ही नहीं सकती?

प्र० : लेकिन आप रेलकी हड़ताल तो नहीं करायेंगे? इसी तरह आवश्यक सेवाओंको भी बन्द करना नहीं चाहेंगे?

उ० : वे जैसी आज चल रही हैं उन्हें उसी तरह चलने दिया जायेगा।

प्र० : तो आप रेल और दूसरी आवश्यक सेवाओंको न छेड़कर क्या अंग्रेजोंकी मदद नहीं करते?

उ० : बेशक, हम करते हैं। यह हमारी परेशान न करनेकी नीति है।

प्र० : लेकिन हिन्दुस्तानमें अमेरिकी फौजकी मौजूदगीके बारेमें आप क्या कहते हैं? हरएक अमेरिकी यह महसूस करता है कि हमें हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता प्राप्त करने में मदद करनी चाहिए।

उ० : यह बुरी बात है।

प्र० : इसीलिए न कि लोग कहते हैं कि दरअसल तो हम यहाँ अंग्रेजोंकी मदद करने आये हैं, हिन्दुस्तानकी नहीं?

उ० : मैंने जो कहा कि यह बुरी बात है, सो इसलिए कि यह चीज जबर-दस्ती हिन्दुस्तानपर लादी गई है। वे यहाँ हमारी प्रार्थनापर या मर्जीसे नहीं आये हैं। क्या हमें क्षुब्ध करने के लिए इतना काफी नहीं था कि हमें पूछा तक नहीं और युद्धमें ढकेल दिया? मुझे तो शक है कि शायद वाइसरायने इस बारेमें अपनी कार्य-कारी परिषद् तक की सलाह नहीं ली है। यह हमारी असल शिकायत है। तिसपर अमेरिकी सेनाको यहाँ लाना तो मेरी रायमें, हमारे गलेके फन्देको और भी कस देना है।

हिन्दुस्तानमें आज क्या हो रहा है, आपको पता नहीं है। और यह स्वाभा-विक है, क्योंकि इन चीजोंमें उतरना आपका काम नहीं है। लेकिन मैं कुछ तथ्य आपके सामने रखना चाहता हूँ। हजारों ग्रामीणोंको आज तुरन्त अपने घर खाली करके चले जाने का हुक्म दिया जा रहा है, क्योंकि जहाँ वे रहते हैं, वह जगह सेनाको चाहिए। अब आप ही बताइए कि वे बेचारे कहाँ जायें? मैंने आज ही सुना है कि एक स्थानपर हजारों गरीब मजदूरोंको अपने घर खाली करके चले जाने का हुक्म मिला है। उन्हें तैयारीके लिए काफी समय नहीं दिया गया, और जो मुआवजा लेने को कहा जा रहा है, वह नहींके बराबर ही है। किसी स्वतन्त्र देशमें ऐसा नहीं हो सकता। वहाँ पहले फौजके सफरमैना दस्तोंसे ही उन लोगोंके लिए घर बनवाये जायेंगे। उनके लिए परिवहनकी व्यवस्था की जायेगी और उन्हें कमसे-कम छह महीनोंके लिए गुजारेका खर्च दिया जायेगा। जापानी तो जब आयेंगे तब आयेंगे। लेकिन क्या हमें इस घड़ीसे ही यह सब बरदाश्त करना पड़ेगा? इसलिए हमारे पास सिर्फ एक ही रास्ता है कि हम अंग्रेजोंसे कहें कि 'आप यहाँसे जाइए।' अगर अंग्रेज अपना शासन हटा लें तो उनके इस नैतिक कार्यसे अमेरिका और ब्रिटेन दोनों ही बच जायेंगे। अगर वे यहाँ रहना चाहें तो उन्हें हिन्दुस्तानके मित्रके नाते रहना होगा, हिन्दुस्तानके मालिकोंकी तरह नहीं। अमेरिकी और अंग्रेज सैनिकोंको अगर यहाँ रहना ही है तो वे स्वतन्त्र हिन्दुस्तानके साथ सन्धि करके उसकी शर्तोंके मुताबिक रहें।

प्र० : लेकिन इसके लिए हिन्दुस्तानके नेताओंको और यहाँकी जनताको कुछ करके दिखाना चाहिए न? तभी यह काम आगे बढ़ सकता है।

उ० : क्या आप चाहते हैं कि देशमें एक सिरेसे दूसरे सिरे तक सब जगह विद्रोह भड़क उठें? नहीं। मैंने अंग्रेजोंसे यहाँसे चले जाने का जो निवेदन किया है, वह थोथा निवेदन नहीं है। उसे पूरा कराने के लिए हमें कुरबानी करनी होगी। लोकमतको क्रियाशील होना होगा, और वह अहिंसक रीतिसे ही कार्य कर सकता है।

प्र० : क्या इसमें हड़तालें वर्जित होंगी?

उ० : नहीं। हड़तालें अहिंसक हो सकती हैं, और हुई हैं। अगर रेलका उपयोग हिन्दुस्तानपर अंग्रेजोंकी जकड़को और मजबूत करने के लिए ही किया जाये

तो उसमें सहायता देने की जरूरत नहीं है। लेकिन इस तरहकी कोई जबरदस्त कार्रवाई करने से पहले मुझे यह दिखाने की कोशिश करनी चाहिए कि मेरी माँग न्याय-संगत है। जिस घड़ी यह माँग मंजूर कर ली जायेगी, उसी घड़ीसे हिन्दुस्तान रुष्ट न रहकर मित्र बन जायेगा। आपको यह याद रखना चाहिए कि जापानियोंको हिन्दुस्तानसे दूर रखने में मेरा स्वार्थ अंग्रेजोंके मुकाबले कहीं अधिक है, क्योंकि अगर अंग्रेज हिन्दुस्तानके समुद्रमें हार जाते हैं तो वे 'सिर्फ हिन्दुस्तानको गँवाते हैं', लेकिन अगर जापान जीतता है तो हिन्दुस्तानका 'सर्वस्व' चला जाता है।

प्र० : जिस तरह अमेरिकी फौजको आप हिन्दुस्तानपर लादी हुई मानते हैं उसी तरह क्या अमेरिकी तकनीकी मिशनको भी मानेंगे?

उ० : पेड़की परीक्षा उसके फलसे होती है। मैं डॉ० ग्रेडीसे[1] मिला था और हमारे बीच मैत्रीपूर्ण बातचीत हुई थी। अमेरिकियोंके प्रति मेरे मनमें कोई द्वेष नहीं है। अमेरिकामें मेरे यदि हजारों नहीं तो सैकड़ों दोस्त तो होंगे ही। हो सकता है कि तकनीकी मिशनके मनमें हिन्दुस्तानके लिए सद्भाव ही हो। लेकिन मेरा कहना तो यह है कि जो-कुछ हो रहा है, वह हिन्दुस्तानके कहने पर या उसकी इच्छासे नहीं हो रहा है। इसलिए उन सबके बारेमें सन्देह तो रहता ही है। हम इन बातों को स्थितप्रज्ञकी-सी शान्तिसे नहीं देख सकते, क्योंकि, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, हमारी आँखोंके सामने रोज जो-कुछ हो रहा है उसकी तरफसे हम आँखें नहीं मूँद सकते। गाँवके-गाँव खाली कराये जा रहे हैं, उनकी जगह फौजी छावनियाँ खड़ी की जा रही हैं, और गरीब रिआयासे कहा जा रहा है कि वह अपना बन्दोबस्त खुद करे। बर्मासे लौटते हुए अगर हजारों नहीं तो सैकड़ों लोग तो भूखे-प्यासे मर गये, और उन अभागे लोगोंको भी घृणित भेद-भावका अनुभव करना पड़ा। गोरोंका रास्ता जुदा था, कालोंका जुदा! गोरोंके लिए रहने-खाने का पूरा बन्दोबस्त था, कालोंके लिए कुछ भी नहीं था! और हिन्दुस्तान पहुँचने पर भी वही भेदभाव है! जापानियोंका अभी कहीं पता नहीं है, पर हिन्दुस्तानियोंको अभीसे बुरी तरह पीसा और अपमानित किया जा रहा है। वह सब हिन्दुस्तानकी हिफाजतके लिए तो हरगिज नहीं है; भगवान जाने किसकी हिफाजतके लिए है। इन्हीं सब कारणोंसे एक दिन मेरा मन यह निश्चय कर बैठा कि मैं अंग्रेजोंसे पूरी ईमानदारीसे यह माँग करूँ: 'भगवानके लिए हिन्दुस्तानको अब उसके हालपर छोड़ दो। हमें आजादीकी साँस लेने दो। हो सकता है वह आजादी हमें उन गुलामोंकी तरह, जिन्हें अचानक आजाद कर दिया गया था, परेशानीमें डाल दे, हमारा दम घोंट दे। लेकिन आजका यह ढोंग और पाखंड तो खत्म होना ही चाहिए।'

प्र० : लेकिन ये तमाम बातें तो आप अंग्रेजी फौजको ध्यानमें रखकर ही कह रहे हैं, अमेरिकीको तो नहीं न?

१. भारत-स्थित तत्कालीन अमेरिकी तकनीकी मिशनके नेता डॉ० हेनरी ग्रेडी

उ० : मैं इन दोनोंमें कोई फर्क नहीं पाता। नीति तो समूची वही है, उसमें कोई भेद नहीं किया जा सकता।

प्र० : क्या आपको उम्मीद है कि ब्रिटेन कुछ सुनवाई करेगा?

उ० : मैं तो इस उम्मीदको लेकर ही मरूँगा और अगर मैं लम्बी उम्रतक जी सका तो मुमकिन है कि इसे सफल होते भी देख लूँ। क्योंकि मेरे सुझावमें अव्यावहारिक कुछ भी नहीं है, न कोई ऐसी कठिनाई ही है जो दूर न की जा सके। साथ ही, मैं यह भी कह दूँ कि अगर ब्रिटेन सच्चे दिलसे यह सब करने को तैयार न हो तो वह इस लड़ाईमें जीतने के लायक भी नहीं है।

प्र० : क्या स्वतन्त्र हिन्दुस्तान जापानके खिलाफ लड़ाईका ऐलान करेगा?

उ० : स्वतन्त्र हिन्दुस्तानको इसकी कोई जरूरत नहीं होगी। वह तो काफी पुराना ऋण चुका देने के बदलेमें कृतज्ञताकी भावनासे ही मित्र-राष्ट्रोंका साथी बन जायेगा। बाकी मनुष्यका स्वभाव कुछ ऐसा है कि कर्जदार जब उसका कर्ज अदा कर देता है तो वह उसमें भी कृतज्ञता का अनुभव करता है।

प्र० : लेकिन तब इस मित्रताके साथ हिन्दुस्तानकी अहिंसाका मेल कैसे बैठेगा?

उ० : यह एक अच्छा सवाल है। आज 'समूचा' हिन्दुस्तान अहिंसक नहीं है। अगर समूचा हिन्दुस्तान अहिंसक होता तो न मुझे ब्रिटेनसे अपील करनी होती, न जापानके हमलेका ही डर होता। लेकिन मेरी अहिंसाके माननेवाले शायद मुट्ठी-भर ही हैं, या शायद वे करोड़ों मूक लोग हैं, जो स्वभाव ही से अहिंसक हैं। लेकिन उनके बारेमें भी यह पूछा जा सकता है कि 'उन्होंने आखिर कर क्या दिखाया?' मैं कबूल करता हूँ कि करके तो कुछ भी नहीं दिखाया। लेकिन हो सकता है कि जब कड़ी कसौटी का समय आये तो वे कुछ कर दिखायें, शायद न भी दिखा सकें। अंग्रेजोंके सामने रखने के लिए करोड़ोंकी अहिंसा तो मेरे पास है नहीं। और जो-कुछ हमारे पास है, उसे अंग्रेजोंने कमजोरोंकी अहिंसा कहकर नगण्य बता दिया है। इसलिए मैंने शुद्ध न्यायके बलपर ही अंग्रेजोंसे यह माँग की है, जिससे कि यह उनके हृदयमें गूँज पैदा कर सके। यह माँग नैतिक स्तरपर की गई है। भौतिक क्षेत्रमें तो ब्रिटेनने न जाने कितनी बार बिना झिझक साहसके काम किये हैं और बड़े-बड़े खतरे उठाये हैं। एक बार वह नैतिक क्षेत्रमें भी दु:साहससे काम ले और हिन्दुस्तानकी माँगका विचार किये बिना आज ही उसे स्वतन्त्र घोषित कर दे।

प्र० : लेकिन जैसा कि जिन्ना साहब कहते हैं, अगर मुसलमानोंको हिन्दुओंका शासन मंजूर न हो तो स्वतन्त्र हिन्दुस्तानका क्या अर्थ रह जायेगा?

उ० : मैं ब्रिटेनसे यह नहीं कहता कि वह हिन्दुस्तानको कांग्रेसके या हिन्दुओंके हाथोंमें सौंपकर जाये। वे उसे भगवानके भरोसे छोड़ जायें, अथवा, आजकलकी भाषामें कहें तो, अराजकताके हाथोंमें छोड़ जायें। फिर या तो सभी दल आपसमें कुत्तोंकी तरह लड़ेंगे, या जब देखेंगे कि जिम्मेदारी सचमुच ही उनके सिर आ पड़ी है तो

युक्तियुक्त समझौतेका कोई रास्ता निकाल लेंगे। मैं आशा रखता हूँ कि उस अराजकता में से अहिंसाका उदय होगा।

प्र० : लेकिन अंग्रेज 'किससे' कहें कि 'हिन्दुस्तान स्वतन्त्र है'?

उ० : दुनियासे। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि हिन्दुस्तानी फौजें तभी भंग कर दी जायेंगी, और अंग्रेज जल्दीसे-जल्दी हिन्दुस्तान छोड़कर जाने का निश्चय करेंगे। अथवा वे यह ऐलान कर सकते हैं कि वे हिन्दुस्तानको तो लड़ाई खत्म होने पर ही छोड़ेंगे, लेकिन हिन्दुस्तानसे किसी तरहकी मददकी आशा नहीं रखेंगे, उसपर कर नहीं लगायेंगे, रंगरूट भरती नहीं करेंगे — सिर्फ उतनी ही मदद लेंगे जितनी हिन्दुस्तान अपनी मर्जी और खुशीसे देगा। हिन्दुस्तानमें अंग्रेजोंका शासन उसी क्षणसे खत्म हो जायेगा, फिर भले ही हिन्दुस्तानका जो होना हो सो हो। आज तो जो भी कुछ है, सब ढोंग और असत्य है। मैं इसे खत्म कर देना चाहता हूँ। इस असत्यके मिटने पर ही नई व्यवस्था हो सकेगी।

प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रताकी रक्षा करने का जो दावा आज ब्रिटेन और अमेरिका कर रहे हैं वह निराधार है। एक पूरे राष्ट्रको गुलामीमें जकड़े रखने की इस भयंकर दुःखद स्थितिके रहते इस तरहका दावा करना गलत है।

प्र० : आपकी माँगको मंजूर कराने के लिए अमेरिका क्या कर सकता है?

उ० : अगर अमेरिका यह मानता है कि मेरी माँग बिलकुल युक्तियुक्त और न्यायपूर्ण है तो उसे चाहिए कि जबतक इसे मंजूर न कर लिया जाये, वह ब्रिटेन को धनकी और अप्रतिम कौशलसे निर्मित तरह-तरहके युद्ध-यन्त्रोंकी मदद देनेसे इनकार कर दे। जो धन देता है, वह काम करने की रीति भी ठहरा सकता है। चूँकि अमेरिका मित्र-राष्ट्रोंके ध्येयमें उनका एक बड़ा भागीदार बन गया है, इसलिए ब्रिटेनके पापमें भी उसका हिस्सा हो गया है। जबतक वे पृथ्वीके एक अत्यन्त सुन्दर भाग और अत्यन्त प्राचीन राष्ट्रको गुलाम बनाये हुए हैं, तबतक मित्र-राष्ट्रोंको यह कहने का कोई हक नहीं है कि उनका ध्येय नाजियोंके ध्येयसे नैतिक दृष्टिसे श्रेष्ठ है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १४-६-१९४२

२३३. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
६/७ जून, १९४२

प्रिय सी० आर०,

सत्यमूर्तिका अपने ही ढंगका एक पत्र[1] भेज रहा हूँ — तुम स्वयं देख लोगे कि उसे कितना महत्त्व दिया जाये।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

७[2] जून, १९४२

यह पत्र कल डाकमें डाले जाने से रह गया था। इस बीच तुम्हारे दो पत्र मिले हैं। तुम जब भी आ सको, आ जाओ। तुम्हारी दलीलें हममें से किसीपर भी असर नहीं करतीं। अवश्य ही मेरी प्रतिक्रिया देखकर इन सब लोगोंकी आँखोंपर पर्दा नहीं पड़ गया है। जो भी हो, तुम्हें उन लोगोंसे बातचीत करनी है। मुझे खुशी है कि तुम्हें अवसादसे मुक्ति मिल रही है।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० १०९१७)से। सौजन्य: सी० आर० नरसिंहन्

२३४. काठियावाड़में खादी

पाठकोंको मालूम होगा कि खादीके कार्यका अधिक विस्तार करने तथा उसे अधिक सार्वजनिक बनानेके लिए एक समितिका गठन किया गया है। श्री नानाभाई उसके अध्यक्ष नियुक्त किये गये हैं और श्री नागरदास दोशी मन्त्री हैं। रेंटिया जयन्तीके[3] निमित्तसे इकट्ठा हुआ जो पैसा मैंने श्री नारणदास गांधीके पास जमा कर रखा था, वह सब इस समितिको सौंप दिया गया है।[4] 'काठियावाड़ना खादी-कामनो हेवाल' नामसे १९३८ से १९४१ तक हुए इस खादी-कार्यका एक विवरण पण्डया खादी कार्यालय,

१. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।
२. साधन-सूत्रमें यहाँ "६ जून" दिया गया है।
३. विक्रमी संवत्के अनुसार गांधीजी की जन्म-तिथि
४. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", ३०-६-१९४२।

चलालाकी ओरसे प्रकाशित हुआ है। उसमें से नीचेके कुछ अनुच्छेद[1] वहाँके खादी-कार्य का कुछ आभास देंगे।

१९३८ में कातनेवालोंकी संख्या १५० थी, १९४१ में वह ६०० हो गई। १९४१ में ५०० सवर्ण हिन्दू, १८ मुसलमान और १२ हरिजन कातनेवाले थे। १९३८ में ३४८१ रुपये मजदूरी चुकाई गई थी, १९४१ में १८,९४८ रुपये चुकाई गई। १९३८ में कातनेवाले की मासिक आय ४ रुपये १२ आना थी, जब कि १९४१ में वह १० रुपये तक पहुँच गई। बुनकरकी मजदूरी १२ रुपयेसे ३० रुपये तक पहुँची और पींजनेवाले की ७ रुपयेसे १८ रुपये तक।

रिपोर्ट अच्छी है। उसके आँकड़ोंमें वृद्धि की गुंजाइश है। कार्यकी प्रगति ठीक मानी जायेगी। इससे भाई नागरदासके परिश्रमका अनुमान सहज ही हो जाता है। लेकिन काठियावाड़ २६ लाखकी बस्तीका छोटा-सा प्रान्त है। उसमें भी बहुत अधिक कामकी गुंजाइश है। कार्यकर्त्ताओंकी संख्या कैसे बढ़े? दूसरे शब्दोंमें, इस कामको अधिक मजेदार अथवा रोचक कैसे बनाया जा सकता है?

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, ७-६-१९४२

२३५. राजाजी

यद्यपि राजाजी के साथ अपने मतभेदके बारेमें जो राय मैंने जाहिर की थी उसपर मैं कायम हूँ, और अपनी कही उन बातोंमें से, जिनका हवाला राजाजी ने दिया है, एक शब्द भी मैं बदलना नहीं चाहता हूँ, और यद्यपि मैं अपनी इस रायको दुहराता हूँ कि यदि सन्दर्भको ध्यानमें रखा जाये तो मेरी भाषाका वह अर्थ नहीं लगाया जा सकता जो राजाजी ने लगाया है, तो भी मैं भविष्यमें उनके साथ किसी सार्वजनिक विवादमें पड़ना नहीं चाहता। उनकी इस आशामें मैं उनके साथ हूँ कि किसी दिन मैं अपने विचार-दोषको, जो उन्हें इतना साफ नजर आता है, देख सकूँगा। परन्तु राजाजी-जैसे घनिष्ठ साथियोंके साथ सार्वजनिक विवादमें पड़ना मुझे बहुत खटकता है। उन्होंने एक नया काम हाथमें लिया है और उसके लिए बोलना उनके लिए जरूरी है।

सेवाग्राम, ७ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १४-६-१९४२

१. उनका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। विवरणमें कहा गया था कि चलालाका खादी कार्यालय काठियावाड़में खादीके उत्पादन तथा बिक्रीके लिए सदर मुकाम बन गया है। कार्यालयके रोजके सामान्य कामके लिए कोई वैतनिक कर्मचारी नहीं है, अतः अपने अनेक कामोंके साथ यह काम भी कार्यकर्ता ही करते हैं।

२३६. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

७ जून, १९४२

प्रिय सी० आर०,

बिलकुल गलत। तुम च्युत नहीं हुए हो। इन मतभेदोंका कोई अर्थ नहीं है। 'हरिजन' के लिए मैं एक टिप्पणी[1] लिख भी चुका हूँ कि मैं अब आगे तुम्हारे साथ विवादमें नहीं पड़ूँगा। तुम्हें खिन्न भी नहीं होना चाहिए। इसलिए तुम्हें आराम, हँसी-मजाक और नई शक्ति तथा उल्लासके लिए यहाँ आना चाहिए।

तुम्हारा तर्क मैं नहीं समझा। यहाँ आकर समझाओ।

बताओ कि घर किसके नाम पर होने चाहिए। कमलनयनको लिखना बेहतर होगा।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०८८) से

२३७. बिना बलिदानके मुक्ति नहीं

चारों ओरसे मेरे पास इस आशयकी खबरें आ रही हैं कि सरकारी हाकिम बिना सूचना दिये लोगोंसे उनके मकान वगैरह खाली करा रहे हैं। फौजके उपयोगके लिए कभी किसी जमींदारको अपना बँगला छोड़ देना पड़ता है, तो कभी मध्य वर्गके किसी व्यक्तिको पंखों और फर्नीचर आदिके साथ अपना सारा मकान सौंप देना पड़ता है। ज्यादातर तो गाँववालों या मजदूरोंसे कुछ मुआवजेका वादा करके अपने घर खाली कर देनेको कहा जाता है। उन लोगोंकी हालत बड़ी दयनीय है। उन्हें कुछ सूझ नहीं पड़ता कि वे कहाँ जायें। मैं तो उनसे सिर्फ यही कह सकता हूँ कि 'अपनी जगह न छोड़ो, और परिणामके लिए तैयार रहो।' कोई उन्हें जबरदस्ती हटा नहीं सकता। और अगर वे हटाये भी जायेंगे तो उनकी पुकार सुनी जायेगी, जब कि अखबारोंमें छपे लेख उनके किसी काम नहीं आयेंगे।

सेवाग्राम, ८ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १४-६-१९४२

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२३८. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
८ जून, १९४२

चि० अमृत,

तुम्हारा पत्र मिला।

सुशीला यहाँ १८ तारीखको एक हफ्तेके लिए आ रही है। मेरा खयाल है कि वह प्रथम रही है, जो कि पाँच उम्मीदवारोंमें कोई बड़ी बात नहीं है। उसने जो स्थान प्राप्त किया है, उसके बारेमें उसने कुछ नहीं कहा है।

आशा है कि शम्मीकी आँखोंमें कोई चिन्ता करने-जैसी तकलीफ नहीं है।

जवाहरलाल कल आया। वह सेवाग्राममें सोया। मौलाना कल आ रहे हैं।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१३०) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७४३९ से भी

२३९. पत्र : दत्तात्रेय बा० कालेलकरको

८ जून, १९४२

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला। नया कोई काम हाथमें लेने से पहले तुम्हें मुझसे पूछना चाहिए, यह करार तो हमारे बीच कबसे है। आज नया क्या करना है? तुमने बहुतसी जिम्मेदारियाँ अपने सिर ले ली हैं और हिन्दुस्तानीका काम मामूली नहीं है। फिर भी यह जिम्मेदारी तो निबाहनी ही पड़ेगी। हो सके सो करो। और कहीं जाने से तुम्हें साफ इनकार कर देना चाहिए, फिर चाहे वनस्थली जाने की बात हो या वेड़छी या आंबला। अपने किये हुए निर्णय तुम्हें याद न रहते हों तो अपने निर्णय तुम्हें अमृतलाल या सरोजको बता देने चाहिए जिससे कि वे उनकी याद दिलायें और उनका पालन करायें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९५८) से

२४०. पत्र : वल्लभराम वैद्यको

सेवाग्राम
८[1] जून, १९४२

भाई वल्लभराम,

तुम्हारा पूरा पत्र मैं आज ही पढ़ सका। उससे तुम्हारा मन समझने में मदद तो मिली, लेकिन मुझे सन्तोष नहीं हुआ। क्योंकि जो काम तुम करना चाहते हो, वह इतनेसे पूरा होगा नहीं। जैसा तुम चाहते हो, वैसा बगीचा अनेक वैद्योंने लगाया है। तुम उसमें कुछ सुधार करोगे, कुछ नया जोड़ोगे, यह ठीक है, लेकिन वैद्योंको नहीं सुधार सकोगे।

मैंने तो अपनी सारी कला वैद्योंको सौंप देने का वचन दिया है, लेकिन मैं बिलकुल निराश हुआ हूँ। लक्ष्मीपति यहाँ बसना चाहते थे। उन्होंने पूरी तैयारी कर ली, लेकिन फिर आये ही नहीं। एक रोगीको उनके पास भेजा था। वह अच्छा हो गया है, ऐसा कहकर उन्होंने उसे चलता कर दिया। वह रोगी जैसा गया था वैसा ही वापस आ गया। मैंने तुम्हें यहाँ बसने और प्रयोग करने के लिए ललचाया, लेकिन तुम्हारे मार्गमें विघ्न आये।

इतना कहने के बाद भी मेरे आशीर्वाद तो तुम्हारे साथ हैं ही। तुम्हारा उद्देश्य शुभ है, वह सफल हो।

क्या साहस, क्या उद्यम, क्या ज्ञान, इस समय तो एलोपैथीके पास हैं। यह वर्धमान विद्या है। इसमें दोष बहुत हैं। इसका औषध-भण्डार विशाल होते हुए भी बहुत सीमित है। लेकिन इसका कार्य होता है एक पद्धतिके अनुसार; इसलिए आयुर्वेद में जो विशेष है, वह यह अपना सकेगी। लेकिन आयुर्वेद अगर इसकी विशेषता अपनाने जाये तो उसके पास फिर कुछ औषधियोंके सिवाय अपना क्या रह जायेगा? यह प्रश्न विचारणीय है।

श्री वल्लभराम वैद्य
२३, सौराष्ट्र सोसाइटी
अहमदाबाद

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९२१) से; सौजन्य : वल्लभराम वैद्य। प्यारेलाल पेपर्स भी; सौजन्य : प्यारेलाल

१. प्यारेलाल पेपर्समें '९ जून' है।

२४१. पत्र : कृष्णचन्द्रको

८ जून, १९४२

चि० कृ० चं०,

रामप्रकाशजीके बारेमें तुम्हारी बात तो सही है लेकिन ऐसे लोगोंको हजम करने की शक्ति हमारेमें होनी चाहिये। ऐसे लोगोंके किये कुछ-न-कुछ काम निकालना चाहिये। अगर न कर सके तो साफ कह देना चाहिये कि यहां नहीं रह सकते हैं।

तुमारे पहले खतके बारेमें इतना कि अब तो जो काम करते हैं करते रहो। जब कहोगे मैं लिखा डालूंगा। जबतक चि० के लिये अनादर है शांत रहन ही ठीक है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४३०) से। एस० एन० २४४८१ से भी

२४२. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
९ जून, १९४२

चि० अमृत,

जवाहरलालके साथ मेरी लम्बी और आनन्ददायी चर्चाएँ हो रही हैं। आजकल यहाँ मेरे पास जवाहरलालकी सिफारिशसे एक पत्रकार हैं। वे कल जा रहे हैं। उनका नाम लुई फिशर है।

खुर्शेदबहन अभी भी यहाँ है। वह मेहमानोंकी देखभाल करती रही है। मौलाना आज रात आ रहे हैं।

बनारससे आया यह एक पत्र भेज रहा हूँ। शायद तुम्हें वह बात याद होगी।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१३१) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७४४० से भी

२४३. पत्र : भगवानदासको

सेवाग्राम
९ जून, १९४२

बाबूजी,

आपका शुभ खत मिला। बड़ा आनंद हुआ। आपकी किताब भी मिल गई थी। मैंने उसे इधर उधर देख भी ली।

मेरा ख्याल है जो मैं आज कर रहा हूं वही आप चाहते हैं। कुछ भी हो आपके उद्यम पर मैं मुग्ध हूं। ईश्वर आपको हिंदुस्तानके लिए, जगतके लिये वर्षोंतक हमारे बीचमें रखे।

आपका,
मो० क० गांधी

बाबूजी डॉ० भगवानदास
सेवाश्रम
बनारस

पत्रकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

२४४. पत्र: कृष्णचन्द्रको

९ जून, १९४२

चि० कृ० चंद्र,

तुम्हारा खत कैसा। मैंने माना था कि मैं तुमको निर्भयतासे जो चाहुं लिख सकता हूं और उसका सीधा हि अर्थ करोगे।

मैंने थोड़े तुम्हारेमें विश्वास खोकर लिखा है। मै मानता हूं कि जबतक तुम में चि० के प्रति संचालककी हैसीयतसे आदर नहीं होता है तबतक जो काम किया जाय वह कृष्णार्पण बुद्धिसे। ऐसा करने से चित्तकी प्रसन्नता रहेगी और काम वही होगा। यह बात मेरी दृष्टिसे तो बिलकुल समजने जैसी है। लेकिन कुछ फरक है तो बताओ। तुम्हारे दुःखी होने का तो कोई कारण नहीं है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४२४) से। एस० एन० २४४७८ से भी

२४५. पत्र: दत्तात्रेय बा० कालेलकरको

१० जून, १९४२

चि० काका,

तुम्हारी चिट्ठी कल रात प्रार्थनाके बाद मिली। मुझे लगता है, कृष्ण वर्माको[1] यहाँ बुलाना ठीक नहीं होगा। अच्छा यह हो कि तुम उसे १५ दिनका समय दो। उससे सुभीता होगा। फायदा हो रहा है या नहीं, यह तुरन्त तुम्हारी समझमें आ जायेगा। फायदा न दिखाई दे तो मत ठहरना। लेकिन मुझे लगता है, १५ दिनसे पहले तुम्हें पता नहीं चलेगा। जितनी जल्दी जाओ उतना अच्छा। आज जा सको तो आज ही। जबतक श्रीमन आयेगा, तबतक तो तुम लौट आओगे।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

वर्माका पत्र[2] इसके साथ है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९५९) से

२४६. पत्र: दत्तात्रेय बा० कालेलकरको

१० जून, १९४२

चि० काका,

तुम बम्बई जा रहे हो, यह अच्छा है। याद रखना कि तुम वर्मासे जो प्राप्त हो सके वह लेने तो जा ही रहे हो, लेकिन असलमें उसे अपने सत्संगका लाभ देने भी जा रहे हो। उसकी बुरी आदतोंपर अंकुश लगाना। वह बहुत बोलता है। भाषा भी उसकी शुद्ध नहीं होती। उसे टोकना। प्रेमसे की गई आलोचना वह सुनता है, और अपनेमें सुधार भी करता है। उसके उपचारोंको समझ लेना। यदि कुछ भी पसन्द न आये तो छोड़ देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९६०) से

१. देखिए "पत्र: कृष्ण वर्माको", पृ० १५२।
२. यह उपलब्ध नहीं है।

२४७. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

सेवाग्राम, वर्धा (म० प्रा०)
१० जून, १९४२

भाई वल्लभभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। ढेबरभाईसे जी भरकर बातें हुईं।

मुझे लगता है, इन तिलोंमें तेल नहीं। तुम उनसे[1] कांग्रेसजनकी हैसियत से नहीं, प्रजामण्डलकी तरफसे नहीं, बल्कि एक पुराने मित्रके नाते मिलो, इसमें कोई सार नहीं। ऐसे नहीं मिला जा सकता।

तुम कोई वक्तव्य न दो। समझौता हुआ था या नहीं, इसमें हम न पड़ें। जो अपने पैरोंपर खड़े रह सकें वे रहें और लड़ते रहें। राजा लोग आपसमें व्यापार करना चाहें तो करें। परन्तु बहिष्कार-समिति कायम रहे और बहिष्कार चलाती रहे। यदि एक आदमी भी टेक कायम रखे तो वह लड़ाईका प्रतिनिधि माना जायेगा। कहा यही जायेगा कि लड़ाई चल रही है, भले ही उसका बाजार-भाव धेलेके बराबर भी न माना जाये।

मौलाना साहबसे मिलने (वर्धा शहर) जा रहा हूँ। वे वास्तवमें कमजोर हो गये हैं। आशा है, तुम अच्छे होंगे।

बापूके आशीर्वाद

सरदार वल्लभभाई पटेल
६८, मैरीन ड्राइव
बम्बई

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–२ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २७८

१. लीमड़ीके दरबार फतेहसिंह; देखिए "पत्र : वल्लभभाई पटेलको", पृ० २०२।

२४८. पत्र : कृष्णचन्द्रको

सेवाग्राम
१० जून, १९४२

चि० कृ० चंद्र,

तुमको थकान कैसे? तुम्हारा कहना विलकुल ठीक है कि चि० के प्रति या किसीके प्रति वैर क्या विग्रह क्या? इसलिये जो माना गया है वह सब काम आनंदित होकर करो। उसमें रुकावट होनेवाली नहीं है। मेरा साथ और मेरे आशीर्वाद तो है ही।

वापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४३१) से

२४९. पत्र : डॉ० ताराचन्दको

सेवाग्राम
१० जून, १९४२

भाई ताराचंदजी,

आपका खत मिला था। आपका उत्तर वैसे ही मैंने 'हरिजन' के लिये भेज दिया है।[1]

हिन्दुस्तानी प्रचार सभामें आपको तो रहना ही है। मौलवी अब्दुल हक साहेबको खेंचने की मेरी कोशीश तो वरावर चल रही है। मौलवी साहेबका उत्तर आया है। इसके साथ रखता हूं। आप जो प्रयत्न हो सके करें।

खत वापस करें।

आपका,
मो० क० गांधी

पत्रकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१. देखिए "डॉ० ताराचन्द और हिन्दुस्तानी", पृ० २०८-१०।

२५०. भेंट : प्रेस्टन ग्रोवरको[1]

वर्धा
[१० जून, १९४२][2]

प्र० : इस युद्धके बाकी दिनोंमें आपकी गतिविधियोंका स्वरूप क्या होगा, इस बारेमें अमेरिकामें और हिन्दुस्तानमें कई सवाल पूछे जा रहे हैं। मैं आपसे यही जानना चाहता हूँ।

गांधीजी : लेकिन क्या आप मुझे बता सकते हैं कि यह युद्ध कब समाप्त होगा?

प्र० : चारों ओर यह अनुमान है कि आप किसी नये आन्दोलनकी योजना बना रहे हैं। उसका स्वरूप क्या होगा?

उ० : वह तो इसपर निर्भर करता है कि सरकारकी और आम जनताकी प्रतिक्रिया क्या रहती है। अभी तो मैं हिन्दुस्तानके लोकमतका और बाहरकी दुनिया की प्रतिक्रियाका पता लगा रहा हूँ।

प्र० : जो नया सुझाव आपने पेश किया है, उसीकी प्रतिक्रियाकी बात आप कर रहे हैं न?

उ० : जी हाँ, मैंने जो कहा है कि हिन्दुस्तानसे अंग्रेजोंका शासन आज ही उठ जाना चाहिए, मैं उसीकी प्रतिक्रियाकी बात कर रहा हूँ। आप इससे चौंकते हैं क्या?

प्र० : जी नहीं; यह तो आप माँगते ही रहे हैं और इसके लिए काम भी करते रहे हैं।

उ० : सच है। इसके लिए काम तो मैं कई सालोंसे कर रहा हूँ। लेकिन अब उसने एक निश्चित रूप ले लिया है, और मैं कहता हूँ कि विश्व-शान्तिके लिए, और चीन, रूस व मित्र-राष्ट्रोंके ध्येयके लिए हिन्दुस्तानसे ब्रिटिश सत्ताका आज ही अन्त हो जाना चाहिए। मैं आपको यह समझाना चाहता हूँ कि इससे मित्र-राष्ट्रोंका ध्येय कैसे आगे बढ़ेगा। पूर्ण स्वतन्त्रता पाकर हिन्दुस्तानकी शक्तियाँ मुक्त हो जायेंगी, वह इस विश्व-संकटके निवारणमें हाथ बँटाने को आजाद हो जायेगा। आज तो मित्र-राष्ट्र एक भारी लाशको उठाये हुए हैं। एक महान राष्ट्र ब्रिटेनके, बल्कि मैं तो यहाँतक

१. यह महादेव देसाईके लेख "थ्रो अवे द कैरकस" (लाशसे छुटकारा पाओ) से लिया गया है। एसोशिएटेड प्रेस ऑफ अमेरिकाके प्रेस्टन ग्रोवर इस भेंटके लिए ही विशेष रूप से नई दिल्ली से आये थे।

२. गांधी—१९१५-१९४८ के अनुसार

कहूँगा कि मित्र-राष्ट्रोंके, पैरोंमें लोथकी तरह पड़ा है। क्योंकि अमेरिका मित्र-राष्ट्रोंका प्रमुख भागीदार है। वही उन्हें लड़ाईके लिए धन, यान्त्रिक क्षमता और अपने अपार साधन दे रहा है। इस प्रकार अमेरिका भी इस अपराधमें भागीदार है।

प्र० : क्या आप यह सम्भव समझते हैं कि पूर्ण स्वतन्त्रता मिल जाने पर अमेरिकाकी और मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाएँ हिन्दुस्तानमें रहकर लड़ सकेंगी?

उ० : हाँ, मैं समझता तो हूँ। स्वतन्त्रता मिलने के बाद ही आप हिन्दुस्तानमें सच्चे सहयोगके दर्शन कर सकेंगे। बिना उसके आपकी सारी मेहनत बेकार हो सकती है। आज तो ब्रिटेन हिन्दुस्तानके साधनका उपयोग इसलिए कर रहा है कि वह उसके कब्जेमें है। पर कल जो मदद मिलेगी, वह 'स्वतन्त्र' हिन्दुस्तानकी सच्ची मदद होगी।

प्र० : क्या आप यह सोचते हैं कि पराधीन हिन्दुस्तान मित्र-राष्ट्रोंके लिए जापानी आक्रमणका मुकाबला करने में बाधक है?

उ० : सो तो है ही।

प्र० : मैंने जो यह पूछा कि क्या मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाएँ हिन्दुस्तानमें रहकर लड़ सकेंगी, वह यह जानने के खयालसे कि कहीं आप यह तो नहीं सोच रहे कि हिन्दुस्तानसे तमाम फौजें हटा ली जायें?

उ० : यह लाजिमी नहीं है।

प्र० : इसी बारेमें काफी गलतफहमी है।

उ० : इधर मैं जो-कुछ लिख रहा हूँ, उस सबको आप ध्यानसे पढ़िए। इस बारके 'हरिजन' में मैंने इस सवालकी पूरी चर्चा की है।[१] अगर हिन्दुस्तानकी मुकम्मल आजादीकी शर्तें उन्हें मंजूर हो तो फिर मेरी यह माँग नहीं रहती कि उन्हें हिन्दुस्तान छोड़कर चले ही जाना चाहिए। उस हालतमें तो मैं उनके यहाँसे हटने का आग्रह कर ही नहीं सकता, क्योंकि जापानको हिन्दुस्तानमें बुलाने के आरोपका मैं अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे विरोध करना चाहता हूँ।

प्र० : लेकिन मान लीजिए कि आपका सुझाव ठुकरा दिया जाये तो उस हालतमें आपका दूसरा कदम क्या होगा?

उ० : वह एक ऐसा कदम होगा जिसे सारी दुनिया महसूस करेगी। मुमकिन है कि उससे अंग्रेजी फौजोंके काममें कोई रुकावट न पड़े, लेकिन अंग्रेजोंको उस ओर अपना ध्यान तो देना ही पड़ेगा। ब्रिटेन अगर मेरे सुझावको ठुकराता है और यह कहता है कि उसकी अपनी जीतके लिए या चीनकी रक्षाके लिए हिन्दुस्तानको गुलाम ही रहना चाहिए तो यह उसका अनाचार ही होगा। मैं इस अपमानजनक स्थितिको स्वीकार नहीं कर सकता। स्वतन्त्र हिन्दुस्तान चीनकी रक्षामें एक प्रमुख भूमिका अदा करेगा। आज तो मैं नहीं मानता कि वह चीनकी कुछ भी सच्ची मदद कर

१. देखिए "प्रश्नोत्तर", पृ० २३८-४०।

रहा है। अबतक हम परेशान न करनेकी नीति पर चलते रहे हैं। अब भी हम उसी पर कायम रहेंगे। लेकिन हम यह बरदाश्त नहीं कर सकते कि अंग्रेज सरकार हिन्दुस्तानपर अपनी जकड़को और मजबूत करने के लिए हमारी इस नीतिसे अनुचित लाभ उठाये। और आज यही हो रहा है। उदाहरणके लिए, परेशान न करनेकी अपनी नीतिका पुरस्कार हमें यह मिला है कि हजारों लोगोंको अपने घरबार छोड़कर चले जाने का हुक्म दिया जा रहा है। वे कहाँ जायें, इसका कोई ठिकाना नहीं, जोतने-बोने को कोई जमीन नहीं, और गुजारेका कोई सिलसिला नहीं। किसी स्वतन्त्र देशमें ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। हिन्दुस्तान इस तरहके बरतावके आगे झुक जाये, यह मैं सह नहीं सकता। इसका मतलब तो और भी ज्यादा अपमान, और भी ज्यादा गुलामी है। अगर सारा देश इस तरहकी गुलामीको मंजूर कर ले तो स्वतन्त्रताको सदाके लिए अलविदा ही कहना होगा।

प्र० : तो आपकी माँग यही है न कि वे देशके अन्दरूनी मामलोंमें अपनी जकड़ ढीली करें? अगर ऐसा हो जाये तो आप फौजी काममें रुकावट नहीं डालेंगे?

उ० : यह मैं नहीं कह सकता। मैं सच्ची स्वतन्त्रता चाहता हूँ। अगर फौजी हलचल हिन्दुस्तानपर अंग्रेजोंकी जकड़को मजबूत करनेवाली हुई तो मुझे उसका भी विरोध करना होगा। मैं इतना उदार नहीं हूँ कि अपनी स्वतन्त्रता खोकर भी मदद करता रहूँ। और आपको तो मैं यह समझाना चाहता हूँ कि एक मुर्दा चीज किसी जिन्दा चीजकी मदद नहीं कर सकती। जबतक मित्र-राष्ट्र हिन्दुस्तानकी गुलामी और नीग्रो व आफ्रिकी जातियोंकी दासताके दोहरे पापकी गठरीको अपने सिर लादे हुए हैं, तबतक वे यह दावा नहीं कर सकते कि वे न्यायके लिए लड़ रहे हैं।

श्री ग्रोवरने मित्र-राष्ट्रोंकी विजयके 'बाद' हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताका चित्र खींचना शुरू किया, और कहा कि विजयके उन लाभोंको प्राप्त करने के लिए थोड़ी राह क्यों न देखी जाये। गांधीजी ने उन्हें याद दिलाया कि पिछली लड़ाईके बाद हिन्दुस्तानको रौलट अधिनियम, मार्शल लॉ और अमृतसरके जलियाँवाला बागके उपहार मिले थे। श्री ग्रोवरने कहा कि मैं तो आर्थिक और औद्योगिक समृद्धिकी बात कर रहा हूँ। उसके लिए सरकारकी मेहरबानीकी जरूरत नहीं होगी; परिस्थितियाँ खुद उसे प्रस्तुत कर देंगी, और आर्थिक समृद्धि देशको स्वराज्यकी दिशामें एक कदम आगे ले जायेगी। गांधीजी ने कहा कि वे यत्किंचित् औद्योगिक लाभ अनिच्छुक सरकारसे जबरदस्ती प्राप्त किये गये। लड़ाईके बाद मिलनेवाले ऐसे लाभोंको मैं कोई महत्त्व नहीं देता। और जो लाभ मिलेंगे भी, मुमकिन है कि वे जंजीरको और भी जकड़नेवाले साबित हों। फिर, लड़ाईके दौरान सरकार जिस औद्योगिक नीतिसे काम ले रही है, उसे देखते हुए तो किसी भी तरहके लाभकी बात ही शंकास्पद मालूम होती है। श्री ग्रोवरने इस मुद्देपर जोर नहीं दिया।

प्र० : आप अमेरिकासे यह तो आशा नहीं रखते कि वह ब्रिटेनको हिन्दुस्तानसे छूट जाने के लिए समझाने में कुछ मदद करे?

उ० : मैं रखता तो हूँ।

प्र० : उसके सफल होने की कोई सम्भावना?

उ० : मैं तो समझता हूँ कि सम्भावना है और बहुत-कुछ है। अगर अमेरिका को विश्वास हो कि हिन्दुस्तानका पक्ष न्यायका पक्ष है तो उससे मुझे यह उम्मीद रखने का पूरा हक है कि वह न्यायके पक्षमें अपने प्रभावका पूरा-पूरा उपयोग करेगा।

प्र० : क्या आपको यह नहीं लगता कि अमेरिकी सरकार इस नीतिसे बँध गई है कि अंग्रेजोंको हिन्दुस्तानमें रहना है?

उ० : मैं आशा रखता हूँ कि ऐसी कोई बात नहीं है। लेकिन ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ इतने चालाक हैं कि अमेरिकाके इस नीतिसे बँधे न होने और प्रेसीडेंट रूजवेल्ट को व अमेरिकी जनताकी हिन्दुस्तानको मदद पहुँचाने की इच्छा होने पर भी, वे उन्हें सफल न होने दें। ब्रिटेन अमेरिकामें हिन्दुस्तानके खिलाफ इतना सुसंगठित प्रचार करता है कि वहाँ हमारे जो मुट्ठी-भर मित्र हैं, उनकी आवाज कभी सुनाई ही नहीं पड़ सकती। और राजनीतिक प्रणाली तो इतनी कठोर है कि प्रशासनपर लोकमतका प्रभाव ही नहीं पड़ता।

प्र० : धीमे-धीमे पड़ सकता है।

उ० : धीमे-धीमे? मैंने बहुत राह देखी। अब और नहीं देख सकता। यह एक भयंकर त्रासदी है कि इस युद्धमें चालीस करोड़ लोगोंकी कोई आवाज ही न हो। अगर हमें अपनी भूमिका अदा करने की आज़ादी हो तो हम जापानकी बढ़तीको रोक सकते हैं और चीनको बचा सकते हैं।

जब श्री ग्रोवरने देखा कि अंग्रेजों या मित्र-राष्ट्रोंकी फौजोंके बारेमें गांधीजी का यह आग्रह नहीं है कि वे अक्षरशः हिन्दुस्तान छोड़कर चली जायें तो अपनेको मित्र-राष्ट्रोंकी स्थितिमें रखकर वे यह हिसाब लगाने लगे कि इस सौदेसे क्या फायदा हो सकता है। अलबत्ता, गांधीजी जो स्वतन्त्रता चाहते हैं, वह किसी सेवाके बदलेमें नहीं, बल्कि अधिकारके रूपमें और पुराने कर्जको अदायगीके रूपमें ही चाहते हैं।

प्र० : यदि हिन्दुस्तानकी आजादीकी घोषणा कर दी जाये तो वह चीनकी रक्षाके लिए क्या-क्या करेगा?

उ० : इतना तो मैं फौरन ही कह सकता हूँ कि वह बहुत-कुछ कर सकेगा। लेकिन अभी मैं उसकी तफसील नहीं दे सकता। क्योंकि मैं नहीं जानता कि देशमें किस तरहकी हुकूमत कायम होगी। आज हिन्दुस्तानमें कई राजनीतिक संस्थाएँ हैं। मैं आशा तो यह रखता हूँ कि वे कोई ठीक राष्ट्रीय समाधान निकाल लेंगी। आज वे कोई सशक्त-सुसंगठित दल नहीं हैं। वे अक्सर अंग्रेज सरकारके असरमें आ जाती हैं, और वे सरकारकी तरफ आशा-भरी निगाहसे देखती हैं। उसकी राजी-नाराजीका उनपर बहुत असर होता है। इस कारण आज सारा वातावरण दूषित और सड़ा हुआ है। किसी लाशके फिर जिन्दा हो उठने की सम्भावनाओंको

पहलेसे कौन जान सकता है? इस वक्त तो हिन्दुस्तान मित्र-राष्ट्रोंपर एक भारी बोझ ही बना हुआ है।

प्र० : क्या भारी बोझसे आपका मतलब यह है कि वह यहाँ ब्रिटेन और अमेरिकाके हितके लिए खतरनाक है?

उ० : हाँ, खतरनाक इसलिए कि नाराज और असन्तुष्ट हिन्दुस्तान किस वक्त क्या करेगा, सो आप जान नहीं सकते।

प्र० : सच है। लेकिन मैं इस बातका निश्चय कर लेना चाहता हूँ कि अगर अमेरिका ब्रिटेनपर वास्तविक दबाव डाले तो क्या आपकी ओरसे उसे जोरदार समर्थन प्राप्त होगा?

उ० : मेरी ओरसे? तिहत्तर सालकी इस उम्रमें मेरी स्थिति ऐसी नहीं है कि मुझपर उम्मीद बाँधी जाये। लेकिन आप एक स्वतन्त्र और शक्तिशाली राष्ट्रका उतना सहयोग — जितना वह खुशीसे दे सकता है — प्राप्त कर सकेंगे। मेरा सहयोग तो रहेगा ही। जहाँतक मुझसे होता है, मैं हर हफ्ते अपने लेखों द्वारा प्रभाव पैदा करता ही हूँ। लेकिन उसके मुकाबले हिन्दुस्तानका अपना प्रभाव बेहद ज्यादा है। आज चारों ओर असन्तोष फैला हुआ है, इसलिए आगे बढ़ते जापानियोंके प्रति सक्रिय शत्रुताका भाव नहीं है। लेकिन जिस क्षण हम स्वतन्त्र हो जायेंगे, उसी क्षणसे हम स्वतन्त्रताकी पूजा करनेवाले और अपनी पूरी ताकतसे उसकी रक्षा करनेवाले एक राष्ट्रमें बदल जायेंगे और फलतः मित्र-राष्ट्रोंके सहायक भी बन जायेंगे।

प्र० : बतौर मिसालके मैं आपसे यह पूछता हूँ कि क्या उस फर्कको मैं बर्माने जो किया और रूस जो कर रहा है उनके फर्क-सा मान सकता हूँ?

उ० : हाँ, आप ऐसा कह सकते हैं। बर्माको हिन्दुस्तानसे अलग करने के बाद वे उसे स्वतन्त्र कर सकते थे। लेकिन उन्होंने वैसा कुछ किया नहीं। वे उसी पुरानी शोषण-नीतिपर ही डटे रहे। इस कारण उन्हें बर्मियोंका सहयोग नहीं मिला। उलटे शत्रुता या निष्क्रियता ही मिली। वे न अपने लिए लड़े, न मित्र-राष्ट्रोंके लिए। इसी परसे आप एक सम्भावनाकी कल्पना कीजिए। मान लीजिए कि जापान मित्र-राष्ट्रों को हिन्दुस्तानसे ज्यादा सुरक्षित किसी दूसरे स्थानपर हटने को मजबूर करे तो 'आज' मैं यह नहीं कह सकता कि उस हालतमें समूचा हिन्दुस्तान जापानका मुकाबला करने को खड़ा हो जायेगा। मुझे डर है कि यहाँ भी कुछ लोग वैसा ही शर्मनाक काम करेंगे जैसा कि कुछ बर्मियोंने अपने देश में किया। मैं तो यह चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान जापानका तबतक विरोध करे जबतक एक भी हिन्दुस्तानी जिन्दा है। स्वतन्त्र होने पर वह ऐसा ही करेगा। उसके लिए वह एक नया अनुभव होगा, और चौबीस घंटोंके अन्दर ही उसका मानसिक कायापलट हो जायेगा। उस दशामें सभी दल एक-मत होकर काम करना शुरू कर देंगे। अगर आज इस जीवन्त स्वतन्त्रताकी घोषणा कर दी जाये तो मुझे इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दुस्तान एक बलवान मित्र बन जायेगा।

इसके बाद श्री ग्रोवरने आजादीकी एक रुकावट साम्प्रदायिक फूटका जिक्र किया, लेकिन फिर खुद यह भी कहा कि स्वतन्त्र होनेसे पहले अमेरिकाके विभिन्न राज्योंमें भी बहुत एकता नहीं थी।

गां० : इस सम्बन्धमें मैं इतना ही कह सकता हूँ कि तीसरे पक्षके कुप्रभावसे मुक्त होते ही सब दलोंको वास्तविक परिस्थिति सामने खड़ी नजर आयेगी, और वे आपसी एकता बढ़ाने की कोशिशमें लग जायेंगे। ९० फीसदी सम्भावना तो यही है कि हमें अलग रखनेवाली अंग्रेजी हुकूमतके हटते ही साम्प्रदायिक झगड़े मिट जायेंगे।

प्र० : अगर आज ही औपनिवेशिक दर्जेकी घोषणा कर दी जाये तो क्या वह उतनी ही उपयोगी नहीं होगी?

उ० : बिलकुल नहीं। ऐसा कच्चा काम हमें नहीं चाहिए। पैबन्दलगी स्वतन्त्रता नहीं चाहिए। स्वतन्त्रता इस या उस दलको नहीं देनी है, बल्कि सारेके सारे हिन्दुस्तान को देनी है। मैं कहता हूँ कि हिन्दुस्तानपर अधिकार जमाना ही गलत था। अब हिन्दुस्तानको उसके हालपर छोड़कर ही उस गलतीको ठीक किया जाना चाहिए।

प्र० : एक आखिरी सवाल और। राजाजी ने जो गतिविधि शुरू की है, उसके बारेमें आपका क्या रुख है?

उ० : मैं यह ऐलान कर चुका हूँ कि अब सार्वजनिक रूपसे मैं राजाजी की चर्चा नहीं करूँगा। अपने आदरणीय साथियोंको लेकर चर्चा करने में कोई शोभा नहीं है। उनके साथ मेरे मतभेद ज्योंके-त्यों कायम हैं। लेकिन कुछ विषय इतने पवित्र होते हैं कि सार्वजनिक रूपसे उनकी चर्चा नहीं ही की जानी चाहिए।

लेकिन श्री ग्रोवरके मनमें खास सवाल पाकिस्तानका नहीं था। वे तो राष्ट्रीय सरकारकी स्थापनाके लिए जो गतिविधि राजाजी ने शुरू की है, उसके बारेमें पूछना चाहते थे। उन्होंने अपनी विवेक-बुद्धिका परिचय देते हुए यह स्पष्ट किया कि राजाजी "अंग्रेज सरकार द्वारा प्रेरित नहीं किये जा सकते। बात सिर्फ इतनी ही है कि आज उनकी विचारधाराका मेल सरकारके साथ बैठता है।"

गां० : आप सच कहते हैं। आज जापानके डरसे वे अंग्रेजी राज्यको बर्दाश्त कर सकते हैं। युद्धके खत्म होने तक वे स्वतन्त्रताके सवालको मुल्तवी रखने के लिए तैयार हैं। इसके विपरीत, मेरा कहना यह है कि अगर युद्धमें निश्चित रूपसे जीतना है तो हिन्दुस्तानको आज ही अपनी भूमिका अदा करने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। मुझे अपनी स्थितिमें कहीं कोई दोष दिखाई नहीं देता। मैं अपने मनके साथ बहुत तर्क-वितर्क करने के बाद इस परिणामपर पहुँचा हूँ। मैं कुछ भी उतावलीमें या गुस्सेमें नहीं कर रहा हूँ। जापानियोंको जगह देने का मेरे मनमें रत्ती-भर भी खयाल नहीं है। नहीं, मुझे तो विश्वास है कि हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता अकेले हिन्दुस्तानके लिए ही नहीं, बल्कि चीन और मित्र-राष्ट्रोंके हेतुके लिए भी जरूरी है।

प्र० : चीनको बचाने के लिए आप निश्चित रूपसे क्या-क्या कीजिएगा ?

उ० : स्वतन्त्रताके मिलते ही सारा देश जापानके खिलाफ हो जायेगा। आज यह बात नहीं है। राजाजी इस बातको जानते हैं, और यह चीज उन्हें परेशान कर रही है। हरएक समझदार देशभक्तको इससे परेशानी होनी चाहिए। मैं भी कुछ कम परेशान नहीं रहा, लेकिन मैं जिस परिणामपर पहुँचा हूँ वह उनके परिणामसे बिलकुल उल्टा है। अगर हिन्दुस्तानको ब्रिटेनके चरणोंमें रहना पड़ा तो चीनको भी जापानके चरणोंमें रहना पड़ सकता है। मुझे लाचार होकर इस भाषाका प्रयोग करना पड़ता है। मैं ऐसा ही महसूस करता हूँ। मुमकिन है कि आपको यह बात बहुत बड़ी और चौंकानेवाली मालूम हो। लेकिन यह चौंकानेवाली ही क्यों? आप स्वतन्त्रताके लिए तरसते ४० करोड़ लोगोंका विचार कीजिए। वे चाहते हैं कि उन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया जाये। वे जंगली नहीं हैं। उनके पास प्राचीन संस्कृति है, प्राचीन सभ्यता है, विविध और समृद्ध भाषाएँ हैं। ब्रिटेनको शर्म आनी चाहिए कि वह ऐसे लोगोंको अपनी गुलामी में जकड़े हुए है। शायद आप कहें कि 'आप इसी योग्य हैं।' अगर आपका यही खयाल हो तो मैं कहूँगा कि किसी भी राष्ट्रके लिए यह उचित नहीं है कि वह दूसरे किसी राष्ट्रको अपना गुलाम बनाकर रखे।

प्रे० ग्रो० : मैं इसे स्वीकार करता हूँ।

गां० : मैं तो कहता हूँ कि अगर कोई राष्ट्र खुद गुलाम बनना चाहे तो भी उसे गुलाम बनाकर रखने में शासक राष्ट्रको अपनी तौहीन महसूस होनी चाहिए। लेकिन आपकी अपनी कठिनाइयाँ हैं। आपको अभी गुलामीका नाश करना है!

प्र० : आप अमेरिकाकी बात करते हैं?

उ० : जी हाँ, मैं आपके वर्णद्वेषकी और हब्शियोंको मनमाने ढंग से सताने की प्रवृत्ति वगैरहकी बात कर रहा हूँ। लेकिन आप यह तो चाहते नहीं कि मैं आपको इन तमाम बातोंकी याद दिलाऊँ।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २१-६-१९४२

२५१. भेंट : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिको[1]

[११ जून, १९४२ के पूर्व][2]

प्र० : आखिरी दिनतक आप यह कहते रहे कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके बिना स्वराज स्थापित नहीं हो सकता। अब आप ऐसा क्यों कहते हैं कि जबतक भारत आजादी हासिल नहीं कर लेता, तबतक कोई एकता नहीं होगी?

उ० : समय यदि कृपालु मित्र और मरहम है तो वह निर्दय शत्रु भी है। मैं हिन्दू-मुस्लिम एकताके सबसे पुराने प्रेमियोंमें से एक होने का दावा करता हूँ और आज भी हूँ। मैं अपने-आपसे पूछता रहा हूँ कि सब लोगोंने, जिनमें मैं भी हूँ, हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकता कराने का पूरे मनसे प्रयत्न किया, फिर भी वह असफल और इतनी बुरी तरह असफल क्यों हो गया कि मैं तो अब उनके लिए बिलकुल ही अविश्वासयोग्य बन गया हूँ और कुछ मुस्लिम समाचारपत्रोंमें मुझे भारतमें इस्लामका सबसे बड़ा शत्रु बताया गया है। इस विचित्र प्रक्रियाका कारण मैं यही बता सकता हूँ कि एक तीसरी शक्ति, जान-बूझकर वैसा न चाहते हुए भी, सच्ची एकता नहीं होने देती। इसलिए मैं न चाहते हुए भी इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि भारतमें ब्रिटिश सत्ता ज्यों ही समाप्त होगी, दोनों जातियोंमें तुरन्त मेल हो जायेगा। यदि कांग्रेस और लीगका तात्कालिक उद्देश्य स्वतन्त्रता-प्राप्ति है तो पहले आपसी समझौतेकी जरूरत महसूस किये बिना, सब लोग दासतासे मुक्तिके लिए मिलकर संघर्ष करेंगे। जब दासता मिट जायेगी, तब न केवल ये दोनों संगठन बल्कि सभी दल इसीमें अपना हित देखेंगे कि साथ मिलकर चलें और प्राप्त स्वतन्त्रताका पूरा उपयोग करके भारतकी प्रतिभाके अनुरूप एक राष्ट्रीय सरकारका निर्माण करें। मुझे इस-बातकी परवाह नहीं कि उसे क्या नाम दिया जाता है। वह जो भी हो, स्थायी होने के लिए उसे जनताका पूरे अर्थोंमें प्रतिनिधित्व करना होगा। और यदि उसे जनताकी इच्छापर आधारित होना है तो उसका प्रधानतया अहिंसात्मक होना जरूरी है। बहरहाल, मैं आशा करता हूँ कि मैं तो अपनी आखिरी साँसतक उसी उद्देश्यके लिए काम करता मिलूँगा, क्योंकि मैं अहिंसाकी स्वीकृतिके बिना मानवताके लिए कोई आशा नहीं देखता। हम हिंसाका दिवालियापन दिन-प्रति-दिन देख रहे हैं। यदि यह अर्थहीन क्रूर पारस्परिक हत्या जारी रहती है तो मानवताके लिए कोई आशा नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २१-६-१९४२

१ और २. महादेव देसाईके "ओनली इफ दे विद्ड्रॉ" (उनको हट जाने पर ही), ११-६-१९४२ से उद्धृत

२५२. दस्तकारी द्वारा शिक्षा[1]

[११ जून, १९४२ या उसके पूर्व][2]

श्रीमती आशादेवीने नीचे लिखे दिलचस्प आँकड़े भेजे हैं:

बिहारके चम्पारन जिलेके छोटे-से सघन इलाके बेतिया थानेमें बुनियादी तालीमकी जो २७ पाठशालाएँ चल रही हैं, गत अप्रैल, १९४२में उन्होंने अपने तीन साल पूरे कर लिये हैं। इन पाठशालाओंके दर्जा एक, दो और तीनका १९४१-४२के सालका जो सालाना आर्थिक लेखा तैयार हुआ है, वह बुनियादी तालीमके सभी कार्यकर्त्ताओंके लिए बहुत ही उत्साहप्रद है। यह लेखा बुनियादी तालीमके मासिक मुखपत्र 'नई तालीम' में ब्योरेवार प्रकाशित किया जायेगा। यहाँ तो हम उसकी मुख्य-मुख्य बातोंका संक्षिप्त सार ही बुनियादी तालीमकी प्रगतिमें रस लेनेवालोंकी जानकारीके लिए दे रहे हैं। इन २७ पाठशालाओंकी औसत हाजिरी पहले दर्जेमें ७०, दूसरेमें ७६, और तीसरेमें ७९ फीसदी रही, और, हरएक छात्रकी औसत कमाई दर्जा एकमें रु० ०-११-०, दर्जा दो में रु० २-४-२ और दर्जा तीनमें रु० ६-१-१ रही। सभी पाठशालाओंके कुल ३९० बालकोंने (औसत हाजिरीके अनुसार) दर्जा एक में कुल १०,२६४ घंटे काम करके रु० २६७-८-६, ३५६ बालकोंने (औसत हाजिरी के अनुसार) दर्जा दो में कुल १४,०८२ घंटे काम करके रु० ८०४-१३-८, और ३१९ बालकोंने (औसत हाजिरीके अनुसार) दर्जा तीनमें कुल १४,३६२ घंटे काम करके रु० १९३५-१४-११ कमाये; यानी कुल १,०६५ बालकोंने सारे सालमें रु० ३००८-२-१ कमाये। इन पाठशालाओंमें विद्यार्थियोंकी अधिकसे-अधिक औसत व्यक्तिगत कमाई दर्जा तीनमें रु० १५-१२-०, दर्जा दोमें रु० ६-२-० और दर्जा एकमें रु० २-१०-१ रही। चरखेपर अधिकसे-अधिक औसत गति दर्जा तीनमें फी घंटा ४८० तार और तकलीपर फी घंटा २८१ तार रही; दर्जा दोमें चरखे पर फी घंटा ३५० तार और तकलीपर फी घंटा २४२ तार रही; और दर्जा एकमें तकलीपर फी घंटा १६४ तार रही।

यहाँ ये आँकड़े आमदनी और उत्पादन दिखाने के लिए नहीं दिये गये हैं, यद्यपि अपने स्थानपर इनका भी महत्त्व है। शिक्षा-सम्बन्धी लेखेमें उत्पादन और आमदनीका

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।
२. हरिजनसेवक में इसपर ११ जून की तारीख दी गई है।

स्थान गौण ही होता है। यहाँ तो ये यह दिखाने के लिए दिये गये हैं कि नवयुवकोंकी शिक्षाके माध्यमके रूपमें दस्तकारीका शैक्षणिक मूल्य कितना ऊँचा है। स्पष्ट है कि उद्योग, सावधानी और तफसीलकी बातोंपर ध्यान दिये बिना इतना काम कभी नहीं हो सकता था।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २१-६-१९४२

२५३. प्रश्नोत्तर

अपीलका अर्थ

प्र० : ब्रिटिश सत्तासे यहाँसे हट जाने की जो अपील आपने की है, उसका क्या मतलब है? आपने हालमें इसके बारेमें बहुत-कुछ लिखा है। परन्तु ऐसा लगता है कि लोगोंके मनमें आपके ठीक अर्थके बारेमें भ्रम है।

उ० : जहाँतक मेरी अपनी रायका ताल्लुक है, विभिन्न दलोंकी इच्छा या माँगकी अपेक्षा किये बिना, ब्रिटिश सत्ताको यहाँसे पूरे तौरपर हट जाना चाहिए। लेकिन उनकी अपनी फौजी जरूरतको मैं समझता हूँ। यह हो सकता है कि हिन्दुस्तान पर जापानके कब्जेको रोकनेके लिए उन्हें यहाँ रहने की जरूरत पड़े। जापानके कब्जेको रोकना हम दोनोंका समान उद्देश्य है। चीनकी खातिर भी यह आवश्यक हो सकता है। इसलिए मैं यहाँ उनकी मौजूदगीको बतौर शासकके नहीं बल्कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तानके मित्रके रूपमें बरदाश्त करूँगा। बेशक इसमें यह बात मान ली गई है कि अंग्रेजोंकी यहाँसे हटने की घोषणाके बाद हिन्दुस्तानमें एक स्थिर सरकारकी स्थापना हो जायेगी। विदेशी सत्ताके रूपमें अभी जो रुकावट है, उसके दूर हो जाने के साथ ही सब दलोंकी एकता एक आसान बात हो जानी चाहिए। मित्र-राष्ट्र यहाँ अपना युद्ध-प्रयत्न किन शर्तोंपर चला सकेंगे, इसका फैसला स्वतन्त्र हिन्दुस्तानकी सरकार ही करेगी। उस समय आजके सब दल राष्ट्रीय सरकारमें घुलमिल चुके होंगे। अगर उनका अलग अस्तित्व बाकी भी रहा तो वह अपने दलीय हितोंके लिए ही होगा, बाहरी दुनियाके साथ व्यवहार के लिए नहीं होगा।

अहिंसाका क्या होगा?

प्र० : परन्तु अपनी अहिंसाके बारेमें आप क्या कहते हैं? स्वतन्त्रता मिलने के बाद आप किस हदतक अपनी इस नीतिको अमलमें लायेंगे?

उ० : यह सवाल आज उठता ही नहीं। अपने इन लेखोंमें मैं उत्तम पुरुष एक वचनका प्रयोग संक्षेपके लिए करता हूँ। परन्तु मेरी कोशिश हिन्दुस्तानकी भावनाको, जैसी कि मैं उसे समझता हूँ, प्रकट करने की है। वह एक मिश्रण है और रहेगी। हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय सरकार क्या नीति अख्तियार करेगी, मैं नहीं कह सकता। सम्भव

है कि अपनी प्रबल इच्छाके बावजूद मैं तबतक जीवित ही न रहूँ। लेकिन अगर मैं जिन्दा रहा तो अहिंसाको यथासम्भव अधिकसे-अधिक अपनाने की सलाह दूंगा। विश्व-शान्ति और एक नई विश्व-व्यवस्थाकी स्थापनामें वह हिन्दुस्तानका एक बड़ा योगदान होगा। मुझे आशा तो यह है कि चूंकि हिन्दुस्तानमें इतनी लड़ाकू जातियाँ हैं, और चूंकि स्वतन्त्र हिन्दुस्तानकी सरकारमें उन सबकी आवाज होगी, इसलिए हमारी राष्ट्रीय नीतिका झुकाव सैन्यवादके एक संशोधित रूपकी तरफ होगा। मैं यह उम्मीद जरूर रखूंगा कि एक राजनीतिक शक्तिकी हैसियतसे अहिंसाकी क्षमताका हमारा पिछले बाईस सालका प्रयोग बिलकुल विफल नहीं जायेगा और सच्चे अहिंसा-वादियोंका एक मजबूत दल हिन्दुस्तानमें होगा। जो भी हो, अगर स्वतन्त्र हिन्दुस्तानके साथ मित्र-राष्ट्रोंकी सन्धि हो जाये तो वह उनके ध्येयके लिए जरूर ही बड़ी मददगार साबित होगा, जबकि मौजूदा गुलामीकी हालतमें तो हिन्दुस्तान युद्ध-प्रयासमें बाधक ही हो सकता है, और सबसे नाजुक घड़ीमें वह वास्तविक खतरेका कारण साबित हो सकता है।

रेडियो सन्देशोंके विषयमें

प्र० : आप रेडियोके सन्देश नहीं सुनते; मगर मैं तो बड़ी तत्परताके साथ सुनता हूँ। वे आपके लेखोंकी ऐसी व्याख्या करते हैं, मानो आप धुरी-राष्ट्रोंकी तरफ झुके हुए हैं और घूम-फिरकर सुभाषबाबूके इन विचारोंसे सहमत हो गये हैं कि बाहर की मदद लेकर अंग्रेजी हुकूमतको यहाँसे उखाड़ फेंका जाये। मैं चाहूँगा कि आप इस बारेमें अपनी स्थिति स्पष्ट कर दें। आपके जाने-पहचाने विचारोंको विकृत रूप देने की यह प्रक्रिया एक खतरनाक हदतक पहुँच गई है।

उ० : आपने यह प्रश्न पूछा, इससे मुझे खुशी हुई। विदेशी सत्ताके जुएसे मुक्त होने के हिन्दुस्तानके प्रयासमें किसी भी देशसे मदद माँगने की मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। मैं नहीं चाहता कि अंग्रेजोंके बदले कोई दूसरी सत्ता यहाँ आये। एक अपरिचित शत्रुसे तो परिचित शत्रु ही भला। धुरी-राष्ट्रोंके दोस्तीके दावोंको मैंने कभी कोई महत्त्व नहीं दिया है। अगर वे हिन्दुस्तान आये तो हमें छुटकारा दिलाने के हेतुसे नहीं, बल्कि यहाँकी लूट-खसोटमें शरीक होने की गरजसे ही आयेंगे। अतः मेरे सुभाषबाबूकी नीतिको पसन्द करने का तो सवाल ही नहीं उठता। हम दोनोंका पुराना मतभेद अभी भी कायम है। इसका यह मतलब नहीं कि मुझे उनकी कुरबानी या देशभक्तिके बारेमें कोई सन्देह है। लेकिन उनकी कुरबानी और देशभक्तिकी सराहना करते हुए भी मैं इस तथ्यको नजर-अन्दाज नहीं कर सकता कि वे गुमराह हैं, और उनके तरीकेसे हिन्दुस्तानको कभी आजादी नहीं मिल सकती। अंग्रेजी हुकूमतको यहाँसे हटाने के लिए अगर मैं अधीर हूँ तो उसका कारण यह है कि मैं देखता हूँ कि अंग्रेजोंके प्रति हिन्दुस्तानियोंका क्षोभ और ब्रिटेनकी पराजयोंपर यहाँ की आम जनताकी छिपी प्रसन्नता एक खतरनाक स्थितिके सूचक हैं। अगर उसका ठीक इलाज न किया गया तो सम्भव है कि उसके परिणामस्वरूप जापानी मंसूबे

हिन्दुस्तानमें सफल हो जायें। इसके विपरीत, अगर हिन्दुस्तानको पूर्ण स्वतन्त्रता मिल जाये तो फिर वह यह कभी नहीं चाहेगा कि जापानी यहाँ आयें। उसका क्षोभ और असन्तोष काफूर हो जायेंगे और अपनी स्वतन्त्रताको सुदृढ़ करने व सभी विदेशी ताकतोंके दुष्ट मंसूबोंसे उसे सुरक्षित रखने की आवश्यकता उसकी भावनाओंको मित्र-राष्ट्रोंके साथ उत्साहपूर्ण और हार्दिक सहयोगकी वृत्तिमें बदल देगी।

सेवाग्राम, १२ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २१-६-१९४२

२५४. पत्र : अमृतकौरको

१२ [जून][1], १९४२

चि० अमृत,

यह पत्र मैं गुजरातीमें लिख रहा हूँ। तुम्हारा पत्र मिला। मौलाना और जवाहरलालके साथ चर्चा करने में मेरा बहुत समय निकल जाता है। चर्चा अभी भी एक-दो दिन चलेगी। सारी बातचीत शान्तिपूर्वक हो रही है। आज मौसम कुछ बदला हुआ मालूम होता है। अभी भी गरम हवा चल रही है।

मेरी तबीयत ठीक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७८९९) से। सी० डब्ल्यू० ४२६७ से भी; सौजन्य : अमृतकौर

२५५. पत्र : शान्तिकुमार न० मोरारजीको

१२ जून, १९४२

चि० शान्तिकुमार,

लीलावतीका[2] बोझ उठाने की जिम्मेदारी तुमने अपने सिर ली है। उसका कालेज २० को खुल रहा है। तुम्हें बचाने का प्रयत्न तो हो रहा है। लेकिन अगर मैं सफल नहीं हुआ तो उसके निवास और भोजनकी व्यवस्था कर दोगे या करा दोगे न?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७३९) से। सौजन्य : शान्तिकुमार न० मोरारजी

१. साधन-सूत्रमें तारीख १२-२-१९४२ पढ़ी हुई है, जो स्पष्ट ही गलत है, क्योंकि डाककी मुहरमें तारीख १२ जून है।

२. लीलावती आसर

२५६. पत्र : कृष्णचन्द्रको

१२ जून, १९४२

चि० कृ० चं०,

मिलकी चीनी नहीं आनी चाहिये। लेकिन बा है वहां तक आती रहेगी। और आवेगी तो दूसरे खायेंगे। हम यथाशक्ति रोकने की कोशीश करें।

बा के लिये चावल बने और महमान इच्छा करे तो रोकना कठिन है। मैंने कह तो दिया भी। लेकिन उसका क्या असर?

आभाकी साड़ी तो कोई चीज नहीं है जब दूसरी बहुत चीजोंको सहन करते हैं।

पारनेरकरके सेप्टीक टेंकके उपयोगका समझा। ठीक है।

लीलावतीने तो बड़ा गुनाह किया। अक्षंतव्य समजता हूं। मैं लिखुंगा उसको।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४३२) से

२५७. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

१३ जून, १९४२

प्रिय सी० आर०,

तुम्हारे पत्र मिले। बड़े लोग एक-दो दिनमें चले जायेंगे। अगला दौरा शुरू करने से पहले तुम्हें आकर थोड़ा आराम जरूर कर लेना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि तुम थोड़े आराम, थोड़े मनोरंजनके लिए आओ। लेकिन तुम मुझे मेरी वह गलती दिखलाने का प्रयत्न भी करो जो तुम्हें इतनी साफ दिखाई देती है।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०९०) से

२५८. पत्र : वालजी गो० देसाईको

13 जून, 1942

चि० वालजी,

तुम्हारे लेख मिल गये। उन्हें वापस भेज रहा हूँ। तुम्हें वे सही-सलामत मिल जायेंगे। यह समय ऐसे लेख छापने का नहीं है। तुम्हें पैसा भेजना ये लोग हमेशा भूलते रहे हैं। मैं तुम्हें वह पैसा भेज रहा हूँ, लेकिन इस शर्तपर कि तुम उसे घरकी जरूरतोंके लिए ही खर्च करोगे, गोपालन-जैसोंकी मदद करने के लिए बिलकुल नहीं।

तुमने जो लेख माँगे थे उनमें से अभी भी एक रह गया मालूम होता है। हाथ लगते ही भेज दूँगा।

तुम सब मजेमें होगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७४९८)से। सौजन्य: वालजी गो० देसाई

२५९. प्रश्नोत्तर

आप क्या करेंगे?

प्र० : अगर आपके आमन्त्रणको मान देकर ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तानसे विदा हो जाये, और फिर, जैसा कि आपने कहा है, देशमें अराजकता फैले, तो आप स्वयं क्या करेंगे? और अपने अनुयायी कार्यकर्त्ताओंको आप क्या करने की सलाह देंगे? आप किन अहिंसक उपायोंसे काम लेंगे कि अराजकता शान्त हो?

उ० : ऐसा अवसर आने पर मुझे और मेरे साथियोंको अराजकताको मिटाने के लिए जो अहिंसक प्रयत्न करने चाहिए, सो हम करेंगे। अर्थात् अराजकता पैदा करनेवालोंको समझायेंगे और रोकेंगे, और अगर इस कोशिशमें हमें मरना पड़ा तो मर मिटेंगे। अगर अहिंसक वृत्तिवाले बहुतेरे साथी मिल जायें तो अराजकता तुरन्त शान्त हो जायेगी। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि देशसे अंग्रेजी हुकूमतके उठने पर यहाँ दुर्बलकी अहिंसाका कोई स्थान नहीं रहेगा। जिन लोगोंको लूटमार करनी है, वे न तो किसीको कैद करेंगे, और न किसीपर रहम करेंगे। वे खुद इतने दीन होंगे कि उनके पास सिवा 'मारो! मारो!' के और कोई नारा ही न होगा। उनकी

बुद्धि या दयावृत्तिको आसानीसे नहीं जगाया जा सकेगा। इसलिए ऐसे लोगोंको जगाने की कोशिशमें काफी कुरबानी करनी पड़ेगी।

मुझे डर तो यह है कि अराजकताके समय अकेली अहिंसा ही काम न करती होगी। ऐसे दल भी खड़े हो चुके होंगे जो लूटपाट चलानेवालों का बलपूर्वक दमन करने में लगे होंगे। अराजकताके समय सबकी सच्ची कसौटी हो जायेगी।

अगर सरकार आपको गिरफ्तार कर ले तो ?

प्र० : 'हरिजन' में छपनेवाले आपके कड़े लेखोंके कारण मुमकिन है कि सरकार आपको गिरफ्तार कर ले और जेलका मेहमान बना दे। तब आप क्या करेंगे? और अगर कांग्रेसके दूसरे सब नेताओंको भी गिरफ्तार करे तो क्या होगा?

उ० : अगर सरकारने मुझे या दूसरोंको गिरफ्तार किया तो हम जेलमें जाकर क्या करेंगे, सो मैं अभीसे नहीं कह सकता, क्योंकि मुझे खुद इसका पता नहीं है। उस समय जो सूझेगा, सो करना होगा। ज्यादा सोचने की बात तो यह है कि पीछे रहनेवालों को क्या करना होगा। हर बार जो शर्तें रखी जाती हैं, वे इस बार नहीं रहेंगी। यह समझ लीजिए कि अबकी एक ही शर्त अनिवार्य होगी — अहिंसाकी शर्त। कोई इसका यह अर्थ न लगाये कि वह रचनात्मक कार्यसे मुक्त है। जो रचनात्मक कार्यके महत्त्वको समझते हैं, वे तो उसे कभी छोड़ेंगे ही नहीं। लेकिन जब देशके एक-एक आदमीको स्वतन्त्रताके यज्ञमें अपनी आहुति देनेके लिए आमन्त्रित किया जाता है तो खास शर्तोंके बन्धनको छोड़ना पड़ता है — जिस तरह कि इससे पहलेकी हरएक सामूहिक लड़ाईमें करना पड़ा था। अतएव नेताओंके गिरफ्तार होने पर हरएक भारतवासी अपनेको नेता समझेगा और अपनी आहुति देगा, और अगर उसमें से अराजकता पैदा होगी तो वह उसकी परवाह नहीं करेगा। इस अराजकता का दोष उस सत्ताके सिर पड़ेगा जो अराजकताके अथवा किसी-न-किसी बहाने अपनी अराजकताको बराबर दृढ़ बनाया ही करती है। जबतक अहिंसा इस अराजकताके भयसे भी अपनेको मुक्त नहीं करती, तबतक वह अपंग ही बनी रहेगी। यह वह समय है जब हमें यह सिद्ध कर दिखाना है कि संसारमें अहिंसासे बढ़कर तेजस्विनी कोई शक्ति है ही नहीं।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १४-६-१९४२

२६०. जोधपुरमें दारुण स्थिति

जैसा मुझे डर था जोधपुर सत्याग्रहने गम्भीर और महारूप ले लिया है। मेरे पास ढेरों कागजात आये हैं, जिनसे मालूम होता है कि गिरफ्तारियाँ बढ़ रही हैं, और लाठी-चार्ज रोजमर्राकी चीज बन गया है। सरकारी तौरपर यह हुक्म जारी किया गया है कि कोई सत्याग्रहियोंको अपने घरोंमें न रहने दे। ब्रिटिश भारतमें सत्याग्रह-आन्दोलनके समय जो बुरीसे-बुरी कार्रवाइयाँ हुई थीं, वे सब आज जोधपुरमें दुहराई जा रही हैं। फर्क इतना ही है कि जोधपुरमें वे जनताकी निगाह पूरी तरह बचाकर की जा रही हैं। हो सकता है कि वहाँ जनताके जाने बिना ही कोई अत्यन्त दारुण दुर्घटना घट जाये और वह उसी तरह दबा दी जाये जिस तरह ऐसी अनेक दुर्घटनाएँ अबतक दबाई गई हैं और आज भी दबाई जा रही हैं। इन सब मुसीबतोंका एक ही कारण है और इलाज भी एक ही है। जबतक वह इलाज कामयाबीके साथ किया नहीं जाता, यह दुःखद नाटक किसी-न-किसी रूपमें होता ही रहेगा। देशी राज्योंमें होनेवाली ऐसी हरएक घटनाके लिए ब्रिटिश सरकार भी दोषी है। वह अपने इस दोष और जिम्मेदारीसे बच नहीं सकती। आज जोधपुरमें शान्ति और व्यवस्थाके नामपर जिस तरहकी अमानुषिक कार्रवाइयाँ हो रही हैं, देशी राज्योंकी जनताको उनसे बचानेके लिए भारत सरकार अपनी सन्धिकी शर्तोंके अनुसार बँधी हुई है। सत्याग्रही कैदियोंको जेलके अन्दर भी त्राण नहीं मिल रहा है। उन्हें खराब खाना मिलता है, और मामूली सहूलियतें भी नहीं दी जातीं। इसके विरोधमें श्री जयनारायण व्यासने भूख-हड़ताल शुरू की है। यह हड़ताल या तो शिकायतें दूर होने तक या मरने तक चलेगी। अगर उन्हें मरना ही पड़ा तो उनकी मौतके लिए खास तौरपर वे लोग जिम्मेदार होंगे जिनकी दी हुई तक़लीफोंके कारण कैदियोंको आमरण अनशन करने के लिए विवश होना पड़ता है। डॉ० द्वारकानाथ काचरूने[1] जोधपुरके बारेमें एक बोधप्रद विवरण भेजा है। नीचे उसीका कुछ अंश मैं सर्वसाधारणकी जानकारीके लिए दे रहा हूँ:

> जोधपुर दरबारकी सीधी हुकूमत रियासतके कुल क्षेत्रफलके सिर्फ १७ फीसदी हिस्से पर ही चलती है; बाकीका करीब ८३ प्रतिशत हिस्सा जागीरी हिस्सा है, जिसमें लगभग १३०० जागीरदार हैं। ये जागीरदार अपने आन्तरिक मामलोंमें ज्यादातर स्वतन्त्र हैं और जोधपुर महाराजाको एक निर्धारित रकम बतौर खिराजके देते हैं।

१. वे "डॉ०" नहीं थे; देखिए "जोधपुर", २९-६-१९४२।

एक अर्सेसे जोधपुरके सारे कारोबारको भारत सरकारका गृह-विभाग ही सँभालता आया है। इस सदीमें रियासत तीन बार गृह-विभागके सीधे नियन्त्रण और निगरानीमें रही है। आज भी राज्यकी बड़ी-बड़ी जगहोंपर बड़ी तादादमें अंग्रेज ही काम कर रहे हैं। राज्यके प्रधानमन्त्री भी एक सेवानिवृत्त ब्रिटिश अफसर हैं।

अंग्रेज अफसरोंके अलावा, राज्यके प्रशासनमें ऐसे लोगोंका भी बड़ा दब-दबा है जो स्वयं जोधपुरकी प्रजा नहीं हैं। अतएव राज्यमें एक मुल्की आन्दोलन दिन-ब-दिन जोर पकड़ रहा है। रियासतकी विभिन्न जातियों—राजपूतों, ब्राह्मणों वगैरहमें बड़े जोरकी प्रतिद्वन्द्विता भी काम कर रही है। लोगोंको एक-दूसरेसे लड़ानेके लिए अथवा लोक-परिषद्की बढ़ती हुई ताकतको रोकनेके लिए सरकार अक्सर इससे फायदा उठाती है।

सन् १९३८ में मारवाड़ लोक-परिषद्की स्थापना हुई थी। इन चार वर्षोंमें यह परिषद् जोधपुरकी एक प्रचण्ड शक्ति बन गई है। राजपूतानाकी सभी रियासतें आम तौरपर राजनीतिक दृष्टिसे बहुत पिछड़ी हुई हैं, इसलिए जोधपुरके प्रगतिशील जन-आन्दोलनको स्वभावतः सारे राजपूतानेके जन-आन्दोलनका नेतृत्व करना पड़ा है। मार्च १९४० में जोधपुरमें एक अखिल राजपूताना राजनीतिक परिषद् बुलानेका भी ऐलान किया गया था। राजपूतानेकी इस लोक-जागृतिने भारत सरकारके गृह-विभागको गम्भीर चिन्तामें डाल दिया और जोधपुरकी सरकारको आदेश दिया गया कि वह फौरन ही कार्रवाई करे। इसलिए जोधपुर दरबारने लोक-परिषद्को गैरकानूनी घोषित कर दिया और परिषद्के सभी प्रमुख कार्यकर्त्ता जेलमें डाल दिये गये। इन सामूहिक गिरफ्तारियोंके बाद जोरोंका दमन शुरू हुआ, और अन्तमें सरकारके साथ एक समझौता किया गया। मारवाड़ लोक-परिषद्ने राज्यमें फिरसे रचनात्मक काम शुरू किया और उसने थोड़े ही समयमें मारवाड़में खालसा और जागीरी दोनों क्षेत्रोंकी सारी प्रजाकी मान्यता प्राप्त कर ली। परिषद्ने म्युनिसिपल चुनावोंमें भाग लिया और बोर्डमें उसके दलको बहुमत प्राप्त हो गया। उसके नेता ही म्युनिसिपल बोर्डके चेयरमैन बने।

जबसे यह युद्ध शुरू हुआ है, देशी रियासतोंकी सरकारोंने जन-आन्दोलनोंके प्रति अपना रुख बदल दिया है। दरअसल युद्धके कारण इन सरकारोंको अपने राज्यमें नागरिक स्वाधीनताको दबानेका और लोक-शक्तियोंके विकासको रोकनेका एक बहाना मिल गया। जोधपुरमें, जहाँ राज्यकी नीति निर्धारित करनेमें गृह-विभागका भी हाथ रहता है, प्रधानमन्त्री सर डोनाल्ड फील्डने ऊपरसे प्राप्त आदेशोंके अनुसार अपना काम शुरू कर दिया। लड़ाईके लिए चन्दा इकट्ठा करनेकी जरूरत थी और सारे राज्यको युद्ध-प्रयास में सहायक

बनाना था। इसके लिए ज्यादातर पैसा तो जागीरदारोंसे ही वसूल करना था, और इसलिए यह जरूरी था कि उन्हें लोक-परिषद्के नेतृत्वमें चलनेवाले जन-आन्दोलनसे बचाया जाये। इस प्रकार जोधपुर दरबारने जागीरोंके प्रति तटस्थताका भाव धारण किया और जागीरदारोंको यह मौका दिया कि वे अपनी प्रजाके रक्तकी अन्तिम बूंद चूस लें।

लेकिन लोक-परिषद् मारवाड़की जागीरी प्रजाकी शिकायतों और माँगोंकी उपेक्षा नहीं कर सकी। परिषद् जागीरोंको मिटाना नहीं चाहती थी। लेकिन वह जागीरी प्रजाकी स्थितिमें सुधार तो चाहती ही थी। परिषद्ने बार-बार दरबारसे प्रार्थना की कि वह बीचमें पड़कर ऐसी व्यवस्था करे कि जागीरी प्रजाके साथ न्याय और मानवताका व्यवहार हो। लेकिन दुर्भाग्यसे दरबारने दूसरा ही रवैया अख्तियार करना मुनासिब समझा। उन्होंने जागीरदारोंको शह दी, और लोक-परिषद्के कार्यकर्ताओंका दमन किया। संक्षेपमें, जागीरोंकी हालत इस प्रकार है: (क) असामी चाहते हैं कि उन्हें नियमित 'लताई' मिले (यानी जागीरदारों और उनके असामियोंके हिस्से ठहरा दिये जायें)। लेकिन जागीरदारोंने इसकी कोई नियमित व्यवस्था नहीं की। अक्सर उन्होंने इसे टालना चाहा, जिससे असामियोंको मुसीबतका सामना करना पड़ा। (ख) असामियोंकी एक माँग यह भी है कि जो कर दरबारकी अदालतमें गैर-कानूनी घोषित किये जा चुके हैं, वे उठा दिये जायें।

जोधपुर दरबारने इन असामियोंकी सहायता करनेसे बार-बार इनकार किया और उन करोंकी वसूलीको रोकनेसे भी इनकार कर दिया जो उनकी अपनी ही अदालतोंमें गैर-कानूनी करार दिये गये हैं। सरकारने एक कदम और आगे बढ़कर जागीरदारोंको स्वयं ही लोक-परिषद्से भिड़नेके लिए प्रोत्साहित किया। नतीजा यह हुआ कि जब जागीरदारोंने परिषद्के कार्यकर्त्ताओंको मारा, सताया और उनके घरतक जला डाले, तब भी सरकारने दखल देनेसे इनकार कर दिया।

सेवाग्राम, १४ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २१-६-१९४२

२६१. पत्र : च्यांग काई-शेकको

सेवाग्राम
१४ जून, १९४२

प्रिय जनरलिसिमो,

कलकत्तामें आपके तथा आपकी महामना सहधर्मिणीसे पाँच घंटेके सान्निध्यका जो अवसर मुझे मिला था,[1] उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। स्वतन्त्रताके लिए आपके युद्धने मुझे सदैव आपकी ओर आकर्षित किया है और उस सम्पर्क तथा हमारी बातचीतसे चीन और उसकी समस्याएँ मेरे लिए और भी समीपकी वस्तु बन गई हैं। बहुत पहले १९०५ और १९१३ के बीच जब मैं दक्षिण आफ्रिकामें था तो जोहानिसबर्गकी छोटी-सी चीनी बस्तीसे मेरा बराबर सम्पर्क रहता था। पहले मैं उन्हें अपने मुवक्किलोंके रूपमें जानता था और बादमें दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके अनाक्रामक प्रतिरोधमें संघर्षके साथियोंके रूपमें। मेरा उनके साथ मॉरिशसमें भी सम्पर्क रहा और मैं उनकी मितव्ययिता, उद्योग-परायणता, सूझ-बूझ तथा उनकी आन्तरिक एकताका प्रशंसक बन गया। बादमें भारतमें मेरा एक बहुत अच्छा चीनी मित्र कुछ साल मेरे साथ रहता रहा और हम सब उसे बहुत चाहने लगे थे।

इस प्रकार आपके महान देशके प्रति अपने मनमें मैंने बहुत आकर्षण महसूस किया है और आपके विकट संघर्षमें अपने समस्त देशवासियों सहित हमारी सहानुभूति आपके प्रति रही है। हम दोनोंके मित्र जवाहरलाल नेहरू, जिनका चीनके प्रति प्रेम उनके स्वदेश-प्रेमसे कुछ ही कम हो तो हो, हमें चीनी संघर्षकी प्रगतिके बारेमें बराबर जानकारी देते रहे हैं।

चीनके प्रति अपनी इस भावनाके कारण तथा इस हार्दिक इच्छाके कारण कि हमारे ये दो महान देश और करीब आयें और एक-दूसरेके लाभार्थ सहयोग करें, मैं आपको यह बताने को उत्सुक हूँ कि ब्रिटिश सत्तासे मेरी इस अपीलका कि वह भारतसे हट जाये, यह मतलब कदापि नहीं है कि जापानियोंके विरुद्ध भारतकी प्रतिरक्षा कमजोर हो या आपके संघर्षमें आपको परेशानी हो। भारतको किसी भी हमलावर या चढ़ाई करनेवाले के सामने झुकना नहीं है और उसका मुकाबला अवश्य करना है। मैं आपके देशकी स्वतन्त्रताके मूल्यपर अपने देशकी स्वतन्त्रता खरीदने का दोषी नहीं बनूँगा। वह समस्या मेरे सामने नहीं आती, क्योंकि मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि भारत इस तरह अपनी स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर सकता और भारत या चीन पर जापानका आधिपत्य चीन और भारतके लिए और विश्व-शान्तिके लिए भी उतना

[1] १. देखिए खण्ड ७५, पृ० ३६९-९८।

ही घातक होगा। इसलिए उस आधिपत्यको तो हमें रोकना ही है और मैं चाहूँगा कि भारत इसमें अपनी स्वाभाविक और उचित भूमिका अदा करे।

मुझे लगता है कि भारत ऐसा तबतक नहीं कर सकता जबतक वह दासतामें बँधा है। भारतने लाचारीके साथ ब्रिटिश सत्ताको मलाया, सिंगापुर व बर्मासे हटते देखा है। इन दुःखद घटनाओंसे हमें सबक लेना चाहिए और हमारे पास जितने भी उपाय हों उनसे उस विपत्तिकी पुनरावृत्तिको रोकना चाहिए जो इन अभागे देशोंपर गुजरी है। लेकिन जबतक हम स्वतन्त्र नहीं होते, हम इसे रोकने के लिए कुछ नहीं कर सकते और वही सब शायद फिरसे हो जो भारत तथा चीनको बुरी तरह पंगु बना डाले। मैं दुःखकी इस गाथाको पुनरावृत्ति नहीं चाहता।

हमारे सहायताके प्रस्तावको ब्रिटिश सरकारने बारम्बार ठुकरा दिया है और हालमें क्रिप्स मिशनकी विफलताने एक गहरा घाव कर दिया है, जो अभी भी रिस रहा है। ब्रिटिश सत्ताके तुरन्त हटने की पुकार उसी व्यथासे उत्पन्न हुई है। उसमें उद्देश्य यह है कि भारत अपनी देख-भाल खुद कर सके और अपनी योग्यता-भर चीनकी मदद कर सके।

मैंने अहिंसामें अपनी आस्थाके बारेमें तथा अपने इस विश्वासके बारेमें कि यदि सम्पूर्ण राष्ट्र इसे अपनाये तो यह तरीका कारगर हो सकता है, आपको बताया ही है। मेरा यह विश्वास अभी भी सदैवकी तरह दृढ़ है। लेकिन मैं समझता हूँ कि आज सम्पूर्ण भारतमें वह आस्था और विश्वास नहीं है और स्वतन्त्र भारतमें जो भी सरकार बनेगी वह इस राष्ट्रके विभिन्न तत्त्वोंके मेलसे ही बनेगी।

आज सम्पूर्ण भारत अशक्त है और निराशा महसूस करता है। भारतीय सेनामें अधिकांश ऐसे लोग हैं जिन्होंने आर्थिक दबावके कारण सेनामें नौकरी कर ली है। उनके दिलमें किसी उद्देश्यके लिए लड़ने की कोई भावना नहीं है और भारतीय सेना किसी भी अर्थमें राष्ट्रीय सेना नहीं है। हममें से वे लोग जो किसी उद्देश्यकी खातिर, भारत और चीनकी खातिर, सशस्त्र सेनाओं द्वारा या अहिंसा द्वारा लड़ना चाहेंगे, वे विदेशी शासनके अधीन जिस तरह चाहते हैं उस तरह नहीं लड़ सकते। और फिर भी हमारे लोग निश्चित रूपसे जानते हैं कि स्वतन्त्र भारत न सिर्फ अपने लिए बल्कि चीन और विश्व-शान्तिके लिए भी एक निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है। मेरी तरह बहुत लोग यह महसूस करते हैं कि जब प्रभावी कार्यका एक रास्ता हमारे लिए खोला जा सकता है, तब हमारा इस लाचारीकी अवस्थामें रहना और घटनाओंको इस तरह होने देना कि अन्तमें वे हमपर हावी हो जायें, पुरुषोचित भी नहीं है और ठीक भी नहीं है। इसलिए उन्हें लगता है कि स्वाधीनता और कार्यकी स्वतन्त्रताको, जिसकी तत्काल इतनी जरूरत है, सुनिश्चित बनाने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिए। ब्रिटिश सत्ताके प्रति मेरी इस अपीलका कि ब्रिटेन और भारतके बीचका यह अस्वाभाविक सम्बन्ध तत्काल समाप्त होना चाहिए, मूल कारण यही है।

यदि हम प्रयत्न नहीं करते हैं तो इस बातका बड़ा खतरा है कि जनमत कहीं गलत और नुकसानदेह रास्ता न पकड़ ले। इस बातकी भी पूरी सम्भावना है

कि ब्रिटिश सत्ताको कमजोर बनाने और हटाने की खातिर ही भारतमें जापानके प्रति गुप्त रूपसे सहानुभूति बढ़ जाये। हो सकता है कि यह भावना हमारे इस सुपुष्ट विश्वासकी जगह ले ले कि हम कभी किसी बाहरी शक्तिकी ओर मददके लिए देखे बिना स्वतन्त्रता प्राप्त करने की योग्यता रखते हैं। हमें आत्मनिर्भरता सीखनी है और खुद अपनी मुक्ति प्राप्त करने की ताकत पैदा करनी है। यह केवल तभी सम्भव है जब हम दासताकी बेड़ीसे अपने को मुक्त करने का दृढ़तासे प्रयत्न करें। वह स्वतन्त्रता एक तात्कालिक जरूरत बन गई है, क्योंकि उसीके बलपर हम विश्वके स्वतन्त्र राष्ट्रोंमें अपना उचित स्थान ग्रहण कर सकते हैं।

इस बातको पूरी तरहसे स्पष्ट करने के लिए कि हम हर तरहसे जापानी आक्रमणको रोकना चाहते हैं, मैं निजी तौरपर इस बातके लिए सहमत हो जाऊँगा कि मित्र-राष्ट्र हमारे साथ सन्धि करके, अपनी सेनाएँ भारतमें रख सकते हैं और आशंकित जापानी आक्रमणके विरुद्ध कार्रवाईके लिए इस देशका आधारभूमिके रूपमें उपयोग कर सकते हैं।

मुझे आपको यह आश्वासन देने की कोई जरूरत नहीं कि स्वतन्त्रता-आन्दोलनके इस नये मोड़के प्रणेताके नाते मैं जल्दबाजीमें कोई कदम नहीं उठाऊँगा। और मैं जिस कदमकी भी सिफारिश करूँगा उसके पीछे यह ध्यान रहेगा कि उससे चीनको कोई चोट न पहुँचे या भारत अथवा चीनमें जापानी आक्रमणको प्रोत्साहन न मिले। मैं अपनी इस योजनाके पक्षमें, जो मुझे स्वयंसिद्ध मालूम होती है और जिससे निश्चय ही भारत और चीनकी प्रतिरक्षा सुदृढ़ होनी चाहिए, विश्वमत तैयार करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मैं भारतमें भी जनमत तैयार कर रहा हूँ और अपने साथियोंसे सलाह-मशविरा कर रहा हूँ। यह कहने की तो जरूरत ही नहीं है कि ब्रिटिश सरकारके खिलाफ कोई भी आन्दोलन, जिससे मेरा सम्बन्ध होगा, अवश्य ही अहिंसात्मक होगा। ब्रिटिश सत्ताके साथ संघर्ष बचाने की मैं पुरजोर कोशिश कर रहा हूँ। लेकिन यदि स्वतन्त्रताकी, जो इस समय हमारी तात्कालिक आवश्यकता बन गई है, प्राप्तिके प्रयत्नमें, यह अनिवार्य बन जाता है, तो मैं बड़ीसे-बड़ी जोखिमको भी उठाने में नहीं हिचकिचाऊँगा।

जापानी आक्रमण और चढ़ाईके विरुद्ध लड़ते और उससे जो सब दुःख व कष्ट चीनपर आया उसे झेलते आपको शीघ्र ही पाँच वर्ष पूरे हो जायेंगे। मेरे दिलमें चीनकी जनताके प्रति गहरी सहानुभूति है और वह जबरदस्त मुसीबतोंको झेलते हुए अपने देशकी स्वतन्त्रता और अखण्डताके लिए जो असीम बलिदान और वीरोचित संघर्ष कर रही है उसके लिए आदरका भाव है। मुझे पूरा विश्वास है कि यह बहादुरी और बलिदान व्यर्थ नहीं जा सकता, उसका फल जरूर निकलेगा। आपको, श्रीमती च्यांगको तथा चीनकी महान जनताको मैं सफलताके लिए हार्दिक शुभकामनाएँ भेजता हूँ। मैं उस दिनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब स्वतन्त्र भारत व स्वतन्त्र चीन खुद अपने भलेके लिए तथा एशिया और विश्वके भलेके लिए मैत्री और भ्रातृ-भावसे सहयोग करेंगे।

आपकी अनुमतिकी पूर्व-कल्पना करके मैं यह 'हरिजन' में प्रकाशित करने की छूट ले रहा हूँ।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
नॉन-वायलेंस इन पीस एण्ड वार, जिल्द १। सी० डब्ल्यू० १०३६७ भी; सौजन्य: इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन। ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द २, पृ० ३४६-४८ भी

२६२. पत्र: चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

१४ जून, १९४२

प्रिय सी० आर०,

रामनाथनके बारेमें तुम्हारा पत्र मिला। उसने लिखा है। मैं इसपर तुरन्त ध्यान दे रहा हूँ।[2] जब तुम आओगे, इसपर मुझसे बातचीत करना।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०८९) से

२६३. पत्र: वल्लभभाई पटेलको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
१४ जून, १९४२

भाई वल्लभभाई,

खूब बातें हुईं। उसका हाल तो महादेव लिखेगा। जोधपुर किसीको जाना चाहिए।[3] श्रीप्रकाश जाये तो तैयार करूँ। वह न जाये तो यदि मुंशीका स्वास्थ्य अच्छा हो तो वह जाये। जवाहरलालसे सलाह-मशविरा करो।

१. यह प्रकाशित नहीं हुआ। ८ जुलाईको पत्र० सेमूरने ईडनको यह रिपोर्ट भेजी थी कि इस पत्रके जवाबमें च्यांग काई-शेकने गांधीजी को निम्नलिखित आशयका सन्देश भेजा था: "लगता है कि मिस्रमें स्थिति नाजुक अवस्थामें पहुँच गई है और च्यांग काई-शेककी तीव्र इच्छा है कि भारतमें ऐसा कुछ घटित नहीं होना चाहिए जिससे कि युद्ध-संचालनमें गड़बड़ी हो और भारतको उन देशोंमें, जहाँ उसके प्रति सहानुभूति है, नुकसान पहुँचे।" ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द २, पृ० ३५१-५२।

२. देखिए "पत्र: रामनाथनको", पृ० २५७-५८।

३. देखिए "जोधपुरमें दारुण स्थिति", पृ० २४४-४६।

लेकिन यह पत्र लिखने का मेरा हेतु तो दूसरा ही है। गुजरातमें डकैतियाँ बढ़ती जा रही हैं। हमें उनका मुकाबला करने का उपाय अवश्य ढूंढ़ना चाहिए। मुझे परवाह नहीं अगर लोग लाठीके बलपर भी इसके लिए तैयार हों। परन्तु उन्हें तैयार अवश्य होना चाहिए। इस बारेमें विचार करना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो–२ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० २७९

२६४. पत्र : प्रभावतीको

१४ जून, १९४२

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला। जयप्रकाशके विषयमें तूने अच्छी खबर दी है। उसे एक पुस्तक भेजनी है, जो मैं आचार्यसे लेकर भेजूंगा। तू जब आ सके तब आ जाना और मैं तुझे तैयार कर दूंगा। सुशीलाको कल आ जाना चाहिए। बा की तबीयत ठीक है। सुशीला यहाँ दस दिन रहेगी। वह जुलाईमें मुक्त हो जायेगी।

यह पत्र मैं रामानन्दके[1] साथ भेज रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५७७) से

२६५. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
१५ जून, १९४२

चि० अमृत,

मैं कल तुम्हें कुछ नहीं भेज सका। मौलाना आज सुबह चले गये और जवाहरलाल आज शामको बम्बईके लिए रवाना होगा। वह आजका दिन यहाँ बिता रहा है और महादेवके साथ भोजन कर रहा है। एक वाक्यमें कहें तो मौलाना मेरी माँगसे या उसे मनवाने के तरीकेसे सन्तुष्ट नहीं हैं। उन्हें विचार करनेके लिए कुछ

१. गांधीजीके दफ्तरके एक कार्यकर्ता

समय चाहिए। जवाहरलाल उतना असन्तुष्ट नहीं है जितने मौलाना, पर पूरा कायल भी नहीं है। कार्य-समितिकी बैठक जुलाईके शुरूमें होगी।

मौसम बेहतर है, लेकिन अभी भी कष्टकर है। वर्षा होने का कोई लक्षण नहीं है।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च:]

मुझे आजकी डाक अभी मिली है। तुम्हारा घुटना जल्दी ठीक होना चाहिए।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६८८) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६४९७ से भी

२६६. पुर्जा: अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
१५ जून, १९४२

मुझे खुशी है कि मैं तुम्हारी डाक खोलता रहा हूँ। मैंने मदालसाको जवाब दे दिया है और प्रेमाके बारेमें तुम्हें सलाह दे दी है। अब यह अजीबोगरीब पत्र[1] आ गया है। तुम्हें जवाब देना चाहिए। यह आसान है। एकता होनी ही चाहिए। उसके बिना सच्ची स्वतन्त्रता नहीं होगी। लेकिन जबतक तीसरी ताकतका प्रभुत्व है तबतक सांस्कृतिक, राजनीतिक या अन्य किसी भी तरहकी एकता सम्भव नहीं है। इसलिए ब्रिटिश शासनका हटना एकताके लिए पहली जरूरी चीज है। लेकिन, तुम जिस तरह चाहो, पत्रका जवाब दो।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१३३) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७४४२ से भी

१. यह अमृतकौरके लिए अतुलानन्दका पत्र था, जिसपर गांधीजी ने यह पुर्जा लिखा।

२६७. पत्र : प्रभावतीको

[१५ जून, १९४२][1]

चि० प्रभा,

इसीके साथ, किन्तु अलग बुकपोस्टसे तेरी रिपोर्ट भेज रहा हूँ। रिपोर्ट पढ़ गया, अच्छी है। मेरी टिप्पणी इसीके साथ है। आशा है, यह तुझे अच्छी लगेगी।

यहाँ वर्षा जमकर होने लगी है।

आज और अधिक नहीं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५७१) से

२६८. पत्र : मदालसाको

१५ जून, १९४२

चि० मदालसा,

सुरेन्द्रनारायणकी[2] बात जानकर दुख हुआ। अभी तो सादी खुराक ही ले रहे होंगे। दूध, दही, फलोंका रस, सब्जीका रस, खा सकते हैं। बीज या छिलके पेटमें न जायं। पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी लाभ करेगी। कराहना नहीं चाहिए। बिना जोर लगाये दस्त न आता हो तो हलकी पिचकारी लें। मौका मिलते ही बंबई जाना चाहिए। वहां जाने पर डाक्टर लोग जो कहें वही करना चाहिए। ऐसा भी हो सकता है कि मेरे बताये अनुसार खुराक वगैरा लेने से अगर केवल सूजन होगी तो दर्द शायद बंद भी हो जाय। रोटी खूब चबाकर ले सकते हैं। दाल छोड़नी चाहिए। जोर डालनेवाले व्यायाम न करें। कटि-स्नान बहुत लाभ करेगा। घर्षण-स्नान भी।

बच्चेको कोई दवाई मत खिलाना। उसे सब्जीका पानी, फलोंका रस दवारूप होगा। कसरत तो करे ही। शेष यहां आने पर। श्रीमन् इलाहाबाद जावें और सब निबटा आवें।

बापूके आशीर्वाद

पांचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० ४७३-७४

१. बापुना पत्रो – १०: श्री प्रभावती बहेनने के अनुसार

२. मदालसाके देवर

२६९. पत्र : कमलनयन बजाजको

सेवाग्राम, वर्धा
१५ जून, १९४२

चि० कमलनयन,

फूल गंगामें पधरा दिये अच्छा हुआ। माताजी का चित्त शांत हुआ। हरिद्वारमें दिल लगे तबतक रहें।

मदनको भेजने में कोई हरज नहीं है। आना चाहे तो आवे।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०५७) से

२७०. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
१४/१६ जून, १९४२

चि० अमृत,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे घुटनेमें क्या गड़बड़ी है? यदि खुराकके बारेमें तुम कुछ गलती नहीं कर रही हो तो वहाँ कोई तकलीफ तुम्हें होनी क्यों चाहिए।

१६ जून, १९४२

ऊपरका अंश १४ को लिखना शुरू किया था और फिर यह सारा पैड ही मेरी स्मृतिसे उतर गया।

क्या मैंने तुम्हें मयूरभंजको[1] लिखने का सुझाव दिया था? अधिकारीगण लोगोंको एक बाँध बनाने के लिए तंग कर रहे हैं। यदि तुम चाहो तो उन्हें लिख सकती हो।

सुशीला कल आई। उसकी खोपड़ीपर जख्म है। बहुत-सा सामान उसके सिर-पर गिर पड़ा, जिससे काफी गहरा घाव हो गया। वह उसी हालतमें छह घंटे पड़ी

१. उड़ीसाकी एक रियासत

रही। घावमें टाँके लगाकर पट्टी वर्धामें की गई। ब्रजकृष्ण आ गया है। श्रीप्रकाश भी कुछ दिनोंके लिए आये हैं।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१३२) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७४४१ से भी

२७१. एक चुनौती

मेरे सामने तीन पत्र पड़े हैं। इन पत्रोंमें मुझे इस बातके लिए झिड़का गया है कि मैं सिन्ध जाकर हूरोंसे रू-ब-रू बातचीत क्यों नहीं करता? इनमें से दो पत्र तो दोस्ताना ढंगके हैं। तीसरेके लेखक एक ऐसे आलोचक हैं जिनकी अहिंसामें श्रद्धा नहीं है। उनके पत्रका जवाब देने की जरूरत मालूम होती है। पत्रका मुख्य अंश इस प्रकार है:

> मैं गहरी दिलचस्पीके साथ आपके लेख पढ़ता रहता हूँ, क्योंकि मैं यह देखना चाहता हूँ कि आपके अन्धभक्तोंपर और अबोध जनतापर उनका क्या असर होता है। इसलिए यदि आप नीचे लिखे मुद्दों, खास तौरपर तीसरे और चौथे मुद्देपर, जो अहिंसाके बारेमें बुनियादी और नये सवाल पेश करते हैं, कुछ रोशनी डाल सकें तो मैं आपका आभारी होऊँगा।
>
> आप अपने आश्रममें बहुतेरे सत्याग्रहियोंको तैयार करते रहे हैं। उन्हें आपकी सीधी देख-रेखका और शिक्षाका लाभ मिलता ही होगा। आप पुकार-पुकारकर यह कहते आये हैं कि अहिंसाके जरिये हिंसाका सामना प्रभावशाली ढंगसे किया जा सकता है। आज पूर्वमें जापानियोंका हमला और पश्चिममें हूरोंका उपद्रव हो रहा है। जिस चीजका उपदेश आप एक अर्सेसे करते आये हैं, और जिसको अमलमें लाने के लिए बहुत समयसे अनुकूल अवसरकी राह देखी जाती रही है, क्या उसपर अमल करने का यह मौका नहीं है?
>
> लेकिन वैसा करने के बदले आप तो 'हरिजन' में लेख लिखकर ही सन्तुष्ट हो रहे हैं। अगर हिटलर और स्टालिन भी अपनी फौजोंको मोर्चेपर भेजने के बदले 'प्रावदा' में या ऐसे ही किसी दूसरे अखबारमें सिर्फ लेख ही लिखा करें, तो आप उन्हें क्या कहिएगा? सिन्ध विधान-सभाके सदस्योंको इस्तीफे देकर हूरोंके बीच जाने की सलाह देने के बदले, आप अपने प्रशिक्षित सत्याग्रहियोंके एक 'दस्ते' को वहाँ भेजकर अपने सिद्धान्तकी परीक्षा क्यों नहीं करते?
>
> क्या सत्याग्रहियोंका यह धर्म और कर्त्तव्य नहीं है कि वे देशमें जहाँ-कहीं खतरा हो, वहाँ जाकर उसका सामना करें? या आप यह कहना चाहते

हैं कि जब आपके आश्रमपर संकट आ खड़ा होगा, तभी सत्याग्रही उसका सामना करेंगे, उससे पहले नहीं? अगर यही बात हो तो क्या आपका सिद्धान्त निष्क्रियताका सिद्धान्त नहीं बन जाता?

मुझे इसमें कोई शक नहीं कि अगर मैं सिन्ध जा सकता तो अवश्य कुछ-न-कुछ कर सका होता। पहले मैं ऐसे काम कर चुका हूँ, और उनमें कुछ सफल भी हुआ हूँ। पर अब मैं इतना बूढ़ा हो गया हूँ कि इस तरहके कार्य नहीं कर सकता। जो थोड़ी-बहुत ताकत मुझमें बची है, उसे मैं उस लड़ाईके लिए सुरक्षित रख रहा हूँ जो मुझे अपने जीवनकी आखिरी लड़ाई मालूम होती है।

मैंने अपने जीवनका ध्येय यह कभी नहीं माना है कि जहाँ-जहाँ लोगोंपर संकट आये, वहाँ-वहाँ मैं पुराने जमानेके शूर-सामन्तोंकी तरह पहुँचकर उन्हें संकटसे मुक्त करूँ। मैं तो नम्रतापूर्वक लोगोंको यह बताने की कोशिश करता रहा हूँ कि वे खुद अपनी कठिनाइयोंको किस तरह हल कर सकते हैं। सिन्धके बारेमें मैं फिर कहता हूँ कि मेरी सलाह ठीक ही थी। कांग्रेसजनोंका यह स्पष्ट कर्त्तव्य था कि वे आक्रान्त इलाकोंमें जाते और हूरोंको शान्तिके मार्गपर लाने की कोशिशमें अपने-आपको खपा देते। अगर अहिंसाम उन्हें श्रद्धा न थी तो वे निश्चय ही हथियारोंका उपयोग कर सकते थे। अहिंसाके बन्धनसे मुक्त होने के लिए उन्हें कांग्रेससे इस्तीफा दे देना चाहिए था। अगर हमें स्वतन्त्रताके योग्य बनना है तो अहिंसासे हो या हिंसासे, आत्मरक्षाकी कला हमें सीखनी ही होगी। हरएक नागरिकको यह समझना चाहिए कि दुःखमें अपने पड़ोसीकी मदद करना उसका धर्म है।

अगर मैं इन आलोचकके सुझाये तरीकेको अख्तियार करता तो मैं लोगोंको परोपजीवी बनाने में ही सहायक हुआ होता। इसलिए यह अच्छा ही हुआ कि मैंने दूसरोंकी रक्षा करने की तालीम नहीं ली। अगर मरने के बाद मेरे लिए यह कहा जा सके कि मैंने अपने जीवनका अधिकांश लोगोंको स्वावलम्बी बनने और हर सम्भव परिस्थितिमें आत्म-रक्षा कर सकने का मार्ग दिखाने में ही बिताया तो इतना मेरे लिए काफी होगा।

पत्र-लेखकने यह सोचने की भारी भूल की है कि लोगोंको संकटसे बचाना ही मेरे जीवनका ध्येय है। इस तरहका दावा तो तानाशाह ही करते हैं। लेकिन कोई भी तानाशाह अपना यह दावा कभी सच साबित नहीं कर सका।

पत्र-लेखकके खयालमें मैं ऐसा मानता हूँ कि जब आश्रमपर इस तरहकी कोई आफत आ पड़ेगी तो वह भली-भाँति उसका प्रतिकार कर सकेगा। अगर मैं ऐसा कह सकूँ तो मुझे बहुत ही सन्तोष होगा और मैं मानूँगा कि मेरा ध्येय पूरी तरह सफल हुआ। लेकिन मैं तो ऐसा कोई दावा नहीं कर सकता। सेवाग्रामका आश्रम तो सिर्फ कहने को ही आश्रम है। लोगोंने उसे आश्रम कहना शुरू किया और आश्रम नाम चल पड़ा। असलमें तो वह ऐसे लोगोंका जमघट है जो भिन्न-भिन्न उद्देश्योंको लेकर यहाँ आये हैं। समान उद्देश्यको लेकर स्थायी रूपसे रहनेवाले तो यहाँ मुश्किलसे ५-६ लोग ही होंगे। परीक्षाका समय आने पर ये थोड़ेसे लोग किस हदतक खरे उतरेंगे, सो तो अभी देखना बाकी है।

सचाई यह है कि अहिंसा ठीक उसी तरह काम नहीं करती जिस तरह हिंसा करती है। उसका तरीका उलटा है। सशस्त्र आदमी स्वभावतः अपने शस्त्रोंपर भरोसा रखता है। जो मनुष्य जान-बूझकर निःशस्त्र बन जाता है, वह उस अदृश्य शक्तिपर भरोसा रखता है जिसे कवि ईश्वर और वैज्ञानिक अज्ञात कहते हैं। लेकिन अज्ञातका अर्थ अस्तित्वहीन ही हो, यह जरूरी नहीं है। सभी ज्ञात और अज्ञात शक्तियोंका आधार ईश्वर है। जिस अहिंसाका इस आधारभूत शक्तिमें विश्वास नहीं, वह अहिंसा कूड़े-करकटकी तरह निकम्मी चीज है।

मुझे आशा है कि आलोचक सज्जन अपने प्रश्नमें निहित भूलको अब समझ सकेंगे, और साथ ही यह भी अनुभव करेंगे कि जिस सिद्धान्तने मेरे जीवनका मार्ग-दर्शन किया है, वह निष्क्रियताका नहीं, बल्कि अतिशय क्रियाशीलताका सिद्धान्त है। दरअसल तो उन्हें अपना सवाल इन शब्दोंमें रखना चाहिए था:

आप बाईस वर्षोंसे अधिक समयसे हिन्दुस्तानमें काम कर रहे हैं, फिर भी क्या वजह है कि अबतक काफी तादादमें ऐसे सत्याग्रही नहीं हैं जो बाहरी और भीतरी संकटोंका सामना कर सकें? इसके जवाबमें मैं यह कहूँगा कि एक राष्ट्रको अहिंसक शक्तिके विकासकी तालीम देनेके लिए बाईस सालका समय कुछ भी नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं कि उचित अवसर आनेपर बहुत सारे लोग इस शक्तिका परिचय नहीं देंगे। वह अवसर अब आया प्रतीत होता है। इस युद्धमें सैनिकोंके साथ आम जनताकी और हिंसाके साथ अहिंसाकी भी समान रूपसे परीक्षा हो रही है।

सेवाग्राम, १८ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-६-१९४२

२७२. पत्र : रामनाथनको

१८ जून, १९४२

प्रिय रामनाथन,

अब जाजूजी से मेरी एक घंटे बात हो चुकी है। तुम्हारा उनके साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ है, वह मैंने पढ़ लिया है। शायद मैंने जाजूजी की शिकायतमें शब्दोंका जितना अभिप्राय था उससे कुछ ज्यादा पढ़ लिया। तुम्हारे पत्रोंसे चिड़चिड़ाहट प्रकट होती है। मैं चाहता हूँ कि तुम जाजूजी के साथ धैर्य बरतो। हम उनसे ज्यादा सावधान और मेहनती मन्त्री[1] कभी नहीं पा सकेंगे।

१. अ० भा० ग्रामोद्योग संघके; देखिए खण्ड ७५, पृ० ३३२।

इस्तीफा दे देने की बात सोचना बेतुका है। हम सब एक परिवारके सदस्य हैं, जिन्हें एक-दूसरेके साथ चलना है। महीनेके अन्तमें जब हम मिलें तो हमें इन सारी चीजोंको सुलझा लेना चाहिए।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९२५९) से। सी० डब्ल्यू० ३०७६ से भी

२७३. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
१९ जून, १९४२

चि० अमृत,

तुम्हारे पत्र मिले। राजाजी अभी-अभी पहुँचे हैं और किसी भी क्षण आश्रममें आ सकते हैं।

बादमें

वे आ गये हैं।

तुमने जवाहरलालका वक्तव्य[1] देख ही लिया होगा। वह उसकी सबसे ताजा देन है। देखें, भगवानने हमारे भाग्यमें क्या लिखा है। घटनाक्रम जो रूप ले रहा है उससे मैं सन्तुष्ट हूँ। हर चीज कठिन तो है ही।

यह लो, घंटी बज गई।

बादमें

दिन 'सी० आर०' से बातचीतमें बीत गया।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६८९) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६४९८ से भी

१. १७ जूनको पत्र-प्रतिनिधियोंके साथ अपनी भेंटमें जवाहरलाल नेहरूने फासीवाद और नाजीवाद के प्रति अपना तथा गांधीजीका विरोध पुनः व्यक्त किया था, लेकिन साथ ही यह भी कहा था कि भारतकी रक्षा मुख्यतया भारतका मसला है और स्वतन्त्र भारत पूरी तरहसे अपनी रक्षा करेगा।

२७४. पत्र : के० सुब्बारावको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
१९ जून, १९४२

प्रिय सुब्बाराव,

समाचारपत्रमें प्रकाशित हो रहे उस पत्र-व्यवहारके सन्दर्भमें नया कुछ हुआ हो तो मुझे सूचित करना।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्री के० सुब्बाराव
फ्री प्रेस
पो० ऑ० बा० ४००
मद्रास

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५६६५) से। सी० डब्ल्यू० २९७७ से भी; सौजन्य: के० सुब्बाराव

२७५. पत्र : कृष्णचन्द्रको

१९ जून, १९४२

चि० कृ० चं०,

मेरी सच्ची मदद तो मेरी शुभेच्छामें है। यों तो आंख या तो जमीन देखे या जो काम करना है उसे ही। बानरकी मूर्त्ति तो हृदयमें अंकित होनी चाहीये। स्त्रीमात्र बहन या मां है दूसरी भावना उठे नहीं। रामनाम तो हर क्षण है ही। हुआ सो भूल जाना। वर्तमानकी देखभाल करना। खिन्न होना ही नहीं।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटोनकल (जी० एन० ४४३३) से। एस० एन० २४४८२ से भी

२७६. पत्र : कृष्णचन्द्रको

१९ जून, १९४२

चि० कृ० चं०,

तुम्हारा दुःख तो सही है लेकिन हारनेकी बात नहीं है। प्रयत्नसे सफलता होगी ही। हां, नम्रताका पाठ मिलता है सो सीख लेना। काम छोड़नेकी आवश्यकता नहीं।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४३४) से। एस० एन० २४४८३ से भी

२७७. भेंट : यूनाइटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

१९ जून, १९४२

अखबारोंमें प्रकाशित सर स्टैफर्ड क्रिप्सके बयानके[1] सम्बन्धमें गांधीजी ने यूनाइटेड प्रेस ऑफ लन्दनके प्रतिनिधिको दी गई एक मुलाकातमें कहा :

सर स्टैफर्ड क्रिप्सका वह बयान जो उन्होंने लन्दनमें यूनाइटेड प्रेसके प्रतिनिधिको दिया है, मैंने पढ़ा है। जिन तथ्योंकी प्रत्यक्ष जाँच की जा सकती है, अगर उन्हें भी सब स्वीकार न करें तो विभिन्न पक्षोंका एक-दूसरेको ठीकसे समझने का काम मुश्किल हो जाता है। सर स्टैफर्ड जानते हैं कि मैं दिल्ली जाने के लिए बिलकुल उत्सुक नहीं था। वहाँ पहुँचने पर भी मेरा इरादा वहाँसे उसी दिन लौट आने का था। लेकिन मौलाना साहबने मुझे लौटने न दिया। अगर मैं कांग्रेसकी कार्य-समितिको इस बातपर राजी कर सकता कि वह शुद्ध अहिंसाको ही अपना आधार बनाये तो मुझे अच्छा लगता। परन्तु वैसा नहीं हुआ। उसके लिए वह शक्य न था। उसके लिए तो राज-नीतिक हेतु ही सबसे महत्त्वकी चीज हो सकता था, और यह ठीक भी था। अहिंसामें मेरी तरह उसकी श्रद्धा न होने के कारण वह अपनी कार्रवाईको अहिंसाके सवालसे प्रभावित नहीं होने दे सकती थी। इसलिए नई दिल्लीमें कार्य-समितिकी सारी कार्रवाई

१. ब्रिटिश सत्ताके भारतसे हट जाने की गांधीजी की बारम्बार की गई माँगका जिक्र करते हुए सर स्टैफर्ड क्रिप्सने १६ जून, १९४२ को कहा था : "यद्यपि साम्राज्यवादी कारणोंसे टिके रहने की हमारी कोई इच्छा नहीं है, पर युद्धके ठीक बीचमें हम यहाँसे निकल जानेवाले नहीं हैं।"

मेरे किसी हस्तक्षेप या मार्ग-दर्शनके बिना ही हुई थी। इसलिए बातचीतमें शुरूसे आखिर तक अहिंसाका सवाल कहीं नहीं आया। अंग्रेज और भारतीय राजनीतिज्ञोंके सामने आज जो परिस्थिति है, उसपर शान्त मनसे विचार करने के लिए अगर यह बात प्रासंगिक न होती तो मैं यहाँ इस तथ्यका जिक्र भी न करता।

अंग्रेजी सत्ताके भारतसे हटने की मेरी अपीलको सर स्टैफर्डने जो यह रूप दिया है कि मैं अंग्रेजोंको यहाँसे निकल जाने को कहता हूँ, उनकी यह बात भी मुझे पसन्द नहीं आई। यह अपील किसी तरहकी आक्रामक मनःस्थितिमें नहीं की गई है। इससे अधिक मैत्रीपूर्ण कार्य मैं कर ही नहीं सकता था। मित्र-राष्ट्रोंके उद्देश्यके हितको ध्यानमें रखकर ही यह अपील की गई है। मैंने शुद्ध अहिंसासे प्रेरित होकर और एक अहिंसक कारंवाईके तौरपर ही यह अपील की है। लेकिन यह सब तो व्यक्तिगत बात है। मेरे सुझावपर विचार करते समय यह याद रखना जरूरी है कि यह मुख्यतः अहिंसक चेष्टा है। अगर ब्रिटिश सत्ता यहाँसे नहीं हटती तो शत्रुका सशस्त्र मुकाबला करनेवाले भारतीयोंकी तरह ही, भारतकी वर्त्तमान और सम्भावित अहिंसक शक्ति भी निकम्मी और लूली हो जायेगी। मेरा सोचा हुआ कदम तमाम कठिनाइयोंको दूर कर देगा, हिंसा-अहिंसाका सारा विवाद समाप्त कर देगा, और उससे भारत मित्र-राष्ट्रोंको, खास तौरपर चीनको, जो आज खतरेमें पड़ा है, बड़ीसे-बड़ी मदद देने के लिए तुरन्त स्वतन्त्र हो जायेगा। मेरा यह विश्वास है कि अगर अंग्रेजी सत्ता यहाँसे हट जाये और उसके फलस्वरूप भारत स्वतन्त्र हो जाये तो निश्चित रूपसे चीनकी स्वतन्त्रताकी रक्षा हो सकेगी, और मित्र-राष्ट्रोंके पक्षको एक अकाट्य नैतिक आधार मिल जायेगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-६-१९४२

२७८. भेंट : रायटरके प्रतिनिधिको[1]

[२१ जून, १९४२ के पूर्व]

रायटरके लन्दनके प्रतिनिधिने जब गांधीजी से कहा कि वे स्वतन्त्र भारतकी मित्र-राष्ट्रोंके साथ सन्धि कर लेने की सम्भावनाके सम्बन्धमें अपने वक्तव्यको विस्तारसे बतायें, तो गांधीजी ने कहा :

१. यह दिनांक "सेवाग्राम २१ मई, १९४२" के अन्तर्गत प्रकाशित "टिप्पणियाँ" शीर्षक लेखसे लिया गया है। साधन-सूत्रमें यह उल्लेख नहीं है कि रायटरके प्रतिनिधिने गांधीजी के साथ भेंट-वार्ता कहाँ और कब की थी। लेकिन २१ मई, २१ जूनके स्थानपर भूलसे छपा हो सकता है, क्योंकि यह पाँच सप्ताह बाद प्रकाशित किया गया, इसकी सम्भावना नहीं है। इसके अलावा, गांधीजी ने ६ जूनको एक प्रश्नके जवाबमें मित्र-राष्ट्रोंके साथ एक सन्धिका पहली बार जिक्र किया था; देखिए "महत्त्वपूर्ण प्रश्न", पृ० २०५-७।

मैत्रीपूर्ण स्वतन्त्र भारत क्या कर सकता है, इसकी कोई सीमा नहीं हो सकती। मेरे दिमागमें जापानी आक्रमणके विरुद्ध चीनकी रक्षाके लिए भारत और मित्र-राष्ट्रोंके बीच एक सन्धिकी बात थी। लेकिन पारस्परिक सद्भावना और विश्वास हो तो सन्धिमें शस्त्रोंका सहारा लिये बिना अन्य उपायों द्वारा मानवीय गरिमा और अधिकारोंके संरक्षणका समावेश किया जा सकता है। क्योंकि शस्त्र-बलमें तो अधिकतम संहार करने की सामर्थ्यमें स्पर्धाकी बात है। अच्छा तो यह हो कि ब्रिटिश लोकमत यह समझ सके कि भारतकी स्वतन्त्रता मित्र-राष्ट्रोंके उद्देश्यका स्वरूप बदल देगी और जल्दी विजय पाना निश्चित बना देगी।

अपने नवीनतम प्रस्तावपर लन्दन 'टाइम्स'की टीकाका जवाब देते हुए गांधीजी ने कहा:

जब-जब राष्ट्रवादियोंने समाधान सुझाये हैं, वे चाहे अपने-आपमें कितने भी सही क्यों न रहे हों, तब-तब उनके भाषणों और लेखोंको विकृत रूपमें पेश किया गया है और बादमें दमनकी नीति चलाई गई है। मेरा नवीनतम प्रस्ताव, जिसकी कल्पना अत्यन्त मैत्रीभावसे हुई और जो मेरी रायमें अपने-आपमें सही है, अभी से विकृत किया जाने लगा है। मैं तो अपने प्रस्तावको बिलकुल खरा मानता हूँ। जापानी आक्रमणके विरुद्ध मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओंकी कार्रवाईमें मेरा प्रस्ताव कहीं कोई बाधा नहीं डालता। उसका अर्थ तो यह होता है कि ब्रिटेनको अपनी घोषणाके प्रति सच्चा बनना चाहिए, भारतसे विजेताके रूपमें और उसके भाग्य-नियामकके रूपमें हट जाना चाहिए और बीचमें जरा भी दखल दिये बिना भारतको अपना भाग्य खुद गढ़ने के लिए स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए। ऐसा करने से, मेरी समझसे, ब्रिटेनके दावोंको एक नैतिक आधार मिल जायेगा और भारतके रूपमें उसे एक बड़ा मित्र प्राप्त हो जायेगा। अलबत्ता, इस मित्रताका उपयोग साम्राज्यवादके लिए नहीं, मानवीय स्वतन्त्रताके लिए ही हो सकेगा। यदि भारतमें अराजकता आती है तो उसके लिए जिम्मेवार सिर्फ ब्रिटेन होगा, मैं 'नहीं'। मैंने जो कहा है वह यह है कि मैं भारतकी मौजूदा गुलामी और उससे फलित होनेवाली नपुंसकतासे तो अराजकताको ज्यादा पसन्द करूँगा। यदि कोई व्यक्ति, चाहे वह कितना ही महान हो, मेरे इस प्रस्तावको विकृत करता है तो इतिहास उसे मित्र-राष्ट्रोंके उद्देश्यका शत्रु मानकर उसकी निन्दा करेगा। सर स्टैफर्ड क्रिप्सके प्रस्तावोंको भारतने तौला है और काफी सोच-विचारकर उन्हें सभी पक्षोंने अस्वीकार कर दिया है। उन प्रस्तावोंको ब्रिटिश राजनेताओंका अन्तिम वचन कहकर दोहराना भारतका अपमान है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-६-१९४२

२७९. पत्र : अमृतकौरको

२१ जून, १९४२

चि० अमृत,

यहाँ मानसूनकी बरसात पूरी तरह शुरू हो गई है। इसलिए मई की गर्मी तो समाप्त हो गई है। फिर भी, मैं तुम्हें अभी आने की सलाह नहीं देता। वहाँ कुछ समयतक आराम करना बेहतर होगा। घुटना जरूर ठीक हो जाना चाहिए।[1]

हमारा रास्ता बिलकुल स्पष्ट है। इसमें जोखिम तो है। लेकिन बिना जोखिम उठाये जो स्वतन्त्रता मिले वह बेकार है।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४२६८) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७९०० से भी

२८०. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

२१ जून, १९४२

मैं इस बीच तुझे जो पत्र नहीं लिख रहा था, वह यह समझकर कि तू खतरेके पार हो गया है। लेकिन आजके कार्डने तो चौंका दिया। खैर, जो होना है सो हो। जीने का प्रयत्न करते हुए भी मौतके लिए तो हमें सदा तैयार रहना ही चाहिए न?

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृ० १८३

२८१. एक समस्या

एक सज्जन महादेव देसाईको लिखते हैं:

> गांधीजी कहते हैं कि अगर अंग्रेज सरकार हिन्दुस्तानको व्यवस्थित रीतिसे छोड़ दे, यानी हमारे देशसे अंग्रेजी राज्यका सम्पूर्ण और सत्वर अन्त हो जाये तो स्वतन्त्र हिन्दुस्तान संयुक्त राष्ट्रोंका मित्र बन सकता है, स्वतन्त्र हिन्दुस्तानके

१. यह अनुच्छेद गुजरातीमें है। आगेका अंश अंग्रेजीमें है।

साथ हुई एक सन्धिके अधीन ब्रिटिश तथा अमेरिकी फौजें हिन्दुस्तानमें रहकर अपनी मोर्चाबन्दी कर सकती हैं, क्योंकि उस हालतमें हिन्दुस्तानकी रक्षा उनका और हमारा "समान ध्येय" होगा। यहाँके कुछ मित्र गांधीजी के इस सुझावका पूरा अर्थ समझना चाहते हैं। 'सिद्धान्ततः' हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताके दृष्टिकोणसे तो स्थिति निस्सन्देह स्पष्ट है। लेकिन जब व्यवहारकी दृष्टिसे इसके अर्थका विचार करते हैं तो कुछ सवाल खड़े होते हैं। बेशक यह तो साफ ही समझमें आता है कि इस विषयमें गांधीजी अहिंसाका अपना निजी दृष्टिकोण पेश नहीं कर रहे। जो सम्भावनाएँ उन्हें नजर आती हैं, वे तो उन्हींमें से एकका जिक्र कर रहे हैं। और वह सम्भावना यह है कि स्वतन्त्र राष्ट्रवादी हिन्दुस्तान बाहरी हमलोंका सशस्त्र प्रतिरोध करने की, अथवा प्रतिरोधके उस कार्यमें विदेशी फौजोंके साथ किसी तरहका सहयोग करने की नीति अपना सकता है। लेकिन उस हालतमें ब्रिटेनकी क्या स्थिति रहेगी? अगर अंग्रेज गांधीजी की माँगको सद्भावपूर्वक मंजूर कर लें तो उससे न सिर्फ इस युद्धका नैतिक आधार ही बदल जायेगा, बल्कि उनके लिए उसकी राजनीतिक और आर्थिक 'अनिवार्यता' ही नहीं रहेगी। परिस्थितिके कारण विवश होकर हिन्दुस्तान छोड़ने के बदले, अगर अंग्रेज़ एक पुराना कर्ज अदा करने के लिए स्वेच्छासे हिन्दुस्तानपर अपना अधिकार छोड़ दें तो यह सम्भव नहीं कि उनके इस नैतिक कार्यका प्रभाव अकेले हिन्दुस्तान तक ही सीमित रहे। तब तो एशिया और आफ्रिकाके अपने अधीनस्थ देशोंके साथ ब्रिटेनका सम्बन्ध भी जड़-मूलसे बदल जायेगा। अगर हिन्दुस्तानको भग-वानके या जापानके हाथों सौंप जाने के लिए अंग्रेजोंको 'विवश' होना पड़ा तो वे एशिया और आफ्रिकाके अपने अधीनस्थ देशोंकी रक्षाके लिए और खोये हुए देशोंको फिरसे जीतने के लिए लड़ाई जारी रखेंगे। लेकिन अगर वे पापकी कमाईको स्वेच्छासे छोड़ देंगे तो लड़ाई जारी रखने के लिए कोई 'भौतिक' हेतु उनके पास रह ही नहीं जायेगा। अगर ब्रिटेनको यह उम्मीद न हो कि वह लड़ाईके बाद अपने अधीनस्थ देशोंसे, जिन्हें अपने कब्जेमें रखने के लिए वह लड़ रहा है, किसी-न-किसी तरह नुकसानकी भरपाई कर लेगा तो आर्थिक दृष्टिसे इस बेहद महँगे युद्धका भार वह कभी अपने सिर नहीं ले सकता है। जब कोई देश ब्रिटेनके अधीन रह ही नहीं जायेगा तो जिस विशाल पैमाने पर ब्रिटेन आज लड़ाई लड़ रहा है, वैसी लड़ाई सिर्फ अपने देशकी सम्पत्तिके बलपर वह कभी लड़ ही नहीं सकेगा। अगर वह इसकी कोशिश भी करे तो वह खुद ब्रिटिश जनतापर एक बहुत ही मूर्खतापूर्ण और निर्दय अत्याचार होगा।

युद्धके 'आदर्श' हेतुओंका जहाँतक सवाल है, उनमें कोई सार नहीं है। क्योंकि जबतक ब्रिटेन करोड़ों लोगोंको गुलामीमें रखता है, तबतक प्रजातन्त्र आदिकी बात करने का उसे कोई अधिकार नहीं है। लेकिन गांधीजी की अपीलको

मंजूर कर लेने से 'आदर्श' हेतु बहुत प्रबल हो जायेंगे। और, इसमें भी कोई शक नहीं कि उस दशामें जिन राष्ट्रोंको ब्रिटेन बन्धनमुक्त कर चुका होगा, उनकी हमदर्दी और सहयोगकी आशा वह रख सकेगा, और कुछ हदतक उनकी साधन-सामग्रीका भी भरोसा रख सकेगा। लेकिन यहीं आकर साधन और साध्यका सनातन प्रश्न फिर उठ खड़ा होगा। यानी कि क्या न्याय और मानव स्वतन्त्रताके प्रजातन्त्रीय ध्येयकी सिद्धिके लिए युद्ध किसी भी दशामें उचित और प्रभावशाली साधन बन सकता है? मानव-जीवनके इस अभूतपूर्व संकटके अवसरपर गांधीजी ने इस विषयमें संसारका जो ऐतिहासिक पथ-प्रदर्शन किया है उसको खतरेमें डालने या उसका महत्त्व घटानेवाली कोई गलतफहमी इस सवालके बारेमें जिससे पैदा हो, उस तरहकी कोई बात कहना या करना एक दुर्भाग्य ही माना जायेगा। किसी भी कारणसे संसारका यह नैतिक पथ-प्रदर्शन संकटमें नहीं पड़ना चाहिए। कुछ समय पहले गांधीजी ने यह नीति प्रतिपादित की थी कि ब्रिटिश सरकार अपने अधीनस्थ देशोंको यदि स्वेच्छापूर्वक स्वतन्त्र कर दे तो नैतिक दृष्टिसे संसारकी परिस्थितिमें एक ऐसा परिवर्त्तन हो जायेगा जो हिटलर और मुसोलिनी और उनके युद्धतन्त्रको संकटमें डाल देगा। गांधीजी अपनी इसी नीतिपर क्यों नहीं डटे रहते? अगर हिन्दुस्तानसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद स्वेच्छापूर्वक बिदा हो जाये तो वह अंग्रेजोंकी ओरसे अहिंसाका एक भगीरथ-कार्य होगा। इस कार्यके प्रभावपर विचार करते समय उसपर अहिंसक दृष्टिसे भी क्यों न ध्यान दिया जाये? अहिंसा वृक्षसे अहिंसाके ही फल पैदा होने चाहिए।

विदेशी फौजोंको हिन्दुस्तानकी जमीनपर रहने देने के सवालमें से और भी कई मुद्दे पैदा होते हैं। जबतक हिन्दुस्तान खुद संयुक्त राष्ट्रके लिए एक विशाल शस्त्रागार और युद्धकी साधन-सामग्री देनेवाला भण्डार नहीं बन जाता, तबतक दुनियाके इस हिस्सेमें विदेशी फौजें कुछ कर ही नहीं सकतीं। इस दिशामें कोई भी सुझाव चाहे वह कितना ही कामचलाऊ और काल्पनिक क्यों न हो, खतरेसे खाली नहीं है।

गांधीजी यह साबित करनेके लिए बहुत ही आतुर हैं कि जापानको हिन्दुस्तानमें न घुसने देनेका उनका निश्चय कितना सच्चा है। लेकिन विदेशी फौजोंकी भारतमें भावी स्थितिके बारेमें जो विचार वे प्रकट कर रहे हैं, उनसे दूसरे पक्षके मनमें गलतफहमी पैदा हो सकती है, क्योंकि वह तो किसी-न-किसी तरहका सौदा करनेकी ही ताकमें रहेगा। मेरे कहनेका यह मतलब नहीं कि समझौतेकी बातचीतमें ही कोई दोष है, लेकिन अगर वैसा करते हुए दूसरे पक्षकी मनोवृत्ति सौदेकी भावनासे दूषित हो तो उससे जहाँ अंग्रेजोंके कार्यका, यदि वे कोई कार्य करें तो महत्त्व घट जायेगा, वहीं हिन्दुस्तानके लिए अनेक अनचाही उलझनें पैदा हो जायेंगी। साथ ही यह भी सोचना चाहिए

कि हिन्दुस्तानकी जनताके मनपर उसका क्या असर पड़ेगा। नये आन्दोलनकी इस घड़ीमें जन-मानसको इस विचार और विश्वासपर लाना बहुत जरूरी है कि हिन्दुस्तान इस बातके लिए तैयार रहे कि उसे केवल अपने ही नैतिक और भौतिक साधनोंपर भरोसा रखना है। इस निर्णयके क्षणमें क्या हम ऐसी किसी सम्भावनापर जोर दे सकते हैं जिससे सर्वसाधारणके मनपर यह छाप पड़े कि 'आखिर वे तो यहाँ रहेंगे ही'? सर्वसाधारणका मन तो राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और लाखों विदेशी सैनिकोंकी देशमें उपस्थितिका कोई तालमेल नहीं बैठा सकेगा।

इस पत्रका जवाब देने की जरूरत है। देशमें मित्र-राष्ट्रोंकी फौजोंके रहने की कल्पनासे आम जनताके मनमें उलझन पैदा होने की समस्या एक बहुत ही वास्तविक समस्या है। एक बार ब्रिटिश सरकारके यह एलान कर देने पर कि वह हिन्दुस्तानसे हट गई है, न तो आम और न खास लोग ही यह समझ सकेंगे कि देशमें मित्र-राष्ट्रोंकी फौजी हलचलकी क्या जरूरत है। लेकिन अगर उसकी जरूरत साबित कर दी जाये तो यह आशा की जा सकती है कि उसे अनिवार्य समझकर लोकमत उसके अनुकूल हो जाये।

मेरे पहले लेखमें स्पष्ट ही एक कमी थी। अपने एक मुलाकातीके साथ बातचीतमें ज्यों ही मुझे उसका पता चला, मैंने उसकी पूर्ति कर दी। अहिंसा सौ फीसदी ईमानदारीकी अपेक्षा रखती है, चाहे उसके लिए कोई भी कीमत चुकानी पड़े। अतएव लोगोंको मेरी कमजोरीको, अगर इसे कमजोरी कहा जाये तो, सहना ही होगा। मैं मित्र-राष्ट्रोंको ऐसी किसी कार्रवाईकी सलाह देने का दोषी नहीं हो सकता था जिसके फलस्वरूप वे निश्चित रूपसे हार जायें। मैं ऐसी किसी अचूक अहिंसक कार्रवाईका विश्वास नहीं दिला सकता था जो जापानको निश्चय ही हिन्दुस्तानसे दूर रख सके। मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाके अचानक विदा हो जाने का नतीजा यह हो सकता है कि जापान हिन्दुस्तानपर अधिकार कर ले और चीन निश्चित रूपसे हार जाये। तब मुझे तनिक भी कल्पना नहीं थी कि मेरी योजनाके कारण ऐसी विपत्ति आ सकती है। इसलिए मैं महसूस करता हूँ कि मेरे सुझावको मंजूर करने के बावजूद अगर मित्र-राष्ट्र यह अनुभव करें कि जापानके कब्जेको रोकने के लिए उनका यहाँ रहना जरूरी है तो उन्हें रहना चाहिए। अलबत्ता, अंग्रेजी सत्ताके विदा होने पर जो राष्ट्रीय सरकार देशमें बनेगी, उसके द्वारा तय की गई शर्तोंके अनुसार ही वे यहाँ रह सकेंगे।

पत्र-लेखककी इस दलीलमें वजन है कि अगर ब्रिटेन मेरे सुझावको मंजूर कर ले और फलत: आफ्रिकामें भी वैसा ही आचरण करे तो फिर उसके पास लड़ाईको जारी रखनेका कोई कारण ही नहीं रह जाता। लेकिन यही तो सबसे कड़ी कसौटी है। न्याय, प्रजातन्त्रकी रक्षा, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और वाणी-स्वातन्त्र्य आदि का ढिंढोरा पीटनेवाली घोषणाओंके गूढ़ार्थोंकी जाँचका हिन्दुस्तानको पूरा हक है। अगर लुटेरोंकी एक टोली अपनी लूटमारको अच्छे ढंगसे चलाने के लिए आपसमें कोई लोकतान्त्रिक विधान तय कर ले तो उस टोलीको लोकतन्त्र नहीं कहा जा सकता।

क्या हिन्दुस्तानमें लोकतन्त्र है? क्या देशी रियासतोंमें लोकतन्त्र है? अगर ब्रिटेन एशिया और आफ्रिकाके अपने अधीनस्थ देशोंपर अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए ही लड़ रहा हो तो न्यायके आधारपर वह इस युद्धमें विजयी होने का अधिकारी नहीं है। मैं इससे बेखबर नहीं कि मेरे सुझावको मंजूर कर लेने पर ब्रिटेनको अपनी आर्थिक नीतिमें जबरदस्त परिवर्त्तन करना पड़ेगा। लेकिन अगर इस लड़ाईका कोई सन्तोषजनक फल निकलना हो तो वह परिवर्त्तन बहुत ही जरूरी है।

क्या यह मुमकिन नहीं कि ब्रिटेनके मेरे सुझावको मंजूर कर लेने पर धुरी-राष्ट्रोंकी मनोदशामें भी ऐसा परिवर्त्तन आ जाये जिसकी वजहसे लड़ाईका सम्मानपूर्ण अन्त हो जाये?

लेखकको डर है कि ब्रिटिश फौजोंके हिन्दुस्तानमें रहने की बातको मानकर मैं अपनी अहिंसक आधार-भूमिसे नीचे उतर आऊँगा। मैं मानता हूँ कि मेरी अहिंसा ही मुझे इस अनिवार्य आवश्यकताको स्वीकार करने का आदेश देती है। ब्रिटेन या अमेरिकाकी मेरी तरह अहिंसामें आस्था नही है। मैं यह कहने में असमर्थ हूँ कि हमारे अहिंसक प्रयत्नोंके कारण जापान या दूसरा कोई राष्ट्र हिन्दुस्तानपर आक्रमण कर ही नही सकेगा। मैं इस बातका भी दावा नहीं कर सकता कि समूचा हिन्दुस्तान, जिस अर्थमें होना चाहिए, उस अर्थमें अहिंसक है। ऐसी हालतमें अगर अपने सुझावके एक आवश्यक अंगके रूपमें मैं मित्र-राष्ट्रोंकी फौजोंको तुरन्त यहाँसे हटाने का आग्रह करूँ तो वह मेरा दम्भ ही माना जायेगा। मेरे लिए सिर्फ यह एलान कर देना काफी है कि चूँकि हिन्दुस्तानका जापानके साथ कोई झगड़ा नही है, इसलिए जहाँ तक हिन्दुस्तानका सवाल है, अपनी हिफाजतके वास्ते उसे किसी फौजकी जरूरत नहीं है। लेकिन हिन्दुस्तानको ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जो चीनके साथ विश्वासघात या मित्र-राष्ट्रोंको खतरेमें डालनेवाला हो। हाँ, उसे इतनी खबरदारी जरूर रखनी होगी कि कहीं उसकी अपनी ही हत्या न हो जाये। इसलिए जबतक हिन्दुस्तानको बाहरी हमलोंसे रक्षा कर सकने की अहिंसाकी शक्तिपर विश्वास नहीं है, और मित्र-राष्ट्रोंको मात्र प्रतिरक्षाकी दृष्टिसे अपनी फौजोंको हिन्दुस्तानमें रखना बहुत ही जरूरी मालूम होता है, तबतक युद्धके दौरान उन फौजोंको हटा लेने की माँग करना अपने-आपमें एक हिंसाका कार्य होगा।

सेवाग्राम, २२ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-६-१९४२

२८२.- दो बातें

ब्रिटिश हुकूमतके हट जाने का जो सुझाव मैंने रखा है, उसमें दो बातें आती हैं। एक, मौजूदा आपात-स्थितिसे निपटने की, और दूसरी ब्रिटिश हुकूमतसे छुटकारा पाने की। दूसरीमें देरकी गुंजाइश है। उसके फलितार्थोंके सम्बन्धमें काफी गलतफहमियाँ हैं। ज्यों-ज्यों सवाल पैदा होते जाते हैं, मैं भरसक उन्हें समझाने की कोशिश करता रहता हूँ।

पहली बातमें देरकी कोई गुंजाइश नहीं है। ब्रिटिश हुकूमतकी बिदाईके साथ उसका कोई सरोकार नहीं। अतएव यह जरूरी है कि उसके लिए निश्चित कार्रवाई की जाये। इस कार्रवाईका सम्बन्ध (१) सैनिकोंके व्यवहारसे, (२) नमकके अकालके अन्देशेसे, (३) अनाजके नियन्त्रणसे, (४) फौजोंके लिए खाली करवाये जानेवाले मकानों व स्थानोंसे, और (५) एक ओर यूरोपीय, एंग्लो-इंडियन तथा एंग्लो-बर्मन और दूसरी ओर हिन्दुस्तानियोंके बीच बरते जानेवाले भेद-भावसे है।

पहले मुद्देमें कानून और लोकमत पूरी तरह लोगोंके हकमें हैं। सरकारी तन्त्र हमेशा ही धीमा चलनेवाला होता है; तिसपर आज तो, जब वह फौजी तैयारियोंमें बुरी तरह उलझा हुआ है, वह और भी धीमा हो गया है। दुराचार करनेवाले व्यक्ति कोई भी क्यों न हों, लोगोंको चाहिए कि वे उनसे अपनी रक्षा करने की वृत्ति और शक्तिका विकास करें। इसमें अहिंसा या हिंसाका सवाल खड़ा ही नहीं होता। इसमें शक नहीं कि अहिंसाका मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है। लेकिन अगर वह सहज भावसे न सूझे तो हिंसाका मार्ग न सिर्फ आवश्यक, बल्कि सम्मानास्पद भी है। ऐसे समयमें निष्क्रियता घोर कायरता और नामर्दी बन जाती है। उसका तो हर हालतमें त्याग ही करना चाहिए। पंडित नेहरूने मुझे बताया कि इधर उत्तर हिन्दुस्तानके स्टेशनोंपर खोंचेवालोंने आत्मरक्षाके लिए अपना संगठन बना लिया है, और यही वजह है कि उस तरफ सैनिक अब बहुत सँभलकर व्यवहार करते हैं।

नमकके अकालके सम्बन्धमें कानून पूरी तरह लोगोंके पक्षमें नहीं है, लेकिन न्याय तो सम्पूर्णतः उन्हींके पक्षमें है। मुझे आशा है कि सरकार गांधी-अर्विन समझौतेकी नमक-सम्बन्धी धाराका अधिकसे-अधिक उदार अर्थ करेगी, और जहाँ जनता नमक बना सकती है, वहाँ उसे बनाने देगी। और मैं तो लोगोंको सलाह दूँगा कि वे कानूनके पंजेमें फँसने की जोखिम उठाकर भी नमक बनायें। आपत्ति-कालमें तो नियम-कानूनका कोई बन्धन नहीं रहता। भूखा आदमी जहाँ पायेगा, वहींसे अपनी जरूरतका अन्न ले लेगा। ऋषि विश्वामित्रका उदाहरण तो प्रसिद्ध ही है।

तीसरा मुद्दा जरा मुश्किल है। लेकिन जो नियम दूसरे पर लागू है, वही इस पर भी लागू होता है। नमककी तरह अनाज आसानीसे पैदा नहीं किया जा सकता। व्यापारियोंका कर्त्तव्य है कि वे संगठित होकर जितना कुछ कर सकें, करें; और गरीब

लोगोंके लिए अनाज निर्धारित दरोंपर सुलभ बनाने के लिए उचित उपाय सुझायें और सरकारको उचित कार्रवाई करने के लिए मजबूर करें। अगर वक्त रहते यह नहीं किया गया तो यकीन रखें कि दुकानोंकी लूटपाट रोजमर्राकी चीज बन जायेगी।

चौथे मुद्देके बारेमें मैं निःशंक भावसे यह कह सकता हूँ कि लोगोंको उनकी जगहसे हटने के लिए कहने से पहले सरकारको चाहिए कि वह उनके लिए वैसी ही जमीन और मकान तैयार करके दे, लोगोंको व माल-असबाबको पहुँचाने के लिए सवारी-का बन्दोबस्त करे और जबतक उन्हें उनके लायक कोई धन्धा न मिल जाये, उनके गुजारेका खर्च दे। जबतक इस तरहकी सब तैयारी न हो, सरकार उन्हें हटने के लिए कह ही नहीं सकती। अगर लोगोंके लिए जाने को कोई जगह न हो तो उन्हें हटने से साफ इनकार कर देना चाहिए और इसके कारण जो-कुछ सहना पड़े, सह लेना चाहिए।

पाँचवें मुद्देके बारेमें मुझे यह कहना है कि अगर जनता भेद-भावको बरदाश्त ही न करे, तो उसका कायम रहना असम्भव हो जाये। ऐसी अधिकतर असुविधाएँ तो सिर्फ इसलिए चलती रहती हैं कि हमने उनको सह लेने की आदत डाल ली है। स्व० लॉर्ड विलिंग्डनके शब्दोंमें कहूँ तो जब इनकार करके ही हम सच्चा जवाब दे सकते हों, तब हमें दृढ़तापूर्वक 'नहीं' कहना सीखना चाहिए, और उसके लिए जो सहना पड़े, सह लेना चाहिए।

सेवाग्राम, २२ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-६-१९४२

२८३. पत्र: नारणदास गांधीको

सेवाग्राम, वर्धा
२२ जून, १९४२

चि० नारणदास,

'हरिजनबन्धु' में मैंने जो-कुछ लिखा है वह ठीक है न?[1] अब तो आभा वहाँ सबकी जानी-पहचानी हो गई होगी। और तुम सबको अच्छी लगी होगी। क्या गोकीबहनको[2] और मदद देने की जरूरत है? प्यारेलालके घर जो पैसा भेजा जाता है वह जबसे न भेजा गया हो, तबसे आज तकका पैसा मोहनलाल नैयर, आर्यसमाज मन्दिर बिल्डिंग, हनुमान रोड, नई दिल्लीके पतेपर भेज देना।

१. देखिए "सतकी मुद्रा", पृ० २०४।
२. रलियातबहन, गांधीजी की बहन

यहाँ बरसात बहुत ठीक शुरू हो गई है। कनैयो प्रसन्न है। कुसुम अच्छी होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८६०५ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

२८४. स्वर्गीय डॉ० दत्त

फॉरमन क्रिश्चियन कॉलेजके प्रिंसिपल डॉक्टर दत्तके देहान्तसे देशका एक कट्टर राष्ट्रवादी क्रिश्चियन उठ गया है। दक्षिण आफ्रिकासे लौटने के तुरन्त बाद ही मुझे उन्हें निकटसे जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे स्वर्गीय दीनबन्धु एन्ड्रचूजके अन्तरंग मित्र थे और उन्हें अपने हरएक मित्रसे मेरा परिचय कराकर ही सन्तोष हो पाया था। सन् १९२४ के उन चिन्ताजनक दिनोंमें, जब मैं दिल्लीमें २१ दिनका उपवास कर रहा था, उन्होंने एकता परिषद्के लिए रात-दिन जी-जानसे काम किया था। दूसरी गोलमेज परिषद्के समय भी मैंने उन्हें उतनी ही लगनके साथ काम करते देखा था। देशके इतिहासके इस नाजुक दौरमें उनका देहान्त दुगुना कष्टदायक है। मैं श्रीमती दत्तके साथ अपनी समवेदना प्रकट करता हूँ। डॉक्टर दत्तके अनेकानेक मित्र इस शोकमें उनके साथ हैं।

सेवाग्राम, २३ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २८-६-१९४२

२८५. बातचीत: होरेस अलेक्जेंडरसे[1]

सेवाग्राम

[२३ जून, १९४२ या उसके पश्चात्][2]

होरेस अलेक्जेंडर: हम सोच रहे थे कि जब आप अंग्रेजोंको वापस लौटने के लिए कह रहे हैं, एक अंग्रेज मण्डलीका भारत आना क्या ठीक होगा। एगथाने सुझाव दिया कि हम भारतसे कुछ लोगोंको अपने साथ काम करने के लिए ले सकते हैं और अपनी मण्डलीको मिश्रित मण्डली बना सकते हैं।

१. महादेव देसाईके "फ्रेंड्स एम्बुलेंस यूनिट इन इंडिया" से उद्धृत। यूनिटके कुछ सदस्योंको ऐसा लगा कि ब्रिटेनके बमबारीके क्षेत्रोंमें उनके अनुभव शायद भारतके कामके साबित हों, इसलिए आठ कार्यकर्त्ताओंका एक दल भारतकी स्वयंसेवी संस्थाओंके सहयोगमें काम करने के लिए भारत भेजा गया था। होरेस अलेक्जेंडर, जो रिचर्ड सिमंड्सके साथ यहाँ थोड़ा पहले आ गये थे, इस दलके नेता थे।

२. होरेस अलेक्जेंडर २३ जूनको सेवाग्राम पहुँचे थे।

गांधीजी : मुझे लगता है कि मेरे पहले लेखने इस तरहकी आशंकाको जन्म दिया। ऐसा इसलिए हुआ कि मैंने अपने मनके विचारको पूरा व्यक्त नहीं किया था। किसी सम्पूर्ण चीजको सोचकर एक साथ तैयार कर लेना और प्रस्तुत करना मेरा स्वभाव नहीं है। जैसे ही मुझसे एक सवाल पूछा गया, मैंने यह बात साफ कर दी कि मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि यहाँसे हरएक अंग्रेजको चले जाना है। मेरा अभिप्राय तो इतना ही था कि भारतसे ब्रिटिश प्रभुत्व हट जाना चाहिए। इसलिए भारतमें हरएक अंग्रेज अपने-आपको एक मित्रके रूपमें बदल सकता है — जैसे कि आप मित्रोंकी तरह आये हैं — और वह यहाँ बना रह सकता है। शर्त यह है कि हर अंग्रेजको जिस घोड़ेपर वह सवार है उससे उतरना होगा और यह भूल जाना होगा कि वह इस विशाल भू-खण्डका राजा है। उसे हममें से छोटेसे-छोटे व्यक्तिसे अपना तादात्म्य स्थापित करना होगा। ज्यों ही वह ऐसा करेगा, वह इस परिवारका एक सदस्य समझा जाने लगेगा। शासक जातिके एक सदस्यके नाते उसकी जो भूमिका है, वह हमेशाके लिए समाप्त होनी चाहिए। इसलिए जब मैंने कहा 'हटो' तो मेरा अर्थ था 'मालिकोंके रूपमें हटो'। हटनेकी माँगके पीछे एक और अर्थ भी था। आपको यहाँसे किसी की भी इच्छाका खयाल किये बिना हट जाना है। किसी गुलामको आजादी देनेके लिए उसकी सहमतिकी जरूरत नहीं पड़ती। गुलाम अक्सर गुलामीकी जंजीर जोरसे पकड़ लेता है। वे उसकी देहका अंग बन जाती हैं। आपको वे जंजीरें बिलकुल तोड़कर फेंक देनी हैं। आपको हटना ही चाहिए, क्योंकि ऐसा करना आपका कर्त्तव्य है और इसके लिए आपको भारतके सभी वर्गों या दलोंकी सर्वसम्मतिकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।

अत: आपके लिए समयके गलत होनेका कोई सवाल ही नहीं है। इसके विपरीत, यदि आप मेरे प्रस्तावको हृदयंगम कर सकते हों तो यह भारतमें आपके आनेकी सबसे ज्यादा ठीक घड़ी है। आप यहाँ अनेक अंग्रेजोंसे मिलेंगे। उन लोगोंने शायद जो मैंने कहा है उसे बिलकुल गलत रूपमें समझा हो और आपको उन्हें समझाकर बताना है कि उनसे मैं क्या कराना चाहता हूँ।

इसलिए सच कहा जाये तो यह आपके कार्यका मुख्य अंग बन जाना चाहिए; और इंडिया ऑफिस भी, जिसने आपका यहाँ आना सुगम बनाया है, आपको गलत नहीं समझ सकता। इसलिए आपके पास न केवल मानव-सेवाका कार्य है — वैसे, यहाँ शायद बमबारी न हो, और इस बड़े देशमें यदि हो भी तो आप शायद सब जगह न पहुँच सकें — बल्कि आपको मेरी बातको समझाने और भारतीयों तथा अंग्रेजोंमें मेल करानेका विशिष्ट कार्य भी करना है। और शायद यह अच्छी बात है कि आपका कार्य मुझसे शुरू होता है। आपके मनको जो भी प्रश्न विचलित कर रहे हों उन सबको मुझसे पूछकर और मेरा ठीक क्या आशय है, उसका पता लगाकर आप अपना काम शुरू कीजिए।

आप देखेंगे कि मैंने 'सुव्यवस्थित रूपसे हटने' के लिए कहा है। जब मैंने इन शब्दोंका प्रयोग किया था, मेरे दिमागमें बर्मा और सिंगापुर थे। वहाँसे अव्यवस्थित

रूपसे हटा गया था, क्योंकि उन्होंने बर्मा और मलायाको न तो ईश्वरके हाथोंमें छोड़ा, न अराजकताके, बल्कि जापानियोंके हाथोंमें छोड़ दिया। यहाँ मैं यह कह रहा हूँ कि 'उस कहानीको आप यहाँ मत दुहराइए। भारतको जापानके हाथोंमें न छोड़िए, बल्कि व्यवस्थित ढंगसे भारतीयोंके हाथोंमें छोड़िए। . . .' इस तरह आपको अब वह काम करना है जो एन्ड्रयूजने किया — मुझे समझिए, बे-मुरव्वतीसे मुझसे सवाल-जवाब कीजिए और फिर यदि आपको मेरी बातपर यकीन हो जाये तो मेरे सन्देशवाहक बनिए।

हो० अ० : एन्ड्रयूजकी जगह भरनेका साहस तो हम नहीं कर सकते। हम तो केवल प्रयत्न कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-७-१९४२

२८६. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
२४ जून, १९४२

चि० अमृत,

तुम्हारा पत्र मिला।

मौसम कष्टकर है। इसलिए अगस्तसे पहले या उसके भी बाद तक मैं तुमसे यहाँ आनेको नहीं कहूँगा। अगर कोई खास बात हुई तो मैं तुम्हें बता दूँगा।

खुर्शेदबहन २८ तारीखको आ रही है।

होरेस अलेक्जैंडर और उनके मित्र सिमंड्स तीन दिनके लिए यहाँ आये हैं।

रेलकी घटना चौंकानेवाली है। क्या उसका कोई अर्थ है?

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

रिचर्ड्सनने यदि लिखा तो मैं उन्हें आने दूँगा।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१३४) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७७४३ से भी

२८७. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२४ जून, १९४२

भाई घनश्यामदास,

स्वामी आते हैं तो मैं यह भेजता हूं।

मेरा ख्याल है गो-सेवा संघकी यह मीटिंग अनिवार्य थी। जो जमीन इ० दी है उसके दो हिस्से हैं। एक तो वह जो जमनालालजी ने दिया। दूसरा वह जिसमें आश्रमने पैसे दिये। यह स्थावर और जंगम दोनों प्रकारकी मिलकतमें गये। अब जो पैसे आश्रमने दिये वह तो प्रायः सब-के-सब तुम भाइयोंने पैसे दिये उसमें से दिये थे। इसलिये परिणाम यह आता है कि उतने पैसेका तुम्हारा दान हुआ। अब जैसे उचित समझो ऐसे किया जाय। अगर इतने पैसे गो सेवा संघसे लेना है तो तुम्हारे बचते हैं अथवा उतना और दान तुम्हारे तरफसे गो सेवा संघको होगा। मैं तो दानका दान दे नहीं सकता हूं न मुझे उसका पुण्य मिलता है। मेरी उमेद है मैं मेरा कहना समझा सका हूं। अब जैसा उचित हो किया जाय।

मैं जो कर रहा हूं उस बारेमें मनका वेग बढ़ रहा है। सलतनतका पाजीपन भयानक है। मेरे विरोधमें जो कहा जाता है उससे दुःख भी होता है, क्रोध भी। न दुःख होना चाहिये न क्रोध। यह क्षणिक है। फिर तो शांत हो जाता हूं।

मेरे मनमें युद्धकी रचना करीब-करीब बन गई है। अब तो व० क० की मीटींग की इंतजारीमें हूं। मेरे तरफसे सब तैयारी है। बाकी मिलने पर। तुम्हारी तबीयत अच्छी होगी।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ८०५९) से। सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

२८८. पत्र : अब्दुल वदूद सरहदीको

२४ जून, १९४२

साहबज़ादा साहेब,

आपके खतके लिये मैं अहसानमंद हूं। मैं तो दिलसे चाहता हूं कि हम हिंदु मुस्लिमके बीचमें इत्तेहाद हो। वह कैसे हो सके मैं नहीं जानता हूं।

मूल पत्रसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

२८९. पत्र : कंचन मु० शाहको

२५ जून, १९४२

चि० कंचन,

तेरा पत्र मिला। तूने लिखा, यह अच्छा किया। अपना दोष तूने देख लिया, यह मुझे अच्छा लगा। अब अपनेमें सुधार कर।

मैं मानता हूँ कि तेरा भला मुन्नालालके साथ रहने में है, लेकिन मुन्नालाल जरा और अधिक स्थिर हो जाये तब। फिर, मेरा क्या होता है, यह भी तो अभी देखना है। इसलिए अभी तू मंजुबहनके साथ काम कर और उस काममें कुशलता प्राप्त कर। यदि तू काममें डूबी रह सके, फिर चाहे वह कोई भी काम हो तो यह अच्छा ही है। वहाँ तू कमसे-कम एक बरस बिता सके तो अच्छा है। मुझे लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८२६९) से। सी० डब्ल्यू० ७१७१ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल गं० शाह

२९०. सिख भाइयोंके लिए

सरदार मंगलसिंह लिखते हैं :

> **सिखोंके प्रति कांग्रेसके और आपके व्यक्तिगत रुखके सम्बन्धमें जो आपत्तियाँ उठाई जाती हैं, उन्हें मैं आपके सामने पेश करना चाहता हूँ। मुझे उम्मीद है कि आप 'हरिजन' में इनका ठीक समाधान करेंगे।**
>
> **(१) पहली और बड़ी आपत्ति जो कांग्रेसके खिलाफ उठाई जाती है, वह यह है कि कांग्रेस सिखोंकी परवाह नहीं करती। पिछले सात सालसे कांग्रेसकी कार्य-समितिमें कोई भी सिख शामिल नहीं किया गया है, और न उसकी किसी बैठकके लिए उसे खास तौरसे बुलाया ही गया है। हम इन आपत्ति करनेवालोंको बतलाते हैं कि कांग्रेस कार्य-समितिका गठन साम्प्रदायिक आधारपर नहीं होता। लेकिन हमारे ऐसा कहने से आम सिख जनताकी तसल्ली नहीं होती।**
>
> **(२) कई साल पहले अहिंसाके सिद्धान्तकी चर्चा करते हुए आपने 'यंग इंडिया' में लिखा था कि "गुरु गोविन्दसिंह गुमराह देशभक्त" थे, या इसी आशयके दूसरे शब्द कहे थे।[1] जब ओजस्वी वक्ता अपने भाषणोंमें**

१. देखिए "गुरु गोविन्दसिंह", पृ० २९८-३०२।

इसका जिक्र करते हैं तो सिखोंकी भावनापर उसका बड़ा असर होता है। मेरा खयाल है कि आप इस सम्बन्धमें अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दें।

३. आप सिखोंके कृपाण रखनेके खिलाफ हैं।

४. आपने कुछ सिखोंसे कहा था कि वे या तो गुरु गोविन्दसिंहका अनुसरण करें या आपका।

मैं खुद यह जानता हूँ कि अन्तके दो आरोपोंका कोई आधार नहीं है। लेकिन जब झूठ भी बार-बार दुहराया जाता है तो उसका कुछ-न-कुछ महत्त्व हो ही जाता है। मेरा खयाल है कि आप मुझसे इस बातपर सहमत होंगे कि इस सम्बन्धमें आपकी ओरसे कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक है। इससे राष्ट्रवादी सिखोंको और पंजाबमें कांग्रेसको सहायता मिलेगी।

मेरे लिए यह दुःखकी बात है कि मुझे इस विषयपर लिखना पड़ रहा है। इनमें से कुछ मुद्दोंकी तो काफी बारीकीसे चर्चा हो चुकी है। लेकिन जब सन्देह तर्ककी जगह ले लेता है तो उसे दूर करना बहुत ही कठिन हो जाता है। फिर भी मैं एक सहयोगी कार्यकर्त्ताके प्रश्नोंका जवाब देने से इनकार नहीं कर सकता, खास तौरसे उस हालतमें जब कि वे अपने रास्तेको आसान बनानेके लिए ये प्रश्न पूछ रहे हैं।

पहले प्रश्नका जवाब तो दरअसल कांग्रेसके मन्त्री ही दे सकते हैं। लेकिन इतना तो मैं कह सकता हूँ कि सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर बरसों कांग्रेस कार्य-समितिके सदस्य रहे। कार्य-समितिमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वको स्थान देना हमेशा सम्भव नहीं होता। नीति तो यह होनी चाहिए और है भी कि जो सबसे योग्य हों, वे ही उसमें रहें। हकीकत यह है कि कांग्रेसने सिख जनताकी भावनाका सदा अधिकसे-अधिक ध्यान रखा है। सिखोंकी खातिर ही राष्ट्रीय झंडेके रंगके लिए एक खास कमेटी नियुक्त की गई थी। उन्हींकी खातिर साम्प्रदायिक प्रश्नके सम्बन्धमें लाहौरवाला मशहूर प्रस्ताव[1] तैयार किया गया था। इसलिए कांग्रेसके खिलाफ शिकायतका वस्तुतः उनके पास कोई कारण नहीं है।

अब गुरु गोविन्दसिंहके सम्बन्धमें मेरी तथाकथित उक्तिकी बात लीजिए। इसके जवाबमें पहले जो-कुछ मैं कह चुका हूँ, यहाँ उसे सिर्फ दोहरा ही सकता हूँ। मुझपर जो बात कहनेका आरोप लगाया जाता है वह मैंने कही हो, उसका मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है। जो लोग मुझपर यह आरोप लगाते हैं, उन्हें कमसे-कम इतना तो करना ही चाहिए कि वे मेरे लेखोंसे उस अंशका हवाला दें। मैंने उसे खूब तलाश किया, मगर व्यर्थ। इस सम्बन्धमें अधिक प्रासंगिक बात तो यह जानना है कि गुरु गोविन्दसिंहके बारेमें मेरे क्या विचार हैं। मेरे हृदयमें उनके प्रति अधिकसे-अधिक सम्मान है। लोगोंका आम खयाल यह है कि उन्होंने ही खालसाको तलवार

१. दिसम्बर, १९२९ में। प्रस्तावमें सिख, मुसलमान और अन्य अल्पसंख्यकोंको यह आश्वासन दिया गया था कि किसी भी भावी संविधानमें "कांग्रेसको साम्प्रदायिक प्रश्नका ऐसा कोई हल स्वीकृत न होगा जिससे सम्बन्धित पक्ष पूरी तरह सन्तुष्ट न हों"।

दी। मैं यह मानता आया हूँ कि जिस हदतक उन्होंने ऐसा किया, उस हदतक वे अपने पूर्व गुरुओंकी अहिंसासे दूर हटे थे। यहाँ इन महान गुरुके इस कार्यके औचित्यपर आपत्ति उठाना या उसकी जाँच करना अप्रासंगिक होगा। एक विद्वान सिख मित्र मुझे बताते हैं कि वे यह साबित कर सकते हैं कि गुरु गोविन्दसिंह भी अपने पूर्व गुरुओंके अहिंसात्मक सिद्धान्तोंसे नहीं हटे। लेकिन ऐसे सबूतका बहुत कम मूल्य है। सिखोंकी सामान्य धारणा, जिस रूपमें मैंने उसे समझा है, यह है कि गुरु गोविन्दसिंहने कुछ सुनिश्चित परिस्थितियोंमें तलवारके आश्रयको सर्वथा उचित माना था। जो-कुछ भी हो पर मैंने इन महान गुरु या सिख पंथके प्रति कभी तनिक भी असम्मान नहीं दिखाया। सच तो यह है कि आश्रममें प्रार्थनाके वक्त जो भजन गाये जाते हैं, उनमें से कई गुरु नानकके हैं।

हाँ, कृपाणके बारेमें मैं यह कहूँगा कि मनुष्योंका कृपाण या ऐसी ही किसी चीजको धर्मके अंगके रूपमें धारण करना मैं पसन्द नहीं करता। लेकिन मेरी इस पसन्दगी या नापसन्दगीका सिखोंके आचरणपर कोई असर नहीं पड़ सकता। अगर ऊपरके सवालका मतलब यह हो कि सिखोंके कृपाण धारण करने पर प्रतिबन्ध लगानेवाले किसी कानूनके पक्षमें मैं अपना मत दूँगा या नहीं तो मैं बिना हिचकके कहूँगा: "नहीं", और सो इसलिए कि कानून द्वारा लोगोंको अहिंसक बनाने में मेरा विश्वास नहीं है।

चौथे प्रश्नमें जो बात कही गई है, वह हास्यास्पद है। मैंने कभी भी अपनेको धर्मगुरु नहीं माना है, और न कभी अहिंसाको या अपने उपदेशको मनवाने के लिए किसीसे स्वधर्मका त्याग करने को ही कहा है। मैं ऐसे किसी धर्मको नहीं जानता जिसमें हिंसाको कर्त्तव्य माना गया हो। अधिकतर धर्मोने, जहाँ अहिंसाको अशक्य पाया है, वहाँ हिंसाके लिए छूट दे दी है। लेकिन दूसरे धर्मोपर फतवा देने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। मेरे मनमें सभी धर्मोके लिए समान आदर है। अगर मैं यह आशा रखता हूँ कि दूसरे मेरे धर्मका आदर करें तो मुझे भी उनके धर्मका आदर करना चाहिए।

सेवाग्राम, २६ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ५-७-१९४२

२९१. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

२६ जून, १९४२

[1] तुमने लिखा यह अच्छा किया, लेकिन तुम इसकी चिन्ता करना छोड़ दो।
. [2] मैं तबतक यदि जिन्दा रहा तो उसके लिए वर पसन्द करने का काम[3] जरूर करूँगा। यों तो, आजकलके लड़के-लड़कियाँ अपनी पसन्द खुद कर लेंगे, और उन्हें करने देना चाहिए। . . .[4]

तू निराश क्यों होता है? यमराज हमारे शत्रु नहीं, मित्र हैं। कोई उनके शासनके बाहर नहीं रह सकता और जो उनके शासनके अधीन रहता है, वह सदा सुखी रहता है। तू अगर यहाँ आकर रहे तो मैं तुझे अपने पास रखूँ। यहाँ मैं तुझे ठंडी हवा तो नहीं दे सकता, बाकी तो यहाँ सब-कुछ है। लेकिन यदि यह सम्भव न हो तो यह समझकर सन्तोष कर कि जो तुझे मिल रहा है, वह उससे तो ज्यादा ही है जो करोड़ोंको मिलता है। अपने नहीं रहने के बादकी चिन्ता तू क्यों करता है? वह भगवानको सौंप। जिन्हें सौंपेगा, वे भी तेरे ही समान टूटी नावमें बैठे हुए हैं। उनपर भरोसा करने से क्या होगा?

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृ० १८३-८४

२९२. पत्र : कृष्णचन्द्रको

२६ जून, १९४२.

चि० कृ० चं०,

चंद्रसिंह थोड़े दिनमें यहांसे जायंगे। दरम्यान उसका ताप सहन कर लेना यही धर्म है। जो अपमान करते हैं उसका ख्याल तक नहीं करना।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४३५) से। एस० एन० २४४८४ से भी

१, २ और ४. साधन-सूत्रमें यहाँ छोड़ दिया गया है।

३. मथुरादास अपनी पुत्री ज्योत्स्नाके विवाहके लिए चिन्तित थे।

२९३. भाषण: खादी विद्यालयके छात्रोंके समक्ष[1]

२६ जून, १९४२

ये परीक्षाएँ विश्वविद्यालयकी परम्परागत परीक्षाओं-जैसी नहीं हैं। उन परीक्षाओं में तो अधिकसे-अधिक किताबी ज्ञानकी ही परख होती है, और वे परीक्षकोंकी सनकों पर निर्भर होती हैं। यहाँ परीक्षामें अनुत्तीर्ण होने पर भी आपका सीखा हुआ ज्ञान व्यर्थ नहीं जाता। उससे देशको लाभ पहुँचा है। यहाँ अनुत्तीर्ण होने का मतलब सिर्फ इतना ही है कि आप पूरी तरह अपना अभ्यास या काम नहीं कर पाये; अगले साल आप अपना ज्ञान भी बढ़ायेंगे और उत्पादन भी। फिर, परम्परागत परीक्षाएँ परीक्षार्थियोंको बहुत हुआ तो क्लर्कीके लिए ही तैयार करती हैं। इन परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होनेवालों के सामने देशकी सम्पदाको बढ़ाने का कोई खयाल नहीं होता; जबकि आपमें जो अनुत्तीर्ण हुए हैं, उन्होंने भी देशकी सम्पदामें थोड़ी वृद्धि ही की है, भले ही वह उत्तीर्ण होनेवालों के जितनी न हो। इसके सिवा एक और बहुत ही महत्त्वपूर्ण अन्तर है। स्कूलों और कालेजोंमें पढ़नेवाले लड़के खासी फीस देकर पढ़ते हैं। लेकिन उनकी फीससे कहीं ज्यादा खर्च तो सरकार उनकी शिक्षापर करती है। इस भारी खर्चके बदलेमें देशको कुछ भी नहीं मिलता। अगर थोड़ा-बहुत फायदा होता भी है तो वह विदेशी सरकारको होता है। तिसपर परीक्षाकी पद्धति बहुत ही यान्त्रिक और थकानेवाली है, उससे परीक्षार्थियोंकी बौद्धिक योग्यतामें वृद्धि नहीं होती। इसके विपरीत, यहाँ उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी देशकी सम्पदाको अधिकसे-अधिक बढ़ाने की योग्यता प्राप्त करें, उनकी मौलिकताको प्रोत्साहन मिले, और जीविका-प्राप्तिके अलावा वे देश-सेवा भी कर सकें। एक आखिरी बात जो यदि आप अभीतक समझ नहीं पाये हों तो मैं आज समझाना चाहता हूँ। जब देश-सेवा ही हमारा अन्तिम ध्येय है तो कोई वजह नहीं कि जो अनुत्तीर्ण हुए हैं, वे निराशाका अनुभव करें, और उत्तीर्ण अनुत्तीर्णोंको नीची निगाहसे देखें। साथ ही, कड़वाहट पैदा करनेवाली स्पर्धाके लिए भी यहाँ कोई स्थान नहीं है। साधारण स्कूलों और कालेजोंके विद्यार्थी परीक्षाएँ पास करने के बाद अपनी किताबोंको एक ओर फेंक देते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि अब उनके लिए उनका कोई उपयोग नहीं रह गया है। यहाँ आप अपनी पुस्तकों और औजारोंको इस तरह फेंक नहीं सकते, क्योंकि वे हमेशा ही आपके काम आनेवाले हैं। जो एक बार खादीका विद्यार्थी बन जाता है, वह हमेशा खादी-विद्यार्थी ही रहता है। वह खादी-सेवकके नाते अपने ज्ञान और अपनी योग्यताको बराबर बढ़ाता चलता है।

१. यह महादेव देसाईके लेख "विद खादी वर्कर्स" (खादी-सेवकोंके साथ) से लिया गया है। प्रस्तुत भाषण प्रमाणपत्र प्रदान किये जाने के अवसरपर दिया गया था।

इसके बाद गांधीजी ने एक और महत्त्वपूर्ण अन्तरपर अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने बताया कि पुराने जमानेमें जो कताई होती थी उसमें और आज सिखाई तथा कराई जानेवाली कताईमें क्या अन्तर है। यह एक ऐसा मुद्दा है जिसे न सिर्फ शिक्षार्थियोंको, बल्कि शिक्षकों और परीक्षकोंको भी ध्यानमें रखना चाहिए, क्योंकि शिक्षक तथा परीक्षक न सिर्फ विद्यार्थियोंको सिखाते हैं, बल्कि सिखाने के साथ-साथ खुद भी सीखते हैं।

जिस अन्तरकी ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ, वह एक मौलिक अन्तर है। इसमें शक नहीं कि हमारे पूर्वज कातते, बुनते और अपना कपड़ा खुद तैयार कर लेते थे। लेकिन वे निरे कतैये और जुलाहे ही थे, जो या तो अपनी रोटी कमाने के लिए या ईस्ट इंडिया कम्पनी-जैसे अपने किसी मालिकके लिए मेहनत करते थे। उन्हें अपने काममें कोई रस नहीं आता था; उसके पीछे सेवा या ज्ञानकी कोई भावना नहीं थी। वे मेहनत करते थे, क्योंकि उन्हें करनी पड़ती थी। अक्सर यह मेहनत इतनी जी उकतानेवाली होती थी कि वे खुद अपनी उँगलियाँ काट डालते थे, ताकि उनके मालिक उन्हें मजदूरीके लिए मजबूर न कर सकें। उनकी मेहनत गुलामीकी मेहनत थी। वे अनुकरण करने लायक कोई चीज हमारे लिए छोड़ नहीं गये हैं। हमें उस गुलामीके लिए प्रायश्चित्त करना है और उसे मिटाना है। उनका यह श्रम पूर्णतया सम्मानजनक होता, अगर उसके पीछे ज्ञानका बल रहता, देशकी स्वतन्त्रताकी इच्छा रहती, विदेशी मालिकोंके सामने घुटने न टेकने की टेक रहती, और कलाकी भावना रहती। इस उद्योगके पुनरुद्धारका अर्थ यह है कि हम इन सब जीवनदायी गुणोंको अपनायें, और इस पुराने उद्योगकी सूखी हड्डियोंमें नवजीवनका संचार करें।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-७-१९४२

२९४. चर्चा : खादी-सेवकोंके साथ[1]

सेवाग्राम
२६ जून, १९४२

पहला प्रश्न जिसपर चर्चा हुई वह चन्दा करके और ऋण लेकर पूँजी बढ़ाने के बारेमें था। यह चीज साफ कर दी गई कि हर शाखा चन्दा इकट्ठा कर सकती है, पर वह अ० भा० चरखा संघकी ओरसे किया जाना चाहिए और उसे खर्च करने का तरीका भी उसको ही निश्चित करना चाहिए। गांधीजी को ऋण लेने पर कोई आपत्ति नहीं थी, पर उनका यह विचार था कि जो ऋण दें उन्हें यह बता देना चाहिए कि युद्धके इन

१. यह महादेव देसाईके "विद खादी वर्कर्स" (खादी-सेवकोंके साथ) से लिया गया है। ये खादी-सेवक अ० भा० चरखा संघके वार्षिक अधिवेशनमें भाग लेने आये थे।

अनिश्चित दिनोंमें वे ऐसा करके खतरा मोल ले रहे हैं; वैसे शायद यह खतरा उससे ज्यादा नहीं है जितना कि बैंकमें रकम जमा करने में है। यदि हम युद्ध और सामने उपस्थित इस भयानक संघर्षके बाद बचे रहते हैं तो हम पाई-पाई चुका देंगे। लेकिन यदि हम नहीं बचते हैं तो उनके सामने अपनी रकमके खोने का पूरा खतरा रहेगा। यह सम्भव है कि कोई भी ऋण देना न चाहे। इसलिए सारी शक्ति अपनी तथा यज्ञकी भावनासे की गई कताई करने और सूत तथा रुईके उपहार लेने पर लगाना बेहतर है।

किसी ने पूछा: "लेकिन हमें ऋण देनेवालोंको एक और भय हो सकता है। अभी जो स्थिति है उसमें युद्धका खतरा तो साफ-साफ है ही, पर वे ऐसा महसूस कर सकते हैं कि हमें ऋण देने से उनका खतरा और बढ़ जाता है।"

गांधीजी : तो उन्हें यह समझना चाहिए कि उन्हें एक सदुद्देश्यमें धन गँवाने का पुण्य मिलेगा।

प्र० : क्या खादी-सेवक भी संघर्षकी लपेटमें आयेंगे?

उ० : मैं खादी-सेवकोंका आह्वान करने नहीं जा रहा हूँ। पर यदि आग व्यापक रूपसे भड़क उठती है तो खादी-सेवक उससे बच नहीं सकते और उन्हें बचना भी नहीं चाहिए। जवाहरलालने खादीको 'आजादीकी वर्दी' का जो सुन्दर नाम दिया है उसका पूर्ण आशय आपको समझ लेना चाहिए। खादी हमारे लिए बेड़ी नहीं बननी चाहिए। आप यह भी समझ लें कि मैं पुरानी सविनय अवज्ञा या पुराने असहयोगकी बात नहीं सोच रहा हूँ। जिन लोगोंके बीच हम कार्य कर रहे हैं उन्हें अजीब या मनमाने आदेश जारी किये जा सकते हैं। हम अधिकारियोंको तर्कसे समझायेंगे। लेकिन यदि वे नहीं सुनते हैं तो हम न चाहते हुए भी लपेटमें आ सकते हैं। इसलिए इस बार कोई पक्के और सुनिश्चित नियम नहीं बनाये जा सकते। हमें खतरोंका खयाल किये बिना सदाकी तरह काम करते रहना चाहिए। हमारा कड़ा नियम यह है कि राजनीतिमें भाग नहीं लेना है, उसमें दखल नहीं देना है।

उनसे व्यवस्था-सम्बन्धी कई प्रश्न पूछे गये और उनपर चर्चा हुई। गांधीजी ने चर्चाका समाहार करते हुए कहा:

हमारे सामने जो संकट है उसे देखते हुए ये सब अप्रासंगिक सिद्ध हो सकते हैं। आप इस मामलेमें कोई गलती न करें। शीघ्र ही आग भड़कनेवाली है और हमें अपनी चमड़ी बचाने की बात जरा भी नहीं सोचनी चाहिए। अगर हम वैसा सोचते हैं तो हमारा चरखा चलाना और खादी पहनना व्यर्थ ही रहा समझें। अ० भा० चरखा संघके बारेमें कभी कोई यह न कहने पाये कि यह एक ऐसी संस्था थी जो कोई खतरा उठाने को तैयार नहीं थी।

और इतना कहकर उन्होंने खादी-सेवकोंसे कहा कि मेरे नये कदमके बारेमें आप मेरी पूरी-पूरी आलोचना करें।

यदि आपको यह पागलपन लगता है तो आपको निस्संकोच मुझसे ऐसा कहना चाहिए। यदि आपके खयालमें मैं कोई चीज क्रोध या आवेशसे प्रेरित होकर कर रहा

हूँ तो आपको मुझे बख्शना नहीं चाहिए। मेरा ऐसा खयाल है कि मैं जो-कुछ कर रहा हूँ वह अहिंसाकी उच्चतम भावनासे प्रेरित है और इसलिए सबकी भलाईके लिए है। विदेशी सेनाएँ अपनी रक्षाके लिए और चीनको रक्षाके लिए भारतमें रह सकती हैं, इस बातके लिए मेरा राजी होना इसका पर्याप्त प्रमाण माना जाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-७-१९४२

२९५. सेनाओंका प्रश्न

स्वतन्त्र हिन्दुस्तानका मैंने जो यह मोहक चित्र खींचा था कि उसमें एक भी अंग्रेज सिपाही नहीं होगा, उसकी मुझे भारी कीमत चुकानी पड़ रही है। मित्रोंको इस बातका पता लगने पर परेशानी हो रही है कि मेरे प्रस्तावके अनुसार अंग्रेज सैनिकोंको ही नहीं, बल्कि अमेरिकी सैनिकोंको भी किन्हीं सूरतोंमें हिन्दुस्तानमें रहने दिया जा सकता है। मेरा यह दलील देना भी बेकार हो रहा है कि मित्र-राष्ट्रोंके सैनिक अगर यहाँ रहे तो वे यहाँकी जनतापर सत्ता जमाये रखने के लिए या हिन्दुस्तानके खर्चपर नहीं रहेंगे, बल्कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तानकी सरकारके साथ सन्धि करके सिर्फ जापानी आक्रमणको रोकने और चीनको मदद देने के लिए ही रहेंगे, और सो भी अपने खर्चपर।

यह बताया गया है कि युद्धके दौरान मित्र-राष्ट्रोंकी फौजोंको हिन्दुस्तानमें न रहने देने का अर्थ होगा, हिन्दुस्तान और चीनको जापानके हवाले कर देना, और मित्र-राष्ट्रोंका निश्चित रूपसे हारना। ऐसी बात मैं कभी सोच ही नहीं सकता था। इसलिए इसका जवाब सिर्फ यही हो सकता था कि हम अपने देशमें मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाकी मौजूदगीको सहन कर लेंगे, लेकिन आजकी तरह नहीं, बल्कि इससे बिलकुल उलटी परिस्थितियोंमें। यानी वे स्वतन्त्र हिन्दुस्तानकी इजाजतसे और एक मित्रकी हैसियतसे रहेंगे, मालिककी हैसियतसे नहीं। मेरे प्रस्तावमें सब प्रकारके डर और अविश्वासकी बात समाई हुई है। अगर हममें आत्म-विश्वास है तो फिर न तो हम देशमें मित्र-राष्ट्रोंकी फौजकी मौजूदगीसे डरेंगे, और न उनके बारेमें सन्देह करेंगे।

और, मैं यह भी कहना चाहूँगा कि एक बहुत ही कठिन योजनाके, जो हिन्दुस्तानमें विदेशी सेनाकी मौजूदगीकी शर्तके साथ भी शायद मंजूर न की जाये, सबसे कमजोर मुद्दोंको पहलेसे ही नुक्ताचीनी करने लगना न केवल अप्रासंगिक बल्कि अनुचित भी होगा। अगर ब्रिटेन ईमानदारीके साथ हिन्दुस्तानसे अपनी सत्ता हटा ले और सत्ता हटाने के अन्तर्गत जो भी बातें आती हैं उन सबका पालन करे तो निश्चय ही वह इस शताब्दीकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना होगी और सम्भव है कि इससे युद्धकी सारी दिशा ही बदल जाये। मेरी रायमें केवल जापानी हमलेको रोकने की गरजसे ही मित्र-

राष्ट्रोंकी सेनाके यहाँ रहने से सत्ता-त्यागके गुण और महत्त्वमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। आखिर जापानी हमलेको रोकने में हिन्दुस्तानकी भी उतनी ही रुचि है जितनी कि मित्र-राष्ट्रकी। और इसके बावजूद मेरी योजनाके अनुसार हिन्दुस्तानकी इस सेनाके लिए अपनी जेबसे एक पाई भी खर्च नहीं करनी पड़ेगी।

जैसा कि मैं 'हरिजन'के पिछले अंकमें पहले ही कह चुका हूँ, अगर अंग्रेजोंने मेरे प्रस्तावको स्वीकार कर लिया तो हो सकता है कि सिर्फ इसीकी बदौलत सुलहका एक निहायत बाइज्जत रास्ता खुल जाये, और परिणामस्वरूप, विदेशी फौजें अपने-आप यहाँसे हट जायें। इसलिए शंकालु लोगोंसे मैं प्रार्थना करूँगा कि वे मेरे द्वारा प्रस्तावित इस सत्ता-त्यागकी भव्यतापर अपनी दृष्टि रखें और इस महान् कार्यको सफल बनाने में भरसक सहायता दें। जिस हेतुसे विदेशी फौजको यहाँ रहने की इजाजत हम दे रहे हैं, उससे उन्हें डरना नहीं चाहिए, बल्कि इस योजनाको न्यायोचित ही नहीं, अपितु पूर्ण रूपसे निर्दोष बनाने के लिए उसे इसका एक अनिवार्य अंग समझना चाहिए। जहाँतक मैं देख सकता हूँ, स्वतन्त्र हिन्दुस्तानमें उनकी मौजूदगीसे देशको कोई खतरा नहीं रहेगा। उससे हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताकी तनिक भी क्षति नहीं होगी।

मेरे प्रस्तावका मर्म यह है:

१. हिन्दुस्तान ब्रिटेनके प्रति सभी आर्थिक दायित्वोंसे मुक्त हो जाता है;

२. हिन्दुस्तानसे ग्रेट ब्रिटेनको प्रति वर्ष जानेवाली धनराशिका प्रवाह अपने-आप रुक जाता है;

३. सिवाय उन करोंके जो स्वतन्त्र हिन्दुस्तानकी सरकार लगाये या कायम रखे, तमाम कर हट जाते हैं;

४. जो निरंकुश सत्ता आज पत्थरकी तरह देशकी छातीपर पड़ी है और देशके उच्चसे-उच्च व्यक्तिको भी अपने भारके नीचे दबाये बैठी है, वह तुरन्त हट जाती है;

५. संक्षेपमें, हिन्दुस्तानके राष्ट्रीय जीवनका एक नया अध्याय शुरू हो जाता है, क्योंकि मैं यह आशा रखूँगा कि अहिंसाके अपने मुख्य बल द्वारा हम इस युद्धके परिणामको प्रभावित कर सकेंगे। तब यह अहिंसा असहयोग इत्यादिका रूप नहीं धारण करेगी, बल्कि इसका रूप यह होगा कि हमारे राजदूत धुरी-राष्ट्रोंके पास सुलहकी याचनाके लिए नहीं, बल्कि उन्हें यह समझाने जायेंगे कि एक सम्मानपूर्ण ध्येयकी प्राप्ति के लिए युद्ध निरर्थक है। यह तभी हो सकेगा जब ब्रिटेन उस हिंसाके फलको छोड़ने के लिए तैयार हो जाये जो शायद दुनियाकी अबतककी सबसे संगठित और सफल हिंसा है।

मुमकिन है कि यह सब न हो पाये, पर मुझे इसकी परवाह नहीं। यह ध्येय ऐसा है जिसके लिए प्रयत्न करना और राष्ट्रके सर्वस्वकी बाजी लगा देना योग्य है।

सेवाग्राम, २७ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-७-१९४२

२९६. हुल्लड़बाजी[1]

राजाजी की माटुंगा वाली सभामें जो हुल्लड़बाजी हुई, उसका विवरण पढ़ने से दिलको चोट पहुँचती है। क्या राजाजी केवल इसीलिए अब किसी भी सम्मानके अधिकारी नहीं रहे कि उन्होंने एक ऐसे विचारको अपनाया है जो लोकमतके विरुद्ध जान पड़ता है? वे निमन्त्रण पाकर ही माटुंगा गये थे। जनताको उनकी बात शान्तिपूर्वक सुननी चाहिए थी। जो उनके विचारोंसे सहमत नहीं थे, वे उस सभामें गैरहाजिर रह सकते थे। लेकिन सभामें शामिल होने के बाद तो उनका यह कर्त्तव्य था कि वे उनकी बात चुपचाप सुनें। सभा समाप्त होने पर वे उनसे प्रश्न पूछ सकते थे। उनपर तारकोल छिड़कने और सभामें गड़बड़ी मचानेवालों ने स्वयं अपना अपमान किया है, और अपने कार्यको हानि पहुँचाई है। उनका तरीका न तो स्वराज्य-प्राप्ति का तरीका है, न 'अखण्ड हिन्दुस्तान' की स्थापनाका। आशा है, माटुंगाकी यह हुल्लड़बाजी बर्बरताका आखिरी प्रदर्शन होगा। इस अवसरपर, जो राजाजी की कसौटीका अवसर था, उन्होंने जिस शान्ति, खुशमिजाजी, हाजिरजवाबी और दृढ़ताका परिचय दिया, वह उनके अनुरूप ही था। अपने इन गुणोंके कारण राजाजी को यदि नये अनुयायी न भी मिलें तो भी उनके प्रशंसकों की संख्या तो बढ़ेगी ही। क्योंकि जनता आम तौरपर किसी समस्याकी तहमें नहीं पैठती। वह तो स्वभावसे वीरपूजक होती है, और राजाजी में वीरोचित गुणोंकी कमी कभी रही नहीं है।

सेवाग्राम, २८ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-७-१९४२

२९७. प्रश्नोत्तर

एक भूल

प्र० : अपनी अहिंसाके विचारसे आप यह अत्यन्त आवश्यक समझते हैं कि मित्र-राष्ट्रोंकी फौजोंको हिन्दुस्तानमें रहने दिया जाये। आप यह भी कहते हैं कि जापानको हिन्दुस्तानपर कब्जा करने से रोकने के लिए चूँकि आप कोई अचूक अहिंसक मार्ग नहीं दिखा सकते, इसलिए आप मित्र-राष्ट्रोंको अपना बोरिया-बिस्तर लेकर जाने को नहीं कह सकते। लेकिन क्या आप यह महसूस नहीं करते कि आपकी कार्रवाईसे

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

उत्पन्न जिस अहिंसाके कारण अंग्रेजोंको हिन्दुस्तान छोड़नेके लिए मजबूर होना पड़ेगा, वही जापानियोंको हिन्दुस्तानपर कब्जा करने से रोक सकेगी? और क्या एक अहिंसक प्रतिरोधीके लिए इस बातका भी खयाल रखना निहायत जरूरी नहीं कि दो मदमाते विदेशी सॉंड़ हमारे देशकी जमीनपर खूँखार लड़ाई लड़कर कहीं हमारे देशका, हमारे घरबारका और हमारे सर्वस्वका नाश न कर डालें?

उ०: यह स्पष्ट ही एक भूल-भरा प्रश्न है। अंग्रेज सदियोंसे अपनी रक्षाके लिए अपने बाहुबलपर विश्वास रखने के आदी रहे हैं। मैं उनके मनमें अहिंसाके लिए एकाएक श्रद्धा पैदा नहीं कर सकता, जब कि हिन्दुस्तानियों के दिलोंमें भी वह श्रद्धा कोई विशेष नहीं जग पाई है। अहिंसक शक्ति हिंसक शक्तिकी तरह काम नहीं करे, यह जरूरी है। अगर मित्र-राष्ट्रोंकी फौजोंको हिन्दुस्तानकी जमीनपर फौजी कार्रवाई करने से रोका गया, तो मेरे प्रस्तावसे जो खीज उनके मनमें पैदा हो गई है, वह और बढ़ जायेगी। पहली तो अनिवार्य है। लेकिन उसे और बढ़ाना तो गैर-जिम्मेदाराना काम होगा।

दूसरे, अगर अंग्रेज यहाँसे गये भी तो वह सिर्फ हमारे अहिंसक दबावका ही परिणाम न होगा। हर हालतमें, जो चीज हमारे पुराने शासकोंको प्रभावित करने के लिए पर्याप्त हो सकती है, वह नये आक्रमणकारीको रोक सकनेवाली शक्तिसे सर्वथा भिन्न होगी। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी हुकूमतका विरोध तो हम करबन्दी वगैरह कई तरीकोंसे कर सकते हैं। लेकिन ये तरीके जापानी हमलेके खिलाफ काम नहीं आ सकते। अतएव जापानियोंका मुकाबला करने के लिए तैयार रहते हुए भी, हम सिर्फ इस अयुक्तियुक्त अनुमानपर ही कि हम अपनी अहिंसा द्वारा ही सफलता-पूर्वक जापानियोंको हिन्दुस्तानमें घुसने से रोक सकेंगे, अंग्रेजोंसे यह नहीं कह सकते कि वे अपने सुविधाजनक मोर्चेको एकदम छोड़ दें।

एक आखिरी बात और। जहाँ हमारा यह फर्ज है कि हम अपने तरीकेसे अपनी हिफाजत करें, वहाँ हमारी अहिंसाका यह तकाजा भी है कि हम अंग्रेजोंपर ऐसा कोई दबाव न डालें जिससे उनकी कमर ही टूट जाये। अगर हम ऐसा करेंगे तो पिछले बाईस वर्षोंके अपने इतिहासको अपने हाथों मिटा डालेंगे।

सेवाग्राम, २८ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ५-७-१९४२

२९८. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
२८ जून, १९४२

चि० अमृत,

मुझसे लम्बे पत्रोंकी अपेक्षा मत करना। साथकी दोनों चीजें मैंने पढ़ ली हैं।

श्रीप्रकाश कल रात आये। जोधपुरमें उन्होंने अच्छा काम किया।[1] उनका जाना अच्छा ही रहा।

खुर्शेद भी आज आ गई। राजेन बाबू यहीं हैं। जबतक सम्भव है, मैं तुमसे यहाँ आने को नहीं कहूँगा। इस मौसममें वहाँ होना तुम्हारे और शम्मीके लिए अच्छा ही है। पिछले दो दिनसे मौसम अच्छा है। खूब वर्षा हो रही है।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१३५) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७४४४ से भी

२९९. पत्र : वल्लभराम वैद्यको

२८ जून, १९४२

भाई वल्लभराम,

मैंने तो तुमसे कह ही दिया है कि आयुर्वेदका उद्धार पैसेसे अथवा राज्यकी सहायतासे नहीं होगा। देशी जड़ी-बूटियोंसे बने पाक आदि बेचनेवालोंको अगर राज्य हर महीने हजार-हजार रुपया दे, तो उससे क्या आयुर्वेदको नया जीवन प्राप्त होगा? एलोपैथीके प्रसारके लिए सैकड़ों लोगोंने अपने प्राणोंकी आहुति दी है। एलोपैथी अपने-आपमें महँगी नहीं है। डाक्टरोंने और दवा बेचनेवालोंने उसे महँगा कर दिया है। तुमने उनकी पुस्तक नहीं देखी, जिसमें प्रत्येक मुख्य-मुख्य दवाका नुस्खा और कीमत दी गई है। बेयरके सारसापरिलाकी लागत डेढ़ पैसा है और बाजारमें आज उसके दस रुपये लेते हैं। ऐसा ही डाक्टरोंकी फीसके बारेमें समझो। आयुर्वेदाचार्य

१. देखिए "जोधपुर", पृ० २८७-८८।

गणनाथ सेन शहरसे बाहर जाते हैं तो एक दिनका एक हजार रुपया लेते हैं। यज्ञके बिना सिद्धि प्राप्त नहीं होती। यज्ञ यानी पसीनेका पानी करना, यानी अथक ज्ञानमय श्रम और वह सब भी कृष्णार्पणके भावसे। आयुर्वेद अभी शास्त्र बना ही नहीं है। शास्त्रमें विकासके लिए स्थान होता है। यहाँ विकास कहाँ है? तुम्हारी जब आनेकी इच्छा हो, तभी आ जाना।

शंकरलाल बैंकर फिर वहाँ चले गये हैं। बीमार पड़े हुए हैं। उनसे मिल आना। उनका कुछ इलाज सूझे तो करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २९१९) से। सौजन्य: वल्लभराम वैद्य

३००. प्रश्नोत्तर

एक बंगाली माताके दो प्रश्न

प्र० : बंगालपर जापानी हमलेका संकट मंडरा रहा है। कमसे-कम इस समय तो इस प्रान्तके राजनीतिक कार्यकर्त्ताओंको अपने मतभेद मिटाकर एक हो जाना चाहिए। मैं समझती हूँ कि किसी सुयोग्य व्यक्तिके बीच-बचाव करने पर वे तुरन्त ही अपने गृहकलहको भूल जायेंगे। आप स्वयं इस दिशामें यत्न करके बंगालको इस आसन्न संकटसे क्या नहीं बचायेंगे?

उ० : आपकी बात सोलहों आने सच है। लेकिन मुझे इसमें शक है कि मैं इस कामके लिए योग्य हूँ। यह सवाल तो किसी बंगालीको ही हल करना चाहिए। अगर मुझे अपनी सफलतामें विश्वास होता तो मैं आज ही बंगालके लिए रवाना हो जाता। जब हम उन मतभेदोंपर विचार करते हैं तो वे इतने तुच्छ प्रतीत होते हैं कि उनको मिटाने के लिए बीच-बचावकी कोई जरूरत ही नहीं मालूम होती।

प्र० : मेरे पति कलकत्ताके एक विद्यालयमें शिक्षक हैं। उनकी आमदनी बेहद कम हो गई है। डर है कि एकाध महीनेमें उनकी आमदनीके सारे जरिये बन्द हो जायेंगे। इस समय परिवारमें सात प्राणी उनके आश्रित हैं। पहले उनकी आय इतनी हो जाया करती थी कि वे अपने परिवारकी साधारण आवश्यकताओंको पूरा कर सकें। अब उनके पास जीविकाका कोई साधन ही नहीं रह गया है। मैं जानती हूँ कि मेरे पति देशभक्त और कांग्रेसी विचारोंके हैं। लेकिन हम लोगोंका पेट भरने के लिए उनके सामने फौजी नौकरी करने के सिवा और कोई चारा नहीं रह गया है। वे और कर ही क्या सकते हैं? मेरे पतिकी ही तरह निरुपाय बने हुए लोगोंको आप क्या सलाह देंगे?

उ० : यह एक बहुत ही गम्भीर प्रश्न है। मैं जानता हूँ कि पेटको रोटी देने के लिए फौजी नौकरीसे सुगम और कोई उपाय नहीं है। अगर आपको और आपके पतिको मेरी तरह युद्धमात्रसे घृणा है तो भूखों मरकर भी आप दोनों अपनी इस घृणाका परिचय देंगे। भगवान आपको भूखों मरने से बचायेगा। सम्भव है कि आपको अपना रहन-सहन बदलना पड़े। मध्यवर्गीय लोगोंको अपना रहन-सहन किसानोंका-सा बना लेना होगा। तभी हम सच्चे हिन्दुस्तानको पहचान पायेंगे, और करोड़ों लोगोंके बढ़ते हुए संकटका सामना करने का उपाय जान सकेंगे। लेकिन अगर आपको युद्धसे ऐसी कोई घृणा नहीं है तो आपके पति फौजी नौकरी कर सकते हैं। मुझे उसमें कोई हर्ज नहीं मालूम होता। आज जो बहुत-से लोग कर रहे हैं, उससे बदतर तो वे कुछ करेंगे नहीं।

सेवाग्राम, २९ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-७-१९४२

३०१. जोधपुर[1]

श्री श्रीप्रकाश मेरे कहने से जोधपुर गये थे, ताकि वहाँ जाकर वे वातावरणको शान्त करने के लिए जो-कुछ कर सकें, वह करें, राज्याधिकारियोंसे मिलें और वहाँकी घटनाके बारेमें खुद उनके मुँहसे उनके पक्षकी बात समझ लें। अब वे जोधपुरसे लौट आये हैं और उन्होंने अपनी रिपोर्ट मुझे दे दी है। उससे इसमें कोई सन्देह नहीं रहता कि लोगोंका दमन करने के लिए वहाँ लाठीका खुलकर उपयोग किया गया है। परन्तु, साथ ही उन्होंने मुझे यह भी बताया है कि लोक-परिषद्के कुछ सदस्य भाषाके इस्तेमालमें हमेशा काफी सावधान नहीं रहे। राज्याधिकारियोंने उनसे कहा कि यदि भाषाके प्रयोगमें मर्यादा रखी जाये तो लोक-परिषद्के सभाएँ करने या जिम्मेदार सरकारकी माँग करने में उन्हें कोई आपत्ति न होगी। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि जोधपुर दरबार इस बातके लिए बहुत उत्सुक है कि जागीरदारोंके स्वेच्छाचार पर, जिससे किसीको कोई इनकार नहीं है, किसी-न-किसी प्रकारका अंकुश लगाया जाये। परन्तु जागीरदारी युगसे कायदे-कानूनका युग लाने में कुछ समय लगेगा। जहाँतक राजनीतिक बन्दियोंके साथ बरतावका सवाल है, श्री श्रीप्रकाशको आशा है कि उसमें सुधार कर दिया जायेगा; साथ ही उन्हें यह भी उम्मीद है कि अगर स्थानीय कार्यकर्त्ता समझौतेकी वृत्तिका परिचय दें तो वहाँ राजनीतिक बन्दी कोई रह ही नहीं जायेगा। अगर ये सब आशाएँ पूरी हुईं तो श्री श्रीप्रकाशका वहाँ जाना, यद्यपि वह संयोगवश ही हुआ था, बहुत सफल सिद्ध होगा और राजनीतिक बन्दियोंकी भूख-हड़ताल और श्री बालमुकुन्द बीसाकी दुखःद मृत्यु निष्फल न होगी। श्री श्रीप्रकाश यह भी कहते

१. यह 'टिप्पणियाँ' शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

हैं कि यद्यपि यह मृत्यु निःसन्देह कुछ हदतक जेलके कुप्रबन्धकी वजहसे हुई है तो भी जेल-अधिकारियोंकी निष्ठुरता इसका कारण नहीं है। अच्छीसे-अच्छी परिस्थितियोंमें भी मृत्युएँ होंगी। इसलिए जब-कभी जेलमें किसी बन्दीकी मृत्यु हो तो हमें हमेशा जेल-अधिकारियोंके सिर ही उसका दोष नहीं मढ़ना चाहिए। ऐसी प्रत्येक घटनापर उसके गुण-दोषके आधारपर ही विचार किया जाना चाहिए। मुझे बताया गया है कि श्री बालमुकुन्द बीसा एक बहुत ही अच्छे कार्यकर्त्ता थे। वे अपने पीछे एक बड़ा शोकसंतप्त परिवार छोड़ गये हैं। उनकी विधवा पत्नी और बच्चोंके प्रति मेरी हार्दिक समवेदना है। मुझे आशा है कि जोधपुर-निवासी उनके भरण-पोषणकी सब व्यवस्था कर देंगे।

श्री श्रीप्रकाशने ब्यावारमें छपा एक पर्चा भी मुझे दिया है। उसमें ऐसी भाषाका प्रयोग हुआ है जो किसी सत्याग्रहीकी कलमसे नहीं निकलनी चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि कार्यकर्त्ता अपनी भाषाके बारेमें सावधानी रखेंगे। मेरी उन्हें सलाह है कि वे बराबर श्री काचरूके (डॉ० काचरू नहीं, जैसा कि पहले गलतीसे लिखा गया था)[1] सम्पर्कमें रहें। जबतक यह सारा मामला सुलझ नहीं जाता, वे जोधपुरमें ही रहेंगे।

सेवाग्राम, २९ जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-७-१९४२

३०२. पत्र : एच० ई० बी० कैटलीको

सेवाग्राम
२९ जून, १९४२

प्रिय श्री कैटली,

काश कि आपके प्रयासके लिए मैं कोई उत्साहवर्धक जवाब लिख सकता। यह तो केवल समय ही बतायेगा कि सही रास्ता क्या था।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

एच० ई० बी० कैटली महोदय
सम्पादक, 'पायनियर'
लखनऊ

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. देखिए पृ० २४४।

३०३. पत्र : एफ० ए० फजलभाईको

२९ जून, १९४२

भाई फजलभाई,

आदर्श तो वही है जो तुम कहते हो। लेकिन ट्रस्टियोंको एकाएक समझा सकना कठिन है। मैं इस प्रश्नकी गहराईमें उतरा नहीं हूँ, न मेरे पास इसके लिए अवकाश है।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६६५) से

३०४. पत्र : गजानन त्र्यंबक माडखोलकरको

२९ जून, १९४२

भाई माडखोलकर,[1]

आपका खत मेरे सामने पड़ा है। अब अंग्रेजी मिला। बात यह है कि मैं धर्म-संकटमें हूं। महाराष्ट्रके सब विभाग एक प्रान्त बने उसमें मेरी पूर्ण सम्मति है। लेकिन इस समय इस आन्दोलन उठाने में मुझे शंका है। जब सब चीज खतरेमें हैं, तब यह एक प्रश्नको अलग महत्त्व देनेमें कहां तक औचित्य है मैं नहीं जानता हूं। अगर अंतमें हिंदुस्तान आझाद बनेगा तो ऐसे सब प्रश्न अपने आप हल हो जायेंगे। ऐसी मेरी मानसिक स्थितिमें मैं कहां तक मदद दे सकता हूं?

आपका,
मो० क० गांधी

पत्रकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१. मराठी उपन्यासकार व तरुण भारत (नागपुर) के सम्पादक

३०५. पत्र : परचुरे शास्त्रीको

२९ जून, १९४२

शास्त्रीजी,

प्रो० राजवाड़ेका अभिप्राय उत्तम है। दिल चाहे तब आवे। मैं थो[ड़ा][1] भी समय देने[की][2] कोशीश करूंगा।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६७२) से

३०६. बादशाह खाँकी लोकप्रियता

एसोशिएटेड प्रेसने खान साहबके विषयमें नीचे लिखा संवाद प्रचारित किया है:

सीमाप्रान्तकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने निम्नलिखित वक्तव्य जारी किया है:

"देशके कुछ समाचार-पत्रोंमें पठानोंके निर्विवाद नेता खान अब्दुल गफ्फार खाँ और खुदाई खिदमतगार आन्दोलनके विरुद्ध जो मिथ्या प्रचार किया जा रहा है, उसके बारेमें हम जनताको सावधान करना चाहते हैं। कुछ इस ढंगका इशारा किया गया है कि सीमाप्रान्तके कार्यकर्त्ताओंमें मतभेद पैदा हो गये हैं और दल-बन्दियोंने अपनी मनहूस शक्ल दिखानी शुरू कर दी है। अभीतक एक भी खुदाई खिदमतगारने त्यागपत्र नहीं दिया है। वे सब खान अब्दुल गफ्फार खाँके नेतृत्वमें एक अभेद्य दलकी तरह संगठित हैं। उनके दरमियान दलबन्दीकी सब बातें सर्वथा निर्मूल हैं। ये सब तथाकथित मतभेद आदि कुछ ऐसे स्वार्थी और पदलोलुप व्यक्तियोंके दिमागकी उपज हैं जो समझते हैं कि इस तरह वे अपना उल्लू सीधा कर सकेंगे। इस सब प्रचारके पीछे सरकारकी प्रेरणा तो है ही। परन्तु सीमाप्रान्तकी जनतामें इन लोगोंका कोई साथी नहीं है। वहाँका हरएक सच्चा राष्ट्रवादी बखूबी समझता है कि पद-ग्रहणकी बात तो दूर रही, हिन्दुस्तानकी अंग्रेज सरकारके साथ हमें कोई मतलब ही नहीं हो सकता। हिन्दुस्तानके अन्य भागोंमें संसदीय कार्यक्रमके लिए चाहे जो आकर्षण हो, सीमाप्रान्तमें तो उसके लिए कतई स्थान नहीं है।

१ और २. साधन-सूत्रमें यहाँ कागज फटा हुआ है।

"खान अब्दुल गफ्फार खाँने गाँवोंमें आन्तरिक सुरक्षा और अन्न-वस्त्रके स्वावलम्बनके बारेमें जो शान्तिपूर्ण लोकहितकारी रचनात्मक कार्य किया है, उससे वहाँकी जनतामें, और खास तौरपर गरीब लोगोंमें, उनकी लोकप्रियता और बढ़ गई है। वे सरहदके आस-पासवाले कबीलोंमें भी अपने शान्ति और सद्-भावनाके सन्देशको पहुँचाने का स्वप्न देख रहे हैं। उन्होंने अपनी सारी शक्ति एक ऐसी शान्त और अहिंसक सेना तैयार करने में लगा दी है जो आनेवाले संकटके समय जनताकी सच्ची सेवा कर सके। करोड़ों रुपये खर्च करके भी सरकार जो काम करने में असफल रही, उसे वे जनताकी शुद्ध स्वैच्छिक सहायता द्वारा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस उत्तम कार्यमें वे सीमाप्रान्तके हर स्त्री-पुरुष और बच्चेकी सहानुभूति और सहयोगके अधिकारी हैं। हम आशा करते हैं कि सीमाप्रान्तकी जनता उनके आह्वानका उत्साहसे उत्तर देगी और देशके सब सच्चे हितैषी समाचार-पत्र और पत्रकार तमाम पूर्वग्रहोंको छोड़कर उनके इस कार्यमें रस लेंगे।"

सीमाप्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने यह प्रस्ताव पास करके और विज्ञप्तिके रूपमें इसे प्रचारित करके ठीक ही किया है। परन्तु बादशाह खाँकी प्रतिष्ठा सीमाप्रान्तकी कांग्रेस कमेटीके इस प्रस्तावकी अपेक्षा कहीं अधिक सबल आधारपर अवलम्बित है। उनकी प्रतिष्ठाका आधार लगभग चौथाई सदी तक की गई उनकी निःस्वार्थ जनसेवा और उसके फलस्वरूप प्राप्त लोकप्रियता है। अपने निन्दकोंकी कुचेष्टाओंके बावजूद खान साहब अबतक की सभी अग्नि-परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हुए हैं। मुझे इसमें जरा भी शक नहीं कि आगे जब फिर परीक्षाका समय आयेगा तो वे पहलेकी भाँति ही अपनी लोकप्रियताका प्रमाण देंगे।

सेवाग्राम, ३० जून, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ५-७-१९४२

३०७. पत्र : सैयद जमील वास्तीको

३० जून, १९४२

प्रिय सैयद साहब,

आपके पत्र और उसके साथ भेजी सामग्रीके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। पत्रको मैंने दिलचस्पीके साथ पढ़ा है। सामाजिक सुधारका राजनीतिक स्वतन्त्रताके साथ जैसा आप बताते हैं वैसा सम्बन्ध हो या न हो, लेकिन मैं आपसे इस बातमें सहमत

हूँ कि सामाजिक सुधार होना आवश्यक है। मैं तो इस दिशामें जो-कुछ कर सकता हूँ, वह सब कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

३०८. पत्र : भगवानदास हरखचन्दको

३० जून, १९४२

भाई भगवानदास,

आपने ठीक नहीं लिखा। आप नाराज हैं। इसमें विश्वास-अविश्वासकी कोई बात नहीं है। ढेबरभाईकी रिपोर्ट मैंने पढ़ी ही नहीं है। बात तो केवल दृष्टिकोणकी है। आपको जिस स्थितिसे सन्तोष हो, वही स्थिति मुझे बुरी लग सकती है।[1] इसीसे मैंने सुझाव दिया था कि आप मेरी आँखोंसे देखनेवाले व्यक्तिको अर्थात् मेरे-जैसा दृष्टिकोण रखनेवाले व्यक्तिको मामलेकी जाँच करने दें। क्या रसिकलाल और आप वहाँ एक-दूसरेके विरुद्ध हैं? आप दोनों तो हमेशा एकमत थे। फिर एकाएक दोनों विरोधी क्योंकर बन गये? ऐसे हालातमें भला मुझे तथ्योंकी जानकारी कैसे हो सकती है?

मेरे एक व्यक्तिको शामिल होने देनेमें आपकी असमर्थताकी बात तो मैं समझ सकता हूँ, लेकिन आपके नाराज होने की बात मेरी समझमें नहीं आती।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

३०९. पत्र : नारणदास गांधीको

३० जून, १९४२

चि० नारणदास,

तुम्हारी क्या अपेक्षा थी?

जयन्तीके विषयमें सारी योजना तुम्हारी ही थी। उसे समेट लेना ठीक नहीं मालूम होता। चलालामें जो होता हो होने दिया जाये। तुम अपनी भिक्षा भले

१. यहाँ आशय लीमड़ी रियासतमें चल रहे संघर्षके बारेमें समझौतेसे है; देखिए "पत्र : वल्लभभाई पटेलको", पृ० २०२ और २२७।

राजकोटके लिए ही रखो। मंडलके साथ सलाह-मशविरा करना हो तो करो। न करना ठीक नहीं होगा। किन्तु तुम्हें उत्साह न हो तो मैं आग्रह नहीं करूँगा।

आभा वहाँ पहुँचते ही बीमार पड़ गई, यह दुःखकी बात है। उसे मच्छरदानी देना ठीक रहेगा। उसे कब्जकी शिकायत बनी ही रहती है; उसके बारेमें उसे सावधान रहना चाहिए।

यहाँ तो अभी मनचाही वर्षा हो रही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८६०६ से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

३१०. पत्र: फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्टको

सेवाग्राम, बरास्ता वर्धा (भारत)
१ जुलाई, १९४२

प्रिय मित्र,

दो बार मैं आपके महान देश आते-आते रह गया। वहाँ मेरे अनेक जाने-अनजाने मित्र हैं। मेरे बहुत-से देशवासियोंने अमेरिकामें उच्च शिक्षा पाई है और बहुत-से अभी भी पा रहे हैं। मुझे यह भी मालूम है कि कईने वहाँ शरण ले ली है। थोरो और इमर्सनकी रचनाओंसे मुझे बहुत लाभ हुआ है। यह सब मैं आपको यह बताने के लिए कह रहा हूँ कि आपके देशसे मैं कितना अधिक जुड़ा हुआ हूँ। ग्रेट ब्रिटेनके बारेमें तो मुझे इससे अधिक कहने की जरूरत नहीं कि ब्रिटिश शासन यद्यपि मुझे कतई पसन्द नहीं है, फिर भी इंग्लैण्डमें मेरे अपने बहुत सारे दोस्त हैं, जिनसे मुझे उतना ही प्रेम है जितना कि अपने देशके लोगोंसे। मैंने कानूनकी शिक्षा वहीं ली थी। अत: आपके देश और ग्रेट ब्रिटेनके लिए मेरे मनमें शुभकामनाएँ ही हैं। इसलिए आप मेरी इस बातपर विश्वास करें कि मेरा यह प्रस्ताव कि अंग्रेज भारतके लोगोंकी इच्छाका सवाल उठाये बिना बेझिझक अपना शासन यहाँ तुरन्त समाप्त कर दें, अत्यन्त मैत्रीपूर्ण आशयसे ही प्रेरित है। भारतमें ग्रेट ब्रिटेनके प्रति जो दुर्भावना है — भले ही उससे इनकार किया जाये — मैं उसे सद्‌भावनामें परिवर्तित करना चाहता हूँ, और इस तरह कोटि-कोटि भारतीयोंको वर्त्तमान युद्धमें अपनी भूमिका अदा कर सकने के योग्य बनाना चाहता हूँ।

मेरी व्यक्तिगत स्थिति स्पष्ट है। मैं युद्ध-मात्रका घोर विरोधी हूँ। इसलिए, यदि मैं अपने देशवासियोंको समझा-बुझा सकूँ तो वे सम्मानजनक शान्तिके पक्षमें बहुत ही कारगर और निर्णायक योग दे सकते हैं। लेकिन मैं यह जानता हूँ कि हममें से सबकी अहिंसामें जीवन्त आस्था नहीं है। पर विदेशी शासनके अधीन तो हम इस युद्धमें किसी भी तरहका कोई कारगर योगदान नहीं कर सकते; सिर्फ दासोंकी तरह ही भाग ले सकते हैं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी नीति, जिसका निर्देशन अधिकतर मैंने किया है, यह रही है कि ब्रिटेनको परेशान न किया जाये, लेकिन इस शर्तके साथ कि कांग्रेस, जो निर्विवाद रूपसे भारतका सबसे पुराना और बड़ा राजनीतिक संगठन है, इज्जतके साथ अपना काम करती रहे। ब्रिटिश नीतिसे, जैसी कि वह क्रिप्स मिशन द्वारा अभिव्यक्त हुई है और जो प्रायः सभी दलों द्वारा अस्वीकृत कर दी गई है, हमारी आँखें खुल गई हैं और मुझे बाध्य होकर अपना यह प्रस्ताव रखना पड़ा है। मेरी यह धारणा है कि मेरे प्रस्तावको पूर्णतया स्वीकार करने से, और केवल इसे स्वीकार करने से ही मित्र-राष्ट्रोंके ध्येयको एक निरापद आधार प्राप्त हो सकता है। मैं यह सोचता हूँ कि जबतक ग्रेट ब्रिटेन भारतका, बल्कि कह सकते हैं कि आफ्रिकाका, भी शोषण कर रहा है और अमेरिकामें नीग्रो समस्या है, तबतक मित्र-राष्ट्रोंकी यह घोषणा बिलकुल खोखली लगती है कि वे व्यक्तिकी स्वतन्त्रता और जनतन्त्रको विश्वमें सुरक्षित रखने के लिए लड़ रहे हैं। लेकिन सभी पेचीदगियोंसे बचने के लिए, इस प्रस्तावमें मैंने अपनेको केवल भारततक ही सीमित रखा है। यदि भारत आजाद हो जाता है तो बाकी देश भी होंगे, भले ही वे एकसाथ न हों।

अपने प्रस्तावको नीरंध्र बनाने के लिए मैंने यह सुझाव दिया है कि मित्र-राष्ट्र यदि आवश्यक समझें तो अपने खर्चेपर भारतमें अपनी सेनाएँ रख सकते हैं, पर वे आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए नहीं, बल्कि जापानी आक्रमणको रोकने और चीनकी प्रतिरक्षाके लिए होंगी। जहाँतक भारतका सम्बन्ध है, हमें अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेनकी तरह ही स्वाधीन होना चाहिए। युद्धके दिनोंमें मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाएँ स्वाधीन भारतकी सरकारके साथ सम्पन्न हुई सन्धिके अधीन यहाँ रहेंगी। यह सरकार भारतीय जनता द्वारा बिना किसी प्रत्यक्ष या परोक्ष बाहरी हस्तक्षेपके गठित की जायेगी।

मैं यह सब इस प्रस्तावके लिए आपकी सक्रिय सहानुभूति प्राप्त करने के उद्देश्यसे ही लिख रहा हूँ।

मैं आशा करता हूँ कि यह आपको जँचेगा।

श्री लुई फिशर इस पत्रको आपके पास ले जा रहे हैं।

यदि मेरे पत्रमें कोई बात आपको अस्पष्ट लगे तो आप मुझे केवल दो शब्द लिख दें। मैं उसे स्पष्ट करने का प्रयत्न करूँगा।

अन्तमें, मुझे आशा है कि आप इस पत्रको अनुचित हस्तक्षेप नहीं, बल्कि मित्र-राष्ट्रोंके एक मित्र और हितैषीका निवेदन ही मानेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

प्रेजीडेंट फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्ट

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७३) से। महात्मा, जिल्द ६, पृ० १५२ और १५३ के बीच प्रकाशित प्रतिकृतिसे भी

३११. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
२ जुलाई, १९४२

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

एक मानवीय विषयपर, जिसका राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं आपको फिर कष्ट देनेका साहस कर रहा हूँ।

डॉ० राजेन्द्रप्रसादने, जो बिहारका दौरा करते रहे हैं, मुझे खबर दी है कि ब्रिटिश और अमेरिकी सैनिक सारे बिहारमें फैले हुए हैं और उनके लिए गोमांस जुटानेको अनगिनत ढोर काटे जा रहे हैं। इनमें दुधारू गायें और खेतीके बैल भी रहते हैं। भारतमें ढोरोंकी संख्या यद्यपि बहुत है, फिर भी, जैसा कि आपको ज्ञात है, यदि अधिकांश नहीं तो बहुत सारे ढोर ऐसे हैं जो धरतीके लिए भार हैं। अब यदि दुधारू गायें और खेतीके बैल काटे जाते हैं तो वह भार और बढ़ जायेगा, जमीनको जोतनेमें कठिनाई होगी और दूधकी आपूर्ति, जो पहले ही कम है, और घट जायेगी। क्या आप दुधारू गायों और खेतीके बैलोंको कटनेसे बचानेमें सेनापर अपने प्रभावका उपयोग कर सकते हैं?[1]

जब आप लेडी ऐन[2] और साउथबीको[3] लिखें तो कृपया मेरा अभिवादन उन्हें भेज दें। आशा है कि वे और शिशु सब स्वस्थ और प्रसन्न हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द २, पृ० ३०३

१. इस विषयपर आगे और पत्र-व्यवहारके लिए देखिए "पत्र: लॉर्ड लिनलिथगोको", २७-७-१९४२।

२. लेडी ऐन होप, लॉर्ड लिनलिथगोकी सबसे बड़ी बेटी

३. पैट्रिक एच० जे० साउथबी, बार० एन०, लेडी ऐन होपके पति

३१२. पत्र : कृष्णचन्द्रको

२ जुलाई, १९४२

चि० कृ० चं०,

सिंहराज भले बैठे।

चंद्रशेखरका देख लुंगा।

मोहनसिंहका समजा।

पानीमें लाल दवा डालते हैं वह काफी तो होना चाहीये लेकिन जिनको अंदेशा है उनके लिये उबालना ठीक होगा। पूछ लेना।

गेहूंके बदले दूसरे अनाजसे निर्वाह करेंगे, बाजरा, जवार, चावल। ये भी नहीं मिलेंगे तो आलु इ० मूलों[1] पर रहेंगे। आगे ईश्वर जो देगा उसपर वजनपर सब देना होगा।

राजारावको बहूत तकलीफके सिवा अगर सुविधा दे सके तो दें।

फिरोजपुरवाले भले रहें।

रामदासके मित्रके लिये उचित किया जाय।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४३६) से। एस० एन० २४४८५ से भी

३१३. प्रश्नोत्तर

एक भूल

१ फरवरी, १९४२ को वर्धामें गोसेवा संघका जो सम्मेलन हुआ था उसमें मैंने कहा था:

> चौंडे महाराज . . . मेरी दी हुई हकीकतों और दलीलोंको मंजूर करते हैं . . . लेकिन पूछते हैं : "लोगोंकी भावनाका क्या किया जाये? वे तो किसी भी तरह गायको कसाईके हाथसे बचाना चाहते हैं।"

और फिर यह कि

> लेकिन चौंडे महाराज सोचते हैं कि क्या हम लोगोंको यह समझा सकेंगे कि मरी हुई गायका चमड़ा पवित्र होता है?[2]

१. कंदमूल

२. देखिए खण्ड ७५, पृ० ३०१-५।

गोवर्धन संस्थाके श्री चौंडे महाराज उस सभामें हाजिर थे। बादमें वे मुझसे मिले और कहा कि मैंने जो टीका की थी, वह उनपर नहीं बैठती थी। वे कसाईसे गाय खरीदने के पक्षमें नहीं हैं और मरे ढोरके चमड़ेका भी वे निषेध नहीं करते। मैंने उनसे कहा था कि मैं इस चीजको 'हरिजन' में दे दूंगा। वे याद दिलाते हैं कि परिषद्के विवरणमें इसका उल्लेख नहीं हो पाया है, और लिखते हैं कि इससे उनकी संस्थाको नुकसान पहुँचने की सम्भावना है। 'हरिजन' में यह चीज देने से रह गई, और फलत: चौंडे महाराजको दुःख हुआ, इसका मुझे अफसोस है। लेकिन मुर्दार चमड़ेके उपयोगके बारेमें मुझे यह कहना है कि सिर्फ उसका निषेध न करना ही काफी नहीं है, बल्कि जहाँ-जहाँ कत्ल किये ढोरोंके चमड़ेका उपयोग होता हो, वहाँ-वहाँ उसका निषेध करने और सिर्फ मुर्दार चमड़ेके उपयोगका ही आग्रह करना चाहिए। शायद चौंडे महाराज भी यही कहना चाहते हैं, पर पत्रमें वे उसे ठीकसे व्यक्त नहीं कर पाये हैं।

सेवाग्राम, ३ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १२-७-१९४२

३१४. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
३ जुलाई, १९४२

चि० अमृत,

मेरे बारेमें तुम जरूरतसे ज्यादा परेशान् हो। थकानके अलावा मुझे और कुछ नहीं है। मैं यथासम्भव ज्यादासे-ज्यादा आराम करनेकी कोशिश करूँगा।

जवाहरलाल और मृदुला कल आनेवाले हैं। सत्यवती आज रात आ रही है। प्रफुल्ल कल।[1] कु[मारप्पा] और कमला यहाँ हैं। इस तरह, तुम समझो हमारा खासा बड़ा परिवार है। खेर गोसेवाके सिलसिलेमें यहाँ आये थे और कई अन्य लोग भी। वे सब कल परसों चले गये।

जोधपुरका पत्र खराब है, पर इन लोगोंसे और अपेक्षा ही क्या की जा सकती है? हमें आशा रखनी चाहिए कि श्रीप्रकाशके जाने का फल निकलेगा।

बा को दीर्घकाल तक ज्वरसे मुक्त रहने के बाद आज थोड़ा ज्वर हो गया। मेरा खयाल है उसे कल उससे मुक्ति मिल जायेगी।

१. हाशियेपर किसीने लिख दिया है: "आज आ गये"।

नरेन्द्रदेवकी तबीयत बहुत अच्छी है। वे ४ पौंड दूध ले लेते हैं, फिर भी भूख महसूस होती रहती है!

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१३६) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७४४५ से भी

३१५. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
[३ जुलाई, १९४२ के आसपास][1]

चि० अमृत,

मेरे बारेमें चिन्ता मत करो। थकावटकी वजह सिर्फ आरामकी कमी है। तुम जब चाहो तब नीचे आ सकती हो, पर शम्मीको नाराज करके नहीं। बेशक, जब जरूरत होगी मैं तुम्हें बुला लूँगा। मौसम अब शानदार है।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४२६९) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७९०१ से भी

३१६. गुरु गोविन्दसिंह

महादेव देसाई वगैरहने मिलकर आखिर वह लेख ढूंढ़ ही निकाला जिसमें मैंने गुरु गोविन्दसिंहका जिक्र किया था।[2] वह ९ अप्रैल, १९२५ के 'यंग इंडिया' में "माइ फ्रेण्ड द रेवोल्यूशनरी" (एक क्रान्तिकारीके प्रश्न) शीर्षकसे छपा था। सिख मित्रोंसे और औरोंसे भी मैं अनुरोध करता हूँ कि वे उस समूचे लेखको पढ़ जायें। वे मेरे

१. देखिए पिछला शीर्षक; उसमें भी गांधीजी ने थकावटका जिक्र किया है।

२. अपने लेख "सिख मित्रोंके लिए", २६-६-१९४२ (पृ० २७४-७६) में गांधीजी ने कहा था कि मुझे वह लेख तलाश करने पर भी नहीं मिला जिसमें मैंने गुरु गोविन्दसिंहको 'गुमराह देशभक्त' कहा बताते हैं। पूरे लेखके लिए देखिए खण्ड २६, पृ० ४७८-८४।

विचारोंको मानें, या न मानें, वह लेख उन्हें सामयिक और लाभप्रद तो मालूम होगा ही। यहाँ तो मैं उसके कुछ प्रासंगिक अंश ही उद्धृत करके सन्तोष करता हूँ:

> क्रान्तिकारियोंके विरुद्ध आपकी एक आपत्ति यह है कि उनका आन्दोलन जन-आन्दोलन नहीं है, इसलिए हम जिस क्रान्तिकी तैयारी कर रहे हैं उससे आम जनताको बहुत कम लाभ पहुँचेगा। इसका अप्रत्यक्ष अर्थ यह है कि उससे सबसे ज्यादा लाभ हम क्रान्तिकारियोंको होगा। क्या आप सचमुच यही कहना चाहते हैं? क्या आप समझते हैं कि भारतके क्रान्तिकारी ये लोग, जो अपने देशके लिए मरने के लिए सदा तैयार रहते हैं और उसके प्रेममें पागल हो रहे हैं, और जो निष्काम कर्मकी भावनासे प्रेरित हैं, अपनी मातृभूमिको धोखा देंगे और अपने जीवनके लिए, क्षण-भंगुर जीवनके लिए, विशिष्ट स्वत्व प्राप्त करेंगे? सच है, हम जनसाधारणको उसके कमजोर होनेके कारण अभी कार्य-क्षेत्रमें नहीं घसीटेंगे; किन्तु तैयारियाँ पूरी हो जाने पर तो हम उन्हें खुले मैदानमें लायेंगे ही। हम मानते हैं कि हम भारतीयोंकी वर्त्तमान मनोवृत्तिको भलीभाँति समझते हैं; क्योंकि हमें नित्य ही अपने साथ-साथ अपने इन भाइयों को जाननेका भी अवसर मिलता है। हम जानते हैं कि भारतके लोग आखिर भारतीय हैं। वे स्वतः दुर्बल नहीं हैं; किन्तु उन्हें कार्यकुशल नेता नहीं मिलते। अतः सतत प्रचार और उपदेश करने से हमारे पास जब पर्याप्त संख्यामें नेता और अस्त्र-शस्त्र जुट जायेंगे, तब हम उन्हें मैदानमें बुलायेंगे ही नहीं, बल्कि जरूरत होगी तो घसीटकर लायेंगे और यह सिद्ध कर देंगे कि वे शिवाजी, रणजीत, प्रताप और गोविन्दसिंहके वंशज हैं। फिर हम कहते रहे हैं कि जनसाधारण क्रान्तिके लिए नहीं है, बल्कि क्रान्ति जनसाधारणके लिए है। क्या इतना इस सम्बन्धमें आपके पूर्वग्रहको दूर करनेके लिए पर्याप्त नहीं है?

मैं न तो यह कहता ही हूँ और न मेरा यह आशय ही है कि यदि जन साधारणको लाभ न होगा तो क्रान्तिकारियोंको लाभ होगा। बल्कि इसके विपरीत सामान्यतः क्रान्तिकारियोंको लाभ—सामान्य अर्थमें लाभ—होता ही नहीं है। यदि क्रान्तिकारी जनताको न 'घसीटें', बल्कि अपनी ओर आकर्षित कर सकें तो वे देखेंगे कि यह खूनी आन्दोलन बिलकुल अनावश्यक है। 'शिवाजी, रणजीतसिंह, प्रताप और गोविन्दसिंहके वंशजोंकी' बात वैसे तो बहुत मीठी और उत्साहप्रद मालूम होती है। किन्तु क्या यह सच है? क्या हम सचमुच उसी अर्थमें इन वीर पुरुषोंके वंशज है जो इन भाईके मनमें हैं। हम तो उनके देशबन्धु ही हैं। उनके वंशज तो हैं क्षत्रिय लोग—सैनिक वर्ग। हम आगे चलकर चाहे भले ही जाति-व्यवस्थाको तोड़ दें, परन्तु आज तो वह मौजूद ही है और इसलिए इन भाईका यह दावा मेरी रायमें माना ही नहीं जा सकता।

अन्तमें, मैं आपसे ये सवाल और पूछता हूँ: गुरु गोविन्दसिंह किसी अच्छे उद्देश्यके लिए युद्ध करना ठीक समझते थे, इसलिए वे क्या भ्रान्त देश-भक्त थे? वाशिंगटन, गैरीबाल्डी और लेनिनके बारेमें आप क्या कहेंगे? कमाल पाशा और डी' वेलेराके बारेमें आपका खयाल क्या है? क्या आप शिवाजी और प्रतापके सम्बन्धमें यह कहेंगे कि वे हिताकांक्षी और आत्मत्यागी वैद्य थे; किन्तु जब उन्हें अंगूरका रस देना था, तब उन्होंने उसकी जगह संखिया दे दिया था? कृष्ण 'दुष्कृतोंके विनाश' के कायल थे; क्या आप इस कारण यह कहेंगे कि उन्होंने यूरोपके लोगोंका विचार अपना लिया था?

यह एक कठिन बल्कि कुछ विषम प्रश्न है। पर मैं इसे टाल नहीं सकता। पहली बात तो यह है कि गुरु गोविन्दसिंह तथा दूसरे उल्लिखित व्यक्ति गुप्त हत्याके कायल नहीं थे? दूसरे, वे अपने काम और अपने आदमियोंको खूब जानते थे; पक्षान्तरमें आधुनिक क्रान्तिकारी नहीं जानते कि उनका काम क्या है? उन देशभक्तोंके पास अपने आदमी थे और एक वातावरण था; किन्तु ये दोनों इनके पास नहीं हैं। यद्यपि मेरे ये विचार मेरी जीवन-सम्बन्धी कल्पना से उद्भूत हुए हैं, फिर भी मैंने वे इस आधारपर देशके सामने नहीं रखे हैं। मैं तो सिर्फ वक्तकी जरूरतका खयाल करके ही क्रान्तिकारियोंका विरोध कर रहा हूँ। इसलिए उनकी कार्रवाइयोंकी तुलना गुरु गोविन्दसिंह या वाशिंगटन या गैरीबाल्डी या लेनिनसे करना बहुत भ्रामक और भयावह होगा। परन्तु मुझे अहिंसाके सिद्धान्तपर किये गये अपने प्रयोगसे तो यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं होता कि यदि मैं उनके कालमें और उनके देशमें जन्म लेता तो बहुत सम्भव था कि मैं उन सबको विजयी और वीर योद्धा होने पर भी भ्रान्त देशभक्त कहता। परन्तु मुझे उनका काजी नहीं बनना चाहिए। इतिहासमें वीरोंके कारनामोंके जैसे ब्योरे दिये गये हैं, मैं उन्हें नहीं मानता। मैं तो इतिहासकी मोटी बातोंको ही मानता हूँ और उनसे स्वयं अपने मार्गदर्शन के लिए अपने तौरपर सबक निकाल लेता हूँ। यदि इतिहासकी ये मोटी बातें जीवनके उच्चतम नियमोंके विरुद्ध जाती हैं तो मैं उनपर आचरण करना नहीं चाहता। परन्तु हमें इतिहाससे जो अत्यल्प सामग्री उपलब्ध होती है, मुझे उसके आधारपर किसीके बारेमें निर्णय नहीं करना है। "मरे हुएका तो गुण-कीर्तन ही ठीक है।" मैं कमाल पाशा और डी' वेलेराके सम्बन्धमें भी निर्णय नहीं दे सकता। पर जहाँतक उनके युद्ध-सम्बन्धी विश्वासका सम्बन्ध है, वहाँ तक वे मुझ-जैसे एक निष्ठावान अहिंसा-धर्मीके जीवनमें मार्गदर्शक नहीं हो सकते। कृष्णको मैं शायद इन लेखकसे भी ज्यादा मानता हूँ। पर मेरा कृष्ण जगन्नायक, अखिल विश्वका स्रष्टा, संरक्षक और संहारक है। वह संहार भी कर सकता है, क्योंकि वह उत्पत्ति करता है। पर मित्रोंके साथ यहाँ मैं अवश्य ही किसी

दार्शनिक या धार्मिक विवादमें पड़ना नहीं चाहता। मैं इस योग्य नहीं हूँ कि अपने जीवन-सम्बन्धी तत्त्वज्ञानकी शिक्षा दे सकूँ। मुझमें अपने अंगीकृत सिद्धान्तों का पालन करने की योग्यता भी मुश्किलसे है। मैं तो एक अति साधारण प्रयत्नरत प्राणी हूँ और मन, वाणी और कर्मसे बिलकुल भला, सच्चा और अहिंसक बनने के लिए लालायित हूँ; किन्तु मैं जिस आदर्शको सत्य मानता हूँ, उसतक पहुँचने में सदा विफल रहता हूँ। मैं मानता हूँ और अपने क्रान्तिकारी मित्रोंको यकीन दिलाता हूँ कि यह चढ़ाई बहुत कष्टप्रद है; परन्तु यह कष्ट मेरे लिए निश्चित रूपसे सुखप्रद हो गया है। एक सीढ़ी ऊपर चढ़ता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि मेरी शक्ति बढ़ी है और मैं अब अगली सीढ़ीपर पैर रखने योग्य हूँ। पर यह तमाम कष्ट और आनन्द मेरे अपने लिए हैं। क्रान्तिकारी लोग चाहें तो मेरे इन सब विचारोंको खुशीसे न मानें। मैं तो उनके सम्मुख केवल एक ही उद्देश्यके लिए काम करनेवाले साथीके रूपमें अपने अनुभव उसी तरह प्रस्तुत करता हूँ, जैसे मैंने अली भाइयोंके और दूसरे कितने ही मित्रोंके सम्मुख प्रस्तुत किये हैं। और मैं उसमें सफल हुआ हूँ। वे मुस्तफा कमाल पाशा और शायद डी' वेलेरा और लेनिनके कार्योंका अभिनन्दन कर सकते हैं और करते हैं; परन्तु वे मेरी ही तरह यह भी मानते हैं कि भारतकी स्थिति टर्की, आयरलैंड या रूसकी जैसी नहीं है और उसमें, सदा नहीं तो कमसे-कम इस समय क्रान्तिकारी आन्दोलनका अर्थ आत्मघात होगा; क्योंकि हमारा देश बहुत विशाल है, उसमें बहुत फूट है, लोग बेहद गरीबीमें डूबे हुए हैं और भयभीत हैं।

इसके कुछ ही समय बाद लिखे गये एक लेखमें मैंने फिर इस विषयकी चर्चा की थी। उसका सिर्फ नीचे लिखा हिस्सा ही मैं यहाँ देता हूँ:

सिख गुरुओंके विषयमें मेरी मान्यता तो यह है कि वे लोग बड़े ही धर्मिष्ठ संत और सुधारक थे। वे सबके-सब हिन्दू थे और गुरु गोविन्दसिंह हिन्दू-धर्मके सबसे बड़े त्राताओंमें से थे। मैं यह भी मानता हूँ कि उन्होंने उसकी रक्षाके लिए ही तलवार उठाई। लेकिन, उनके कार्योंके औचित्य-अनौचित्यके विषयमें मैं कुछ नहीं कह सकता, और जहाँतक तलवारका सहारा लेने का सम्बन्ध है, मैं उन्हें अपना आदर्श भी नहीं मान सकता।[1]

इस लेखको सरसरी तौरपर पढ़नेवाले भी यह देख सकेंगे कि उन महान गुरु के विषयमें मैंने 'गुमराह देशभक्त' शब्दोंका प्रयोग कदापि नहीं किया था, और मैंने उनके बारेमें एक भी अनादरसूचक या ऐसा शब्द नहीं लिखा था जिसके लिए मुझे शरमाना या पछताना पड़े। उस लेखमें कहे गये एक-एक शब्दपर मैं कायम हूँ। मुझे

१. देखिए खण्ड २८, पृ० २७३।

उम्मीद है कि चूंकि अब शरारतकी जड़का पता चल गया है, वह हमेशाके लिए मिट जायेगी, और यद्यपि मैं एक विनम्र हिन्दू ही रहता हूँ, तो भी सिख मुझे अपने पंथ का एक अनुयायी समझेंगे।

सेवाग्राम, ४ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १२-७-१९४२

३१७. 'सर्वोदय'[1]

हिन्दी भाषा-प्रेमी जानते ही हैं कि 'सर्वोदय' मासिक वर्षोंसे निकलता है। इसके सम्पादक श्री काका कालेलकर और श्री दादा धर्माधिकारी हैं। वैसे तो सचमुच तीन हैं, क्योंकि श्री किशोरलाल भी प्रायः प्रति अंकमें लिखते हैं। इस मासिकका उद्देश्य है, सत्याग्रह शास्त्रकी तात्विक चर्चा करना और उसके शुद्धतम रूपका प्रचार करना, जिससे सारे संसारका मानसिक अभ्युदय हो। पिछले चार वर्षसे यह मासिक निकल रहा है, लेकिन प्रति वर्ष करीब दो से तीन हजारका घाटा रहता है। इसलिए अब यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि क्या इतना घाटा सहकर भी यह मासिक चलाया जाये? कई मित्रोंकी राय है कि घाटा उठाकर भी 'सर्वोदय' जारी रखा जाये। जब कि कई कहते हैं कि जब इसकी कद्र इसका खर्च निकलने जितनी भी नहीं है तो फिर इसे निकालने से फायदा क्या? इन दोनों ही विचारोंका एक हदतक समर्थन हो सकता है। लेकिन एक मध्य मार्ग यह है कि ग्राहकोंसे पूछा जाये। ग्राहक इस घाटेकी बात स्पष्ट रूपसे नहीं जानते हैं। अगर वे 'सर्वोदय' का निकलना आवश्यक समझते हैं तो प्रत्येक ग्राहक कमसे-कम एक और ग्राहक बना दे तभी घाटा मिट सकता है। अभी करीब ९०० ग्राहक हैं। यदि दो हजार ग्राहक हो जायें तो घाटा मिटेगा। जो ग्राहक नये ग्राहक नहीं बना सकते, लेकिन खुद धनी हैं, वे एक या दो ग्राहकोंका चन्दा खुद भेज सकते हैं। हमेशा ही कुछ जिज्ञासु ऐसे होते हैं जो मुफ्त प्रति चाहते हैं। वस्तुतः वे चन्दा दे ही नहीं सकते हैं। यदि उनका चन्दा देनेवाले कुछ सज्जन मिल जायें तो उनको 'सर्वोदय' नियमित रूपसे पहुँचाया जा सकता है। 'हरिजन-सेवक' में इस बातका उल्लेख करनेका खास मतलब यह है कि इससे 'सर्वोदय' के ग्राहकोंके अलावा दूसरे लोगोंको भी घाटेका पता चल जाये। 'सर्वोदय' की नीति बिलकुल 'हरिजन' की ही है। लेकिन 'हरिजन' में जिस नीतिका निरूपण किया जाता है 'सर्वोदय' में उसी नीतिका शास्त्रीय विवेचन किया जाता है, और वह भी तटस्थताके साथ। तथापि ऐसी कोई बात नहीं है कि 'सर्वोदय' के सम्पादकोंको 'हरिजन' की नीतिका अनुसरण करना ही चाहिए। जहाँतक वह नीति उनकी समझमें आ जाती

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

है और वे उससे सहमत होते हैं, वहीं तक वे 'हरिजन' की नीतिका प्रचार करते हैं। और क्योंकि प्रायः सम्पादक 'सर्वोदय' को तथाकथित राजनीतिसे अलग रखने की चेष्टा करते हैं, इसलिए 'हरिजन' यदि खतरेमें पड़ जाये तो भी 'सर्वोदय' बच जाये और उसके मारफत लोगोंको कुछ तो खुराक मिला करे, ऐसा लोभ 'सर्वोदय' निकालने में रहता है।

सेवाग्राम, ४ जुलाई, १९४२
हरिजन-सेवक, १२-७-१९४२

३१८. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
४ जुलाई, १९४२

चि० अमृत,

मेरे स्वास्थ्यमें कोई गड़बड़ नहीं है। मैं क्या खबर दूं? जो-कुछ बताने को था, वह तो बता ही दिया था। इस शानदार मौसमसे मुझमें शक्ति नहीं आई है। वह सिर्फ आरामसे ही आ सकती है। मैं ढर्रा बैठा रहा हूँ।

जोधपुरको तुम्हारा पत्र बिलकुल ठीक है। इन लोगोंसे कुछ अधिक अपेक्षा नहीं की जा सकती।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

बा पहलेसे बहुत अच्छी है।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१३७) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७७४६ से भी

३१९. पत्र : बालकृष्ण मार्तण्ड चौंडेको

४ जुलाई, १९४२

आपने ठीक याद दिलवाया। मैं भूल सुधार लूंगा।[१] आप लिखते हैं मृत जानवरके चमडाका आप इनकार नहीं करते। होना चाहिये आप कत्ल किये हुए जानवरके चमडेका इनकार करते हैं और मृत जानवरके चमडा ही इस्तेमाल करते हैं।

आपका,

मो० क० गांधी

श्री गोरक्षा संस्था
४५५ सदाशीव पेठ
पूना सीटी

पत्रकी फोटो-नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

३२०. प्रश्नोत्तर

आग

प्र० : आपके और नीरोके बीच फर्क क्या है? जब रोम जल रहा था, वह सारंगी बजा रहा था। आप भी क्या देशमें आग लगाकर — जो आपसे बुझेगी नहीं — सेवाग्राममें बैठे सारंगी बजायेंगे?

उ० : अगर मुझे दियासलाई लगानी ही पड़ी, और वह 'सीली तीली' न साबित हुई तो मेरे और नीरोके बीचका फर्क मालूम हो जायेगा। अगर मैं अपने हाथों जलाई ज्वालाओंपर काबू न रख सका तो आप मुझे सेवाग्राममें बैठकर सारंगी बजाते देखने के बदले उनमें जलते देखने की आशा रख सकते हैं। लेकिन मुझे आपसे एक शिकायत है। एक ऐसे कर्जको चुकाने के लिए, जो बहुत पहले चुका दिया जाना चाहिए — और सो भी ऐसे वक्त जब उसे चुकाकर ही मैं जिन्दा रह सकता हूँ — यदि मैं कोई कार्रवाई करूँ तो उसके फलस्वरूप जो-कुछ भी हो, उस सबका दोष आप मेरे मत्थे ही क्यों मढ़ते हैं?

स्कूलोंमें शासक हमारे बच्चोंसे यह गवाते हैं : "अंग्रेज कभी गुलाम नहीं बनेंगे।" लेकिन उनके गुलाम किस उमंगसे इस गीतको गायें? आज अंग्रेज अपनी आजादीकी हिफाजतके लिए पानीकी तरह खून बहा रहे हैं और मिट्टीकी तरह सोना लुटा रहे

१. देखिए पृ० २९६-९७।

हैं। क्या उन्हें हिन्दुस्तान और आफ्रिकाको गुलाम बनाने का अधिकार है। अपनी इन बेड़ियोंको तोड़ने के लिए हिन्दुस्तानकी जनता अंग्रेजोंसे कम कोशिश क्यों करे? जो आदमी जिन्दा ही मर रहा है और अपने दिलकी आगको बुझाने के लिए अपनी ही चिता सुलगाता है, उसके कार्यकी तुलना नीरोके कार्यके साथ करना भाषाका दुरुपयोग है।

आन्ध्रका पृथक्करण

प्र०: आन्ध्रके पृथक्करणके सम्बन्धमें महाराज कुमार सर विजय आनन्दने आपको जो पत्र लिखा था, उसके एक अंशका मजाक उड़ाकर आपने अनजाने ही आन्ध्रमें उनकी लोकप्रियताको धक्का पहुँचाया है।[1] कुछ आन्ध्रवासियोंको यह डर है कि आप आन्ध्रको स्वतन्त्र प्रान्त बनाने के सवालको पाकिस्तानके जैसा ही एक सवाल समझते हैं। क्या यह सच है?

उ०: आप ठीक ही कहते हैं कि मैंने सर विजयके पत्रका मजाक उड़ाया था। मैं उनके साथ इतनी छूट बरत सकता हूँ। लेकिन उन्हें किसी भी तरह बदनाम करने की बात तो मैं सोच ही नहीं सकता। उसमें जो विचार था, सो तो सर विजयके 'संवाददाताओं' के लिए था। उनके पत्रसे मालूम होता था कि उन्होंने इन्हीं लोगोंके विचार मुझतक पहुँचाये हैं। हम सब अपने 'संवाददाताओं' द्वारा गुमराह किये जा सकते हैं। सर विजय उन इने-गिने जमींदारोंमें हैं जिन्होंने जनताके पक्षको अपनाया है। अगर उनके नाम लिखे मेरे पत्रका गलत अर्थ करके आन्ध्रवासी उनकी सेवाओंसे लाभ उठाने में चूकेंगे तो वह बड़े दुःखकी बात होगी।

अब दूसरा प्रश्न लीजिए। आन्ध्रकी पृथकताके साथ पाकिस्तानकी कोई तुलना नहीं हो सकती। आन्ध्रको पृथक प्रान्त बनाने का मतलब है, भाषाके आधारपर पुनर्गठन करना। आन्ध्रवासियोंका यह दावा तो है नहीं कि वे एक स्वतन्त्र राष्ट्र हैं और शेष हिन्दुस्तानके साथ उनका कोई साम्य नहीं है, जब कि पाकिस्तानकी माँगका अर्थ यह है कि हिन्दुस्तानके एक हिस्सेको अलग करके उसे एक बिलकुल स्वतन्त्र और प्रभुसत्तासम्पन्न राज्य माना जाये। इस प्रकार इन दोनोंके बीच कोई साम्य नजर नहीं आता।

सेवाग्राम, ५ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १२-७-१९४२

१. देखिए खण्ड ७५, पृ० ४५४-५५।

३२१. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

सेवाग्राम, वर्धा
५ जुलाई, १९४२

प्रिय सी० आर०,

महादेव मुझे बता रहा था कि जो चीज तुम्हें इतनी स्पष्ट लगती है उसे न सराहनेकी मेरी हठपर तुम कितने दुःखी हो।[1] मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि मुझमें इच्छाकी कमी नहीं है। पर मैं बना ही उस तरहका हूँ। एक बार कोई विचार जब मेरे दिमागमें बैठ जाये तो मैं आसानीसे उससे मुक्त नहीं हो पाता। मेरा खयाल है कि तुम भी इसी तरहके बने हो। इसलिए एक-दूसरेकी सीमाओंको सहने के अतिरिक्त और कोई राह नहीं दिखती।

पर इस पत्रको लिखने का कारण कुछ और है। वल्लभभाई आज आये। उनका यह दृढ़ मत है कि अपना प्रचार जारी रखकर तुम लिखित वचनको तोड़ रहे हो। जबतक तुम कांग्रेस टिकटपर विधान-सभाके सदस्य हो, तबतक अ० भा० कांग्रेस कमेटी द्वारा समय-समयपर निर्धारित नीतिके पालनके लिए बाध्य हो। यदि ऐसा है तो विधान-सभाकी सदस्यतासे त्यागपत्र दे देना तुम्हारा कर्त्तव्य हो जाता है।[2] इस मौकेपर तुम उस वचनके औचित्य या अनौचित्यपर विवाद नहीं कर सकते। मैं चाहता हूँ कि तुमपर लांछन न आए। तुम्हें वल्लभभाईके निर्णयको मान लेना चाहिए। अन्य सदस्य भी ऐसा ही सोचते हैं।

मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ कि तुम्हारे लिए सबसे शोभनीय यही होगा कि तुम कांग्रेससे अपना सम्बन्ध तोड़ लो और उसके बाद अपना प्रचार पूर्ण उत्साह और शक्तिसे चलाओ।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०९१) से

१. चक्रवर्ती राजगोपालाचारीका यह मत था कि राष्ट्रीय सरकारकी शीघ्र स्थापनाके लिए कांग्रेसको मुस्लिम लीगकी पाकिस्तानकी माँग स्वीकार कर लेनी चाहिए।

२. उन्होंने १५ जुलाईको कांग्रेस और विधान-सभासे त्यागपत्र दे दिया था। देखिए "पत्र: चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको", पृ० ३२६ भी।

३२२. पत्र : प्रेमा कंटकको

सेवाग्राम
५ जुलाई, १९४२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। तू आने की इजाजत माँगती है, सो मेरी तरफसे तो है ही। पर देवकी इजाजत सच्ची। जब आये तब शंकाओंका निवारण करा लेना। यदि तू अपनी बुद्धिका इस्तेमाल करे तो सब शंकाओंका उत्तर तू ही दे सकती है। मैं विश्वासके साथ कहता हूँ कि तेरी शंकाओंमें कोई सार नहीं है। अधिक लिखने का समय नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४२८) से। सी० डब्ल्यू० ६८६७ से भी; सौजन्य : प्रेमा कंटक

३२३. मुसलमान पत्र-लेखकोंसे

"मुसलमानोंके साथ समझौता करने से पहले आप आजादीके लिए देशव्यापी आन्दोलन शुरू करने की बात सोच कैसे सकते हैं?" मुसलमान पत्र-लेखकोंके जो ढेरों पत्र मेरे पास आते हैं, उनमें मुझसे यही सवाल पूछा जाता है। एक समय था जब मैं भी इन पत्र-लेखकोंकी तरह सोचा करता था। लेकिन अभी तो मैं देखता हूँ कि मुसलमानोंके दिलतक पहुँचना मेरे बसकी बात नहीं रही। मुस्लिम लीग मेरी राहमें अड़ी हुई है। मैं लीगी अखबारोंको पढ़ने की कोशिश करता हूँ। जिस हदतक वे लीगके विचारोंके प्रतिनिधि हैं, उस हदतक मुझे उनमें उसकी मनोवृत्तिकी झलक मिल जाती है। उनकी रायमें मेरा जरा भी विश्वास नहीं किया जा सकता। खिलाफतके दिनोंकी मेरी सेवाएँ भी उनकी नजरमें मेरी बदनीयतीकी सूचक हैं। मुझे इसमें शक नहीं कि यह सब एक अस्थायी दौर है। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने कभी किसी मुसलमानकी या मुस्लिम हितकी कोई कुसेवा की हो। भगवानकी दयासे आज भी मैं अनेकानेक मुसलमानोंकी मित्रताका दावा कर सकता हूँ।

इस अविश्वासको मिटाने का कोई उपाय मुझे सूझ नहीं रहा। मेरे आलोचक कहते हैं: "पाकिस्तान दे दो।" मैं कहता हूँ "वह मेरे हाथमें नहीं है।" अगर मुझे इस माँगके औचित्यका विश्वास हो जाये तो मैं निश्चय ही लीगके साथ मिलकर उसके लिए मेहनत करूँ। लेकिन वही तो हो नही रहा है। मैं चाहता हूँ कि कोई

मुझे विश्वास करा दे। अभीतक किसीने मुझे उसके सभी फलितार्थ नहीं बताये हैं। पाकिस्तान-विरोधी पत्रोंमें जो बताये जाते हैं, उनकी तो कल्पना करते भी डर लगता है। लेकिन मैं उन्हें उसके विरोधियोंसे नहीं समझना चाहता। उसके हिमायती ही बता सकते हैं कि वे क्या चाहते हैं और उनका आशय क्या है। मैं चाहता हूँ कि इस तरहका स्पष्टीकरण कोई करे। मैं मानता हूँ कि पाकिस्तानके हिमायती अपने विरोधियोंके विचार बदलना चाहते हैं, उनके साथ जबरदस्ती करना नहीं चाहते। क्या यह सच नहीं? क्या कभी विरोधियोंके साथ मित्रतापूर्वक मिलने और उनके विचार बदलने की कोशिश की गई है? मेरी तो बात ही छोड़िए, मुझे यकीन है कि कांग्रेस भी अपने विचार बदलने को तैयार है, बशर्ते कि कोई वैसी कोशिश करे।

लेकिन इस बीच मैं क्या करूँ? मैं महसूस करता हूँ कि अगर हिन्दुस्तान अंग्रेजोंकी गुलामीसे मुक्त हो जाये तो यही समय है जब वह युद्धके भाग्यका फैसला करनेमें प्रभावशाली भूमिका अदा कर सकता है। मुझे यह भी विश्वास है कि हिन्दुस्तानको, जिसे अंग्रेज तीन सौ वर्षोंसे मजेमें लूटते चले आ रहे हैं, छोड़ने की ब्रिटिश अनिच्छाके सिवा हिन्दुस्तानकी आजादीके मार्गमें और कोई रुकावट नहीं है। साम्राज्यवादी कहते हैं कि अगर ब्रिटेन हिन्दुस्तानको छोड़ दे तो वह इस लड़ाईको भी छोड़ सकता है। अगर यह सच है तो फिर यह सारी लड़ाई है किसलिए? लड़ाईका सूत्रपात ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनीके बीच हुआ। क्या इन दोनोंके बीच हिन्दुस्तान ही झगड़ेकी छिपी जड़ था? मैं जानता हूँ कि यह सब अटकलबाजी है। हकीकत क्या है, सो तो जल्दी ही मालूम हो जायेगा। विचारशील भारतीय अपने समयको यों ही बरबाद नहीं होने दे सकते। मैं सोचता हूँ कि चाहे सारे नहीं लेकिन अगर एक बड़ी तादादमें भी लोग अपने हिस्से आनेवाली किसी भी कुरबानीके लिए तैयार हो जायें तो अंग्रेज शासकोंपर उसका यह असर तो पड़ेगा ही कि अब वे हिन्दुस्तानको अपना गुलाम नहीं रख सकते। मैं यह भी मानता हूँ कि इतनी तादादमें लोग हमें मिल जायेंगे। यह कहने की जरूरत नहीं कि ऐसे लोगोंका अपना विश्वास कुछ भी क्यों न हो, पर उन्हें अपना व्यवहार अहिंसक रखना होगा। फौजी आदमीको भी अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए प्रायः अपने विश्वासके विरुद्ध चलना पड़ता है। इस संग्रामकी कल्पना समूचे हिन्दुस्तानके हितको ध्यानमें रखकर की गई है। इसमें शामिल होकर लड़नेवालोंको उतना ही लाभ होगा जितना कि एक गरीबसे-गरीब भारतीयको हो सकता है — उससे ज्यादा नहीं। ये लोग सत्ताको हथियानेके लिए नहीं, बल्कि विदेशी प्रभुत्वको समाप्त करनेके लिए लड़ेंगे — फिर चाहे उसके लिए उन्हें कितनी ही कीमत क्यों न चुकानी पड़े।

अगर कभी हम उस स्थितिको पहुँचे तो उसके बाद जो-कुछ होगा, वह इस बातपर निर्भर रहेगा कि अंग्रेजोंका सर्वशक्तिमान पंजा हट जाने के बाद हम कैसा व्यवहार करते हैं। हो सकता है कि हम आपसमें झगड़ें; या यह भी हो सकता है कि हम अपने झगड़ेको तय करके देशमें जनताकी ओरसे एक सुव्यवस्थित शासन स्थापित करने को राजी हो जायें। हो सकता है कि हमारा वह शासन प्रजातन्त्रात्मक हो

या विशुद्ध एकतन्त्री हो या मुट्ठी-भर लोगोंका ही हो। उसमें ब्रिटिश सरकारके साथ समझौता करने की कोई कल्पना नहीं है। वह तो तभी हो सकता है जब प्रमुख पक्ष आपसमें समझौता करें, और उसके लिए पहली जरूरत यह है कि कांग्रेस और लीगमें समझौता हो जाये। लेकिन सो तो जहाँतक मैं सोच पाता हूँ होगा नहीं।

इसलिए ब्रिटिश सरकारके साथ यही एक समझौता हो सकता है कि वह हिन्दुस्तानको अपने हालपर छोड़कर यहाँसे अपनी हुकूमत उठा ले। मान लीजिए कि अंग्रेज चले जाते हैं, और देशके अन्दर न कोई सरकार है न कोई संविधान है; न अंग्रेजोंका, न दूसरे किसीका। अतएव कोई केन्द्रीय सरकार भी नहीं है। उस दशामें जो दल सैनिक दृष्टिसे सबसे अधिक प्रबल होगा वह अपनी सरकार बनाकर उसे हिन्दुस्तानपर लाद सकता है, बशर्ते कि जनता उसे स्वीकार कर ले। हो सकता है कि मुसलमान पाकिस्तानका ऐलान कर दें और कोई उनका विरोध न करे। इसी तरह हिन्दू भी कुछ कर सकते हैं। सिख अपनी आबादीवाले प्रदेशोंमें अपना राज कायम कर सकते हैं। इन सम्भावनाओंका कोई अन्त नहीं है। और इन तमाम हवाई कल्पनाओंके साथ मैं एक कल्पना और जोड़ देना चाहता हूँ। हो सकता है कि कांग्रेस और लीग, जो देशकी सबसे ज्यादा संगठित संस्थाएँ हैं, आपसमें समझौता कर लें और एक ऐसी अस्थायी सरकार कायम करें जो सबको मंजूर हो, और इसके बाद विधिवत निर्वाचित संविधान-सभा अस्तित्वमें आ जाये।

इस आन्दोलनका एक ही लक्ष्य है कि देशसे ब्रिटिश सत्ता हटा दी जाये। अगर वह शुभ अवसर आया और उसके बाद देशमें स्थायी सरकारकी स्थापना हो सकी, तो इसमें कोई शक नहीं कि वही इस युद्धके भाग्यका निर्णय करेगी, और मैं आशा रखूँगा कि वह निर्णय अहिंसक ढंगसे होगा। कमसे-कम इस युद्धके दौरान तो हिन्दुस्तान और किसी प्रकारकी शक्तिका परिचय दे ही नहीं सकता। मुसलमान भी, जो पाकिस्तानमें विश्वास रखनेके साथ-साथ हिन्दुस्तानकी आजादीमें भी विश्वास रखते हैं, इस तरहके संघर्षमें शरीक क्यों नहीं हों? लेकिन, इसके विपरीत यदि उनका विश्वास अंग्रेजोंकी मददसे और उनकी छत्रच्छायामें पाकिस्तान प्राप्त करने में है तो बात दूसरी है। उसमें मेरा कोई स्थान नहीं।

सेवाग्राम, ६ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १२-७-१९४२

३२४. अ० भा० चरखा संघ और इसी तरहकी अन्य संस्थाएँ[1]

हाल में ही वर्धामें अ० भा० चरखा संघकी जो बैठक हुई थी, उसमें यह सवाल उठाया गया था कि अ० भा० चरखा संघ, अ० भा० ग्रामोद्योग संघ, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ और ऐसी ही अन्य संस्थाओंके सदस्यों और कार्यकर्त्ताओंका मौजूदा राजनीतिके साथ क्या सम्बन्ध रहे। और बहुत-से पत्र-लेखकों द्वारा भी यह सवाल बराबर पूछा जा रहा है। इसलिए मैं यह बेहतर समझता हूँ कि सम्बन्धित लोगोंकी रहनुमाईके लिए मैं इसपर अपनी राय विस्तारके साथ दे दूँ। हालाँकि इन संस्थाओंमें से कुछ कांग्रेसकी ही बनाई हुई है तो भी वे पूरी तरह स्वायत्त हैं और उनका कांग्रेसकी या दूसरी राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका ध्येय या तो लोकसेवा है या सामाजिक, शिक्षा-सम्बन्धी, आर्थिक, या यह सब-कुछ है। उनका काम पूरी तरह रचनात्मक और सृजनात्मक है। लेकिन यह सच है कि उन्हें चलानेवाले ज्यादातर स्त्री-पुरुष या तो कांग्रेसी हैं या कांग्रेसी विचारोंके हैं, यद्यपि उनके दरवाजे सबके लिए खुले हैं। कई ऐसे सज्जन हैं जिनका कांग्रेससे कोई सम्बन्ध नहीं है, मगर जो इन संस्थाओंमें सक्रिय रूपसे काम कर रहे हैं, या इनकी सहायता कर रहे हैं। इन संस्थाओंकी जो भी प्रतिष्ठा, उपयोगिता और कार्यक्षमता है उसे यदि बनाये रखना है तो यह जरूरी है कि ये अपने इस गैर-राजनीतिक स्वरूपको नष्ट न होने दें।

यह सब काफी सरल है। लेकिन जो सवाल उठाया गया है वह पेचीदा है। यह तो स्पष्ट है कि इन संस्थाओंके सदस्य और कार्यकर्त्ता तबतक किसी सत्याग्रह आन्दोलनमें भाग नहीं ले सकते जबतक कि वे इन संस्थाओंसे सम्बद्ध हैं। लेकिन अगर वे अपने सामने किसी सत्याग्रहीको बुरी तरह पिटते देखें या आम जनतापर लाठियाँ बरसते देखें तो उन्हें क्या करना चाहिए? मैं बिना किसी संकोचके यह कहूँगा कि इन संस्थाओंके कार्यकर्त्ताओंका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि ऐसे समय परिणामकी चिन्ता किये बिना जो भी मदद वे कर सकें, करें। उनका यह कार्य अपनेआपमें शुद्ध लोकसेवाका ही कार्य होगा। इन संस्थाओंमें काम करनेवाले लोगोंको न तो कायरता दिखानी चाहिए, न उनका काम उनके गलेका ऐसा फन्दा ही बनना चाहिए जो उन्हें सेवा-कार्यके लिए बिलकुल निकम्मा कर दे। यह डर कि कहीं हमारी नौकरी न छूट जाये, कहीं हमारी संस्थाकी सुरक्षा खतरेमें न पड़ जाये, एक ऐसा रोड़ा है जिसने आजादीकी ओर हमारी प्रगतिमें बड़ी रुकावट डाली है। पिछले आन्दोलनोंमें बहुत ही सावधानीके साथ इस बातका खयाल रखा गया था कि कोई ऐसा काम न किया जाये जिससे राजनीतिमें भाग लेने का थोड़ा भी शक पैदा हो, लेकिन वह सारा एहतियात भी हमारी इन संस्थाओंको और इनके कार्यकर्त्ताओंको

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

सरकारकी निगाहसे बचा न सका। इसलिए सर्वश्रेष्ठ नियम तो यही है कि हर कीमत पर जो सही हो वही करने की हिम्मत की जाये। लेकिन इसमें किसी प्रकारका छद्मावरण, गोपनीयता, छल-कपट नहीं होना चाहिए। जो आगामी आन्दोलनमें भाग लेने को आतुर हों, उन्हें चाहिए कि वे उसमें शरीक होने से पहले इस्तीफा दे दें। और सब मामलोंमें इन संस्थाओंको अपना काम यथावत करते रहना चाहिए। इनमें काम करनेवाले लोग प्रतिक्षण स्वातन्त्र्य मन्दिरका निर्माण कर रहे हैं, और जब स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायेगी तो राष्ट्र-निर्माणके अनेक कार्योंमें विशेषज्ञके नाते उन सबकी सेवाएँ आवश्यक होंगी। इसलिए उन्हें चाहिए कि वे परिश्रमपूर्वक अपने ज्ञान और अपनी उपयोगिताको बढ़ाते चलें। पिछले बाईस वर्षोंमें सच्चे कार्यकर्ताओंने अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दिखाई है। उन्हींकी बदौलत देशमें लाखों रुपयेका माल बना और बँटा है; लाखों रुपये लाखों गरीब स्त्री-पुरुषोंकी जेबमें पहुँचे हैं। यदि ये कार्यकर्ता उनके लिए रोजगार न जुटाते तो उन्हें आधापेट खाकर ही जीना पड़ता।

सेवाग्राम, ६ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १२-७-१९४२

३२५. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
६ जुलाई, १९४२

चि० अमृत,

एम० और सरदार कल आ गये। कार्य-समितिकी बैठक आज हो रही है। सभी अभी यहाँ नहीं पहुँचे हैं। मुझे आज अनुपस्थित रहने की इजाजत दे दी गई है। मौलाना और जवाहरलाल शामको ५ बजे आ रहे हैं। मीरा और मेहताब कल रात आ गये। मीरा खूब प्रसन्न है। सत्यवती और ब्रजकृष्ण आज चले गये और कमला कल चली गई। मृदुला एम० के साथ आई। बा बिलकुल ठीक है। खुर्शेदकी अँगुली-पर बिच्छूने डंक मार दिया था। पर वह हिम्मत दिखा रही है। इतनेसे सब समाचार पूरे हो जाते हैं।

मैं ठीक हूँ। इस मौसमसे मुझमें अधिक शक्ति आई है। मैं जितना सो सकता हूँ सोता हूँ — दिनमें तीन बार और कभी-कभी तो चार बार। टहलते समय मौन रहता हूँ और आँखें बन्द रखता हूँ।

शम्मीको प्राकृतिक उपचार कराना चाहिए। उससे निश्चय ही उसका कायाकल्प हो सकता है। पर उसे समझाना तो ऐसा ही है जैसा किसी दीवारको समझाना।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी०डब्ल्यू० ४१३८) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी०एन०७४४७ से भी

३२६. पत्र : डी० को

६ जुलाई, १९४२

प्रिय डी०,

तुम्हारे पत्रसे मुझे आश्चर्य नहीं होता। लेकिन इन छोटी-छोटी बातोंको तुम्हें हँसकर टाल देना चाहिए। तुम्हें यहाँ आ जाना चाहिए और अपना सहयोग देना चाहिए। तुम जानते हो कि मेरे पास तुम्हारे लिए हमेशा जगह है। सिरपर बहुत काम होने के बावजूद मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। जब भी आ सको, आ जाओ। आने के पहले दो शब्द लिखकर डाल देना या एक तार भेज देना।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

३२७. बिचौलियोंसे[1]

बहुत-से लोगोंकी ओरसे मेरे पास बड़े दर्द-भरे पत्र आ रहे हैं। इन पत्रोंमें गल्लेके व्यापारियोंके खिलाफ कड़ी शिकायतें रहती हैं। पत्रोंका आशय यह होता है कि "हम इन व्यापारियोंकी नौकरी क्यों करें, जब कि वे गल्ला होते हुए भी हमें तबतक नहीं बेचते जबतक हम उन्हें सरकार द्वारा तय की गई कीमतसे ज्यादा कीमत न दें, और हर हालतमें अपनी हैसियतसे अधिक कीमत न चुकायें? हमारे लिए भूखों मरने या लूटमार करने के सिवा और रह ही क्या गया है?"

यह एक आम और वाजिब शिकायत है। इसमें शक नहीं कि इस परिस्थितिके लिए सरकार ही सबसे ज्यादा जिम्मेदार है। उसने गल्ला बाहर भेज दिया है और अब उसे सूझ नहीं रहा है कि देशमें मौजूद गल्लेका कैसा और क्या प्रबन्ध किया जाये। कीमतें ठीकसे निर्धारित होनी चाहिए और डाकखानोंकी तरह जगह-जगह गल्लेकी दुकानें खुलनी चाहिए, जहाँसे लोग टिकटकी तरह अनाज खरीद सकें। लेकिन सरकार के अक्ल सीखने तक लोग भूखों तो मर नहीं सकते। इसलिए समूची व्यापारी कौम का यह फर्ज हो जाता है कि वह सारे मामलेको अपने हाथमें ले और ऐसा प्रबन्ध करे जिससे गरीबोंको बराबर उचित मूल्यपर गल्ला मिलता रहे। इस तरहके

१. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

लोकहितकारी कार्योंमें सरकार कोई दखलअन्दाजी नहीं कर सकती। अगर व्यापारी समाज अपने इस स्पष्ट कर्त्तव्यका पालन करे तो उससे सरकारको सच्ची मदद ही मिलेगी। इसके लिए हिन्दुस्तानके समूचे व्यापारी समाजके स्वैच्छिक सहयोगकी आवश्यकता होगी। लेकिन शुरुआत प्रान्तों, बल्कि जिलोंसे भी कर दी जानी चाहिए। इसमें देरकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है। भूख धर्म-अधर्मकी परवाह नहीं करती। अगर समय रहते लोगोंकी सहायताका उदारतापूर्वक और जोर-शोरसे प्रबन्ध न किया गया तो इसमें शक नहीं कि सारे देशमें रोटी या अनाजके सवालको लेकर जगह-जगह दंगे होने लगेंगे।

सेवाग्राम, ७ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १२-७-१९४२

३२८. पत्र: जगदीश और चन्द्रमुखीको

सेवाग्राम

८ जुलाई, १९४२

चि० जगदीश और चि० चन्द्रमुखी,

चि० कमलनयनने जानकीबहनके मार्फत तुम्हारे लिए आशीर्वाद माँगे हैं। मैं कैसे इनकार करूँ? मैं सुनता हूँ कि तुम्हारे विवाहमें अमर्यादित खर्च हुआ है। मुझे तो यह पसन्द नहीं है। बहुत जीओ, सुखी हो और साथ-साथ हर कार्यमें गरीबोंका खयाल करो और उनकी सेवा करो।

बापूके आशीर्वाद

पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० ३४५

३२९. तार: अमृतकौरको

वर्धागंज

९ जुलाई, १९४२

राजकुमारी

मैनरविले

शिमला वेस्ट

शक्ति बचा रहा हूँ। चिन्ता न करना। सप्रेम।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१३९) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७७४८ से भी

३३०. पत्र : होरेस अलेक्जेंडरको

सेवाग्राम, वर्धा
९ जुलाई, १९४२

प्रिय होरेस,

तुम्हारा प्यारा पत्र मिला। बेशक तुम वही करना जो तुम्हारी अन्तरात्मा कहे। तुम और इसी तरह सिमंड्स भी, जब जी करे तब आ जाना। परन्तु जब भी कोई चीज तुम्हें आलोचना करने लायक लगे तभी निस्संकोच और निर्भय होकर उसकी आलोचना करो, जैसे कि चार्ली किया करते थे। तुम्हारा मुख्य कार्य निस्सन्देह रोगियोंकी सहायता करना है, इसलिए मुझे या सेवाग्रामको टालना आवश्यक लगे तो बिना झिझक टाल देना।[1] मैं किसी भी तरह तुम्हें गलत नहीं समझूंगा।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४३५) से

३३१. कांग्रेस कार्य-समितिके प्रस्तावका मसौदा[2]

९ जुलाई, १९४२

'दिन-प्रति-दिनकी घटनाओंसे और भारतके लोग आज जिस अनुभवसे गुजर रहे हैं उससे कांग्रेस-जनोंके इस मतकी पुष्टि होती है कि भारतमें ब्रिटिश शासन तुरन्त समाप्त हो जाना चाहिए, न केवल इसलिए कि विदेशी प्रभुत्व अपने ढंगसे कितना

१. होरेस अलेक्जेंडरने नई दिल्लीकी यात्राके बाद लिखा था कि मुझे ऐसा लगा है कि गांधीजी के साथ मेरा मिलना-जुलना वहाँ पसन्द नहीं किया जा रहा है।

२. कांग्रेस कार्य-समिति द्वारा १४ जुलाईको अन्तिम रूपसे पारित प्रस्तावका यह सबसे पहला उपलब्ध संशोधित पाठ है। (सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ जवाहरलाल नेहरू में प्रस्तावके अन्य बीच-बीचमें प्रस्तुत विभिन्न पाठ दिये गये हैं)। मसौदेका मूल पाठ गांधीजी ने लिखा था। उन्होंने नेहरूको लिखा था: "मैं प्रस्तावको पढ़ गया हूँ। मैं देखता हूँ कि तुमने मेरी बातमें से कुछ लेने की कोशीश की है" (पृ० ३२६)। पत्रकारोंको एक भेंटमें गांधीजी ने कहा था: . . . " . . . कार्य-समितिने मेरे ही मसौदेके आधारपर उसे तैयार किया है . . . कार्य-समितिने उसे मेरे माफिक करने की यथासाध्य कोशिश की है . . ." (पृ० ३२८)। फिर गांधीजी ने अमृतकौरको लिखा था: "प्रस्तावका मसौदा मेरा है। ज० ला० के, और मौलानाके भी, सन्तोष के लिए उसमें परिवर्तन किये गये हैं।" ("पत्र: अमृतकौरको", १७-७-१९४२)। पाठके लिए देखिए परिशिष्ट ६।

ही अच्छा हो तो भी अपने-आपमें एक बुराई है बल्कि इसलिए भी कि पराधीन भारत जन और धनका विनाश करनेवाले इस युद्धकी परिणतिमें कोई कारगर भूमिका अदा नहीं कर सकता। भारतकी स्वतन्त्रता, इस तरह, न केवल भारतके हितके लिए, बल्कि विश्वकी सुरक्षाके लिए और नाजीवाद, फासीवाद, सैन्यवाद, साम्राज्यवाद और जिस किसी 'वाद' का जापान प्रतिनिधित्व करता है उसकी समाप्तिके लिए आवश्यक है। विश्वयुद्ध जबसे छिड़ा है तबसे कांग्रेस परेशान न करने की नीतिपर विचारपूर्वक चलती आई है। अपने सत्याग्रहका स्वरूप जान-बूझकर उसने प्रतीकात्मक रखा, हालाँकि उसमें सत्याग्रहके निष्फल होने तक का खतरा था। उसने ऐसा इसलिए किया, क्योंकि उसे आशा थी कि परेशान न करने की यह नीति, जो अपनी चरम सीमातक अमलमें लाई गई है, यथोचित रूपसे सराही जायेगी और पर्याप्त वास्तविक सत्ता लोकप्रिय प्रतिनिधियोंको हस्तान्तरित कर दी जायेगी, और इस तरह राष्ट्र मानव स्वतन्त्रताकी, जिसके नष्ट हो जाने का खतरा आज उपस्थित है, विश्व-भरमें स्थापना करने में अधिकसे-अधिक योगदान कर सकेगा। उसे यह भी आशा थी कि दूसरी ओर ऐसा कुछ नहीं किया जायेगा जिसका उद्देश्य भारतपर ब्रिटेनकी जकड़को और कसना होगा। परन्तु उसकी ये आशाएँ चूर-चूर कर दी गई हैं। निष्फल हुए क्रिप्स प्रस्तावोंसे यह साफ-साफ जाहिर हो गया है कि भारतके प्रति ब्रिटिश सरकारके रवैयेमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और भारतपर ब्रिटेनकी पकड़ किसी भी तरह ढीली नहीं होने दी जायेगी। यह भी देखा गया है कि ब्रिटेनके विरुद्ध दुर्भावना बड़ी तेजीसे बढ़ रही है और लोग खुलकर जापानी सेनाओंकी सफलताके लिए कामना कर रहे हैं। कांग्रेस उस अनुभवसे बचना चाहती है जिससे मलाया, सिंगापुर और बर्माको गुजरना पड़ा है, दुर्भावनाको सद्‌भावनामें बदलना चाहती है, तथा अंग्रेजोंकी परीक्षाओं और मुसीबतोंमें भारतको स्वेच्छासे साझी बनाना चाहती है। लेकिन यह केवल तभी सम्भव है जब भारत विदेशी प्रभुत्वसे मुक्तिका आलोक अनुभव करे।

कांग्रेसका यह विश्वास है कि इस असह्य स्थितिका इलाज केवल यही है कि भारतमें अंग्रेजी शासन तुरन्त समाप्त हो जाये। कांग्रेसी प्रतिनिधियोंने साम्प्रदायिक गुत्थीको सुलझाने की भरसक कोशिश की है। परन्तु विदेशी सत्ताकी उपस्थितिके कारण, जो निरन्तर फूट डालो और राज्य करो की नीति पर ही चलती आई है, उसे सुलझाना असम्भव हो गया है। ब्रिटिश सत्ताके यहाँसे हटने पर ही देशके समझदार स्त्री और पुरुष मिलकर कोई ऐसी योजना तैयार कर सकते हैं जिससे भारतके शासनके लिए संविधान बनाने को एक संविधान-सभा बुलाई जा सके। विदेशी आधिपत्यके समाप्त होने के बाद यथार्थ इस भ्रमका स्थान ले लेगा तथा 'राजा और किसान एक धरातलपर आ जायेंगे' और वर्त्तमान राजनीतिक दल, जिनकी स्थापना मुख्य रूपसे ब्रिटिश सत्ताका ध्यान खींचने के उद्देश्यसे हुई है, तब सम्भवतः भंग हो जायेंगे। भारतके इतिहासमें पहली बार यह अहसास जागेगा कि राजा-महाराजा, जागीरदार, जमींदार और धन-सम्पत्तिवाले वर्ग अपनी दौलत और सम्पत्ति वस्तुतः खेतों या कारखानोंमें काम करनेवाले लोगोंसे प्राप्त करते हैं और समस्त सत्ता व अधिकार उन्हींको होना चाहिए। कांग्रेसने भारतसे ब्रिटिश सत्ताको हटाने का जो सुझाव

रखा है, उसमें उसकी यह इच्छा कतई नहीं है कि ब्रिटेन या मित्र-राष्ट्रोंके युद्ध-संचालनमें बाधा डाली जाये। इसलिए इस सुझावका अर्थ किसी भी रूपमें यह नहीं लगाना चाहिए कि यह जापान या अन्य धुरी राष्ट्रोंको भारतपर हमला करने और इस प्रकार चीनका गला घोंटनेका निमन्त्रण है। कांग्रेसका इरादा मित्र-राष्ट्रोंकी प्रतिरक्षा-क्षमताको खतरेमें डालने का भी नहीं है। इसलिए मित्र-राष्ट्र यदि जापानी या किसी अन्य आक्रमणको रोकने के लिए और चीनकी रक्षा व सहायताके लिए भारतमें अपनी सेनाएँ 'अपने ही खर्चपर' रखना आवश्यक समझें तो कांग्रेस उसके लिए राजी हो जायेगी।

भारतसे ब्रिटिश सत्ताको हटाने के सुझावका आशय सभी अंग्रेजोंको भारतसे हटाना कभी नहीं रहा है, और जो लोग भारतको अपना घर बनाना चाहते हैं और यहाँ नागरिकोंकी हैसियतसे तथा अन्य लोगोंके साथ समानताके आधारपर रहना चाहते हैं उन्हें हटाना तो निश्चय ही नहीं रहा है।

यदि सत्ता सद्भावनाके साथ हटा ली जाती है तो यह बहुत सम्भव है कि भारतमें एक दृढ़ अस्थायी सरकार स्थापित करने में कोई कठिनाई न हो। परन्तु साथ ही कांग्रेस इस बातसे बेखबर नहीं है कि कुछ समयके लिए शासन-तन्त्र टूट भी सकता है; अराजकता पैदा हो सकती है और विभिन्न दल, सबकी भलाईके लिए इकट्ठा होने के बजाय, अपनी-अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए प्रतिस्पर्धा भी कर सकते हैं। परन्तु किसी भी देशको स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए इस तरहका खतरा तो उठाना ही होगा। इसलिए कांग्रेस जल्दबाजीमें कुछ करना नहीं चाहती है, बल्कि वह यह चाहेगी कि अंग्रेज उसकी माँग मान लें, इसमें मित्र-राष्ट्र उसकी सहायता करें।

लेकिन यदि यह अपील बेकार जाती है तो कांग्रेस न चाहते हुए भी समस्त अहिंसात्मक शक्तिको, जो उसने १९२० में अहिंसाको अपनी नीतिका अंग बनाने के बादसे संचित की हो, राजनीतिक अधिकार और स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके निमित्त प्रयुक्त करने को बाध्य होगी। इस बारका संघर्ष बहुत ही व्यापक जन-आन्दोलनका रूप लेगा, जिसमें सरकारी कर्मचारी और सरकारसे किसी भी रूपमें सम्बद्ध अन्य विभागोंके कर्मचारी भी स्वेच्छासे हड़ताल और असहयोग करेंगे तथा इसमें लगानबंदी, और करबंदी भी हो सकती है।

जन-आन्दोलनके नियमन और तेजीसे विकासके लिए कार्य-समिति गांधीजी को उसका कार्य-भार सँभालने और जिस तरह भी वे उचित समझें उस तरह उसका नियमन करने का अधिकार देती है। मित्र-राष्ट्रोंको कांग्रेसकी इस अपीलपर विचार करने और अनुकूल प्रतिक्रिया दिखाने के लिए, तथा कांग्रेसको जनमतको शिक्षित करने के लिए और अ० भा० कांग्रेस कमेटीको कार्य-समितिके साथ इस जबरदस्त कदमकी जिम्मेदारी लेने के लिए पर्याप्त समय मिल सके, इस दृष्टिसे कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन . . . पर . . . को तय करती है, और तबतक यह प्रस्ताव निलम्बित रहेगा।

सेवाग्राम, ९ जुलाई, १९४२

अंग्रेजीकी टंकित प्रतिसे: जवाहरलाल नेहरू पेपर्स। सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

३३२. कांग्रेस और युद्ध-सामग्रीके ठेके[1]

प्र० : क्या कांग्रेसजनोंके लिए, खास तौरसे कांग्रेस कमेटियोंके सदस्योंके लिए यह उचित है कि वे युद्ध-सामग्रीके ठेके लें?

उ० : उचित तो यही होगा कि यह सवाल कांग्रेसकी कार्य-समितिसे पूछा जाये। अलबत्ता, व्यक्तिगत रूपसे मैं यह समझता हूँ कि कांग्रेसजन युद्ध-सामग्रीके ठेके नहीं ले सकते।

सेवाग्राम, १० जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-७-१९४२

३३३. प्रश्नोत्तर

मौतका सम्मानपूर्ण तरीका

प्र० : आप कहते हैं कि "जो व्यक्ति अमानुषी यन्त्रणाओंकी अपेक्षा मृत्युको सचमुच अच्छा समझता है, वह इज्जतके साथ मरनेका कोई-न-कोई रास्ता निकाल ही लेगा"। क्या आप अपनी इस उक्तिको और अधिक स्पष्ट करेंगे? क्या आप ऐसे मामलोंमें आत्महत्याका समर्थन करते हैं? या आपका यह मतलब है कि मृत्युकी तीव्र इच्छा-मात्रसे ही मृत्यु प्राप्त हो जायेगी?

उ० : ऐसे मामलोंमें यन्त्रणाओंसे मुक्ति पाने के लिए आत्महत्याको मैं अनुचित नहीं मानता — सो यन्त्रणाजन्य कष्टसे बचने के लिए नहीं, बल्कि अत्याचारीको यह जताने के लिए कि अत्याचार आत्महत्या करनेवालेको नहीं झुका सकता। दूसरोंको पीड़ा पहुँचाने में जो आनन्द आता है उसे पाने के लिए अत्याचारी आत्महत्याको रोकते रहे हैं। लेकिन मैं आवश्यक रूपसे आत्महत्याको मरने का सम्मानपूर्ण तरीका नहीं मानता। वास्तवमें तो मरने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि व्यक्तिमें मृत्युकी इच्छा इतनी तीव्र हो जाये कि चाहने-मात्रसे उसके प्राण निकल जायें। लेकिन ऐसा सौभाग्य तो करोड़ोंमें से एकाधका ही होता है। जिस वक्त मैंने ऊपरके शब्द लिखे थे, मेरे मनमें उस तरहके तरीके थे जो कैदी जेलमें वार्डरोंके साथ अपने अहिंसात्मक संघर्षमें

1. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

अपनाते हैं और जिनमें निश्चित रूपसे उनकी जान चली जाती है। फर्ज कीजिए कि अ ब को पेटके वल रेंगने पर मजबूर करता है तो उसका मुकावला मरते दमतक किया जा सकता है। इस तरह मुकावला करते-करते जान देने के तमाम तरीकोंको मैं सम्मानजनक ही समझूँगा। इस किस्मका मुकावला हर कोई कर सकता है, चाहे वह जितना कमजोर या मजबूत हो। सम्भवतः कमजोर लोगोंका प्रतिरोध ज्यादा कारगर होता है, और यकीनन जल्दी काम करता है। इसकी अनिवार्य शर्त यही है कि सत्याग्रहीका दिल मजबूत हो और इच्छा-शक्ति अटल हो। मैं कोरे सिद्धान्तकी वात नहीं कर रहा। मेरी यह राय मेरे अपने और उन लोगोंके अनुभवोंपर आधारित है जो मेरे निरीक्षणमें आये हैं। एक अत्याचारी पति अपनी क्रूर जिदसे एक कमजोर पत्नीको नहीं झुका सकता। दुवले-पतले बच्चोंने अपने कठोर अध्यापकों या निर्दय माता-पिताके हुक्मोंका सफलतासे मुकावला किया है। इसलिए असल चीज तो यह है कि मरने की सच्ची तैयारी वल्कि संकल्प है या नहीं। जहाँ संकल्प है, वहाँ कोई-न-कोई तदवीर निकल ही आती है।

निकम्मी सहानुभूति

प्र० : कांग्रेस इस बातका एलान क्यों नहीं कर देती कि जबतक हिन्दुस्तान गुलाम है, वह न किसी मुल्कका दुश्मन है और न किसीका दोस्त? जब हिन्दुस्तानको अपने तरीकेसे मदद देने की स्वतन्त्रता ही नहीं है, तो चीन और रूसके लिए उसकी हमदर्दीका फायदा ही क्या? क्या कभी रूसने हिन्दुस्तानका खयाल किया है?

उ० : आपका कहना ठीक है। जवतक हिन्दुस्तान खुद स्वतन्त्र नहीं है, उसकी सहानुभूतिसे किसी व्यक्ति या राष्ट्रको कोई कारगर मदद नहीं मिलेगी, जिस तरह कि उसकी दुश्मनीसे किसीको कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा। फिर भी पण्डित जवाहरलाल नेहरूने अपने अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण और अपनी उदारतासे हमें इस वातका आदी बना दिया है कि हम संकटग्रस्त राष्ट्रोंके प्रति अपनी हमदर्दी विना किसी प्रतिदानकी उम्मीदके जाहिर करें। इस तरह सहानुभूति प्रकट करने से हम कुछ खोते नहीं, गोकि हम यह महसूस करते हैं कि इससे कुछ वननेवाला नहीं है। यदि रूसको आज हिन्दुस्तानकी कोई चिन्ता नहीं है तो भी आखिर तो वह हमारी सहानुभूतिके निःस्वार्थ स्वरूपको स्वीकार करेगा ही। यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कारगर मदद पहुँचाने की ताकत न रखते हुए भी सहानुभूति प्रकट करना अपने-आपमें एक नैतिक महत्त्व रखता है। जिन लोगोंके वारेमें हम यह जानते हैं कि वे हमारे संघर्षमें कोई मदद नहीं पहुँचा सकते, उनकी हमदर्दीकी भी हम कद्र करते हैं।

आपका सवाल खुद ही इस बातका एक और प्रमाण है कि अंग्रेजी हुकूमतके फौरन ही हिन्दुस्तानसे हट जाने की हमारी माँग एक न्यायोचित माँग है। चूँकि हम संकटग्रस्त राष्ट्रोंके प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करना सीख गये हैं, इसलिए अपनी वेवसीका अहसास और यह अहसास कि अगर हम आजाद हो जायें तो उनकी बहुत ही कारगर मदद कर सकते हैं, हमारे अन्दर इतना प्रवल हो गया है या हो जाना

चाहिए कि हम इस युद्धके चलते ही अपनी आकांक्षा पूरी करने को आतुर और बाध्य हो जायें।

सेवाग्राम, १० जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २६-७-१९४२

३३४. भेंट : 'डेली एक्सप्रेस' के प्रतिनिधिको[1]

[११ जुलाई, १९४२ के पूर्व]

प्र० : आपका यह आन्दोलन जापानियोंको हिन्दुस्तानसे दूर रखने के हमारे कामको ज्यादा मुश्किल बना देगा या उसकी मुश्किलें कम करेगा, आपका क्या खयाल है?

उ० : हमारे आन्दोलनसे जापानके लिए हिन्दुस्तानमें आना ज्यादा मुश्किल हो जायेगा। लेकिन अगर हमें ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रोंका सहयोग न मिला तो क्या होगा, मैं कह नहीं सकता।

प्र० : लेकिन आप इस युद्धके समूचे रूपपर विचार कीजिए। आपने कहा है कि आप मित्र-राष्ट्रोंकी विजय चाहते हैं। क्या आप यह मानते हैं कि आपके नये आन्दोलनसे मित्र-राष्ट्रोंको विजय पाने में मदद मिलेगी?

उ० : हाँ, बशर्ते कि मेरी दरखास्त मंजूर कर ली जाये।

प्र० : आप किस दरखास्तकी बात कहते हैं — यह कि ब्रिटेन अहिंसक युद्ध लड़े?

उ० : नहीं, नहीं। मेरी यह दरखास्त कि हिन्दुस्तानसे अंग्रेजी हुकूमत उठ जानी चाहिए। अगर वह मंजूर कर ली जाये तो मित्र-राष्ट्रोंकी जीत निश्चित है। उस हालतमें हिन्दुस्तान एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन जायेगा और मित्र-राष्ट्रोंका सच्चा साथी होगा। आज तो उसकी हैसियत एक गुलामकी हैसियत है। अगर मेरे आन्दोलनको सहानुभूतिपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ तो निश्चय ही उसके कारण शीघ्र विजय प्राप्त हो सकेगी। लेकिन अगर अंग्रेजोंने उसे समझने में गलती की और उसको दबा देने की तरफ ही उनका रुख रहा तो जो नतीजा होगा, उसकी जिम्मेदारी उनकी होगी, मेरी नहीं।

प्र० : श्री गांधी, आप खुद लन्दनमें रह चुके हैं। अंग्रेज जनताने जिस भयंकर बम-वर्षाका सामना किया है, उसके बारेमें क्या आपको कुछ भी कहना नहीं है?

१. महादेव देसाईके लेख "टू मिनिट्स इन्टरव्यू" ११-७-१९४२ से उद्धृत

उ० : जी हाँ, लन्दनमें मैं बरसों पहले तीन सालतक रहा हूँ, उसकी हर गली व कूचेसे मैं परिचित हूँ। ऑक्सफर्ड, कैम्ब्रिज और मैंचेस्टरका भी मैं कुछ-कुछ जानता हूँ। लेकिन मेरा खास लगाव तो लन्दनके साथ है। मैं 'इनर टेम्पल' पुस्तकालयमें बैठकर पढ़ा करता था, और अक्सर टेम्पल चर्चमें डॉक्टर पार्करके प्रवचन सुनने जाता था। वहाँके लोगोंके साथ मेरी पूरी हमदर्दी है। जब मैंने सुना कि टेम्पल चर्चपर बम बरसे हैं तो मुझे मर्मान्तक पीड़ा हुई। वेस्टमिन्स्टर एबी और दूसरी पुरानी इमारतोंपर हुई बम-वर्षाने भी मुझे दहला दिया था।

प्र० : तो फिर क्या यह ज्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण न होगा कि आप अपने आन्दोलनको तबतक के लिए मुलत्वी रखें जबतक कि हम जर्मनी और जापानसे निपट न लें?

उ० : जी नहीं, क्योंकि मैं जानता हूँ कि हमारे बिना आप जर्मनीसे निपट नहीं सकेंगे। अगर हम स्वतन्त्र होते तो अपने ढंगसे आपके साथ सोलहों आना सहयोग कर सकते। अजब बात है कि यह मामूली-सी चीज नहीं समझी जा रही। आज ब्रिटेनको स्वतन्त्र हिन्दुस्तानसे कुछ भी नहीं मिल रहा। लेकिन कल ज्यों ही हिन्दुस्तान स्वतन्त्र होगा ब्रिटेनको नैतिक बल मिलेगा और स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें नैतिक दृष्टिसे शक्तिशाली एक मित्र प्राप्त होगा। निश्चय ही यह स्वयंसिद्ध है कि इससे इंग्लैण्डकी शक्ति बेहद बढ़ जायेगी।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-७-१९४२

३३५. 'हरिजन' बन्द किया गया तो

लोग बड़ी चिन्ताके साथ पूछ रहे हैं कि अगर सरकारने 'हरिजन' बन्द कर दिया तो मैं क्या करूँगा। अफवाह तो यह है कि इस सम्बन्धमें हुक्म निकल चुके हैं। मैं अपने प्रश्नकर्ताओंसे कहूँगा कि वे 'हरिजन' के बन्द होने की चिन्तासे व्यग्र न हों। हो सकता है कि वह बन्द कर दिया जाये। पत्रके व्यवस्थापकको यह निर्देश दिया गया है कि ज्यों ही सरकारी हुक्म मिले, वे उसे बन्द कर दें। सरकारी आज्ञाकी अवज्ञा करके 'हरिजन' को प्रकाशित करते रहना आन्दोलनका कोई अंग नहीं है। सरकार 'हरिजन' का प्रकाशन रोक सकती है, लेकिन जबतक मैं जिन्दा हूँ, वह उसके सन्देशको रोक नहीं सकती। शरीरके नष्ट हो जाने पर भी आत्मा तो अमर ही रहेगी, और वह किसी-न-किसी रूपमें देशके करोड़ों लोगोंके जरिये अपने भाव व्यक्त करती रहेगी। कारण, वीर सावरकर और कायदे-आजम जिन्नासे उचित क्षमा-याचना करते हुए कहूँगा, मैं उन करोड़ों हिन्दुओं, मुसलमानों और गैर-हिन्दुओंकी संयुक्त भावना का प्रतिनिधित्व करने का दावा करता हूँ जो अपनेको भारतमाताकी सन्तान कहते हैं। मैं इस देशके एक-एक आदमीके स्वतन्त्रताके लिए

जी रहा हूँ और आशा करता हूँ कि उसके लिए मरने की शक्ति भी मुझे प्राप्त होगी।

आइए, अब हम देखें कि आज 'हरिजन' की क्या हैसियत है। आज वह अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू (दो संस्करण), तमिल, तेलुगु (दो संस्करण), उड़िया, मराठी, गुजराती और कन्नड़ (दो संस्करण) में प्रकाशित हो रहा है। बंगलामें इसके प्रकाशनकी तैयारी हो चुकी है; सिर्फ सरकारी इजाजतका इन्तजार है। असम, केरल और सिन्धसे भी प्रार्थनापत्र आये हैं। एकको छोड़कर बाकी सब संस्करणोंका प्रचार दूसरे साप्ताहिकोंकी तुलनामें बहुत काफी है। मेरा निवेदन है कि ऐसे पत्रको बन्द करना कोई मामूली बात नहीं है। पत्रको बन्द करने से जनताके बजाय सरकार ही ज्यादा घाटेमें रहेगी। एक लोकप्रिय पत्रको बन्द करके सरकार अपने खिलाफ लोगोंकी बेहद नाराजी मोल लेगी।

यह भी याद रहे कि 'हरिजन' समाचारपत्रसे भिन्न एक विचारपत्र है। हर हफ्ते उससे कुछ सीखने और सीखकर अपने दैनिक जीवनको व्यवस्थित बनाने के लिए ही लोग उसे खरीदते और पढ़ते हैं — महज मनोरंजनके लिए नहीं। दरअसल तो वे हर हफ्ते उसके द्वारा अहिंसाके नये-नये पाठ सीखते हैं। लोगोंको उनके इस साप्ताहिक आहारसे वंचित रखना सत्ताधारियोंके लिए हितकर न होगा।

फिर 'हरिजन' कोई अंग्रेज-विरोधी पत्र नहीं है। वह तो सिरसे पाँवतक अंग्रेज-समर्थक पत्र है। वह अंग्रेज जनताका हितैषी है। उसकी रायमें जहाँ अंग्रेज गलती करते हैं, वहाँ अत्यन्त मित्रतापूर्ण ढंगसे उन्हें वह बता देता है।

मैं जानता हूँ कि हिन्दुस्तानके आंग्ल-भारतीय अखबार सरकारके प्रीतिपात्र हैं। वे एक नष्ट होते हुए साम्राज्यवादके प्रतिनिधि हैं। इस युद्धमें ब्रिटेनकी जीत हो या हार, हर हालतमें साम्राज्यवादको तो नष्ट होना ही है। भूतकालमें वह अंग्रेज जातिके लिए कितना ही उपयोगी क्यों न रहा हो, निश्चय ही आज उसका कोई उपयोग नहीं रह गया है। अतएव इस दृष्टिसे आज आंग्ल-भारतीय अखबार वस्तुतः अंग्रेज-विरोधी हैं, जब कि 'हरिजन' अंग्रेज-समर्थक है। ये आंग्ल-भारतीय पत्र सत्यको छिपाकर रोज-रोज घृणा और द्वेषका प्रचार कर रहे हैं, और साम्राज्यवादका समर्थन करने में लगे हैं, जो ब्रिटेनको बरबाद कर रहा है। इस बरबादीकी गतिको रोकने के लिए ही, शरीरसे दुर्बल होते हुए भी, मैं अपनी सारी शक्तिसे एक ऐसे आन्दोलनमें लग गया हूँ जिसका उद्देश्य जहाँ हिन्दुस्तानको साम्राज्यके जुएसे मुक्त करना है, वहाँ साथ ही अंग्रेजोंको उनके युद्ध-प्रयत्नमें जबरदस्त मदद पहुँचाना भी है। अतएव अगर वे 'हरिजन' को बन्द करते हैं तो समझ लें कि वे किसे बन्द करने जा रहे हैं।

यहाँ मैं यह भी बता दूँ कि बाहरके किसी दबावकी अपेक्षा रखे बिना मैं 'हरिजन' में छपनेवाली सामग्रीके चुनावपर अधिकसे-अधिक अंकुश रखे हुए हूँ। उसमें जान-बूझकर ऐसी कोई चीज नहीं छापी जाती जिससे 'दुश्मनको' फौजी उद्देश्यों या गतिविधियोंका पता चल सके। तमाम अतिशयोक्तिपूर्ण या सनसनी पैदा करनेवाली बातोंसे बचने की पूरी कोशिश की जाती है। प्रयोग करने से पहले विशेषणों और

क्रियाविशेषणोंको खूब तौल लिया जाता है। और अधिकारी यह भी जानते ही हैं कि मैं अपनी गलतियाँ कबूल करने और उन्हें दुरुस्त करने के लिए हमेशा तैयार रहता हूँ।

सेवाग्राम, १२ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-७-१९४२

३३६. टिप्पणियाँ

बीमार पड़ने पर

किसीने मुझे बताया कि बी० बी० सी० (ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन) पिछले दिनों यह पूछती रही है कि अगर मैं बीमार हो गया और चारपाईपर पड़ गया तो आनेवाले अहिंसक आन्दोलनका नेतृत्व करने की आशा मैं कैसे कर सकता हूँ? हकीकत यह है कि डॉक्टरोंने ऐसी कोई बात मेरे बारेमें नहीं कही है। मैं थक गया हूँ, और उन्होंने मुझे सलाह दी है कि मैं आराम करूँ और वायु-परिवर्त्तनके विचार से एक पखवाड़ेके लिए किसी ठंडी जगहमें चला जाऊँ। मैं अपनेको आराम देने की भरसक कोशिश कर रहा हूँ। लेकिन कभी-कभी कर्त्तव्य — जो भावावेश या मोह भी हो सकता है — इसमें बाधक बन जाता है। पर सच तो यह है कि जबतक बुद्धि स्वस्थ और निर्मल है, तबतक शारीरिक अस्वस्थताकी वजहसे अहिंसक आन्दोलनको चलाने में कोई रुकावट पैदा नहीं होती। अहिंसक आचरणकी तहमें यह अटल विश्वास रहता है कि मनुष्य जो-कुछ भी करता है, ईश्वरकी प्रेरणासे करता है — जो अदृष्ट है और जिसको बिना अदम्य श्रद्धाके कोई अनुभव भी नहीं कर सकता। फिर भी सत्यके एक अन्वेषक और प्रयोगकर्त्ताके नाते मैं जानता हूँ कि एक अहिंसक व्यक्तिके लिए तो शारीरिक अस्वस्थता और थकावट भी दोष मानी जाती है। सत्य और अहिंसाके उपासक इस सूत्रको अक्षरशः मानते हैं कि 'स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मन रह सकता है।' लेकिन यह तो पूर्ण मनुष्योंकी बात हुई। खेद है कि जिस पूर्णताको मैंने अपना लक्ष्य बनाया है, उससे मैं अभी दूर हूँ।

समयोचित कार्रवाई

कई जगहोंसे यह पूछा गया है कि जो लोग अपने घर और जमीन वगैरह खाली करने में कठिनाई महसूस करते हैं, या जिनके लिए किसी भी तरह इन आज्ञाओंका पालन करना असम्भव है, वे क्या करें? इस सम्बन्धमें कांग्रेस कार्य-समितिने जो विस्तृत हिदायतें जारी की हैं, वे बड़े मौकेकी हैं। इन कठिनाइयोंमें फँसे हुए लोगोंको यह समझ लेना चाहिए कि ये हिदायतें आनेवाले आन्दोलनका अंग नहीं हैं। ये तो हर हालतमें सम्बन्धित व्यक्तियोंके अपने अस्तित्वके लिए जरूरी हैं। इसलिए, जैसा कि

कार्य-समितिने बहुत ही ठीक कहा है, ऐसे मामलोंमें सुलह-समझौतेसे राहत पाने के लिए पूरा एहतियात पहले बरत लेना चाहिए। सरकारी आज्ञाओंका अनादर केवल तभी करना चाहिए जब वह अनिवार्य हो जाये। यह कहने की जरूरत नहीं कि इसमें मुनाफा कमाने की या मनमानी माँगें पेश करने की कोई गुंजाइश नहीं है।

सेवाग्राम, १२ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-७-१९४२

३३७. उचित प्रश्न

१. अगर सशस्त्र हिंसा अपने क्षेत्रमें अहिंसक हलचलोंको बेअसर बना देती है और हिंसाके साथ अहिंसा काम नहीं कर सकती तो जब हम विदेशी फौजोंको हिन्दुस्तानमें रहने और काम करने देंगे तो क्या बाहरी आक्रमणका अहिंसा द्वारा प्रतिरोध करने की कोई गुंजाइश रह जायेगी?

२. अगर हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताको बनाये रखने का काम सशस्त्र सेनापर छोड़ दिया जाये, जिसका नेतृत्व और नियमन आजकी हालतमें ब्रिटेन और अमेरिकाके हाथोंमें रहेगा तो क्या, कमसे-कम इस लड़ाईके दौरान, हिन्दुस्तानकी जनता सच्ची स्वतन्त्रताका अनुभव कर सकेगी?

३. 'सन्धि'की शर्तें कुछ भी क्यों न हों, अगर ब्रिटिश और अमेरिकी सैन्य यन्त्रको हिन्दुस्तानकी 'रक्षा'का काम करने दिया गया तो देशकी रक्षाके कार्यमें हिन्दुस्तानियोंका हिस्सा तो मामूली और मातहतोंके जैसा ही रहेगा न?

४. मान लीजिए कि अंग्रेज किसी नैतिक दृष्टिसे नहीं, बल्कि कुछ राजनीतिक और सामरिक लाभ प्राप्त करने के लिए फिलहाल एक ऐसी 'सन्धि' करने को राजी हो जाते हैं जिसके अनुसार वे हिन्दुस्तानमें अपनी फौजें रख सकें और फौजी ताकत बढ़ा सकें तो बादमें अगर वे हिन्दुस्तानको अपने कब्जेमें ही रखना चाहें तो उन्हें किस तरह हिन्दुस्तानसे हटाया जा सकेगा?

५. ऊपरके प्रश्नमें जिस स्थितिकी कल्पना की गई है, क्या वह बिलकुल वैसी न होगी जैसी तब होगी यदि सुभाषबाबू जर्मनी और जापानके साथ एक सन्धि कर लें, जिसके अनुसार हिन्दुस्तानको 'स्वतन्त्र' घोषित कर दिया जाये, और अंग्रेजोंको हिन्दुस्तानसे निकालने के लिए धुरी-राष्ट्रोंकी फौजें यहाँ आयें?

६. जैसा कि मौलाना साहबने हालमें ही कहा है, अगर कांग्रेसकी दृष्टिमें 'रक्षाका अर्थ सशस्त्र रक्षा ही है' तो इस हकीकतको ध्यानमें रखते हुए कि हिन्दुस्तानके पास बाहरके भीषण आक्रमणकारियोंका 'स्वतन्त्र रीतिसे' सशस्त्र और प्रभावशाली विरोध करने के लिए आवश्यक साधन-सामग्री नहीं है, क्या हिन्दुस्तानके

लिए सच्ची स्वतन्त्रताकी कोई सम्भावना रह जाती है? अगर हमें सशस्त्र रक्षाकी ही दृष्टिसे सोचना हो तो क्या ४,००० मीलके समुद्रतटवाला हिन्दुस्तान बिना अपनी नौसेनाके और जहाज बनानेवाले उद्योगके कभी स्वतन्त्र रहने की उम्मीद रख सकता है? यह तो इससे सम्बन्धित कठिनाईका सिर्फ एक उदाहरण है।

७. अगर ब्रिटेन हिन्दुस्तानकी 'आजादीका' एलान भी कर दे तो आजकी हालतमें हिन्दुस्तान चीनको क्या भौतिक सहायता दे सकता है?

उ०: १. पहले सवालमें दिखाये गये दोषसे इनकार नहीं किया जा सकता। उसे मैं इससे पहले भी स्वीकार कर चुका हूँ। स्वतन्त्र हिन्दुस्तान द्वारा मित्र-राष्ट्रोंकी फौजोंको देशमें रहने देना अपनी सीमाओंको ही स्वीकार करना है। समूचा राष्ट्र कभी अहिंसक न था, और न कभी इस बातका दावा ही किया गया है। उसका कितना हिस्सा अहिंसक है, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। मुख्य बात यह है कि अभीतक हिन्दुस्तानने बलवानोंकी उस अहिंसाका परिचय नहीं दिया है जिसके द्वारा जबरदस्त फौजी हमलोंका मुकाबला किया जा सके। अगर वह ताकत हमने अपने अन्दर पैदा कर ली होती तो हम बहुत पहले अपनी आजादी हासिल कर चुके होते, और उस हालतमें हिन्दुस्तानके अन्दर बाहरकी फौजोंको रखने का कोई सवाल नहीं उठता। याद रहे कि जो माँग आज हम कर रहे हैं, वह एक अनोखी माँग है। इसके जरिये हम ब्रिटेनसे यह नहीं चाह रहे हैं कि वह स्वतन्त्र हिन्दुस्तानको देशकी हुकूमत सौंप दे, क्योंकि आज देशमें ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसे ब्रिटेन इस तरह सत्ता सौंप सके। हमें सबल बनानेवाली एकताका हमारे पास अभाव है। इसलिए हमारी माँगके पीछे वह ताकत नहीं है जिसका हम प्रत्यक्ष परिचय दे सकें। इस माँगके अनुसार तो हम ब्रिटेनसे यही उम्मीद रखते हैं कि जिसके साथ उसने अन्याय किया है, उसके साथ वह इस बातका विचार किये बिना न्याय करे कि उसमें उस न्यायके नतीजोंको हजम करने की ताकत है या नहीं। क्या ब्रिटेन लूटी हुई दौलत उसके मालिकको सिर्फ इसी खयालसे लौटा सकेगा कि किसीकी दौलतको लूटना अन्यायपूर्ण था? उसका काम यह सोचना नहीं है कि लूटा गया व्यक्ति इस लायक है भी कि वह लौटाई हुई दौलतको अपने पास सुरक्षित रख सके। यही वजह है कि इस सम्बन्धमें मुझे अराजकता शब्दका प्रयोग करना पड़ा। इस महान नैतिक कार्यसे ब्रिटेनकी नैतिक प्रतिष्ठा इतनी बढ़ जायेगी कि फिर उसकी विजयमें कोई सन्देह न रहेगा। हिन्दुस्तानको खोने के बाद ब्रिटेनको लड़ने की कोई जरूरत रहेगी भी या नहीं, यह सोचना मेरे लिए जरूरी नहीं है। अगर ब्रिटेन हिन्दुस्तानपर अपना अधिकार कायम रखने के लिए ही लड़ रहा है, अपनी प्रतिष्ठाके लिए नहीं तो हमें यह पता चल जाना चाहिए। उस दशामें मेरी माँगमें उतना जोर नहीं रहेगा, लेकिन उसका औचित्य तो बना ही रहेगा।

ऐसी परिस्थितिमें मेरी ईमानदारी और प्रतिष्ठाका यह तकाजा है कि मैं अपनी माँगमें मौजूद दोषका कोई उपाय करूँ। अगर मित्र-राष्ट्रोंकी फौजोंको हिन्दुस्तानसे हटाने की माँगका यह मतलब होता हो कि वे निश्चित रूपसे हार जायेंगे तो मेरी माँग

अप्रमाणिक होने के कारण रद्द कर दी जानी चाहिए। परिस्थितियोंने ही इस माँगको और इसकी सीमाओंको भी जन्म दिया है। अतएव यह तो मान ही लेना चाहिए कि मित्र-राष्ट्रोंकी फौजोंके देशमें रहते और लड़ते हुए अहिंसक प्रतिरोधकी कोई खास सम्भावना नहीं होगी, जैसी कि आज भी नहीं है। क्योंकि जो फौजें आज देशमें मौजूद हैं, वे हमपर अपना पूरा प्रभुत्व जमाये हुए हैं। मगर मेरी माँगके अनुसार ये फौजें राष्ट्रकी शर्तोंके अधीन रहकर लड़ेंगी।

२. अगर ब्रिटेनकी घोषणा प्रमाणिक हुई तो मुझे कोई वजह नहीं मालूम होती कि विदेशी फौजोंकी मौजूदगीसे हमारी सच्ची स्वतन्त्रताकी भावनापर किसी तरहका कोई असर पड़े। पिछले महायुद्धमें जब अंग्रेजी फौजें फ्रान्समें रहकर लड़ रही थीं तो क्या फ्रान्सवालोंने उनके कारण परतन्त्रताका अनुभव किया था? कलका मेरा मालिक यदि आज मेरा बराबरका साथी बनकर मेरी शर्तपर मेरे घरमें रहता है तो निश्चय ही उसकी मौजूदगीसे मेरी स्वतन्त्रतामें कोई फर्क नहीं पड़ सकता। यही नहीं, बल्कि उसकी वैसी उपस्थितिसे मुझे लाभ तक हो सकता है।

३. मेरी योजनाकी तहमें खयाल यह रहा है कि हमें अपनी प्रतिरक्षा या बचावके लिए इन फौजोंकी जरूरत नहीं है। अगर वे यहाँसे चली जायें तो हम अपना प्रबन्ध किसी तरह कर ही लेंगे। सम्भव है कि हम अहिंसक तरीकेसे अपनी रक्षा करें। अगर तकदीर हमारा साथ दे तो मित्र-राष्ट्रोंके हिन्दुस्तानसे हट जाने के बाद और जापानियोंको यह मालूम हो जाने के बाद कि हम उन्हें नहीं चाहते हैं, सम्भव है, जापानी हिन्दुस्तानपर अधिकार करने की कोई जरूरत ही न महसूस करें। लेकिन मित्र-राष्ट्रोंके अपनी इच्छासे और व्यवस्थित रीतिसे या अनिच्छापूर्वक हिन्दुस्तान छोड़ देने पर क्या-क्या हो सकता है, उसकी तो यह सब कल्पना-ही-कल्पना है।

४. हम यह मानकर चलते हैं कि मित्र-राष्ट्र, या कहना चाहिए ब्रिटेन ईमानदारी दिखायेगा। तब सवाल उनको यहाँसे हटाने का नहीं, बल्कि उनके अपने वचनको पूरा करने का होगा। अगर वे विश्वासघात करें तो हममें इतनी अहिंसक या हिंसक शक्ति होनी चाहिए कि हम उनसे उनका वचन पूरा करवा सकें।

५. निश्चय ही आपकी कल्पित परिस्थितियों और इसमें उतना ही फर्क है जितना उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंके बीच है। मेरी माँगका सम्बन्ध उससे है जिसने कब्जा कर रखा है। सुभाषबाबू कब्जा करनेवाले को खदेड़ने के लिए जर्मन फौजें लायेंगे। जर्मनीपर हिन्दुस्तानको गुलामीसे छुड़ाने का कोई दायित्व नहीं है। अतएव सुभाषबाबूकी कार्रवाईसे हिन्दुस्तानकी हालत कड़ाहीसे निकलकर चूल्हेमें गिरने-जैसी हो सकती है। आशा है, लोग इस भेदको स्पष्ट समझ सकेंगे।

६. यह तो जानी हुई बात है कि मौलाना साहब मेरी इस रायसे सहमत नहीं हैं कि कोई देश अपनी रक्षा बिना शस्त्र-बलके कर सकता है। मेरी माँगका आधार यह मान्यता है कि अहिंसक रीतिसे अपने देशकी रक्षा की जा सकती है।

७. आज तो हिन्दुस्तान उतनी ही मदद दे रहा है जितनी मित्र-राष्ट्र वांछनीय समझते हैं, और यह मदद भी उदासीन भावसे दी गई और बेढंगी होती है। स्वतन्त्र हिन्दुस्तान चीनको उसकी आवश्यकताके अनुसार जन और साधन-सामग्रीकी मदद भेज सकता है। एशियाका एक अंग होने से हिन्दुस्तानके मनमें चीनके प्रति जो बन्धु-भाव है, वह मित्र-राष्ट्रोंके मनमें न कभी हो सकता है, न वे उससे लाभ उठा सकते हैं। और कौन जानता है कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान जापानको चीनके साथ न्याय करने के लिए समझाने में सफल न हो?

सेवाग्राम, १२ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-७-१९४२

३३८. पत्र: चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

१२ जुलाई, १९४२

प्रिय सी० आर०,

अपनी कांग्रेस कमेटीके अध्यक्षके नाम तुम्हारा पत्र मुझे बहुत ही पसन्द आया। निस्सन्देह तुम्हारे त्यागपत्रसे तुम्हारा गौरव बढ़ा है।[1]

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०९२) से

३३९. पत्र: जवाहरलाल नेहरूको

सेवाग्राम, वर्धा
१३ जुलाई, १९४२

चि० जवाहरलाल,

मैं प्रस्ताव पढ़ गया हूं। मैं देखता हूं कि तुमने मेरी बातमें से कुछ लेने की कोशीश की है। मैं कोई परिवर्तन नहीं चाहता हूं।

हां मैं इतना जरूर चाहता हूं कि हम सब जहांतक हो सके एक ही मानी इस दरख्वास्तके करें। अलग अलग आवाजसे बोलें तो अच्छा नहीं होगा।

१. देखिए "पत्र: चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको", पृ० ३०६ भी।

जो चीज तुमने अपने बारेमें कही और जिसमें मैंने १६ आना साथ दिया उस पर मैं कायम हूं। बहुत विचार करने पर भी मुझे लगता है कि तुम्हारे निकलने से तुम्हारी सेवाशक्ति बढेगी। और इतना तुमको भी संतोष निकलेगा। जैसे मौके पर मैं कमिटीमें आता रहा हूं, नरेन्द्र देव आ रहे हैं ऐसे तुम भी करोगे और तुमारी भरसक मदद मिलेगी और तुम्हारी आजादी बिलकुल सुरक्षित रहेगी।

मौलाना साहबके बारेमें मेरी यह दरख्वास्त है। मैं पाता हूं कि हम दो एक दूसरोंसे दूर हो गये हैं। मैं उनको नहीं समझता हूं न वे मुझको समझते हैं। हिंदु मुस्लीम मस्लेके बारेमें भी हम दूर जा रहे हैं ऐसे ही बाकी ख्यालोंमें। मुझे कुछ ऐसा भी डर है कि मौलाना साहबको अब कार्रवाई पूरी पसंद नहीं है। इसमें दोष किसीका नहीं है। हकीकत हम पहचानें। इसलिये मेरी दरख्वास्त है कि मौलाना सिदारत छोड़ दे, कमिटीमें रहें, हंगामी सदर कमिटी चुन लेवे और सब एक बनकर चले। यह भारी जंग एकमतके सिवाय और सोलह आना साथ देनेवाले सदर सिवाय काम ठीक नहीं चलेगा।

यह खत मौलाना साहबको भी पढा दो। इस वक्त तो तुम दोनोंके लिये ही है। मेरी एक भी बात और दोनों ठीक न लगे तो उसे फेंक दो मैंने तो सिर्फ खिदमतके भावसे ही लिखा है। कबूल होवे न हो वे उसमें रंज बात है ही नहीं।

तुमारे मस्वीदेमें ए० आइ० सी० सी० की तारीख और जगह नहीं दी गई है।

जहाँतक मेरा तालुक है दरख्वास्त प्रेसमें भेज सकते हो।

प्रस्तावकी बहसके लिये तो यहां आने की भी जरूरत नहीं है। लेकिन जैसा मौलाना साहबका हूकम।

बापुके आ०

मूल पत्रसे : गांधी-नेहरू पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

३४०. भेंट : समाचारपत्रोंको[1]

१४ जुलाई, १९४२

इस सवालका जवाब देते हुए कि क्या आप कांग्रेस कार्य-समितिके प्रस्तावसे सहमत हैं, गांधीजी ने कहा :

यह बताना मुश्किल है। किसी समितिमें काम करते हुए आप अपनी सभी बात नहीं मनवा सकते। अतः आपको समझौता करना पड़ता है। समितिमें यह सब-कुछ हुआ है। अगर मैं तानाशाह होता तो निस्सन्देह प्रस्तावकी भाषा थोड़ी भिन्न होती।

१. इस भेंटकी महादेव देसाई द्वारा लिखित रिपोर्टको, जो *हरिजन* में "वर्धा इन्टरव्यू" शीर्षकसे प्रकाशित हुई थी, *हिन्दू* में प्रकाशित रिपोर्टके साथ मिला दिया गया है।

वास्तवमें कार्य-समितिने मेरे ही मसौदेके आधारपर उसे तैयार किया है, और मैं यह भी कहना चाहूँगा कि उसने मेरे दृष्टिकोणका बहुत खयाल रखा है। यह सम्भव ही नहीं कि लोग, चाहे उनके विचार कितने ही समान क्यों न हों, किसी प्रस्तावके एक-एक शब्द और वाक्यसे सहमत हों। कार्य-समितिने उसे मेरे माफिक करने की यथासाध्य कोशिश की है। इसलिए मुझे पूर्ण सन्तोष अनुभव करना चाहिए।[१]

प्र० : क्या आप यह बता सकेंगे कि आगामी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें कार्य-समितिका यह प्रस्ताव मंजूर हो जाने के बाद आप क्या करेंगे?

उ० : क्या आपका यह प्रश्न थोड़ा असामयिक नहीं है? अगर अ० भा० कांग्रेस कमेटीने इस प्रस्तावको नामंजूर कर दिया तो सारी परिस्थिति ही बदल जायेगी। लेकिन आप यह समझ लीजिए कि जो आन्दोलन छिड़ेगा, वह शुद्ध अहिंसक ढंगका जन-आन्दोलन होगा। अब इसकी तफसीलको आप अपनी कल्पनासे पूरा कर सकते हैं। जन-आन्दोलनमें जो-कुछ हो सकता है, सो सब इस आन्दोलनमें होगा।

प्र० : क्या इसमें शराबकी और विदेशी कपड़ोंकी दुकानें बन्द करने की बात भी शामिल होगी?

उ० : सो तो परिस्थितिपर निर्भर करेगा। मैं नहीं चाहता कि इस आन्दोलनके परिणामस्वरूप देशमें कहीं भी दंगे हों। लेकिन तमाम एहतियातोंके बावजूद अगर दंगे हुए ही तो उसका कोई इलाज नहीं।

प्र० : क्या आप जेल जायेंगे?

उ० : मैं खुद तो जेल जाना पसन्द नहीं करूँगा। इस संघर्षमें जेल जाने की बात शामिल नहीं है। वह तो एक बहुत मामूली बात है। इसमें शक नहीं कि अबतक हमने जेलयात्राको अपना एक कार्यक्रम बनाया था, लेकिन इस बार वैसी कोई बात नहीं होगी। अबकी बार तो मैं सारे आन्दोलनको भरसक बहुत ही थोड़ेमें और जल्दी ही खत्म करना चाहता हूँ।

प्र० : अगर आप जेल भेजे गये तो क्या वहाँ उपवास करेंगे?

उ० : जैसा कि मैं कह चुका हूँ, इस बार मेरा इरादा जेल जाने का नहीं है। लेकिन अगर मुझे जेलमें ठेला ही गया तो कह नहीं सकता कि वहाँ पहुँचकर मैं क्या करूँगा? किन्तु मैं उपवास कर 'सकता' हूँ, जैसा कि पहले भी कर चुका हूँ। वैसे मैं भरसक कोशिश तो यही करूँगा कि ऐसा कोई सख्त कदम मुझे उठाना न पड़े।

प्र० : क्या आपको उम्मीद है कि अंग्रेज सरकार समझौतेकी बातचीत शुरू कर सकती है?

उ० : कर तो सकती है, लेकिन वह किसके साथ करेगी, सो मैं नहीं जानता। क्योंकि अब सवाल इस या उस दलको राजी करने का नहीं है। क्योंकि हमारी माँग

१. ये प्रश्न और उत्तर हिन्दू से लिये गये हैं।

तो यह है कि किसी भी दलकी इच्छाओंका कोई खयाल किये बिना, ब्रिटिश हुकूमत हिन्दुस्तानसे बिना शर्त हट जाये। अतएव यह माँग अपने-आपमें एक न्यायसम्मत माँग है। बेशक, यह हो सकता है कि अंग्रेज हिन्दुस्तानसे हटने के बारेमें वार्ता चलायें। अगर उन्होंने ऐसा किया तो वह उनके लिए शोभाकी बात होगी। उस हालतमें हिन्दुस्तान छोड़कर जाने का मुद्दा मुख्य मुद्दा न रहेगा। अगर ब्रिटेन, विभिन्न पक्षोंका कोई खयाल किये बिना, हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताको मंजूर करने की बुद्धिमत्ता दिखाये, भले ही देरसे ही सही तो सभी कुछ हो सकता है। लेकिन जिस मुद्दे पर मैं जोर देना चाहता हूँ, वह तो यह है कि हिन्दुस्तान छोड़कर जाने के प्रस्तावमें समझौतेकी बातचीतके लिए कोई गुंजाइश नहीं है। या तो वे हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता स्वीकार करें, या न करें। स्वीकृतिके बाद बहुत-सी बातें हो सकती हैं। क्योंकि अपने इसी एक कार्य द्वारा ब्रिटिश प्रतिनिधि पूरी परिस्थिति बदल चुके होंगे, और देशके लोगोंकी उस आशाको फिरसे जिला चुके होंगे जो न जाने कितनी बार चूर-चूर की गई है। इसलिए जब भी ब्रिटिश जनताकी ओरसे वह महान कार्य किया जायेगा, वह दिन हिन्दुस्तान और संसारके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायेगा। और जैसा कि मैं कह चुका हूँ, युद्धके भविष्यपर उसका गहरा प्रभाव पड़ सकता है।

प्र० : हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताको मान लेने पर क्या स्वतन्त्र हिन्दुस्तान तुरन्त ही अपना काम शुरू कर देगा?

उ० : जी हाँ, उसी क्षणसे, क्योंकि यह स्वतन्त्रता कागजी नहीं, असली होगी। लेकिन इसके बाद आप सहज ही दूसरा सवाल यह पूछ सकते हैं कि 'स्वतन्त्र हिन्दुस्तान अपना कामकाज कैसे चलायेगा?' और चूँकि यह गाँठ मौजूद थी, इसी-लिए मैंने कहा था कि 'हिन्दुस्तानको भगवानके या अराजकताके भरोसे छोड़ दो।' लेकिन व्यवहारमें जो होगा, वह यह है कि अगर अंग्रेजोंने पूर्ण सद्भावके साथ सत्ता छोड़ दी तो सारा परिवर्त्तन बिना किसी अशान्तिके हो जायेगा। लोगोंको बिना गड़बड़ मचाये ही अपना प्रबन्ध खुद कर लेना होगा। देशके जिम्मेदार वर्गोंके बुद्धिमान लोग आपसमें मिलेंगे और एक अस्थायी सरकारका निर्माण कर लेंगे। उस दशामें न अराजकता होगी, न व्यवधान, बल्कि सर्वत्र जय-जयकार ही होगा।

प्र० : क्या आपने यह सोचा है कि उस अस्थायी सरकारका स्वरूप कैसा होगा?

उ० : मुझे आज उसकी कोई जरूरत नहीं मालूम पड़ती। लेकिन इतना तो मैं स्पष्ट ही समझता हूँ कि वह किसी एक दलकी सरकार नहीं होगी। कांग्रेस-सहित सभी दल अपने-आप भंग हो जायेंगे। निस्सन्देह बादमें और दल पैदा हो सकते हैं।[1] और तब मुमकिन है कि वे एक-दूसरेके पूरक बनकर काम करें और

१. यह वाक्य हिन्दू से लिया गया है।

अपने विकासके लिए परस्पर आश्रित रहें। कोई भी दल दूसरेको क्षति पहुँचाकर विकसित नहीं हो सकता।[१] उस दशामें, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, तमाम अवास्तविकताएँ उसी तरह गायब हो जायेंगी जिस तरह उगते सूरजके सामने कुहरा गायब हो जाता है — कैसे, सो हम नहीं जानते, हालाँकि इस दृश्यको हम रोज ही देखते हैं।

प्र० : लेकिन अंग्रेजोंके पिछले सारे इतिहासको देखते हुए, क्या यह मुमकिन है कि वे समझौता करने की अक्लमन्दी दिखायें?

उ० : क्यों नहीं? आखिर तो वे भी मनुष्य हैं, और मनुष्य-स्वभावकी ऊर्ध्वगामिताके बारेमें मुझे कभी सन्देह नहीं रहा है। दूसरे, अबतक किसी और राष्ट्रको स्वतन्त्रताके किसी ऐसे आन्दोलनका कभी सामना नहीं करना पड़ा है जो मुख्यतः नहीं, बल्कि पूर्णतः अहिंसक रहा हो।

प्र० : लेकिन आपके प्रस्तावमें एक स्पष्ट अन्तर्विरोध मालूम होता है। शुरूके अनुच्छेदोंमें यह बताया गया है कि ब्रिटिश सरकार हुकूमत छोड़नेको बिलकुल तैयार नहीं है। और फिर अचानक आप उसके बारेमें ऐसी इच्छाकी कल्पना भी करने लगते हैं।

उ० : इसमें कोई असंगति नहीं है। सारी वस्तुस्थितिका ब्योरा तो इसीलिए दिया गया है कि हिन्दुस्तान छोड़ने की माँगकी आकस्मिकता का औचित्य सिद्ध हो सके। दूसरे अनुच्छेदोंमें सम्भावनाओंका जिक्र है। ऐसी कई चीजें हो सकती हैं, और मुमकिन है कि वे सब ब्रिटेनके गौरवको बढ़ानेवाली हों।

प्र० : क्या आपके आन्दोलनसे मित्र-राष्ट्रोंके चीन-सम्बन्धी प्रयत्नोंमें रुकावट नहीं पैदा होगी?

उ० : नहीं, चूँकि आन्दोलनका हेतु तो मित्र-राष्ट्रोंके साथ मिलकर काम करनेका है, इसलिए उसके कारण उनके प्रयत्नोंमें कोई बाधा नहीं पहुँचनी चाहिए।

प्र० : लेकिन अगर अंग्रेज अपनी मर्जीसे नहीं गये तो उपद्रव जरूर होंगे?

उ० : आप जानते हैं कि लोगोंमें सरकारके खिलाफ दुर्भावना तो मौजूद है ही। वह दिन-दूनी बढ़ेगी। लेकिन अगर अंग्रेज सहयोगका रुख दिखायें तो आन्दोलनके शुरू होते ही लोगोंकी दुर्भावना सद्भावनामें बदल सकती है। लेकिन अगर अंग्रेज सहयोगका रुख नहीं दिखाते तो भी, जब एक समूचा राष्ट्र अपनेको विदेशी जुएसे मुक्त करने की कोशिशमें लग जायेगा तो फिर उसकी दुर्भावनाकी अभिव्यक्तिके लिए दूसरे मार्गोंकी कोई जरूरत नहीं रह जायेगी। उस हालतमें आजके अवांछनीय रूपकी जगह वह एक वांछनीय रूप धारण कर लेगा।

यह पूछे जाने पर कि क्या ब्रिटिश सरकारको यह आखिरी मौका दिया जा रहा है, गांधीजी ने कहा :

१. यह वाक्य हिन्दूसे लिया गया है।

यह खुला अहिंसक विद्रोह है। आखिरी मौकेका कोई सवाल पैदा नहीं होता।[1]

प्र० : लेकिन अभी पिछले हफ्ते ही तो श्री एमरीने हमें याद दिलाया है कि सरकार कुछ भी नहीं करेगी।

उ० : मुझे बहुत डर है कि शायद हमारी तकदीरमें अभी इसी चीजको और भी कड़े शब्दोंमें सुनना बदा है। लेकिन इससे उन लोगोंके निश्चयमें कोई परिवर्त्तन नहीं हो सकता जो अपनी राह आगे बढ़ने को कमर कस चुके हैं।

प्र० : आप मित्र-राष्ट्रोंकी सहायता करने के लिए हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता चाहते हैं। तो क्या स्वतन्त्र हिन्दुस्तान अपनी पूरी मानवशक्तिके साथ सशस्त्र युद्धमें भाग लेगा और सर्वांगीण युद्धके तरीकोंको अपनायेगा?

उ० : प्रश्न तो आपका उचित है, लेकिन मैं उसका जवाब नहीं दे सकता। मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान मित्र-राष्ट्रोंके साथ मिलकर काम करेगा। आज मैं यह नहीं कह सकता कि आजाद होने के बाद हिन्दुस्तान फौजी तरीकोंको अपनायेगा या अहिंसाके मार्गपर चलना पसन्द करेगा। लेकिन यह मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि अगर मैं हिन्दुस्तानको अहिंसक बना सका तो मैं निश्चय ही वैसा करूँगा। अगर मैं ४० करोड़ नर-नारियोंको अहिंसक बनाने में सफल हो सका तो वह एक महान चीज होगी, एक आश्चर्यजनक कायाकल्प!

प्र० : लेकिन आप सविनय अवज्ञा द्वारा सशस्त्र युद्ध-प्रयत्नोंका विरोध तो नहीं करेंगे?

उ० : ऐसा कोई खयाल मेरे दिलमें नहीं है। मैं सविनय अवज्ञा द्वारा स्वतन्त्र हिन्दुस्तानकी इच्छाका विरोध नहीं कर सकता। वैसा करना अनुचित होगा।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १९-७-१९४२, और *हिन्दू*, १५-७-१९४२

१. यह अनुच्छेद *हिन्दू* से लिया गया है।

३४१. एक सन्देश

सेवाग्राम, वर्धा
१५ जुलाई, १९४२

यह अवसर ही ऐसा है कि जब—गरीब और धनवान, छोटे-बड़े, स्त्री और पुरुष—हर किसीको देशके लिए चरखा अवश्य कातना चाहिए। यदि देशमें चरखा न हो तो हम सबके नंगे घूमने की नौबत भी आ सकती है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
सुतरने तांतणे स्वराजमें प्रकाशित प्रतिकृति से

३४२. भेंट : विदेशी पत्रकारोंको[1]

वर्धा
[१५ जुलाई, १९४२][2]

स्टुअर्ट एमनी : क्या आप अपने आन्दोलनकी योजनाकी कुछ रूपरेखा मुझे दे सकेंगे? क्या उसमें नमक-कानून तोड़ना और सरकारी कर्मचारियों व मजदूरोंको काम छोड़ने का आह्वान शामिल होगा?

गांधीजी : जैसा कि मैं कल कह चुका हूँ, आन्दोलनके कार्यक्रममें उन सभी शुद्ध अहिंसक कार्रवाइयोंका समावेश होगा जो एक जन-आन्दोलनका अंग हो सकती हैं। इसलिए इसमें कोई शक नहीं कि जिन चीजोंका आपने जिक्र किया है वे उसमें शामिल रहेंगी। लेकिन एकदम कोई अतिशय उग्र कार्यक्रम शुरू करने का मेरा इरादा नहीं है। मैं सावधानीके साथ सारी परिस्थितिको ध्यानमें रखकर ही आगे बढ़ना चाहूँगा, क्योंकि इस आन्दोलनके विरोधमें कुछ भी क्यों न कहा जाये,

१. यह महादेव देसाईके लेख "विद थ्री प्रेस कॉरिस्पॉण्डेंट्स" (तीन पत्र-प्रतिनिधियोंके साथ) से लिया गया है। पत्रकार थे : शिकागो डेली न्यूज के स्टील, न्यूज क्रॉनिकल के स्टुअर्ट एमनी और चीनकी सेन्ट्रल न्यूज एजेंसीके रिचर्ड जेन।

२. महादेव देसाईके अनुसार यह भेंट १४ जुलाईको पत्र-प्रतिनिधियोंके साथ हुई आम भेंटसे अगले दिन हुई थी; देखिए "भेंट: समाचारपत्रोंको", पृ० ३२७-३१।

आन्दोलनका संचालन करते हुए भी मैं ऐसी परिस्थितिसे बचना चाहूँगा जिसमें अचानक अराजकता फूट पड़े या जिसके कारण जापानको हिन्दुस्तानपर हमला करनेका बढ़ावा मिले। मैं जानता हूँ कि हिन्दुस्तानकी माँग बिलकुल मौलिक माँग है, और उसके जिस राष्ट्रीय अस्तित्वकी मैं कल्पना किये हूँ, उसके लिए वह अनिवार्य है। अतएव आन्दोलनको धीमी गतिसे चलानेके लिए जिन एहतियातोंकी जरूरत होगी, उन सबका मैं पूरा खयाल रखूँगा। लेकिन अगर मैंने देखा कि अंग्रेज सरकारपर या मित्र-राष्ट्रोंपर उसका कोई असर नहीं पड़ रहा है तो मैं उसे चरमसीमा तक ले जानेमें भी नहीं झिझकूँगा। हिन्दुस्तानमें जो-कुछ भी होगा, उस सबके लिए मैं उचित रूपसे मित्र-राष्ट्रोंको जिम्मेदार मानूँगा, क्योंकि हमारे समान हितकी दृष्टिसे उनका यह कर्त्तव्य है कि वे ऐसा कोई काम न होने दें जिससे युद्धकी सहज गतिमें बाधा पहुँचे। मैं समझता हूँ कि मैंने आपके अत्यन्त प्रासंगिक प्रश्नका काफी विस्तार से उत्तर दिया है। इससे अधिक विस्तृत उत्तर मैं नहीं दे सकता—सो इसलिए नहीं कि मैं आपसे कोई बात छिपाना या टालना चाहता हूँ, बल्कि इसलिए कि मैं अभी कोई सिलसिलेवार कार्यक्रम तैयार नहीं कर पाया हूँ।

ए० : तो यह आपका सबसे बड़ा आन्दोलन होगा?

गां० : हाँ, मेरा सबसे बड़ा आन्दोलन।

ए० : अगर आपकी माँगका कोई जवाब न मिला तो आन्दोलन शुरू करनेसे पहले आप कितने समयकी मोहलत देंगे?

गां० : मान लीजिए कि अ० भा० कांग्रेस कमेटीने प्रस्तावकी पुष्टि कर दी तो बहुत लम्बा तो नहीं, मगर फिर भी कुछ वक्त तो लगेगा ही। जहाँतक मैं इस वक्तके बारेमें सोच सकता हूँ, यह एक या दो हफ्तेका हो सकता है।

ए० : लेकिन आप मोहलत तो देंगे ही?

गां० : बेशक—अपना हरएक आन्दोलन शुरू करनेसे पहले मैं हमेशा ही मोहलत देता आया हूँ।

ए० : अगर वाइसरायने आपको दिल्ली बुलाया तो क्या आप उनका निमन्त्रण स्वीकार करेंगे?

गां० : हाँ, जरूर करूँगा। और आप यह भूलते हैं कि हम दोनों एक-दूसरेके मित्र हैं, बशर्ते कि एक लोकसेवक और वाइसरायके बारेमें ऐसा कहा जा सके।

ए० : अगर सरकारने आपको और आपके हजारों अनुयायियोंको जेलके अन्दर बन्द कर दिया तो क्या आपका आन्दोलन ठप हो जायेगा?

गां० : मुझे ऐसी उम्मीद नहीं है। इसके विपरीत, अगर उसमें कुछ जान होगी तो वह और भी जोर पकड़ेगा।

ए० : आज जब कि दुश्मन दरवाजेपर खड़ा है, सरकारके साथ लड़ाई रोक देनेमें आपको क्या एतराज है?

गां० : एक भीषण संकटको टालने के खयालसे ही यह लड़ाई सोची गई है। यह बहुत सम्भव है कि ऐन संकटके मौकेपर गुलाम हिन्दुस्तान सहायक होने के बदले बाधक साबित हो। कांग्रेसके प्रस्तावमें ही यह इशारा किया गया है कि अगर जापानी हिन्दुस्तानके किनारे उतरे तो बहुत मुमकिन है कि यहाँके लोग काफी बड़ी तादादमें जापानके साथ मिल जायें। आज हम सब यह जानते हैं कि बर्मा और मलायामें यही हुआ था और, जहाँतक मैं जान पाया हूँ, सिंगापुरमें भी यही हुआ। मेरी अपनी राय यह है कि कमसे-कम जहाँतक बर्माका ताल्लुक है, यह सब रोका जा सकता था, बशर्ते कि उसे आजाद कर दिया जाता। लेकिन ऐसा कुछ किया नहीं गया। नतीजा हमारे सामने है। जहाँतक मनुष्यका बस चल सकता है, हम अपनी आजादी हासिल करने के लिए कमर कस चुके हैं, ताकि कोई भी सच्चा हिन्दुस्तानी जापानके साथ मिलने का खयाल तक अपने मनमें न ला सके। आजादी पाने के बाद जापानके हमलेका अपनी सारी ताकतके साथ विरोध करना हिन्दुस्तानके उतना ही हितमें होगा जितना कि मित्र-राष्ट्रोंके।

ए० : लेकिन यह देखते हुए कि वक्त बहुत ही कम है, क्या आप यह महसूस नहीं करते कि इस आड़े समयमें आपका नैतिक कर्त्तव्य रूस और चीनकी मदद करना है ?

गां० : क्या आप यह नहीं देखते कि अगर यह मात्र एक व्यक्तिगत प्रश्न होता तो आप जो कहते हैं वह पूरी तरह सम्भव था ? लेकिन कांग्रेस कार्य-समितिके सभी सदस्योंके संयुक्त प्रभावसे भी जनसाधारणमें मित्र-राष्ट्रोंके ध्येयके लिए उत्साह पैदा करना असम्भव होता, क्योंकि जनता उनके ध्येयको नहीं समझती, और न समझ सकती है।

ए० : लेकिन मैं खुद यह महसूस करता हूँ कि आप यदि चाहें तो कर सकते हैं। क्योंकि जनतापर आपका जबरदस्त प्रभाव है। वह आपकी बात जरूर ही सुनेगी।

गां० : मैं चाहता हूँ कि आप जिस तरहके प्रभावकी बात कहते हैं, उस तरह का प्रभाव सचमुच मेरा होता। लेकिन मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि वैसा प्रभाव मेरा है नहीं। और इसके समर्थनमें मैं आपके सामने दो ठोस हकीकतें पेश करता हूँ। मेरी इस बातसे तो आप भी सहमत होंगे कि अगर मुझमें वैसा प्रभाव होता तो किसीको जरा भी तकलीफ पहुँचाये बिना हमने अबतक अपनी आजादी हासिल कर ली होती। लेकिन, जैसा कि आप जानते ही हैं, मुस्लिम लीगपर और देशी नरेशोंपर न मेरा और न कांग्रेस कार्य-समितिका ही कोई प्रभाव है। यह एक ठोस हकीकत है। इसके अलावा एक बात और है। शायद आपको मालूम होगा कि पिछले महायुद्धमें मैं अपने तन-मनसे जुट पड़ा था। मैं अपनी इच्छासे अंग्रेजोंका भरती एजेंट बन गया था। और मैंने रंगरूटोंकी भरतीका काम उसी जिलेसे शुरू किया था जहाँ उन्हीं दिनों मैं किसानोंकी तकलीफें मिटाने के लिए काफी सफलताके साथ एक आन्दोलन चलाता रहा था। वहाँ मुझे अपने इस नये काममें खूब सफलता

मिलनी चाहिए थी। लेकिन सच मानिए मैं वहाँ सफल नहीं हुआ। रंगरूट भरती करने के लिए और भरती तत्काल क्यों आवश्यक है, लोगोंको यह समझाने के लिए मैं कड़ी व जलती धूपमें हर रोज मीलों पैदल भटका करता था। लेकिन वह सब व्यर्थ हुआ। इसलिए आप देखेंगे कि बाहरवालोंको मेरा प्रभाव चाहे बहुत ज्यादा मालूम होता हो, लेकिन असलमें वह बहुत ही मर्यादित है। लोगोंकी आम शिकायतोंको दूर कराने के लिए कोई आन्दोलन चलाने में मेरा काफी प्रभाव पड़ सकता है, क्योंकि लोग उसके लिए तैयार रहते हैं और उन्हें एक मददगारकी जरूरत रहती है। लेकिन अगर मैं लोगोंकी शक्तियोंको एक ऐसे मार्गमें लगाऊँ जिसमें उन्हें कोई दिलचस्पी न हो तो वहाँ मेरा कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ेगा।

स्टील : तब आपके खयालसे कौन लोग आपके आन्दोलनमें साथ देंगे?

गां० : काश, मैं आपको इसका कोई निश्चित उत्तर दे सकता! पर आज तो सब-कुछ अनिश्चित है। मैं तो केवल नितान्त विशुद्ध उद्देश्य और उतने ही विशुद्ध अहिंसक साधनोंको आधार बनाकर चल रहा हूँ।

स्टील : क्या आपको यह अन्देशा नहीं है कि कांग्रेस कार्य-समितिके प्रस्तावसे अमेरिकाका लोकमत आपका विरोधी हो जायेगा?

गां० : हाँ, हो तो सकता है। लेकिन मैंने कभी कोई आन्दोलन इस विश्वास पर नहीं चलाया है कि सारी दुनियाकी सहानुभूति मेरे साथ रहेगी। इसके विपरीत, प्राय: हर बार ही परिस्थिति मेरे खिलाफ रही है। दक्षिण आफ्रिकाके मेरे सबसे पहले सत्याग्रह आन्दोलनमें तो बाहरी सभी तत्त्व मेरे विरुद्ध थे। यद्यपि तब सत्याग्रहके संचालनका मुझे आजके-जैसा अनुभव नहीं था तो भी मैंने कहा था कि आज हम मुट्ठी-भर आदमी करोड़ों ऐसे आदमियोंके बीच काम कर रहे हैं जिन्हें हमारे साथ किसी भी तरहकी कोई हमदर्दी नहीं है, लेकिन हमें अपनी आन्तरिक शक्तिपर और अपने उद्देश्यके पूर्ण औचित्यपर भरोसा रखना होगा। और इसी भावनाने हमें आठ सालकी लम्बी यातनाको पार करने की हिम्मत दी। मेरी समझमें नहीं आता कि सिर्फ आजादीकी माँग करने के कारण मैं अमेरिकावालोंकी या अंग्रेजोंकी ही सहानुभूति क्यों खो बैठूंगा। और पूर्ण स्वतन्त्रताकी इस न्यायोचित माँगसे उन्हें इतना क्यों भड़कना चाहिए?

स्टील : एक अमेरिकीकी हैसियतसे मैं कह सकता हूँ कि बहुत-से अमेरिकियोंपर इस प्रस्तावकी प्रतिक्रिया यह होगी कि इस मौकेपर स्वतन्त्रताके लिए आन्दोलन शुरू करने में बुद्धिमानी नहीं है। क्योंकि इससे हिन्दुस्तानमें कई ऐसी जटिलताएँ पैदा हो जायेंगी जो युद्ध-कार्यको अच्छी तरह चलाने में रुकावट पैदा करेंगी।

गां० : यह तो एक अज्ञानमूलक मान्यता है। अगर अंग्रेज सरकार आज यह एलान कर दे कि हिन्दुस्तान बिलकुल स्वतन्त्र है तो इससे कौन-सी आन्तरिक जटिलता पैदा हो जायेगी? मेरी रायमें, युद्ध-प्रयत्नकी दृष्टिसे मित्र-राष्ट्रोंके लिए यह कमसे-कम खतरेकी बात होगी। मैं तो इस बातके लिए तैयार बैठा हूँ कि मुझे इस

सम्वन्धमें समझाया जाये। अगर कोई मुझे यकीन दिला सके कि युद्ध-प्रयासको वाधा पहुँचाये विना युद्धके दौरान अंग्रेज सरकार हिन्दुस्तानकी आजादीका एलान नहीं कर सकती तो मैं उसकी उन दलीलोंको सुनना चाहूँगा। अभीतक तो मैंने ऐसी कोई उपयुक्त दलील सुनी नहीं।

स्टील : अगर कोई आपको इस बातका विश्वास दिला सके तो क्या आप इस आन्दोलनको रोक लेंगे?

गां० : जी हाँ, जरूर। मुझे शिकायत तो यह है कि मेरे ये भले आलोचक मुझपर व्यंग्य करते हैं, मुझे बुरा-भला कहते हैं, लेकिन मेरे साथ बातचीत करने की मेहरबानी कभी नहीं करते।

रिचर्ड जेन : आपको अहिंसामें पूर्ण श्रद्धा है। लेकिन हमारा अनुभव यह है कि जापानियोंके खिलाफ सिर्फ सशस्त्र प्रतिरोध ही सफल हो सकता है।

गां० : चीनने कभी अहिंसाका प्रयोग किया ही नहीं। चीनियोंका कुछ समय तक निष्क्रिय रहना इस बातका सबूत नहीं कि उनका वह रुख अहिंसक था। दुनियाके इतिहासमें पहली बार अहिंसा व्यक्तियों, धर्मानुरागियों और रहस्यवादियोंके दायरेसे निकालकर राजनीतिक क्षेत्रमें लाई गई है और एक बड़े जनसमूहने उसको आजमाया है। जरा सोचिए तो कि कुछ थोड़े-से या लाख-दस लाख हिन्दुस्तानियोंके बजाय अगर पूरे चालीस करोड़ हिन्दुस्तानी अहिंसक हों तो क्या उन चालीस-के-चालीस करोड़ लोगोंको कत्ल करने का निश्चय किये बिना जापानी हिन्दुस्तानमें एक कदम भी आगे बढ़ सकते हैं?

स्टील : यानी अगर हिन्दुस्तानमें चालीस करोड़ गांधी हों तो।

गां० : बस, अब हम मुद्देकी बातपर आये। इसका मतलब यह है कि अभी हिन्दुस्तान पर्याप्त रूपसे अहिंसक नहीं है। अगर हम सभी अहिंसक होते तो यहाँ न तो इतने दल होते और न जापानी आक्रमण ही होता। मैं जानता हूँ कि हमारी अहिंसा संख्या और गुण दोनोंकी दृष्टिसे मर्यादित है। लेकिन इन दोनों मर्यादाओंके रहते हुए भी उसने देशकी जनतापर जबरदस्त असर डाला है और उसमें एक ऐसी जान फूँक दी है जो पहले नहीं थी। ६ अप्रैल, १९१९ को देशमें जो जागृति देखी गई, वह हरएक हिन्दुस्तानीको दंग कर देनेवाली थी। उस समय हिन्दुस्तानके कोने-कोनेसे, जहाँ पहले कभी कोई सार्वजनिक कार्यकर्त्ता पहुँचा तक न था, हमें जो उत्साह-पूर्ण जवाब मिला, उसका आज मैं कोई कारण नहीं दे सकता। उस वक्त तक न तो हम जनताके बीच गये थे और न हम यही जानते थे कि हम उसके पास पहुँच सकते हैं और उससे बातचीत कर सकते हैं।

रि० जे० : स्वतन्त्र हिन्दुस्तान चीनके लिए क्या कर सकता है?

गां० : अगर हिन्दुस्तान मेरी सुनेगा तो वह चीनको अहिंसक मदद देगा। लेकिन मैं जानता हूँ कि ऐसा नहीं होगा। स्वतन्त्र हिन्दुस्तान तो सैन्यवादी बनना चाहेगा। उस हालतमें चीनको आवश्यक युद्ध-सामग्रीकी और आदमियोंकी मदद मिलेगी।

वैसे मालूम यह होता है कि अपनी विपुल जनसंख्याके कारण चीनको आदमियोंकी जरूरत नहीं रहेगी। आज गुलाम हिन्दुस्तान एक भी आदमी चीनकी मददको नहीं भेज सकता। मैं तो इससे भी आगे बढ़कर यह कहता हूँ कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान जापानको समझा भी सकता है, और जापानको उसकी बात सुननी पड़ेगी।

रि० जे० : क्या आप मुझे यह बतायेंगे कि अस्थायी सरकारके गठनमें पहल कौन करेगा — आप, कांग्रेस या मुस्लिम लीग?

गां० : मुस्लिम लीग जरूर कर सकती है, और कांग्रेस भी कर सकती है। अगर सब-कुछ ठीक चला तो संयुक्त नेतृत्व सामने आयेगा। यह नहीं हो सकता कि सिर्फ एक ही दल नेतृत्व करे।

रि० जे० : तो क्या उसकी रचना मौजूदा संविधानके ढाँचेके अन्दर की जायेगी?

गां० : वह संविधान तो मर चुका होगा। १९३५ का भारत सरकार अधिनियम खत्म हो चुका है। इण्डियन सिविल सर्विसवालोंको हट जाना होगा। उसके बाद हो सकता है कि देशमें अराजकता फैल जाये। लेकिन अगर अंग्रेज सद्भावपूर्वक हट जायें तो कोई कारण नहीं कि देशमें अराजकता फैले। स्वतन्त्र हिन्दुस्तानकी सरकार बाहरवालों की किसी दस्तन्दाजीके बिना हिन्दुस्तानकी अपनी प्रतिभाके अनुरूप एक संविधान तैयार कर लेगी। लेकिन तब हिन्दुस्तान स्वायत्त सूबोंमें बँट जायेगा या नहीं, सो मैं नहीं जानता। स्थायी ढाँचा बनने में, मुमकिन है, कुछ देर लगे। शायद वह युद्ध समाप्त होने के बाद ही बने। लेकिन अस्थायी सरकार काम करती रह सकती है। वह कुछ अंशोंमें मौजूदा सरकारके ढंगकी भी हो सकती है, लेकिन फिर भी उसमें जबरदस्त परिवर्त्तन हो चुके होंगे। दोनों कौमें निश्चय ही एकदिल होकर काम करेंगी। वह एकता ऊपरसे लादी हुई नहीं, बल्कि आन्तरिक प्रयत्नोंका परिणाम होगी। हमारी समझदारी ही एकताका कारण होगी — बाहरकी कोई ताकत नहीं। और मैं मानता हूँ कि ऐसी समझदारीका परिचय हम भरपूर देंगे।

रि० जे० : तो क्या फिर वाइसराय वाइसराय नहीं रह जायेंगे?

गां० : उस हालतमें भी हम मित्र रहेंगे, लेकिन वह मित्रता बराबरीकी होगी। मुझे इसमें शक नहीं कि लॉर्ड लिनलिथगो उस दिनका स्वागत करेंगे जिस दिन वे देशकी जनतामें से एक होंगे।

ए० : ब्रिटिश हुकूमतके बिना हटे आज ही यह सब क्यों नहीं हो सकता?

गां० : इसका जवाब तो बिलकुल सीधा है। एक कैदी वह काम क्यों नहीं कर सकता जो एक स्वतन्त्र आदमी कर सकता है? आप तो शायद जेलके सीखचोंके अन्दर कभी बन्द नहीं हुए होंगे, लेकिन मैं हुआ हूँ और मैं जानता हूँ। जेल-जीवनका अर्थ है, नागरिकके नाते मनुष्यकी मृत्यु। और मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि

नागरिकके नाते सारा हिन्दुस्तान मरा पड़ा है। ब्रिटिश सरकार उसके श्वासोच्छ्वासका भी नियमन करती है। इसके अलावा एक अनुभव और है-जो आपको न हुआ होगा। आप सदियोंतक गुलाम रहनेवाले राष्ट्रके नागरिक नहीं रहे हैं। हमारी यह आदत बन गई है कि हम कभी आजाद नहीं हो सकते। श्री सुभाष बोसकी मिसाल आपके सामने है ही। उनका त्याग महान रहा है। अगर वे इण्डियन सिविल सर्विसमें रहते तो वहाँ बहुत नाम कमाते। लेकिन आज वे देशसे निर्वासित हैं, क्योंकि वे इस असहाय अवस्थाको सह नहीं सकते और वे यह महसूस करते हैं कि इसका प्रतिरोध करने के लिए उन्हें जर्मनी और जापानकी मदद लेनी ही चाहिए।

प्र० :[1] आपने कहा है कि समझौतेकी चर्चाके लिए अब कोई गुंजाइश नहीं रही है। क्या इसका मतलब यह है कि आप समझौतेकी किसी भी कोशिशकी उपेक्षा करेंगे?

गां० : जहाँतक हमसे इसका ताल्लुक है, हमने अपने हृदयके कपाटोंको बन्द कर लिया है। जैसा कि हमने अपने प्रस्तावमें कहा है, हमारी सारी उम्मीदोंपर पानी फिर गया है। अब जिम्मेदारी सरकारके कंधोंपर है। लेकिन अमेरिका, इंग्लैण्ड, चीन और रूस चाहें तो आज भी आजादीके लिए तड़प रहे हिन्दुस्तानकी वकालत कर सकते हैं। अगर कोई स्वीकार करने योग्य प्रस्ताव पेश किया गया तो निश्चय ही कांग्रेस या कोई भी दूसरी पार्टी उसपर विचार कर सकती है और उसे स्वीकार भी कर सकती है। हमारे लिए यह कहना निरी नादानी होगी कि 'हम किसीसे कोई चर्चा करना नहीं चाहते, और हम अपने ही दृढ़ संकल्पसे अंग्रेजोंको निकाल बाहर करेंगे।' अगर ऐसा ही होता तो कार्य-समितिकी बैठकें क्यों होतीं, प्रस्ताव पास करनेकी भी क्या जरूरत रहती, और मैं पत्रकारोंके साथ बातचीत भी क्यों करता?

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २६-७-१९४२

३४३. तार: पद्मपत सिंहानियाको

१६ जुलाई, १९४२

आपके पत्र टंडनजीके सामने रखे गये। उन्होंने आपके पत्रोंसे गलत अर्थ निकालनेकी मेरी भूल स्पष्ट दिखा दी है। इसका साफ अर्थ यह है कि आपका दान विशुद्ध रूपसे राष्ट्रभाषा-समितिको सिर्फ हिन्दी [प्रचार] के लिए दिया गया था। अन्य लोग भी यही अर्थ

१. यह प्रश्न तीनों पत्रकारों द्वारा पूछा गया था।

निकालते हैं। इसलिए मैंने सारा पैसा [राष्ट्रभाषा] समितिके नाम जमा कर दिया है।[1]

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

३४४. पत्र: अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
१६ जुलाई, १९४२

चि० अमृत,

आज अपेक्षाकृत चैन है। सभी बैठकें और पत्र-प्रतिनिधियोंसे भेंट समाप्त हो गई हैं। मेरी सारी थकान और शारीरिक दुर्बलता जाती रही है। चिन्ताका कोई कारण नहीं है। यह परिवर्तन, मेरे खयालसे, दूधकी मात्रा बढ़ा देने से आया है। रोटी और मक्खन मैंने छोड़ दिया है।

यदि शम्मी चाहते हैं कि १५ अगस्त तक तुम वहीं रहो तो तुम रह सकती हो। इस बीच कुछ भी असाधारण घटने की सम्भावना नहीं है।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६९०) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६४९९ से भी

३४५. पत्र: रथीन्द्रनाथ ठाकुरको

सेवाग्राम
१६ जुलाई, १९४२

प्रिय रथी,

तुम्हारे पत्रका उत्तर देने में काफी देर हो गई है। पर मुझे एक क्षणका भी समय नहीं था। अब पहलेसे कुछ फुर्सत है। या तो एक दिनके लिए तुम ही वर्धा आ जाओ, ताकि हम विचार कर सकें कि धनका उपयोग किन-किन कामोंमें किया जाये; या फिर तुम अपने सुझाव लिखकर भेज दो, जिन्हें मैं न्यासियोंको भिजवा दूंगा। इससे भी बेहतर यह होगा कि तुम अपने सुझाव मेरे देखने के लिए मेरे पास

१. देखिए "पत्र: पद्मपत सिंहानियाको", पृ० ३४०।

भेज दो और यदि मैं उन्हें अपनी स्वीकृति दे देता हूँ तो तुम उन सुझावोंको अन्य लोगोंमें वितरित कर दो। इस तरह तुम मेरी मेहनत बचा सकते हो।

आशा है, तुम स्वस्थ होगे।

तुम सबको प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

३४६. पत्र: पद्मपत सिंहानियाको

सेवाग्राम
१६ जुलाई, १९४२

भाई पदमपतजी,

आपके खतोंका उत्तर मैंने जानबूझकर रोका। टंडनजी यहां आनेवाले थे। मैं उनसे मिल लेना चाहता था। क्योंकि वे हिं[दी] सा[हित्य] सं[मेलन] के प्राणदाता हैं। हिंदी संबंधी प्रश्नोंमें उनको साथ लेकर चलने की कोशिश करता हूं। मैंने आपके सब खत उनके सामने रखे। थोडी प्रस्तावना की। उनका अभिप्राय रहा कि आपके पत्रोंका एक ही ध्वनि था यह कि आपका सब राष्ट्रभाषा समितिको सिर्फ हिंदी प्रचारके लिये था। दूसरे सभ्योंको भी पत्र बताए। उनका अभिप्राय भी वही था। बादमें समितिके चोपडे[1] देखकर जमनालालजी की नोंघ मुझे टंडनजी ने बताई तब तो कोई बात ही नहीं रही। मेरी मूर्खता ही रही और मूर्खतावश मैंने आपको कष्ट दिया। क्षमा करें। टंडनजी का तो मैं आभारी ही हूं कि उन्होंने मेरी आंख खोली और मूर्खताका दर्शन कराया। मूर्खता यों हुई कि जमनालालजी की इच्छा समझने की झंझटमें मैं पड़ा उसी दृष्टिसे आपके खतोंसे मनमाना अर्थ निकाला। अब सब पैसे राष्ट्रभाषा प्रचारके नामसे जमा करा देता हूं।

दूसरी बात है हिंदुस्तानी प्रचार सभामें आपका नाम रखने की। मंत्रीको आपने पत्र लिखा है वह मैंने पढ़ा नहीं था। टंडनजी ने बताया कि उससे सिद्ध होता है कि सभ्य होने की आपकी इच्छा नहीं है, सिर्फ मेरे आग्रहके वश होना चाहते हैं। ऐसा आग्रह करने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। इसलिए आप चाहें तो आपका नाम कटवा दूं।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

मैंने तार[2] भी भेजा है जिसकी नकल इसके साथ है।

पत्रकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

१. बहियाँ
२. देखिए पृ० ३३८-३९।

३४७. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
१७ जुलाई, १९४२

चि० अमृत,

तुम्हारा पत्र मिला।

अ० भा० कांग्रेस कमेटीका अधिवेशन बम्बईमें हो रहा है। तुम चाहो तो आ सकती हो। मैं ४ तारीखको या ३ को ही वहाँ पहुँचने की आशा कर रहा हूँ।

पी०[1] को बुखार चढ़ा है—१०३° है। मूत्राशयमें कुछ खराबी है।

आसफ अली चले गये, क्योंकि उनकी तबीयत ठीक नहीं थी। पर वे प्रस्तावके 'विरुद्ध' हैं? मौलानाका वक्तव्य तो तुमने देखा ही होगा।

प्रस्तावका[2] मसौदा मेरा है। जवाहरलालके, और मौलानाके भी, सन्तोषके लिए उसमें परिवर्त्तन किये गये हैं।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६९१) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६५०० से भी

३४८. पत्र : जे० सी० कुमारप्पाको

१७ जुलाई, १९४२

प्रिय कु०,

बेशक तुम शनिवारको भोजन और यथासम्भव कमसे-कम बातचीत करने आ रहे हो। भोजनपर सीमा नहीं है!!!

मुझे ४ तारीखको या हो सका तो एक दिन पहले ही बम्बई पहुँचना है। इसलिए बैठक २ तारीखसे पहले या मेरे बम्बईसे लौटने के बाद होनी चाहिए।

सप्रेम,

बापू

१. प्यारेलाल
२. मसौदे और पारित प्रस्तावके लिए देखिए पृ० ३१४-१६ और परिशिष्ट ६।

[पुनश्च :]

हिन्दी और उर्दूमें कितनी प्रगति हुई?

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०१६६) से

३४९. पत्र : भगवानदासको

सेवाग्राम
१७ जुलाई, १९४२

बाबूजी,

आपका खत पढ़ा। इतनी अवस्थामें आप जो कष्ट उठाते हैं मैं आश्चर्यचकित होता हूं। अगर मैं आपको संतोषजनक उत्तर भेज सकूं तो मुझे बहुत सुख होगा। लेकिन मैं लाचार हूं। मेरेमें जो नहीं है सो कहांसे निकालूं?

वर्किंग कमेटीसे तो स्वराजकी योजना मिल ही नहीं सकती है। जो आप चाहते हैं सो तो नहीं दे सकूंगा। लेकिन मेरी कल्पना हरिजनमें देने की चेष्टा करुंगा।

आपने जो पुस्तक इतने प्रेमसे भेजा सो पूरा तो देख ही नहीं सकता था। लेकिन मैंने उसका परिचय एक अंश तक करा लिया।

आपका,
मो० क० गांधी

डा० भगवानदास
सिगरा
काशी

पत्रकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

३५०. प्रश्नोत्तर

ग्राम-स्वराज्य

प्र० : हिन्दुस्तानमें किसी भी क्षण जो परिस्थिति पैदा हो सकती है, उसको मद्दे नजर रखकर क्या आप एक ऐसी ग्राम-स्वराज्य समितिकी रूपरेखा या ढाँचा पेश करेंगे जो गाँवोंके सभी मामलोंमें, किसी ऊपरी प्रशासन या संस्थाके अभावमें और उसपर किसी तरह निर्भर न रहते हुए भी, अपना काम कर सके? खास तौरपर आप ऐसा क्या प्रबन्ध करेंगे जिससे समितिको गाँवका पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व प्राप्त रहे और वह निष्पक्ष भावसे, कुशलतापूर्वक, किसी की भी राजी-नाराजीको परवाह

किये बिना अपना काम कर सके? उसके अधिकार-क्षेत्रकी क्या मर्यादा होगी और उसके आदेशोंका पालन कराने के लिए कौन-सा तन्त्र काम करेगा? और वह कौन-सा तरीका होगा जिससे समूची समिति या उसके सदस्य भ्रष्टाचार, अक्षमता अथवा दूसरी अयोग्यताके कारण हटाये जा सकें?

उ० : ग्राम-स्वराज्यकी मेरी कल्पना तो यह है कि वह एक ऐसा पूर्ण गण-तन्त्र होगा जो अपनी अहम जरूरतोंके लिए अपने पड़ौसीपर भी निर्भर न करेगा, और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतोंके लिए, जिनमें दूसरोंका सहयोग अनिवार्य हो, परस्पर सहयोगसे काम करेगा। इस तरह हरएक गाँवका पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरतका तमाम अनाज और कपड़ेके लिए कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास इतनी फाजिल जमीन होनी चाहिए जिसमें ढोर चर सकें और गाँवके बूढ़ों व बच्चोंके लिए मनबहलावके साधन और खेल-कूदके मैदान वगैरहका बन्दोबस्त हो सके। इसके बाद भी जमीन बची तो उसमें वह ऐसी 'उपयोगी' फसलें बोयेगा जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके, पर वह गाँजा, तम्बाकू, अफीम वगैरहकी खेतोंसे बचेगा। गाँवकी अपनी नाटकशाला, पाठशाला और सभाभवन रहेगा। पानीके लिए उसकी अपनी व्यवस्था होगी, जिससे शुद्ध पानी मिला करेगा। कुओं या तालाबोंपर नियन्त्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीमके आखिरी दर्जेतक की शिक्षा सबके लिए लाजिमी होगी। जहाँतक हो सकेगा, गाँवके सारे काम सहयोगके आधारपर किये जायेंगे। जात-पाँत और अस्पृश्यताके जैसे भेद आज हमारे समाजमें पाये जाते हैं, वैसे इस ग्राम-समाजमें बिलकुल नहीं रहेंगे। सत्याग्रह और असहयोगकी तकनीकवाली अहिंसा ही ग्रामीण समाजका शासन-बल होगी। ग्राम-रक्षकोंका एक ऐसा दल रहेगा, जिसे लाजिमी तौरपर, बारी-बारीसे, गाँवके पहरेका काम करना होगा। इसके लिए गाँवमें ऐसे लोगोंका एक रजिस्टर रखा जायेगा। गाँवका शासन चलाने के लिए गाँवके पाँच आदमियोंकी एक पंचायत होगी, जिसके लिए न्यूनतम निर्धारित योग्यतावाले गाँवके बालिग स्त्री-पुरुष हर साल अपने पंच चुनेंगे। इन पंचायतोंको सब प्रकारकी आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे। चूँकि इस ग्राम-स्वराज्यमें दण्डकी, आजके प्रचलित अर्थोंमें, कोई व्यवस्था नहीं होगी, इसलिए यह पंचायत अपने एक सालके कार्य-कालमें स्वयं ही धारा-सभा, न्यायपालिका और कार्यपालिकाका सारा काम करेगी। आज भी अगर कोई गाँव चाहे तो वह अपने यहाँ इस तरहका गणतन्त्र कायम कर सकता है। उसके इस काममें मौजूदा सरकार भी ज्यादा दस्तन्दाजी नही करेगी, क्योंकि उसका गाँवसे जो-कुछ भी प्रभावकारी सम्बन्ध है, सो सिर्फ मालगुजारी वसूल करने तक ही है। यहाँ मैंने इस बातका विचार नहीं किया है कि इस तरहके गाँवका उसके अपने पास-पड़ौसके गाँवके साथ या केन्द्रीय सरकारके साथ, अगर वैसी कोई सरकार हुई तो क्या सम्बन्ध रहेगा। मेरा आशय तो ग्राम-शासनकी एक रूपरेखा पेश करना ही है। यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रतापर आधारित एक पूर्ण प्रजातन्त्र होगा। यहाँ व्यक्ति ही अपनी सरकारका निर्माता होगा। उसकी सरकार और वह दोनों अहिंसाके नियमके अनुसार चलेंगे।

अपने गाँवके साथ वह सारी दुनियाकी शक्तिका मुकावला कर सकेगा, क्योंकि हर ग्रामवासीके जीवनका सबसे बड़ा नियम यह होगा कि वह अपनी और अपने गाँवकी इज्जतकी रक्षाके लिए मर मिटे।

इन पंक्तियोंको लिखते हुए मेरे मनमें जो सवाल उठ रहा है, वही सवाल पाठक भी मुझसे पूछ सकते हैं, अर्थात् यह कि अपनी इस तसवीरका-सा रूप मैं सेवाग्रामको क्यों नहीं दे पाया हूँ। मेरा जवाब यह है कि मैं कोशिश कर रहा हूँ। सफलताकी एक धुंधली-सी झाँकी मुझे मिलती है, लेकिन मैं प्रत्यक्षमें कुछ भी दिखा नहीं सकता। किन्तु जो चित्र यहाँ प्रस्तुत किया गया है, उसमें असम्भव-जैसी कोई चीज नहीं है। ऐसे एक गाँवको तैयार करने में, सम्भव है, एक आदमीकी पूरी जिन्दगी खप जाये। सच्चे प्रजातन्त्रका और ग्राम-जीवनका कोई भी प्रेमी एक गाँवको लेकर बैठ सकता है और उसीको अपनी सारी दुनिया मानकर उसके काममें जुट सकता है। निश्चय ही उसे इसका अच्छा फल मिलेगा। वह गाँवके भंगी, कतैये, चौकीदार, वैद्य और शिक्षकका काम एक साथ शुरू करके इस दिशामें अपना प्रयत्न आरम्भ करेगा। अगर गाँवका कोई आदमी उसके पास न फटका तो भी वह सन्तोषके साथ अपने सफाई और कताईके काममें जुटा रहेगा।

सेवाग्राम, १८ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २६-७-१९४२

३५१. हर जापानीसे[1]

शुरूमें ही मुझे यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि यद्यपि आपके लिए मेरे मनमें कोई दुर्भाव नहीं है तो भी चीनपर आपके हमलेको मैं बहुत ही नापसन्द करता हूँ। अपनी महानताके ऊँचे शिखरसे आप साम्राज्यवादी आकांक्षाके गर्तमें उतर पड़े हैं। आप अपनी इस महत्त्वाकांक्षाको तो सफल न कर सकेंगे, मगर हो सकता है कि आप एशियाके विखण्डनके प्रणेता बन जायें। इस तरह अनजाने ही आप उस विश्व-संघ और विश्वबन्धुत्वकी स्थापनामें बाधक होंगे जिसके बिना मानवताके लिए कोई आशा नहीं रह जाती।

आपके राष्ट्रके अनेक उत्तम गुणोंका मैं पिछले पचास-पचपन बरसोंसे प्रशंसक रहा हूँ। जब मैं अठारह सालका लड़का ही था और लन्दनमें पढ़ता था, तभी मैंने स्वर्गीय सर एडविन आर्नेल्डकी रचनाओं द्वारा आपके इन गुणोंको सराहना सीख

१. यह अपील तीन जापानी समाचारपत्रों — निची निची, योमीउरी और मियाको में प्रकाशित हुई थी।

लिया था। जब दक्षिण आफ्रिकामें मैंने सुना कि आपने रूसी फौजोंपर विजय प्राप्त की है तो मैं हर्षसे गद्गद् हो उठा था। सन् १९१५ में दक्षिण आफ्रिकासे हिन्दुस्तान लौटनेके बाद मैं उन जापानी भिक्षुओंके निकट सम्पर्कमें आया जो समय-समय पर हमारे आश्रममें आकर आश्रमवासीकी तरह रहते थे। उनमें से एक तो सेवाग्राम आश्रमके बहुमूल्य सदस्य ही बन गये थे, और अपनी कर्त्तव्यपरायणता, शालीनता, नियमित दैनिक उपासना, मिलनसारी, विभिन्न परिस्थितियोंमें शान्त रहनेकी प्रवृत्ति और अपनी उस सहज मुसकानके कारण, जो उनकी आन्तरिक शान्तिका अचूक प्रमाण थी, हम सबके प्रिय हो गये थे। अब, ग्रेट ब्रिटेनके साथ आपके युद्धकी घोषणाके कारण, वे हमसे दूर भेज दिये गये हैं और हम उन्हें अपने एक प्रिय साथी कार्यकर्त्ताके नाते बराबर याद करते हैं। अपनी स्मृतिके रूपमें वे हमारे पास अपनी दैनिक प्रार्थना और अपना छोटा ढोल छोड़ गये हैं, और इस ढोलके वादनके साथ ही अब हमारी सुबह-शामकी प्रार्थना आरम्भ होती है।

इन सुखद स्मृतियोंकी पृष्ठभूमिमें जब मैं चीनपर आपके अकारण आक्रमणका खयाल करता हूँ, और यदि प्राप्त समाचार सच हैं तो उस महान व प्राचीन देशको जिस निष्ठुरताके साथ आप ध्वस्त कर रहे हैं उसका खयाल करता हूँ तो मुझे बेहद रंज होता है।

संसारकी दूसरी महान शक्तियोंकी बराबरीमें बैठने की आपकी महत्त्वाकांक्षा उचित ही थी। लेकिन चीनपर आक्रमण करके और धुरी-राष्ट्रोंके गुटमें शामिल होकर निश्चय ही आपने अपनी उस महत्त्वाकांक्षाके अनावश्यक अतिरेकका परिचय दिया है।

मैं तो यह सोचता था कि चीन-जैसे महान और प्राचीन राष्ट्रको, जिसके प्राचीन साहित्यको आपने अपना साहित्य माना है, अपने पड़ौसीके रूपमें पाकर आप गर्व अनुभव करेंगे। एक-दूसरेके इतिहास, परम्परा और साहित्यको समझनेके कारण होना तो यह चाहिए था कि आप दोनों आजकी तरह एक-दूसरेके दुश्मन न होकर मित्र होते।

अगर मैं स्वतन्त्र होता और आप मुझे अपने मुल्कमें आने देते तो दुर्बल होने पर भी, मैं अपने स्वास्थ्यकी और प्राणोंकी भी परवाह न करके आपके देशमें पहुँचता और आपको उस अन्यायसे विमुख होनेके लिए समझाता जो आप आज चीनके साथ, दुनियाके साथ और फलतः अपने साथ कर रहे हैं।

लेकिन आज मैं उतना स्वतन्त्र नहीं हूँ। और आज हमारी हालत यह है कि हमें एक ऐसे साम्राज्यवादका विरोध करना पड़ रहा है जिसे हम आपके साम्राज्यवाद और नाजीवादसे किसी भी कदर कम नापसन्द नहीं करते। ब्रिटिश साम्राज्यवादका विरोध करके हम ब्रिटिश जनताको कोई नुकसान पहुँचाना नहीं चाहते हैं। हम तो उनका हृदय-परिवर्त्तन करना चाहते हैं। ब्रिटिश हुकूमतके खिलाफ हमारी बगावत एक निःशस्त्र बगावत है। हिन्दुस्तानका एक महत्त्वपूर्ण दल विदेशी शासकोंके साथ एक भीषण किन्तु मित्रतापूर्ण लड़ाई लड़ने में लगा है।

लेकिन अपने इस कार्यमें उसे किसी विदेशी सत्ताकी सहायताकी जरूरत नहीं है। अगर आपका यह खयाल हो—जैसा कि मेरी जानकारी के मुताबिक है—कि हमने यह खास समय, जब कि हिन्दुस्तानपर आप हमला किया ही चाहते हैं, मित्र-राष्ट्रोंको परेशान करने के लिए ही चुना है तो मैं कहूँगा कि आपका यह खयाल बिलकुल गलत है। अगर हम ब्रिटेनके संकटसे लाभ उठाना चाहते तो करीब तीन साल पहले ही, जब लड़ाई छिड़ी ही थी, हम वैसा कर सकते थे।

ब्रिटिश हुकूमतको हिन्दुस्तानसे हटाने के हमारे आन्दोलनका कोई गलत अर्थ नहीं लगाना चाहिए। सच तो यह है कि हिन्दुस्तानकी आजादीके बारेमें आपकी चिन्ताके जो समाचार हमें मिले हैं वे यदि विश्वसनीय हों तो ब्रिटेन द्वारा हिन्दुस्तानकी आजादीको मान लेने के बाद आपके पास हिन्दुस्तानपर हमला करने का कोई बहाना नहीं रह जाना चाहिए। इसके अलावा आपकी इस तथाकथित चिन्ताका चीनपर आपके क्रूर आक्रमणोंके साथ कोई मेल नहीं बैठता।

मैं आपसे यह कह देना चाहता हूँ कि अगर आप यह मानते हों कि लोग हिन्दुस्तानमें आपका खुशी-खुशी स्वागत करेंगे तो निश्चित मानिए कि आपको निराशा ही मिलेगी। अंग्रेजोंको हिन्दुस्तानसे हटाने के आन्दोलनका लक्ष्य और उद्देश्य तो यह है कि हिन्दुस्तानको स्वतन्त्र बनाकर इस लायक बनाया जाये कि वह सब प्रकारकी सैन्यवादी और साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाका डटकर मुकाबला कर सके, फिर चाहे वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद हो, चाहे जर्मन नाजीवाद हो, चाहे आपके साँचेमें ढला हुआ कोई वाद हो। अगर हम ऐसा नहीं करते तो अपनी इस आस्थाके बावजूद कि अहिंसा ही सैनिक वृत्ति और महत्त्वाकांक्षाका एकमात्र उपचार है, हम दुनियाके बढ़ते हुए सैन्यीकरणके असहाय और हीन दर्शक बनकर ही रह जायेंगे। व्यक्तिगत रूपसे मुझे इस बातका डर है कि हिन्दुस्तानकी आजादीका एलान किये बिना मित्र-राष्ट्र धुरी-राष्ट्रोंके गुटको, जिसने हिंसाको धर्मका-सा गौरव दे दिया है, हराने में कभी समर्थ नहीं हो सकेंगे। मित्र-राष्ट्र आपको और आपके साथियोंको तबतक हरा नहीं सकते, जबतक क्रूरता और युद्ध-कौशल्यमें भी वे आपको पछाड़ न दें। अगर वे आपके इन तरीकोंका अनुकरण करेंगे तो निश्चय ही उनकी इस घोषणाका कोई अर्थ नहीं रह जायेगा कि वे संसारको प्रजातन्त्र और व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यके लिए बचाना चाहते हैं। मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि उनके लिए आपकी क्रूरताके अनुकरणसे बचने की शक्ति प्राप्त करने का बस एक ही उपाय है, और वह यह कि वे 'इसी क्षण' हिन्दुस्तानकी आजादीका एलान करें और उसे स्वीकार करें, ताकि असन्तुष्ट हिन्दुस्तानसे जबरदस्ती प्राप्त किया जानेवाला सहयोग स्वतन्त्र हिन्दुस्तानके स्वेच्छापूर्ण सहयोगमें बदल सके।

ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रोंसे हमने न्यायके नामपर, उनके अबतक के दावोंके सबूतके तौरपर, और उनके अपने हितकी खातिर अपील की है। आपसे मैं मानवताके नामपर अपील करता हूँ। मुझे यह देखकर ताज्जुब होता है कि आप यह नहीं

समझ पा रहे हैं कि क्रूरतापूर्ण युद्ध किसी एककी बपौती नहीं है। अगर मित्र-राष्ट्र आपको न हरा सकें तो दूसरी कोई ताकत आपके तरीके से बढ़िया तरीके निकालकर आपके ही हथियारसे आपको हरा देगी। अगर आप जीत भी गये तो अपने देशवासियोंके लिए ऐसी कोई विरासत नहीं छोड़ जायेंगे जिसपर वे गर्व कर सकें। इन क्रूर कर्मोंका स्तुतिगान करने में उन्हें गर्व अनुभव नहीं हो सकेगा, फिर भले ही आपके ये क्रूर कर्म कितनी ही निपुणताके साथ क्यों न किये गये हों।

अगर आपकी जीत भी हुई तो उससे यह साबित नहीं होगा कि आपका पक्ष सही था। उससे तो सिर्फ यही साबित होगा कि आपकी संहारक-शक्ति श्रेष्ठ थी। स्पष्ट ही यह बात मित्र-राष्ट्रोंपर भी लागू होती है — बशर्ते कि वे हिन्दुस्तानको 'अभी' स्वतन्त्र करने का न्याय्य और पुण्य कार्य, जो एशिया और आफ्रिकाके दूसरे सभी पराधीन देशोंको भी इसी तरह स्वतन्त्र करने की पूर्वसूचना और वचन होगा, न करें।

ब्रिटेनसे जो अपील हमने की है, उसमें हमने यह भी कहा है कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान मित्र-राष्ट्रोंको अपनी फौजें हिन्दुस्तानमें रखने देगा। हमारी यह तजवीज इस बातका सबूत है कि हम मित्र-राष्ट्रोंको उनके कार्यमें किसी प्रकारकी हानि पहुँचाना नहीं चाहते। अपनी इस तजवीजके जरिये हम आपको यह भी जताना चाहते हैं कि कहीं भूलसे आप यह न समझ लें कि ब्रिटेनके हटते ही आप आसानीसे हिन्दुस्तानमें अपना आसन जमा सकेंगे। यहाँ यह दोहराने की तो जरूरत ही नहीं कि अगर आपने ऐसा कोई खयाल अपने दिलमें रखा और उसपर अमल किया तो हमारा देश जितनी भी ताकत बटोर सकेगा उतनी ताकतके साथ आपका मुकाबला करने में हरगिज न चूकेगा। मैं आपसे यह अपील इस आशाके साथ कर रहा हूँ कि सम्भव है, हमारे इस आन्दोलनका आपपर और आपके साथियोंपर भी सही असर पड़े और वह आपको व आपके साथियोंको उस मार्गसे विमुख कर दे जो नैतिक दृष्टिसे सचमुच आपके सर्वनाशका कारण बनेगा और जिससे मनुष्य मनुष्य नहीं रह जायेंगे बल्कि हृदयहीन जड़यन्त्र बन जायेंगे।

अपनी अपीलका ब्रिटेनकी ओरसे जवाब मिलने की मुझे जितनी आशा है, उसके मुकाबले आपकी ओरसे जवाब मिलने की आशा बहुत ही कम है। मैं जानता हूँ कि अंग्रेजोंमें न्याय-बुद्धिका नितान्त अभाव नहीं है और वे मुझे पहचानते भी हैं। मगर मैं आपको इतना नहीं जानता कि आपके बारेमें कोई राय बना सकूँ। आपके विषयमें जितना-कुछ मैंने पढ़ा है, उससे तो मुझे यही मालूम हुआ है कि आप तलवारको छोड़ और किसीकी नहीं सुनते। काश, यह सब गलत हो और ये सारी बातें आपको बदनाम करने के लिए ही लिखी गई हों, और मैं आपके हृदयके किसी सही तारको छू सकूँ! कुछ भी हो, मनुष्य-स्वभावकी संवेदनशीलतामें मेरा अटूट विश्वास है। अपने इसी विश्वासके बलपर मैंने हिन्दुस्तानमें जल्दी ही शुरू होनेवाले एक

आन्दोलनकी कल्पना की है, और इसी विश्वासने मुझे आपके नाम यह अपील करनेको प्रेरित किया है।

आपका मित्र और शुभचिन्तक,
मो० क० गांधी

सेवाग्राम, १८ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २६-७-१९४२

३५२. अपने आलोचकोंसे

जो आलोचक कार्य-समितिकी या मेरी नीयतपर शक करते हैं, वे जिस हेतुको सिद्ध करने का दावा करते हैं, उसीको नुकसान पहुँचा रहे हैं। कार्य-समितिके सभी सदस्य राष्ट्रके मँजे हुए सेवक हैं और वे अपनी जिम्मेदारीको पूरी तरह समझते हैं। मुझे हेर हिटलरका-सा डिक्टेटर कहकर बदनाम करने में कोई सार नहीं है। हिटलर अपने साथी कार्यकर्त्ताओंके साथ — अगर उनके ऐसे कोई साथी माने जायें तो — तर्क नहीं करते। वे तो सिर्फ हुक्म जारी करते हैं, जिनके अनादरका फल मौत या उससे भी बदतर कोई सजा हो सकती है। मैं अपने मित्रोंके साथ कई-कई दिनतक तर्क करता हूँ। कार्य-समितिकी पिछली बैठकमें मैं बराबर आठ दिनतक उन्हें अपनी बात समझाता रहा। सदस्योंने मेरी बात तभी मानी जब वह उनकी बुद्धिको जँच गई। अपने मित्रोंपर या अपने स्वयंभू शत्रुओंपर अगर मेरा कोई प्रभाव रहा है तो वह हमेशा प्रेम और विवेकका ही रहा है। अतएव हिटलरके साथ मेरी तुलना करना या डिक्टेटर शब्दके प्रचलित अर्थोंमें मुझे डिक्टेटर कहना सत्यका मजाक उड़ाना है। इसी तरह कांग्रेसको हिन्दू या साम्प्रदायिक संस्था कहना भी सत्यका उपहास करना ही है। कांग्रेस पूर्णतः राष्ट्रीय है। वह एक शुद्ध राजनीतिक संस्था है, और उसकी लिबरल दलके साथ निश्चय ही तुलना की जा सकती है, जो साम्प्रदायिकताके दोषसे बिलकुल मुक्त है। यह दुर्भाग्यपूर्ण मगर मानी हुई बात है कि आज देशमें इस दलके बहुत ही थोड़े या नहींके बराबर अनुयायी हैं, क्योंकि इसके सदस्योंकी राय अकसर आम जनताकी रायसे मेल नहीं खाती, हालाँकि इनमें कई ऐसे राजनीतिज्ञ हैं जिन्होंने देशकी उत्तम सेवा की है। इस तरह हिन्दुस्तानमें कांग्रेस ही एक ऐसी प्रतिनिधि राष्ट्रीय संस्था रह जाती है जिसे विशाल जन-समर्थन प्राप्त है। कांग्रेसको जो-कुछ मिलता है, वह सिर्फ कांग्रेसका ही नहीं रहता, बल्कि जात-पाँत, धर्म या नस्लके भेदभावके बिना समूचा राष्ट्र उससे लाभ उठाता है। अतएव कांग्रेसको अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेनमें साम्प्रदायिक या धुरी-राष्ट्रोंकी पक्षपातिनी या शुद्ध हिन्दू संस्थाके नामसे बदनाम करना, दुष्टतासे काम लेना और लोगोंको गुमराह करना है। अगर कांग्रेस धुरी-राष्ट्रोंकी पक्षपातिनी होती तो

वह इतना साहस और प्रभाव रखती है कि परिणामकी परवाह किये बिना खुले तौरपर इस बातका एलान कर देती। कांग्रेस कोई गुप्त या हिंसक संस्था नहीं है, और न कभी वह ऐसी संस्था रही है। अगर वह इस प्रकारकी संस्था होती तो आजसे बहुत पहले ही कुचल दी गई होती।

यह तो प्रकट मिथ्या प्रचारकी बात हुई।

अब हम इस बातपर विचार करें कि कांग्रेसकी वास्तविक स्थितिको छिपाया जाता है।

आजतक यह तो किसीने नहीं कहा है कि हिन्दुस्तानसे ब्रिटिश हुकूमतको हटा लेने की माँग करना देशका स्वयंसिद्ध अधिकार नहीं है—फिर चाहे कुछ लोग, जो सदियोंसे गुलाम रहने के कारण स्वतन्त्रताकी भावनासे ही वंचित हो चुके हैं, उसके विरुद्ध ही माँग क्यों न करें। कहा यह जाता है कि अपने-आपमें तो यह माँग अनुचित नहीं, लेकिन चूँकि कांग्रेस सरकारको परेशान न करनेका एलान कर चुकी है, इसलिए इस मौकेपर अंग्रेजोंको हिन्दुस्तानसे हटने के लिए कहना मुनासिब नही है।

आलोचक जान-बूझकर यह बताना भूल जाते हैं कि अपनी सचाईका सबूत देने के लिए और जापानी हमलेको रोकने के लिए कांग्रेसने यह मंजूर किया है कि अंग्रेजी हुकूमतके हट जाने पर भी स्वतन्त्र हिन्दुस्तानकी सरकारके साथ की गई एक सन्धिके अधीन मित्र-राष्ट्रोंकी फौजें हिन्दुस्तानमें रह सकती हैं। जबतक कोई अस्थायी या दूसरे प्रकारकी सरकार नहीं बन जाती, तबतक उनकी अपनी ईमानदारीके सिवा मित्र-राष्ट्रोंकी फौजी कार्रवाइयोंको रोकनेवाली कोई सत्ता देशमें नहीं होगी। क्योंकि हिन्दुस्तानकी आजादीका एलान कर देने के बाद वे किसीकी भी औपचारिक सलाह लेने की जिम्मेदारीसे बरी हो जायेंगे, जब कि आज उन्हें अपने नामजद सदस्योंकी सलाह लेनी पड़ती है। इस दृष्टिसे हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताकी घोषणा कर देने के बाद वे ज्यादा आजादीके साथ अपनी जरूरतके अनुसार फौजी कार्रवाई कर सकेंगे। मैं जानता हूँ कि किसी भी स्वतन्त्र देशके लिए ऐसी स्थितिमें रहना एक अजीब-सी बात है। लेकिन हमारी ईमानदारीका यही तकाजा है। जैसा कि मैं कह चुका हूँ और यहाँ फिर दोहराता हूँ, कांग्रेसकी माँग बिलकुल निर्दोष है। जो आलोचक मित्र-राष्ट्रोंकी सहायता करने को उत्सुक हैं, उनके लिए बेहतर यह होगा कि वे कांग्रेसकी स्थितिका आलोचनात्मक दृष्टिसे अध्ययन करें, और अगर उसमें कोई दोष हों तो उन्हें दिखायें। यहाँ मैं उन्हें यह बता दूँ कि जो लोग मेरे पास मेरी माँगका अर्थ समझने के लिए आये हैं, और जिनके मनमें उसके बारेमें गम्भीर कुशंकाएँ थीं, वे मुझसे बातचीत करने के बाद यह विश्वास लेकर लौटे हैं कि यह माँग पूर्णतया न्यायोचित है और अगर न्याय न किया गया तो कांग्रेस अपनी स्थितिकी सुरक्षाके लिए आन्दोलन शुरू करके उचित ही करेगी।

सेवाग्राम, १९ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २६-७-१९४२

३५३. प्रश्नोत्तर

विधान-सभाके एक हरिजन सदस्यके पाँच सवाल

प्र० १ : भविष्यमें जो संविधान बननेवाला है, उसमें हरिजनोंकी स्थिति क्या रहेगी?

२. क्या आप कांग्रेसको और सरकारको यह सलाह देंगे कि वे पंचायत बोर्डसे लेकर स्टेट कौंसिल तक, हर कहीं, आबादीके हिसाबसे सीटोंकी संख्या रखी जानेकी बात स्वीकार कर लें?

३. क्या आप कांग्रेसको और प्रान्तीय विधान-सभाओंके बहुमतवाले दलोंके नेताओंको यह सलाह देंगे कि वे विधान-सभाके अनुसूचित जातियोंके उन्हीं सदस्योंको मन्त्रिमण्डलमें स्थान दें जिन्हें ऐसे सदस्योंके बहुमतका विश्वास प्राप्त हो?

४. हरिजनोंकी पिछड़ी हुई स्थितिको ध्यानमें रखकर क्या आप सरकारको यह सलाह देंगे कि वह अधिनियममें ऐसी गुंजाइश रखे जिससे लोकल बोर्डों और म्युनिसिपल कौंसिलोंमें अलग-अलग जातियोंके सदस्य बारी-बारीसे कार्यकारिणीके पदाधिकारी बन सकें और इस तरह हरिजनोंको अध्यक्ष बननेके मौके मिल सकें?

५. आप जिला कांग्रेस कमेटियोंसे लेकर कार्य-समितितक कांग्रेसकी सभी समितियोंमें हरिजनोंके लिए सीटोंका एक अनुपात निश्चित क्यों नहीं कर देते?

उ० १ : जिस संविधानके बनानेमें मैं अपना कोई प्रभाव डाल सकूँगा, उसमें इस आशयकी एक धारा होगी कि किसी भी रूपमें अस्पृश्यताका पालन गुनाह समझा जाये। सभी निर्वाचित समितियोंमें तथाकथित 'अस्पृश्यों' के लिए, उस निर्वाचन-क्षेत्रमें उनकी आबादीके हिसाबसे, सीटें सुरक्षित होंगी।

२ : ऊपर जो कहा है, उसमें इस सवालका जवाब आ जाता है।

३ : इस तरहकी सलाह मैं नहीं दे सकता। यह सिद्धान्त खतरनाक है। जिन वर्गोंकी देशने आजतक उपेक्षा की है, उनकी रक्षाके उपायोंको इस हदतक नहीं ले जाना चाहिए कि उनसे खुद उनको और देशको नुकसान पहुँचे। मन्त्रिमण्डलका सदस्य तो वही हो सकता है जो ऊँचे दर्जेका व्यक्ति हो और सबका विश्वासपात्र हो। किसी निर्वाचित समितिमें स्थान पानेके बाद व्यक्तिको अपनी सच्ची योग्यता और लोकप्रियता द्वारा ही वांछित पदोंको प्राप्त करना चाहिए।

४: पहली बात तो यह कि मुझे इस अधिनियममें, जो रद्द-सा ही है, किसी तरहकी कोई दिलचस्पी नही है। लेकिन ऊपर जो-कुछ मैंने कहा है, उसकी वजहसे मैं आपके इस सुझावका विरोधी हूँ।

५: ऊपर दिये गये कारणोंसे मुझे आपके इस सुझावपर भी आपत्ति है। लेकिन मैं यह जरूर चाहूँगा कि कोई ऐसी अनिवार्य व्यवस्था बन जाये जिससे कांग्रेसके रजिस्टरमें जितने हरिजनोंके नाम दर्ज हों उनके हिसाबसे कांग्रेसकी बड़ी-बड़ी निर्वाचित समितियोंमें हरिजन सदस्य चुने जा सकें। यदि हरिजनों की कांग्रेसमें इतनी भी दिलचस्पी नहीं है कि वे उसके चौअन्निया सदस्य बन जायें तो उन्हें उसकी निर्वाचित समितियोंमें स्थान पाने की आशा नहीं करनी चाहिए। लेकिन कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओंको मैं आग्रहपूर्वक यह सलाह दूँगा कि वे हरिजनोंके पास जायें और उन्हें कांग्रेसके सदस्य बनने के लिए समझायें।

सेवाग्राम, १९ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २-८-१९४२

३५४. मुसलमान भाइयोंके लिए

'हरिजन' में छपे मेरे लेखका[1] कायदे-आजमने जो जवाब दिया है उसे मैं गौरसे पढ़ गया हूँ। उनके अनुसार "संक्षेपमें, पाकिस्तानकी माँगका अर्थ यह है कि हिन्दुस्तानके एक हिस्सेको अलग करके उसे एक बिलकुल स्वतन्त्र और प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य माना जाये।"[2] यह कल्पना की जा सकती है कि यह प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य उस राज्यके खिलाफ, जिसका कलतक यह खुद अंग था, लड़ाई ठान सकता है। साथ ही, यह दूसरे राज्योंके साथ सन्धियाँ भी कर सकता है। निश्चय ही यह सब किया जा सकता है, लेकिन बाकी देशकी राजी-रजामन्दीसे हरगिज नहीं।

लेकिन मालूम होता है कि कायदे-आजम रजामन्दीसे यह सब लेना नहीं चाहते। क्योंकि वे कहते हैं:

> "हिन्दुस्तानके मुसलमानोंके लिए पाकिस्तान धार्मिक श्रद्धाका विषय है, और उस ध्येयकी प्राप्तिके लिए हम सिवा अपने और किसीपर निर्भर नहीं करते।"

ऐसी हालतमें कोई अपनी सेवाएँ देना चाहे तो कैसे दे?

लेकिन आगे चलकर वे मुझे आशा दिलाते हैं, क्योंकि वे कहते हैं: "एक सम्मानपूर्ण समझौतेके लिए अपनी सचाई और साफगोईका परिचय दीजिए।" इन

१. देखिए "मुसलमान पत्र-लेखकोंसे", पृ० ३०७-९।

२. शब्द गांधीजी के हैं (देखिए "प्रश्नोत्तर", उप-शीर्षक "आन्ध्रका पृथक्करण" पृ० ३०५)। जिन्नाने इन्हें उद्धृत करते हुए कहा था, "उन्होंने खुद ही मुसलमानोंकी माँग संक्षेपमें रख दी है।"

दोनों बातोंका परिचय देने के लिए ही तो मैंने वह लेख लिखा था जिसपर कायदे-आजमने एतराज किया है। अपने काम, अपनी जबान या अपनी कलमके सिवा और किस तरह आदमी अपनी सचाई और साफगोईका परिचय दे?

यहाँ मैं अपनी सीमाएँ बता दूँ। मैं महज एक हिन्दूके नाते बोल नहीं सकता, क्योंकि मेरे हिन्दुत्वमें सभी धर्मोंका समावेश है। मैं तो सिर्फ एक हिन्दुस्तानीकी हैसियतसे ही बोल सकता हूँ। अगर ऊपरकी परिभाषावाला पाकिस्तान उनके लिए धार्मिक श्रद्धाका विषय है तो अखण्ड हिन्दुस्तान मेरे लिए उतना ही धार्मिक श्रद्धाका विषय है। इसीलिए गतिरोध है।

लेकिन आज तो न पाकिस्तान है, न हिन्दुस्तान। जो है, सो इंग्लिस्तान है। इसीलिए मैं सारे देशसे कहता हूँ कि आओ, पहले हम मुल्कको असली हिन्दुस्तान बना लें, फिर जो अलग-अलग दावे हैं, उन सबको आपसमें निबटा लेंगे। यह तो बिलकुल साफ है। जब राष्ट्रको अपना हिन्दुस्तान वापस मिल जायेगा तो कोई केन्द्रीय सरकार नहीं रहेगी। देशके प्रतिनिधियोंको ही उस सरकारका निर्माण करना होगा। उस हालतमें यहाँ एक हिन्दुस्तान हो सकता है या कई पाकिस्तान हो सकते हैं।

अगर कायदे-आजम सचमुच ही समझौता चाहते हैं तो मैं तो उसके लिए उधार खाये बैठा हूँ और यही हाल कांग्रेसका है। कायदे-आजम मुझे माफ करें अगर मै यह कहूँ कि उनके जवाबसे मनपर यह असर पड़ता है कि वे कोई समझौता नहीं चाहते। अगर वे समझौता चाहते हैं तो कांग्रेस-अध्यक्षकी इस तजवीजको क्यों नहीं मान लेते कि कांग्रेस और लीगके प्रतिनिधि आपसमें मिलें और उस वक्ततक एक-दूसरेसे जुदा न हों जबतक कि कोई समझौता न हो जाये? क्या इस तजवीजमें कोई खराबी है या सचाईकी कमी है?

सेवाग्राम, २० जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २६-७-१९४२

३५५. पण्डित काचरूका निर्वासन

पण्डित काचरू देशी राज्य प्रजा परिषदके एक बहुत ही जाने-माने कार्यकर्त्ता हैं। जब जोधपुरमें श्री जयनारायण व्यासने भूख-हड़ताल शुरू की तो अध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरूने उन्हें इस हेतुसे जोधपुर भेजा कि वे वहाँ जाकर घटनाओंका निरीक्षण करें और मुझे अपना ब्योरा भेजें। गत ५ जुलाईको रातके ११ बजकर ४० मिनटपर पण्डित काचरूको जोधपुर दरबारका वह हुक्म दिखाया गया जिसके मुताबिक उन्हें दूसरे दिन सुबह सवा सात बजेकी गाड़ीसे जोधपुर छोड़ देना था। ऐसा क्यों और किसलिए किया गया, सो पण्डित काचरू नहीं जानते, अधिकारी ही जानते होंगे। उन्होंने फोनपर मेरा आदेश चाहा। महादेव देसाईने फोनके जवाबमें उन्हें सलाह दी कि वे हुक्मकी तामील करें और अपनी रिपोर्ट पेश करें। श्री काचरू अब वर्धा आ गये हैं और जोधपुरमें वे जहाँतक निरीक्षण कर पाये वहाँतककी रिपोर्ट तैयार करने में लगे हुए हैं।

हुक्म निम्न प्रकार है:

> जोधपुर दरबारको प्राप्त समाचारोंसे यह विश्वास हो गया है कि द्वारकानाथ काचरू (नाम) का रवैया ऐसा है जिससे सार्वजनिक सुव्यवस्थामें और युद्धके कामको अच्छी तरह चलाने में बाधा पहुँचती है।
>
> उक्त द्वारकानाथ काचरूको उनकी इस कार्रवाईसे रोकने के लिए जोधपुर दरबार, जोधपुर राज्यकी सीमामें प्रचलित भारत रक्षा कानूनकी २६ (१) (अ) धाराकी रूसे प्राप्त अपने अधिकारोंके अनुसार, यह हुक्म जारी करता है कि उक्त द्वारकानाथ काचरू अपनेको मारवाड़से हटा लें और ता० ६-७-४२ को सुबह सवा सात बजे जो एक अप गाड़ी जोधपुरसे (मारवाड़ जंकशनके रास्ते) रवाना होती है, उसपर सवार हो जायें; और उक्त द्वारकानाथ काचरू इस हुक्मकी तारीखसे एक सालतक मारवाड़ वापस न आयें।
>
> जोधपुरके पुलिस-महानिरीक्षकको हिदायत दी जाती है कि वे इस हुक्मकी तामील फौरन करायें।

इससे जो महत्त्वपूर्ण सवाल पैदा होता है वह यह है कि देशी रियासतें अपनी हदसे बाहर रहनेवाले लोगोंको कबतक विदेशी मानती रहेंगी और कबतक उनके साथ ऐसा मनमाना व्यवहार करती रहेंगी जैसा कि जोधपुरके हाकिमोंने किया है? और कबतक उन्हें इस तरहके व्यवहारको बरदाश्त करते रहना चाहिए? इस मामलेमें कांग्रेसने बहुत ज्यादा संयमसे काम लिया है। उसके कार्यकर्त्ता इससे बेहतर व्यवहारके अधिकारी हैं। अगर जोधपुरके अधिकारियोंके पास अपने हुक्मके लिए कोई

उचित कारण हैं तो उन्हें चाहिए कि वे सार्वजनिक रूपसे उन कारणोंको प्रगट करें। यह बात ऐसी नहीं है जो भुलाई जा सके। पण्डित काचरूको वापस जोधपुर जाने की अनुमति मिलनी ही चाहिए, अथवा उनके निर्वासनका कोई सन्तोषजनक कारण दरबारकी ओरसे दिया जाना चाहिए।

सेवाग्राम, १२ जुलाई, १९४२

[पुनश्च :]

ऊपरकी पंक्तियाँ लिख चुकने के बाद जोधपुरसे जो खबरें मिली हैं, उनसे मालूम होता है कि वहाँ इस बीच कई घटनाएँ घट चुकी हैं। सौभाग्यसे उपवासका अन्त सन्तोषजनक हुआ है। लेकिन खबर है, दमन अपनी स्वच्छन्द चालसे चल ही रहा है। मैं यहाँ उसका ब्योरा नहीं दूँगा। मुझे पता चला है कि जोधपुर दरबारने मेरे पिछले लेखका खुलकर उपयोग किया है, क्योंकि उसमें कुछ ऐसे बयान हैं जिनमें दरबारके कुछ कामोंकी, जो सराहने योग्य लगे थे, सराहना की गई है। इधर मुझे कुछ ऐसे रोष-भरे पत्र मिले हैं जिनमें खास तौरपर श्री श्रीप्रकाशके इस कथनका खण्डन किया गया है कि बालमुकुन्द बीसाकी मौत दरबारके किसी दुर्व्यवहारके कारण नहीं हुई। ये पत्र-लेखक कहते हैं कि चूँकि श्री श्रीप्रकाशको ज्यादा वक्त नहीं मिला, इसलिए वे गलत खयाल लेकर लौटे। मैंने इन पत्र-लेखकोंसे प्रमाण माँगे हैं। अगर वे मुझे मिले तो उनको एकदम प्रकाशित करने के बदले मैं पहले उन्हें अधिकारियोंके पास भेजना चाहूँगा। मैं तो यही आशा कर सकता हूँ कि श्री श्रीप्रकाश पर जो अनुकूल छाप पड़ी है, उसे जोधपुरके अधिकारी अपनी किसी कार्रवाईसे गलत साबित नहीं होने देंगे। अगले हफ्ते मैं लोक-परिषदकी सीधी-सादी माँगोंकी चर्चा करने की आशा रखता हूँ।

सेवाग्राम, २० जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २६-७-१९४२

३५६. अहिंसक आन्दोलनमें उपवासका स्थान

जिस संघर्षको हम अपनी पूरी ताकतसे टालना चाह रहे हैं, अगर वह आ ही गया, और अगर उसे अहिंसक रहना है, जैसा कि उसके सफल होने के लिए आवश्यक है तो उसमें उपवासके महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने की सम्भावना है। सरकारके साथ संघर्षमें उसका अपना स्थान और अगर देशमें निरंकुश हिंसा फूट पड़ी या मनमानी जिदके कारण दंगे जोर पकड़ गये तो अपने भाइयोंके साथ संघर्षमें भी उसका स्थान है।

उपवास राजनीतिक संघर्षका एक अंग बने, इसके खिलाफ लोगोंके दिलमें एक स्वाभाविक पूर्वग्रह है। धार्मिक कार्योंमें इसका एक सर्वमान्य स्थान है। लेकिन राजनीतिमें आम राजनीतिज्ञ इसे एक भद्दा क्षेपक समझते हैं, गोकि राजबन्दी अव्यवस्थित

ढंगसे इसका बराबर उपयोग करते आये हैं और उसमें उन्हें थोड़ी-बहुत सफलता भी मिली है। किन्तु उपवासके जरिये आम जनताका ध्यान अपनी तरफ खींचने में और जेलके अधिकारियोंकी शान्ति भंग करने में वे हमेशा कामयाब हुए हैं।

मैं यह मानता हूँ कि मेरे अपने उपवास हमेशा सत्याग्रहके कड़े नियमके अधीन ही हुए हैं। दक्षिण आफ्रिकामें साथी सत्याग्रहियोंने भी मेरे साथ पूरे या अधूरे उपवास किये थे। मेरे उपवास अनेक तरहके रहे हैं। १९२४ में हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए २१ दिनका उपवास दिल्लीमें स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अलीके घरपर शुरू हुआ था। १९३२ में मैक्डॉनल्डके साम्प्रदायिक निर्णयके विरुद्ध यरवडा जेलमें अनिश्चित कालके लिए उपवास शुरू किया गया था। आत्मशुद्धिके लिए किया गया २१ दिनका उपवास यरवडा जेलमें ही शुरू हुआ था और लेडी ठाकरसीकी पर्णकुटीमें टूटा था, क्योंकि सरकार उस हालतमें मुझे जेलके अन्दर रखने की जिम्मेदारी उठाना नही चाहती थी। इसके बाद १९३३ में यरवडा जेलमें एक और उपवास शुरू हुआ। उस उपवासका कारण यह था कि सरकारने मुझे जेलके अन्दरसे 'हरिजन' के जरिये (जो जेलसे ही निकलता था) अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन चलाने की इजाजत नही दी थी। चार महीने पहले इसी कामके लिए सरकारने मुझे जो सहूलियतें दी थीं, वे इस बार नहीं दी गई थीं। सरकारने मेरी माँग तो मंजूर नहीं की, लेकिन जब उसके डाक्टरोंने उसे सलाह दी कि अगर मैंने उपवास न छोड़ा तो मैं ज्यादा दिन जिन्दा नही रह सकूँगा तो उसने मुझे जेलसे रिहा कर दिया। इसके बाद १९३९ में राजकोटका दुर्भाग्यपूर्ण उपवास शुरू हुआ। उस उपवासके दौरान जो एक भूल मैं बिना विचारे कर गया, उसने उसकी सफलतापर पानी फेर दिया। अगर वह भूल न होती तो शानदार सफलता निश्चित थी। इन सब उपवासोंके बावजूद, उपवासको अभीतक सत्याग्रहके एक अंगके रूपमें स्वीकार नहीं किया गया है। राजनीतिज्ञ उसे बस बर्दाश्त ही करते रहे हैं। लेकिन मुझें तो इस निष्कर्षपर पहुँचना पड़ा है कि आमरण उपवास सत्याग्रहके कार्यक्रमका एक अभिन्न अंग है, और कुछ परिस्थितियोंमें तो सत्याग्रहके शस्त्र-भण्डारका वही सबसे बड़ा और अमोघ शस्त्र होता है। लेकिन हर कोई उसका प्रयोग नहीं कर सकता। प्रयोग करने से पहले उसका विधिवत प्रशिक्षण लेना जरूरी है।

जिन परिस्थितियोंमें उपवासका आश्रय लिया जा सकता है, इस लेखमें उन सबकी छानबीन करके और उपवासके लिए आवश्यक प्रशिक्षणकी चर्चा करके मैं इसे लम्बा करना नही चाहता। अपने क्रियात्मक पक्ष परोपकारके रूपमें, (मैंने जान-बूझकर 'परोपकार' शब्दका उपयोग किया है, 'प्रेम' का नहीं, क्योंकि 'प्रेम' शब्दकी अब वह प्रतिष्ठा नहीं रही) अहिंसा सबसे बड़ी शक्ति है, क्योंकि उससे, अपकारीको किसी प्रकारकी शारीरिक या भौतिक हानि पहुँचाने का इरादा किये बिना, आत्म-पीड़नका इतना अवसर मिलता है जिसकी हद नही। ध्येय हमेशा यही रहता है कि अपकारीके उत्तम गुणोंको जगाया जाये। आत्म-पीड़न उसकी दैवी वृत्तियोंको जगाता है, जब कि प्रतिशोध उसकी आसुरी वृत्तियोंको जगाता है। उचित परिस्थितियोंमें उपवास इस तरहकी एक सर्वश्रेष्ठ अपील है। अगर राजनैतिक मामलोंमें

राजनीतिज्ञको इसकी उपयोगिता दिखाई नहीं देती तो वह इसलिए कि इस बढ़िया शस्त्रका यह एक अनूठा प्रयोग है।

सांसारिक मामलोंमें अहिंसाका पालन करने से ही उसका सच्चा मूल्य जाना जा सकता है। पृथ्वीपर स्वर्ग इसी तरह आ सकता है। दरअसल परलोक नामकी कोई चीज नहीं है। सभी लोक एक हैं। 'इहलोक' और 'परलोक'-जैसी कोई बात नहीं है। जैसा कि जीन्सने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिखाया है, यह सारा विश्व, जिसमें दुनियाकी बढ़ियासे-बढ़िया दूरबीनसे भी न देखे जा सकनेवाले अति सुदूर नक्षत्रतक शामिल हैं, एक छोटे-से परमाणुमें समाया हुआ है। इसलिए अहिंसाके उपयोगको गुफावासियोंतक और परलोकमें श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने की पुण्य-साधना तक ही सीमित रखना मैं अनुचित समझता हूँ। जिसका जीवनके हरएक क्षेत्रमें उपयोग न हो सकता हो, वह सद्‌गुण सद्‌गुण ही नहीं। इसलिए मैं शुद्ध राजनीतिक वृत्ति रखनेवाले लोगोंसे अनुरोध करूँगा कि वे अहिंसाका और उसकी चरम अभिव्यक्ति उपवासका सहानुभूति और समझके साथ अध्ययन करें।

सेवाग्राम, २० जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २६-७-१९४२

३५७. पत्र : नजीर अहमदको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
२० जुलाई, १९४२

प्रिय फकीरसाहब,

आपका कृपा-पत्र मिला। शक दूर हो जाने पर मेरा या कांग्रेसका रवैया बदलने का तो सवाल ही नहीं है। दोनों किसी भी क्षण लीगके साथ प्रचलित शर्तोंपर मामला निपटाने को तैयार हैं, अर्थात् यदि समझौता न हो सके तो पंच-फैसला।

जहाँतक मेरा सवाल है, मैंने यह कहा है कि यदि मुझे पाकिस्तानके आन्तरिक स्वरूपका पता चल जाये और यदि वह मेरी न्यायकी धारणाको सन्तुष्ट कर सके तो मैं पाकिस्तानको स्वीकार कर लूँगा। मेरी टिप्पणीका कायदे-आजमने जो जवाब दिया वह तो आपने देखा ही होगा। पाकिस्तानकी उनकी परिभाषा जिस तरह मुझे स्वीकार नहीं है उसी तरह आपको भी नहीं होगी।[1]

१. देखिए पृ० ३५१-५२।

यदि कोई सम्मानजनक सहमति हो सके तो निस्सन्देह बहुत-सी चीजें सम्भव हैं। सर्वश्रेष्ठ सम्भावनाका तो कोई अन्त ही नहीं है।

आपके पत्रकी बाकी बातोंका जवाब देने की जरूरत नहीं है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे: गांधी-सप्रू पेपर्स। सौजन्य: नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता

३५८. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम, वर्धा
२० जुलाई, १९४२

चि० अमृत,

पत्र लिखनेके लिए मुझे एक क्षणका भी समय नहीं मिलता। 'हरिजन' और मुलाकातें सारा समय ले लेती हैं।

जो प्रश्न तुमने दोहराया है उसका उत्तर तो मैं दे चुका हूँ। तुम बम्बई आकर मेरे साथ हो सकती हो। किन्तु तुम्हारे १५ अगस्त तक शिमला रहने से यदि श[म्मी] ज्यादा खुश रहते हैं तो तुम्हारी जगह होने पर मैं तो वहीं रहता। बम्बईमें तुम्हें कुछ नहीं मिलना है। पर मैं यह बात पूर्णतया तुम्हीं पर छोड़ता हूँ। जिससे तुम्हें खुशी हो तुम वह कर सकती हो।

मीरा अभी दिल्लीमें ही है और अच्छा कार्य कर रही है। पी० की तबीयत आज पहलेसे अच्छी है। सुशीला उसके लिए आज आनेवाली है। मेरा वजन इस हफ्तेमें दो पौंड बढ़ गया है। यह वृद्धि दूधकी मात्रा बढ़ा देनेके ही कारण हुई है।

आशा है, शम्मीकी हालत अब बेहतर होगी और तुम घुटनेका अपना दर्द वहीं छोड़ आओगी।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१४०) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ७४४९ से भी

३५९. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

सेवाग्राम, वर्धा
२० जुलाई, १९४२

प्रिय सी० आर०,

मैं तुम्हें पत्र लिखने ही वाला था कि तुम्हारा पत्र[1] आ गया।

अपने पत्रमें तुमने आरम्भसे अन्ततक बहुत सुन्दर ढंगसे मेरा जो लिहाज किया है, निःसन्देह, मैं उसे समझता हूँ तथा उसकी सराहना करता हूँ। तुम चारोंको मैं यहाँ आने और अपना प्रेम उँडेलकर तथा अपने तर्क पेश करके तुम्हें जो गलत राह लगती है उससे मुझे हटाने के लिए आमन्त्रित करता हूँ। वैसे भी तुम्हारा माहवार आगमन तो बाकी है ही। तुम जिस दिन चाहो आ सकते हो।

मैं तुम्हें जिस विषयमें लिखना चाहता था वह यह है। समझौतेके अपने विचारके प्रचारके लिए तुम मुसलमान दोस्तोंके साथ एक संघ क्यों नहीं बना लेते?[2] मेरी टिप्पणीका कायदे-आजमने जो जवाब दिया वह तुमने देखा है?[3] पाकिस्तानकी उनकी परिभाषाको क्या तुम स्वीकार करते हो?

स्वाधीनताके बारेमें समान विचार क्या है?[4] किसी समझौतेपर पहुँचने से पहले निश्चय ही मूल सिद्धान्तोंपर मतैक्य तो होना ही चाहिए।

जापानियोंके डरसे तुम्हें ऐसी स्थितिमें नहीं पड़ना चाहिए जो और भी खराब हो।

पर इस विषयमें और सब बातें तुम्हारे आने पर होंगी।

तुम सबको स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० १०९२२) से; सौजन्य : सी० आर० नरसिंहन्। इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४ , जिल्द २, पृ० २०७ से भी

१. उस पत्रमें राजगोपालाचारीने १४ जुलाईके कार्य-समितिके प्रस्तावके बारेमें गांधीजी तथा अन्य लोगोंकी भूलें दिखलाई थीं। पाठके लिए देखिए परिशिष्ट ६।

२. देखिए परिशिष्ट ८।

३ और ४. देखिए "मुसलमान भाइयोंके लिए", पृ० ३५१-५२।

३६०. पत्र : वियोगी हरिको

२० जुलाई, १९४२

भाई वियोगी हरि,

तुम्हारा खत मिला। तुम्हारा ठीक चलता देखता हूं। अच्छा है। इस समय कौन कह सकता है क्या होगा। हम सब तैयार रहे जिसके भागमें जो आवे वह उठाये।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९२) से

३६१. प्रश्नोत्तर[1]

[२१ जुलाई, १९४२ या उसके पूर्व]

प्र० १ : क्या गांधीजी इस बातके लिए तैयार हैं कि जापानियोंके सीमापर होते हुए भी ब्रिटिश चले जायें?

उ० : जिस किसीने भी मेरे लेख पढ़े हैं उसके मनमें यह प्रश्न उठना ही नहीं चाहिए, क्योंकि उनमें यह तजवीज की गई है कि युद्धके दौरान मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाएँ भारतमें सक्रिय रहेंगी।

प्र० २ : जापानका कब्जा हो जानेके बाद क्या वे जापानियोंके साथ असहयोग का आह्वान करेंगे?

उ० : जबतक मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाएँ भारतकी धरतीपर सक्रिय हैं, तबतक जापानके कब्जेकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। यदि जापानी मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाओंको पराजित कर देते हैं और भारतपर कब्जा करने में सफल हो जाते हैं तो मैं निश्चित रूपसे पूर्ण असहयोगकी सलाह दूँगा।

प्र० ३ : यदि जापानी असहयोग करनेवालों पर गोली चलायें, क्या तब भी वे असहयोग करने को कहते रहेंगे?

प्र० ४ : वे स्वयं सहयोग करनेकी अपेक्षा क्या गोली खाना पसन्द करेंगे?

उ० ३ और ४ : सच्चे असहयोगमें गोली तो चलेगी ही। हर हालतमें, मैं जापान या किसी भी अन्य सत्ताके आगे घुटने टेकनेकी अपेक्षा गोली खाना पसन्द करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २६-७-१९४२

१. महादेव देसाईके लेख "इफ जापानीज कम?" (यदि जापानी आयें तो), २१-७-१९४२ से उद्धृत। ये प्रश्न यूनाइटेड प्रेसने तारसे भेजे थे।

३६२. पत्र : मीराबहनको

सेवाग्राम, वर्धा, म० प्रा०
२१ जुलाई, १९४२

चि० मीरा,

तुम मेरे दिये हुए इस प्रमाणपत्रको सही साबित कर रही हो कि वर्णनात्मक ढंगके पत्र लिखनेमें तुम जन्मसे ही सिद्धहस्त हो। लेथवेटके साथ अपनी बातचीतका तुम्हारा चित्र बहुत ही सजीव है।

तुमसे मिलनेमें वाइसरायको संकोच होना मेरी समझमें आता है और मैं उसकी कद्र भी करता हूँ। लेकिन लेथवेटसे तुम्हारी बातचीतसे काम चल जायेगा।[1]

१. वाइसरायने एमरीको अपनी रिपोर्टमें लेथवेटके साथ १७ जुलाईको हुई मीराबहनकी बातचीतका सार इस प्रकार दिया था: (क) वे बराबर इसपर जोर देती रहीं कि भारतकी आजादीको मंजूर करनेकी गांधीजीकी माँग पूरी तरह मान ली जानी चाहिए। तेजीसे बिगड़ती हुई परिस्थितिको शायद और किसी भी तरह सँभाला नहीं जा सकेगा। गांधीजी हमारे प्रति विशुद्ध मैत्री-भाव रखते हैं और उसीसे प्रेरित हैं। देशके सभी दल — कांग्रेसी और गैर-कांग्रेसी — हमें नापसन्द करते हैं। केवल कांग्रेस ही (बशर्ते कि आजादीकी घोषणा कर दी जाये) स्थितिको सुधार सकती है। एक बार जहाँ आजादीकी घोषणा की गई, सब-कुछ ठीक हो जायेगा। देशमें जो फूट है वह खत्म हो जायेगी, वगैरह वगैरह। (ख) पिछली बार हिंसाकी घटनाएँ होने पर गांधीजीने आन्दोलन बन्द कर देने के लिए कदम उठाया था। इस बार भी उनकी भरसक कोशिश तो यही होगी कि अहिंसा कायम रहे। पर हिंसाकी कुछ घटनाएँ होने से ही आन्दोलनको बन्द कर देना उन्हें उचित नहीं लगेगा, क्योंकि वैसा करना उन आदर्शोंके प्रति और भी बड़ी हिंसा होगी जिनके लिए कि वे प्रयत्नशील हैं। (ग) इस नीतिपर जोर देने के निश्चयके लिए गांधीजी बहुत हदतक इस कारण बाध्य हुए हैं कि उनके खयालमें देश नैतिक पतनकी स्थितिमें पहुँच गया है। उसे अपनी आत्माको फिरसे प्राप्त करना होगा। इस समय तो वह ब्रिटेनसे घृणाके बावजूद उसके तलवे चाटनेको तैयार है। यह स्थिति असह्य है, और इसके सुधारके लिए जो भी कीमत देनी पड़े, कम है। (घ) पिछली बार जो कांग्रेसी जेलोंमें बन्द किये गये थे उन्होंने नियमोंका और अहिंसाका कड़ाईसे पालन किया था। अबकी बार वैसा नहीं होगा। यह तो जीत या मौतका सवाल होगा। गांधीजी को जेल वगैरहमें डाला जा सकता है, पर वहाँ उन्हें बराबर रखा नहीं जा सकेगा। उन्होंने यह निश्चित संकेत दिया कि इस बार वे अपनी जानकी बाजी लगाकर भी इस किस्सेको खत्म करना चाहते हैं। वे आन्दोलनको अहिंसाके मार्गपर चलाने की भरसक कोशिश करेंगे। पर इसके लिए जरूरी यह है कि उसके मार्ग-दर्शनके लिए वे स्वतन्त्र रहें। यदि उन्हें भाषण या लेखन द्वारा उसका मार्ग-दर्शन करनेको स्वतन्त्र नहीं छोड़ा गया तो उनके आगे मृत्युके सिवा और कोई रास्ता नहीं रहेगा। (समाचारपत्रोंको अपने वक्तव्यमें गांधीजी ने जो अल्पकालिक और तीव्र संघर्षकी बात की है, उसका निस्सन्देह यही अर्थ हो सकता है।) उनसे ऐसा कुछ नहीं कहा गया जिससे वे यह आशा रखें कि हमारे रवैये में कोई परिवर्तन हो सकता है या कांग्रेसके दावेको माना जा सकता है। ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द २, पृ० ४०७-८।

सुशीलाने मुझे मौलाना साहब और जवाहरलालके साथ हुई तुम्हारी मुलाकातका हाल बताया है। अच्छा हुआ दोनों दिल्लीमें थे। मौलाना साहब अगर अब भी वहीं हों तो मेरा प्यार कहना और यह भी कहना कि मुझे उम्मीद है कि वे फिर पूरी तरह तन्दुरुस्त हो गये होंगे।

आशा है, हरियाणामें तुम्हारा समय अच्छी तरह गुजरा होगा। जैसा मौका हो उसके मुताबिक तुम यहाँ लौट आना या मुझसे बम्बईमें मिलना। मुझे उम्मीद है कि मैं यहाँसे २ तारीखको रवाना होकर ३ तारीखको बम्बई पहुँचूँगा। मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। प्यारेलाल बीमार हो गया था। अब निश्चित रूपसे अच्छा होता जा रहा है।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३६५)से; सौजन्य: मीराबहन। बापूज लैटर्स टु मीरा, पृ० ३४३ से भी

३६३. पत्र : रणवीरसिंहको

सेवाग्राम, वर्धा
२१ जुलाई, १९४२

भाई रणवीरसिंह,

बड़े उत्साहसे मीराबहन व० के खत लाये। सबका उद्देश्य सेवा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १२२१-ए) से

३६४. चरखा जयन्ती

गांधी जयन्ती एक बहाना है, सच्ची बात तो चरखा जयन्ती ही है। चरखा होता तो शायद कोई जयन्ती उत्सव न होते और यदि होते भी तो उनका महत्त्व न होता। बगैर किसी निश्चित हेतुके किसी भी व्यक्तिकी जयन्ती मनाने में कोई लाभ नहीं, या फिर वे रिश्तेदारों या मित्र-वर्गके निर्दोष आनन्दोत्सव ही होवें। लेकिन चूँकि गांधी जयन्ती चरखा जयन्ती बना दी गई है तो हेतु बड़ा और व्यापक होने के कारण जयन्ती उत्सवोंका राष्ट्रीय महत्त्व हो गया है। और उनका उद्देश्य बहुत बड़ा है।

चरखा संघने जयन्ती मनाने का निर्णय कर लिया है। उसका कार्य खादीके लिए चन्दा इकट्ठा करना, सूत कातनेवालोंके नाम दर्ज करना, व सूत इकट्ठा करना रहेगा।

इसके लिए चरखा संघके सामने नारणदास गांधीका इस दिशामें किया गया सालाना काम उदाहरण है ही। वे और उनके सहयोगी कई वर्षोसे सूत और चन्देकी एक निश्चित रकम इकट्ठा करने की प्रतिज्ञा करके कार्य कर रहे हैं। प्रतिवर्ष उन्हें उत्तरोत्तर सफलता मिलती रही है। कोई वजह नहीं कि ऐसी ही सफलता चरखा संघके प्रयत्नोंको न मिले। अगर दृढ़ संकल्पवाले कार्यकर्त्ता मिल सकें तो सफलता अवश्य मिलनी चाहिए। खादीके बगैर लोगोंके लिए नंगे रहने का अवसर आ सकता है। ऐसे संकटको टालने का कार्य अगर कोई कर सकता है तो वह चरखा संघ ही है।

संघके इस शुभ-प्रयत्नमें सब लोग मदद देंगे, ऐसी मैं आशा करता हूँ।

सेवाग्राम, २२ जुलाई, १९४२

हरिजनसेवक, ९-८-१९४२

३६५. पत्र : बालकृष्ण भावेको

२२ जुलाई, १९४२

चि० बालकृष्ण,

आश्चर्यकी बात है कि तुम्हारी भूख वहाँ भी पूरी तरह खुली नहीं। जबतक शक्ति बनी रहे, तबतक वहाँ रहो। मेरी चिन्ता करने-जैसी कोई बात नहीं है। मेरा वजन घट जरूर गया था, लेकिन अब बढ़ रहा है। वजन १०३.५ तक पहुँचा है। इस बार तो तुम-जैसे भी खप सकेंगे। धीरजसे देखो। समय जब आने को होगा, तव अपने-आप आ जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

श्री बालकृष्ण
टुपारू, डलहौजी
पंजाब

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८०७) से। सौजन्य : बालकृष्ण भावे

३६६. पत्र : प्रभावतीको

२२ जुलाई, १९४२

चि० प्रभा,

तू कुछ चिन्तित जान पड़ती है। चिन्ता करने का कोई कारण नहीं है। वहाँके कामसे जब भी छुट्टी पा सके यहाँ आ सकती है। इस बीच अपनी तबीयत ठीक रखना। फिलहाल जयप्रकाशका कोई पत्र नहीं है। किन्तु मैं मानता हूँ कि सब ठीक ही होगा। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। दूध लेता हूँ। प्यारेलालके बीमार हो जाने के कारण सुशीला यहाँ आई है। रविवारको वापस जायेगी। प्यारेलालकी तबीयत ठीक हो गई है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५६९) से

३६७. पत्र : प्रेमा कंटकको

२३ जुलाई, १९४२

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। तेरे मनोरथ पूरे हों। इसमें सब-कुछ आ गया।

बम्बईमें मुझसे मिलना और वहाँ तुझे सन्तोष न हो तो जरूर मेरे साथ आना, यदि मै आऊँ तो। "आजका लाभ उठायें, कलकी कौन जानता है?"

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४२९) से। सी० डब्ल्यू० ६८६८ से भी; सौजन्य : प्रेमा कंटक

३६८. तार: रथीन्द्रनाथ ठाकुरको

[२३ जुलाई, १९४२ या उसके पश्चात्][1]

रथीन्द्रनाथ ठाकुर
शान्तिनिकेतन

बेहतर होगा कि मेरे १० तारीखके लगभग बम्बईसे लौटने के बाद आओ।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

३६९. पहला शिकार

खादी प्रतिष्ठानके श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त भारत रक्षा कानूनकी २६(१) धाराके अनुसार जारी किये गये हुक्मको न मानने के कारण गिरफ्तार कर लिये गये हैं,[2] और उन्हें दो सालकी सजा दी गई है। उनका अपराध यह था कि उन्होंने संकटग्रस्त लोगोंको अपने घर आदि तबतक न छोड़ने की सलाह दी जबतक कि खाली किये गये घरों आदिके बदलेमें वैसा ही दूसरा प्रबन्ध सरकारकी ओरसे न कर दिया जाये। इस सम्बन्धमें 'हरिजन' में मैंने जो लेख लिखे हैं, और हाल ही में कांग्रेसकी कार्य-समितिने जो प्रस्ताव पास किया है, सतीशबाबूका यह कार्य ठीक उसीके अनुरूप था।

इसमें कोई शक नहीं कि सतीशबाबूने जान-बूझकर हुक्मका अनादर किया था। जिला मजिस्ट्रेटके नाम लिखा गया उनका जो पत्र इसी अंकमें अन्यत्र छपा है, उससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि उन्होंने यह अनादर मानवताकी खातिर किया था। उस इलाकेमें सतीशबाबू और उनके आदमी बरसोंसे काम कर रहे हैं, और उन्होंने उधरके कतैयों व जुलाहोंमें हजारों रुपये बतौर मजदूरीके बाँटे हैं। सतीशबाबूके पत्रसे यह मालूम होता है कि जनताकी शिकायत बिलकुल सच्ची है। जिस महायुद्धके लिए यह दावा किया जाता है कि वह मानव-मन और मानव-शरीरकी मुक्तिके लिए लड़ा जा रहा है, वह उन लोगोंका दमन करके कभी नहीं जीता जा सकता जिनका स्वेच्छापूर्ण सहयोग वांछित और वांछनीय है। इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दुस्तानके साधारण लोग अज्ञानमें डूबे हुए हैं। वे स्वभावसे दीन हैं और इतिहासकारोंने

१. प्रस्तुत तार गांधीजी ने रथीन्द्रनाथ ठाकुरके २३ जुलाई, १९४२ के पत्रके जवाबमें भेजा था।

२. उन्हें २३ जुलाईको नोआखलीमें गिरफ्तार किया गया था।

उन्हें दुनियामें सबसे विनम्र माना है। उनकी रहनुमाई आसानीसे की जा सकती है। वे अपने नेताओंके बताये रास्तेपर चलते हैं। इसलिए उनसे काम लेने का उचित तरीका यह है कि उनके नेताओंसे बात की जाये।

नेता दो तरहके होते हैं: एक वे जो अपनेको नेता मानकर अपने नेतृत्व द्वारा जनताका शोषण करते हैं; और दूसरे वे जो अपनी सेवाके बलपर जनताके नेता बनते हैं। वे विश्वासपात्र होते हैं। इन दोनों प्रकारोंको पहचानना बहुत आसान है। दूसरे प्रकारके नेताओंको जनतासे अलग करना अनुचित है।

सतीशबाबू दूसरे प्रकारमें आते हैं। हालाँकि वे राजनीति जानते हैं, पर वे राजनीतिज्ञ पुरुष नहीं हैं। वे व्यवसायी हैं। वे सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और आजीवन लोकसेवाव्रती आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रायके प्रिय शिष्योंमें हैं, जिन्होंने अपने लिए कभी एक पाई भी नहीं कमाई। सुप्रसिद्ध बंगाल केमिकल वर्क्स आचार्य रायकी अनेकानेक कृतियोंमें से एक है, और श्री सतीशबाबू उसके निर्माताओंमें हैं। वे इस केमिकल वर्क्सके मैनेजर थे और वहाँ ऊँची तनख्वाह पाते थे। उन्होंने वह काम छोड़ दिया और खादीके कामको अपनाकर गरीबोंकी तरह रहने लगे। उनकी धर्मपत्नीने उनका पूरा-पूरा साथ दिया और उनकी कठोर साधनामें वे उनके सुख-दुःखकी साथिन बनीं। उनके भाई और होनहार लड़कोंने भी यही किया। उनमें से एक लड़केका सेवा करते-करते ही देहान्त हो गया। सतीशबाबूके भाई श्री क्षितीशचन्द्र दासगुप्त भी एक रसायनशास्त्री हैं, और उन्होंने अपने-आपको खादी प्रतिष्ठानकी सेवामें खपा दिया है। वे अपना सारा समय और सारी शक्ति मधुमक्खी-पालन, कागज बनाने और इसी तरहकी दूसरी दस्तकारियोंमें लगा रहे हैं। सतीशबाबूने अपने लड़कोंको उस उच्च शिक्षासे वंचित रखा जो स्वयं उन्होंने प्राप्त की थी। अपने नये कार्यमें वे इतने उत्साह और शक्तिके साथ जुट गये कि खादी-कार्यके विशेषज्ञ बन गये। उन्होंने खादी प्रतिष्ठानको जन्म दिया, जो लोकसेवाकी प्रवृत्तियोंका एक महान केन्द्र बन गया है। जिन अत्यन्त सच्चे और विनम्र लोगोंके साथ काम करनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, सतीशबाबू उनमें से एक हैं। वे अपनी सारी शक्तिके साथ सत्य और अहिंसाके आदर्शके अनुसार जीवन बितानेका यत्न करते रहते हैं। इन दोनोंको उन्होंने राजनीतिक उपयोगिताकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि जीवनके एक ध्येयकी दृष्टिसे अपनाया है। अगर इस देशका शासन इसके विजेताओंकी तरफसे जनताका शोषण करनेवाले कानूनों द्वारा न होकर देशके लोकप्रिय प्रतिनिधियों द्वारा होता तो जरूरतके वक्त सतीशबाबू-जैसे व्यक्तियोंकी सरकारी अधिकारियोंको बड़ी आवश्यकता रहती। और यह समय तो बहुत बड़ी जरूरतका समय है। लेकिन हमारे शासक उनका बस यही उपयोग कर सके हैं कि उन्हें उन कानूनोंका अनादर करनेके लिए सजा दी गई है जो राष्ट्रकी इच्छाको नहीं, बल्कि एक ऐसे आदमीकी इच्छाको व्यक्त करते हैं जिसकी हुकूमत मुल्कपर जबरदस्ती लादी गई है। सतीशबाबूने वह ज्योति जलाई है जो कभी बुझेगी नहीं। कानून गलत है, जनताके सेवक सतीशबाबू सही हैं।

सेवाग्राम, २४ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-८-१९४२

३७०. पत्र : मुन्नालाल गं० शाहको

२४ जुलाई, १९४२

चि० मुन्नालाल,

कंचनके पत्रमें ऐसा कुछ नहीं है जिससे उसे तार करने की जरूरत हो। तुम्हारा पत्र काफी होगा। उसके जवाबकी राह देखें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८४७२) से। सी० डब्ल्यू० ७१७३ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल गं० शाह

३७१. भेंट : एक पत्रकारको[1]

[२५ जुलाई, १९४२ के पूर्व][2]

उन्होंने अपने प्रान्तके लोगोंकी भावनाका जिक्र किया। बोले : "जापानके प्रति पक्षपातके मुकाबले लोगोंमें ब्रिटिश-विरोधी भाव ज्यादा है। लोग अस्पष्ट रूपसे यह सोचने लगे हैं कि यह हुकूमत तो हम बहुत देख चुके हैं, और मौजूदा हालतकी अपेक्षा दूसरी कोई भी हालत अच्छी होगी। जब लोग रेडियोपर सुभाषबाबूको यह कहते सुनते हैं कि आपमें और उनमें कोई मतभेद नहीं है और अब आप किसी भी कीमतपर देशकी आजादीके लिए लड़ने को कमर कस चुके हैं तो उन्हें खुशी ही होती है।"

गांधीजी : लेकिन मेरा खयाल है कि आप यह जानते हैं कि सुभाषबाबूकी यह बात गलत है। वे मेरी जो प्रशंसा कर रहे हैं, उसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता। "किसी भी कीमतपर आजादी" का जो अर्थ वे करते हैं, मेरा अर्थ उससे बिलकुल ही भिन्न है। मेरे कोशमें "किसी भी कीमत" शब्दोंके लिए कोई स्थान नहीं है। उदाहरणके लिए, मैं इसका यह मतलब हरगिज नहीं करता कि अपनी आजादी हासिल करने के लिए हम विदेशियोंको देशमें लायें और उनकी मदद लें। मुझे इसमें कोई शक नहीं कि इसका मतलब एक तरहकी गुलामीके बदले दूसरी तरहकी गुलामीको अपनाना है, जो शायद पहलीसे भी बदतर हो। लेकिन निस्सन्देह

१ और २. महादेव देसाईके २५-७-१९४२ के लेख "फायर रेजिंग इन मी" से उद्धृत। यह पत्रकार पत्रकारकी हैसियतसे नहीं, बल्कि "गांधीजी के आन्दोलनमें रुचि रखने" के कारण सेवाग्राम आये थे।

हमें अपनी स्वतन्त्रताके लिए लड़ना है, और उसके लिए जो भी कुरबानी करनी पड़े, करनी है। अमेरिका और ब्रिटेनके तमाम अनुप्रेरित अखबारोंने जिस पाखण्डका परिचय दिया है, उसके बावजूद मैं अपनी बातपर मजबूतीसे डटा हुआ हूँ। यहाँ पाखण्ड शब्दका उपयोग मै जान-बूझकर कर रहा हूँ। क्योंकि अब वे यह साबित कर रहे हैं कि हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताकी जो बातें वे किया करते थे, वे सिर्फ बातें ही थीं। जहाँतक मेरा सवाल है, मुझे अपने कार्यके औचित्यमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं है। मुझे तो यह स्वयंसिद्ध-सा मालूम होता है कि अगर मित्र-राष्ट्रोंने हिन्दुस्तानके साथ यह प्राथमिक न्याय नही किया, और इस तरह अपने पक्षको नितान्त निर्दोष नहीं बना लिया तो वे इस बार हारे बिना नहीं रहेंगे। अगर वे यह न्याय नहीं करते तो उन्हें उन लोगोंके विरोधका सामना करना ही होगा जो अब उनकी हुकूमतको बरदाश्त नहीं कर सकते और उससे अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए मरने को भी तैयार हैं। यह एक स्वर्णसूत्र है कि "बढ़ते हुए द्वेष-भावको सद्भावमें बदल दो"। उन्हें यह कहने का कोई हक नही कि चूंकि युद्ध चल रहा है, इसलिए हमें अपनी अन्तरात्माका गला घोंट देना चाहिए और चुपचाप हाथपर-हाथ धरे बैठे रहना चाहिए। यही वजह है कि मैंने अपने मनमें यह निश्चय कर लिया है कि ब्रिटिश हुकूमतके खिलाफ अहिंसक विद्रोह करते हुए यदि देशके लाख-दसलाख आदमी बहादुरीके साथ गोलीके शिकार भी बन जायें तो वह अच्छा ही होगा। हो सकता है कि अराजकतामें से सुव्यवस्था पैदा करने में हमें बरसों लग जायें। लेकिन तब हम दुनियाको मुंह दिखा सकेंगे, आज तो हम उसे अपना मुँह भी नही दिखा सकते। निश्चय ही सभी राष्ट्र अपनी-अपनी स्वतन्त्रताके लिए लड़ रहे हैं। जर्मनी, जापान, रूस, चीन पानीकी तरह अपना खून और पैसा बहा रहे हैं। लेकिन 'हमारा' क्या हाल है? आप कहते हैं कि अखबारवाले लड़ाईके कारण खूब कमा रहे हैं। इस तरह सरकारके दबावमें आकर अपने मुंहपर ताला लगा लेना और उसके हाथों बिक जाना शर्मकी बात है। ईमानदारीके साथ रोटी कमाने के बहुत-से तरीके हैं। अगर अंग्रेजोंका पैसा, जो कि हमारा ही पैसा है, हमें इस तरह खरीद सकता है तो फिर भगवान ही इस देशका मालिक है!

हम दु:खद कायरताका परिचय दे रहे हैं। आज यूरोप जिस तरहका रक्त-स्नान कर रहा है, उसका मुझे दु:ख नहीं है। इसमें शक नहीं कि वह काफी बुरी चीज है, लेकिन उसमें बहादुरी भी कम नहीं है—माताएँ अपने इकलौते पुत्रोंको खो रही हैं और पत्नियाँ पतियोंको। इस तरह सभी कुछ-न-कुछ कुरबानी कर रहे हैं। उस दिन लॉर्ड लिटनका इकलौता बेटा मारा गया। अंग्रेजोंका इतिहास इस तरहके वीरतापूर्ण त्यागसे भरा पड़ा है। ब्रिटिश और अमेरिकी अखबारोंकी टीकाओसे मुझे उतना दु:ख नहीं होता, जितना इस बातसे होता है कि हमारे देशके अखबार ब्रिटिश सेंसरके इशारोंपर चलते हैं। और नहीं तो कमसे-कम इस भयंकर वातावरणका प्रतिकार करने के लिए ही मुझे कमर कसकर तैयार हो जाना चाहिए।

जब सुभाषबाबू मेरे कामको ठीक बताते हैं तो मैं उससे फूल नहीं उठता। जिस अर्थमें वे ऐसा कहते हैं, उस अर्थमें वह ठीक नहीं है। क्योंकि वे मुझ पर जापानका

प्रेमी होने की भावना मढ़ रहे हैं। अगर किसी तरह मुझे यह मालूम हो जाये कि किसी गलत अन्दाजमें फँसकर मैं यह नहीं समझ पाया था कि मैं जापानियोंको हिन्दुस्तानमें घुसनेके काममें मदद पहुँचा रहा हूँ तो मैं अपने कदम पीछे हटाने में जरा भी नहीं झिझकूँगा। जहाँतक जापानियोंका सम्बन्ध है, मैं निश्चित रूपसे यह मानता हूँ कि हमें अपनी जान देकर भी उनका विरोध करना चाहिए — उसी तरह जिस तरह कि हम अंग्रेजोंका विरोध करना चाहते हैं।

लेकिन यह आदमीका काम न होगा। यह तो एक ऐसी अदृश्य और असीम शक्तिका काम होगा जो अक्सर हमारी सारी योजनाओंको उलटकर अपना काम करती है। मैं पूर्ण श्रद्धाके साथ उसीपर भरोसा रखता हूँ। अन्यथा इन झल्लाहट पैदा करनेवाली टीकाओंकी झड़ीके सामने मैं तो पागल हो गया होता। ये टीकाकार मेरे मनकी व्यथाको नहीं जानते, और मैं भी शायद मरकर ही उसे व्यक्त कर सकता हूँ।

गांधीजी ने इन पत्रकार मित्रसे कहा कि क्या इन उद्‌गारोंके बाद किसीको तनिक भी यह शंका हो सकती है कि ब्रिटेनको पराजित देखने के लिए और हिन्दुस्तान से ब्रिटिश सत्ताको मिटाने के लिए मैं धुरी-राष्ट्रोंकी विजय चाहता हूँ? अगर उनके दिलमें ऐसा कोई खयाल हो तो उसे बिलकुल मिटा दें।

ब्रिटिश सत्ताका नाश जापान या जर्मनीकी सशस्त्र सेनाओंपर निर्भर नहीं करता। अगर वह उनपर निर्भर करता है तो उसमें गर्व करनेकी कोई बात नहीं है, अलबत्ता उस हालतमें सारी दुनियापर एक अमंगलकी छाया छा जायेगी। लेकिन मेरी दृष्टिसे महत्त्वकी बात यह है कि अगर कोई बाहरसे आकर मेरे दुश्मनको खदेड़ देता है तो उससे मुझे कोई सुख या गर्व नहीं हो सकता। उसमें मैंने किया ही क्या? ऐसी कोई चीज मुझमें उत्साह नहीं पैदा कर सकती। मैं तो उस सुखको लूटना चाहता हूँ जो अपने घरमें घुसे हुए दुश्मनसे लड़ने के लिए आवश्यक कुरबानी करनेसे प्राप्त होता है। अगर मुझमें वह ताकत नहीं है तो मैं दूसरेको घरमें आने से रोक नहीं सकता। अतः मेरे लिए यह जरूरी है कि मैं नये दुश्मनको अन्दर आने से रोकने के लिए कोई बीचका रास्ता ढूँढ लूँ। मुझे विश्वास है कि ईश्वर उस मार्गकी प्राप्तिमें मेरी मदद करेगा।

मुझे ईमानदारीसे की गई कड़ी और स्वस्थ आलोचना बुरी नहीं लगती। लेकिन जिस तरहकी बनावटी आलोचना आज मैं देख रहा हूँ, वह तो निरी मूर्खता है, जो मुझे आतंकित करने और कांग्रेसजनोंकी हिम्मत तोड़ने के लिए अपनाई गई है। यह एक गन्दा खेल है। वे नहीं जानते कि मेरे अन्दर कैसी आग धधक रही है। अपने मान-अपमानके बारेमें मेरे मनमें कोई भ्रम नहीं है। किसी निजी हेतुसे प्रेरित होकर मैं ऐसा कोई काम कभी कर ही नहीं सकता जिसके विषयमें मैं निश्चयपूर्वक यह जानता हूँ कि उसके कारण सारा देश एक भीषण दावानलमें घिर जानेवाला है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २-८-१९४२

३७२. समझसे काम लीजिए

संकल्पित जन-आन्दोलनके सम्बन्धमें कांग्रेस कार्य-समितिके प्रस्तावपर ब्रिटेन और अमेरिकामें रोषका जो शोर उठा है और जिस तरहकी छिपी या खुली धमकियाँ कांग्रेसको दी गई हैं, उनसे डरकर कांग्रेस अपने ध्येयसे कभी नही डिगेगी। अबतक वह विरोध और दमनकी कोशिशोंके बीच ही फूली-फली है। इस बार भी इससे भिन्न और कुछ नही होगा। अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेनका यह उन्मत्त प्रलाप शायद आनेवाले दमनका सूचक है। सम्भव है कि इस दमनके कारण लोग कुछ समयके लिए दब जायें, लेकिन एक बार जब विद्रोहकी ज्योति जल उठेगी तो फिर वह किसीके बुझाये न बुझ सकेगी।

बातको चढ़ा-बढ़ाकर कहने में और गाली-गलौजमें मजदूर दलने[1] और 'डेली हेरल्ड' पत्रने दूसरे सभी आलोचकोंको मात कर दिया है। क्या ही अच्छा होता अगर वे कांग्रेसकी माँगको समझने की तकलीफ उठाते।

हिन्दुस्तानसे ब्रिटिश हुकूमतको खत्म करने की माँगके औचित्यके बारेमें तो किसी को कोई एतराज नहीं है। लेकिन उसको पूरा कराने के लिए जो समय चुना गया है, उसपर हमला किया गया है। कार्य-समितिके प्रस्तावमें यह साफ-साफ समझाया गया है कि क्यों यही मौका चुना गया है। मैं यहाँ थोड़ी व्याख्या किये देता हूँ। इस युद्धमें हिन्दुस्तान कोई ऐसा काम नहीं कर पा रहा है जो कारगर साबित हो। इस हकीकतकी वजहसे हममें से कुछको बड़ी शर्म मालूम होती है। इससे भी बड़ी बात यह कि हम महसूस करते हैं कि अगर हम विदेशी जुएसे मुक्त होते तो इस विश्व-युद्धमें, जो अभी अपनी चरम सीमापर नहीं पहुँचा है, न सिर्फ योग्य, बल्कि निर्णायक योग देते। हम जानते हैं कि अगर हिन्दुस्तान 'इसी समय' आजाद न हुआ तो लोगोंका छिपा असन्तोष जापानियोंके हिन्दुस्तानकी जमीनपर कदम रखने पर उनके स्वागतके रूपमें फूट पड़ेगा। हम महसूस करते हैं कि अगर ऐसा हुआ तो वह इस देशके लिए बहुत बड़ी विपत्ति होगी। अगर हिन्दुस्तान आजादी हासिल कर ले तो हम इस विपत्तिको टाल सकते हैं। इस सीधी-सादी, सहज और ईमानदारीकी घोषणापर विश्वास न करना खुद आफतको न्योता देना है।

लेकिन आलोचक पूछते हैं: "हिन्दुस्तानको छोड़ते समय ब्रिटिश शासक देशकी बागडोर किसके हाथोंमें सौंपकर जायें?" यह एक अच्छा सवाल है। इसके जवाबमें कांग्रेसके अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजादने जो कहा है सो यह है:

१. मजदूर दल (लेबर पार्टी) की राष्ट्रीय कार्यकारिणी समितिने २३ जुलाईको एक प्रस्ताव पास किया था, जिसमें सविनय अवज्ञा आन्दोलनके "विचार मात्र" को "राजनीतिक गैर-जिम्मेदारीका सबूत" कहकर उसकी भर्त्सना की गई थी। ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द २, नोट, पृ० ४५५ पा० टि०।

> कांग्रेस हमेशासे तीन बातोंपर कायम रही है: एक, उसकी सहानुभूति लोकतान्त्रिक देशोंके साथ रही है; दूसरे, वह ब्रिटेनको किसी तरह परेशान नहीं करना चाहती, न उसके युद्ध-प्रयत्नोंमें रुकावट डालना चाहती है; तीसरे, वह जापानी हमलेका विरोध करने के लिए कमर कसे हुए है। कांग्रेस अपने लिए नहीं, बल्कि देशके सभी लोगोंके लिए सत्ता चाहती है। अगर कांग्रेसके हाथोंमें सच्ची सत्ता सौंप दी जाये तो वह निश्चय ही दूसरे पक्षोंके पास जायेगी और उन्हें मुल्ककी हुकूमतमें शामिल होने के लिए राजी करेगी।

कांग्रेस अध्यक्षने आगे चलकर यह भी कहा कि

> अगर ब्रिटेन मुस्लिम लीगको या दूसरे किसी पक्षको देशकी हुकूमत सौंप दे तो मुझे कोई एतराज न होगा, बशर्ते कि वह सच्ची आजादी हो। उस पक्षको दूसरे पक्षोंके पास जाना पड़ेगा, क्योंकि कोई एक पक्ष दूसरे पक्षोंके सहयोगके बिना ठीकसे काम चला ही नहीं सकेगा।

इसके लिए जरूरी चीज सिर्फ यह है कि बिना किसी शर्तके देशकी समूची हुकूमत देशवासियोंके हाथमें सौंप दी जाये। अपवाद सिर्फ एक रहे कि लड़ाईके दरम्यान मित्र-राष्ट्रोंकी फौजें हिन्दुस्तानमें रहकर जापानी या धुरी-राष्ट्रोंके आक्रमणोंका प्रतिकार करेंगी। लेकिन उन्हें हिन्दुस्तानके मामलोंमें हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार नहीं होगा; हिन्दुस्तान भी ग्रेट ब्रिटेनकी तरह ही स्वतन्त्र होगा।

निश्चय ही, इसमें किसीके लिए मीन-मेख निकालनेकी कोई गुंजाइश नहीं है। जो पक्ष या पक्षोंका समूह देशकी हुकूमतको अपने हाथोंमें लेगा, उसे अपनी हुकूमतको बनाये रखने के लिए बाकी पक्षोंका सहयोग प्राप्त करना ही पड़ेगा। देशके विभिन्न पक्षोंको जबतक अपने समर्थन और अस्तित्वके लिए एक-दूसरेका मुँह देखनेकी बजाय, बाहरवालेका मुँह देखना पड़ता है, तबतक उनके एक होने या मिलकर काम करनेकी कोई उम्मीद नहीं है। वाइसरायकी परिषद्के बहुत सारे हिन्दुस्तानी सदस्योंमें से एक भी ऐसा नहीं है जो अपने पदके लिए वाइसरायको छोड़ और किसीपर निर्भर हो। एक-दूसरेकी सहायता व समर्थनके बिना देशके छोटे या बड़े प्रतिनिधि दल अपना काम कर ही किस तरह सकते हैं? आजाद हिन्दुस्तानमें तो कांग्रेस-जैसा दल तक, छोटेसे-छोटे दलके समर्थनके अभावमें, एक दिन भी अपना काम कुशलतापूर्वक नहीं कर सकेगा। क्योंकि आजाद हिन्दुस्तानमें, कमसे-कम अगले कुछ समयतक, देशके सबसे शक्तिशाली दलको भी फौजी शक्तिका समर्थन नहीं मिलेगा। उसका समर्थन करने के लिए देशमें कोई फौज ही नहीं होगी। शुरूके दिनोंमें तो, यदि मौजूदा पुलिस राष्ट्रीय सरकारकी नौकरी उसकी अपनी शर्तों पर करनेको तैयार न हुई तो, अध-कचरे पुलिसके जवान ही काम करते होंगे। लेकिन इसमें शक नहीं कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान मित्र-राष्ट्रोंके ध्येयमें जो भी मदद दे पायेगा, वह अपने-आपमें बहुत कीमती होगी। उसकी सम्भावनाओंका तो कोई पार ही न रहेगा, और तब देशमें जापानी फौजोंका स्वागत करनेकी कोई वजह भी न रह जायेगी। इसके विपरीत, यदि उस

समयतक समूचा हिन्दुस्तान अहिंसक न बन गया तो लोग जापानियोंके या दूसरे किसी देशके हमलेको रोकने के लिए मित्र-राष्ट्रोंकी फौजोंसे मददकी उम्मीद रखेंगे। बहरहाल, मित्र-राष्ट्रोंकी फौजें तो हिन्दुस्तानमें आज भी हैं, कल भी होंगी और युद्धके अन्ततक रहेंगी — चाहे हिन्दुस्तानकी रक्षाके लिए उनकी जरूरत हो या न हो।

कांग्रेसकी माँगके फलितार्थोंका यह भाष्य यदि मित्र-राष्ट्रोंके समाचारपत्रों या स्वयं मित्र-राष्ट्रोंको नहीं जँचता है तो खतरनाक एकजुटताके साथ संगठित किये जा रहे उस माँगके उग्र विरोधकी ईमानदारीमें शक करना हिन्दुस्तानके जनसेवकोंके लिए उचित ही है। इस विरोधसे तो हिन्दुस्तानका सन्देह तथा उसका प्रतिरोध और प्रबल ही होगा।

सेवाग्राम, २६ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-८-१९४२

३७३. सन्देश : 'डेली हेरल्ड' को

२६ जुलाई, १९४२

धमकियाँ वैसे तो सभी ओरसे दी जा रही हैं, पर 'डेली हेरल्ड' का वार सबसे क्रूर है।[1] यह धमकी किसीके इशारेपर दी गई लगती है, क्योंकि यह निराधार है।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २८-७-१९४२

१. डेली हेरल्ड ने अगले दिन इसका उत्तर देते हुए इस बातसे इनकार किया कि वह किसीके इशारे पर लिखा गया था और कहा कि वह तो केवल "श्रमजीवी स्त्री-पुरुषोंके दृष्टिकोणकी व्याख्या कर रहा था...।" परन्तु एमरीने २४ जुलाईको लिनलिथगोको लिखे अपने पत्रमें कहा था: "गांधीजी की हरकतें सचमुच इस बार यहाँके और अमेरिकाके समाचारपत्रोंके लिए बहुत भारी रही हैं। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि लॉबी संवाददाताओंसे कुछ साफ-साफ बातें करके मैंने शायद उनकी सहायता की है...। यहाँतक कि डेली हेरल्ड और सरकारी मजदूर दल भी उनके खिलाफ हो गया है...।" ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द २, पृ० ४५४-५५।

३७४. बातचीत : विनोबा भावे तथा अन्य लोगोंसे

२६ जुलाई, १९४२

मैंने तुम लोगोंको इसलिए बुलाया है कि मेरे मनमें जो विचार चल रहा है उसे तुम्हारे सामने रख दूं और तुम्हें यदि उसमें मेरा अधैर्य या कोई अन्य दोष दिखे तो तुम मुझे बता सको।

आजकल मेरे मनमें उपवासका जो विचार चल रहा है, उसे टालनेका मैंने खूब प्रयत्न किया है और आज भी कर रहा हूं। लेकिन मैं देख रहा हूं कि वह मेरे सिरपर सवार हो रहा है। मैंने आजतक बहुत-से उपवास किये हैं और उनमें-से एक भी असफल हुआ हो ऐसा मुझे नहीं लगता। कितने ही तो मैंने व्यक्तिगत या कौटुम्बिक कारणोंसे किये हैं। उनका परिणाम भी शुभ ही आया था। हिन्दू-मुस्लिम-एकताके लिए जो उपवास किया था, उसका भी असर तो अच्छा हुआ था। हालांकि वह अधिक दिनों तक नहीं चला था। हरिजनोंको अलग न करनेके लिए जो आमरण उपवास किया था उसका परिणाम तत्काल हुआ था। लोग मेरे पास आकर बैठ नहीं गये थे, बल्कि काम करने लगे थे। हिन्दू महासभाके अध्यक्ष भी मेरे पास आये थे और उन्होंने भी मेरी बात मान ली थी। तब सब मुझे अच्छा लगा था। आन्दोलनमें आ गई अशुद्धिके कारण जो आत्मशुद्धिका २१ दिनका उपवास था उसके पीछे मेरी यह भावना थी कि इस तरहके उपवासोंकी शृंखला एक साल तक चलाई जाये। लेकिन साथियोंको यह विचार पसन्द नहीं आया और उसे स्थगित करना पड़ा। लेकिन अब मैं देख रहा हूं कि इसको टाला नहीं जा सकेगा। इस वक्त हिंसा अपने पूरे जोरमें है और जगतमें एक प्रकारका अन्धकार-सा छा गया है। हिन्दुस्तानमें भी यह जहर फैल गया है। सरकार हमारे आदमियोंको ही हमारे सामने करके खुद तमाशा देखना चाहती है। इसको मैं कैसे बरदाश्त कर सकता हूं? इसलिए मुझे लगता है कि अब बलिदान दिये बिना यह ज्वाला शान्त नहीं हो सकेगी।

उपवास दो प्रकारके होते हैं। एक तो स्वतन्त्र बुद्धिसे किया जाता है, दूसरा जनरलपर श्रद्धा रखकर। हिंसाकी लड़ाईमें क्या होता है? जनरलपर श्रद्धा रखकर सिपाही अपने-आपको आगमें झोंक देते हैं। तब अहिंसाकी लड़ाईमें ऐसा क्यों नहीं हो सकता? इस बार मेरी अहिंसाकी व्याख्यामें भी थोड़ा बदलाव आया है। १९२० और १९३० में मैंने नियम बनाया था कि मन, कर्म और वचनसे अहिंसक होना अनिवार्य है। अब मुझे लगता है कि चालीस करोड़ लोगोंके दिलमें इस बातको उतारना और जबतक न उतरे तबतक रुके रहना उचित नहीं है। अब मैं इतना ही कहता हूं कि तुम कर्म और वचनसे तो हिंसा नहीं करना। मैं किसी सत्याग्रहीको कानून तोड़ने भेजता हूं तो उससे इतना ही कहता हूं कि तुम लाठी यहां रख

जाओ और किसीको गाली दिये बिना इतना काम कर आओ। जब मेरी इस बातको मानकर वह काम कर आयेगा तो कामकी सफलता देखकर उसके मनसे भी हिंसाके भाव निकल जायेंगे। और समझो कि मेरे निमित्तसे अहिंसक सत्याग्रह आरम्भ हुआ और बादमें हिंसा फूट निकली तो भी मैं सहन कर लूंगा, क्योंकि आखिर तो मुझे जो ईश्वर प्रेरणा दे रहा है उसकी जैसी इच्छा होगी वही होगा। अगर मुझे निमित्त बनाकर वह हिंसासे दुनियाका संहार करना चाहता होगा तो मैं कैसे रोक सकता हूं? वह तो एक ऐसी सूक्ष्म चीज है कि जिसका पता लगाना मनुष्यकी शक्तिके बाहरकी बात है। यद्यपि बिजली सूक्ष्म चीज है, लेकिन उसका हम कुछ पता तो लगा ही सकते हैं। लेकिन ईश्वर तो इससे भी सूक्ष्म और व्यापक है। उसके लिए तो हम इतना ही कह सकते हैं कि वह ऐसी शक्ति है जिसके इशारेसे सब-कुछ चलता है। लेकिन वह क्या है और कैसी है, यह पता लगा सकना असम्भव है। बस, उसपर श्रद्धा ही रख सकते हैं और वही श्रद्धा मुझसे अपना काम करा रही है।

मैं जब जर्मन और अंग्रेज तथा जापानके संहारकी बात सुनता हूँ तो उनके बलिदानोंकी कीमत मेरे दिलमें बहुत बढ़ जाती है। 'प्रिंस ऑफ वेल्स' को डुबानेवाला व्यक्ति कितना बहादुर था कि उसने अपने-आपको जलते हुए इंजनमें झोंक दिया और दुश्मनका जहाज डुबा दिया। कैसा साहस!

हमने तो अभीतक कुछ भी साहस नहीं दिखलाया है। जेलमें जाकर भी हम छोटी-छोटी चीजोंके लिए लड़े हैं। तुम्हारे-जैसे कुछ लोगोंने वहाँ अध्ययन किया है। अबकी बार मेरे कार्यक्रममें उसको स्थान नहीं है। प्यारेलाल कहे कि कुरान पूरा कर लूं या तुम कहो कि किताब अधूरी है उसे लिख डालूं, सो नहीं होगा। इस बार तो हमें दो-चार रोजमें पूरा काम तमाम करना है। जब हम सरकारके सब कानूनोंका भंग करना चाहते हैं तो उपवास आ ही जाता है। अगर तब हमको जेलमें डालेंगे तो हम अन्न-पानीका त्याग करेंगे और अपने-आपको खत्म ही कर देंगे।

अब सवाल यह उठता है कि शुरुआत किससे की जाये? इसके लिए मैंने अपने-आपको चुना है। क्योंकि मेरे बलिदानके बिना काम कतई आगे नहीं बढ़ेगा। मैं तुम सब लोगोंका सहयोग चाहता हूं। इसमें किसीको घबरानेकी या दुःखी होनेकी बात नहीं है। यह तो कर्त्तव्य-पालनकी बात है। आखिर तो एक दिन इस शरीरको मिटना भी है। तो एक शुभ कार्यके निमित्त उसे मिटने देना ही अच्छा है।

किशोरलालभाई बोले: अगर जनरल ही सबसे पहले मर जाये तो फौजका क्या हाल होगा। इसलिए मेरी राय है कि आप किसी औरको चुनें और उसके द्वारा आरम्भ करें और उसके बलिदानका उपयोग कर लें। और बादमें जब आपको लगे कि समय आ गया है तो आप अपना बलिदान दें।

बापूजी: ऐसा कौन हो सकता है? मान लीजिए कि जानकीबहन कहे कि मेरे शरीरकी तो कुछ कीमत नहीं है, मुझे जाने दो। या शास्त्रीजी (परचुरे शास्त्री) कहें मैं जाउंगा।

किशोरलालभाई : ना ना। मेरा तात्पर्य उन लोगोंसे है जिनकी कीमत हो।

बापू : हाँ, मैं भी तो यही कहता हूं। समझो, शास्त्रीजी की कीमत पैसा है और जानकीबहनकी रुपया और मेरी मोहर। अगर इस चीजकी कीमत मोहर देनी चाहिए तो मुझे ही देनी चाहिए। और अब मेरे बलिदानका समय आ गया है, इसका निर्णय कौन करेगा?

किशोरलालभाई : आप ही करेंगे।

बापू : ऐसा है तो आज ही निर्णय करता हूं कि पहला बलिदान मुझे ही करना चाहिए। आपका क्या खयाल है?[1]

विनोबा भावे : मुझे तो अपनी बात ठीक लगती है। लेकिन मैं क्या समझता हूँ, यह दुहरा देता हूँ। आपके कहने का मैं यह अर्थ समझा हूं कि स्वतन्त्र बुद्धिसे भी उपवास किया जा सकता है या जनरलपर श्रद्धा रखकर भी किया जा सकता है।

बापू : ठीक है। लेकिन मैं इतना और कह दूं कि जो हिंसा फैल रही है उसे रोकने का इसके सिवा और कोई चारा नहीं दीखता और इसलिए ऐसा करना आवश्यक हो गया है। अगर इस विषयपर अधिक विस्तारसे चर्चा करनी हो तो मैं समय निकाल सकता हूं।

बापूकी छायामें, पृ० ३३५-३८

३७५. राजाओंसे

जब मैं हिन्दुस्तानके राजा-महाराजाओंका विचार करता हूँ तो एक तरहकी घबराहट मुझे घेर लेती है, यद्यपि मैं उनमें से कइयोंको जानता हूँ और कुछके साथ तो मेरा बहुत निकटका परिचय रहा है। हिन्दुस्तानके ये राजा-महाराजा ब्रिटिश शासकोंकी कृति हैं, इस बातका दुःखद ज्ञान ही मेरी इस घबराहटका कारण है। यद्यपि उनमें से कुछ अंग्रेजोंके आने से पहले भी मौजूद थे, तथापि उसके बादका उनका अस्तित्व तो अंग्रेजोंकी मेहरबानीपर ही निर्भर रहा है; और उस मेहरबानीका आधार वह कीमत है जो उस समयके गद्दीनशीनोंने उसके लिए चुकाई थी। आजकलके गद्दीनशीन तो साम्राज्यीय-सत्ताकी ही रचना हैं। मात्र उसकी टेढ़ी भृकुटी ही उन्हें खत्म कर सकती है।

लेकिन अपनेको साम्राज्य-यन्त्रका एक अभिन्न अंग समझने के बदले, जैसे कि वे आज हैं, अगर वे अपनेको राष्ट्रका एक अभिन्न अंग समझने लगें तो उनके लिए अपनेको इतना असहाय मानने की कोई वजह नहीं है। अगर साम्राज्यका यह ढाँचा

१. गांधीजी यहाँपर विनोबा भावेकी ओर मुखातिब हुए।

ढह गया तो ये राजा-महाराजा भी, अगर ये राष्ट्रके अंग न बने और उसपर निर्भर न रहे तो उसके साथ खत्म हो जायेंगे।

साम्राज्य तो नष्ट होने ही वाला है — चाहे अंग्रेज अपनी इच्छासे उसे नष्ट करें, चाहे वह उन परिस्थितियोंके कारण नष्ट हो जिनपर उनका कोई काबू नहीं है। हिन्दुस्तान हमेशा तो गुलाम रहेगा नहीं। क्या देशके राजा-महाराजा समयके साथ चलेंगे, या साम्राज्यके रथके पहियोंसे बँधे रहना पसन्द करेंगे? अगर वे पूर्ण साहससे काम लें और राष्ट्रके हितमें अपना हित मिला दें तो वे अपने राज्य गँवाने की जोखिम भी जरूर उठा सकेंगे।

मैं मानता हूँ कि इस कार्यके लिए बहुत साहस अपेक्षित है, लेकिन वे बीचका रास्ता भी अख्तियार कर सकते हैं। वे अपनी प्रजाको अपनी सत्तामें भागीदार बनाकर उसकी सद्भावना प्राप्त कर सकते हैं। वे अपनी निरंकुश सत्ता तो सदा अपने पास रख नहीं सकेंगे। लेकिन अगर वे अपने राज्यकी प्रजाको सन्तोष प्रदान करें और राज्य के शासन-कार्यमें उसका सक्रिय सहयोग प्राप्त कर लें तो निश्चय ही वे बहुत-कुछ अपने हाथमें रखने की उम्मीद रख सकते हैं। मैं समझता हूँ कि राजाओंके लिए यह कोई ठीक बात नहीं है कि उनके आलोचक उनकी प्रजाके सम्बन्धमें यह कह सकें कि वह इतनी पिछड़ी हुई है कि उसे स्वतन्त्रता दी ही नहीं जा सकती। यह तो उनकी ही बदनामी है। देशी रियासतोंकी प्रजा रियासतोंकी हदसे बाहर रहनेवाले लोगोंकी ही नस्ल की है। राजा लोग उदार बनकर कुछ खो नहीं सकते। लेकिन अगर वे अपनी निरंकुश सत्तासे चिपटे रहे तो सब-कुछ खो बैठेंगे।

जहांतक मेरा सम्बन्ध है, मैं नहीं चाहता कि वे समाप्त हो जायें, बल्कि मैं तो यह चाहता हूँ कि वे निरंकुश राजा न रहकर अपने राज्यके ट्रस्टी बनें — नाम-मात्रके नहीं, बल्कि सच्चे ट्रस्टी। आज जिन निरंकुश अधिकारोंका वे उपभोग कर रहे हैं, सो सब उन्हें छोड़ देने चाहिए। कोई राजा कितने ही प्राचीन और श्रेष्ठ राजवंशमें क्यों न जन्मा हो, उसकी प्रजाकी स्वतन्त्रता एक व्यक्तिकी मर्जीपर निर्भर नहीं रहनी चाहिए। इसी तरह कोई राजा, रईस, जमींदार या व्यापारी अपनी उपार्जित या विरासतमें प्राप्त सम्पत्तिका एकमात्र स्वामी नहीं हो सकता, और न वह उसका मनमाना उपयोग कर सकता है। हरएक मनुष्यको अपनी शक्तियोंका इस तरह उपयोग करने की पूरी-पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए जिससे उसके पड़ोसियोंकी वैसी ही स्वतन्त्रतामें कोई बाधा न पड़े और उनकी स्वतन्त्रताके साथ उसकी सुसंगति रह सके। लेकिन उन शक्तियोंसे प्राप्त होनेवाले लाभोंका निरंकुशतापूर्वक उपयोग करने का किसीको भी अधिकार नहीं है। हरएक आदमी अपने राष्ट्रका अथवा यों कहिए कि अपने आसपासके समाजका एक अंग है। इसलिए वह अपनी शक्तियोंका अपने लिए नहीं, बल्कि जिस समाजका वह अंग है और जिसके सहारे वह जीता है, केवल उसके लिए उपयोग कर सकता है। आज समाजमें जो असमानताएँ हैं, वे निश्चय ही जनताके अज्ञानके कारण हैं। वह जैसे-जैसे अपनी सहज शक्तियों का अनुभव करती जायेगी, वैसे-वैसे ये सारी असमानताएँ नष्ट होती जायेंगी। अगर क्रान्ति हिंसा द्वारा हुई तो हालत जैसी आज है, उसके विपरीत हो जायेगी, पर

वह परिवर्त्तन आजकी स्थितिसे बेहतर नहीं होगा। लोग जिस नई व्यवस्थाकी आशा लगाये हुए हैं, वह तो अहिंसा द्वारा अर्थात् हृदय-परिवर्त्तन द्वारा ही पैदा हो सकेगी। मेरी अपील और कार्य-प्रणाली शुद्ध और निर्मल अहिंसाकी है। फ्रान्सवालोंने संसारको 'स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता' का उत्तम मन्त्र दिया है। यह मन्त्र केवल फ्रान्सीसी जनताकी ही नहीं, बल्कि समूचे मानव-संसारकी विरासत है।

जो काम फ्रान्सवाले कभी न कर सके, सो हम कर सकते हैं। क्या देशके राजा-महाराजा, बड़े-बड़े जमींदार और व्यापारी इस मामलेमें अगुआ बनेंगे? इन्हीं सबको इस कार्यमें आगे बढ़कर भाग लेना है। जिन गरीबोंके पास अपने दारिद्र्य और दैन्यके सिवा दूसरोंको देने के लिए कुछ है ही नहीं, वे अगुआ क्या बनेंगे। आजकल मैं हर हफ्ते ब्रिटिश हुकूमतसे अपील करता रहता हूँ। जिस मित्र-भावसे मैं यह अपील कर रहा हूँ, ठीक उसी मित्र-भावसे वे अपीलें भी की जाती हैं। सम्भव है कि ब्रिटिश हुकूमत मेरी अपीलका कोई उत्तर न दे। देशके जो धनी-मानी लोग वस्तुतः शक्तिशाली ब्रिटिश सत्ताके स्तम्भ हैं, वे यदि अपने स्पष्ट कर्त्तव्यको समझ लें तो ब्रिटिश सत्ताको झुकना ही पड़े। जब मुझे ब्रिटिश सत्ताके इन स्तम्भोंसे उत्तर पाने की आशा न रह गई तभी जिस आम जनतापर ये स्तम्भ टिके हुए हैं उसका आह्वान करने की बात मुझे सोचनी पड़ी। इसमें कोई शक नहीं कि यह एक जबरदस्त जोखिम है, अतः मेरा धर्म हो जाता है कि मैं इसे टालने के लिए भरसक कोई उपाय बाकी न रहने दूँ। इसी हेतु मैंने यह अपील की है।

सेवाग्राम, २७ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-८-१९४२

३७६. उर्दूकी परीक्षा[1]

हिन्दुस्तानी प्रचार सभाने अपना काम पूरे जोशके साथ शुरू कर दिया है। यह सभा ऐसे कार्यकर्त्ताओंका एक मण्डल है जिन्हें सभाके सन्देश और उद्देश्यमें श्रद्धा है। सभाका सन्देश यह है कि हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा अंग्रेजी नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानी यानी हिन्दी-उर्दू है। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्राण श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन कांग्रेसके हिन्दुस्तानी-सम्बन्धी प्रस्तावके जनक थे। उन्होंने ही मुझे यह बात बिलकुल साफ तौरसे समझाई थी कि आजकी हालतमें हिन्दुस्तानीका मतलब हिन्दी-उर्दू होना चाहिए। जो लोग कांग्रेसकी सभाओंमें भाग लेते हैं, उन सबको इस बातकी सचाईका अनुभव हुआ होगा। क्योंकि जब कोई कांग्रेसी हिन्दीमें बोलने लगता है तो उर्दू बोलनेवाले उसकी बातको अगर कुछ समझ भी पाते हों तो भी पूरी तरह समझ नहीं पाते। यही बात उर्दूके बारेमें भी कही जा सकती है। इसलिए अगर हम

१ यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

चाहते हैं कि हमारी बात सब समझें तो हमें चाहिए कि हम मिली-जुली भाषाका प्रयोग करें, जैसा कि मैंने मालवीयजी और बाबू भगवानदासको करते सुना है। अतएव हिन्दुस्तानके राष्ट्रवादियोंके लिए जरूरी है कि वे हिन्दुस्तानीके दोनों रूपोंमें बोलें। जो इन दोनों रूपोंमें अपने खयाल आसानीके साथ जाहिर नहीं कर सकते, उनके बारेमें यह कहा जायेगा कि वे हिन्दुस्तानी बोलना नहीं जानते। इसीलिए उन्हें उर्दू और नागरी दोनों लिपियोंका अच्छा ज्ञान होना चाहिए। हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी स्थापनाके खास कारणोंमें एक यह भी है कि बहुत अर्सेसे महसूस की जानेवाली इस कमीको दूर किया जाये। इस सभाके संस्थापक हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सदस्य थे और हैं। लेकिन सिर्फ हिन्दीके प्रचारसे उनकी महत्त्वाकांक्षा तृप्त नहीं हो पाई। इसलिए उन्होंने सम्मेलनकी स्वीकृतिसे हिन्दुस्तानी प्रचार सभा स्थापित की है। स्वभावत: इस सभाका पहला काम यह होना चाहिए कि वह तमाम हिन्दी जाननेवाले लोगोंको उर्दू सीखने के लिए प्रेरित करे और उसके लिए जरूरी सहूलियतें पैदा करे। इसी खयालसे मैं आजकल मदद और रहनुमाईके लिए अंजुमन-तरक्की-ए-उर्दूके विद्वान मन्त्री मौलाना अब्दुल हक साहबके साथ लिखा-पढ़ी कर रहा हूँ। सभाकी परिषद्ने उर्दूकी पहली परीक्षा आगामी २२ नवम्बरको लेना तय किया है। परीक्षा-सम्बन्धी पाठ्यक्रम और अन्य विवरण यथासम्भव जल्दी ही प्रकाशित किये जायेंगे। इस परीक्षामें सम्मिलित होने की इच्छा रखनेवाले अपने नाम आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल, मन्त्री, हिन्दुस्तानी प्रचार सभा कार्यालय, वर्धाको भेजने की कृपा करें। मुझे आशा है कि जिन लोगोंने हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी परीक्षाएँ पास की हैं, वे सब इस आगामी उर्दू परीक्षाको पास करने का उत्साह दिखायेंगे। निस्सन्देह, जो हिन्दी नहीं जानते, उनका भी इस परीक्षामें स्वागत किया जायेगा। कभी भी किसी भी भाषाको जानने से हमारी मानसिक उन्नति ही होती है, और उस भाषाके बोलनेवाले लोगोंके साथ हम ज्यादा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। तब जो लोग सिर्फ हिन्दी जानते हैं, उन्हें उर्दू सीख लेने से और जो सिर्फ उर्दू जानते हैं, उन्हें हिन्दीकी जानकारी हासिल कर लेने से कितना अधिक लाभ होगा? अगर जीती-जागती हिन्दुस्तानीका जन्म होना है तो वह तभी होगा जब हिन्दी और उर्दू दोनोंका सहज और सुन्दर मेल होगा। इस प्रकारका मेल तबतक सम्भव नहीं, जबतक इन दोनों भगिनी भाषाओंपर एक-सा अधिकार रखनेवाले बहुतसे लोग तैयार न हो जायें।

सेवाग्राम, २७ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-८-१९४२

३७७. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

२७ जुलाई, १९४२

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

मूक गायकी पुकार सुनकर आपने बहुत ही अच्छा किया।[1] मुझे यह कहने की अनुमति दीजिए कि ईश्वर आपके इस नेक कामके लिए आपको सुखी रखे!

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द २, पृ० ४६९

३७८. पुर्जा : बलवन्तसिंहको

२७ जुलाई, १९४२

मेरी चिन्ता न करो।[2] दूसरोंके लिए अनशन किया जा सकता है या नहीं, सोचने की बात है। मैंने तो सैद्धान्तिक चर्चा ही की।

तुम्हारे बारेमें विचार तो करता ही हूं। चिन्ता मुद्दल नहीं। मुझे तुम्हारे बारेमें डर है ही नहीं। तुम्हारा यहां पड़ा रहना और आश्रमके काममें रत रहना मेरे लिए पर्याप्त है और ऐसा भी समझो कि उसमें गोसेवा छिपी हुई है। स्वामी इत्यादिसे मिलना, मुहब्बत करना। तुम्हारा यहां होना फायर बकेट-सा है। फायर बकेटमें कितनी शक्ति रहती है, जानते हो न? मैं खप गया तो भगवान मार्ग बता देगा। यों तो इसकी नींवसे तुम यहां हो, यहीं मरना। समय मिला तो बुला लूंगा। पर मुश्किल है।

बापुके आशीर्वाद

बापूकी छायामें, पृ० ३३८

१. देखिए पृ० २९५। वाइसरायने २५ जुलाईके अपने पत्रमें कहा था कि उन्होंने "ऐसी कार्रवाइयाँ की हैं जिनसे मुझे आशा है कि इस तरहकी दुर्घटनाओंका अनुपात भविष्यमें बिलकुल नगण्य रह जायेगा।"

२. बलवन्तसिंहको यह भय था कि गांधीजी अधिक दिन जीवित नहीं रहेंगे और उन्होंने यह जानना चाहा था कि गांधीजी की मृत्युके बाद उन्हें क्या करना चाहिए।

३७९. प्रश्नोत्तर[1]

प्र० १ : अगर अमेरिका, चीन और सोवियत रूस मिलकर गारंटी दें तो क्या आप सन्तुष्ट हो जायेंगे?

उ० : कांग्रेसकी माँगमें किसी गारंटीकी कोई बात सोची नहीं गई है, क्योंकि हिन्दुस्तानको इसी समय स्वतन्त्र कर देने की जरूरत है। इसमें भविष्यमें दी जानेवाली स्वतन्त्रताके बारेमें अविश्वासकी कोई बात नहीं है। बात यह है कि हिन्दुस्तान एक स्वतन्त्र राष्ट्रके नाते मित्र-राष्ट्रोंके पक्षमें, अगर यह किसी तरह मुमकिन हो तो एक निर्णायक भूमिका अदा करना चाहता है। आज तो हिन्दुस्तान मित्र-राष्ट्रों का दिन-ब-दिन ज्यादा विरोधी बनता जा रहा है, बावजूद इसके कि वे हिन्दुस्तानसे रंगरूटोंकी भर्ती करने में और इसी तरहकी कुछ चीजें लेने में समर्थ हो रहे हैं। लेकिन जरूरत इस बातकी है कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान स्वेच्छासे उत्साहके साथ युद्ध-कार्यमें सहयोग दे। हममें से बहुतोंका यह खयाल है कि मित्र-राष्ट्रोंकी सैनिक सफलताके लिए यह एक अनिवार्य शर्त है।

प्र० २ : हिन्दुस्तानकी अस्थायी सरकारका क्या रूप होगा और उसके सदस्य कौन लोग होंगे?

उ० : पहलेसे इस सम्बन्धमें कुछ कहना कठिन है कि हिन्दुस्तानकी आजादीकी घोषणा हो जाने पर क्या होगा। लेकिन मैं यह सोचता हूँ कि बाहरके किसी भी दबावकी गैर-मौजूदगीमें कोई भी कामचलाऊ सरकार देशके विभिन्न लोकप्रिय दलोंकी रजामन्दीसे ही स्थिरतापूर्वक काम कर सकती है। जबतक देशमें तीसरा पक्ष मौजूद है, इस तरहकी रजामन्दी हो नहीं सकती, क्योंकि लोग उस तीसरे पक्षकी मेहरबानीके मोहताज बने रहेंगे। कांग्रेसके अध्यक्ष यह सुझा ही चुके हैं कि आजादीके ऐलानके साथ ही सरकार अपनी हुकूमत मुस्लिम लीग, कांग्रेस या देशके किसी भी लोकप्रिय और संगठित दलके हाथमें सौंप सकती है। फिर हुकूमतको अपने हाथमें लेनेवाले दलका यह कर्त्तव्य हो जायेगा कि वह सुस्थिरता लाने के लिए बाकीके दलोंके साथ समझौता करे, क्योंकि स्वतन्त्र भारतकी सरकारका मुख्य आधार आम जनताका स्वेच्छा से दिया गया सहयोग ही हो सकता है। याद रहे कि जिस समय देशमें स्वतन्त्र भारतकी सरकार अपनी हुकूमत चलाती होगी, उस समय मित्र-राष्ट्रोंकी फौजें यहाँ बिना किसी रोक-टोकके अपनी कारंवाइयाँ करती रहेंगी, और यह सब उस सन्धिके अनुसार होगा जो स्वतन्त्र भारतकी सरकार और मित्र-राष्ट्रोंके बीच सम्पन्न होगी।

१. ये प्रश्न यूनाइटेड प्रेस, लन्दन द्वारा पूछे गये थे।

प्र० ३ : संक्रमणकालमें आप अराजकताको टालने की आशा कैसे रखते हैं?

उ० : अगर देशमें अस्थायी सरकार बन जाती है तो अराजकता अपने-आप टल जाती है, और कांग्रेस अध्यक्षके सुझावके अनुसार यही होना है।

प्र० ४ : अगर हिन्दुस्तानकी आजादीके लिए इंग्लैण्डका समाजवादी दल और उदार दल दोनों मिलकर कोई गारंटी दें तो क्या आप उसे मंजूर करेंगे?

उ० : पहले सवालके जवाबमें इसका जवाब भी मौजूद है।

सेवाग्राम, २८ जुलाई, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २-८-१९४२

३८०. पत्र : आसफ अलीको

२८ जुलाई, १९४२

प्रिय आसफ अली,

पत्रके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। तुमने जिस प्रचारका जिक्र किया है वह दुष्टतापूर्ण है। मैं 'हरिजन' में इसपर लिखनेवाला हूँ।[१]

जहाँतक मेरे खिलाफ आक्षेपोंका सवाल है, पिछले ५० सालसे मेरा भाग्य यही रहा है कि मुझे गलत समझा जाता रहा है। इस अन्तिम आक्षेपमें भी आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। फिर भी मैं देखूँगा कि क्या किया जा सकता है। कांग्रेस और मैं दोनों इस जहरके बावजूद टिके रहेंगे।

तुम दोनोंको प्यार।

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३६) से

१. देखिए "सच हो तो अशोभनीय है", ९-८-१९४२।

३८१. पत्र : मॉरिस फ्रिडमैनको

सेवाग्राम
२८ जुलाई, १९४२

प्रिय भारतानन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम मुझे समझोगे नहीं। मैंने तुमसे कहा था कि मैं तुम्हारे साथ सहमत हूँ और कांग्रेसको तथा प्रत्येकको विश्व-संघकी दिशामें ले जाने का प्रयास कर रहा हूँ। मेरा तो यह कहना भी है कि यदि कभी विश्व-संघ बनेगा तो वह सेवाग्रामके द्वारा या यों कहें कि सेवाग्रामके सुझायें रास्तेसे ही बनेगा। हिन्दुस्तानकी आजादी भी मैं इसी खातिर चाहता हूँ। यदि मैं इस वक्त अहिंसात्मक तरीकोंसे हिन्दुस्तानको आजाद करा पाता हूं तो अहिंसाकी ताकत मजबूतीसे जम जायेगी, साम्राज्यशाहीकी कल्पना ढह जायेगी और विश्व-राज्यका सपना साकार होने लगेगा। इस विश्व-राज्यमें सभी घटक राज्य स्वतन्त्र और समान दर्जेके होंगे। किसी भी राज्यकी अपनी फौज नहीं होगी। हाँ, अहिंसाकी ताकतमें सार्वभौम विश्वासका अभाव होने के कारण व्यवस्था बनाये रखने के लिए विश्व-पुलिस रखी जा सकती है।

यदि इतनेसे तुम्हारी आकांक्षाकी तुष्टि नहीं हो पाती तो कोई चीज तुम्हें सन्तुष्ट नहीं कर पायेगी। यह सब तुम्हें सेवाग्राम वापस बुलाने का लालच देने के लिए नहीं कहा जा रहा है। वैसा तो तुम तब करोगे जब अपने सहज वातावरणसे बाहर रहकर ऊब जाओगे।

किन्तु विश्व-संघका कार्य कर सको, इसके लिए तुम्हें पुनः अपने पेशेमें लगना जरूरी नहीं है। अपने पेशेमें वापस चले जाने से तो मार्गमें रुकावट ही आयेगी। यदि तुम्हारी आत्माको इसीमें सन्तुष्टि प्राप्त होती है तो तुम चाहो तो विश्व-संघकी भावनाके प्रसारके लिए धुंआँधार अभियान चला सकते हो।

अपना स्वास्थ्य ठीक रखो।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

३८२. पत्र : अब्दुल हक़को

देहली
२८ जुलाई, १९४२

भाईसाहब,

आपको हिंदुस्तानी प्रचार सभाके कानूनकी एक नकल भेजता हूं। उर्दूमें गलतियां आप पायेंगे। मेरे पास अच्छे उर्दूदां नहीं है। मैं खोजमें हूं। आप कोई मदद भेज सकेंगे? वह हिंदी भी जाननेवाला होना चाहिये।

आपके सभामें आ जाने का तो आपपर छोड़ा है। मौका देखकर आप आवेंगे ऐसी आशापर मैं बैठा हूं। कानूनमें आप देखेंगे कि कार्य कमिटीमें सब नाम नहीं भरे हैं इस आशासे के आपको उसमें लेने का मौका जरूर आवेगा।

यह खतका खास सबब अब बताता हूं। प्रचारमें हमारा पहला काम तो य[ह] होना चाहिये कि हम पहला इम्तेहान लें। नवेंबर २२ को लेने का तय किया है। आपकी अंजुमन कोई इम्तेहान लेती है जिसमें बिल्कुल जो उर्दू नहीं जानते हैं वह बैठ सकते हैं तो आपकी इम्तेहानके लिये हम लोगोंको तैयार करेंगे बशर्ते कि जिस जगहमें से उम्मीदवार मिले वहां आप इम्तेहानका मर्कज खोलें हम आपके एजंट बनने तैयार होंगे अगर आप चाहें। अगर आपके पास ऐसा सामान नहीं है तो आप हमको कुछ हिदायत देंगे, कुछ किताब बतायेंगे? क्या आप परीक्षक बनेंगे या आपके दफ्तरसे किसीका नाम भेजेंगे? जो मदद दे सकें उसके लिये हम सब एहसानमंद होंगे।

मूल पत्रसे: प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य: प्यारेलाल

३८३. पत्र : सैयद महमूदको

२८ जुलाई, १९४२

भाई महमूद,

किताब पहले सफेसे आखिर तक पढ़ गया। किताव तुम्हारे मनका आईना है। अच्छी है लेकिन मेरी निगाहमें छपने लायक नहीं है। तुम्हारी हकीकत सब सही नहीं लगती। तुम्हारी हकीकत ऐसी होनी चाहिये कि उसके बारेमें दो रायकी गुंजाईश ही न हो। आखिरके तीन बाबमें तो बहुतसी बातें नहीं चहेती। तुम्हारी हकीकत ऐसी होनी चाहिये की, उसे हिंदु और मुसलमान दोनों कबूल करें। भले इसमेंसे अलग अलग नतिजे निकालें।

तुम्हारा काम तो दोनोंको मिलाने का है। इसलिये मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी कितावपर ही वहस छीड़ जाय।

लेकिन मेरी आखरी सलाह यह है कि जैसे मौलानासाहब कहें वैसे करो। हिंदी सीखना शुरु किया होगा।

बापुकी दुआ

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ५११६) से

३८४. पत्र : अमृतकौरको

२९ जुलाई, १९४२

चि० अमृत,

पिछले दो दिनोंसे तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला। जब मैं नियमित रूपसे न लिखूं तो मुझे भी आशा नहीं करनी चाहिए। और मैं लिख नहीं सकता। आशा है तुम अच्छी तरह होगी।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१४१) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७४५० से भी

३८५. पत्र : तेजबहादुर सप्रूको

सेवाग्राम, वर्धा; म० प्रा०
२९ जुलाई, १९४२

प्रिय डॉ० सप्रू,

आपकी लिखी किसी चीजकी मैं उपेक्षा कर ही नहीं सकता। ब्रिटिश सत्ताकी सर्वोच्चताके रहते गोलमेज परिषद्में यदि मेरी रत्ती-भर भी आस्था होती तो मैं आपका सुझाव स्वीकार कर लेता। आप जानते ही हैं कि जब सर शंकरन नायरने अध्यक्षता की थी, जब दिल्लीमें मैंने अध्यक्षता की थी — यह बात दिल्लीकी ही है न? — और जब लन्दनमें मुझे जबरदस्ती अध्यक्ष बना दिया गया था तो क्या हुआ था। बेशक, आपको यह कहने की आजादी है कि हर बार कसूर मेरा ही था। मैं इसकी व्याख्या और तरह करता हूँ। पर परिणाम तो एक ही है। इस तरहके कार्यके लिए मैं उपयुक्त व्यक्ति नहीं हूँ। परन्तु यदि आपको आस्था हो और आप परिषद् बुलायें तो मैं आपकी आज्ञा मानने के लिए तैयार रहूँगा। आप कमसे-कम जल्दबाजी या घमंडके

आरोपसे तो मुझे बरी कर ही देंगे। मुझे अपनी या, अब कहना चाहिए, कांग्रेसकी माँगमें ऐसा कुछ नहीं लगा है जिसे माना न जा सकता हो।

आशा है आपको अब अपनी सारी बीमारीसे छुटकारा मिल गया होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीसे : गांधी-सप्रू पेपर्स; सौजन्य : नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता। जी० एन० ७५७८ से भी

३८६. तार : एगथा हैरिसनको

वर्धागंज
३० जुलाई, १९४२

एगथा हैरिसन
२, क्रैनबोर्न कोर्ट
एल्बर्टब्रिज रोड
लन्दन एस० डब्ल्यू० ११

चिन्ता मत करो। एण्ड्रयूज मेरे साथ हैं।[1] भगवानपर भरोसा रखो।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १५२३) से

१. एगथा हैरिसनने लिखा है: "अगस्त, १९४२ में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास होने से कुछ पहले मैंने गांधीजी को पत्र या तार द्वारा उनके वे शब्द याद दिलाये थे जो 'एण्ड्रयूजकी विरासत' में कहे गये थे। अपने इस लेखमें गांधीजी ने ब्रिटेन और भारत, दोनों पक्षोंके निकट आने की आशा व्यक्त की थी।"

३८७. पत्र : ग्लैडिस ओवेनको

३० जुलाई, १९४२

प्रिय ग्लैडिस,

तुम्हारा प्यारा पत्र अभी-अभी मिला। एण्ड्रूजका खयाल तो सदैव मेरे साथ रहता है, जैसे कि तुम्हारे साथ रहता है। मैंने केवल सम्भावनाओंकी चर्चा की है। जैसा तुम सोचती हो वैसा कोई उपवास अभी तो मनमें नही है। किसी भी बातकी फिक्र मत करो। ईश्वर जो चाहेगा वही होगा। मैं जल्दबाजीमें कुछ नहीं करूँगा। बम्बईसे जब वापस आ जाऊँ तब जरूर आना।

सप्रेम,

बापू

मिस ग्लैडिस ओवेन
न्यू मंजिल
लालबाग
लखनऊ, यू० पी०

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६११८) से

३८८. पत्र : जयसुखलाल गांधीको

३० जुलाई, १९४२

चि० जयसुखलाल,[1]

तुमने पत्र लिखा, यह अच्छा किया। चि० मनु[2] बहुत चतुर और चपल लड़की है। बा की खूब सेवा करती है। सब लोगोंमें हिल-मिल गई है। कोई उसकी शिकायत नहीं करता। पढ़ाईमें भी ठीक है। मुझे लगता है, वह यहाँ सन्तुष्ट है। रातको रोज मेरे पाँव दबाने आती है। साथ घूमने तो बेशक जाती ही है। उसकी चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है। तुम अपने मनको तैयार कर लो तो काफी होगा। त्यागपत्र देने की कोई जरूरत नही है। लेकिन संयम जितना बढ़ा सको, बढ़ाना। वैसे जबरदस्ती बिलकुल नहीं। मेरे बारेमें तो बिलकुल चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मैं भगवानके हाथमें हूँ, उन्हींकी शरण खोजता हूँ। अतः परम शान्तिका अनुभव करता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२४) से

१. गांधीजी के भतीजे
२. जयसुखलालकी पुत्री

३८९. पत्र : दत्तात्रेय बा० कालेलकरको

३० जुलाई, १९४२

चि० काका,

यह साथका पत्र यहीं छूट गया था। मेरे पढ़ने के लिए था न? मैंने पढ़ लिया। उस शब्दकोशके बारेमें टिप्पणी भेजना।

हमें एक पुस्तक-भण्डार रखना चाहिए, जिसके द्वारा हम अपनी पसन्दकी पुस्तकें बेच सकें।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९६१) से

३९०. पत्र : कृष्णचन्द्रको

३० जुलाई, १९४२

चि० कृष्णचंद्र,

तुमारी जिम्मेदारी तो २४ घंटोंके आश्रमवासीके आचार पर है। लेकिन उसका अमल कैसे करवाना अलग बात है। निरीक्षणकी बरदास्त खुशीसे करे तब ही हो सकता है। ऐसा समझकर चलो कि मैं हुं ही नहीं। जो हो सकता है वह करो। तुम्हारी अहिंसा कहां तक जाती है सो देखो।

जिसके बारेमें तुम्हें इल्म भी न हो ऐसी चीज तुम्हारे पर लादी जाय तो सहन करो। मेरी मदद चाहिये उसमें लेना ही।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४३७) से। एस० एन० २४४८६ से भी

३९१. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम
३१ जुलाई, १९४२

चि० अमृत,

मेरा यह कहना गलत था कि दो दिनोंसे तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला। एम० को मुझे तुम्हारे पत्र देनेका समय ही नहीं मिला।

अपनी बीमारीकी बात मुझे न बतानेकी तुम्हारी इच्छा गलत थी। इस तरह का दमन अच्छा नहीं है, क्योंकि उसके पीछे उद्देश्य अच्छा होते हुए भी उससे नुकसान होता है। खैर, वह तो आई-गई बात हुई। आशा है, अब तुम पूरी तरह ठीक हो गई होगी।

मेरे दिमागमें यह चीज बिलकुल साफ है कि बम्बई आकर शम्मीको दुःख पहुँचानेसे तुम्हारा शम्मीके पास रहना और बम्बई न आना कहीं ज्यादा अच्छा है। यदि कहीं वही हो जाये जो शम्मी सोचते हैं (मुझे आशा है कि वैसा होगा नहीं) तो उनके पास जितना सम्भव था उतना न रहनेके लिए तुम अपनेको कभी क्षमा नहीं कर सकोगी।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४१४२) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ७४५१ से भी

३९२. पत्र : तेजासिंहको

३१ जुलाई, १९४२

आपके पत्रके[1] लिए अनेक धन्यवाद। उस प्रश्नपर बहसमें न पड़नेके लिए आप मुझे क्षमा करें। जो सृष्टि तो नहीं कर सकता लेकिन मात्र संहार कर सकता है, ऐसे हरएक व्यक्तिके बारेमें, कृष्णके बारेमें भी—जहाँतक उनके मानवीय रूपका सम्बन्ध है—मैं यही कहूँगा। लेकिन इससे उनके या उनकी वीरताके प्रति मेरे सम्मानमें कमी नहीं आती।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

१. तेजासिंहने अपने पत्रमें गांधीजी द्वारा गुरु गोविन्दसिंहका "एक गुमराह देशभक्त" के रूपमें जिक्र किये जाने पर आपत्ति की थी। देखिए पृ० २९८-३०२।

३९३. पत्र : वान्दा दीनोवस्काको[1]

सेवाग्राम, वर्धा
३१ जुलाई, १९४२

प्रिय उमा,

तुम्हारे दो प्यारे पत्र मिले। तुम जो लिखती हो उससे मेरी भावनाओंको ठेस नहीं पहुँच सकतीं। तुम्हारी स्पष्टवादिताकी मैं सराहना करता हूँ। मैं तुम्हारे साथ तर्क करूँ, यह तो तुम चाहती नहीं हो।

आशा है, तुम पहलेसे अच्छी होगी।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

सम्बोधन और स्वाक्षरका यह पुराना ढंग तुम्हें बुरा नहीं लगना चाहिए। हममें मतभेद हो सकता है, पर हमारे प्रेममें अन्तर नहीं पड़ना चाहिए।

श्री उमादेवी
रमण आश्रम
तिरुवण्णामलै
द० भारत

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १२०५ और ८०५९) से। सौजन्य : वान्दा दीनोवस्का

३९४. पत्र : कृष्णचन्द्रको

३१ जुलाई, १९४२

चि० कृ० चं०,

ऐसी परीक्षा मैं कैसे करूं? किसी को न रख सकें तो हार क्यों? नहीं, अर्थ इतना ही था और हो सकता है कि कठिन लोगोंके साथ व्यवहारमें सहिष्णुता, उदारता आदि मनसे होते हैं या नहीं। इसमें तो परीक्षार्थी और परीक्षक दोनों तुम ही होगे।

रामजीकी अच्छी खबर दी।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४४३८) से। एस० एन० २४४८७ से भी

१. गांधीजी की एक पोल प्रशंसिका

३९५. भाषण : प्रार्थना-सभामें

जुलाई, १९४२

कल किशोरलालके सूचनापर[1] चर्चा हुई यह ठीक नहीं हुआ। उन्होंने तो मुझे बचाने के लिए लिखा था। यह धर्मशाला है, फिर भी इसमें कुछ नियम होने ही चाहिए। रुग्णालय भी है। रोगियोंको भी नियमका पालन करना पड़ता है। परन्तु भंसाली तो हम सबमें श्रेष्ठ पुरुष है। उसका नियम क्या? मुन्नालाल भी स्वतंत्र है। अपना बादशाह है। वह कितना काम कर लेता है, यह तो हम सबने किशोरलालभाईके मकानपर देखा है। वह भी अपवाद है। बलवन्तसिंह हम सबसे अच्छा मजदूर है। गाय और खेतीके बिना वह जिन्दा नहीं रह सकता है। लेकिन आज मेरे पास पड़ा है। वह भी अपवाद है।

बापूकी छायामें, पृ० ३३४

३९६. पत्र : अमृतकौरको

सेवाग्राम वर्धा
[१ अगस्त][2], १९४२

चि० अमृत,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। तुम शम्मीके कारण वहाँ रह गई हो। इस त्यागमें उल्लास होना चाहिए। इस कदमके सही होनेमें तुम्हें सन्देह क्यों है? बम्बईमें चाहे कुछ हो, पर अपने इस संयमसे तुम्हें बम्बई आने की अपेक्षा अधिक लाभ होगा। मैं १० तारीखसे पहले तो नहीं पर १४ तारीखसे पहले सेवाग्राम

१. किशोरलाल मशरूवालाने जुलाई १९४२ में निर्देश जारी किये थे कि प्रबन्ध-समितिसे पूर्व अनुमति लिये बिना कोई भी व्यक्ति गांधीजी से मिल नहीं सकेगा। मुन्नालाल शाह और बलवन्तसिंहने इसका विरोध किया और प्रार्थनाके बाद इसके बारेमें आश्रमके अन्य अन्तेवासियोंसे, जिनमें किशोरलाल भी थे, बात की।

२. साधन-सूत्रमें गांधीजी के हाथसे हिन्दी अंकोंमें १-९-४२ लिखा हुआ है, जो १-८-१९४२ की जगह भूल से लिखा गया लगता है।

लौटने की आशा करता हूँ। जब तुम्हें निश्चित तारीख पता चल जाये तो तुम रवाना हो सकती हो।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६९२) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६५०१ से भी

३९७. आश्रमवासियोंको निर्देश

[१ अगस्त, १९४२][1]

मैं कल बम्बई जा रहा हूं। क्या होगा यह तो नहीं कह सकता, लेकिन मेरी उम्मीद है कि ११ अगस्त तक मैं यहाँ वापिस आ जाऊंगा। १३ से अधिक तो नहीं। जो लोग आश्रममें हैं उनको समझना चाहिए कि आश्रमपर कुछ भी संकट आ सकता है। हो सकता है कि सरकार हमारा खाना भी बंद कर दे। तो जिनकी पत्ते खाकर भी यहां रहने की तैयारी हो वे लोग यहां रहें, बाकी सब चले जायं। अगर संकट आने पर जायेंगे तो हमारे लिए शर्मकी बात होगी।

बापूकी छायामें, पृ० ३३९

३९८. भाषण: हिन्दुस्तानी तालीमी संघ भवनके उद्घाटनके अवसरपर

सेवाग्राम
१ अगस्त, १९४२

सरकार द्वारा नियन्त्रित संस्थाओंमें बुनियादी तालीमकी जो पद्धति चालू की गई है, उससे अभीतक हम बेहतर नतीजे हासिल नहीं कर सके हैं। पर हमें आशा है कि हिन्दुस्तानी तालीमी संघ भवनमें हम वैसा कर सकेंगे, क्योंकि वर्धा शिक्षा पद्धतिके अधीन निर्धारित सप्तवर्षीय पाठ्यक्रमपर शोध और प्रयोग करने के लिए तथा उसके विकासके लिए यहाँ हमें स्वतन्त्रता मिलेगी।

जो संस्था सत्यपर आधारित है वह अवश्य सफल होगी। दुनिया सत्यकी नींवपर ही टिकी हुई है। सत्य किसी भी अन्य धर्मसे श्रेष्ठ है। ईश्वर सत्य है और सत्य ईश्वर है। केवल सत्य ही जीवित रहता है; और सब चीजें नष्ट हो जाने पर भी। मैं

१. गांधीजी २ अगस्तको सेवाग्रामसे बम्बईके लिए रवाना हुए थे।

इस संस्थाके लिए, जिसका मार्गदर्शक सिद्धान्त सत्य बताया गया है, शुभकामनाएँ करता हूँ और आप सबसे अपील करता हूँ कि आप भी इसके लिए शुभकामनाएँ करें और इसकी पूरी-पूरी सहायता करें।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ३-८-१९४२

३९९. प्रश्नोत्तर

सेवाग्राम
[२ अगस्त, १९४२ या उसके पूर्व][1]

विश्वसंघ

प्र० : हिन्दुस्तानकी आजादीके लिए कोशिश करनेके बजाय आप विश्वसंघके महानतर और उच्चतर ध्येयके लिए क्यों नहीं कोशिश करते? जैसे बड़ी चीजमें छोटी चीज समाई रहती है, वैसे ही विश्वसंघमें हिन्दुस्तानकी आजादी भी अपने-आप ही शामिल रहेगी।

उ० : स्पष्ट ही इस सवालमें एक भूल मौजूद है। इसमें शक नहीं कि स्वतन्त्र राष्ट्रोंके लिए विश्वसंघ एक महत्तर और उच्चतर ध्येय है। आत्मरत रहकर सिर्फ अपनी ही आजादीको कायम रखने की कोशिश करते रहने की अपेक्षा विश्वसंघकी भावनाको बढ़ाने की कोशिश करना सचमुच ही एक महत्तर और उच्चतर ध्येय है। आज बिना गुटबन्दीके अलग-अलग अपनी आजादीको कायम रखना हरएक राष्ट्रके लिए असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो रहा है। इस युद्धके दौरान तो यह चीज उनके लिए आवश्यक बन ही गई है, मगर अच्छा यह होगा कि वे अभी अपनी इच्छासे यह प्रतिज्ञा कर लें कि युद्धके बाद भी वे इसी तरह एक होकर रहेंगे। किसी एक सदस्य-राष्ट्रकी हारसे स्थितिमें कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। बचे हुए सदस्य तबतक दम नहीं लेंगे जबतक कि हारे हुए सदस्यकी हारका बदला न ले लिया जायेगा। लेकिन उस हालतमें भी वह विश्वसंघ तो कहा नहीं जा सकेगा। यह तो एक खास गुटके बीच महज रक्षाके लिए जोड़ी गई दोस्ती-भर होगी। विश्वसंघकी ओर सबसे पहला कदम तो यह है कि पराजित और शोषित राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली जाये। इस तरह हिन्दुस्तानको और आफ्रिकाको आजाद कराना होगा। दूसरी चीज यह करनी होगी कि आक्रमणकारी राष्ट्रोंको, आजकी स्थितिमें तो धुरी-राष्ट्रोंको, एक घोषणा द्वारा इस बातका विश्वास दिलाना होगा कि इस युद्धके खत्म होते ही वे मित्र-राष्ट्रोंकी भाँति ही विश्वसंघके सदस्य माने जायेंगे। इसके लिए पहले विश्व-संघके सदस्योंमें कुछ मूलभूत न्यूनतम सिद्धान्तोंके बारेमें आपसी समझौतेकी जरूरत होगी। अगर यह न हुआ तो संघ एक मामूली-से तनावसे ही चूर-चूर हो जायेगा।

१. यह तथा अगला शीर्षक सेवाग्राममें लिखे गये थे, जहाँ गांधीजी २ अगस्ततक रहे थे।

इसीलिए यह सारा काम स्वेच्छापूर्वक होना चाहिए। मैं यह कहूँगा कि ऐसे स्वेच्छापूर्ण सहयोगका आधार अहिंसा ही हो सकती है। चूँकि दुनियाके सभी राष्ट्रोंमें हिन्दुस्तान ही एक ऐसा राष्ट्र है जिसके पास इस दिशामें अपना एक सन्देश है—भले ही वह कितना ही सीमित और अपरिष्कृत क्यों न हो—इसलिए यह जरूरी है कि वह फौरन ही आजाद कर दिया जाये, ताकि वह इस काममें अपनी भूमिका अदा कर सके। मेरी इस वातके खिलाफ आप मौलाना अबुल कलाम आजाद और पण्डित जवाहरलाल नेहरूकी वातोंका हवाला न दीजिए। मैं जानता हूँ कि अहिंसाके वारेमें जो विचार मेरे हैं, वे उनके नहीं हैं। हिन्दुस्तानको आजादी मिल जाने पर मुमकिन है कि किसी भी दलको मेरी कोई जरूरत न रह जाये, और देशका बच्चा-बच्चा लड़ाईके लिए पागल हो जाये। फिर भी मुझे पूरा भरोसा है कि देशके अन्दर काफी तादादमें अहिंसाके ऐसे पुजारी रहेंगे जो अपना योग देंगे। लेकिन इसका आपके सवालके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। और फिर सवालके इस पहलूकी चर्चा तो मैं दूसरी जगह ज्यादा तफसीलके साथ करने जा ही रहा हूँ। मुझे उम्मीद है कि आप इस वातमें मेरे साथ सहमत होंगे कि पहले आजाद होने की कोशिश करके हिन्दुस्तान विश्वसंघके मार्गमें वाधक नहीं वन रहा है। वह तो संकटग्रस्त राष्ट्रोंके लिए, खास तौरपर चीन और रूसके लिए और समूची मानवजातिके लिए—आपके शब्दोंमें, विश्वसंघके लिए ही—अपनी आजादी चाहता है। मुझे आशा है कि आप यह भी मानेंगे कि हिन्दुस्तानके आज आजाद हुए विना दुनियामें कोई सार्वभौम संघ वन नहीं सकता। हिन्दुस्तानकी आजादी मित्र-राष्ट्रोंकी घोषणाओंकी सच्चाईका भी प्रमाण होगी।

नेपालका क्या होगा?

प्र० : जब हिन्दुस्तान आजाद हो जायेगा तो नेपालके साथ एक स्वतन्त्र देशकी तरह, जैसा कि वह आज है, व्यवहार किया जायेगा या उसे आजाद हिन्दुस्तान में शामिल कर लिया जायेगा?

उ० : अगर मैं भारतके मानसको थोड़ा भी जानता हूँ तो मेरा यह खयाल है कि इतने अर्सेतक गुलामीके कड़वे फलोंको चखने के वाद वह न तो किसी देशको हड़पना चाहेगा और न अपनेमें शामिल करना चाहेगा। वह साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा रख ही नहीं सकता। इसलिए नेपाल हिन्दुस्तानका एक सम्मानित और स्वतन्त्र पड़ोसी रहेगा। लेकिन मुझे यह यकीन नहीं है कि नेपाल उतना आजाद है जितना कि आप मानते हैं। मगर नेपालके वारेमें मेरी जानकारी इतनी कम है कि मैं आपके कथनको चुनौती नहीं दे सकता। मैं चाहता हूँ कि आपकी यह वात विलकुल सही हो।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ९-८-१९४२

४००. हिन्दुस्तानी

सेवाग्राम

[२ अगस्त, १९४२ या उसके पूर्व]

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा इस समय जो कार्य कर रही है उसके सिलसिलेमें काकासाहबने मुझे १८ अगस्त, १९२१ के 'यंग इंडिया' का निम्नलिखित उद्धरण भेजा है:

> बहुत-से हिन्दी-भाषी मित्र इस बातके लिए उत्सुक थे कि मैं 'नवजीवन' के हिन्दी संस्करणके प्रकाशनका दायित्व अपने ऊपर ले लूं। . . .
>
> मैं जानता हूँ कि भारतके विभिन्न भागोंमें मेरे लेखोंके अनेक हिन्दी अनुवाद छपते हैं। किन्तु सभी चाहते थे कि 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' के चुने हुए लेखोंका एक अधिकृत स्वतन्त्र अनुवाद एक जगह छपे। यह कार्य अब किया जा रहा है। इस संस्करणकी हिन्दी वस्तुतः हिन्दुस्तानी होगी जो ऐसे हिन्दी और उर्दू सरल शब्दोंसे बनी मिली-जुली भाषा होगी जिन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनों समझते हैं। प्रयत्न यह किया जायेगा कि इसमें कोई सजावट न की जाये। असल बात तो यह है कि मैं चाहता था कि इसका उर्दू रूप भी साथ ही निकले। किन्तु अभी यह नहीं निकाला जा सकता।[1]

यह पाठकोंको और मुझे स्मरण कराता है कि जो विचार मैं अब व्यक्त कर रहा हूँ और जिनपर जोर देना चाहता हूँ वे मैंने बरसों पहले व्यक्त किये थे। लक्ष्यकी सिद्धिका तरीका सिर्फ अब मिला है, यानी बहुत-सारे व्यक्ति एक जैसी आसानीसे हिन्दी और उर्दू बोल और लिख सकें। आगामी प्रथम परीक्षासे यह पता चलेगा कि कितनोंने यह तरीका अपनाया है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-८-१९४२

१. देखिए खण्ड २०, पृ० ५३९।

४०१. खादी पैदा करो[1]

जैसे 'अनाज पैदा करो' का नारा हम चारों ओर सुनते हैं, ऐसा ही खादीके बारेमें भी लगाइए। अगर हम खादी पैदा न करेंगे तो करोड़ोंको मजबूरन नंगा रहना पड़ेगा; जैसेकि अगर हम अनाज पैदा न करेंगे तो करोड़ोंको भूखों मरना पड़ेगा — और उनकी मृत्यु-संख्या युद्धमें होनेवाली मृत्यु-संख्यासे बहुत अधिक होगी। फर्क इतना ही होगा कि युद्धमें लोग जान-बूझकर मरते हैं और वीरोंकी तरह उनका सम्मान होता है, भूखसे मरनेवालोंको कोई याद तक नहीं करता; और ये तो केवल हमारे अज्ञान और आलस्यके कारण मरते हैं।

कपड़ोंके न मिलनेसे हम मरेंगे तो नहीं, लेकिन नंगा रहना भी तो हम पसन्द नहीं करेंगे। यह युद्ध आगे बढ़ा तो मिलें नहीं चल पायेंगी। वे तो लड़ाईका सामान पैदा करेंगी।

तब खादी कैसे तैयार की जा सकती है? मैंने तो कहा ही है कि इस वक्त मजदूरी देकर नहीं, लेकिन घर-घर स्वैच्छिक रूपसे चरखे चलाकर सूत तैयार किया जा सकता है। प्रत्येक क्षणका हम हिसाब करें और उसका सदुपयोग करें तो कपड़ों का घाटा कभी हो ही नहीं सकता। चूंकि ऐसे सूतके दानरूपमें प्राप्त होनेसे वह मजदूरीके सूतसे सस्ता ही होगा, इसलिए खादी भी अपेक्षाकृत सस्ती ही होगी।

हरिजनसेवक, २-८-१९४२

४०२. 'मगनदीप'

आम जनता 'ग्राम-उद्योग पत्रिका' को कम ही जानती है। यह अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघकी मुखपत्रिका है। डाक्टर भारतन कुमारप्पा इसके सम्पादक हैं और यह मगनवाड़ी, वर्धासे प्रकाशित होती है। जो लोग ग्रामोद्योगोंके पुनरुद्धारमें दिलचस्पी रखते हैं, उनके लिए इस पत्रिकामें ठोस पाठ्य सामग्री रहती है। इन दिनों, जब कि हमें अपनी जरूरतोंके लिए गाँवोंसे प्राप्त हो सकनेवाली चीजोंपर ही अधिकाधिक निर्भर रहने को विवश होना पड़ रहा है, ऐसे लेखोंका मूल्य खास तौरपर बढ़ जाता है। मसलन, मुमकिन है कि हमें अपने घरेलू उपयोगके लिए मिट्टीका तेल बिलकुल न मिले। आज भी बहुत ही कम मिल रहा है। मगनवाड़ीमें एक ऐसा लैम्प तैयार किया गया है जिसमें देशी तेलोंका उपयोग किया जा सकता है। अबतकके प्रयोगमें सरसोंके तेलको खास सफलता मिली है। यह सफलता इतनी सन्तोषजनक है कि मगनवाड़ीमें रोशनीके लिए सिर्फ इसी तेलका इस्तेमाल किया जाता है। यह लालटेन

१. मूलत: यह *खादी-जगत्* में प्रकाशित हुआ था।

प्रचलित लालटेनमें ही आवश्यक हेरफेर करके तैयार किया गया है। नालवाड़ी आश्रमके श्री सत्यन इसके आविष्कारक हैं। सिर्फ नमूनेके तौरपर ही बाहर भेजने के लिए वे कुछ लालटेनोंको अपने ढंगसे तैयार कर रहे हैं। इस महीनेकी पत्रिकामें मुख्यतः इस 'मगन दीप' की ही चर्चा की गई है। नये ढंगकी इस लालटेनका यही नाम रखा गया है। देहाती औजारों और देहातकी बनी चीजोंके बारेमें आविष्कार-बुद्धिसे काम करने की प्रवृत्ति स्वर्गीय मगनलाल गांधीकी खास विरासत है। इसीलिए उनके नाम पर संस्थाका नाम और संग्रहालयका नाम रखा गया है। इस विषयकी विशेष जानकारीके लिए मैं जिज्ञासु पाठकोंको सलाह दूंगा कि वे 'पत्रिका' को पढ़ें, जो व्यवस्थापक, मगनवाड़ी, वर्धाके पतेपर लिखने से प्राप्त की जा सकती है।

सेवाग्राम, २ अगस्त, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-८-१९४२

४०३. एक मौजूँ सवाल

[२ अगस्त, १९४२][1]

नीचे लिखा उद्धरण मैंने 'हिन्दू' से लिया है:

> वर्धावाले प्रस्तावपर टिप्पणी करते हुए 'मैंचेस्टर गार्जियन' अपने एक सम्पादकीयमें लिखता है कि प्रस्तावमें यह सूचित किया गया है कि अगर ब्रिटेन तुरन्त हिन्दुस्तानसे हट जाये तो हिन्दुस्तान "बाहरी आक्रमणका प्रतिरोध करने" में ब्रिटेनकी और मित्र-राष्ट्रोंकी मदद करेगा। इसपर हिन्दुस्तानमें और यहाँ भी यह पूछा जा रहा है कि इस "प्रतिरोध" का मतलब क्या है। यह सशस्त्र प्रतिरोध होगा या श्री गांधी जिस "प्रतिरोध" की हमेशा हिमायत करते आये हैं, वह प्रतिरोध, यानी अहिंसक असहयोग होगा? प्रस्तावकी भाषासे इस प्रश्नका समाधान हो जाना चाहिए था। लेकिन, होता नहीं है। पण्डित नेहरूने और कांग्रेसके कुछ दूसरे नेताओंने यह कहा है कि वे खुद सशस्त्र प्रतिरोध करने में विश्वास रखते हैं, बशर्ते कि ब्रिटेन जरूरी राजनीतिक सहूलियतें पैदा कर दे। लेकिन श्री गांधी यह मानते हैं कि हिन्दुस्तानी जापानका या दूसरे किसी भी आक्रमणकारीका "प्रतिरोध" शुद्ध अहिंसा द्वारा अत्यन्त प्रभावशाली ढंगसे करेंगे। अन्तमें 'मैंचेस्टर गार्जियन' पूछता है कि ब्रिटेन यह कैसे जाने कि प्रस्तावित भारत सरकार किस प्रकारका "प्रतिरोध" संगठित करेगी।

१. हरिजनबन्धु, ९-८-१९४२ में प्रकाशित गुजराती रूपान्तरके अनुसार

यह एक अच्छा सवाल है। लेकिन प्रस्तावित भारत सरकारकी ओरसे आज कौन बोल सकता है? यह तो स्पष्ट ही समझ लेना चाहिए कि वह न तो कांग्रेसी सरकार होगी, न हिन्दू महासभाकी सरकार होगी, और न मुस्लिम-लीगकी सरकार होगी। वह होगी समूचे हिन्दुस्तानकी सरकार। वह एक ऐसी सरकार होगी जिसे किसी भी फौजी ताकतका समर्थन प्राप्त न होगा। यह दूसरी बात है कि देशके फौजी कहलानेवाले वर्ग इस मौकेसे फायदा उठाकर देशकी जनतापर अपना आतंक जमा लें और अपनेको सरकारके रूपमें घोषित कर दें, जैसा कि फ्रैंकोने स्पेनमें किया है। लेकिन अगर वे न्यायबुद्धिसे अपना धर्म निभायें तो प्रस्तावित सरकार प्रारम्भमें अस्थायी होते हुए भी व्यापक आधारवाली होगी और आम जनताकी इच्छापर निर्भर करेगी। यहाँ हम यह मानकर चलें कि सैनिक वृत्तिवाले व्यक्ति, शक्तिशाली ब्रिटिश सेनाके समर्थनके अभावमें, इस तरह सत्ता न हड़पने की समझदारी दिखायेंगे। अगर जनताकी सरकार बनेगी तो उसमें पारसी, यहूदी, हिन्दुस्तानी, ईसाई, मुसलमान और हिन्दुओंका प्रतिनिधित्व अलग-अलग धार्मिक दलोंकी हैसियतसे नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानियों की हैसियतसे होगा। देशकी भारी बहुसंख्या अहिंसाको माननेवाली न होगी। कांग्रेस अहिंसाको धर्मके रूपमें नहीं मानती। जैसा कि 'मैंचेस्टर गार्जियन' ने ठीक ही कहा है, इस मामलेमें मैं जिस चरमसीमा तक जाता हूँ, उसतक दूसरे बहुत थोड़े ही लोग जाते हैं। मौलाना और पण्डित नेहरू सशस्त्र प्रतिरोध करने में विश्वास रखते हैं। और मैं इसमें यह और जोड़ दूँ कि बहुतेरे कांग्रेसजन भी रखते हैं। इसलिए, समूचे देशमें कहिए या कांग्रेसमें कहिए, मेरे साथ तो बहुत ही थोड़े लोग होंगे। लेकिन, जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं यदि सिर्फ अकेला रह जाऊँ तो भी मेरा मार्ग तो स्पष्ट ही है। यह मेरी अहिंसाकी परीक्षाका समय है। मुझे आशा है कि मैं इस अग्नि-परीक्षामें से अछूता बाहर आ सकूँगा। अहिंसाकी प्रभावकारितामें मेरी श्रद्धा अटल है। अगर मैं हिन्दुस्तान, ब्रिटेन, अमेरिकाको और धुरी-राष्ट्रों सहित बाकी सारी दुनियाको अहिंसाकी दिशामें मोड़ सकूँ तो जरूर ही मोड़ना चाहूँगा। लेकिन अकेले मानवी पुरुषार्थसे तो यह चमत्कार हो नहीं सकता। यह तो भगवानके हाथकी बात है। मेरा काम तो 'करना या मरना' है। निश्चय ही 'मैंचेस्टर गार्जियन' इस सच्ची चीजसे — शुद्ध अहिंसासे — नहीं डरता। इससे कोई भी नहीं डरता, न डरने की जरूरत है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-८-१९४२

४०४. पत्र : दत्तात्रेय बा० कालेलकरको

स्टेशनपर
२ अगस्त, १९४२

चि० काका,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। अभी तो बोर्डमें[1] बने रहो। समय आने पर निकलना आवश्यक हो जाये तो निकल जायेंगे।

सम्मेलनके बारेमें तो तुम्हें कोई निश्चित सुझाव देना पड़ेगा। तब कहीं मैं निर्णय दे सकूँगा। अन्यथा मेरी तो बुद्धि ही काम नहीं करेगी। उसकी उलझनें जितनी तुम जानते हो, उतनी दूसरा कोई नहीं जानता, इसलिए तुम्हें सक्रिय भाग तो लेना ही पड़ेगा। अध्यक्षके चुनावके सम्बन्धमें तुम्हें जो सुझाव देना हो दो। तुम्हारी मुश्किल मैं समझता हूँ। लेकिन विश्वास रखो, उसका हल अवश्य निकलेगा।

पुस्तकोंकी बात समझा। अपनी तबीयतके बारेमें लापरवाही मत करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०९६२) से

४०५. मारवाड़ लोक-परिषद्की माँगें

मारवाड़ लोक-परिषद्, जोधपुरकी जो माँगें मुझे प्राप्त हुई हैं, वे इस प्रकार हैं:

१. मारवाड़के पिछले सत्याग्रह आन्दोलनके फलस्वरूप सन् १९४० में जोधपुर दरबार और मारवाड़ लोक-परिषद्के बीच जो समझौता हुआ था, जोधपुर दरबार उसकी शर्तोंकी फिरसे पुष्टि करे।

२. जोधपुर दरबार ऐसा प्रबन्ध करे जिससे राज्यमें और खासकर राज्यके जागीरी इलाकोंमें कानूनकी प्रभुता कायम हो सके और लोक-परिषद्के कार्यकर्ता, राज्यके जागीरदारों या उनके मातहतोंके हाथों धमकाये या सताये जाने (यानी मारपीट या सम्पत्तिकी क्षति वगैरह) के डरके बिना, (१९४० के समझौतेकी शर्तोंके अनुसार) पूर्ण नागरिक स्वतन्त्रताका उपभोग कर सकें।

३. हाल ही में जो नये सुधार (सलाहकार सभाके रूपमें) जारी किये गये हैं, वे फौरन ही रद्द कर दिये जायें, और उनके बदले राज्यकी परिषद्ने

१. बम्बई सरकारका हिन्दी बोर्ड

जो संवैधानिक सुधार शुरूमें मंजूर किये थे, और जिनको महाराजा साहबकी स्वीकृति भी मिल चुकी थी, वे जारी किये जायें। यह इस बातका आश्वासन होगा कि महाराजा बहादुरकी छत्रछायामें पूर्ण उत्तरदायी सरकार कायम करने की दिशामें आगे और संवैधानिक प्रगति होगी।

४. म्युनिसिपल अधिनियम (जो १९४० में मंजूर किया गया था, मगर जिसपर अभीतक अमल नहीं हुआ) लोगोंकी बढ़ती हुई आवश्यकताओं और आकांक्षाओंको ध्यानमें रखकर संशोधित किया जाये, और लोक-प्रतिनिधियोंकी सच्ची सत्तावाला स्थानीय स्वायत्त शासन स्थापित किया जाये।

५. दरबार नियमित लताईके लिए कारगर और सन्तोषजनक बन्दोबस्त करे।

टिप्पणी: इस सिलसिलेमें दरबारके उस परिपत्रका जिक्र करना जरूरी मालूम होता है जो जिला-हाकिमोंके नाम इस हुक्मके साथ भेजा गया था कि जिन जगहोंमें लताईमें देर कर दी गई है, वहाँ वे नियमित लताईका बन्दोबस्त करें। दुर्भाग्यसे १९४१ में दरबारने अपना यह परिपत्र वापस ले लिया था, जिससे जिला-हाकिमोंके हाथमें कोई सत्ता नहीं रह गई और किसानोंको जागीरदारोंकी दयाका मोहताज बन जाना पड़ा।

६. गैरकानूनी और अनुचित उपकर व ऐसी ही दूसरी वसूलियाँ फौरन बन्द कर दी जायें और आगेके लिए इस बातका उचित बन्दोबस्त किया जाये कि यह रिवाज फिरसे चालू न हो सके। साथ ही, समूची जागीरी समस्याकी जाँच-पड़तालके लिए दरबार एक ऐसा आयोग बैठाये जो तरह-तरहके उपकरों, करों और दूसरी वसूलियोंके बारेमें, जो आज कानून-सम्मत मानी जाती हैं, अपनी सिफारिशें पेश करे।

७. दरबार जागीरदारोंके मामलेमें भी शस्त्र-पंजीकरण अधिनियम फौरन लागू करे। आज इस मामलेमें जागीरदारोंके और राज्यकी बाकी रिआयाके बीच रोषजनक भेदभावकी नीतिसे काम लिया जाता है। जागीरदारोंके सम्बन्धमें पंजीकरणकी तारीख महीने-दर-महीने मुल्तवी होती रहती है, जबकि आम रिआया को मजबूर किया जाता है कि वह अपने हथियारोंको दर्ज कराये और उनको रखने के लाइसेंस हासिल करे। यह नीति विशेषकर आजके नाजुक समयमें मारवाड़की आन्तरिक शान्ति और सुरक्षाके लिए बहुत ही गम्भीर परिणाम पैदा कर सकती है।

८. नीचे लिखी घटनाओंकी जाँच करवाई जाये:

(क) चण्डावल, लाडनूं और रोरू वगैरह जागीरोंमें जागीरदारों और उनके आदमियों द्वारा लोक-परिषद्के कार्यकर्त्ताओंके साथ की गई ज्यादतियाँ।

(ख) जेल-अधिकारियों द्वारा राजनीतिक बन्दियोंके साथ किया गया दुर्व्यवहार।

(ग) १९ जूनको और उसके बाद हुआ लाठी-चार्ज और दूसरी ज्यादतियाँ।

इन माँगोंमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसपर किसीको कोई एतराज हो सके। इनमें कोई असंयत बात भी नहीं है। इन माँगोंमें राजपूतानेकी रियासतोंकी मर्यादाओं का ध्यान रखा गया है, फिर उसका कुछ भी कारण क्यों न रहा हो। इन्हीं माँगों को पूरा कराने के लिए आज श्री जयनारायण व्यास और उनके साथी जेलके अन्दर हैं और श्री बालमुकुन्द बीसाको अपनी जान गँवानी पड़ी।[1] इसलिए बहुतेरे जोधपुरियोंने सविनय अवज्ञा करने का निश्चय किया है। इनमें स्त्रियाँ भी शामिल हैं जो जोधपुरके लिए एक अनोखा दृश्य है। मैं आशा करता हूँ कि जोधपुर दरबार लोक-परिषद्‌की इन संयत माँगोंको मंजूर कर लेगा। मैं यह भी आशा करता हूँ कि जोधपुरकी प्रजा, जिसने कष्ट-सहन द्वारा अपने ध्येयको प्राप्त करने का निश्चय किया है, उस वक्ततक दम न लेगी जबतक कि अपने तात्कालिक ध्येयको प्राप्त नहीं कर लेगी।

बम्बई जाते हुए, २ अगस्त, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-८-१९४२

४०६. अमेरिकी मित्रोंसे

बम्बई जाते हुए
३ अगस्त, १९४२

प्रिय मित्रो,

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी कार्य-समितिने स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव पास किया है, जिसपर देश और विदेशमें बहुत बहस हुई है, और जिसकी उतनी ही निन्दा भी की गई है, उसके बारेमें अपनी स्थितिको स्पष्ट करना मेरे लिए आवश्यक हो गया है, क्योंकि यह माना जाता है कि वह मेरी ही प्रेरणासे पास किया गया है। आप मुझसे बिलकुल अपरिचित तो नहीं हैं। पश्चिमी देशोंमें — ब्रिटेन भी इसका अपवाद नहीं है — शायद अमेरिका ही एक ऐसा देश है जहाँ मेरे सबसे अधिक मित्र हैं। मुझे व्यक्तिगत रूपसे जाननेवाले अंग्रेज मित्र मुझे अमेरिकी मित्रोंके मुकाबले ज्यादा सूक्ष्मदर्शी मालूम हुए हैं। अमेरिकामें मुझे वीरपूजा नामकी सुप्रसिद्ध बीमारीका शिकार होना पड़ता है। डॉक्टर होम्स, जो एक सज्जन पुरुष हैं और जो अभी कलतक न्यूयॉर्कके यूनिटी चर्चके पादरी थे, व्यक्तिगत रूपसे मेरे परिचयमें आये बिना ही अमेरिकामें मेरा विज्ञापन करनेवाले एजेंट बन गये। मेरे बारेमें वहाँ उन्होंने कुछ ऐसी मजेदार बातें कहीं, जिन्हें मैं खुद भी नहीं जानता था। इसलिए

१. देखिए पृ० १८५-८६, २४४, २८७-८८ और ३५३-५४।

अकसर अमेरिकासे मुझे ऐसे पशोपेशमें डालनेवाले खत मिला करते हैं जिनमें मुझसे चमत्कार कर दिखाने की उम्मीद रखी जाती है। डॉ० होम्सके बहुत दिनों बाद स्वर्गीय बिशप फिशरने, जो हिन्दुस्तानमें मेरे सीधे परिचयमें आये थे, वहाँ इस कामका बीड़ा उठाया। वे मुझे अमेरिका घसीट ले जाने में करीब-करीब कामयाब हो चुके थे। लेकिन दैवको कुछ और ही मंजूर था, इसलिए मैं आपके विशाल और महान देशकी यात्रा न कर सका और आपके अद्भुत देशवासियोंके दर्शन न कर पाया।

इसके अलावा, थोरोके रूपमें आपने मुझे एक ऐसा शिक्षक दिया जिसके 'ड्यूटी ऑफ सिविल डिसओबीडिअंस' ('सविनय अवज्ञाका कर्त्तव्य') निबन्धसे मुझे अपने उस कार्यका वैज्ञानिक समर्थन मिला जो मैं उन दिनों दक्षिण आफ्रिकामें कर रहा था। ब्रिटेनने मुझे रस्किन दिया, जिसके 'अनटु दिस लास्ट' ग्रन्थने मुझमें इतना परिवर्त्तन किया कि मैं एक ही रातमें बिलकुल बदल गया। मैंने वकालत छोड़ी, शहरमें रहना छोड़ा और मैं देहाती बनकर डरबनसे दूर एक ऐसे फार्मपर रहने लगा जो सबसे नजदीकके रेलवे स्टेशनसे भी तीन मील दूर था। और रूसने टॉल्स्टॉयके रूपमें मुझे वह गुरु दिया जिससे मुझे अपनी अहिंसाका एक तर्कयुक्त आधार प्राप्त हुआ। उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाके मेरे आन्दोलनको, जो उस वक्त शुरू ही हुआ था और जिसकी अद्भुत सम्भावनाओंको उस समयतक मैं जान भी नहीं पाया था, अपना आशीर्वाद दिया था। मेरे नाम लिखे अपने एक पत्रमें उन्होंने ही यह भविष्यवाणी की थी कि मैं एक ऐसे आन्दोलनको चला रहा हूँ जिसके कारण निश्चय ही दुनियाके पददलित लोगोंको आशाका एक सन्देश प्राप्त होगा। इसलिए आप यह समझ सकेंगे कि इस वक्त जो कदम उठाने का विचार मैंने किया है, उसमें ब्रिटेनके और पश्चिमी देशोंके खिलाफ दुश्मनीका कोई भाव नहीं है। 'अनटु दिस लास्ट' के सन्देशको पचाने और आत्मसात करने के बाद मैं फासीवाद या नाजीवादके समर्थनका दोषी बन ही नहीं सकता, क्योंकि उनका ध्येय तो व्यक्ति और उसकी स्वतन्त्रताका दमन करना है।

मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप हिन्दुस्तानसे हट जाने के मेरे सूत्रको, जो आम तौरपर 'भारत छोड़ो' के नामसे पुकारा जाता है, इस पृष्ठभूमिको ध्यानमें रखते हुए पढ़ें। इसके सन्दर्भको ध्यानमें रखते हुए इसका जो अर्थ निकल सकता है, उतना ही अर्थ आप इससे निकालिए — उससे ज्यादा नहीं।

मेरा दावा है कि मैं बचपनसे ही सत्यका पुजारी रहा हूँ। मेरे लिए यह अत्यन्त स्वाभाविक वस्तु थी। मेरी भक्तिभावयुक्त खोजके कारण मुझे 'ईश्वर ही सत्य है' के प्रचलित वचनके बदले यह दिव्य वचन प्राप्त हुआ कि 'सत्य ही ईश्वर है'। इस वचनके कारण मैं मानो ईश्वरको अपने सामने साक्षात् खड़ा पाता हूँ। मैं अनुभव करता हूँ कि वह मेरे रोम-रोममें व्याप्त है। अपने और आपके बीच इसी सत्यको साक्षी रखकर, मैं बलपूर्वक यह कहता हूँ कि अगर मुझे सहसा यह बोध न हुआ होता कि ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रोंके हितके लिए यह जरूरी है कि ब्रिटेन हिन्दुस्तानको बन्धन-मुक्त करने के अपने कर्त्तव्यका साहसपूर्वक पालन करे तो

मैंने अपने देशको यह सलाह कभी न दी होती कि वह ब्रिटेनको हिन्दुस्तानसे अपनी हुकूमत उठा लेने और इसके खिलाफ पेश की जानेवाली किसी भी माँगकी परवाह न करने को कहे। जबतक ब्रिटेन न्यायका यह कार्य नहीं करता जिसे करने में उसने काफी ढील की है, तबतक वह संसारकी मूक अन्तरात्माके सामने, जिसके अस्तित्वमें कोई सन्देह नहीं है, अपनी स्थितिको न्यायपूर्ण सिद्ध नहीं कर सकता। सिंगापुर, मलाया और बर्मासे मैंने यह सबक सीखा कि वहाँकी दारुण विपत्ति हिन्दुस्तानमें दोहराई नहीं जानी चाहिए। मैं दावेके साथ यह कहता हूँ कि अगर अंग्रेजोंने हिन्दुस्तानकी जनताका विश्वास न किया और उसे अपनी स्वतन्त्रताका उपयोग मित्र-राष्ट्रोंके पक्षमें न करने दिया तो यह संकट किसी तरह टाला नहीं जा सकेगा। लेकिन अगर ब्रिटेनने न्यायका यह सर्वोत्तम काम किया तो आज हिन्दुस्तानमें उसके खिलाफ जो असन्तोष बढ़ रहा है, उसकी कोई वजह न रह जायेगी। अपने इस कार्य द्वारा वह बढ़ते हुए दुर्भावको सक्रिय सद्भावमें बदल डालेगा। मेरा निवेदन यह है कि इससे वैसी ही मदद मिलेगी जैसी उन तमाम जंगी जहाजों और हवाई जहाजोंसे मिल रही है जिन्हें आप अपने अद्भुत करामाती इंजीनियरों और आर्थिक साधनोंकी बदौलत पैदा कर सकते हैं।

मैं जानता हूँ कि स्वार्थबुद्धिसे किये गये प्रचारने कांग्रेसकी स्थितिको आपके कानों और आँखोंके सामने अनेक प्रकारसे विकृत रूपमें रखा है। मेरे बारेमें यह कहा गया है कि मैं पाखण्डी हूँ और ब्रिटेनका छद्म शत्रु हूँ। विपक्षीसे समझौता करने की मेरी प्रत्यक्ष भावनाको मेरी असंगति बताया गया है और यह साबित किया गया है कि मैं बिलकुल ही अविश्वसनीय आदमी हूँ। अपने दावोंके समर्थनमें सबूत पेश करके मैं इस पत्रको बोझिल नहीं बनाना चाहता। अमेरिकामें मेरी जो साख रही है, अगर वह इस वक्त मेरे काम नहीं आती तो अपनी सफाईमें मैं कितनी ही दलीलें क्यों न दूँ, उनका उस भयंकर लेकिन झूठे प्रचारके सामने, जिसने अमेरिकियोंके कानोंमें विष डाला है, कोई प्रभाव नहीं होगा।

आप ब्रिटेनके ध्येयमें साझीदार बन गये हैं। इसलिए उसके प्रतिनिधि हिन्दुस्तानमें जो-कुछ भी करते हैं, उसकी जिम्मेदारीसे आप अपनेको अलग नहीं कर सकते। अगर आपने समय रहते असत्यके ढेरमें से सत्यको नहीं छान निकाला तो आप मित्र-राष्ट्रोंके कार्यको भयंकर हानि पहुँचायेंगे। आप जरा विचार कीजिए। बिना शर्त हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रताको मान लेने की जो माँग कांग्रेस कर रही है, उसमें अनुचित क्या है? कहा जाता है कि 'पर यह उसका वक्त नहीं है।' हम कहते हैं: 'हिन्दुस्तानकी आजादी को मान लेने का यही मनोवैज्ञानिक मुहूर्त है।' क्योंकि तब और केवल तभी जापानी आक्रमणका दुर्निवार प्रतिरोध किया जा सकेगा। अगर हिन्दुस्तानके लिए इसका अत्यन्त महत्त्व है तो मित्र-राष्ट्रोंके हितकी दृष्टिसे भी इसका उतना ही महत्त्व है। हिन्दुस्तानकी आजादीको मान लेनेके रास्तेमें जो भी कठिनाइयाँ पैदा हो सकती हैं, कांग्रेसने उन सबका पहलेसे खयाल कर लिया है और उनके उपाय भी सुझाये हैं। मैं चाहता हूँ

कि आप यह समझ लें कि हिन्दुस्तानकी आजादीको तुरन्त ही मंजूर कर लेना अव्वल महत्त्वका युद्ध-प्रयत्न होगा।

आपका मित्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-८-१९४२

४०७. प्रश्नोत्तर

सम्पादक क्या करें?

प्र० : देशके लिए जो संकट उपस्थित हो गया है, उसमें आप पत्र-सम्पादकोंसे किस चीजकी अपेक्षा रखते हैं?

उ० : कांग्रेसके प्रस्तावपर हिन्दुस्तानके समाचारपत्रोंने कुल मिलाकर अपना रुख जिस ढंगसे जाहिर किया है, उसपर मुझे गर्व है। लेकिन कड़ी परीक्षा तो अभी आनी है। मुझे आशा है कि जब वह वक्त आयेगा तो हिन्दुस्तानके समाचार-पत्र निर्भयतापूर्वक राष्ट्रीय हितका प्रतिपादन करेंगे। किसी दबावसे दबे रहकर अखबार निकालने से बेहतर तो यह है कि अखबार निकाला ही न जाये। मगर साथ ही, मैं उनसे यह नहीं चाहता कि वे कांग्रेसके अन्धानुयायी बन जायें, और जो चीज उनके विवेक और अन्तरात्माके विरुद्ध हो, उसका भी समर्थन करें। राष्ट्रीय संस्थाओं और राष्ट्रीय नीतियोंकी ईमानदारीसे आलोचना करने से राष्ट्रीय हितकी कभी हानि नहीं होगी। जिस खतरेसे बचने की जरूरत है, वह तो साम्प्रदायिक वैर-भावके भड़क उठने का है। जो आन्दोलन हम शुरू करने जा रहे हैं, अगर उसके फलस्वरूप हमारे बीच साम्प्रदायिक एकता कायम न हुई और अंग्रेजोंके साथ हमारी सम्मानपूर्ण सुलह न हुई तो वह बेमानी हो जायेगा। मैं यह दावेके साथ कहता हूँ कि कांग्रेसने अपनी जो नीति तय की है, वह अंग्रेजोंके खिलाफ दुश्मनीके खयालसे हरगिज नहीं की है—इसके विपरीत चाहे कुछ भी क्यों न कहा जाये। क्योंकि इस नीतिकी तहमें पूर्ण अहिंसाकी ही भावना रही है। अतएव मैं यह आशा करूँगा कि हमारे अखबार उन सब लोगोंको जिनके दिलमें राष्ट्रीय हितकी भावना बसी है, यह चेतावनी देते रहें कि वे ऐसा कोई काम न करें जिससे अंग्रेजोंके खिलाफ या आपसमें हिंसाको प्रोत्साहन मिले। ऐसी हिंसासे अपने ध्येयकी दिशामें हमारी प्रगति अवश्य ही रुक जायेगी।

बम्बई जाते हुए, ३ अगस्त, १९४२

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-८-१९४२

४०८. टिप्पणी : होरेस अलेक्जेंडरके पत्रपर[1]

[३ अगस्त, १९४२][2]

यह पत्र एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज मित्रका है, जो भारतके सर्वश्रेष्ठ अंग्रेज मित्रोंमें से भी हैं। पत्र जितना सौम्य और खरा है उसका उत्तर भी उतना ही सौम्य और खरा होना चाहिए। ब्रिटिश भावनाके बारेमें जो-कुछ वे कहते हैं मैं उसके एक-एक शब्दपर यकीन करता हूँ। एगथा हैरिसन मुझे तारपर-तार भेज रही हैं, जिनमें जो-कुछ मैं कर रहा हूँ और कांग्रेस कर रही है उसपर उनका हार्दिक दुःख छलका पड़ता है। और एगथा हैरिसन, शरीरसे दुर्बल होते हुए भी, गलतफहमीके जालोंको झाड़ने में अपनेको खपा रही है। वे प्रत्येक जिम्मेदार अंग्रेज राजनेतासे, जो भी उनसे मिलनेको तैयार हो, (मैं स्वीकार करता हूँ कि वे सब उनसे मिलनेको तैयार हो जाते हैं) मिल रही हैं और भारतके पक्षकी वकालत कर रही हैं। लेकिन उनके सामने एक दुर्भेद्य दीवार है। ऐसा लगता है कि उन क्षेत्रोंमें मेरे खयालसे मेरी जो साख थी वह खत्म हो गई है। जिस क्षतिके लिए क्षति उठानेवालेको कोई समुचित कारण ही न दिखाई देता हो, उसकी पूर्ति बहुत ही कठिन है। इसलिए इस समय तो मुझे अपनी सदाशयताके पुनः आश्वासन और प्रतिपादनसे ही सन्तोष कर लेना चाहिए। स्वर्ग मिलनेकी खातिर भी मैं अपनी साख खोना नहीं चाहूँगा। पर कुछ मौके ऐसे होते हैं जब खुद विश्वास करनेवालेकी ही खातिर साखकी हानिका खतरा उठाना (मोल लेना नहीं) जरूरी हो जाता है।

असहयोगके अपने प्रयोगोंकी शुरुआत मैंने अपने परिवारके लोगोंसे की थी। उस साहसके लिए पश्चात्ताप करनेकी मुझे कभी जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि जैसा कि उन्हें खुद पता चल गया — कुछको जल्दी ही और कुछको देरसे — वे खतरे उनकी ही खातिर उठाये गये थे। प्रेम और सत्य जहाँ कोमल हैं, वहाँ कभी-कभी इतने कठोर भी होते हैं कि असह्य हो जाते हैं।

१. साधन-सूत्रमें होरेस अलेक्जेंडरको उस पत्रका लेखक नहीं बताया गया है जिसपर कि यह टिप्पणी है। पर विषयवस्तु तथा अगले शीर्षकसे भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पत्रके लेखक होरेस अलेक्जेंडर ही थे। पत्रमें होरेस अलेक्जेंडरने गांधीजीको बताया था कि 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव ऐसे समयपर आया है जब कि इंग्लैण्डके लोग अपनी "सबसे बड़ी अग्नि-परीक्षामें से" गुजर रहे हैं और इससे इंग्लैण्डमें बड़ी तीव्र भावनाएँ उभरी हैं और इंग्लैण्डमें भारतके मित्र इसे "पीठमें छुरी भोंकना" मान सकते हैं। उन्होंने गांधीजी से कहा था, आप कुछ कहिए "जिससे यह पता चले. . . कि जिससे उनका सर्वनाश सम्भव है ऐसा मार्ग तैयार करनेको आप क्यों बाध्य हुए हैं।"

२. देखिए अगला शीर्षक, जिसमें गांधीजी यह लिखते हैं कि यह टिप्पणी उन्होंने रेलमें लिखी है।

इस संघर्षको कमसे-कम उथल-पुथलके साथ समाप्त करने के विविध उपाय सोचने में मैंने कई रातें जागते-जागते काटी हैं। परन्तु मैंने देखा कि ब्रिटिश मानसको सत्यसे अवगत कराने के लिए किसी-न-किसी रूपमें संघर्ष अनिवार्य है। मुझे इसमें रत्ती-भर भी सन्देह नहीं है कि हालात बतायेंगे कि मैं सही था और मैंने जो किया वह विशुद्ध मित्रताकी भावनासे किया था। ब्रिटिश सत्ता इस आन्दोलनसे पूरे वेग और तत्परतासे निपटेगी। यातनाएँ तो सब जनताको ही सहनी होंगी। यह सच है, पर अन्तमें ब्रिटेन अपनी नैतिक प्रतिष्ठा खो देगा। लेकिन वह जो-कुछ कर रहा है वह उसे करने देना, उसे दिवालिया बनाना है, और शायद, युद्धमें हरवाना है; जब कि मैंने कांग्रेसको जो आन्दोलन शुरू करनेकी सलाह दी है, वह उस दिवालियेपनको रोकने और ग्रेट ब्रिटेनको एक नैतिक ऊँचाईपर पहुँचानेके लिए है, जिससे उसे और उसके सहयोगी राष्ट्रोंको निश्चय ही विजय प्राप्त हो। इसमें परोपकारके दावे-जैसी कोई बात नहीं है।

यह तथ्य है, और किसीने इसे अभीतक अस्वीकार भी नहीं किया है कि भारतको इस आन्दोलनसे स्वाधीनताका लक्ष्य प्राप्त होना है। पर यह बात यहाँ अप्रासंगिक है। प्रासंगिक तो यह मूल बात है कि यह आन्दोलन ब्रिटेनके न चाहने पर भी उसकी सहायताके लिए है। यह एक बहुत बड़ा, लगभग धृष्टतापूर्ण दावा है। पर मुझे यह दावा करनेमें कोई लज्जा नहीं है, क्योंकि यह एक व्यथित हृदयसे निकला है। यह दावा सच्चा है या झूठा, यह समय ही बतायेगा। इस निर्णयके बारेमें मेरे मनमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि बुद्धिका साक्ष्य तो गलत हो सकता है पर हृदयका कभी गलत नहीं होता।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४३८) से

४०९. पत्र: होरेस अलेक्जेंडरको

बिड़ला हाउस, बम्बई
३ अगस्त, १९४२

प्रिय होरेस,

तुम्हारा मार्मिक पत्र[1] रेलमें मैंने दूसरी बार पढ़ा। और मैंने यह निश्चय किया कि मैं इसे तुम्हारा नाम और प्रारम्भिक अंश दिये बिना छापूँगा। यदि सम्भव हुआ तो उसपर अपनी टिप्पणीकी एक नकल मैं तुम्हें भेज दूंगा।[2] वह मैंने तभी वहीं रेलमें लिख डाली। मैं उससे अधिक कुछ कर नहीं सकता था। अकसर मैंने यह पाया है कि मौन वाणीसे अधिक मुखर होता है और कार्य तो सबसे अच्छा रहता है। परन्तु क्योंकि मैं लिखता और समझाता रहा हूँ, इसलिए मैंने सोचा कि मुझे इस मामलेको अपवाद नहीं बनाना चाहिए। इसके अलावा, तुम्हारा पत्र उत्तरकी माँग करता है।

१. देखिए पिछला शीर्षक। लेकिन वह पत्र हरिजन में प्रकाशित नहीं हुआ था।
२. देखिए पिछला शीर्षक।

तुम्हारे विचारमें यदि कोई और चीज ऐसी हो जो मुझे करनी चाहिए तो मैं उसके लिए सदा तैयार हूँ। मुझे खुलकर पूरी बात बताओ। गलतफहमियोंको दूर करने में कोई भी कोशिश बाकी नहीं रखनी चाहिए। मुझे गम्भीर आशंका यह है कि जो सत्तामें हैं वे भारतको छोड़ना नहीं चाहते हैं। उनकी धारणा यह लगती है कि भारतको खोना युद्धमें पराजित होना है। यदि यह सच हो तो बड़ी भयानक बात है। मेरी रायमें भारतको एक अधिकृत क्षेत्रकी तरह रखना युद्धमें पराजित होना है। 'हरिजन' के स्तम्भोंमें मैंने अपना जो सन्देह व्यक्त किया है उसे दूर करने में मेरी सहायता करो।

सप्रेम,

होरेस अलेक्जैंडर
ब्यूकैनन्स होटल
सदर स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४३६) से। पुलिस कमिश्नर्स ऑफिस, बम्बईकी फाइल सं० ३००१/४१ (पृ० ६९) से भी

४१०. पत्र : अमृतलाल चटर्जीको

बिड़ला हाउस, बम्बई
३ अगस्त, १९४२

प्रिय अमृतलाल,

दोनों भाइयोंके व्यवहारसे मुझे दुःख पहुँचा है। पर तुम्हारेसे तो और भी ज्यादा पहुँचा है।[1] उन्होंने मुझसे (दोबारा सोचने पर खयाल आता है धीरेनने) निश्चित रूपसे कहा था कि आभाको कनुसे विवाह कर लेना चाहिए। तुमने निश्चित रूपसे यह कहा था कि वह बालिग होने तक इन्तजार करे और उसके बाद यदि उसकी इच्छा हो तो कनुसे विवाह कर ले, भले ही उसकी माताकी स्वीकृति तब मिले या न मिले। मैंने सभी पक्षोंको ऐसा ही बता दिया। वीणाको लाने की मेरी इच्छा नहीं थी, पर तुमने ही कह-सुनकर मुझे उसके लिए तैयार किया था। तुम्हारी सहमतिसे ही मैंने उसे राजकोट भेजा। आभाको भी मैं तुम्हारी इच्छासे लाया था और तुम्हारी सहमतिसे ही उसे राजकोट भेजा था। इस सबमें सार्वजनिक पैसा खर्च हुआ है। अब तुमने सब-कुछ गड़बड़ कर दिया है। बेचारा नारणदास और उसकी पत्नी परेशान हैं और इसी तरह लड़कियाँ भी। सार्वजनिक पैसेमें से अब मैं कुछ भी खर्च नहीं करूँगा।

१. अमृतलाल चटर्जीने लिखा था कि मेरी पत्नी और दोनों लड़के क्योंकि कनु गांधीसे आभाके विवाहके विचारके विरुद्ध हैं, इसलिए इस प्रस्तावको छोड़ना ही ठीक रहेगा। उन्होंने यह भी कहा था कि मेरी दोनों लड़कियाँ, जो राजकोट में हैं, परिवारके पास वापस भेज दी जायें।

यदि उन्हें वापस बुलाना है तो तुम तुरन्त बुला लो, क्योंकि उन्हें राजकोटमें रखने पर कुछ तो खर्च होता ही है। तुम लड़कोंको भी वापस बुला सकते हो। जब वे इतने अविश्वसनीय हैं तो करेंगे ही क्या? कलकत्ता जाना होगा, यह सोचकर लड़कियाँ बहुत ही दुःखी हैं। पर यदि तुम उन्हें चाहते हो और पर्याप्त रुपये भेज देते हो तो मैं उन्हें भेज दूंगा।

तुम इतने अविश्वसनीय सिद्ध हो रहे हो कि निराशा होती है, और मैं तुम्हारा संघर्ष या किसी भी और चीजमें मार्गदर्शन नहीं कर सकता। मुझे अफसोस है कि झूठी दयासे द्रवित होकर मैंने तुम्हें आश्रममें ले लिया। मुझे इस सब चिन्तासे छुट्टी दो।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३४५) से। सौजन्य: अमृतलाल चटर्जी

४११. सत्याग्रहियोंको दिये जानेवाले निर्देशोंका मसौदा[1]

बम्बई
४ अगस्त, १९४२[2]

गुप्त—सिर्फ ब० क० के सदस्योंके लिए

हड़तालके दिन शहरोंमें जलूस नहीं निकाले जायेंगे, न सभा की जायेंगी। सब लोग २४ घंटे फाका और प्रार्थना करेंगे। दुकानदार, यदि सत्याग्रहकी लड़ाईको पसन्द करते हैं तो सब दुकानें बन्द करेंगे, लेकिन किसीको जबरदस्तीसे मजबूर नहीं किया

१ और २. दो वर्ष बाद, इस मसौदेके अंग्रेजी अनुवादके प्रकाशनके समय, इसकी भूमिकामें, जिसपर पंचगनी, २४-७-१९४४ की तारीख है, गांधीजी कहते हैं:

"सत्याग्रहियोंके मार्ग-दर्शनके लिए निर्देशोंका यह मसौदा हिन्दुस्तानी भाषामें था और इसकी नकलें देवनागरी और फारसी दोनों लिपियोंमें तैयार की गई थीं। यह ७ [लेकिन देखिए इस पा० टि० का अन्तिम अनुच्छेद) अगस्त, १९४२ को तैयार किया गया था और ८ अगस्तको कार्य-समितिके सामने रखा गया था और वहाँ इसपर बहस हुई थी। ९ अगस्तको प्रातः कार्य-समितिकी फिर बैठक होनी थी, पर वह तो हो नहीं सकी।

सरकारके साथ मुझे जो बातचीत करनी थी उसके बारेमें मैं अपना दृष्टिकोण कार्य-समितिके आगे रखनेवाला था। बातचीतमें कमसे-कम तीन सप्ताहका समय लगना था। ये निर्देश संकल्पित बातचीतके विफल हो जाने पर ही लोगोंके सामने आने थे।

मसौदेको इस समय प्रकाशित करने के दो उद्देश्य हैं। यह दिखाता है कि उस समय मेरा दिमाग किस तरह काम कर रहा था। सरकारी अभियोगमें मेरी अहिंसाके विरुद्ध जो संकेत थे, यह मसौदा उनका एक और उत्तर है। दूसरा और अधिक प्रासंगिक उद्देश्य कांग्रेसी कार्यकर्ताओंको यह बताना है कि मैं उस समय किस तरह काम करता।

मुझे पता चला है कि तोड़फोड़ और इसी तरहके अन्य कामोंको न्यायोचित ठहराने के लिए मेरे नामका खुलकर उपयोग किया गया था। मैं चाहूँगा कि हर कांग्रेसी, बल्कि हर हिन्दुस्तानी, यह महसूस करे कि भारतको विदेशी शासनके दुःस्वप्नसे मुक्त करने की जिम्मेदारी उसके ऊपर है।

जायेगा। देहातोंमें जहां दंगे फसादका कोई डर नहीं वहां सभाएं की जायें, जलूस निकाले जायें और जिम्मेदार कांग्रेसी, जो आम सत्याग्रहमें विश्वास रखते हैं, सत्याग्रहका मतलब लोगोंको समझा दें। इस सत्याग्रहका हेतु अंग्रेजी हुकूमतको हटाकर सारे हिन्दुस्तानको आजाद करना है। आजाद हिन्दुस्तानका राज्य किस तरह चलेगा यह अंग्रेजी हुकूमतके हट जाने पर सारी कौम, सब पार्टियां मिलकर तय करेंगी। वह राज्य न कांग्रेसका होगा, न किसी एक पक्ष या पार्टीका। राज ३५ करोड़ हिन्दुस्तानियोंका होगा। सब कांग्रेसी इस बातको साफ करें कि यह राज हिन्दू या किसी एक जातिका हरगिज नहीं होगा। यह भी साफ किया जाये कि यह सत्याग्रह अंग्रेजों के खिलाफ नहीं, क्योंकि हम किसीको अपना दुश्मन नहीं मानते, मगर अंग्रेजी हुकूमतके ही खिलाफ है। यह फर्क सब देहातियोंको अच्छी तरह समझाया जाये।

किन-किन जगहोंमें हड़ताल हुई, और क्या-क्या हुआ उसका बयान हर कार्यकर्त्ता सूबा कांग्रेसको भेजे और सूबा कांग्रेस मर्कजी दफ्तरको। जिस जगह किसी सदरको सरकार गिरफ्तार कर ले वहां किसी दूसरेको चुन लिया जाये। हर सूबा अपनी हालतके मुताबिक अपना प्रबन्ध कर ले। आखिर अंजाममें तो हरेक कांग्रेसी अपना सदर है और सारे मुल्कका सेवक या खिदमतगार है। एक आखिरी बात। ऐसा हरगिज न माना जाये कि जिसका नाम कांग्रेसके दफ्तरमें है सिर्फ वही कांग्रेसी है, बल्कि हरेक हिन्दुस्तानी, जो सारे हिन्दुस्तानकी आजादी चाहता हो और इस लड़ाईमें शान्ति और सत्यको पूरा-पूरा मानता हो वह अपनेको कांग्रेसी समझकर काम करे। जिसके दिलमें साम्प्रदायिकता है, किसी हिन्दुस्तानी या अंग्रेजसे नफरत है, वह खामोश रहेगा तो वही उसकी लड़ाईमें मदद होगी। लेकिन अगर ऐसा शख्स लड़ाईमें दखल देगा तो आजादीके रास्तेमें रोड़ा अटकायेगा।

हरेक सत्याग्रहीको यह समझकर चलना चाहिए कि आजादी हासिल होने तक उसे लड़ते ही रहना है। आजादी लेंगे या मर मिटेंगे यह उसका अपने दिलसे इकरार होना चाहिए।

हड़तालमें सरकारी दफ्तरों, कारखानों, रेलवे, डाकघर वगैरहमें काम करनेवालोंको हिस्सा नहीं लेना चाहिए। इस तरह हम यह बताना चाहते हैं कि जापानी नाजी या फासी हमलेको कभी बरदाश्त न करेंगे। इसलिए फिलहाल हम अंग्रेजी हुकूमतकी ऊपर बताई हुई चीजोंमें दखल नहीं देंगे। लेकिन ऐसा मौका जरूर आ सकता है कि जब हम सरकारी दफ्तरमें काम करनेवाले सब लोगोंको अपनी नौकरियां

अहिंसक रहते हुए कष्ट सहना ही एकमात्र मार्ग है। भारतकी स्वतन्त्रता हमारे लिए सब-कुछ है, पर वह संसारके लिए भी बहुत-कुछ है। क्योंकि अहिंसा द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करने का अर्थ विश्वमें एक नई व्यवस्थाका शुभारम्भ होगा।

किसी और उपायसे मानव-जातिके लिए कोई आशा नहीं है।"

यद्यपि गांधीजी ने अपनी भूमिकामें यह लिखा है कि यह मसौदा "७ अगस्तको तैयार किया गया था", लेकिन मूल हिन्दीकी उपलब्ध प्रतिमें स्पष्ट रूपसे "बम्बई, ४-८-४२" की तारीख दी गई है।

छोड़कर सत्याग्रहमें बुलायेंगे। लेकिन मर्कजी एसेम्वली और सूबोंकी एसेम्बलियोंसे कांग्रेसियोंको फौरन निकल जाना चाहिए। और अगर उनकी जगह भरने के लिए किसी आजादीके दुश्मन और सल्तनतके दोस्तको लोगोंका प्रतिनिधि बनाने की कोशिश की जाये तो उनकी जगह खड़े होने के लिए कांग्रेसकी ओरसे किसी भी वफादार कांग्रेसीको तैयार किया जाये। यही कायदा म्युनिसिपल पार्टी वगैरहके लिए रखा जाये, लेकिन हर सूबेकी हालत एक-सी न होने के कारण सूबा कमिटीको अख्तियार होगा कि वह अपनी परिस्थितिके अनुसार अपना इंतजाम कर ले।

अगर किसी सरकारी मुलाजिमको लोगोंपर ज्यादतियों या बेइन्साफी करने का हुकुम मिले तो उसका फर्ज हो जायेगा कि वह फौरन सही कारण बताकर अपनी नौकरी छोड़ दे। आज बड़ी-बड़ी पेंशनें लेनेवाले सरकारी ओहदेदारों या बड़ी-बड़ी तनख्वाहोंपर सल्तनतकी नौकरी करनेवालोंको रखने के लिए आजाद हिन्द सरकार जिम्मेदार नहीं होगी।

सरकारी या सरकारके साथ ताल्लुक रखनेवाली पाठशालाओंमें जो विद्यार्थी १६ सालसे ऊपरकी उम्रके हैं वे सबके-सब सत्याग्रहमें शरीक हो जायें। और वे ऐसा समझकर ही पाठशाला छोड़ें कि उनको अपनी पाठशालामें जबतक आजादी न मिले तबतक जाना ही नहीं है। इसमें जरा सी भी जबरदस्ती न होनी चाहिए। जो अपनी खुशीसे निकलना चाहते हैं वही निकलें। जबरदस्तीसे कोई भी फायदा हासिल नहीं हो सकता।

जिस जगह सरकारकी ओरसे ज्यादतियां होती हैं वहां लोग उसकी मुखालिफत करें। जो सजा मिले उसे बरदाश्त करें। जैसे कि अगर कहीं देहातियों, मजदूरों या घरवालोंको अपनी जमीन या घर खाली करने का हुक्म दिया जाये तो वे हरगिज उसकी तामील न करें। अलबत्ता अगर उनको पूरा-पूरा दाम दिया जाये या वैसे ही जमीन वगैरह देकर पूरी सुविधा कर दी जाये तो वह जगह या घर खाली कर दे सकते हैं। इसमें सवाल सिविल नाफरमानीका नहीं, लेकिन जबरदस्ती या बेइन्साफीके वशमें न आने का ही है। मिलिटरीके कामको हम रोकना नहीं चाहते, लेकिन उनकी नादिरशाहीके वश भी नहीं होंगे।

नमकके महसूलसे गरीब लोगोंको बड़ी तकलीफ होती है, इसलिए जहां नमक पैदा होता है वहां गरीब लोग नमक बेशक बनायें और इसके लिए जो सजा मिले उसे बरदाश्त करें।

जमीन महसूल हम उसीको दे सकते हैं जिसे हम अपनी सरकार मानें। इस सल्तनतको हमने अपनी सरकार दिलसे मानना तो पहले ही से छोड़ दिया है, लेकिन आजतक महसूल न देने तक हम नहीं गये, क्योंकि हम मानते थे कि वहां तक जाने की मुल्ककी तैयारी नहीं है, लेकिन अब ऐसा मौका आ गया है कि जो लोग सब खतरा उठाकर भी महसूल न भरने की हिम्मत रखते हैं, वे उसे भरने से इन्कार करें। कांग्रेस तो मानती है कि जमीन उन्हींकी है जो कुछ जमीनपर काम करते हैं — किसी औरकी नहीं। अगर वे जमीनकी पैदावारमें किसीको कुछ हिस्सा देते हैं तो वह अपने भलेके लिए। महसूल कई तरहसे वसूल किया जाता है। जहां जमीं-

दारियां हैं वहां जमींदार सरकारको महसूल भरते हैं, और रैयत जमीदारोंको। ऐसी जगहों वह अगर जमींदार रैयतका साथ दें तो उन्हें उनका हिस्सा उनके साथ फैसला करके जो ठीक समझा जाये, दिया जाये लेकिन अगर कोई जमींदार सल्तनतका साथ देना चाहता है तो उसे महसूल न दिया जाये। इससे रैयतकी आज तो बेशक ख्वारी हो सकती है। इसलिए जो इस ख्वारीको बरदाश्त कर सकते हैं सिर्फ वही जमीन महसूल देना बन्द करें।

इसके अलावा और बहुत-सी चीजें और कर सकते हैं। उसके बारेमें मौका आने पर हिदायत दी जायेगी।[1]

नेहरू पेपर्स। सब्जेक्ट फाइल सं० ३१ बी०, जिल्द १३०, पृ० ४१९-२३; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

४१२. तार: चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

बम्बई
४ अगस्त, १९४२

च० राजगोपालाचारी
त्यागरायनगर
मद्रास

तुम्हारा विचित्र तार[2] मिला। अविश्वसनीय व्यक्तिके जाने से लाभ कैसे हो सकता है।[3] सप्रेम।[4]

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०९२९) से। सौजन्य: सी० आर० नरसिंहन्

१. उपरोक्त निर्देश जब प्रकाशित होने लगे तो गांधीजी ने दिनांक "सेवाग्राम, २८-९-४५" को इनमें अन्तमें यह 'पुनश्च' और जोड़ दिया था: "कार्य-समिति यदि इन्हें पास कर देती तो ये जारी कर दिये जाते। अब तो ये केवल ऐतिहासिक रिकॉर्डका एक भाग हैं।"

२. २ अगस्तका तार, जिसमें लिखा था कि "जिन्नाके वक्तव्यसे आपका निर्णय गड़बड़ाना नहीं चाहिए।"

३. जिन्नाने ३१ जुलाई, १९४२ को विदेशी पत्रकारोंको दिये अपने वक्तव्यमें कहा था: "कांग्रेस कार्य-समितिका १४ जुलाई, १९४२ का वह ताजा फैसला जिसमें यह संकल्प किया गया है कि यदि अंग्रेज तुरन्त भारतसे नहीं चले गये तो जन-आन्दोलन छेड़ दिया जायेगा, श्री गांधी और उनकी हिन्दू-कांग्रेसकी अंग्रेजोंपर दबाव डालकर उन्हें एक ऐसी शासन-व्यवस्था स्थापित करने और उसे सत्ता सौंप देने को बाध्य करने की नीति और योजनाका चरम बिन्दु है जिससे ब्रिटिश संगीनोंकी छत्रछायामें तुरन्त ही हिन्दू-राज्य कायम हो जायेगा और मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यकों और हितोंको कांग्रेस राज्यकी दयापर छोड़ दिया जायेगा।" देखिए पृ० ४१०-११ भी।

४. इसके उत्तरमें राजाजी ने तारमें लिखा था: "आपका तार मिला। हार्दिक निवेदन है कि मिलिए और अविश्वास दूर कीजिए।"

४१३. पत्र : अमृतकौरको

बिड़ला हाउस, बम्बई
४ अगस्त, १९४२

चि० अमृत,

सब-कुछ ठीक चल रहा है। जे० कल मेरे एक घंटे बाद आये। मौलाना आज पहुँचे। प्रभावती आ गई है। डाक्टरोंने मुझे बिलकुल ठीक और उस दिन सेवाग्राममें जैसा देखा था उससे भी अच्छा घोषित किया है। मण्डलीमें अब सिर्फ तुम्हारी ही कमी है। क्योंकि मीरा भी यहीं है। पर यहाँकी हानिसे शम्मीको लाभ है। इसलिए मैं बिलकुल सन्तुष्ट हूँ।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३६९३) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६५०२ से भी

४१४. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

बिड़ला हाउस, बम्बई
४ अगस्त, १९४२

प्रिय सी० आर०,

कायदे-आजमकी कार्रवाईके[1] बाद तुम मुझसे उनके पास जानेकी कैसे अपेक्षा कर सकते हो? यदि मैंने उनके पास जानेकी हिम्मत की तो क्या उनका मुझसे घरसे बाहर चले जाने को कहना ठीक नहीं होगा? जिस व्यक्तिपर बिलकुल विश्वास और भरोसा ही न हो उससे मैं तो मिलना चाहूँगा नहीं। मान लो वे इतने महान और भले हैं कि मुझसे मिल भी लेते है तो भी मैं उनसे कहूँगा क्या? सारे आरोपोंकी सफाईसे अपनी बात शुरू करूँगा? मेरा खयाल था कि तुम मुझे न जानेके लिए तार दोगे और कहोगे कि उनकी कार्रवाईके बाद तुम्हारी निष्ठा उनमें नहीं रही है। जो मुसलमान यह अपेक्षा रखते थे कि मैं उनसे मिलूँ, वे भी अब ऐसा

१. देखिए पृ० ४०९, पा० टि० ३।

नहीं सोचते। मैं तुम्हें यहाँ आने को तार दूंगा, मेरा ऐसा खयाल नहीं है। तुम्हारे तारसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वह वातावरण ही नहीं है।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

तुम्हारा मासिक आगमन तो होना ही चाहिए।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०९३) से

४१५. पत्र : तेजबहादुर सप्रूको

बिड़ला हाउस, बम्बई
४ अगस्त, १९४२

प्रिय डॉ० सप्रू,

आपका कृपा-पत्र[1] मिला। स० अ० [सविनय अवज्ञा] के प्रश्नपर बरसों पहले उसकी शुरुआतसे ही हममें मतभेद रहा है। फिर भी उसके उल्लेखसे ही लोगोंमें नई आशा जागी है और दुनिया उसपर सोचने लगी है। तो भी आप यह भरोसा रखें कि यदि नरम कार्यवाहियोंसे मैं वही परिणाम प्राप्त कर सका तो इस संकटको टालने की भरसक कोशिश करूँगा। लेकिन जो भार[2] आप मुझपर डालना चाहते हैं उसे वहन करने की अपनी क्षमतापर मुझे विश्वास नहीं है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीसे : गांधी-सप्रू पेपर्स; सौजन्य : नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता। जी० एन० ७५७७ से भी

१. सर तेजबहादुर सप्रूने १ अगस्तके अपने पत्रमें गांधीजी को लिखा था: "मुझे डर है कि यदि इस घड़ी सविनय अवज्ञा शुरू की गई तो इसके बहुत ही गम्भीर परिणाम हो सकते हैं, कुछ तो ऐसे हो सकते हैं जिन्हें हम अभी समझते नहीं हैं।"

२. सर तेजबहादुर सप्रूने गांधीजी को सुझाव दिया था कि उन्हें विभिन्न सम्प्रदायोंका एक सम्मेलन बुलाना चाहिए।

४१६. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

५ अगस्त, १९४२

सरकारको यह दस्तावेज जिस तरह प्राप्त हुआ[1] उसके बारेमें मैं एक-दो बात कहना चाहता हूँ। मेरे विचारसे अ० भा० कांग्रेस कमेटीके कार्यालयोंकी तलाशी लेने और दस्तावेजोंको कब्जेमें करने का जो तरीका अपनाया गया, वह अपने-आपमें निन्दनीय है। कांग्रेस कोई गैर-कानूनी संगठन नहीं है। वह सबसे पुराना और प्राति-निधिक राजनीतिक संगठन माना जाता है।

भारत सरकार अधिनियम द्वारा जो आंशिक स्वायत्तता प्रदान की गई है, उसके अधीन इसके प्रतिनिधियोंने भारतके सात बड़े प्रान्तोंका सफलतापूर्वक प्रशासन चलाया है। और जहाँतक मुझे ज्ञात है, उन प्रान्तोंके गवर्नरोंने, बिना किसी अपवादके, मन्त्रियोंकी, जो कांग्रेसके प्रतिनिधि हैं, प्रशासन-प्रतिभा और कर्त्तव्य-निष्ठाकी प्रशंसा ही की है।

इस तरहके संगठनके साथ सरकारको कमसे-कम वैसा व्यवहार तो कदापि नहीं करना चाहिए जैसा कि उसने अ० भा० कांग्रेस कमेटीके प्रति अपनाये गये अपने तरीकेके द्वारा किया है।

इस तरह कब्जेमें लिये गये दस्तावेजोंका वह जब ऐसा उपयोग करती है जो मेरे खयालसे न्यायविरुद्ध है, तब तो उसकी कार्रवाई और भी निन्दनीय हो जाती है। उसका सार्वजनिक उपयोग करने से पहले उसे यह शिष्टता तो बरतनी ही चाहिए थी कि अ० भा० कांग्रेस कमेटीको उन दस्तावेजोंके बारेमें पूछती और उसे उस सिलसिलेमें जो-कुछ कहना होता वह सुनती।

गृह विभाग कार्य-समितिके सदस्योंको बदनाम करने की चाहे जितनी कोशिश करे, पर 'उन टिप्पणियोंको पढ़ने से', यद्यपि वे अप्रमाणीकृत हैं, कमसे-कम भारतमें तो

१. २८ मईको पुलिसने इलाहाबादमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके कार्यालयोंपर छापा मारकर कुछ दस्तावेज अपने कब्जेमें कर लिये थे, जिनमें से एक "युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव" (देखिए पृ० ७०-७२) पर कांग्रेस कार्य-समितिमें हुई बहसका रिकार्ड भी जान पड़ता था और एक ऐसा प्रस्ताव था जिसमें समितिने रेलगाड़ियों और खाली किये गये तथा अन्य स्थानोंमें स्त्रियोंके साथ सैनिकोंके दुराचारके प्रायः सुप्रमाणित समाचार मिलने के सम्बन्धमें उद्विग्नता प्रकट की थी। इस प्रस्तावके प्रकाशनपर सरकारने पाबन्दी लगा दी थी।

१ अगस्तको लिनलिथगोने एमरीको इस आशयका तार दिया कि वाइसरायकी कौंसिल इन दस्तावेजोंको ५ अगस्तके प्रातःकालीन समाचारपत्रोंमें प्रकाशित करने की व्यवस्था कर रही है, क्योंकि ये इस बातके "सबूत माने जा सकते हैं कि गांधी जापानके आगे समर्पणके लिए तैयार हैं और इनका प्रभावशाली ढंगसे उपयोग किया जा सकता है।" (ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द २, पृ० ५ और ५१६।)

कांग्रेसकी प्रतिष्ठापर कोई असर नहीं पड़ना है। उनमें ऐसा कुछ नहीं है जिसके लिए किसी सदस्यको जरा भी लज्जित होना पड़े।

जिस तरह मैंने अभी बताया उस तरह कब्जेमें लिये गये, तथा सरकार और जनता दोनोंके लिए बहुत ही नाजुक इस घड़ीमें भोली जनताके आगे उछाले गये दस्तावेजोंके इस तरहके उपयोगके बारेमें पत्रकारोंका रुख क्या होना चाहिए, यह तो मैं नहीं जानता, पर उन्हें खुद फैसला करना चाहिए।

प्र० : दस्तावेजोंमें पण्डित नेहरूने जो भी कहा है उससे कुल अनुमान यही निकलता है कि आपका यह विश्वास है कि जापान और जर्मनी इस युद्धमें विजयी होंगे। क्या यह आपका सुचिन्तित मत है?

उ० : आपने सरकार द्वारा जारी किये गये दस्तावेजपर पण्डितजीका वक्तव्य[1] मुझे दिखाने की कृपा की है। उनके पूर्ण और निश्छल स्पष्टीकरणके बाद आपके प्रश्नका उत्तर देने की मेरे खयालसे शायद ही जरूरत रहती है। उन्होंने जो विचार प्रकट किया है उससे मैं पूर्णतया सहमत हूँ।

फिर भी वह कार्य-समितिको भेजे गये प्रस्तावके मसौदेपर[2] उनकी अपनी प्रतिक्रिया है।

जैसा कि उस मसौदेकी भाषासे जाहिर है, उसमें बहुत-कुछ घटाना-बढ़ाना रहता था। वह मीराबहनके हाथों भेजा गया था, जिन्हें मैंने मसौदेके गूढ़ार्थ समझा दिये थे और उनसे तथा कार्य-समितिके उन मित्रोंसे जो उस समय सेवाग्राममें थे और जिन्हें मैं मसौदा समझा चुका था, मैंने यह कहा था कि कांग्रेसकी विदेश नीतिकी बात मेरे मसौदेमें जान-बूझकर छोड़ दी गई है और इसीलिए चीन और रूसका उसमें कोई उल्लेख नहीं है।

क्योंकि, जैसा कि मैंने उनसे कहा था, विदेशी मामलोंके बारेमें मुझे प्रेरणा और जानकारी पण्डितजीसे मिलती है, जो उनके गहरे अध्येता रहे हैं। इसलिए मैंने कहा था कि प्रस्तावके उस भागकी पूर्ति वे कर सकते हैं।

परन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि बिलकुल असावधानीके क्षणोंमें भी मैंने यह राय कभी जाहिर नहीं की है कि जापान और जर्मनी इस युद्धमें विजयी होंगे। यही नहीं, मैंने अकसर यह राय जाहिर की है कि यदि केवल ग्रेट ब्रिटेन सदैवके लिए अपना साम्राज्यवाद छोड़ दे तो वे (जापान और जर्मनी) युद्धमें विजयी हो ही नहीं सकते। इस मतको मैं अनेक वार 'हरिजन' के स्तम्भोंमें भी प्रकट कर चुका हूँ और यहाँ फिर दोहराता हूँ कि मेरी और अन्य लोगोंकी यद्यपि ऐसी इच्छा नहीं है, फिर भी ग्रेट ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रोंपर यदि विपत्ति आई तो उसका कारण यही होगा कि वह नाजुक घड़ीमें, अपने इतिहासकी सबसे नाजुक घड़ीमें भी साम्राज्यवादके अपने कलंकको, जिसे वह कमसे-कम डेढ़ सौ वर्षोंसे धारण किये हुए हैं, धोने से हठपूर्वक इनकार करता रहा।

१. देखिए परिशिष्ट ९।
२. देखिए पृ० ७०-७२।

पण्डितजी और उनका अनुसरण करते हुए मैं फासीवाद और साम्राज्यवादके सूक्ष्म भेदको जिस तरह देख सकते हैं, पृथ्वीकी दलित कौमें उस तरह कभी नहीं देखेंगी। जन-साधारणको उनमें यदि कोई भेद लगेगा भी तो वह केवल मात्राका है। इसीलिए मैंने इस बातकी वकालत की है, और आज पूरी गम्भीरतासे लड़ते हुए भी करता हूँ कि ब्रिटेन उस कलंकको धो दे, और उसका महान सहयोगी अमेरिका उसे ऐसा करने को राजी कर ले। फिर तो संघर्ष चाहे कितना भी लम्बा क्यों न चले और चाहे कितनी भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े, पर विजय सुनिश्चित हो जायेगी।

कमसे-कम यह तो कहा ही जा सकता है कि तब मित्र-राष्ट्रोंको इन लोगोंके मुक्त सहयोगसे जन और सामग्रीका लाभ तो होगा ही, करोड़ों मूक लोगोंका आशीर्वाद भी मिलेगा। इनके आशीर्वादको मैं और किसी भी चीजसे बहुत अधिक मूल्यवान मानता हूँ।

इसलिए कार्य-समितिके पास जिस मसौदेको भेजने का मुझे सौभाग्य मिला, उसमें ऐसा कुछ नहीं है जिसे मैं वापस लूँ और जिसके लिए लज्जा अनुभव करूँ।

प्र० : नेहरू कहते हैं कि आपकी योजनाओंके अनुसार, ब्रिटिश सत्ताके हट जाने के बाद भारत सम्भवतः जापानके साथ सुलहकी बातचीत करेगा और उसे बहुत हदतक असैनिक नियन्त्रण, भारतमें फौजी अड्डों और अपनी फौजें भारतमें से गुजारने के अधिकारको अनुमति दे देगा?

उ० : आपके दूसरे प्रश्नके बारेमें मैं केवल यही कह सकता हूँ कि मुझे यह कहते दुःख होता है कि आपने यह प्रश्न इसीलिए किया है कि मसौदा लिखने से पहले और बादमें मैंने 'हरिजन' में जो-कुछ लिखा है उसे आपने ध्यानसे नहीं पढ़ा है। अपने सम्पूर्ण फलितार्थ सहित अहिंसात्मक असहयोगके रूपमें जो अस्त्र मैंने राष्ट्रको दिया है, उसकी प्रभावकारितामें मेरा इतना विश्वास है जितनेका कि बहुत-से मित्रोंके अनुसार मुझे अधिकार नहीं है। अपने इस विश्वासके आधारपर मेरा कहना यह है कि जिस तरहके विचारका आपने मुझे दोषी बताया है उस तरहका विचार मैं रख ही नहीं सकता। मेरे मसौदेका पण्डितजी के अनुसार जो अर्थ और व्याख्या हो सकती है वह वे बिलकुल साफ-साफ बता ही चुके हैं।

मैं इस बातपर जोर देना चाहूँगा कि जापानके साथ सुलह-बातचीतवाला वाक्य मैंने जान-बूझकर उसमें रखा था। और यदि अन्तमें वह हटा दिया गया और मैं उसके निकालने पर सहमत हो गया तो उसका कारण अपने साथी कार्यकर्त्ताओंका लिहाज ही था, न कि जो-कुछ मैं करना चाहता था उसके बारेमें किसी तरहका अनिश्चय।

इस अस्त्रको काममें लाने का अनिवार्य अंग यह है कि आप अपने प्रतिपक्षीको सदैव सही काम करने का अवसर दें। यदि भारत कल एक स्वतन्त्र राष्ट्र हो जाता है, और मैं उस महान घटनाको देखने के लिए जीवित रहता हूँ तो निश्चय ही मैं अस्थायी सरकारको यह सलाह दूँगा और उससे यह आग्रह करूँगा कि वह मुझ

बूढ़ेको जापान भेजे और मैं जापानको पहले तो यह समझाऊँगा कि वह अपने महान पड़ोसी चीनको उस संकटसे, जो वह उसके लिए बना हुआ है, मुक्त कर दे, और उसे यह बता दूँगा कि यदि वह यह प्राथमिक न्याय नहीं करता है तो उसे उन करोड़ों लोगोंके दृढ़ प्रतिरोधका सामना करना पड़ेगा, जिन्हें आखिर वह चीज प्राप्त हो गई है जिसे हर राष्ट्र सबसे अधिक मूल्यवान मानता है।

उस विनम्र चेतावनी या कहना चाहिए कि उस निवेदनके पीछे कमसे-कम कल कोई सैन्य-प्रदर्शन नहीं होगा, क्योंकि मैं जापानके आगे उस तरहका कोई प्रदर्शन नहीं करूँगा जैसा कि मित्र-राष्ट्र, जिनकी कार्रवाइयाँ स्वतन्त्र भारतकी स्वतन्त्र सहमतिसे भारतमें चलती ही रहेंगी, तब भी करते रहेंगे। स्वतन्त्र भारतकी शक्ति तो अहिंसात्मक असहयोगके अद्वितीय नैतिक अस्त्रके उपयोगमें निहित शक्ति ही होगी और मुझे विश्वास है कि मैं वह अपील सफलताकी आशाके साथ ही करूँगा।

जिस वाक्यका उपयोग इस घड़ी मुझे संकल्पपूर्वक बदनाम करनेके लिए किया जा रहा है, उसका अर्थ यही था। इस बदनामीको मैं सिरपर लूँगा और यदि उसके साथ भारतकी स्वतन्त्रता भी मिल जाये तब तो कहना ही क्या है।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ५-८-१९४२

४१७. प्रस्तावना: गुप्त सरकारी परिपत्रके लिए[1]

बम्बई
६ अगस्त, १९४२

सौभाग्यसे मेरे कुछ ऐसे मित्र हैं जो मुझे राष्ट्रीय महत्त्वकी चटपटी खबरें भेजते रहते हैं। ऐसी ही एक मैं सर्वसाधारणके सम्मुख यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। महादेव देसाईने मुझे याद दिलाया है कि इसी तरहका अवसर कोई सात वर्ष पहले तब आया था जब एक मित्रने सुप्रसिद्ध हैलेट परिपत्र खोज निकाला था। इसी तरह का अवसर वह भी था जब एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी को दिया गया था यद्यपि वह हैलेट परिपत्र या सर फ्रेडरिक पकल और उनके लेफ्टिनेंट श्री

१. कांग्रेस कार्य-समितिके १४ जुलाईके प्रस्तावके तत्काल बाद भारत सरकारके सूचना महा-निदेशक फ्रेडरिक पकलने १७ जुलाईको, कांग्रेस-प्रस्तावके खिलाफ जनमत संगठित करनेके लिए, सभी स्थानीय सरकारोंके मुख्य सचिवोंके नाम एक परिपत्र जारी किया था। उसमें उन्होंने कांग्रेस-प्रस्तावको दलका ऐसा घोषणापत्र बताया था जिसका अन्य सम्प्रदायों और संगठनोंने विरोध किया है। उन्होंने कार्टून तथा पोस्टर छापनेके लिए कई सुझाव दिये थे, जिनमें से एक यह था कि हिटलर, मुसोलिनी और तोजो, प्रत्येकको माइक्रोफोन पकड़े यह बोलता दिखाया जाये कि "मैं कांग्रेस-प्रस्तावके पक्षमें राय देता हूँ"। हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेण्ट इन इंडिया, पृ० ३७४-७५।

डी० सी० दासकी इस बहुत ही रोचक कृति-जैसी सनसनीखेज नहीं थी। तरस तो इस बातपर आता है कि ये परिपत्र गुप्त थे।

उनके इस कार्यका यथासम्भव अधिकसे-अधिक प्रचार करने के लिए उन्हें मुझे धन्यवाद देना चाहिए। क्योंकि जनताके लिए यह जान लेना अच्छा ही है कि सरकार राष्ट्रीय आन्दोलनोंको, चाहे वे कितने भी निर्दोष, खुले और निश्छल क्यों न हों, दबाने की अपनी कोशिशोंमें किस हदतक जा सकती है। भगवान ही जानता है कि इस तरहके कितने गुप्त आदेश, जो कभी प्रकाशमें नहीं आये, जारी किये जा चुके हैं। मैं एक सम्मानजनक मार्ग सुझाता हूँ। सरकार सभी साधनोंसे जनमत को खुले तौरपर प्रभावित करे और उसके फैसलेको माने। कांग्रेस मतसंग्रहसे या जनमतको जाँचने के किसी भी अन्य युक्तियुक्त ढंगसे सन्तुष्ट हो जायेगी और उसका फैसला मान लेगी। यही सच्चा लोकतन्त्र है। 'जनताकी वाणी ईश्वरकी वाणी है'।

इस बीच जनताको यह जान लेना चाहिए कि ये परिपत्र 'भारत छोड़ो' नारे के लिए, जो लाखों लोगोंके मुखसे नहीं बल्कि दुखते हृदयसे निकल रहा है, एक और कारण है। दास-जैसे लोगोंको यह समझ लेना चाहिए कि राष्ट्रीय हितोंके साथ विश्वासघातके अलावा भी जीविकोपार्जनके बहुत-से अन्य उपाय हैं। सर फ्रेडरिक पकलके आदेश जिन अत्यन्त आपत्तिजनक तरीकोंके साक्षी हैं, उन्हें अपनाना निश्चय ही उनके कर्त्तव्यका अंग नहीं है।

[अंग्रेजीसे]
हिस्ट्री ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस, जिल्द २, पृ० ३६०। **बॉम्बे क्रॉनिकल**, ८-८-१९४२ भी

४१८. पत्र: बालकृष्ण भावेको

बम्बई
६ अगस्त, १९४२

चि० बालकृष्ण,

तुम्हारा कार्ड मिला। तुम्हें शामिल करने में अभी बहुत देर है। खूब धीरजसे काम लो। समय आने पर किसी-न-किसी तरह तुम्हें बुलावा पहुँच ही जायेगा। तुम्हारी साधना अपने स्वास्थ्यको इस यज्ञके लिए भी दृढ़ करने की है। वह भी चिन्ता ओढ़कर नहीं। जितनी हमारी जानकारी है, उसके अनुसार प्रयत्न करके हमें हाथ झाड़ लेना चाहिए। यह पत्र तड़के थोड़ा समय मिलते ही लिख डाला।

आशा है, वहाँ सब ठीक होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८०८) से। सौजन्य: बालकृष्ण भावे

४१९. भेंट: एसोशिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

बम्बई
६ अगस्त, १९४२

प्र० : इस प्रस्तावका[1] अर्थ शान्ति है या युद्ध? विदेशी पत्रकार विशेष रूपसे यह व्याख्या कर रहे हैं कि इसका अर्थ युद्धकी घोषणा है और प्रस्तावके अन्तिम तीन अनुच्छेद वस्तुतः उसका क्रियात्मक भाग हैं। जोर प्रस्तावके पहले भागपर है या अन्तिमपर?

उ० : किसी भी अहिंसात्मक संघर्षमें, वह चाहे होनेवाला हो या चल रहा हो, जोर सदा शान्तिपर ही रहता है। युद्ध तो नितान्त आवश्यक हो जाने पर ही होता है।

प्र० : क्या आप ऐसा सोचते हैं कि एक अस्थायी सरकार तुरन्त स्थापित हो जायेगी और, यदि सोचते हैं तो, आप उसके किस प्रकार अस्तित्वमें आने की अपेक्षा करते हैं? आपके खयालमें क्या प्रस्तावके अ० भा० कांग्रेस कमेटीमें मंजूर होने और जन-संघर्ष छिड़ने के बीच कोई मध्यवर्ती काल रहेगा?

उ० : यदि स्वाधीनता पूर्ण ब्रिटिश सद्भावके साथ आती है तो मैं यह आशा करता हूँ कि प्रायः उसके साथ-साथ ही एक अस्थायी सरकार स्थापित होगी। वह फिलहाल अनिवार्यतः अहिंसापर आधारित होने के कारण सभीका विश्वास प्राप्त करने के लिए सभी पक्षोंके स्वतन्त्र और स्वैच्छिक सहयोगका प्रतिनिधित्व करेगी।

प्र० : जन-संघर्ष छेड़ने से पहले क्या आप कांग्रेस और ब्रिटिश सरकारके बीच किसी तरहकी वार्त्ताकी अपेक्षा करते हैं?

उ० : कांग्रेस प्रस्ताव पास होने और संघर्ष छिड़ने के बीच मैंने निश्चय ही एक अन्तरालकी अपेक्षा की है। अपनी आदतके अनुसार मैं जो करने की सोचता हूँ, उसे किसी तरह वार्त्ता कहा जा सकता है या नहीं, मैं नहीं जानता। पर वाइस-रायको निश्चय ही एक पत्र भेजा जायेगा, जो अन्तिम चेतावनी नहीं, बल्कि संघर्षको टालने का सच्चा अनुरोध होगा। यदि अनुकूल उत्तर मिला तो मेरा पत्र वार्त्ताका आधार बन सकता है।

प्र० : अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी 'आखिरी अपील' का ब्रिटिश सरकार और मित्र-राष्ट्रकी ओरसे कोई उत्तर मिलता है या नहीं, इसके लिए आप अधिकसे-अधिक कितने समयतक प्रतीक्षा करने को तैयार हैं?

१. देखिए परिशिष्ट १०।

उ० : सत्ता तुरन्त छोड़ने की माँग जिस उद्देश्यसे रखी गई है, वही लम्बे अन्तरालकी अनुमति नहीं देता और इसका सीधा-सादा कारण यह है कि कुछ हो सकता है, इसकी आशामें जो अन्तराल सोचा गया है, उसमें कोई युद्ध तो स्थगित होगा नहीं। कार्य-समिति, जो स्वतन्त्र भारतके समूचे जनमतको युद्ध-प्रयत्नके पक्षमें संगठित करने के लिए हृदयसे उत्सुक है, स्वयं ऐसा करने को उतावली है। देश-भरमें जो भयानक अनिश्चयकी स्थिति पैदा कर दी गई है उसे ध्यानमें रखते हुए भी कांग्रेस और ब्रिटिश सत्ता दोनोंके लिए यह बिलकुल गलत होगा कि वे अनिश्चय की इस स्थितिको, काबूसे बाहर परिस्थितियाँ जहाँतक मजबूर करें, उससे एक दिन भी आगे बढ़ायें।

[अंग्रेजीसे]

स्टेट्समैन, ७-८-१९४२, और **गांधीजीज़ कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४**, पृ० ५४-५५

४२०. तार : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

बम्बई
७ अगस्त, १९४२

राजाजी
त्यागरायनगर
मद्रास

तुम्हारे द्वारा निर्दिष्ट दिशामें[1] सभी प्रयास किये गये हैं और किये जाते रहेंगे, यद्यपि वे उसी प्रकारके नहीं हैं [जैसा तुम चाहते हो]। सप्रेम।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०९३४)से। सौजन्य : सी० आर० नरसिंहन्

१. राजाजी ने ६ अगस्त, १९४२ के तारमें लिखा था : "जिन्नाके आरोपोंमें कोई नई बात नहीं है। मेरे खयालसे आप उन्हें नजरन्दाज करें और अस्थायी सरकारके लिए वे जितना कोटा चाहते हैं उतना उन्हें निश्चय ही पेश कर दें तथा उन्हें अपने आदमी नामजद करने के लिए कहें। इसके साथ ही कांग्रेसकी ओर से अपने लोगोंके नाम घोषित कर देने से ब्रिटेनसे आपकी माँग युक्तिसंगत हो जायेगी और आपके प्रस्तावोंको स्वीकार करने के लिए जोर पड़ेगा।" देखिए परिशिष्ट ११ भी।

४२१. सन्देश : चीनको

७ अगस्त, १९४२

चीनको जान लेना चाहिए कि यह संघर्ष जितना भारतकी स्वतन्त्रताके लिए है उतना ही चीनकी रक्षाके लिए भी है, क्योंकि स्वतन्त्र होकर ही भारत चीन को अथवा रूसको — बल्कि ग्रेट ब्रिटेन या अमेरिकाको भी — कारगर सहायता देने के योग्य हो सकता है।

[अंग्रेजीसे]
अमृतबाजार पत्रिका, ९-८-१९४२

४२२. भाषण : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें

बम्बई
७ अगस्त, १९४२

इससे पहले कि आप प्रस्तावपर विचार करें, मैं एक-दो बातें आपके सामने रखना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप दो बातें बिलकुल साफ-साफ समझ लें और उनपर उसी दृष्टिकोणसे विचार करें जिस दृष्टिकोणसे मैं उन्हें आपके सामने रख रहा हूँ। कुछ लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या मैं वही आदमी हूँ जो १९२० में था या मुझमें कोई परिवर्तन हुआ है। आपका यह प्रश्न पूछना ठीक ही है। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि मैं आज भी वही हूँ जो १९२० में था। फर्क सिर्फ इतना ही है कि कई बातोंमें मैं १९२० की अपेक्षा बहुत अधिक दृढ़ हो गया हूँ। इस बातको स्पष्ट करने के लिए मैं कहूँगा कि एक आदमी सर्दियोंमें तो मोटे-मोटे कपड़े पहनकर निकलता है और उसी आदमीको गर्मियोंमें देखें तो उसके कपड़े वैसे नहीं होते। इस बाहरी तबदीलीसे उस आदमीमें कोई फर्क नहीं आता। कुछ ऐसे लोग हैं जो शायद कहें कि मैं आज एक बात कहता हूँ और कल दूसरी। लेकिन मैं आपसे कहूँगा कि मुझमें कोई तबदीली नहीं आई है। मैं अहिंसाके सिद्धान्तपर उसी तरह जमा हुआ हूँ जैसा कि पहले था। यदि आप इससे ऊब चुके हों तो आप बेशक मेरा साथ न दें। इस प्रस्तावको पास करना न आपके लिए जरूरी है और न आपका कर्त्तव्य ही है। यदि आप स्वराज्य और स्वतन्त्रता चाहते हैं और यदि आप महसूस करते हैं कि मैं आपके सामने जो-कुछ रख रहा हूँ वह अच्छी चीज है और ठीक चीज है, तभी आप इसे स्वीकार करें। सिर्फ इसी तरह आप मेरी पूरी-पूरी मदद कर सकते हैं। यदि आप ऐसा नहीं करते तो मैं समझता हूँ कि आपको अपने

किये पर पछताना पड़ेगा। यदि कोई आदमी गलती करे और फिर पश्चात्ताप करे तो कोई बड़ी हानि नहीं होती। परन्तु वर्तमान स्थितिमें यदि आप गलती करेंगे तो आप देशको भी खतरेमें डाल देंगे। जो मैं कह रहा हूँ उसमें यदि आपका पूरा-पूरा विश्वास नहीं है तो मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप इस प्रस्तावको स्वीकार न करें और इसे छोड़ दें। परन्तु यदि आप इसे स्वीकार कर लें और मेरी बातको ठीक तरह न समझें तो हमारा आपसमें झगड़ा जरूर होगा, चाहे वह मित्रोंका-सा ही झगड़ा हो।

जिस दूसरी बातपर मैं जोर देना चाहता हूँ वह है आपकी जिम्मेदारी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्य संसदके सदस्योंके समान हैं और वे सारे भारतका प्रतिनिधित्व करते हैं। कांग्रेस शुरूसे ही किसी खास वर्गकी, या किसी खास वर्ण या जात-पाँत या किसी खास प्रान्तकी नहीं रही है। कांग्रेसने अपनी स्थापनाके समयसे ही दावा किया है कि वह सारे राष्ट्रका प्रतिनिधित्व करती है और आपकी तरफसे मैंने दावा किया है कि आप केवल कांग्रेसके पंजीकृत सदस्योंका ही नहीं, बल्कि सारी कौमका प्रतिनिधित्व करते हैं।

नरेशोंकी चर्चा करते हुए महात्मा गांधीने कहा कि वे ब्रिटिश सरकारके बनाये हुए हैं।

उनकी संख्या छः सौ या कुछ अधिक हो सकती है। जैसा कि आप जानते हैं, शासकोंने भारतीय भारत और ब्रिटिश भारतके बीच भेद पैदा करनेके लिए उन्हें बनाया था। चाहे यह सच ही हो कि ब्रिटिश भारत और भारतीय भारतके हालातमें फर्क है परन्तु देशी रियासतोंके लोगोंके अनुसार कोई ऐसा फर्क है नहीं। कांग्रेसका दावा है कि वह उनका भी प्रतिनिधित्व करती है। कांग्रेसने रियासतोंके बारेमें जो नीति अपनाई है वह मेरे कहने से तय की गई थी। उसमें कुछ परिवर्तन हुआ है, परन्तु उसका आधार अब भी वही है। नरेश चाहे कुछ ही क्यों न कहें, उनकी प्रजा यही कहेगी कि हम उसी चीजकी माँग करते आये हैं जिसे वह चाहती है। यदि हम इस संघर्षको इस ढंगसे चलायें जैसे कि मैं चाहता हूँ तो इससे नरेशोंको उससे ज्यादा ही मिलेगा जितने की वे [ब्रिटिश सत्तासे] आशा कर सकते हैं। कई नरेशोंसे मेरी भेंट हुई है और उन्होंने अपनी विवशता प्रकट करते हुए कहा कि हम उनकी अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र हैं, क्योंकि वे तो अधीश्वरी सत्ता द्वारा पदच्युत किये जा सकते हैं।

मैं आपसे फिर कहूँगा कि आपको यह प्रस्ताव तभी पास करना चाहिए जब आप इसे दिलसे ठीक समझें, क्योंकि यदि आप इसे ठीक न समझें तो इसे पास करके आप खतरा मोल ले रहे होंगे।

कमसे-कम सात प्रान्तोंमें हमें शासन चलाने का अवसर मिला। हमने वाक़ई अच्छा काम करके दिखाया, जिसकी प्रशंसा ब्रिटिश सरकारने भी की। स्वतन्त्रता प्राप्त करके ही आपका काम खत्म नहीं हो जायेगा। हमारी कार्य-योजनामें तानाशाहोंके लिए कोई जगह नहीं है। हमारा ध्येय स्वतन्त्रता प्राप्त करना है और उसके बाद जो भी

शासन सँभाल सके सँभाल ले। सम्भव है आप सत्ता पारसियोंको सौंपने का फैसला करें। आपको यह नहीं कहना चाहिए कि सत्ता पारसियोंको क्यों सौंपी जाये। सम्भव है कि सत्ता उन्हें सौंपी जाये जिनके नाम कांग्रेसमें कभी सुने न गये हों। यह फैसला करना लोगोंका काम होगा। आपको यह नहीं सोचना चाहिए कि संघर्ष करनेवालोंमें अधिक संख्या हिन्दुओंकी थी और मुसलमानों और पारसियोंकी संख्या कम थी।[1] स्वतन्त्रता मिलने पर उनकी सारी मानसिकता बदल जायेगी। यदि आपके मनमें लेशमात्र भी साम्प्रदायिकताकी छाप है तो आपको संघर्षसे दूर रहना चाहिए।

ऐसे लोग भी हैं जिनके दिलोंमें अंग्रेजोंके लिए घृणा है। मैंने लोगोंको कहते सुना है कि उन्हें अब वे बिलकुल ही नहीं सुहाते। आम लोगोंका दिमाग अंग्रेजी सरकार और अंग्रेज लोगोंमें भेद नहीं करता। उनकी समझमें तो दोनों एक ही हैं। वे ऐसे लोग हैं जिन्हें जापानियोंका आना खलेगा नहीं। शायद उनके खयालसे इसका मतलब यही होगा कि एक शासक गया और दूसरा आया। परन्तु यह खतरनाक बात होगी। आपको यह बात दिलसे निकाल देनी चाहिए। यह एक नाजुक घड़ी है। यदि हम चुप बैठे रहे और हमने अपना कर्त्तव्य नहीं निभाया तो यह हमारे लिए ठीक नहीं होगा। अगर ब्रिटेन और अमेरिकाको ही यह लड़ाई लड़नी है और हमारा काम मात्र रुपये-पैसेकी मदद देना ही है — चाहे हम यह मदद खुशीसे दें, चाहे हमारी मर्जीके बिना हमसे ली जाये — तो यह ठीक बात नहीं होगी। परन्तु हम अपना असली साहस और बल तभी दिखा सकते हैं जब यह लड़ाई हमारी अपनी लड़ाई हो जाये। तब तो एक बच्चा भी बहादुर बन जायेगा। हम अपनी स्वतन्त्रता लड़कर लेंगे। स्वतन्त्रता आकाशसे नहीं टपकेगी। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जब हम काफी कुर्बानियाँ करके दिखायेंगे और अपनी ताकतका सबूत देंगे तो अंग्रेजोंको हमें स्वतन्त्रता देनी ही पड़ेगी। हमें अपने दिलोंसे अंग्रेजोंके प्रति घृणाका भाव निकाल देना चाहिए। कमसे-कम मेरे दिलमें तो उनके लिए घृणा नहीं है। सच तो यह है कि अब मेरे दिलमें उनके लिए पहले से कहीं अधिक दोस्ती है। इसका कारण यह है कि इस घड़ी वे मुसीबतमें हैं। मेरी दोस्तीका तकाजा है कि मैं उन्हें उनकी गलतियोंसे अवगत करा दूँ। चूंकि मैं ऐसी स्थितिमें नहीं हूँ जिसमें कि वे हैं, इसलिए मैं उनकी गलतियाँ बता सकता हूँ। मैं जानता हूँ कि वे खाईके कगारपर खड़े हैं और खाईमें गिरनेवाले ही हैं। इसलिए यदि वे मेरे हाथ काट देना चाहें तो भी मेरी मित्रताका तकाजा है कि मैं उन्हें उस खाईसे निकालने की कोशिश करूँ।

ऐसा मेरा दावा है। हो सकता है कि बहुत-से लोग इसपर हँसें, परन्तु फिर भी मैं कहूँगा कि मेरा दावा ठीक है। ऐसे समयमें, जब कि मैं अपने जीवनका सबसे बड़ा संघर्ष छेड़नेवाला हूँ, मेरे दिलमें अंग्रेजोंके लिए कोई घृणा नहीं हो सकती। मेरे दिलमें ऐसा खयाल बिलकुल नहीं है कि चूंकि वे मुश्किलमें फँसे हुए हैं, इसलिए

१. आगेके दो वाक्य बॉम्बे क्रॉनिकल से लिये गये हैं।

मैं उन्हें धक्का दे दूं। ऐसा खयाल मेरे दिलमें कभी नहीं रहा। हो सकता है कि वे गुस्सेमें आकर कभी ऐसी बात कर बैठें जिससे कि आपको तैश आ जाये। फिर भी आपके लिए यह ठीक नहीं होगा कि आप हिंसापर उतर आयें और अहिंसाको बदनाम करें। जब ऐसी बात होगी तब समझ लीजिए कि मैं जहाँ भी होऊँ, आप मुझे जिन्दा नहीं पायेंगे। मेरे[1] खूनका पाप आपके सिरपर होगा। अगर आप इस बातको नहीं समझते तो बेहतर यही होगा कि आप इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दें। ऐसा करना आपको शोभा देगा। जो बात आपकी समझमें ही न आ सके उसके लिए मैं आपको कैसे दोष दे सकता हूँ? इस लड़ाईमें एक सिद्धान्त है, जो आपको अपनाना होगा। यह न समझिए — जैसे कि मैंने कभी नहीं समझा — कि अंग्रेजोंकी हार होनेवाली है। मैं उन्हें कायरोंकी कौम नहीं समझता। मैं जानता हूँ कि पेशतर इसके कि वे हार मानें, ब्रिटेनका एक-एक व्यक्ति बलिदान हो जायेगा। सम्भव है कि वे हार जायें और आपको छोड़कर चले जायें — जैसे कि वे बर्मा, मलाया या अन्य देशोंके लोगोंको छोड़कर चले गये हैं — इस खयालसे कि जब भी सम्भव होगा वे हारे हुए इलाकेपर फिर कब्जा कर लेंगे। ऐसा करना उनकी समर-नीति हो सकती है। लेकिन फर्ज कीजिए कि वे हमें छोड़कर चले ही जाते हैं, तब हमारा क्या बनेगा? उस सूरतमें जापान यहाँ आ जायेगा। जापानके यहाँ आनेका मतलब होगा चीनका अन्त और शायद रूसका भी अन्त। इन मामलोंमें पण्डित नेहरू मेरे गुरु हैं। मैं रूसकी या चीनकी हारका साधन नहीं बनना चाहता। यदि बनूँ तो मुझे अपने-आपसे घृणा हो जायेगी।

आप जानते हैं कि मैं तेज रफ्तारसे चलना चाहता हूँ। लेकिन शायद मैं उतना तेज नहीं चल रहा होऊँ जितना कि आप चाहते हैं कि मैं चलूँ। सरदार पटेलने कहा बताते हैं कि शायद हमारा संघर्ष एक सप्ताहमें समाप्त हो जाये। मैं जल्दबाजी नहीं करना चाहता। यदि संघर्ष एक सप्ताहके भीतर समाप्त हो जाये तो यह एक चमत्कार होगा। और यदि ऐसा होता है तो इसका मतलब है कि अंग्रेजोंका दिल पसीज गया है। हो सकता है कि अंग्रेजोंको अक्ल आ जाये और वे यह बात समझ जायें कि जो लोग उनके लिए लड़ना चाहते हैं उन्हींको कैदमें डालना गलत बात होगी। हो सकता है कि आखिरकार श्री जिन्नाके विचार बदलें और वे सोचें कि जो लोग लड़ रहे हैं वे इसी धरतीके लाल हैं और अगर वे (श्री जिन्ना) चुप बैठे रहते हैं तो उनके लिए पाकिस्तान किस कामका होगा।

अहिंसा एक अनुपम अस्त्र है, जो हर किसीको मदद पहुँचा सकता है। मैं जानता हूँ कि हमने अहिंसापर बहुत अमल नहीं किया है, अतः यदि ऐसी तबदीली होती है तो मैं समझूंगा कि यह हमारे पिछले २२ वर्षोंके प्रयत्नोंका परिणाम है और ऐसी तबदीली लानेमें ईश्वरने हमारी मदद की है। जब मैंने 'भारत छोड़ो' का नारा लगाया था तब भारतके लोगोंने, जो कि निराश हो चुके थे, महसूस किया कि मैंने उनके सामने कोई नई चीज रखी है। अगर आप सच्ची आज़ादी चाहते हैं तो आपको

१. साधन-सूत्रमें "उनके" दिया गया है।

मेल-जोल पैदा करना होगा। ऐसे मेल-जोलसे ही सच्चा लोकतन्त्र पैदा होगा — ऐसा लोकतन्त्र जैसा कि पहले देखने में नहीं आया और न ही जिसके लिए पहले कभी कोशिश ही की गई। मैंने फ्रान्सकी क्रान्तिके बारेमें बहुत-कुछ पढ़ा है। कारलाइलके ग्रन्थ मैंने जेलमें पढ़े थे। मैं फ्रान्सीसियोंकी बहुत तारीफ करता हूँ। पण्डित जवाहरलालने मुझे रूस की क्रान्तिके बारेमें सब-कुछ बताया है। परन्तु मेरा विचार है कि यद्यपि उनका संघर्ष जनताके लिए था, तो भी वह संघर्ष ऐसे सच्चे लोकतन्त्रके लिए नहीं था जिसकी कल्पना मैं करता हूँ। मेरे लोकतन्त्रका मतलब है कि हर व्यक्ति अपना मालिक खुद हो। मैंने काफी इतिहास पढ़ा है और मेरी नजरोंसे यह बात नहीं गुजरी कि अहिंसा द्वारा लोकतन्त्र स्थापित करने का ऐसा प्रयोग इतने बड़े पैमाने पर कभी किया गया हो। अगर आप एक बार इन चीजोंको समझ लें तो आप हिन्दुओं और मुसलमानोंके मतभेदोंको भूल जायेंगे। आपके सामने रखे गये प्रस्तावमें कहा गया है कि हम कुएँके मेंढक बनकर नहीं रहना चाहते। हमारा उद्देश्य तो विश्व-संघकी स्थापना है,[1] जिसकी एक प्रमुख इकाई भारत होगा। वह केवल अहिंसासे ही स्थापित हो सकता है। निःशस्त्रीकरण तभी सम्भव है जब आप अहिंसाके अनुपम अस्त्रका प्रयोग करें। कुछ शायद यह कहें कि मैं खयालोंकी दुनियामें रहता हूँ। परन्तु मैं आपसे कहता हूँ कि मैं असली बनिया हूँ और मेरा धन्धा स्वराज्य प्राप्त करना है।[2] व्यवहार-कुशल बनियेके रूपमें मेरा कहना है कि यदि आप [अहिंसात्मक आचरणकी] पूरी कीमत चुकाने को तैयार हों तो इस प्रस्तावको पास कीजिए अन्यथा इसे पास मत कीजिए। अगर आप इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं करते तो मुझे कोई अफसोस नहीं होगा। बल्कि मैं तो खुशीसे नाच उठूँगा, क्योंकि तब आप मुझे उस भारी जिम्मेदारी से, जो आप अब मुझे सौंपनेवाले हैं, बचा देंगे। मैं चाहूँगा कि आप अहिंसाको अपनी नीतिकी तरह अपनायें। मैं तो इसे अपना धर्म समझता हूँ, परन्तु जहाँतक आपका सम्बन्ध है, मैं चाहूँगा कि आप इसे अपनी नीतिके रूपमें स्वीकार कर लें। अनुशासनबद्ध सैनिकोंकी भाँति आपको इसे पूर्णतया स्वीकार करना होगा और जब आप संघर्षमें शामिल हों, तब इसपर पूरा आचरण करना होगा।

[अंग्रेजीसे]
हितवाद, ९-८-१९४२; बॉम्बे क्रॉनिकल, ८-८-१९४२ भी

१. शेष वाक्य बॉम्बे क्रॉनिकल से लिया गया है।
२. अगला वाक्य बॉम्बे क्रॉनिकल से लिया गया है।

४२३. तार : मदनमोहन मालवीयको

[७ अगस्त, १९४२ या उसके पश्चात्][1]

मालवीयजी

आपके आशीर्वाद मेरे लिए अमूल्य निधि हैं। कठिन यात्रामें वे मुझे साहस प्रदान करेंगे।

गांधी

मूल अंग्रेजीसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल। हिन्दू, ११-८-१९४२ से भी

४२४. पत्र : एक मुसलमानको[2]

[८ अगस्त, १९४२]

आपने अपने जिस पत्रमें मुझे आज कायदे-आजमके साथ हुई अपनी बातचीतका सार लिख भेजा है, उसके सिलसिलेमें मैं यथासम्भव स्पष्ट शब्दोंमें यह कहना चाहता हूँ कि जब मैंने 'हरिजन' के एक लेखमें मुस्लिम लीगके लिए मौलाना आजादका प्रकाशित प्रस्ताव छापा था, तब मेरा मतलब हर अर्थमें उस प्रस्तावको सच्चे दिलसे पेश करना था। आपकी जानकारीके लिए मैं इस बातको फिर स्पष्ट करके कहता हूँ। यदि मुस्लिम लीग अविलम्ब स्वतन्त्रताकी कांग्रेसकी माँगमें — जिसमें बेशक यह व्यवस्था है कि स्वतन्त्र भारत धुरी-राष्ट्रोंके आक्रमणको रोकने एवं चीन और रूसकी मददके लिए मित्र-राष्ट्रीय सेनाओंको यहाँ कार्यवाही करने की इजाजत देगा — उसके साथ पूरी तरह और बिना शर्त सहयोग करे तो कांग्रेसको इस विषयमें कोई आपत्ति नहीं होगी कि ब्रिटिश सरकार मुस्लिम लीगको तथाकथित भारतीय भारत समेत समस्त भारतकी ओरसे अपनी समस्त वर्तमान सत्ता सौंप दे।[3] और जनता

१. यह मदनमोहन मालवीयके ७-८-१९४२ के तारके जवाबमें था।

२. साधन-सूत्रमें यह पत्र टाइम्स ऑफ इंडिया से "कैंडिडस" की ओर से दी गई निम्न पृष्ठभूमि-सहित उद्धृत किया गया था : "लेखक नीचे उन टिप्पणियोंकी प्रतिलिपि दे रहा है जो उसे स्वर्गीय श्री महादेव देसाईने लिखाई थीं। ये गांधीजी के उस पत्रसे ली गई थीं जो उन्होंने गिरफ्तारीसे कुछ घंटे पहले बम्बईके एक मुसलमान नागरिकको लिखा था।"

३. सी० पी० रामस्वामी अय्यरने इस पत्रमें गांधीजी द्वारा किये गये प्रस्तावपर घोर आपत्ति की थी और उसे "बहुत ही कुटिल और खतरनाक चाल" बताया था, और एक वांछित अवसरकी तरह उसका उपयोग करते हुए रियासतोंको उपस्थित संकटके प्रति सावधान हो जाने के लिए कहा था (ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, पृ० ७५९)। उन्होंने प्रकटतः इसी बातको लेकर वाइसरायकी कार्यकारी परिषद्से त्यागपत्र दे दिया था।

की ओरसे मुस्लिम लीग जो भी सरकार बनायेगी कांग्रेस उसके काममें न केवल रोड़ा नहीं अटकायेगी, बल्कि स्वतन्त्र राज्यकी शासन-व्यवस्थाको चलाने के लिए उस सरकारमें शामिल भी होगी। यह प्रस्ताव गम्भीरतापूर्वक और सच्चे दिलसे किया जा रहा है। यह स्वाभाविक ही है कि आपकी चिट्ठीका जल्दीसे जवाब देने में मैं इस प्रस्ताव के सारे फलितार्थ और दूरव्यापी परिणाम नही बता सकता। आप चाहें तो यह पत्र कायदे-आजमको या किसी भी ऐसे व्यक्तिको जो भारतके अविलम्ब स्वतन्त्र होने और स्वतन्त्र भारतके सवालमें दिलचस्पी रखता हो, दिखा सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २०-८-१९४२

४२५. भेंट : समाचारपत्रोंको[1]

बम्बई
८ अगस्त, १९४२

यदि प्रस्ताव आज शाम पास हो जाता है तो मैं इस दु:खद नाटकका मुख्य पात्र बनूंगा। इसलिए यह खतरनाक बात होगी कि कोई जिम्मेवार अंग्रेज मुझे ब्रिटिश लोगों से घृणा करने और 'तुष्टीकरण' (अपीजमेन्ट)की प्रवृत्तिका दोषी समझे। हालमें मैंने किसी और अंग्रेजको अपने पर यह दोष लगाते नहीं सुना कि मैं ब्रिटिश लोगोंसे घृणा करता हूँ। बहरहाल, मैं जोरदार शब्दोंमें कहता हूँ कि मैं निर्दोष हूँ। अंग्रेजोंसे मेरा स्नेह उतना ही है जितना कि अपने लोगोंसे। मैं इसे अपनी कोई खूबी नहीं कहता, क्योंकि बिना अपवाद सब मनुष्योंके प्रति मेरा स्नेह एक जैसा है। मेरा स्नेह आदान-प्रदानकी अपेक्षा नहीं करता। मैं दुनियामें किसीको अपना शत्रु नहीं मानता। यह मेरा दृढ़ सिद्धान्त है।

मैंने कभी स्वीकार नहीं किया कि मुझमें 'तुष्टीकरण' की, जो कि अंग्रेजी भाषामें एक निन्दावाचक शब्द बन चुका है, प्रवृत्ति है। मैं मनुष्य-मात्रके साथ शान्ति चाहता हूँ, परन्तु मैं हर कीमतपर शान्ति नहीं चाहता और आक्रमणकारीको खुश करके या अपनी इज्जत गँवाकर तो मैं शान्ति बिलकुल नहीं चाहता। अत: जो कोई यह सोचता है कि मुझमें दोनोंमें से कोई दोष है, वह प्रस्तुत उद्देश्यकी सिद्धिमें भारी बाधा उपस्थित करेगा।

प्रस्तावका मतलब ठीक उसी लक्ष्यको प्राप्त करना है जो कि उक्त लेखकका उद्देश्य है। हम भारतके रहनेवाले यह महसूस करते हैं कि ब्रिटेनको वर्त्तमान नाजुक स्थितिसे तबतक नहीं उबारा जा सकता जबतक कि भारतका हार्दिक सहयोग न प्राप्त किया जाये। सहयोग मिलना तबतक असम्भव है जबतक कि लोग यह न जान जायें कि वे आज आजाद हैं। और यदि उन्हें विदेशी राज्यकी असह्य अवधिके बाद मिली आजादीको कायम रखना है तो उन्हें तेजीसे कार्यवाही करनी है। कोई भी

१. गांधीजी न्यूज क्रॉनिकल के एक सम्पादकीयका उत्तर दे रहे थे।

केवल वादोंसे समस्त जनसमूहके स्वभावको नहीं बदल सकता, जब कि वास्तविक [स्वतन्त्रता] ही उन्हें क्रियाशील बनाने की अनिवार्य शर्त है।

प्रस्तावको तैयार करनेवाले लोग जिस कठिनाईके बारेमें सोच सकते थे उससे निपटने की व्यवस्था प्रस्तावमें कर ली गई है। उन्होंने हर उचित आलोचनाका खयाल रखा है और कांग्रेसकी ओरसे मैं यह कह सकता हूँ कि वह किसी भी उचित कठिनाईके विषयमें विचार करने और उससे निपटने की गुंजाइश निकालने के लिए हर समय तैयार होगी। किसी जिम्मेवार व्यक्तिने कांग्रेस कार्य-समितिके साथ इस बारेमें विचार-विमर्श करने का कष्ट ही नहीं किया कि भारतको तुरन्त स्वतन्त्रता देने में क्या कठिनाई है। युद्धके दौरान मित्र-राष्ट्रोंकी सैनिक कार्यवाहीके लिए कांग्रेसकी स्वीकृति निस्सन्देह ऐसी किसी कठिनाईका, जिसकी कि हम कल्पना कर सकते थे, पर्याप्त समाधान है। स्वतन्त्रता देने में अंग्रेज या मित्र-राष्ट्र कोई खतरा नहीं मोल ले रहे हैं।

खतरा जो भी है भारतके लिए है, लेकिन कांग्रेस उसे उठाने के लिए तैयार है। केवल इतना ही नहीं कि युद्ध-संचालनके विषयमें अंग्रेज खतरेमें नहीं पड़ेंगे, बल्कि उन्हें इस न्यायके कामसे एक ऐसा साथी देश मिलेगा जिसकी जनसंख्या ४० करोड़ है, और ऐसी ताकत मिलेगी जो कि न्याय करने की चेतनासे हासिल होती है।

केवल ऐसा काम करने से ही — न कि किसी और कामसे — ग्रेट ब्रिटेन और नाजियों या फासिस्टोंके बीचका भेद स्पष्ट हो सकता है।

इसलिए समझमें नहीं आता कि यह साधारण न्यायका काम करने के बारेमें, जो बहुत पहले किया जाना चाहिए था, इतना ज्यादा हल्ला-गुल्ला क्यों किया जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ९-८-१९४२

४२६. भाषण: अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें[1]

८ अगस्त, १९४२

आपने अभी जो प्रस्ताव पास किया है उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। मैं उन तीन साथियोंको भी बधाई देता हूँ जिन्होंने यह जानते हुए भी कि प्रस्ताव के पक्षमें भारी बहुमत है, अपने संशोधनोंपर मत-विभाजन कराने का साहस दिखाया। और मैं उन तेरह दोस्तों को भी बधाई देता हूँ जिन्होंने प्रस्तावके विरुद्ध वोट दिया। उन्होंने कोई ऐसी बात नहीं की जिसके लिए उन्हें शरमिन्दा होने की जरूरत है। पिछले बीस वर्षोंसे हम यही सीखने की कोशिश करते आये हैं कि हमारे समर्थकोंकी संख्या बहुत कम हो और लोग हमारी हँसी उड़ायें, तब भी हमें हिम्मत

१. गांधीजी पहले हिन्दीमें बोले थे और उसके बाद अंग्रेजीमें। हिन्दी भाषण उपलब्ध न हो पाने के कारण यह भाषणके अंग्रेजी अनुवादसे पुनरनूदित करके दिया जा रहा है। अंग्रेजीके भाषणके लिए देखिए अगला शीर्षक।

नहीं हारनी चाहिए। हमने अपने विश्वासोंपर दृढ़ रहना सीखा है — यह मानते हुए कि हमारे विश्वास ठीक हैं। यह उचित ही है कि हम अपने विश्वासोंके अनुसार काम करनेका साहस पैदा करें, क्योंकि ऐसा करनेसे आदमीका चरित्र ऊँचा होता है और उसका नैतिक स्तर ऊँचा होता है। इसलिए मुझे यह देखकर खुशी हुई कि इन दोस्तोंने वह सिद्धान्त अपना लिया है जिसपर मैंने पचास वर्षोंसे या उससे भी अधिक अर्सेसे अमल करनेकी कोशिश की है।

उन्हें उनके साहसपर बधाई देनेके बाद मैं यह कहना चाहता हूँ कि उन्होंने अपने संशोधनोंके द्वारा इस कमेटीको जो बात स्वीकार करनेको कहा वह स्थितिको यथार्थ रूपमें प्रस्तुत नहीं करती। मौलाना आजादने संशोधन वापस लेनेके लिए इन दोस्तोंसे जो अपील की उसपर उन्हें विचार करना चाहिए था। उन्हें जवाहरलाल द्वारा दिये गये स्पष्टीकरणको समझनेकी कोशिश करनी चाहिए थी। यदि वे ऐसा करते तो उन्हें स्पष्ट हो जाता कि जो अधिकार देनेके लिए वे अब कांग्रेससे कह रहे हैं, वह अधिकार कांग्रेस पहले ही दे चुकी है।

एक समय था जब हर मुसलमान दावा करता था कि सारा भारत उसकी मातृभूमि है। जिन दिनों अली-भाई मेरे साथ थे, उनकी हर बातचीत और चर्चामें यह धारणा निहित रहती थी कि भारत जितना हिन्दुओंका है उतना मुसलमानोंका भी है। मैं इस बातका गवाह हूँ कि यह उनका सच्चा विश्वास था; ढोंग नहीं था। मैं कई वर्षोंतक उनके साथ रहा। मैं दिन-रात उनके साथ रहता था। और मैं छातीपर हाथ रखकर कह सकता हूँ कि वे जो बात मानते थे वही मुँहसे भी कहते थे। मैं जानता हूँ कि कई ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि मैं हर चीजके प्रकट रूपपर आसानीसे विश्वास कर लेता हूँ और मैं आसानीसे धोखा खा जानेवाला आदमी हूँ। मैं नहीं समझता कि मैं ऐसा बुद्धू हूँ, और न मैं इतनी आसानीसे धोखा खानेवाला हूँ जैसा कि वे दोस्त समझते हैं। लेकिन उनकी आलोचना से मुझे दुःख नहीं होता। मेरे खयालमें यह बेहतर है कि कोई मुझे धोखा देनेवाला समझनेके बजाय धोखा खानेवाला समझे।

इन कम्युनिस्ट दोस्तोंने अपने संशोधनोंके द्वारा जिस बातका सुझाव दिया है वह कोई नई नहीं है। इसे हजारों मंचोंसे दोहराया गया है। हजारों मुसलमानोंने मुझसे कहा है कि अगर हिन्दू-मुस्लिम सवालको सन्तोषजनक रूपसे सुलझाना हो तो उसे मेरे जीवन-कालमें सुलझा लेना चाहिए। इसमें मुझे अपनी बड़ाई समझनी चाहिए, परन्तु मैं ऐसा सुझाव क्योंकर मान सकता हूँ जो मेरी बुद्धिको न जँचे? हिन्दू-मुस्लिम एकता कोई नई बात नहीं है। लाखों हिन्दुओं और मुसलमानोंने इसके लिए प्रयास किया है। मैंने अपने लड़कपनसे ही इसकी प्राप्तिके लिए सजग प्रयत्न किया है। जब स्कूलमें था तब मैं मुसलमान और पारसी सहपाठियोंसे दोस्ती करनेका खास ख्याल रखता था। उस छोटी उम्रमें भी मेरा यह विश्वास था कि अगर भारतके हिन्दुओंको दूसरे सम्प्रदायोंके साथ शान्ति और दोस्तीसे रहना है तो उन्हें अच्छे पड़ोसी बननेकी कोशिश करनी चाहिए। मैं सोचता था कि अगर मैं हिन्दुओंके साथ दोस्ती पैदा करनेकी खास कोशिश न करूँ तो कोई बात नहीं है,

मगर मुझे कमसे-कम कुछ मुसलमानोंके साथ दोस्ती जरूर करनी चाहिए। एक मुसलमान व्यापारीका वकील बनकर ही मैं दक्षिणी आफ्रिका गया था। वहाँ जाकर मैंने दूसरे मुसलमानोंके साथ दोस्ती पैदा की, यहाँतक कि अपने मुवक्किलके विरोधियोंके साथ भी मैंने दोस्ती की और मैं ईमानदारी और नेकनीयतीके लिए प्रसिद्ध हो गया। मेरे दोस्तों और सहयोगियोंमें मुसलमान और पारसी भी थे। मैंने उनका दिल जीत लिया और जब मैं अन्तिम बार भारतके लिए रवाना हुआ तो वे उदास हो गये और जुदाईके दुःखमें आँसू बहा रहे थे।

भारत आकर भी मैंने अपनी कोशिश जारी रखी और एकता स्थापित करनेके लिए कोई कोशिश उठा नहीं रखी। चूँकि एकता मेरे जीवन-भरकी अभिलाषा थी, इसीलिए मैं खिलाफत आन्दोलनमें मुसलमानोंके साथ पूरा-पूरा सहयोग करने को तैयार हो गया। देश-भरके मुसलमानोंने मुझे अपना सच्चा दोस्त माना।

तो फिर क्या बात है कि आज मुझे इतना बुरा और घृणित समझा जा रहा है? क्या खिलाफत आन्दोलनका समर्थन करने में मुझे अपना कोई मतलब निकालना था? यह सच है कि मेरे दिलमें यह आशा जरूर थी कि ऐसा करने से मैं गायकी शायद रक्षा कर सकूँगा। मैं गायकी पूजा करता हूँ। मेरा विश्वास है कि गाय और मैं एक ही ईश्वरके पैदा किये हुए हैं और गायको बचाने के लिए मैं अपने जीवनकी बलि देने को तैयार हूँ। लेकिन मेरा जीवन-दर्शन और मेरी सबसे बड़ी आशा चाहे कुछ ही क्यों न हो, मैं किसी सौदेबाजीके खयालसे उस आन्दोलनमें शामिल नहीं हुआ था। मैंने खिलाफतके संघर्षमें केवल इसीलिए सहयोग दिया कि मुझे अपने पड़ोसीके प्रति, जिसे मैंने मुसीबतमें फँसा पाया, अपना कर्त्तव्य निभाना था। अगर अली-भाई आज जीवित होते तो वे मेरी बातकी पुष्टि करते। और इसी तरह और बहुत-से लोग भी इस बातकी पुष्टि करते कि मैंने गायको बचानेके लिए सौदेबाजीके तौरपर ऐसा नहीं किया। खिलाफतके सवालकी तरह गायके सवालके पक्षमें भी कई बातें थीं। एक ईमानदार आदमी, एक अच्छे पड़ोसी और सच्चे दोस्तके नाते मेरा यह कर्त्तव्य था कि मैं मुसलमानोंकी मुसीबतकी घड़ीमें उनका साथ दूँ।

उन दिनों जब मैं मुसलमानोंके साथ खाता तो हिन्दुओंको आघात लगता था; हालाँकि ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, वे इस बातके अब आदी हो गये हैं। मौलाना बारीने मुझसे कहा कि यद्यपि वे मुझे अपना मेहमान बनाना चाहेंगे फिर भी वे मुझे अपने साथ नहीं खाने देंगे, ताकि किसी दिन उनपर यह दोष न लगाया जाये कि ऐसा करने में उनका कोई बुरा मकसद था। सो इसलिए जब-कभी मैं उनके यहाँ ठहरता, वे एक ब्राह्मण रसोइये को बुलवाते और अलग खाना पकवाने का इन्तजाम करते। फिरंगी महल, जहाँ वे रहते थे, पुराने ढंगकी इमारत थी और उसमें जगह थोड़ी थी। फिर भी वे खुशीसे सब कष्ट झेलते और अपना संकल्प पूरा करते और मैं उनके संकल्पको न बदल पाता। उन दिनों हमारे दिलोंमें शिष्टता, मान-मर्यादा और सज्जनताकी भावना रहती थी। हर सम्प्रदायके लोग दूसरे सम्प्रदायोंके लोगोंको अपने यहाँ ठहराने के लिए परस्पर होड़ किया करते थे। वे एक-दूसरेकी धार्मिक

भावनाओंका आदर करते थे और ऐसा करना अपना सौभाग्य समझते थे। किसीके दिलमें सन्देहका लेश-मात्र भी नहीं होता था। मान-मर्यादा और सज्जनताकी वह भावना अब कहाँ चली गई है? मैं सब मुसलमानोंसे और कायदे-आजम जिन्नासे भी कहूँगा कि वे उन शानदार दिनोंको याद करें और इस बातका पता लगायें कि आज हम इस उलझनमें क्योंकर फँस गये हैं। एक समय था जब कायदे-आजम खुद कांग्रेसी थे। अगर आज वे कांग्रेसपर नाराज हैं तो इसका कारण यह है कि उनके दिलमें सन्देह-विकार पैदा हो गया है। ईश्वर करे उनकी उम्र लम्बी हो। मगर जब मैं चल बसूँगा तो वे इस बातको समझेंगे और मानेंगे कि मुसलमानोंके प्रति मेरी नीयत खराब नहीं थी और मैंने उनके हितोंको कभी हानि नहीं पहुँचाई। अगर मैं उनके उद्देश्यको हानि पहुँचाऊँ या उनके हितोंको हानि पहुँचाऊँ तो मेरे लिए बच निकलने का कौन-सा रास्ता रहेगा? मेरी जान उनके लिए हाजिर है। वे जब भी चाहें खुशीसे उसका खातमा कर सकते हैं। अतीतमें मुझपर हमले किये गये हैं, लेकिन ईश्वरने आजतक मुझे बचाया है, और हमला करनेवालों को अपने किये पर पछतावा हुआ है। लेकिन अगर कोई यह सोचकर मुझपर गोली चलाये कि वह एक दुष्टसे पीछा छुड़ा रहा है तो वह असली गांधीको नहीं मारेगा बल्कि उस गांधीको मारेगा जो उसे दुष्ट प्रतीत होता है।

जिन लोगोंने गालियाँ देने और बदनामी करने की मुहिम चला रखी है, उनसे मैं कहूँगा कि इस्लाम आपको हिदायत करता है कि दुश्मनको भी गाली मत दो। हजरत मुहम्मद साहब तो अपने दुश्मनोंसे भी हमदर्दीका सलूक किया करते थे और उन्हें न्यायप्रियता और उदारतासे अपनी ओर कर लेने की कोशिश करते थे। आप उस इस्लामको माननेवाले हैं, या किसी और इस्लामको? अगर आप सच्चे इस्लामके माननेवाले हैं तो क्या आपके लिए यह वाजिब है कि आप उस आदमीकी बात पर एतबार न करें जो अपने मतका खुलेआम ऐलान करता है? मैं आपसे सच कहता हूँ कि आपको एक दिन इस बातपर पछतावा होगा कि आपने एक सच्चे और दिली दोस्तपर अविश्वास किया और उसकी जान ले ली। यह देखकर मुझे हार्दिक वेदना होती है कि ज्यों-ज्यों मैं अपील करता हूँ और ज्यों-ज्यों मौलाना मिन्नत-समाजत करते हैं त्यों-त्यों बदनाम करने की मुहिम तेज होती जाती है। मुझे तो ये गालियाँ गोलीकी तरह लगती हैं। वे गोलीकी तरह ही मेरी जान ले सकती हैं। आप मेरी जान ले लें। इसका मुझे दुःख नहीं होगा। लेकिन जो गालियाँ देते हैं, उनका क्या होगा? वे इस्लामको बदनाम करते हैं। इस्लामको बदनामीसे बचाने के लिए मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप गालियोंकी न रुकनेवाली मुहिमका विरोध कीजिए।

मौलाना साहबको गन्दीसे-गन्दी गालियोंका निशाना बनाया जा रहा है। क्यों? क्योंकि वे मुझपर दोस्तीका दबाव डालने से इनकार करते हैं। वे जानते हैं कि एक दोस्तको इस बातके लिए मजबूर करना कि वह जिसे झूठ जानता हो उसे सच मान ले, दोस्तीका दुरुपयोग है।

कायदे-आजमसे मैं कहूँगा: पाकिस्तानके बारेमें आपके दावेमें जो-कुछ सच और मान्य है वह पहले ही आपको मिल चुका है। जो गलत और अमान्य है वह किसीके हाथमें नहीं है कि वह आपको दिया जा सके। अगर कोई आदमी कोई झूठी बात दूसरेसे मनवाने में सफल भी हो जाये तो भी वह ऐसी जोर-जबरदस्तीका फल बहुत समयतक नहीं भोग सकेगा। ईश्वर अभिमानको नहीं पसन्द करता और उससे दूर रहता है। ईश्वर किसी झूठी बातका बलपूर्वका मनवाया जाना भी सहन नहीं करेगा।

कायदे-आजम कहते हैं कि वे कड़वी बातें कहने पर मजबूर हैं, लेकिन वे अपने विचारों और भावनाओंको व्यक्त किये बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार मैं भी कहूँगा: मैं अपने-आपको मुसलमानोंका दोस्त समझता हूँ। इसलिए मैं उन्हें नाराज करनेका खतरा मोल लेकर भी वे बातें क्यों न कहूँ जिनका मेरे दिलसे गहरा सम्बन्ध है। मैं अपने हृदयके अन्तस्तलके विचार उनसे कैसे छिपा सकता हूँ? मैं कायदे-आजमको अपने विचारों और भावनाओंको, चाहे वे सुननेवालों को कड़वी ही क्यों न लगें, स्पष्ट रूपसे व्यक्त करने के लिए बधाई देना चाहूँगा। फिर भी, अगर यहाँ बैठे मुसलमानोंके विचार श्री जिन्नासे नहीं मिलते तो उन्हें गालियाँ क्यों दी जायें? अगर करोड़ों मुसलमान आपके साथ हैं तो क्या आप उन मुट्ठी-भर मुसलमानोंको नजर-अन्दाज नहीं कर सकते जो आपको गुमराह मालूम होते हैं? जिसके करोड़ों अनुयायी हों उसे बहुसंख्यक सम्प्रदायसे डरने की क्या जरूरत है? उसे इस बातका क्या डर है कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय अल्पसंख्यकपर हावी हो जायेगा? पैगम्बरने अरबों और मुसलमानोंमें जाकर कैसे काम किया था? उन्होंने अपने मजहबका प्रचार कैसे किया? क्या उन्होंने यह कहा कि मैं इस्लामका प्रचार तभी करूँगा जब मेरे साथी बहुसंख्यक हो जायेंगे? इस्लामकी खातिर मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप मेरी बातपर विचार करें। ऐसा कहनेमें न तो ईमानदारी और न इन्साफ ही है कि कांग्रेस वह बात मान ले जिसे वह ठीक नहीं समझती और जो उसके प्रिय सिद्धान्तों के प्रतिकूल है।

राजाजी ने कहा: 'मैं पाकिस्तानको ठीक नहीं समझता। लेकिन मुसलमान उसकी माँग करते हैं। श्री जिन्ना उसकी माँग करते हैं। और उन सबको इसका खब्त हो गया है। तो क्यों न उनकी बात अभी मान ली जाये? वही श्री जिन्ना आगे चलकर पाकिस्तानकी हानियोंको समझेंगे और अपनी माँग छोड़ देंगे।' मैंने कहा: 'यह ईमानदारीकी बात नहीं है कि जिस चीजको मैं गलत समझूँ उसे मैं ठीक मान लूँ और दूसरोंसे भी उसे ठीक मान लेनेको कहूँ — यह सोचते हुए कि जब माँगका आखिरी फैसला करनेका समय आयेगा तो उस समय वह माँग पेश नहीं की जायेगी। अगर मैं माँगको उचित समझूँ तो उसे आज ही मान लूँ। केवल जिन्ना साहबको खुश करने के लिए मैं वह माँग स्वीकार नहीं करूँगा। कई दोस्तोंने आकर मुझसे कहा कि मैं जिन्ना साहबको खुश करने के लिए, उनके शक दूर करने के लिए और उनकी प्रतिक्रिया देखने के लिए फिलहाल यह माँग स्वीकार कर लूँ। लेकिन मैं किसी ऐसी कार्यवाहीमें शामिल नहीं हो सकता जिसमें किसीके साथ कोई झूठा वादा किया गया हो। बहरहाल यह मेरा तरीका नहीं है।'

कांग्रेसको अपने फैसले मनवाने के लिए नैतिक अधिकारके सिवाय कोई अधिकार नहीं है। कांग्रेसका विश्वास है कि सच्चा लोकतन्त्र अहिंसासे ही स्थापित हो सकता है। विश्व-संघकी इमारत अहिंसाकी नींवपर ही खड़ी की जा सकती है और अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें हिंसाका सर्वथा त्याग करना जरूरी है। अगर यह सच है तो हिन्दू-मुस्लिम सवाल भी हिंसाके द्वारा हल नहीं किया जा सकता। अगर हिन्दू मुसलमानोंपर अत्याचार करें तो वे किस मुँहसे विश्व-संघकी बात कर सकते हैं? इसी कारणसे मैं अंग्रेज और अमेरिकी राजनीतिज्ञोंकी भाँति हिंसाके द्वारा विश्व-शान्तिकी स्थापनाकी सम्भावनामें विश्वास नहीं करता। कांग्रेसने सारे मतभेदोंको एक निष्पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय अदालतके सामने रखने और उसके फैसलेपर अमल करने की बात मान ली है। अगर यह अत्यन्त न्यायसंगत सुझाव स्वीकार नहीं किया जा सकता तो फिर केवल तलवार और हिंसाका रास्ता ही रह जाता है। मैं असम्भव बात मानने को कैसे तैयार हो सकता हूँ? एक सजीव वस्तुके टुकड़े करने की माँग करने का मतलब है उसकी जान माँगना। यह तो लड़ाईकी ललकार है। कांग्रेस ऐसी लड़ाईमें शामिल नहीं हो सकती जिसमें भाई भाईको मारे। हो सकता है कि डॉ० मुंजे और श्री सावरकरकी तरह तलवारके सिद्धान्तको माननेवाले हिन्दू मुसलमानोंको अपने अधीन रखना चाहें। मैं उस वर्गका प्रतिनिधित्व नहीं करता। मैं कांग्रेसका प्रतिनिधित्व करता हूँ। आप कांग्रेसको, जो कि सोनेका अंडा देनेवाली मुर्गी है, मारना चाहते हैं। अगर आप कांग्रेसपर शक करेंगे तो विश्वास रखिए, हिन्दुओं और मुसलमानोंमें सदा लड़ाई होती रहेगी और लगातार जंग और खून-खराबा ही देशका भाग्य होगा। अगर ऐसा खून-खराबा ही देशके भाग्यमें बदा है तो मैं उसे देखने के लिए जीता नहीं रहूँगा।

इसी कारण मैं जिन्ना साहबसे कहता हूँ: 'मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि पाकिस्तान-सम्बन्धी आपकी माँगमें जो-कुछ न्याय्य और उचित है वह तो आपकी जेबमें ही है, और जो-कुछ न्याय और औचित्यके विरुद्ध है, उसे आप तलवारसे ही ले सकते हैं, किसी और तरीकेसे नहीं।'

मेरे दिलमें बहुत-से विचार उठ रहे हैं जो मैं इस सभाके सामने रख देना चाहूँगा। जो बात मेरे दिलमें सबसे पहले उठी वह तो मैंने कह दी है। मैं आपसे सच कहता हूँ कि मेरे लिए यह जिन्दगी और मौतका सवाल है। अगर हम हिन्दू और मुसलमान ऐसी दिली एकता स्थापित करना चाहते हैं जिसमें किसीके मनमें कहीं कोई दुराव न हो तो हमें पहले इस साम्राज्यकी बेड़ियोंसे आजाद होने के लिए मिलकर कोशिश करनी होगी। अगर आखिरकार भारतके ही एक अंगको पाकिस्तान बनना है तो मुसलमानोंको भारतकी आजादीकी लड़ाईमें शामिल होने में क्या एतराज हो सकता है? इसलिए हिन्दुओं और मुसलमानोंको चाहिए कि पहले वे आजादीकी लड़ाईके लिए इकट्ठे हो जायें। जिन्ना साहबका खयाल है कि विश्वयुद्ध लम्बे अर्से तक चलेगा। मैं ऐसा नहीं सोचता। अगर युद्ध छह महीने और चलता रहा तो हम चीनको कैसे बचा सकेंगे?

इसलिए, मैं कहता हूँ कि अगर हो सके तो आजादी फौरन दे दी जाये — आज रातको ही, कल पौ फटने से पहले ही। अब आजादीके लिए साम्प्रदायिक एकताकी

स्थापना तक इन्तजार नहीं किया जा सकता। अगर एकता स्थापित नहीं होती तो आजादीके लिए बहुत ज्यादा कुर्बानियाँ करनी पड़ेंगी बनिस्बत उस सूरतके जब कि एकता स्थापित हो जाये। लेकिन कांग्रेस या तो आजादी हासिल करेगी या उस कोशिशमें मिट जायेगी। और यह मत भूलिए कि कांग्रेस जिस आजादीके लिए लड़ रही है वह सिर्फ कांग्रेसियोंके लिए ही नहीं होगी, वह तो भारतके सभी चालीस करोड़ लोगोंके लिए होगी। कांग्रेसजनोंको सदा जनताके विनीत सेवक बनकर रहना चाहिए।

कायदे-आजमने कहा कि चूँकि अंग्रेजोंने साम्राज्य मुसलमानोंके हाथसे लिया था, इसलिए अगर वे अब मुस्लिम लीगको शासन सौंपना चाहें तो लीग शासन सँभालने को तैयार है। लेकिन वह तो मुस्लिम राज होगा। मौलाना साहब और मैंने जो पेशकश की है उसका मतलब मुस्लिम राज या मुस्लिम प्रभुत्व नहीं है। कांग्रेस किसी वर्ग या सम्प्रदायके प्रभुत्वको ठीक नहीं समझती। वह लोकतन्त्रमें विश्वास करती है, जिसके दायरेमें मुसलमान, हिन्दू, ईसाई, पारसी, यहूदी — इस विशाल देशमें रहनेवाले सभी सम्प्रदाय — आ जाते हैं। यदि मुस्लिम राज अनिवार्य हो तो होने दीजिए, लेकिन हम उसपर अपनी स्वीकृतिकी मोहर कैसे लगा सकते हैं? हम एक सम्प्रदायपर दूसरोंके प्रभुत्वकी बात कैसे मान सकते हैं?

इस देशके करोड़ों मुसलमान हिन्दुओंके वंशज हैं। उनका वतन भारतके सिवाय कोई दूसरा कैसे हो सकता है? कुछ वर्ष हुए, मेरा सबसे बड़ा लड़का मुसलमान बन गया। उसकी मातृभूमि क्या होगी? पोरबन्दर या पंजाब? मैं मुसलमानोंसे पूछता हूँ: 'अगर हिन्दुस्तान आपका वतन नहीं है तो आप किस मुल्कके हैं? किस अलग वतनमें आप मेरे उस बेटेको रखेंगे जिसने इस्लाम ग्रहण कर लिया था?' उसके मुसलमान बन जाने के बाद उसकी माँने उसे लिखा और पूछा कि क्या उसने इस्लाम ग्रहण करने के बाद शराब पीना छोड़ दिया है, जिसकी इस्लाम मुसलमानोंको मनाही करता है? जो लोग उसके धर्म-परिवर्तनपर खुश हो रहे थे उन्हें उसने लिखा: 'मुझे उसका मुसलमान बनना इतना नहीं खलता जितना कि उसका शराब पीना। क्या नेक मुसलमान होने के नाते आप यह गवारा कर सकते हैं कि वह मुसलमान बनने के बाद भी शराब पिये? शराब पी-पीकर वह आवारा और लुच्चा हो गया है। अगर आप उसे फिर इन्सान बना दें तो उसका धर्म बदलना उपयोगी रहेगा। इसलिए कृपया आप इस बातका खयाल रखिए कि वह मुसलमान होने के नाते शराब और औरतोंसे परहेज करे। अगर ऐसा परिवर्तन नहीं होता तो उसका धर्म-परिवर्तन बेकार होगा और उसके साथ हमारा असहयोग जारी रहेगा।'

इसमें सन्देह नहीं कि भारत यहाँ रहनेवाले सब मुसलमानोंका वतन है। इसलिए हर मुसलमानको भारतकी आजादीकी लड़ाईमें सहयोग देना चाहिए। कांग्रेस किसी एक वर्ग या सम्प्रदायकी नहीं है; वह सारी कौमकी है। मुसलमानोंको इस बातकी खुली छूट है कि वे कांग्रेसपर कब्जा कर लें। अगर वे चाहें तो भारी संख्यामें कांग्रेसमें शामिल होकर उसपर हावी हो सकते हैं और उसे मनचाहे रास्ते पर चला सकते हैं। कांग्रेस हिन्दुओंके लिए नहीं बल्कि सारी कौमके लिए — जिसमें

अल्पसंख्यक भी शामिल हैं — लड़ रही है। किसी कांग्रेसीके हाथों किसी मुसलमानके मारे जाने की एक भी घटना सुनकर मुझे दुःख होगा। आनेवाली क्रान्तिमें कांग्रेसजन हिन्दुओंके हमलोंसे मुसलमानोंको और मुसलमानोंके हमलोंसे हिन्दुओंको बचाने के लिए अपनी जान दे देंगे। ऐसा करना उनके विश्वासमें शामिल है और अहिंसाका आवश्यक अंग है। ऐसे अवसरोंपर आपसे आशा की जायेगी कि आप अपने दिमागको ठंडा रखें। यह हर कांग्रेसीका — वह हिन्दू हो या मुसलमान — कांग्रेसके प्रति, जो उनका अपना संगठन है, कर्त्तव्य है। जो मुसलमान ऐसा करेगा, वह इस्लामकी सेवा करेगा। आनेवाले अन्तिम राष्ट्रव्यापी संघर्षकी सफलताके लिए पारस्परिक विश्वास अत्यन्त आवश्यक है।

मैंने कहा है कि मुस्लिम लीग और अंग्रेजों द्वारा विरोध किये जाने के कारण इस बार हमें अपने संघर्षके सिलसिलेमें बहुत ज्यादा कुर्बानियाँ करनी पड़ेंगी। आपने सर फ्रेडरिक पकलका गुप्त परिपत्र[1] देखा है। उन्होंने आत्मघाती तरीका अख्तियार किया है। परिपत्रमें बरसातमें मेंढकोंकी तरह पैदा होनेवाली संस्थाओंको खुल्लमखुल्ला शह दी गई है कि वे मिलकर कांग्रेसका विरोध करें। इसका मतलब है कि हमें ऐसे साम्राज्यसे निपटना है जो सदा टेढ़ी चाल चलता है। हमारा रास्ता सीधा है, जिस पर हम आँखें मूंदकर भी चल सकते हैं। यह सत्याग्रहकी खूबी है।

सत्याग्रहमें धोखे, जालसाजी या किसी प्रकारके झूठके लिए जगह नहीं है। धोखा और झूठ आज दुनियापर छा गये हैं। मैं ऐसी स्थितिको चुपचाप बैठा नहीं देख सकता। मैं सारे भारतमें इतना अधिक घूमा-फिरा हूँ जितना कि वर्त्तमान युगमें शायद कोई भी नहीं घूमा-फिरा होगा। देशके करोड़ों बेजबान लोगोंने मुझे अपना मित्र और प्रतिनिधि पाया और मैं भी उनसे मिलकर उस हदतक एक हो गया जिस हदतक कि किसी मनुष्यके लिए ऐसा करना सम्भव है। मैंने देखा कि वे मुझपर विश्वास करते हैं और अब मैं झूठ और हिंसापर खड़े इस साम्राज्यका मुकाबला करने के लिए उनके विश्वासका उपयोग करना चाहता हूँ। साम्राज्यने चाहे कितनी ही लम्बी-चौड़ी तैयारियाँ क्यों न कर रखी हों, हमें उसके शिकंजेसे निकलना है। यह कैसे हो सकता है कि मैं इस महत्त्वपूर्ण घड़ीमें चुप बैठा रहूँ और सही रास्ता न दिखाऊँ? क्या मैं जापानियोंसे कहूँ कि भाई, जरा रुक जाओ? अगर आज मैं चुपचाप निष्क्रिय बैठा रहूँ तो ईश्वर मुझे फटकार देगा कि जब सारी दुनियामें आग फैल रही थी तब मैंने उसके दिये खजानेका उपयोग क्यों नहीं किया। यदि स्थिति कुछ और होती तो मैं आपसे थोड़ा इन्तजार करने को कहता। लेकिन अब स्थिति असह्य हो गई है और कांग्रेसके लिए कोई और रास्ता नहीं रह गया है।

फिर भी वास्तविक संघर्ष इस क्षण नहीं शुरू हो रहा है। आपने अपने सारे अधिकार मुझे सौंप दिये हैं। अब मैं वाइसरायसे भेंट करने जाऊँगा और उनसे कांग्रेसकी माँग स्वीकार करने का अनुरोध करूँगा। इस काममें दो-तीन सप्ताह लग जाने की सम्भावना है। इस बीच आप क्या करेंगे? इस अवधिके लिए क्या कार्यक्रम है, जिसमें सब हिस्सा ले सकते हैं? जैसा कि आप जानते हैं, मुझे सबसे पहले चरखेका खयाल आता है। मैंने मौलाना साहबको भी यही जवाब दिया था। वे चरखेकी बात नहीं मानते

१. देखिए पृ० ४१५-१६।

थे, हालाँकि बादमें इसका महत्त्व उनकी समझमें आ गया। चौदह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम तो आपके सामने है ही, जिसपर कि आप अमल कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त आपको क्या करना होगा? मैं आपको बताता हूँ। आपमें से हर स्त्री-पुरुषको इस क्षणसे अपनेको आजाद समझना चाहिए, और यों आचरण करना चाहिए मानो आप आजाद हैं, और इस साम्राज्यवादके शिकंजेसे छूट गये हैं।

मैं आपसे जो-कुछ कह रहा हूँ उसका मतलब अपने-आपको धोखा देना नहीं है। यह तो स्वतन्त्रताका सार है। गुलामकी बेड़ियाँ उसी क्षण टूट जाती हैं जब वह अपने-आपको आजाद समझने लगता है। तब वह अपने मालिकसे साफ कहेगा: 'इस क्षणतक तो मैं आपका गुलाम था लेकिन अब मैं गुलाम नहीं रहा। अगर आप चाहें तो मुझे मार सकते हैं, लेकिन अगर आप मुझे जिन्दा रहने दें तो मैं आपसे कहना चाहूँगा कि अगर आप अपनी मर्जीसे मुझे बन्धन-मुक्त कर दें तो मैं आपसे और कुछ नहीं माँगूँगा। आप मुझे रोटी-कपड़ा देते रहे थे, हालाँकि मैं खुद अपनी मेहनतसे रोटी-कपड़ेका प्रबन्ध कर सकता था। अबतक तो मैं भोजन-वस्त्रके लिए ईश्वरके भरोसे रहने के बजाय आपके भरोसे रहता था। लेकिन अब भगवानने मेरे अन्दर आजादीकी अभिलाषा पैदा कर दी है। आज मैं आजाद आदमी हूँ और आगेसे आपके भरोसे नहीं रहूँगा।'

आप विश्वास रखिए कि मैं मन्त्रिपदों आदिके लिए वाइसरायसे कोई सौदा करनेवाला नहीं हूँ। मैं पूर्ण स्वतन्त्रताके सिवाय किसी चीजसे सन्तुष्ट होनेवाला भी नहीं। हो सकता है कि वे नमक-करको हटाने, शराबकी लतको खत्म करने आदिके बारेमें सुझाव रख। लेकिन मैं कहूँगा: 'स्वतन्त्रताके सिवाय कुछ भी नहीं।'

यह एक छोटा-सा मन्त्र मैं आपको देता हूँ। आप इसे अपने हृदय-पटलपर अंकित कर लीजिए और हर श्वासके साथ उसका जाप किया कीजिए। वह मन्त्र है: 'करो या मरो।' या तो हम भारतको आजाद करेंगे या आजादीकी कोशिशमें प्राण दे देंगे। हम अपनी आँखोंसे अपने देशका सदा गुलाम और परतन्त्र बना रहना नहीं देखेंगे। प्रत्येक सच्चा कांग्रेसी, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, इस दृढ़ निश्चयसे संघर्षमें शामिल होगा कि वह देशको बन्धन और दासतामें बने रहने को देखने के लिए जिन्दा नहीं रहेगा। ऐसी आपकी प्रतिज्ञा होनी चाहिए। जेलका खयाल मनमें न लाइए। अगर सरकार मुझे कैद न करे तो मैं आपको जेल भरने का कष्ट नहीं दूंगा। ऐसे समय में जब कि सरकार खुद मुसीबतमें फँसी है, मैं उसपर भारी संख्यामें कैदियोंके प्रबन्धका बोझ नहीं डालूंगा। अबसे हर पुरुष और हर स्त्रीको अपने जीवनका हर क्षण यह जानते हुए बिताना है कि वे स्वतन्त्रताकी खातिर खा रहे हैं और जी रहे हैं, और अगर जरूरत हुई तो वे उस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए प्राण दे देंगे। ईश्वरको और अपने अन्तःकरणको साक्षी मानकर यह प्रण कीजिए कि जबतक आजादी नहीं मिलती तबतक हम दम नहीं लेंगे और आजादी लेने के लिए अपनी जान देने को भी तैयार रहेंगे। जो जान देगा उसे जीवन मिलेगा और जो जान बचायेगा वह जीवनसे वंचित हो जायेगा। स्वतन्त्रता कायरको या डरपोकको नहीं मिलती।

अब मैं पत्रकारोंसे दो शब्द कहूँगा। आपने राष्ट्रीय माँगका अबतक जो समर्थन किया है उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। आपको जिन पाबन्दियों और बन्धनोंमें रहकर काम करना पड़ता है उन्हें मैं जानता हूँ। लेकिन मैं आपसे कहूँगा कि आप उन जंजीरोंको तोड़ डालिए जिनमें आप जकड़े हुए हैं। समाचारपत्रोंको आजादीका रास्ता दिखाने और आजादीके लिए जान देने का उदाहरण प्रस्तुत करने का गौरवमय सौभाग्य प्राप्त करना चाहिए। आपके हाथमें कलम है, जिसे सरकार नहीं रोक सकती। मैं जानता हूँ कि छापेखाने आदिके रूपमें आपके पास बड़ी-बड़ी जायदादें हैं और आपको डर होगा कि सरकार कहीं उन्हें जब्त न कर ले। मैं आपसे नहीं कहता कि आप जान-बूझकर ऐसी बात करें जिससे कि आपका छापाखाना जब्त कर लिया जाये। जहाँतक मेरा सवाल है, मैं अपनी कलमको नहीं रोकूँगा, चाहे मेरा छापाखाना जब्त ही क्यों न हो जाये। जैसा कि आप जानते हैं, एक बार मेरा छापाखाना जब्त कर लिया गया था और बादमें मुझे लौटा दिया गया था। लेकिन मैं आपसे ऐसी बड़ी कुर्बानी करने को नहीं कहूँगा। मैं एक बीचका रास्ता बताता हूँ। आपको अपनी स्थायी समिति भंग कर देनी चाहिए और आप ऐलान कर सकते हैं कि वर्त्तमान पाबन्दियोंके रहते आप लिखना छोड़ देंगे और तभी कलमको हाथ लगायेंगे जब भारत स्वतन्त्र हो जायेगा। आप सर फ्रेडरिक पकलसे कह सकते हैं कि उन्हें यह आशा नहीं करनी चाहिए कि जैसा वे कहेंगे वैसा आप लिखेंगे। आप उन्हें बता सकते हैं कि उनकी प्रेस-टिप्पणियाँ सरासर झूठी होती हैं और आप उन्हें नहीं छापेंगे। आप खुल्लमखुल्ला ऐलान कर सकते हैं कि आप पूरी तरह कांग्रेसके साथ हैं। अगर आप ऐसा करें तो वास्तविक संघर्ष शुरू होने से पहले ही वातावरण बदल जायेगा।

नरेशोंके प्रति उचित आदर प्रकट करते हुए मैं एक छोटी-सी विनती करूँगा। मैं नरेशोंका हितैषी हूँ। मेरा जन्म एक रियासतमें हुआ था। मेरे दादाजी अपनी रियासतके नरेशके सिवाय किसी दूसरे नरेशको दाहिने हाथसे सलाम नहीं करते थे। लेकिन उन्होंने अपने नरेशसे कभी यह नहीं कहा — जैसा कि मेरे खयालसे उन्हें कह देना चाहिए था — कि उनका अपना मालिक भी उन्हें — अर्थात् अपने मन्त्री को — अपने अन्तःकरणकी आवाजके विरुद्ध काम करनेके लिए बाध्य नहीं कर सकता। मैंने नरेशोंका नमक खाया है और मैं नमकहरामी नहीं करूँगा। एक वफादार सेवकके नाते मेरा यह कर्त्तव्य है कि नरेशोंको सचेत कर दूँ कि अगर वे मेरे जीते-जी कुछ कर दिखायेंगे तो हो सकता है कि स्वतन्त्र भारतमें उन्हें सम्मानपूर्ण स्थान मिले। जवाहरलालने स्वतन्त्र भारतकी जो योजना बनाई है उसमें विशेषाधिकारों या विशेषाधिकार-सम्पन्न वर्गोंके लिए कोई जगह नहीं है। जवाहरलालके विचारमें सब सम्पत्ति सरकारकी मिल्कियत होनी चाहिए। वे योजना-बद्ध अर्थ-व्यवस्था चाहते हैं। वे योजनाके अनुसार भारतका पुनर्निर्माण करना चाहते हैं। वे उड़ना पसन्द करते हैं, मैं नहीं पसन्द करता। मैंने अपनी कल्पनाके भारतमें नरेशों और जमींदारोंके लिए स्थान रखा है। मैं नरेशोंसे नम्रतापूर्वक कहूँगा कि वे त्यागकी भावनासे उपभोग करें। वे जायदादपर अपनी मिल्कियत छोड़ दें और सच्चे अर्थोंमें

उसके न्यासी बन जायें। मुझे जनतामें जनार्दनका रूप दिखाई देता है। नरेश अपनी प्रजासे कह सकते हैं: 'आप रियासतके मालिक और स्वामी हैं और हम आपके सेवक हैं।' मैं नरेशोंसे कहूँगा कि वे जनताके सेवक बन जायें और बतायें कि उन्होंने जनताकी क्या-क्या सेवा की है। साम्राज्यने भी नरेशोंको कुछ अधिकार प्रदान किये हैं, परन्तु बेहतर होगा कि वे ऐसे अधिकार अपनी प्रजासे प्राप्त करें। अगर वे छोटी-मोटी सुख-सुविधाका उपभोग करना चाहें तो वे अपनी प्रजाके सेवकके रूपमें ऐसा करें। मैं नहीं चाहता कि नरेश कंगाल बनकर रहें। लेकिन मैं उनसे कहूँगा: 'क्या आप हमेशाके लिए गुलाम बने रहना चाहते हैं? क्यों न आप एक विदेशी राष्ट्रकी अधीनता स्वीकार करने के बजाय अपनी प्रजाको अपना स्वामी मानें। आप राजनीतिक विभागको लिखें: 'जनता अब जाग उठी है। हम इस बाढ़को कैसे रोक सकते हैं जिसके आगे बड़े-बड़े साम्राज्य मटियामेट हो रहे हैं? इसलिए हम आजसे जनताके होकर रहेंगे। हम उनके साथ जियेंगे या मरेंगे।' विश्वास कीजिए कि मैं आपको जो रास्ता बता रहा हूँ वह तनिक भी अवैध नहीं है। जहाँतक मुझे मालूम है, ऐसी कोई सन्धि नहीं हुई है, जिसके कारण साम्राज्य नरेशोंपर दबाव डाल सके। रियासतोंके लोग भी ऐलान करेंगे कि यद्यपि हम नरेशोंकी प्रजा हैं, लेकिन भारत-राष्ट्रके अंग हैं और हम नरेशोंका नेतृत्व तभी स्वीकार करेंगे, जब नरेश हमारे हानि-लाभमें शरीक हो जायें, वरना नहीं। अगर ऐसे ऐलानसे नरेशोंको गुस्सा आ जाये और वे लोगोंको मारना चाहें तो लोग बहादुरीसे और दृढ़तासे मौतका सामना करेंगे, परन्तु अपनी बातसे नहीं टलेंगे।

लेकिन कोई भी काम गुप्त रूपसे नहीं करना चाहिए। यह एक खुली बगावत है। इस संघर्षमें गुप्त रूपसे काम करना पाप है। स्वतन्त्र आदमी किसी गुप्त आन्दोलनमें शामिल नहीं होता। सम्भव है कि स्वतन्त्र होने के बाद आप मेरी सलाहके विरुद्ध अपनी खुफिया पुलिस रखें। लेकिन वर्त्तमान संघर्षमें हमें खुल्लमखुल्ला कार्यवाही करनी है और अपनी छातीपर गोलियाँ खानी हैं और भागना नहीं है।

सरकारी कर्मचारियोंसे भी मुझे दो शब्द कहने हैं। अगर वे चाहें तो अभी अपनी नौकरीसे इस्तीफा न दें। स्वर्गीय न्यायमूर्ति रानडेने अपने पदसे इस्तीफा नहीं दिया था, परन्तु उन्होंने खुल्लमखुल्ला ऐलान किया था कि मैं कांग्रेसी हूँ। उन्होंने सरकारसे कहा कि यद्यपि मैं न्यायाधीश हूँ, लेकिन मैं कांग्रेसी हूँ और प्रकट रूपसे कांग्रेसके अधिवेशनोंमें भाग लूँगा, परन्तु मेरे राजनीतिक विचार न्यायाधीशकी हैसियतसे मेरी निष्पक्षतापर कोई प्रभाव नहीं डाल सकेंगे। वे कांग्रेसके पंडालमें ही समाज-सुधार सम्मेलन किया करते थे। मैं सब सरकारी मुलाजिमोंसे कहूँगा कि आप रानडेके पद-चिह्नोंपर चलें और सर फ्रेडरिक पकलके गुप्त परिपत्रके जवाबमें यह घोषणा करें कि हम कांग्रेसके वफादार हैं।

इस समय तो मैं आपसे इतना ही चाहता हूँ। अब मैं वाइसरायको लिखूँगा। आप मेरे पत्र-व्यवहारको अभी तो नहीं, परन्तु उस समय जरूर पढ़ सकेंगे जब मैं वाइसरायकी अनुमतिसे उसे प्रकाशित कर दूँगा। परन्तु आपको यह दृढ़तापूर्वक कहने की खुली छूट है कि आप उस माँगका समर्थन करते हैं जो कि मैं अभी अपने

पत्रमें लिखनेवाला हूँ। एक न्यायाधीशने मुझसे आकर कहा: "हमें ऊँचे अधिकारियोंसे गुप्त परिपत्र मिलते रहते हैं। हम क्या करें?" मैंने जवाब दिया: "अगर मैं आपकी जगहपर होता तो मैं उनकी उपेक्षा कर देता। आपको सरकारसे साफ-साफ कह देना चाहिए: 'आपका गुप्त परिपत्र मुझे मिला है। लेकिन मैं कांग्रेसके साथ हूँ। यद्यपि मैं जीविकाके लिए सरकारकी नौकरी करता हूँ तो भी मैं इन गुप्त परिपत्रोंपर अमल नहीं करूँगा और न मैं खुफिया तरीके ही बरतूँगा।'"

वर्त्तमान कार्यक्रम सैनिकोंके लिए भी है। मैं उनसे अभी यह नहीं कहता कि आप अपने पदोंसे इस्तीफा दे दें और सेनासे अलग हो जायें। सैनिक मेरे पास, जवाहरलालके पास और मौलानाके पास आते हैं और कहते हैं: "हम पूरी तरह आपके साथ हैं। हम सरकारके अत्याचारसे तंग आ चुके हैं।" इन सैनिकोंसे मैं कहूँगा: "आप सरकारको बता दीजिए कि 'हमारे दिल कांग्रेसके साथ हैं। हम अपनी नौकरी नहीं छोड़ेंगे। जबतक आप हमें वेतन देते रहेंगे हम आपकी नौकरी करते रहेंगे। हम आपके उचित हुक्मको मानेंगे, लेकिन अपने देशवासियोंपर गोली चलाने से इनकार कर देंगे।'"

जिनमें इतना भी करने की हिम्मत नहीं है, उनसे मुझे कुछ नहीं कहना है। वे अपनी राह चलेंगे। लेकिन अगर आप इतना ही कर सकें तो विश्वास कीजिए कि सारे वातावरणमें बिजली-सी दौड़ जायेगी। तब फिर अगर सरकार चाहे तो बमोंकी वर्षा कर ले। लेकिन तब दुनियाकी कोई ताकत आपको क्षण-भर भी गुलाम नहीं बनाये रख सकेगी।

अगर विद्यार्थी थोड़ी देर संघर्षमें शामिल होकर फिर वापस स्कूलों-कालेजोंमें चले जाना चाहते हों तो मैं उनसे संघर्ष में शामिल होने को नहीं कहूँगा। अलबत्ता, फिलहाल जबतक कि मैं संघर्षका कार्यक्रम तैयार नहीं कर लेता तबतक मैं विद्यार्थियोंसे कहूँगा कि वे अपने प्रोफेसरोंसे कहें: 'हम कांग्रेसके हैं। आप सरकारके हैं या कांग्रेसके? अगर आप कांग्रेसी हैं तो आपको नौकरी छोड़ने की जरूरत नहीं है। आप अपने पदोंपर बने रहिए, लेकिन हमें पाठ पढ़ाइए और आजादीका रास्ता दिखाइए।' दुनिया-भरमें हर जगह स्वतन्त्रताके संघर्षमें विद्यार्थियोंने बहुत बड़ा योग दिया है।

अभी और वास्तविक संघर्ष छिड़ने की घड़ीके बीच जो समय हमें मिलेगा अगर इस बीच आप जो-कुछ थोड़ा मैंने सुझाया है उतना ही करें तो आप वातावरण ही बदल देंगे और अगले कदमका मार्ग प्रशस्त कर देंगे।

अभी मुझे बहुत-कुछ कहना है। लेकिन मेरा दिल भारी है। मैंने पहले ही आपका बहुत समय ले लिया है। अभी मुझे कुछ शब्द अंग्रेजीमें भी कहने हैं। मैं आपको धन्यवाद करता हूँ कि आपने इतनी शाम गये भी मेरी बातोंको बड़े धीरज और ध्यानसे सुना। सच्चे सिपाहियोंका यही काम होता है। पिछले २२ वर्षोंसे मैंने अपनी जबान और लेखनीको काबूमें रखा है और इस प्रकार अपनी शक्तिको जमा करके रखा है। वही सच्चा ब्रह्मचारी होता है जो अपनी शक्तिको यों ही नहीं गँवाता। अतः वह अपनी जबानको सदा काबूमें रखता है। मैं इन सारे वर्षोंमें सजगतापूर्वक यही कोशिश करता रहा हूँ। लेकिन आज ऐसा अवसर आया जब कि मुझे

आपके सामने अपने दिलकी बात कह देनी थी। सो मैंने कह दी है, हालाँकि मुझे आपको थका ही देना पड़ा, पर मुझे इस बातका कोई अफसोस नहीं है। मैंने आपको अपना सन्देश दे दिया है और आपके माध्यमसे उसे सारे भारतको पहुँचा दिया है।

[अंग्रेजीसे]
महात्मा, जिल्द ६, पृ० १५४-६४

४२७. भाषण : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें

बम्बई
[८ अगस्त, १९४२][1]

जो बात मेरी आत्माको कचोट रही थी उसे जिन लोगोंकी सेवाका सौभाग्य मुझे अभी मिला था उनके सम्मुख रखने में मैंने बहुत समय ले लिया है। मुझे उन लोगोंका नेता, अथवा सेनाकी भाषामें कहें तो, सेनापति कहा जाता है। लेकिन मैं अपनी स्थितिको उस दृष्टिसे नहीं देखता। किसीपर हुक्म चलाने के लिए मेरे पास प्रेमके अलावा और कोई अस्त्र नहीं है। हाँ, मेरे पास एक छड़ी जरूर है, जिसे आप एक झटकेसे ही तोड़ सकते हैं। वह तो मेरी टेकनी है जिसके सहारे मैं चलता हूँ। ऐसे अपंग व्यक्तिसे जब सबसे बड़े कामकी जिम्मेदारी लेने के लिए कहा जाये तो उसे खुशी महसूस नहीं हो सकती। आप उसमें मेरा हाथ केवल तभी बँटा सकते हैं जब मैं आपके सामने आपके सेनापतिके रूपमें नहीं, बल्कि एक विनम्र सेवकके रूपमें आऊँ। और जो सबसे अच्छी सेवा करता है वही बराबरकी हैसियत-वालों में प्रमुख हो जाता है।

इसलिए मेरे हृदयमें जो विचार उठ रहे थे उनको मुझे आपके सम्मुख रखना ही था और आपको, जहाँतक बन सके वहाँतक, संक्षेपमें यह बताना था कि मैं आपसे सबसे पहले क्या करने की अपेक्षा रखता हूँ।

मैं आपको पहले ही बता दूँ कि असली लड़ाई आजसे शुरू नहीं होती। मुझे हमेशाकी तरह, अभी बहुत सारी औपचारिकताएँ निभानी हैं। बोझ लगभग असहनीय है और मुझे उन लोगोंको समझाने-बुझाने की कोशिश जारी रखनी है जिनमें फिलहाल मेरी कोई साख नहीं रही है। मुझे मालूम है कि पिछले कुछ हफ्तोंके दौरान मैं अपने बहुत सारे मित्रोंमें अपनी साख गँवा बैठा हूँ, यहाँतक कि उनमें से कुछ तो न केवल मेरे विवेकपर बल्कि मेरी ईमानदारीपर भी शक करने लगे हैं। जहाँतक मेरे विवेकका सवाल है, मैं यह मानता हूँ कि यह कोई ऐसी अमूल्य वस्तु नहीं है जिसके चले जाने से मुझे बहुत ज्यादा दुःख हो, लेकिन ईमानदारी एक ऐसी अमूल्य निधि है जिसकी क्षतिको मैं कदापि सहन नहीं कर सकता।

१. इंडियन ऐनुअल रजिस्टर १९४२, जिल्द २, पृ० १४४ से

जो व्यक्ति सत्यका सच्चा अन्वेषक है और जो बिना किसी भय अथवा पाखण्ड के अपने देश व मानवता की सेवा करने की अपनी समझसे भरसक कोशिश करता है, उसके जीवनमें ऐसे अवसर आते ही रहते हैं। पिछले पचास वर्षोंसे मैं इसके अतिरिक्त और कोई तरीका नहीं जानता। मैं मानवताका विनम्र सेवक रहा हूँ और मैंने साम्राज्यकी जैसी मुझसे हो सकती थी एकाधिक बार वैसी सेवा की है। और यहाँ मैं निःशंक होकर कह सकता हूँ कि अपने सारे सेवा-कालमें मैंने कभी अपने लिए कुछ नहीं माँगा है। मेरे इस दावेको कोई चुनौती नहीं दे सकता। लॉर्ड लिनलिथगो मेरे अच्छे मित्र रहे हैं, आज भी वे मेरे मित्र हैं। वह ऐसी मित्रता है जो सरकारी काम-काजके सिलसिलेमें स्थापित सम्बन्ध खत्म हो जाने के बाद भी कायम है। लॉर्ड लिनलिथगो मेरी इस बातकी पुष्टि करेंगे अथवा नहीं, सो मैं नहीं जानता। लेकिन वह और मैं, दोनों एक व्यक्तिगत बन्धनमें बँध गये हैं। एक बार उन्होंने मेरा परिचय अपनी पुत्रीसे करवाया था। उनके दामाद, जो उनके अंगरक्षक हैं, मेरी ओर आकर्षित हुए थे। उनका मुझसे भी अधिक महादेवसे प्रेम हो गया और वे तथा लेडी एन मेरे यहाँ आए थे। लेडी एन लॉर्ड लिनलिथगोकी आज्ञाकारिणी और प्यारी पुत्री हैं। उनकी भलाईमें मेरी रुचि है। मैं आपको यह रुचिर प्रसंग इसलिए बता रहा हूँ जिससे कि आपको इस बातका अच्छी तरहसे अन्दाज हो जाये कि हममें आपसमें कैसे ताल्लुकात हैं। फिर भी यहाँ मैं यह बता दूँ कि साम्राज्यके प्रतिनिधिके रूपमें यदि मुझे दुर्भाग्यवश लॉर्ड लिनलिथगोके विरुद्ध कड़ा संघर्ष छेड़ना पड़ा तो उसमें उन ताल्लुकातसे कोई अन्तर नहीं आयेगा। मुझे ऐसा लगता है कि इस साम्राज्यकी ताकतका मुझे करोड़ों मूक लोगोंकी ताकतसे मुकाबला करना होगा —और इस संघर्षके सिवाय इसके और कोई सीमा नहीं होगी कि हमें अहिंसा की नीतिका अनुसरण करना है। जिन वाइसरायके साथ मेरे इतने मधुर सम्बन्ध हैं उनके विरुद्ध संघर्ष छेड़ना अत्यन्त कष्टदायक कार्य है। उन्होंने अनेक बार मेरे कथन पर, और भारतीय जनताके बारेमें मैं जो कहता हूँ उसपर अकसर विश्वास किया है। मैं अत्यन्त गर्व और प्रसन्नताके साथ इसका उल्लेख कर रहा हूँ। मैं इसका उल्लेख यह दिखाने के लिए कर रहा हूँ कि ब्रिटिश राष्ट्रके प्रति, साम्राज्यके प्रति सच्चा रहने की मुझमें कितनी इच्छा रही है। मैं इसका उल्लेख इस बातकी साक्षीके रूपमें कर रहा हूँ कि जब उस साम्राज्यपर से मेरा विश्वास उठ गया, तब उस अंग्रेजको जो इस साम्राज्यका वाइसराय था, इसके बारेमें मालूम हो गया।

इसके अतिरिक्त चार्ली एण्ड्र्यूजकी पावन स्मृति भी है, जो इस समय मेरे मनमें उमड़ रही है। एण्ड्र्यूजकी आत्मा मेरे इर्द-गिर्द मंडराती रहती है। मुझे तो उनमें अंग्रेजी संस्कृतिकी सबसे उज्ज्वल परम्पराका सार मिलता है। मेरे उनके साथ इतने घनिष्ठ सम्बन्ध थे जितने बहुत-से भारतीयोंके साथ नहीं रहे हैं। मुझे उनका विश्वास प्राप्त था। हम दोनोंमें आपसमें कोई बात छिपी नहीं थी। हम दोनों हर रोज एक-दूसरेसे अपने दिलकी बात कहते थे। उनके मनमें जो-कुछ भी होता था वे निस्संकोच और निःशंक मुझसे कह देते थे। यह सच है कि गुरुदेवसे उनकी मैत्री थी, पर वे गुरुदेवके प्रति श्रद्धासे अभिभूत थे—यद्यपि गुरुदेव ऐसा नहीं

चाहते थे। एण्ड्रूजमें ऐसी ही अनोखी विनम्रता थी। परन्तु मेरे तो वे घनिष्ठ मित्र बन गये। बहुत साल पहले जब वे दक्षिण आफ्रिका[1] आये थे, तो स्वर्गीय[2] गोखलेका परिचयपत्र अपने साथ लाये थे। दुर्भाग्यसे वे अब नहीं रहे।[3] वे एक अच्छे अंग्रेज थे।[4] मैं जानता हूँ कि एण्ड्रूजकी आत्मा मेरी ये सारी बातें सुन रही है।

और मुझे कलकत्ताके बिशप (डॉ० वेस्टकोट)[5] का तार मिला है, जिसमें उन्होंने मुझे अपना आशीर्वाद दिया है, हालाँकि मैं जानता हूँ कि वे मेरे इस कार्यके विरुद्ध हैं। मैं उन्हें धार्मिक व्यक्ति मानता हूँ। उनके हृदयकी भाषाको मैं समझ सकता हूँ और मैं जानता हूँ कि उनका हृदय मेरे साथ है।

इस पृष्ठभूमिके साथ मैं संसारके सम्मुख यह घोषणा करना चाहता हूँ कि इसके विपरीत लोग चाहे कुछ भी कहें, और हालाँकि मैं पश्चिममें अपने बहुत-से मित्रोंका आदर-भाव और विश्वास खो बैठा हूँ तथा इसका मुझे खेद है, लेकिन उनकी मित्रता या प्रेमकी खातिर भी मुझे अपने हृदयकी आवाजको, जिसे आप चाहें तो "अन्तरात्मा" कह सकते हैं अथवा चाहें तो "मेरी आन्तरिक मूल प्रकृतिकी प्रेरणा" कह सकते हैं, दबाना नहीं चाहिए। मेरे भीतर कोई चीज है जो मुझे अपनी व्यथाको वाणी देने के लिए बाध्य कर रही है। मैंने मानव-स्वभावको जाना है। मैंने थोड़ा-बहुत मनोविज्ञानका भी अध्ययन किया है, हालाँकि इसपर मैंने ज्यादा पुस्तकें पढ़ी नहीं हैं। ऐसा व्यक्ति अच्छी तरहसे जानता है कि वह चीज क्या है। मेरे भीतरकी वह आवाज, जो मुझे कभी धोखा नहीं देती, अब मुझसे कह रही है: 'तुम्हें सारे संसारके विरुद्ध खड़ा होना है, भले ही तुम्हारा साथ कोई न दे और तुम अकेले ही रह जाओ। तुम्हें संसारके आमने-सामने खड़ा होना है भले ही संसार तुम्हें खूनी आँखोंसे देखे। डरो नहीं। उस छोटी-सी चीजपर विश्वास करो जो तुम्हारे हृदयमें बसती है।' वह कहती है, 'मित्रोंको, पत्नीको और सबको त्याग दो; लेकिन जिसके लिए तुम जीते रहे हो और जिसके लिए तुम्हें मरना है, वह सिद्ध करके दिखा दो।'

दोस्तो, मेरा विश्वास करो, मैं मरने के लिए कतई उत्सुक नहीं हूँ। मैं अपनी पूरी आयु जीना चाहता हूँ। मेरे विचारानुसार वह आयु कमसे-कम १२० वर्ष है। उस समयतक भारत स्वतन्त्र हो जायेगा, संसार स्वतन्त्र हो जायेगा। मैं आपको यह भी बता दूँ कि मैं इंग्लैण्डको अथवा इस दृष्टिसे अमेरिकाको भी स्वतन्त्र देश नहीं मानता। ये अपने ढंगसे स्वतन्त्र देश हैं, पृथ्वीकी अश्वेत जातियोंको दासताके पाश में बाँधे रखने के लिए स्वतन्त्र हैं। क्या इंग्लैण्ड और अमेरिका आज इन जातियों

१. 'दक्षिण आफ्रिका' शब्द गांधीजी ने जोड़े थे।

२. 'स्वर्गीय' शब्द गांधीजी ने जोड़ा था।

३. यह गांधीजी के स्वाक्षरोंमें है। मूलमें लिखा था कि "दुर्भाग्यसे पियर्सन और वह दोनों ही इस दुनियामें नहीं रहे।"

४. यह गांधीजी के स्वाक्षरोंमें है। मूलमें लिखा था "वे दोनों आदर्श अंग्रेज थे।"

५. यह नाम गांधीजी ने जोड़ा था।

की स्वतन्त्रताके लिए लड़ रहे हैं? आप स्वतन्त्रताकी मेरी परिकल्पनाको सीमित न करें। अंग्रेज और अमेरिकी शिक्षकोंने, उनके इतिहासने, उनके शानदार काव्यने यह नहीं कहा है कि आप स्वतन्त्रताकी व्याख्याका विस्तार न करें। मुझे विवश होकर कहना पड़ रहा है कि स्वतन्त्रताकी मेरी व्याख्याके अनुसार, वे उनके कवियों और शिक्षकोंने जिस स्वतन्त्रताका वर्णन किया है उससे सर्वथा अपरिचित हैं। यदि वे सच्ची स्वतन्त्रताको जानना चाहते हैं तो उन्हें भारत आना चाहिए। उन्हें यहाँ अभिमान और अहंकार-भावसे नहीं बल्कि सच्चे सत्यान्वेषीकी भावनासे आना होगा।

यह वह मूलभूत सत्य है जिसका पिछले २२ वर्षोंसे भारत प्रयोग कर रहा है। बहुत पहले, अपने स्थापना-कालसे ही कांग्रेस अनजाने ही उस चीजका त्याग करके चलती रही है जिसे संवैधानिक तरीका कहा जाता है, हालाँकि ऐसा करते हुए भी वह अहिंसापर कायम रही है। दादाभाई और फीरोजशाह, जो कांग्रेसी भारतके सर्वेसर्वा थे, संवैधानिक तरीके पर आरूढ़ रहे।[1] वे कांग्रेसके प्रेमी थे। वे इसके मालिक थे। लेकिन सबसे पहले वे सच्चे सेवक थे। उन्होंने हत्या, गोपनीयता और ऐसी अन्य बातोंका कभी समर्थन नहीं किया। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि हम कांग्रेसियोंमें कई खराब लोग हैं। लेकिन बड़ेसे-बड़े पैमानेपर[2] अहिंसात्मक संघर्ष छेड़नेके लिए मैं सारे भारतपर भरोसा करता हूँ। मानव-स्वभावकी नैसर्गिक अच्छाई पर मुझे भरोसा है,[3] जो सत्यको जान लेता है और संकटके समय मानो अन्तः-प्रेरणासे काम करता है। लेकिन यदि अपने इस विश्वासमें मैं ठगा जाता हूँ तो भी मैं विचलित[4] नहीं होऊँगा। अपने स्थापना-कालसे ही कांग्रेसने अपनी नीतिका आधार शान्तिपूर्ण तरीकोंको बनाया तथा बादमें आनेवाली पीढ़ियोंने उनमें असहयोग और जोड़ दिया। जब दादाभाईने ब्रिटिश संसदमें प्रवेश किया तो सेलिसबरीने उन्हें काले आदमीका खिताब दिया था। लेकिन अंग्रेज जनताने सेलिसबरीको हरा दिया और दादाभाई उसीके मतोंसे संसदमें पहुँचे। भारत तब हर्षसे पागल हो उठा था। तथापि इन सब बातोंको भारत अब पीछे छोड़ आया है।

मैं चाहता हूँ कि अंग्रेज, यूरोपीय और सभी मित्र-राष्ट्र इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए अपने दिलोंसे पूछें कि आज भारतने अपनी स्वतन्त्रताकी जो माँग की है उसमें उसने क्या अपराध किया है। मैं पूछता हूँ : क्या आपका हमपर अविश्वास करना उचित है? क्या यह उचित है कि जिस संस्थाकी ऐसी पृष्ठभूमि है, आधी सदीसे अधिक कालकी ऐसी परम्परा और ऐसा इतिहास है, उसपर अविश्वास किया जाये और अपनी पूरी शक्ति लगाकर आप संसारके समक्ष उसकी गलत तसवीर पेश करें? मैं पूछता हूँ कि क्या यह उचित है कि आप येन-केन प्रकारेण,

१. यह गांधीजी के स्वाक्षरोंमें है। मूलमें लिखा था, 'विद्रोही बन गये थे।"

२. 'बड़ेसे-बड़े पैमानेपर' शब्द गांधीजी ने जोड़े थे।

३. यह गांधीजी के स्वाक्षरोंमें है। मूलमें लिखा था: "पर भरोसा करने के अपने स्वभावके कारण।"

४. यह गांधीजी के स्वाक्षरोंमें है। मूलमें लिखा था: "मैं झिझकूँगा नहीं।"

विदेशी समाचारपत्रोंकी सहायतासे, अमेरिकाके राष्ट्रपतिकी मददसे अथवा चीनके जनरलिसिमोकी मददसे, जिन्हें स्वयं अभी सफलता प्राप्त करनी है, भारतकी नीति विकृत रूपमें पेश करें? वैसे मैं आशा करता हूँ कि इसमें अमेरिकी राष्ट्रपति और जनरलिसिमोकी मददकी बात सच नहीं होगी।

मैं जनरलिसिमोसे मिला हूँ। मैंने उन्हें श्रीमती-च्यांगके माध्यमसे जाना है, जो मेरी दुभाषिया थीं और हालाँकि वे मुझे दुर्ज्ञेय जान पड़े लेकिन श्रीमती च्यांग मुझे ऐसी नहीं लगीं। उन्होंने मुझे श्रीमती च्यांगके माध्यमसे इस बातका अवसर दिया कि मैं उनके हृदयगत भावोंको जान सकूँ। उन्होंने अभीतक यह नहीं कहा है कि हम जो स्वतन्त्रताकी माँग करते हैं वह गलत है। आज संसार-भरमें हमारे विरुद्ध असम्मति तथा विरोधका राग अलापा जा रहा है। उनका कहना है कि हम भूल कर रहे हैं, हमारा कदम समयके अनुरूप नहीं है। मेरे मनमें अंग्रेजोंके लिए बहुत आदर-भाव था, लेकिन अब ब्रिटिश राजनीतिसे मुझे अरुचि होती है। तथापि और लोग अपना सबक सीख रहे हैं। इन साधनों द्वारा वे कुछ समयके लिए संसारके लोकमतको अपनी ओर कर सकते हैं। लेकिन भारत सभी प्रकारके संगठित प्रचार के विरुद्ध अपनी आवाज उठायेगा। मैं इसके विरुद्ध बोलूँगा। यदि सारा संसार मेरा त्याग कर देता है तब भी मैं कहूँगा: 'आप लोग गलत हैं। भारत अहिंसा द्वारा अनिच्छुक हाथोंसे अपनी स्वाधीनता छीनकर रहेगा।'

यदि मेरी आँखें बन्द हो जाती हैं और भारतको स्वाधीनता नहीं मिलती, तब भी अहिंसाका अन्त नहीं होगा। यदि वे अहिंसक भारतकी, जो आज उनके सामने घुटने टेककर बहुत पुराना ऋण चुका देनेका अनुरोध कर रहा है, स्वाधीनताकी माँगका विरोध करते हैं तो ऐसा करके वे चीन और रूसपर घातक प्रहार करेंगे। क्या कभी लेनदार इस तरह देनदारके पास जाता है? और जब भारतको ऐसे रोष-भरे विरोधका सामना करना पड़ता है, तब भी वह कहता है: 'हम ओछा वार नहीं करेंगे। हमने पर्याप्त भलमनसाहत सीख ली है। हम अहिंसा से प्रतिबद्ध हैं।' कांग्रेस ब्रिटिश सरकारको परेशान नहीं करेगी, इस नीतिका प्रणेता मैं ही हूँ। इसके बावजूद, आज आप मुझे इतनी कड़ी भाषाका प्रयोग करते देखते हैं। लेकिन परेशान न करनेकी मेरी दलीलके साथ हमेशा यह शर्त जुड़ी रहती थी कि वह हमारे "प्रतिष्ठा और सुरक्षाके अनुरूप हो"। यदि कोई व्यक्ति मुझे गलेसे पकड़कर डुबो देना चाहे तो क्या मुझे अपनेको उससे छुड़ानेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए? हमारी आजकी स्थितिमें कोई असंगति नहीं है।

आज यहाँ विदेशी समाचारपत्रोंके प्रतिनिधि इकट्ठे हुए हैं। इनकी मार्फत मैं संसारसे कहना चाहता हूँ कि मित्र-राष्ट्रोंके सामने, जो कहते हैं कि उन्हें भारत की जरूरत है, आज यह सुअवसर है कि वे भारतको स्वतन्त्र घोषित कर दें और इस तरह अपनी सदाशयता सिद्ध करें। यदि वे ऐसा नहीं करते तो वे अपने जीवनमें मिले इस सुअवसरको खो देंगे और इतिहासके पृष्ठोंमें यह बात सदाके लिए अंकित हो जायेगी कि उन्होंने समयपर भारतके प्रति अपने दायित्वका पालन

नहीं किया और लड़ाई हार गये। मैं समस्त संसारकी शुभकामनाएँ चाहता हूँ, जिससे कि उनके साथ अपने प्रयासमें मैं सफलता हासिल कर सकूँ। मैं नहीं चाहता कि मित्र-राष्ट्र अपनी स्पष्ट मर्यादाओंसे बाहर जायें। मैं नहीं चाहता कि वे अहिंसाको स्वीकार करके अभी निरस्त्र हो जायें। फासीवादमें और आज मैं जिस साम्राज्यवादके विरुद्ध लड़ रहा हूँ उसमें मौलिक अन्तर है। अंग्रेज भारतसे जो चाहते हैं क्या वह सब उन्हें मिल जाता है? आज तो उन्हें वही मिलता है जो वे उससे जबरदस्ती वसूल करते हैं। जरा सोचिए कि अगर भारत एक स्वतन्त्र मित्र-राष्ट्रके रूपमें अपना सहयोग देगा तो उससे कितना अन्तर हो जायेगा। उस स्वतन्त्रताको यदि आना है तो आज ही आना चाहिए। यदि आज आप लोग, जिनके पास मदद करने की ताकत है, अपनी उस ताकतका प्रयोग नहीं करते तो उस स्वतन्त्रताका कोई आनन्द नहीं रह जायेगा। यदि आप उस ताकतका प्रयोग कर सकें तो आज जो असम्भव लगता है वह कल स्वतन्त्रताकी अरुणिमामें सम्भव हो जायेगा। यदि भारत उस स्वतन्त्रताको अनुभव करने लगता है तो वह चीनके लिए उस स्वतन्त्रताकी माँग करेगा। रूसकी मददको दौड़ पड़ने के लिए रास्ता खुल जायेगा। अंग्रेजोंने मलाया अथवा बर्माकी भूमिपर अपने प्राण नहीं दिये हैं। हम इस स्थितिमें कैसे सुधार ला सकेंगे? मैं कहाँ जाऊँगा और भारतकी इस चालीस करोड़ जनताको कहाँ ले जाऊँगा? मानवताके इस विशाल सागरको संसारकी मुक्ति के कार्यकी ओर तबतक कैसे प्रेरित किया जा सकता है जबतक कि उसे स्वयं स्वतन्त्रताकी अनुभूति नहीं हो जाती? आज उसमें जीवनका कोई चिह्न शेष नहीं है। उसके जीवनके रसको निचोड़ लिया गया है। यदि उसकी आँखोंकी चमकको वापस लाना है तो स्वतन्त्रताको कल नहीं बल्कि आज ही आना होगा। इसलिए मैंने कांग्रेसको यह शपथ दिलवाई है और कांग्रेसने यह शपथ ली है कि वह करेगी या मरेगी।

अंग्रेजीकी टंकित दफ्तरी नकलसे। सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

४२८. सन्देश: कर्नाटकके लिए

८ अगस्त, १९४२

मेरी उमेद है कि इस यज्ञमें सब कर्नाटकी पूरा हिस्सा देंगे।

मो० क० गांधी

महात्मा, जिल्द ६, पृ० २२४ और २२५ के बीच प्रकाशित प्रतिकृतिसे

४२९. सच हो तो अशोभनीय

दिल्ली प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष आसफ अली साहब लिखते हैं:

> इसके साथ जो शिकायत भेजी जा रही है, वह पहले-पहल दिल्ली प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके सामने पेश की गई थी। शिकायतके लेखकको अब दो समर्थक भी मिल गये हैं। मैं लेखकको निजी तौरसे जानता हूँ। वे एक सच्चे और निष्पक्ष राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता हैं, और मैं उनकी बातका विश्वास करता हूँ।
>
> मैंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसकी गतिविधियोंके बारेमें सुन रखा था। मैं यह भी जानता था कि वह एक साम्प्रदायिक संस्था है। जिस नारेकी और भाषणकी शिकायत की गई है, उनकी तरफ मेरा ध्यान पहली ही दफा खींचा गया है। दूसरे सम्प्रदायोंपर इस तरहके नारों और भाषणोंका जो असर होता है, उसकी काटका कोई उपाय मैं सोच नहीं पा रहा हूँ — सिवा इसके कि मैं आपका ध्यान इस ओर दिलाऊँ। शायद आप 'हरिजन' में इसका जिक्र कर सकेंगे।

शिकायती पत्र उर्दूमें है। उसका सार यह है कि आसफ अली साहबने अपने पत्रमें जिस संस्थाका जिक्र किया है, उसके ३,००० सदस्य रोजाना लाठीके साथ कवायद करते हैं। कवायदके बाद वे यह नारा लगाते हैं: "हिन्दुस्तान हिन्दुओंका है, और किसीका नहीं।" इसके बाद संक्षिप्त भाषण होते हैं, जिनमें वक्ता कहते हैं: "पहले अंग्रेजोंको निकाल बाहर करो, उसके बाद हम मुसलमानोंको अपने अधीन कर लेंगे। अगर वे हमारी नहीं सुनेंगे तो हम उन्हें मार डालेंगे।" बात जिस ढंगसे कही गई है, उसे वैसी ही समझकर यह कहा जा सकता है कि यह नारा गलत है और भाषणकी मुख्य विषय-वस्तु तो और भी बुरी है। मैं तो यही उम्मीद कर सकता हूँ कि यह नारा अनधिकृत है, और जिस वक्ताके बारेमें यह कहा गया है कि उसने ऊपरके विचार व्यक्त किये है, वह कोई जिम्मेदार आदमी नहीं है। नारा गलत और बेमानी है, क्योंकि हिन्दुस्तान उन सब लोगोंका है जो यहाँ पैदा हुए और पले हैं और जो दूसरे किसी मुल्कका आसरा नहीं तक सकते। इसलिए वह जितना हिन्दुओंका है उतना ही पारसियों, यहूदियों, हिन्दुस्तानी ईसाइयों, मुसलमानों और दूसरे गैर-हिन्दुओंका भी है। आजाद हिन्दुस्तानमें राज हिन्दुओंका नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानियोंका होगा, और वह किसी धार्मिक पंथ या सम्प्रदायके बहुमतपर नहीं, बल्कि बिना किसी धार्मिक भेदभावके निर्वाचित समूची जनताके प्रतिनिधियोंपर आधारित होगा। मैं एक ऐसे मिले-जुले बहुमतकी कल्पना कर सकता हूँ जो हिन्दुओंको अल्पमत बना दे। वे प्रतिनिधि अपनी सेवा और योग्यताके आधारपर ही चुने जायेंगे। धर्म एक निजी विषय है, जिसका राजनीतिमें कोई स्थान नहीं होना चाहिए। विदेशी

हुकूमतकी वजहसे देशमें जो अस्वाभाविक परिस्थिति पैदा हो गई है, उसीकी बदौलत हमारे यहाँ धर्मके अनुसार इतने अस्वाभाविक विभाग हो गये हैं। जब देशसे विदेशी हुकूमत उठ जायेगी तो हम इन झूठे नारों और आदर्शोंसे चिपके रहने की अपनी इस बेवकूफीपर खुद ही हँसेंगे।

जिस भाषणका जिक्र है, वह निश्चय ही बेहूदा है। अंग्रेजोंको "निकाल बाहर करने" का कोई सवाल ही नहीं है। जबतक हमारे पास उनसे भी बढ़ी-चढ़ी हिंसक ताकत न हो, हम उन्हें देशसे निकाल नहीं सकते। अगर मुसलमान हिन्दुओंके अधीन रहना मंजूर न करें तो उन्हें मार डालने का खयाल पुराने जमानेमें चाहे सही रहा हो, आज तो वह बिलकुल बेमानी है। अगर अंग्रेजोंकी जगह देशमें हिन्दुओंकी या दूसरे किसी सम्प्रदायकी हुकूमत ही कायम होनेवाली हो तो अंग्रेजोंको निकाल बाहर करने की पुकारमें कोई बल नहीं रह जाता। वह स्वराज्य नहीं होगा। स्वराज्यका मतलब तो जरूरी तौरपर यही है कि उसमें आजाद और अक्लमन्द लोग अपना राज खुद अपनी मर्जीसे चलायें। मैंने "अक्लमन्द" शब्दका इस्तेमाल इसलिए किया है कि मुझे उम्मीद है कि आजाद हिन्दुस्तान मुख्यतः अहिंसक होगा। अहिंसापर आधारित समाजके तमाम सदस्योंको इतनी शिक्षा तो मिलनी ही चाहिए कि वे खुद अपनी अक्लसे सोच सकें और काम कर सकें। अगर उनके विचार और कार्य एक हुए तो इसीलिए होंगे कि वे दोनों समान ध्येय और समान फलकी प्राप्तिमें लगे होंगे — उन सौ आदमियोंकी तरह जो किसी रस्सेको एक दिशामें खींचते समय एक मन एक जतन हो जाते हैं।

मुझे आशा है कि स्वयंसेवक संघके जिम्मेदार अधिकारी इस शिकायतकी जाँच करके आवश्यक कार्रवाई करेंगे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ९-८-१९४२

४३०. सन्देश: देशके लिए[1]

बम्बई
५ बजे प्रातः, ९ अगस्त, १९४२

हर व्यक्तिको इस बातकी खुली छूट है कि वह अहिंसापर आचरण करते हुए अपना पूरा जोर लगाये। हड़तालों और दूसरे अहिंसात्मक तरीकोंसे पूरा गतिरोध [पैदा कर दीजिए]। सत्याग्रहियोंको मरने के लिए, न कि जीवित रहने के लिए, घरोंसे

१. गांधीजी कांग्रेस कार्य-समितिके सदस्यों और बम्बईके करीब ५० कांग्रेसी नेताओं सहित ९ अगस्तको सुबह पुलिस हिरासतमें ले लिये गये थे।

निकलना होगा। उन्हें मौतकी तलाशमें फिरना चाहिए और मौतका सामना करना चाहिए। जब लोग मरने के लिए घरसे निकलेंगे केवल तभी कौम बचेगी।

करेंगे या मरेंगे।[1]

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पश्चिम बंगाल सरकारके गुप्तचर विभागके उप-महानिरीक्षक कार्यालयमें उपलब्ध दस्तावेजोंसे

४३१. सन्देश : देशके लिए[2]

९ अगस्त, १९४२

स्वतन्त्रताके हर अहिंसावादी सिपाहीको चाहिए कि कागज या कपड़ेके एक टुकड़ेपर 'करो या मरो' का नारा लिखकर उसे अपने पहनावेपर चिपका ले, ताकि अगर वह सत्याग्रह करते-करते मारा जाये तो उसे उस निशानीके द्वारा उन दूसरे लोगोंसे अलग पहचाना जा सके जो अहिंसामें विश्वास नहीं रखते।

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४, पृ० ५३। **महात्मा**, जिल्द ६, पृ० १७४ भी

४३२. पत्र : सर रॉजर लमलीको

[आगाखाँ पैलेस, पूना]
१० अगस्त, १९४२

प्रिय सर रॉजर लमली,[3]

मुझे और दूसरे साथी कैदियोंको लेकर जब गाड़ी रविवारको चिंचवाड़ पहुँची तो हममें से कुछको नीचे उतरने का आदेश दिया गया। श्रीमती सरोजिनी देवी, श्रीमती मीराबाई, श्री महादेव देसाई और मुझे एक मोटर-कारमें बैठने को कहा गया। कारके बराबरमें दो लारियाँ खड़ी थीं। मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि हमारा लिहाज करते हुए ही हमारे लिए कारका विशेष प्रबन्ध किया गया था। मैं यह भी मानता हूँ कि सम्बन्धित अधिकारियोंने अपना काम सूझबूझ और शिष्टतासे निभाया।

१. ये शब्द मूलमें हिन्दीमें ही हैं।

२. प्यारेलालके अनुसार, गांधीजी ने गिरफ्तारीके समय उनकी मार्फत देशको यह विदाई-सन्देश दिया था।

३. बम्बईके गवर्नर

तो भी जब हमारे दूसरे साथियोंको दोनों लारियोंमें बैठने का आदेश दिया गया तो मैंने बहुत अपमानित महसूस किया। मैं मानता हूँ कि सबको मोटर-कारोंमें नहीं ले जाया जा सकता था। इससे पहले ऐसे अवसर आये हैं जब मुझे जेलकी गाड़ियोंमें बिठाकर ले जाया गया है। इस बार भी हमें अपने साथियोंके संग ही ले जाना चाहिए था। इस घटनाकी चर्चा करने में मेरा उद्देश्य सरकारको यह बताना है कि बदली हुई परिस्थितियोंमें और अपने दिलकी बदली हुई हालतमें मैं अब वे खास रियायतें स्वीकार नहीं कर सकता जो अबतक मैं बेदिलीसे ही स्वीकार करता रहा हूँ। इस बार मैं ऐसी कोई रियायतें और आराम नहीं चाहता जो मेरे साथियोंको न मिले, सिवाय खास खुराकके, और वह भी तबतक जबतक कि सरकार मेरी शारीरिक जरूरतोंके खयालसे उसका प्रबन्ध करना चाहे।

एक और बातकी तरफ भी मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। मैंने अपने लोगोंको बताया है कि इस बार हमारा तरीका अपने-आपको कैदके लिए पेश करना नहीं है और हमें इससे कहीं बड़े बलिदानके लिए तैयार रहना है। अतः जो लोग चाहें, वे गिरफ्तार किये जाने का शान्तिपूर्वक प्रतिरोध करें। इसके मुताबिक एक युवक सदस्यने[1], जो दलमें शामिल था, इसी तरहका प्रतिरोध किया। इसपर उसे घसीटकर जेलकी गाड़ीतक ले जाया गया। यह बड़ी अप्रिय बात थी।

लेकिन उस समय तो बहुत ही दुःखद दृश्य उपस्थित हुआ जब एक बेसब्र अंग्रेज सार्जंटने उसे बुरी तरह झँझोड़ा और लारीमें धकेल दिया, मानों वह लकड़ी का कुंदा हो। मेरे विचारमें सार्जंटको डाँट पड़नी चाहिए। ऐसे दृश्योंके बिना भी संघर्ष उग्र हो गया है।

यह अस्थायी जेल इतना बड़ा है कि इसमें मेरे साथ गिरफ्तार किये गये सब लोग रखे जा सकते हैं। उनमें सरदार पटेल और उनकी लड़की भी हैं। वह उनकी उपचारिका है और उनका खाना भी बनाती है। मुझे सरदारके बारेमें बड़ी चिन्ता है, क्योंकि पिछले कारावासके दौरान उन्हें आँतोंका जो रोग लग गया था वह अभी ठीक नहीं हुआ है। उनकी रिहाईके बादसे मैं खुद उनकी खुराक आदिकी व्यवस्था करता रहा हूँ। मेरी विनती है कि उन्हें और उनकी लड़की दोनोंको मेरे साथ रखा जाये। इसी तरह दूसरे कैदियोंको भी मेरे साथ रखा जाये, यद्यपि उनके सम्बन्धमें ऐसा करना उतना जरूरी नहीं जितना कि सरदार पटेल और उनकी लड़कीके सम्बन्धमें है। मेरा निवेदन है कि एक ही जुर्ममें गिरफ्तार किये गये साथियोंको — अगर वे खतरनाक मुजरिम न हों तो — अलग-अलग रखना ठीक नहीं है।

सुपरिंटेंडेंटने मुझे बताया है कि मुझे अखबार नहीं दिये जायेंगे। गाड़ीमें सवार साथी कैदियोंमें से एकने अब मुझे 'इवनिंग न्यूज' का रविवारीय संस्करण दिया है। इसमें भारत सरकारका वह प्रस्ताव[2] छपा है जिसमें वर्त्तमान संकटसे निपटने के लिए सरकारकी नीतिका औचित्य बताया गया है। इसमें कई बिलकुल गलत बातें कही

१. जी० जी० मेहता
२. देखिए परिशिष्ट १२।

गई हैं। मुझे इजाजत मिलनी चाहिए कि मैं उन्हें सही कर दूँ। लेकिन यह और इस तरहके दूसरे काम मैं तवतक नहीं कर सकता जवतक मुझे यह पता न चले कि जेलके वाहर क्या हो रहा है।

क्या मैं आशा करूँ कि इस पत्रमें उठाई गई वातोंका जल्दी फैसला किया जायेगा?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज़ कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४, पृ० १-२

४३३. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१३ अगस्त, १९४२

वापा,

धर्मप्रकाशके हिसावकी जाँच करके तुम्हें जो उचित लगे सो उसे देना। आशा है, तुम विलकुल ठीक हो गये होगे।

वापू

वापा
हरिजन निवास
किंग्सवे
दिल्ली

मूल गुजरातीसे : प्यारेलाल पेपर्स। सौजन्य : प्यारेलाल

४३४. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

आगाखाँ पैलेस
१४ अगस्त, १९४२

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

भारत सरकारने अपनी जल्दवाजीसे संकट पैदा करके गलती की है। सरकारने उस कार्यवाहीका औचित्य सिद्ध करने के लिए जो प्रस्ताव पास किया है उसमें कितनी ही वातें तोड-मरोड़कर और गलत ढंगसे पेश की गई हैं। इस कथनका कि आपको अपने भारतीय "सहयोगियों" का अनुमोदन प्राप्त है, कोई मतलव नहीं है, सिवाय इसके कि भारतमें आप ऐसे काम सदा करवा सकते हैं। लोग या पार्टियाँ कुछ भी कहें, 'भारत छोड़ो' माँगका यह भी एक कारण है कि आप इस तरहका सहयोग हासिल कर लेते हैं।

भारत सरकारको मेरे द्वारा सामूहिक कार्यवाही शुरू किये जाने तक तो इन्तजार करना ही चाहिए था। मैंने खुलेआम कहा था कि मैं वास्तविक कार्यवाही शुरू करने से पहले आपको एक पत्र भेजने का विचार रखता हूँ। उसमें मैं आपसे अपील करनेवाला था कि कांग्रेसकी माँगकी निष्पक्ष जाँच की जाये। जैसा कि आपको मालूम है, माँगकी अवधारणामें जो-जो त्रुटियाँ दिखाई दीं, कांग्रेसने उसे सहर्ष दूर कर दिया है। अगर आप मुझे मौका देते तो मैं इसी तरह हर कठिनाईसे निपट सकता था। सरकारकी उतावलीकी कार्यवाही देखकर आदमी यही सोचने को प्रेरित होता है कि सरकारको इस बातका डर था कि कांग्रेसके अत्यन्त सावधानीसे और धीरे-धीरे सीधी कार्यवाही की ओर बढ़ने से विश्वमत कहीं कांग्रेसके पक्षमे न हो जाये — जैसा कि वह होने लग गया था — और सरकार द्वारा कांग्रेसकी माँगके ठुकराये जाने के कारणोंका खोखलापन प्रकट न हो जाये। सरकारको मेरे उन भाषणोंकी सही-सही रिपोर्टका इन्तजार तो करना ही चाहिए था जो मैंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा प्रस्ताव पास किये जाने के बाद शुक्रवारको और शनिवारकी रातको दिये थे। भाषणोंकी रिपोर्टसे आपको पता चलता कि मैं जल्दबाजीमें कार्यवाही शुरू करनेवाला नहीं था। मेरे भाषणोंमें सूचित अन्तरालसे आपको फायदा उठाना चाहिए था और कांग्रेसकी माँगको पूरा करने के हर सम्भव उपायकी खोज करनी चाहिए थी।

प्रस्तावमें कहा गया है :

> **भारत सरकार इस आशासे धैर्यपूर्वक इन्तजार करती रही कि शायद कांग्रेस बुद्धिमत्तासे काम ले। सरकारकी आशा पूरी नहीं हुई।**

मेरा अनुमान है कि यहाँ 'बुद्धिमत्ता' से मतलब है कि कांग्रेस अपनी माँग छोड़ दे। भारतको स्वतन्त्रता देने के लिए वचनबद्ध सरकार यह क्यों आशा करे कि ऐसी माँग, जो सदैव उचित है, छोड़ दी जायेगी? क्या यह कोई ऐसी चुनौती है जिसके बारेमें माँग करनेवाले पक्षके साथ धैर्यपूर्वक तर्क-वितर्क करने के बजाय तुरन्त दमन करना जरूरी था? मेरी रायमें तो जो कोई यह कहता है कि माँगके मान लेने से "भारतमें गड़बड़ मच जायेगी" वह दुनियाको बहुत भोला समझता है। बहरहाल माँग को बिना विचारे तुरन्त अस्वीकार करके राष्ट्र और सरकारको सचमुच उलझनमें डाल दिया गया है। कांग्रेस इस बातकी भरसक कोशिश कर रही थी कि भारत मित्र-राष्ट्रोंके उद्देश्यको अपना उद्देश्य बना सके।

सरकारके प्रस्तावमें कहा गया है :

> **परिषद्-सहित गवर्नर-जनरलको पिछले कुछ दिनोंसे यह भी पता है कि कांग्रेस दल गैर-कानूनी और कहीं-कहीं हिंसात्मक कारवाइयोंके लिए खतरनाक तैयारियाँ कर रहा है। इन कारवाइयोंका उद्देश्य, और बातोंके अलावा, संचार-व्यवस्था और सार्वजनिक उपयोगिताकी सेवाओंमें बाधा डालना, हड़तालें करवाना,**

> **सरकारी मुलाजिमोंको वफादारीसे विमुख करना, और फौजकी भरती आदि रक्षा-सम्बन्धी कार्रवाइयोंमें विघ्न डालना है।**

यह तो सरासर गलतबयानी है। किसी भी स्थितिमें हिंसासे काम लेने का खयाल नहीं किया गया था। अहिंसात्मक कार्रवाईके अन्तर्गत आनेवाली बातोंकी परिभाषाकी व्याख्या ऐसे कुटिल और कपटपूर्ण ढंगसे की गई है, मानो कांग्रेस हिंसात्मक कार्रवाईकी तैयारियाँ कर रही थी। हर बातपर कांग्रेसी क्षेत्रोंमें खुले तौरपर बहस हुई थी, क्योंकि कोई काम गुप्त रूपसे तो करना नहीं था। और यदि मैं आपसे ऐसा काम छोड़ देने को कहूँ जिससे कि ब्रिटेनके लोगोंको हानि हो रही है तो इसमें आपको वफादारीसे विमुख करने की क्या बात है?

इस भ्रम पैदा करनेवाले अनुच्छेदको मुख्य कांग्रेसियोंकी पीठ पीछे प्रकाशित करने के बजाय सरकारको चाहिए था कि ज्यों ही उसे "तैयारियोंकी" सूचना मिली थी, त्यों ही वह उन तैयारियाँ करनेवाले लोगोंसे जवाब तलब करती। यही तरीका ठीक रहता। प्रस्तावमें निराधार आरोप लगाने से सरकार अनुचित व्यवहारके आरोपकी भागी हो गई है।

कांग्रेस आन्दोलनका उद्देश्य जनतामें इतने बड़े बलिदानकी भावना पैदा करना था जिससे कि [दुनियाका] ध्यान आकर्षित किया जा सके। इसका उद्देश्य यह प्रदर्शित करना भी था कि उसे जनताका कितना समर्थन प्राप्त है। क्या इस समय जनताके इस स्पष्टतया अहिंसात्मक आन्दोलनको दबाने की कोशिश करना बुद्धिमत्ताकी बात थी?

सरकारके प्रस्तावमें आगे चलकर कहा गया है:

> **कांग्रेस भारतकी प्रवक्ता नहीं है। फिर भी उसके नेता अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए और तानाशाहीकी नीतिका अनुसरण करने के विचारसे उन प्रयत्नोंमें बराबर बाधा डालते रहे हैं जो भारतको पूर्ण राष्ट्र बनाने के लिए किये जा रहे हैं।**

भारतके सबसे पुराने राष्ट्रीय संगठनपर इस तरहका इलजाम लगाना उसकी बड़ी भारी बदनामी करना है। इस तरहके शब्द उस सरकारको शोभा नहीं देते जिसने कि — जैसा कि प्रकाशित दस्तावेजोंसे साबित किया जा सकता है — स्वतन्त्रता प्राप्त करने के हर राष्ट्रीय प्रयत्नको विफल कर दिया है और हर उचित-अनुचित तरीकेसे कांग्रेसको दबाने की बराबर चेष्टा की है।

भारत सरकारने कांग्रेसकी इस पेशकशपर विचार करने की कृपा नहीं की कि यदि भारतकी स्वतन्त्रताका ऐलान करने के साथ ही वह कांग्रेसको स्थायी कामचलाऊ सरकार बनाने का काम नहीं सौंप सकी तो उसे मुस्लिम लीगसे सरकार बनाने को कहना चाहिए और लीग द्वारा बनाई जानेवाली किसी भी राष्ट्रीय सरकारको कांग्रेस निष्ठापूर्वक स्वीकार करेगी। इस पेशकशके रहते कांग्रेसपर तानाशाहीका इलजाम लगाना संगत नहीं है।

अब मैं सरकारकी पेशकशकी जाँच करता हूँ:

> **पेशकश यह है कि ज्यों ही युद्ध समाप्त होगा, भारत अपने सर्वथा स्वतन्त्र निर्णयसे, तथा सब दलोंके सहयोगसे — न कि केवल एक दलके आधार पर — ऐसी सरकार बनायेगा जिसे वह अपनी परिस्थितियोंमें सबसे उपयुक्त समझेगा।**

क्या इस पेशकशमें कोई असलियत है? सब दल तो इस समय सहमत नहीं हैं। क्या युद्धके बाद उनका सहमत होना अधिक सम्भव होगा? और यदि आजादी मिलने से पहले दलोंको कोई कार्यवाही करनी हो तो? दल तो बरसात में मेंढकोंकी तरह पैदा हो जाते हैं, क्योंकि यदि वे यह प्रमाणित न भी करें कि वे किसका प्रतिनिधित्व करते है तो भी सरकार उनका स्वागत करेगी, जैसा कि वह पहले भी करती रही है। और यदि ऐसे दल स्वतन्त्रताके प्रति दिखावटी आस्था प्रकट करते हुए भी कांग्रेस और उसकी कार्यवाहियोंका विरोध करेंगे तो सरकारकी पेशकशका विफल होना स्वाभाविक ही है। इसीलिए यह तर्कसंगत माँग की जा रही है कि पहले अंग्रेज चले जायें। ब्रिटिश सत्ताके समाप्त होने के बाद और भारतके राजनीतिक दरजेमें मौलिक परिवर्तन — अर्थात् परतन्त्रसे स्वतन्त्र — होने के बाद ही एक वस्तुतः प्रतिनिधि सरकार — चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी — बन सकती है। इस माँगके प्रवर्तकको जिन्दा गाड़ देने से उलझन सुलझी नहीं है, बल्कि और जटिल हो गई है।

प्रस्तावमें आगे कहा गया है:

> **भारत सरकार इस बातको नहीं मान सकती कि कांग्रेस दलका यह कथन कि भारतके करोड़ों लोग अपने भविष्यको ठीक-ठीक न जानने के कारण — अबतक बलि होनेवाले अनेक देशोंके दुःखद अनुभवके बावजूद — हमलावरोंसे गले मिलने को तैयार हैं, इस महान् देशकी जनताके विचारोंकी सही अभिव्यक्ति करता है।**

मैं करोड़ों लोगोंके बारेमें नहीं जानता, लेकिन मैं कांग्रेसके कथनकी सत्यता प्रमाणित करने के लिए अपनी साक्षी दे सकता हूँ। सरकार चाहे तो कांग्रेसकी साक्षीमें विश्वास न करे। कोई साम्राज्यवादी राष्ट्र यह नहीं सुनना चाहता कि उसके लिए खतरा पैदा हो गया है। चूंकि कांग्रेस चाहती है कि ग्रेट ब्रिटेनका वही हाल न हो जो कि दूसरे साम्राज्यवादी राष्ट्रोंका हुआ है, इसलिए वह उससे कहती है कि वह भारतकी स्वतन्त्रताकी घोषणा करके स्वेच्छासे साम्राज्यवाद छोड़ दे। कांग्रेसने केवल मैत्रीपूर्ण उद्देश्यसे आन्दोलन करने का विचार किया। कांग्रेस साम्राज्यवादको खत्म करने की चेष्टा जितनी भारतके फायदेके लिए करती है उतनी ही ब्रिटिश राष्ट्र और मनुष्य-मात्रके फायदेके लिए भी। मेरा दावा है — चाहे इसके खिलाफ कुछ ही क्यों न कहा जाये — कि समूचे भारत और दुनियाके फायदेके अतिरिक्त कांग्रेस अपने फायदेकी बात नहीं सोचती।

प्रस्तावके उपसंहारमें दिया गया निम्न अनुच्छेद बड़ा दिलचस्प है:

> **लेकिन उनपर भारतकी रक्षा करने की, भारतको लड़ाई करने के योग्य बनाये रखने की, भारतके हितोंकी रक्षा करने की, और बिना भय या पक्षपातके भारतकी जनताके विभिन्न वर्गोंमें संतुलन बनाये रखने की जिम्मेवारी है।**

मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मलाया, सिंगापुर, और बर्माके अनुभवके बाद सरकारका यह कथन सत्यका उपहास-मात्र है। सरकारके इस दावेसे दुःख होता है कि वह उन पक्षोंमें, जिन्हें स्पष्टतः उसने स्वयं पैदा किया है, "संतुलन" बनाये रख रही है।

एक और बात। भारत सरकार और हमारा दोनोंका घोषित उद्देश्य एक ही है। यदि अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें कहना हो तो वह उद्देश्य है चीन और रूसकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करना। भारत सरकारका खयाल है कि उस उद्देश्यकी सिद्धि के लिए भारतको स्वतन्त्र करना जरूरी नहीं है। मेरा खयाल इसके बिलकुल विपरीत है। मैंने जवाहरलाल नेहरूको अपना मापदंड माना है। अपने व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण उन्हें चीन और रूसके आशंकित विनाशसे मेरी अपेक्षा — और मैं तो कहूँगा कि आपकी अपेक्षा भी — बहुत अधिक दुःख होता है। उस दुःखके कारण उन्होंने साम्राज्यवादके साथ अपने पुराने झगड़ेको भुला देने की कोशिश की। उन्हें फासीवाद और नाजीवादसे मेरी अपेक्षा ज्यादा डर लगता है। मैंने उनके साथ लगातार कई दिनतक तर्क-वितर्क किया है। उन्होंने मेरे विचारोंका इस जोशसे विरोध किया जिसका बयान करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। परन्तु तथ्योंके तर्कने उन्हें निरुत्तर कर दिया। जब उन्होंने स्पष्ट रूपसे समझ लिया कि भारतको स्वतन्त्र किये बिना उन दोनोंकी स्वतन्त्रता खतरेमें पड़ जायेगी, तब वे मान गये। ऐसे शक्ति-शाली दोस्त और साथीको कैद करके आपने निस्सन्देह गलती की है। यदि समान उद्देश्यके होते हुए भी सरकार कांग्रेसकी माँगका उत्तर उतावलीसे दमन करने से देती है तब यदि मैं यह नतीजा निकालूँ कि ब्रिटिश सरकार मित्र-राष्ट्रोंके उद्देश्यको उतना महत्त्व नहीं देती जितना कि साम्राज्यवादी नीतिके आवश्यक अंगके रूपमें भारतसे चिपके रहने के अव्यक्त संकल्पको, तो उन्हें हैरान नहीं होना चाहिए। इस संकल्पके कारण कांग्रेसकी माँग ठुकरा दी गई और तुरन्त दमन-चक्र शुरू कर दिया गया। इतने बड़े पैमानेपर होनेवाली आपसी मार-काटसे — जिसकी कि इतिहासमें मिसाल नहीं मिलती — दम घुटा जाता है। लेकिन मार-काटके साथ-साथ प्रस्तावकी दुर्गंधयुक्त असत्यतासे सचाईका गला घोंटने की जो चेष्टा की गई है, उससे कांग्रेसकी स्थिति मजबूत हो गई है।

आपको इतना लम्बा पत्र भेजने पर बाध्य होने के कारण मुझे भारी दुःख हो रहा है। लेकिन यद्यपि मैं आपकी कार्यवाहीको बहुत नापसन्द करता हूँ, फिर भी मैं आपका पहलेकी भाँति ही मित्र हूँ। मैं अब भी अनुरोध करूँगा कि भारत सरकारकी समूची नीतिपर फिरसे विचार किया जाये। ब्रिटिश लोगोंका सच्चा मित्र होने का

दावा करनेवाले व्यक्तिके अनुरोधकी अवहेलना मत कीजिए। भगवान आपका पथ-प्रदर्शन करे![1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द २, पृ० ७०२-५। गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४, पृ० १२-१६ भी

४३५. तार: चिमनलाल न० शाहको[2]

१५ अगस्त, १९४२

चिमनलाल, आश्रम
सेवाग्राम
वर्धा

महादेवका अचानक देहान्त हो गया। पहले कोई लक्षण नहीं था। कल रात ठीक तरह सोया, सवेरे नाश्ता किया, सुशीला और मेरे साथ घूमने गया। जेलके डाक्टरोंने पूरी कोशिश की परन्तु ईश्वर की इच्छा कुछ और ही थी। सुशीला और मैंने शवको स्नान कराया। शव फूलोंसे ढका रखा है, धूप जल रही है। सुशीला और मैं गीताका पाठ कर रहे हैं। महादेवने एक योगी और देशभक्तकी भाँति प्राण दिये हैं। दुर्गा, बाबला[3] और सुशीलासे कह दो कि शोक न करें। ऐसी श्रेष्ठ मृत्युपर हर्ष ही होना चाहिए। अन्त्येष्टि मेरे सामने ही होगी। फूल रख लूँगा। दुर्गासे कहो कि आश्रममें रहे, लेकिन अगर जरूरी समझे तो अपने सम्बन्धियोंके यहाँ चली जाये। आशा है बाबला बहादुरीसे काम लेगा और महादेवका स्थान उपयुक्त रूपसे भरने के लिए तैयारी करेगा। सप्रेम।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (फाइल संख्या ३/२१/४२, जिल्द १) से; सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार। गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४, पृ० ५ से भी

१. लॉर्ड लिनलिथगोने २२ अगस्तको उत्तर देते हुए लिखा कि उनका विचार है कि "परिषद्-सहित गवर्नर-जनरलके प्रस्तावके विषयमें आपकी आलोचनाको अथवा भारत सरकारकी समूची नीतिपर फिरसे विचार करने के विषयमें आपके अनुरोधको स्वीकार करना मेरे लिए सम्भव नहीं होगा।"

२. यह तारके रूपमें नहीं, बल्कि पत्रके रूपमें डाकसे भेजा गया था; देखिए "पत्र: बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", पृ० ४५६-५७।

३. महादेव देसाईका पुत्र नारायण देसाई

४३६. प्रस्तावना[1]

'इंडियन ओपिनियन' के पाठकोंके लिए मैंने 'आरोग्यके विषयमें सामान्य ज्ञान' शीर्षकसे कुछ प्रकरण १९०६ के आसपास दक्षिण आफ्रिकामें लिखे थे।[2] बादमें वे पुस्तक के रूपमें प्रकट हुए। हिन्दुस्तानमें यह पुस्तक मुश्किलसे ही कहीं मिलती थी। जब मैं हिन्दुस्तान वापस आया उस वक्त इस पुस्तककी बहुत माँग हुई। यहाँतक कि स्वर्गीय स्वामी अखण्डानन्दजी ने उसकी नई आवृत्ति निकालने की इजाजत माँगी। और दूसरे लोगोंने भी उसे छपवाया। इस पुस्तकका अनुवाद हिन्दुस्तानकी अनेक भाषाओंमें हुआ, और अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकट हुआ। यह अनुवाद पश्चिममें पहुँचा, और उसका अनुवाद यूरोपकी भाषाओंमें हुआ। परिणाम यह हुआ कि पश्चिम या पूर्वमें मेरी कोई पुस्तक इतनी लोकप्रिय नहीं हुई जितनी कि यह पुस्तक हुई। इसका कारण मैं आजतक समझ नहीं सका। मैंने तो ये प्रकरण सहज ही लिख डाले थे। मेरी निगाहमें उनकी कोई खास कदर नहीं थी। मैं इतना अनुमान जरूर करता हूँ कि मैंने मनुष्यके आरोग्यको कुछ नये ही स्वरूपमें देखा है, और इसलिए उसकी रक्षाके साधन भी सामान्य वैद्यों और डाक्टरोंकी अपेक्षा कुछ अलग ढंगसे बताये हैं। उस पुस्तककी लोकप्रियताका यह कारण हो सकता है। मेरा यह अनुमान ठीक हो या न हो, मगर उस पुस्तककी नई आवृत्ति निकालने की माँग बहुत-से मित्रोंने की है। मूल पुस्तकमें मैंने जिन विचारोंको रखा है, उनमें कोई परिवर्तन हुआ है या नहीं, यह जानने की उत्सुकता बहुत-से मित्रोंने बताई है। आजतक इस इच्छाकी पूर्ति करने का मुझे कभी वक्त ही नहीं मिला। परन्तु आज ऐसा अवसर आ गया है। उसका फायदा उठाकर मैं यह पुस्तक नये सिरेसे लिख रहा हूँ। मूल पुस्तक तो मेरे पास नहीं है। इतने वर्षोंके अनुभवका असर मेरे विचारोंपर पड़े बिना रह नहीं सकता। मगर जिन्होंने मूल पुस्तक पढ़ी होगी वे देखेंगे कि मेरे आजके और १९०६ के विचारोंमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है।

१. साधन-सूत्रमें "प्रकाशकका निवेदन" के अन्तर्गत जीवनजी डा० देसाई लिखते हैं: "मूल पुस्तक गुजरातीमें लिखी गई थी, जिसका हिन्दी और अंग्रेजी अनुवाद गांधीजी ने अपनी रहनुमाईमें डॉ० सुशीला नैयरसे कराया था। अन्तिम रूप देने की दृष्टिसे उन्होंने इन दोनों अनुवादोंको देख भी लिया था। इसलिए पाठक यह मान सकते हैं कि अनुवाद खुद उन्होंने ही किया है।" यहाँ यह शीर्षक उसी तारीखके अन्तर्गत रखा गया है जिस तारीखको गांधीजी ने इस पुस्तकके आखिरी अध्यायको अन्तिम रूपसे तैयार किया था।

२. ये लेख १९१३ में इंडियन ओपिनियन में ४ जनवरीसे १६ अगस्तक 'आरोग्यके सम्बन्धमें सामान्य ज्ञान' शीर्षकके अन्तर्गत ३३ किस्तोंमें धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुए थे; देखिए खण्ड ११ और १२।

इस पुस्तकको नया नाम दिया है: 'आरोग्यकी कुंजी'। मैं यह उम्मीद दिला सकता हूँ कि इस पुस्तकको विचारपूर्वक पढ़नेवालों और दिये हुए नियमोंपर अमल करनेवालों को आरोग्यकी कुंजी मिल जायेगी, और उन्हें डाक्टरों, और वैद्यों या हकीमों का दरवाजा नहीं खटखटाना पड़ेगा।

मो० क० गांधी

आगाखाँ महल, यरवडा, २७ अगस्त, १९४२

आरोग्यकी कुंजी

४३७. पत्र: बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
२७ अगस्त, १९४२

सेवामें
सचिव, बम्बई सरकार
गृह-विभाग

प्रिय महोदय,

सुरक्षा-बन्दियोंके पत्र-व्यवहारसे सम्बन्धित सरकारी आदेशोंके विषयमें मुझे ऐसा लगता है कि सरकारको यह पता नहीं है कि मैंने पैंतीस वर्षसे अधिक समयसे गृहस्थ-जीवन त्याग रखा है और लगभग अपने-जैसे विचार रखनेवाले लोगोंके साथ मिलकर उस तरहका जीवन बिता रहा हूँ जिसे कि आश्रम-जीवन कहते हैं। इन लोगोंमें महादेव देसाई, जिनका कुछ समय पहले देहान्त हो गया है, मेरे अनुपम साथी थे। उनकी पत्नी और एकमात्र पुत्र कितने ही वर्षोंसे मेरे साथ आश्रम-जीवन बिताते रहे हैं। यदि मैं उनकी विधवा या उसके बेटेको या दिवंगतके परिवारके अन्य लोगोंको ही जो कि आश्रममें रह रहे हैं, पत्र न लिख सकूँ तो फिर मुझे किसी औरको कुछ लिखने में कोई दिलचस्पी नहीं होगी। मैं केवल व्यक्तिगत और घरेलू विषयोंपर लिखने की पाबन्दी भी स्वीकार नहीं कर सकता हूँ। यदि मुझे लिखने की इजाजत दी जाये तो मुझे बहुत-से ऐसे मामलोंके बारेमें लिखना होगा जो मैंने दिवंगतको सौंप रखे थे। इनका राजनीतिसे, जो कि मेरे कार्य-कलापका एक छोटा-सा अंग है, कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं अखिल भारतीय चरखा संघ और ऐसी अन्य संस्थाओंके कामकी देखभाल करता हूँ। सेवाग्राम आश्रमके ही कई काम हैं, जिनका सम्बन्ध समाज-सेवा, शिक्षा और लोकोपकारसे है। मुझे इन कामोंके बारेमें पत्र पाने और लिखने की इजाजत होनी चाहिए। और फिर एण्ड्रयूज-स्मारक कोष भी है। इसका बहुत-सा रुपया-पैसा मेरे हवाले है। यह जरूरी है कि मैं उसके खर्च करने के बारेमें हिदायतें दे सकूँ। इस उद्देश्यसे शान्ति-निकेतनके लोगोंके साथ मेरा पत्र-व्यवहार करना जरूरी है। प्यारेलाल नैयरको जो कि महादेव देसाईकी भाँति ही मेरे सचिव थे और जिन्हें तथा मेरी पत्नीको मेरी

गिरफ्तारीके समय मेरे साथ रखने की पेशकश की गई थी, अभीतक यहाँ नहीं भेजा गया। मैंने जेल-महानिरीक्षकसे उनका अता-पता पूछा है। मुझे उसकी कोई खबर नहीं मिली है और न सरदार पटेलकी ही, जिनके आँतोंके रोगका मैं इलाज कर रहा था। यदि मैं उनके स्वास्थ्य और कुशल-मंगलके बारेमें उनसे पत्र-व्यवहार न कर सकूँ तो फिर मुझे दी गई इजाजत मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं रखती।

आशा करता हूँ कि चाहे सरकार मुझे पत्र-व्यवहारकी वैसी सुविधा न दे सके जैसी कि मैंने इस पत्रमें माँगी है, फिर भी वह मेरी कठिनाईको तो समझेगी।

भवदीय

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४, पृ० ३-४

४३८. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प

१९ सितम्बर, १९४२

सचिव

गृह-विभाग

बम्बई सरकार, बम्बई

महोदय,

कल खान बहादुर कटेलीने स्वर्गीय श्री महादेव देसाईकी पत्नी और पुत्र द्वारा लिखित पत्र मुझे देनेकी कृपा की। पत्र देते समय खान बहादुरने मुझसे कहा कि मेरा "पत्र"[१] भेजने में क्यों देर हुई थी, इसका मुझे वे कारण बतायेंगे। परन्तु वे कोई कारण बता नहीं सके। इस जबरदस्त देरके लिए किसीने मेरे प्रति औपचारिक रूपसे भी खेद प्रकट नहीं किया। लगता है कि बम्बई सचिवालयमें शोकमग्न पत्नी और पुत्रकी भावनाओंकी अवहेलना की गई है।

इन चिट्ठियोंसे मुझे पता चला है कि जो स्पष्टतः तार था और जेलोंके महानिरीक्षकको इस विनतीके साथ दिया गया था कि इसे एक्सप्रेस तारकी तरह भेजा जाये, उसे पत्रकी तरह डाक द्वारा भेजा गया। मैं जानना चाहूँगा कि तार-सन्देशको पत्रकी भाँति डाकमें क्यों डाला गया? क्या मैं सरकारको याद दिलाऊँ कि मुझे २७-८-४२ के अपने पत्रका कोई जवाब नहीं मिला है? उदाहरणतः विधवा और

१. देखिए "तार : चिमनलाल न० शाहको", पृ० ४५३।

उनके बेटेको पत्र लिखने के विषयमें मुझे कोई जवाब नहीं मिला। मेरे और मेरी पत्नीके पत्र पाकर उन्हें अवश्य ढाढ़स मिलेगा। परन्तु निषेधाज्ञाके रहते हम उन्हें नहीं लिख सकते।

भवदीय
(सुरक्षा-बन्दी)
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज़ कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४; पृ० ६

४३९. पत्र : भारत सरकारके गृह-सचिवको

२३[1] सितम्बर, १९४२

सेवामें
सचिव
भारत सरकार
गृह-विभाग

महोदय,

भारतीय पार्षदों तथा दूसरोंके द्वारा सरकारकी कांग्रेससे निपटने की वर्तमान नीतिके अनुमोदनका सामूहिक राग अलापे जाने के बावजूद मैं यह कहने का साहस करूँगा कि यदि सरकारने महामहिम वाइसरायके नाम मेरे संकल्पित पत्र और उसके परिणामकी प्रतीक्षा की होती तो देशपर कोई मुसीबत न आई होती। जिसकी खबरें सुनने को मिल रही हैं वह शोचनीय बरबादी तो निश्चय ही न हुई होती।

विरोधमें कही गई सब बातोंके बावजूद मेरा यह दावा है कि कांग्रेसकी नीति अब भी स्पष्टतया अहिंसावादी है। लगता है कि बड़े पैमानेपर कांग्रेसी नेताओंकी गिरफ्तारीसे लोग गुस्सेसे इतने पागल हो गये हैं कि उन्होंने आत्मसंयम खो दिया है। मेरा खयाल है कि जो तबाही हुई है उसके लिए सरकार जिम्मेवार है, न कि कांग्रेस। मुझे लगता है कि सरकारके लिए यही एक ठीक रास्ता है कि वह कांग्रेसी नेताओंको रिहा कर दे, दमनकारी कानून मंसूख कर दे, और समझौतेके उपायोंकी खोज

१. गांधीजी ने भारत सरकारके गृह-सचिवके नाम अपने १९-१-१९४३ के पत्र (खण्ड ७७) में इस पत्रका उल्लेख करते हुए गलतीसे इसे २१ सितम्बरका बताया, जिससे हाउस ऑफ कॉमन्समें वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ। एमरीने स्पष्ट किया कि "श्री गांधीके १९ जनवरीके पत्रमें इस पत्रको गलती से २१ सितम्बरका पत्र बताया गया था, और परिणामतः लन्दनके समाचारपत्रोंको दिये गये पत्र-व्यवहारमें इसे वैसा ही बताया गया।" ट्रान्सफर ऑफ पॉवर में भी, जहाँ कि इस पत्रपर २१ सितम्बरकी तारीख दी गई है, गलती का यही कारण है।

करे। हिंसाकी किसी प्रत्यक्ष कार्यवाहीसे निपटने के लिए सरकारके पास निस्सन्देह बहुत साधन हैं। दमनसे तो असन्तोष और कड़वाहट ही पैदा होती है।

चूँकि मुझे समाचारपत्र प्राप्त करने की इजाजत दे दी गई है, इसलिए मैं सरकारके प्रति अपना यह कर्त्तव्य समझता हूँ कि देशमें होनेवाली दुःखद घटनाओंपर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करूँ। यदि सरकार सोचती है कि एक वन्दीकी हैसियतसे मुझे ऐसे पत्र लिखने का अधिकार नहीं है तो वह मुझे ऐसा बता दे और मैं ऐसी गलती फिर नहीं करूँगा।[1]

भवदीय

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

गांधीजीज़ कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४, पृ० १६-१७; **ट्रान्सफर ऑफ पॉवर**, जिल्द २, पृ० १००२-३ भी

४४०. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

२६[2] सितम्बर, १९४२

सचिव
बम्बई सरकार
गृह-विभाग

महोदय,

आपके २२ सितम्बरके पत्रके[3] सम्बन्धमें मैं कहना चाहूँगा कि मैं सरकार द्वारा दी गई खास रियायतका उपयोग नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे अपनी चिट्ठियोंमें उन

१. सरकारने इस पत्रका कोई औपचारिक उत्तर नहीं दिया और उसकी पावती मौखिक रूपसे दी। समाचारपत्रोंको प्रकाशनार्थ दिये गये गांधी-वाइसराय पत्र-व्यवहारमें भी इसे शामिल नहीं किया गया। इस कारण बहुत-से लोगोंको यह खयाल हुआ कि सरकारने हिंसाकी कार्यवाहियोंकी निन्दा करनेवाले गांधीजी के पत्रको रोक लिया था। राजगोपालाचारी ने ९ मार्च, १९४३ को एक वक्तव्यमें इस पत्रके प्रकाशित न किये जाने पर खेद व्यक्त किया और सोरेन्सेनने २४ जून, १९४३ को हाउस ऑफ कॉमन्समें पूछा कि वाइसराय और भारत मन्त्री ने भी इस पत्रका जिक्र क्यों नहीं किया?

२. गांधीजीज़ कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट में इसकी तारीख २५ सितम्बर है। वैसे फोटो-नकलमें २६ सितम्बर ही है।

३. इसमें सचिवने गांधीजी से सेवाग्राम आश्रमके उन लोगोंकी सूची देनेको कहा था जिनके साथ गांधीजी केवल निजी और घरेलू मामलोंपर पत्र-व्यवहार करना चाहते थे। परन्तु गांधीजी ने कुछ और विषयोंपर पत्र-व्यवहार करने की जो इजाजत माँगी थी, उसके बारे में उन्हें सूचित किया गया कि ऐसी इजाजत नहीं दी जा सकती।

गैर-राजनीतिक विषयोंका उल्लेख करनेकी भी इजाजत नहीं है जिनकी चर्चा मैंने अपने २७ अगस्त, १९४२ के पत्रमें की थी।

भवदीय
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १०३६६) से। गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४, पृ० ५ से भी

४४१. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
२६ अक्तूबर, १९४२

सचिव
बम्बई सरकार
(गृह-विभाग) बम्बई

महोदय,

मैं इस पत्रके साथ चालू महीनेकी २४ तारीखके 'बॉम्बे क्रॉनिकल' की एक कतरन[1] भेज रहा हूँ। मैं आपका आभार मानूँगा यदि आप मुझे बतायें कि इसमें दी गई टिप्पणीके लेखकने जो आशंका व्यक्त की है, क्या वह ठीक है, और यदि ठीक है तो कहाँतक?

भवदीय
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४, पृ० ७

१. इसमें नवजीवन प्रेसके जब्त किये जाने की खबर दी गई थी और आशंका व्यक्त की गई थी कि कहीं हरिजन प्रकाशनकी पुरानी फाइलें नष्ट न कर दी जायें। बम्बई सरकारने ५ नवम्बरको उत्तर दिया कि पुरानी फाइलें सचमुच नष्ट कर दी गई हैं।

४४२. पत्र : लॉर्ड लिनलिथगोको

नजरबन्दी कैम्प
५ नवम्बर, १९४२

प्रिय लॉर्ड लिनलिथगो,

मैंने अभी-अभी माननीय पीटर वुडकी[1] लड़ाईमें दु:खद परन्तु वीरतापूर्ण मृत्यु की खबर पढ़ी। क्या आप कृपा करके मेरी ओरसे लॉर्ड हैलीफैक्सको बधाई तथा इस दु:खद मृत्युपर समवेदनाका सन्देश पहुँचा देंगे?[2]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ३, पृ० २०९

४४३. तार : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

२४ नवम्बर, १९४२

एक्सप्रेस

सचिव, गृह-विभाग
बम्बई सरकार

प्रोफेसर भणसाली, जो किसी समय एलफिंस्टन कालेजके फेलो थे, १९२० में कालेज छोड़कर साबरमती आश्रमके सदस्य बन गये थे। दैनिक अखबारोंमें छपे समाचारके अनुसार वे चिमूरमें हुए कथित अत्याचारोंके विरोधमें वर्धाके सेवाग्राम आश्रमके पास निर्जल अनशन[3] कर रहे हैं।

१. लॉर्ड हैलीफैक्सके पुत्र

२. साधन-सूत्रमें दी गई टिप्पणीके अनुसार लॉर्ड लिनलिथगोने इस पत्रकी पहुँचकी सूचना १४ नवम्बरको दी और यह भी लिखा कि मैं चिट्ठी तुरन्त लॉर्ड हैलीफैक्सको भेज रहा हूँ। उन्होंने यह काम १९ नवम्बरको किया जब कि एमरीको एक पत्रमें उन्होंने लिखा: "मुझे गांधीकी एक हस्तलिखित चिट्ठी मिली है जिसके साथ एडवर्ड हैलीफैक्सके नाम उनके पुत्रकी लड़ाईमें मृत्यु होने पर समवेदना का पत्र भी था। इस पत्रको मैं साथ भेज रहा हूँ, ताकि इसे इसी बैग द्वारा हैलीफैक्सके पास भेजा जा सके। पत्रमें महात्माके स्वभावकी विशिष्टता अनेक प्रकारसे प्रतिबिम्बित हो रही है।" **ट्रान्सफर ऑफ पॉवर**, जिल्द ३, पृ० २६८।

३. भणसालीने १२ नवम्बरको या उसके आसपास अनशन शुरू किया था। उनकी माँग थी कि चिमूर गाँवमें ब्रिटिश और भारतीय सैनिकों तथा पुलिसके द्वारा किये गये अत्याचारोंकी जाँच कराई जाये। **ट्रान्सफर ऑफ पॉवर**, जिल्द ३, पृ० ४४०।

उनके अनशनका कारण और उनकी हालत जानने के लिए मैं सुपरिंटेंडेंटके माध्यमसे उनके साथ तार द्वारा सीधा सम्पर्क स्थापित करना चाहूँगा। यदि मैं समझूँगा कि उनका अनशन नैतिक दृष्टिसे अनुचित है तो उन्हें मना करना चाहूँगा। मैं यह विनती मानवताकी खातिर कर रहा हूँ।[1]

गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४, पृ० १०। फाइल सं० ३/२१/४२, जिल्द १ भी; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

४४४. पत्र : जेल-महानिरीक्षकको

२५ नवम्बर, १९४२

जेल-महानिरीक्षक
बम्बई प्रेसिडेन्सी
महोदय,

कल प्रातः ८-४५ के करीब मैंने बम्बई सरकारके गृह-विभागके सचिवके नाम एक एक्सप्रेस तारका मजमून आपके पास भेजा था। तार प्रोफेसर भणसालीके बारेमें था, जो कि समाचारोंके अनुसार अनशन कर रहे हैं। चूंकि प्रोफेसर मद्रासके 'हिन्दू' की खबरके अनुसार ११ अगस्तसे और 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के अनुसार गत बुधवारसे अनशन कर रहे हैं, इसलिए मैं स्वभावतः बहुत चिन्तित हूँ। ऐसे मामलोंमें समय का सबसे अधिक महत्त्व होता है। इसलिए मैं आपका बहुत आभार मानूंगा अगर आप मेरी यह विनती टेलीफोन या तार द्वारा बम्बई सरकारको पहुँचा दें कि वे मेरे तारका तुरन्त जवाब दें।

भवदीय
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४, पृ० १०

१. सरकारने भणसालीके साथ पत्र-व्यवहार करने की गांधीजी की प्रार्थना अस्वीकार कर दी। लिनलिथगोने ११ जनवरीको तार द्वारा एमरीको सूचित किया कि जाँचकी माँगको स्वीकार करने का मेरा कोई इरादा नहीं है, और यदि भणसाली मरना चाहते हों तो "मैं उन्हें मरने देने को बिलकुल तैयार हूँ।" (ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द ३, पृ० ४८३) भणसालीने अनशन १२ जनवरी, १९४३ को तोड़ा था।

४४५. पत्र : बम्बई सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको

नजरबन्दी कैम्प
४ दिसम्बर, १९४२

अतिरिक्त सचिव
बम्बई सरकार (गृह-विभाग)

महोदय,

मैं आपको सूचित करना चाहता हूँ कि गत मासकी ३० तारीखका आपका पत्र[1] मुझे कल (चालू महीनेकी ३ तारीखको) दोपहर बाद मिल गया था। मुझे यह देखकर बहुत दुःख हुआ कि मेरे एक प्रिय सहयोगीके विषयमें, जिसका जीवन संकटमें पड़ा लगता है, मेरे तार-सन्देश[2] का जवाब पत्र द्वारा दिया गया है, जो कि मेरा सन्देश भेजनेके दस दिन बाद मुझे मिला है।

सरकार द्वारा मेरी विनती अस्वीकार कर दी जाने पर मुझे अफसोस है। चूँकि मैं विशेष परिस्थितियोंमें अनशनके औचित्यमें और उसकी आवश्यकतामें भी विश्वास करता हूँ, इसलिए जबतक मैं यह न जान पाऊँ कि प्रो० भणसालीके अनशनका कोई उचित कारण नहीं है, तबतक मैं उन्हें अनशन भंग करनेकी सलाह नहीं दे सकता। यदि समाचारपत्रोंकी खबरपर विश्वास किया जाये तो उनके अनशनका उचित कारण जान पड़ता है, और यदि मुझे एक मित्रसे वंचित होना ही है तो उसे खोकर भी मैं सन्तोष कर लूँगा।

भवदीय
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट, १९४२-४४, पृ० ११

१. इस पत्रमें कहा गया था: "सरकार उनके साथ पत्र-व्यवहार करने की आपकी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सकती। अलबत्ता, अगर आप मानवीयताकी दृष्टिसे उन्हें अनशन छोड़ देने की सम्मति देना चाहते हों तो सरकार आपकी सम्मति उन्हें पहुँचा देगी।"

२. देखिए पृ० ४६०-६१।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

बातचीत : प्यारेलालके साथ[1]

[१३ दिसम्बर, १९४२][2]

१९४२ में पूनामें पिछले कारावासके दौरान मुझे गांधीजी के साथ उनके ट्रस्टी-शिप (न्यासिता)के आदर्शके विभिन्न पक्षोंपर विस्तारपूर्वक चर्चा करने का अवसर प्राप्त हुआ। . . . हमारी बातचीतके दौरान एक दिन उन्होंने कहा: "इस आदर्शकी उपलब्धिका एकमात्र लोकतान्त्रिक रास्ता आज यही है कि इसके पक्षमें लोकमत तैयार किया जाये।"

मैंने उनसे कहा कि आपने न्यासिताका आधार सम्पत्तिधारी वर्गके सामने शायद इस वजहसे पेश किया है कि यद्यपि अहिंसा लोगोंसे अनेक बलिदान देनेको कहेगी, फिर भी किसीसे अपना सिर खुद अपने हाथों पेश करने की आशा रखना युक्तिसंगत नहीं है। "अतः सम्पत्तिधारी वर्गसे यह असम्भव कार्य करने के लिए कहने के बजाय आपने उनके सम्मुख एक युक्तिसंगत और व्यावहारिक विकल्प प्रस्तुत किया।"

गांधीजी : मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं हूँ कि अहिंसा किसी खास सीमा तक ही बलिदानके लिए माँग या आदेश कर सकती है। न्यासिताके सिद्धान्तका आधार खुद उसकी खूबियाँ हैं।

प्यारेलाल : अवश्य ही, आपका आशय यह तो नहीं है कि परिवर्तन सम्पत्तिधारी वर्गकी रजामन्दीपर निर्भर होगा और जबतक उनका हृदय-परिवर्तन पूर्ण रूपसे नहीं हो जाता, तबतक हमें इन्तजार करना होगा? यदि सामाजिक कायापलट धीमी, क्रमिक प्रक्रियासे होगा तो अतीतसे सहसा विच्छेदके फलस्वरूप पैदा होनेवाला क्रान्तिकारी जोश इस तरह ठंडा पड़ जायेगा। इसीलिए हमारे मार्क्सवादी मित्रोंका कहना है कि सच्ची सामाजिक क्रान्ति केवल सर्वहारा वर्गके अधिनायकत्वके जरिये ही आ सकती है। . . .

गां० : शायद तुम्हारे दिमागमें रूसका उदाहरण है। वहाँ सम्पत्तिधारियोंकी बड़े पैमानेपर बेदखली और उनकी सम्पत्ति जनतामें बाँट दी जाने से जबरदस्त क्रान्तिकारी जोश अवश्य पैदा हुआ था। लेकिन, मेरा यह दावा है कि हमारी क्रान्ति उससे भी बड़ी

१. देखिए "प्रश्नोत्तर", पृ० १०-११।

२. यह तारीख हरिजन, २५-१०-१९४२ से ली गई है।

होगी। सम्पत्तिधारी वर्गने जो व्यापारिक बुद्धि तथा जानकारी पीढ़ियोंके अनुभव तथा विशेषताके जरिये हासिल की है, उसे हमें कम करके नहीं आँकना चाहिए। मेरी योजनाके अन्तर्गत जनता उसका उपयोग मुफ्तमें कर सकेगी। जबतक हमारे पास सत्ता नहीं है तबतक हृदय-परिवर्तन हमारा हथियार आवश्यकताके कारण है। लेकिन हमारे सत्ता हासिल करने के बाद हृदय-परिवर्तन हमारा हथियार हमारी पसन्दके कारण बनेगा। कानून बनाने से पहले हृदय-परिवर्तन होना चाहिए। हृदय-परिवर्तन न हुआ हो तो कानून निर्जीव हो जाता है। दृष्टान्तके तौरपर आज हमें स्वच्छताके नियमोंका पालन करवाने का अधिकार है, लेकिन उससे हम कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि लोग उसके लिए तैयार नहीं हैं।

प्या० : आप कहते हैं कि सुधारसे पहले हृदय-परिवर्तन होना चाहिए। किसका हृदय-परिवर्तन? यदि आपका मतलब जनताके हृदय-परिवर्तनसे है तो जनता तो आज भी उसके लिए तैयार है। इसके विपरीत, यदि आपका आशय सम्पत्तिधारी वर्गसे है तो हम शायद उस दिनका रास्ता ही देखते रह जायेंगे।

गां० : मेरा मतलब दोनोंके हृदय-परिवर्तनसे है। यदि सम्पत्तिधारी-वर्ग न्यासिताके आधारको स्वेच्छापूर्वक स्वीकार नहीं करेगा तो उसका हृदय-परिवर्तन जनमतके दबावसे करना होगा। उसके लिए जनमत अभी पर्याप्त रूपसे सुसंगठित नहीं है।

प्या० : सत्तासे आपका क्या तात्पर्य है?

गां० : सत्तासे मेरा तात्पर्य यह है कि जनताको इतने व्यापक आधारपर वोट देने का अधिकार हो कि बहुमतकी आकांक्षाको कार्यान्वित किया जा सके।

प्या० : क्या जनता संसदीय कार्रवाईसे किसी तरह सत्तामें आ सकती है?

गां० : 'केवल' संसदीय कार्रवाईसे नहीं। अन्ततोगत्वा मेरा भरोसा तो अहिंसात्मक असहयोगकी शक्तिपर है, जिसे संगठित करने का प्रयास मैं पिछले बाईस वर्षोंसे करता आ रहा हूँ।

प्या० : क्या अहिंसाके जरिये सत्तापर कब्जा करना सम्भव है? हमारे समाजवादी मित्रोंका कहना है कि . . . समझमें नहीं आता कि अहिंसा सत्तापर कब्जा करने की सामर्थ्य कैसे दे सकती है। आपने भी वही बात कही है।

गां० : एक प्रकारसे वे सही हैं। अहिंसाकी प्रकृति ही ऐसी है कि वह सत्ता पर "कब्जा" नहीं कर सकती, और न यह उसका लक्ष्य हो सकता है। लेकिन अहिंसा इससे बड़ा काम कर सकती है; सरकारी तन्त्रपर अधिकार किये बिना, अहिंसासे सत्तापर कारगर ढंगसे नियन्त्रण रखा जा सकता है और उसका निर्देशन किया जा सकता है। यही इसकी खूबी है। बेशक इसमें एक अपवाद है। यदि जनता अहिंसात्मक असहयोग इतने पूर्ण रूपमें करती है कि प्रशासन ठप्प हो जाता है, अथवा यदि किसी विदेशी आक्रमणके धक्केसे प्रशासन बिखर जाता है और रिक्तता पैदा हो जाती है तो जनताके प्रतिनिधि प्रशासनमें प्रवेश करेंगे और उस रिक्तताको भर देंगे। सिद्धान्ततः यह सम्भव है।

इसके अलावा, मैं यह नहीं मानता कि बिना हिंसाके प्रयोगके सरकार चलाई ही नहीं जा सकती।

प्या० : क्या राज्यकी परिकल्पनामें ही सत्ताका प्रयोग अन्तर्निहित नहीं है?

गां० : हाँ, है। लेकिन सत्ताका प्रयोग हिंसात्मक होना आवश्यक नहीं है। पिता अपने पुत्रपर सत्ताका प्रयोग करता है; वह उसे सजा भी दे सकता है, लेकिन चोट पहुँचाकर नहीं। सत्ताका सबसे सार्थक प्रयोग वही है जिसमें कमसे-कम कष्ट पहुँचे। सत्ताका प्रयोग सही ढंगसे होने पर वह फूल-जैसी हलकी लगेगी; उसका भार किसीको महसूस ही न होगा। जनताने कांग्रेसकी सत्ता स्वेच्छासे स्वीकार की। मुझे एकसे अधिक मौकोंपर अधिनायककी निरंकुश सत्ता प्रदान की गई। लेकिन हर आदमी यह जानता था कि मेरी सत्ता उनकी स्वैच्छिक स्वीकृतिपर निर्भर थी। वे किसी भी समय मुझे अलग कर सकते थे और मैं भी बिना किसी चूँ-चपड़के अलग हो जाता। खिलाफत आन्दोलनके दिनोंमें मेरी अथवा कांग्रेसकी सत्तासे किसीको परेशानी नहीं हुई। अलीबन्धु मुझे "सरकार" कहकर पुकारते थे। किन्तु वे यह जानते थे कि मैं उनकी जेबमें हूँ। तब जो बात मुझपर या कांग्रेसपर लागू थी, वही सरकारपर भी लागू हो सकती है।

मैंने स्वीकार किया कि एक अहिंसक राज्य या थोड़े-से लोगोंकी नैतिक सत्ता पर आधारित एक अहिंसक अल्पसंख्याका अधिनायकत्व सिद्धान्ततः तो सम्भव है, लेकिन उसके लिए भारी आत्मसंयम, आत्मत्याग और तपश्चर्याकी आवश्यकता है। . . .

अन्तमें मैंने कहा, "निजी तौरपर मैं यह मानता हूँ कि केवल ऐसा ही व्यक्ति अहिंसाके अधीन अधिनायक बनने के काबिल है। . . ."

गांधीजी ने इस बातकी पुष्टि की कि अहिंसाके अधीन लोगोंको अधिक भारी बलिदानके लिए तैयार रहना होगा, और किसी कारण नहीं तो केवल इसी कारण कि अभीष्ट लक्ष्य उच्चतर है। उन्होंने कहा, "मुक्तिके लिए कोई छोटा रास्ता नहीं है।"

मेरी बहन बीचमें बोल उठी: "इसका मतलब तो यह हुआ कि ईसा मसीह, मुहम्मद या बुद्ध-जैसी कोई विभूति ही अहिंसात्मक राज्यका राज्याध्यक्ष बन सकती है।"

गां० : यह सही नहीं है। पैगम्बर और महापुरुष तो किसी युगमें केवल एक बार पैदा होते हैं। लेकिन यदि कोई एक व्यक्ति भी अहिंसाके आदर्शको सम्पूर्ण रूपसे चरितार्थ कर दे तो वह सारे समाजको समेट लेता है और उसका उद्धार कर देता है। ईसा मसीहने एक बार जब लीक डाल दी तो उनके कामको उनके बारह शिष्य उनके न रहने पर भी जारी रख सके। विद्युतीय नियमोंकी खोज करने के लिए वैज्ञानिकोंको कई पीढ़ियोंके अध्यवसाय एवं प्रतिभाकी जरूरत पड़ी लेकिन आज हर आदमी, यहाँतक कि बच्चे भी अपने दैनिक जीवनमें विद्युत-शक्तिका प्रयोग करते हैं। इसी तरह एक बार आदर्श राज्यकी स्थापना हो जाने पर उसका प्रशासन चलाने के लिए किसी सर्वथापूर्ण व्यक्तिका होना हमेशा जरूरी नहीं होगा। सबसे पहले जिसकी जरूरत है वह है पूर्ण सामाजिक जागृति। बाकी उसके बाद अपने-आप होगा। अपने निकट का उदाहरण लें तो मैंने श्रमिक वर्गके सामने यह सत्य रखा है कि सच्ची पूँजी सोना या चाँदी नहीं, बल्कि उनके हाथ-पैरोंकी मेहनत और उनकी बुद्धि है। यदि

मजदूरोंमें यह जागृति एक बार अच्छी तरह आ जाये तो उससे जो शक्ति उत्पन्न होगी उसका इस्तेमाल कर सकने के लिए उन्हें मेरी उपस्थितिकी जरूरत नहीं रहेगी।

[अंग्रेजीसे]

महात्मा गांधी -- द लास्ट फेज, जिल्द २, पृ० ६३०-३३

परिशिष्ट २

ब्रिटिश सरकारका प्रस्ताव : औपनिवेशिक विषयोंके मन्त्रीकी टिप्पणी[1]

११, डाउनिंग स्ट्रीट, एस० डब्ल्यू० आई०
२ मार्च, १९४२

२५ फरवरीको प्रधान मन्त्रीने मुझसे भारतकी मौजूदा स्थितिपर विचार करने के लिए गठित मन्त्रिमण्डलीय समितिकी अध्यक्षता करने और सिफारिशें पेश करने को कहा था।

अब मैं, उस समितिकी ओरसे, भारतकी भावी सरकारके सम्बन्धमें सम्राटकी सरकारकी घोषणाका मसौदा युद्ध-मन्त्रिमण्डलके विचारार्थ पेश करता हूँ।

घोषणाका मसौदा

भारतके भविष्यके सम्बन्धमें किये गये वादोंकी पूर्तिके बारेमें इस देशमें तथा भारतमें जो आशंकाएँ व्यक्त की गई हैं, उनपर विचार करने के बाद सम्राटकी सरकारने ठीक-ठीक और स्पष्ट शब्दोंमें ऐसे कदम निर्धारित करने का निर्णय किया है जो भारतमें जल्दीसे-जल्दी स्वशासनकी स्थापना सम्भव बनाने के लिए उठाने का उसका इरादा है। उद्देश्य एक नये भारतीय संघका निर्माण करना है, जो एक ऐसा डोमिनियन होगा जो हर मानेमें ब्रिटेन तथा सम्राटके अन्य डोमिनियनोंके समकक्ष होगा, और ब्रिटिश राष्ट्रकुलमें समान साझेदारकी हैसियतसे रहने या उससे अलग होने के लिए स्वतन्त्र होगा।

अतः सम्राटकी सरकार निम्नलिखित घोषणा करती है:

(क) युद्ध समाप्त होने के तुरन्त बाद भारतमें आगे बताये गये ढंगसे एक निर्वाचित समिति स्थापित करने के लिए कदम उठाये जायेंगे। इस समितिको भारतका नया संविधान तैयार करने का कार्य सौंपा जायेगा।

(ख) संविधान बनानेवाली समितिमें नीचे निर्दिष्ट तरीकेसे भारतीय रियासतोंके भाग लेने की व्यवस्था की जायेगी।

(ग) सम्राटकी सरकार इस तरह तैयार किये गये संविधानको निम्नलिखित शर्तोंका खयाल रखते हुए स्वीकार करने और फौरन लागू करने का वादा करती है:

1. देखिए "वह अभागा प्रस्ताव", पृ० ३२-३४।

(१) ब्रिटिश भारतके ऐसे किसी भी प्रान्तको जो नया संविधान स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है, फिलहाल अपनी मौजूदा संवैधानिक स्थिति कायम रखने का अधिकार रहेगा और उसका विलय बादमें करने की व्यवस्था रखी जायेगी।

ऐसे पृथक् रहनेवाले प्रान्त यदि चाहेंगे तो सम्राटकी सरकार ऊपर निर्धारित विधिके अनुसार तैयार किये गये एक नये संविधानको स्वीकृति देने के लिए तैयार होगी।

(२) सम्राटकी सरकार और संविधान बनानेवाली समितिके बीच एक सन्धि सम्पन्न होगी, जिसमें अंग्रेजों द्वारा भारतीयोंके हाथोंमें पूरी जिम्मेदारी सौंपे जाने से सम्बन्धित सभी आवश्यक मामले शामिल होंगे।

चाहे कोई भारतीय रियासत संविधानका पालन करने का फैसला करे अथवा न करे, किन्तु उसके लिए नई परिस्थितिकी आवश्यकताओंके अनुसार संशोधित सन्धि-व्यवस्थाएँ करना आवश्यक होगा।

(घ) भारतकी प्रधान जातियोंके जनमतके नेता युद्ध-समाप्तिके पहले यदि कोई अन्य प्रणाली तय नहीं कर लेते तो संविधान बनानेवाली समितिका गठन इस प्रकार किया जायेगा :

युद्ध-समाप्तिके बाद प्रान्तोंमें चुनाव जरूरी होंगे और उनके परिणाम ज्ञात होने के फौरन बाद प्रान्तीय विधान-मण्डलोंके निचले सदनोंके सभी सदस्य मिलकर एक निर्वाचक मण्डलके रूपमें आनुपातिक प्रतिनिधित्वकी प्रणालीसे संविधान बनानेवाली समितिका चुनाव करेंगे। इस नई समितिकी संख्या निर्वाचक मण्डलकी संख्याका लगभग दसवाँ भाग होगी।

भारतीय रियासतोंको अपने प्रतिनिधि अपनी कुल जनसंख्याके उसी अनुपातमें नियुक्त करने के लिए कहा जायेगा जितना कि ब्रिटिश भारतका औसत अनुपात होगा, और उन्हें भी ब्रिटिश भारतके सदस्योंके समान ही अधिकार प्राप्त होंगे।

(ङ) यद्यपि भारतकी संकटकी इस घड़ीमें और नये संविधानका निर्माण होने तक सम्राटकी सरकारको ही अनिवार्य रूपसे भारतकी सुरक्षाका पूरा उत्तरदायित्व सँभालना होगा, तथापि वह इस बातकी इच्छुक है और भारतीय जनताके प्रमुख वर्गों के नेताओंको इस बातके लिए आमन्त्रित करती है कि वे अपने देशके मामलोंके परामर्शमें तत्काल और प्रभावकारी रूपसे हिस्सा लें और एक ऐसा कार्य सम्पादित करने में सक्रिय और रचनात्मक रूपसे अपनी सहायता प्रदान करें जो भारतकी भावी स्वतन्त्रता के लिए इतना महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द १, पृ० २९१-९३

परिशिष्ट ३

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा पारित प्रस्ताव[1]

१ मई, १९४२

भारतके सिरपर आज आक्रमणका जो खतरा मँडरा रहा है तथा सर स्टैफर्ड क्रिप्स द्वारा रखे गये हालके सुझावोंमें ब्रिटिश सरकारका जिस तरहका रवैया पुनः प्रकट हुआ है, उसे देखते हुए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको भारतकी नीतिकी नये सिरेसे घोषणा करनी है और निकट भविष्यमें उपस्थित हो सकनेवाली आपात स्थितियों में की जानेवाली कार्रवाईके बारेमें जनताको सलाह देनी है।

ब्रिटिश सरकारके सुझावों और बादमें सर स्टैफर्ड क्रिप्स द्वारा दिये गये उनके स्पष्टीकरणने उस सरकारके प्रति पहलेकी अपेक्षा और अधिक कटुता और अविश्वास पैदा कर दिया है तथा ब्रिटेनके साथ असहयोगकी भावना और बढ़ गई है। उनसे स्पष्ट हो गया है कि इस घड़ीमें भी, जब कि न केवल भारतके लिए बल्कि मित्र राष्ट्रोंके ध्येयके लिए भी बड़ा खतरा है, ब्रिटिश सरकार साम्राज्यवादी सरकारकी तरह काम कर रही है, और भारतकी आजादीको मान्यता देने या वास्तविक सत्तासे किसी भी तरह अलग होने से इनकार कर रही है।

युद्धमें भारतकी शिरकत सरासर ब्रिटेनकी कारगुजारी थी। उसने भारतीय जनताके प्रतिनिधियोंकी सहमतिके बिना उसके सिर यह स्थिति जबरदस्ती थोप दी। यद्यपि भारतका किसी भी देशके लोगोंसे कोई झगड़ा नहीं है, तथापि उसने साम्राज्यवादकी तरह नाजीवाद और फासीवादके प्रति भी बार-बार अपना विरोध प्रकट किया है। यदि भारत स्वतन्त्र होता तो वह अपनी नीति स्वयं निर्धारित करता और हो सकता है कि युद्धसे अलग ही रहता, यद्यपि उसकी सहानुभूति हर हालतमें आक्रमणके शिकार देशोंके साथ ही होती। परन्तु यदि परिस्थितिवश भारतको युद्धमें शरीक होना ही पड़ता तो वह आजादीके लिए लड़नेवाले एक स्वतन्त्र देशकी हैसियतसे ही ऐसा करता। भारतकी प्रतिरक्षाका गठन तब लोक-आधारपर किया जाता; राष्ट्रीय नियन्त्रण और नेतृत्वके अधीन काम करनेवाली उसकी एक राष्ट्रीय सेना होती और जनताके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखा जाता। स्वतन्त्र भारत यह जानता कि किसी हमलावर द्वारा देशपर हमला होने पर अपनी रक्षा कैसे की जाती है। मौजूदा भारतीय सेना वास्तवमें ब्रिटिश सेनाकी ही एक उपशाखा है और अबतक उसे मुख्य रूपसे भारतको पराधीन बनाये रखने के लिए पाला-पोसा गया है। आम जनतासे इसे पूरी तरह पृथक् रखा गया है और जनता इसे किसी भी तरह अपनी सेना नहीं मान सकती।

१. देखिए "अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके लिए प्रस्तावका मसौदा", पृ० ७०-७२।

प्रतिरक्षाकी साम्राज्यवादी और लोकप्रिय परिकल्पनाओंका वास्तविक अन्तर इसी तथ्यसे स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ भारतमें प्रतिरक्षाके लिए विदेशी सेनाएँ बुलाई गई हैं वहाँ खुद भारतकी विशाल जन-शक्तिका प्रतिरक्षाके लिए कोई उपयोग नहीं किया गया है। भारतने अपने पिछले अनुभवोंसे यह सीखा है कि भारतमें विदेशी सेनाओंका प्रवेश देशके हितके लिए हानिकारक और उसकी स्वतन्त्रताके ध्येयके लिए खतरनाक है। यह बात उल्लेखनीय और बड़ी अजीब लगती है कि जब भारत अपनी भूमि या सीमापर लड़नेवाली विदेशी सेनाओंके लिए एक रणक्षेत्र बनता जा रहा हो, तब भारतकी अपार जनशक्तिका कोई प्रयोग ही न हो और उसकी प्रतिरक्षाका मामला लोक-नियन्त्रणके योग्य ही न समझा जाये। भारत अपने लोगोंके साथ विदेशी सत्ता द्वारा किये गये क्रीतदास-जैसे इस व्यवहारके प्रति अपना रोष प्रकट करता है।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको विश्वास है कि भारत अपनी आजादी अपनी खुदकी ताकतसे हासिल करेगा और उसीसे उसे सुरक्षित रखेगा। वर्त्तमान संकट और सर स्टैफर्ड क्रिप्सके साथ हुई बातचीतके अनुभवने कांग्रेसके लिए ऐसी किसी भी योजना या सुझावपर विचार करना असम्भव बना दिया है जिससे भारतपर ब्रिटिश नियन्त्रण और अधिकार आंशिक रूपमें भी कायम रहता हो। न केवल भारतके हितोंका बल्कि ब्रिटेनकी सुरक्षा और विश्वकी शान्ति एवं स्वतन्त्रताका भी यह तकाजा है कि ब्रिटेन भारत परसे अपना आधिपत्य हटा ले। भारत केवल स्वाधीनताके आधारपर ही ब्रिटेन तथा अन्य राष्ट्रोंके साथ व्यवहार कर सकता है।

कमेटी इस विचारका खण्डन करती है कि किसी बाहरी देशके हस्तक्षेप या हमला करने से भारतमें आजादी आ सकती है, भले ही वह देश चाहे कुछ भी वचन क्यों न दे। यदि हमला होता है तो उसका प्रतिरोध अवश्य होना चाहिए। यह प्रतिरोध केवल अहिंसात्मक असहयोगके रूपमें ही किया जा सकता है, क्योंकि ब्रिटिश सरकारने जनताके राष्ट्रीय प्रतिरक्षाका संगठन किसी अन्य तरीकेसे करने पर रोक लगा रखी है। इसलिए समिति भारतीय जनतासे आशा करती है कि वह हमलावर सेनाओंके साथ पूर्ण अहिंसात्मक असहयोग करेगी और उनकी किसी भी प्रकारसे सहायता नहीं करेगी। हम आक्रामकके आगे न तो घुटने टेकेंगे और न उसकी कोई आज्ञा मानेंगे। हम न तो उससे कृपाकी आशा करेंगे और न ही उसके प्रलोभनोंमें फँसेंगे। यदि वह हमारे घरों-खेतोंपर अधिकार करना चाहेगा तो हम उन्हें छोड़ने से इनकार कर देंगे, चाहे हमें उसका प्रतिरोध करने के प्रयासमें अपने प्राण ही क्यों न देने पड़ें। जिन स्थानोंपर ब्रिटिश और हमलावर फौजें युद्ध कर रही हैं वहाँ हमारा असहयोग निष्फल और अनावश्यक होगा। हमलावरके साथ अपना असहयोग प्रदर्शित करने का एकमात्र रास्ता बहुधा यही होगा कि हम ब्रिटिश फौजोंके मार्गमें कोई बाधा न डालें। ब्रिटिश सरकारके रवैयेसे यही समझमें आता है कि उसे सिवाय इसके कि हम कोई हस्तक्षेप न करें, हमारी अन्य किसी सहायताकी आवश्यकता नहीं है।

हमलावरके प्रति असहयोग और अहिंसात्मक प्रतिरोधकी इस तरहकी नीतिकी सफलता अधिकतर इस बातपर निर्भर करेगी कि देशके सभी भागोंमें कांग्रेसके

रचनात्मक और खासकर आत्म-निर्भरता एवं आत्म-रक्षाके कार्यक्रमको तेजीसे कार्यान्वित किया जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२, जिल्द २, पृ० २०५-६। **ट्रान्सफर ऑफ पॉवर**, जिल्द २, पृ० ६६-७० भी

परिशिष्ट ४

हिन्दुस्तानी प्रचार सभाके संविधानमें सभाके उद्देश्य व कार्य निर्धारित करनेवाली धाराएँ[1]

इस सभाके हेतु और कामके बारेमें उसके विधानमें नीचे लिखी धाराएँ हैं:

३. हेतु (मकसद): राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीका प्रचार करना, जो सारे हिन्दुस्तान की सामाजिक (समाजी), राजनीतिक (सियासी), कारबारी और ऐसी दूसरी जरूरतोंके लिए देश-भरमें काम आ सके, और अलग-अलग भाषाएँ (जबानें) बोलनेवाले सूबोंमें मेलजोल और बातचीतकी भाषा बन सके।

नोट: हिन्दुस्तानी वह भाषा है, जिसे उत्तर हिन्दुस्तानके शहरों और गाँवोंमें हिन्दू, मुसलमान आदि सब लोग बोलते हैं, समझते हैं और आपसके कारबारमें बरतते हैं, और जिसे नागरी और पारसी दोनों लिखावटोंमें लिखा-पढ़ा जाता है और जिसके साहित्यिक (अदबी) रूप आज हिन्दी और उर्दू नामसे पहचाने जाते हैं।

४. सभाके काम: हेतु सफल करने के लिए सभाके काम इस तरह किये जायेंगे:

(१) हिन्दुस्तानीका एक कोश (लुगत) तैयार करना, जिसपर सब भरोसा कर सकें। हिन्दुस्तानीका व्याकरण (कवायद) तैयार करना और अलग-अलग सूबोंके लिए ऐसे ही दूसरे संदर्भग्रंथ (हवालेकी किताबें) बनाना।

(२) स्कूलोंमें पढ़ाने के लिए हिन्दुस्तानीकी किताबें तैयार करना।

(३) हिन्दुस्तानीमें आसान किताबें छापना।

(४) हिन्दुस्तानीका प्रचार करने के लिए जगह-जगह परीक्षाएँ (इम्तहान) लेना और ऐसी ही परीक्षाएँ लेनेवाली सभाओंको मंजूर करना और मदद देना।

(५) हिन्दुस्तानीमें पारिभाषिक शब्दों (इस्तिलाहीलफ्जों)का कोश तैयार करना।

(६) सूबेकी सरकारों, शहरों और जिलोंके बोर्डो और राष्ट्रीय शिक्षा (कौमी तालीम)की संस्थाओंसे हिन्दुस्तानीको लाजिमी विषय मनवाने की कोशिश करना।

(७) उपर लिखे हुए और ऐसे ही और कामोंके लिए सभाकी शाखाएँ खोलना, समितियाँ यानी कमेटियाँ बनाना, चन्दा इकट्ठा करना, हिन्दुस्तानीमें किताबें निकालनेवालों

[1] देखिए "वक्तव्य: हिन्दुस्तानीके बारेमें", पृ० ८८।

को मदद देना, मेदरसे, पुस्तकालय (किताबघर), वाचनालय (पढ़ाईघर), उस्तादों के स्कूल, रात्रिशालाएँ और इसी तरहकी और भी संस्थाएँ चलाना।

(८) जो संस्थाएँ इन कामोंमें हाथ बँटा सकें, उन्हें अपने साथ लेना या अपनी सभासे जोड़ लेना।

(९) ऐसे और सब जतन करना जिनसे सभाके सब काम पूरे हो सकें।

नोट: इस सभाकी माल-मिल्कियतसे सभाका कोई सभासद, सभासदकी हैसियतसे निजी फायदा न उठा सकेगा।

राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, पृ० १५२-५३

परिशिष्ट ५

भेंट: लुई फिशरको[1]

४ जून, १९४२

गांधीजी: अब मैं पूरी तरह आपकी सेवामें प्रस्तुत हूँ।

लुई फिशर: मेरा खयाल है कि क्रिप्स-मिशन भारतीय इतिहासका एक नया मोड़ था। सम्भवतः अब देशमें क्रिप्सकी असफलताके मर्मको समझा जाने लगा है, और उस समझसे बड़ी-बड़ी चीजें घटित हो सकती हैं।

गां०: जब क्रिप्स भारत आये थे तो उन्होंने मुझे दिल्ली आकर मिलने के लिए तार भेजा था। मैं जाना नहीं चाहता था, लेकिन इसलिए चला गया कि सोचा, शायद कुछ सहायता कर पाऊँ। वे ब्रिटिश सरकारका जो प्रस्ताव लाये थे, उसमें क्या था इस बारेमें मैंने अफवाहें तो सुनी थीं, लेकिन प्रस्ताव देखा नहीं था। उन्होंने मुझे प्रस्ताव दिया और उसका थोड़ा-सा ही अध्ययन करके मैंने उनसे कह दिया, "यदि आपके पास देने के लिए यही था तो आप आये ही क्यों? यदि भारतके लिए आपका पूरा प्रस्ताव यही है तो मैं आपको अगले विमानसे ही स्वदेश लौट जाने की सलाह दूँगा।" उत्तरमें उन्होंने कहा: "मैं इसपर विचार करूँगा।"

लु० फि०: क्रिप्स-प्रस्तावपर आपकी आपत्ति क्या है? क्या उसमें आपको ब्रिटिश राष्ट्रकुलसे अलग होने के अधिकारके साथ औपनिवेशिक दर्जा प्रदान करने का वचन नहीं दिया गया था?

गां०: सी० एफ० एण्ड्रयूज आग्रहपूर्वक कहा करते थे कि औपनिवेशिक दर्जा भारतके लिए नहीं है। ब्रिटेनके साथ हमारा सम्बन्ध वैसा नहीं है जैसा उपनिवेशोंका है। ये उपनिवेश गोरोंके हैं और मुख्यतः ब्रिटेनसे गये लोगों या उनकी सन्ततियोंसे आबाद हैं। हम नहीं चाहते कि हमें कोई दर्जा प्रदान किया जाये। यदि हमें कोई

१. देखिए "महत्त्वपूर्ण प्रश्न", पृ० २०५-७। लुई फिशरकी पुस्तकसे कुछ अंश ही यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं।

दर्जा प्रदान किया जाता है तो इसका मतलब यह है कि हम स्वतन्त्र नहीं हैं। राष्ट्र-कुलसे पृथक् होनेकी बातमें भी बड़े दोष हैं। एक प्रमुख दोष तो क्रिप्स-प्रस्तावमें देशी नरेशोंके बारेमें किया गया प्रावधान है। अंग्रेजोंका खयाल है कि सन्धियोंके अधीन उन्हें देशी नरेशोंको संरक्षण देना ही है, हालाँकि ये सन्धियाँ अपने लाभके लिए उन्होंने नरेशोंपर जबरन थोपी हैं। बीकानेरके महाराजा — और यहाँ मेरा मतलब खास उन्हींसे नहीं बल्कि किसी भी देशी नरेशसे है — अंग्रेजोंके आने से पहले भी राज्य करते थे और तब उनके पास आजकी अपेक्षा अधिक अधिकार थे। दूसरा दोष पाकिस्तानको मान्यता प्रदान करने में निहित है। हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीचके मतभेदोंको ब्रिटिश शासनने बढ़ाया। अब क्रिप्स-प्रस्तावमें उन्हें खुलकर खेलने का ज्यादासे-ज्यादा मौका दिया गया है। लॉर्ड मिंटो जब वाइसराय थे, तब उन्होंने दोनों धर्मोंके लोगोंके लिए पृथक् निर्वाचक मण्डल स्थापित करके [१९०९ में][1] इसकी शुरुआत की, और तबसे अंग्रेज हमें और अधिकाधिक विभाजित करने का प्रयास करते आये हैं। लॉर्ड कर्जन बहुत बड़े प्रशासक थे। जिस तरह मैं चैम्सफोर्ड, अर्विन [हैलीफैक्स][2] और लिनलिथगोसे मिला हूँ उस तरह उनसे कभी नहीं मिला। लेकिन वे एक व्यक्तिसे एक बात कहते थे, दूसरेसे दूसरी और तीसरे व्यक्तिसे एक तीसरी ही बात कह देते थे। सर सैम्युअल होरके साथ बात करते हुए मुझे मालूम रहता है कि मैं किस आदमीसे बात कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि उनकी असली स्थिति क्या है। लेकिन कर्जनके साथ ऐसी बात नहीं थी। कर्जन द्वारा किया गया बंगालका विभाजन एक आवश्यक सुधार था। वह एक अच्छा कदम था। लेकिन उसका परिणाम यह हुआ कि प्रान्त धर्मके आधारपर बँट गया। क्रिप्सने अपने प्रस्तावमें यही सिद्धान्त शामिल कर दिया है। यह प्रस्तावका दूसरा बड़ा दोष है। अतः जबतक अंग्रेज यहाँ हैं, तबतक भारतमें एकता नहीं हो सकती।

लु० फि० : खैर, क्रिप्सने युद्धके बादकी व्यवस्थाकी जो रूपरेखा पेश की है वह तो आपको अच्छी नहीं लगी। लेकिन क्या अन्तरिम या तात्कालिक व्यवस्थासे सम्बन्धित प्रावधानोंमें भी कुछ वांछनीय नहीं था। क्या आपने इस बातका खयाल नहीं किया कि भावी योजनाकी बात छोड़ दी जाये तो तात्कालिक व्यवस्थामें कुछ खूबी हो सकती है? इससे आपके लोगोंको शासनका कुछ अनुभव हासिल होता और आप युद्ध समाप्त होने के बाद आजादीकी माँग करने का हक हासिल करते।

गां० : मोटे तौरपर इसी भावनाके साथ मैंने क्रिप्सके प्रस्तावकी ओर दृष्टि डाली थी। लेकिन जब प्रस्तावके पाठको देखा तो मुझे यकीन हो गया कि उसमें सहयोगकी कोई गुंजाइश नहीं है। मुख्य मुद्दा प्रतिरक्षाका था। युद्धके समय सरकारका प्रमुख कार्य प्रतिरक्षाका होता है। युद्धके वास्तविक संचालनमें हस्तक्षेप करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं वैसा करने योग्य ही नहीं हूँ। वैसे तो रणनीतिके मामलेमें रूजवेल्टको कोई खास प्रशिक्षण नहीं प्राप्त है, और यदि है भी तो आंशिक ही। या फिर हम चर्चिलको ही ले लें।

१ और २. चौकोर कोष्ठक साधन-सूत्रके ही अनुसार हैं।

लु० फि० : नहीं, आपको रूजवेल्टका उदाहरण देने में झिझकने की जरूरत नहीं है। मैं आपकी बात समझता हूँ।

गां० : बात यह है कि युद्ध-कालमें सेनापर असैनिक नियन्त्रण अवश्य होना चाहिए, हालाँकि असैनिक लोगोंको रणनीतिका उतना अच्छा प्रशिक्षण प्राप्त नहीं रहता जितना कि सैनिकोंको रहता है। यदि अंग्रेज बर्माके स्वर्ण पगोडेको इस वजहसे ध्वस्त करना चाहते हैं कि वह जापानी हवाई जहाजोंको आकर्षित करता है तो मेरा कहना है कि आप उसे ध्वस्त नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसा करके आप बर्माकी आत्मासे जुड़ी किसी चीजको ध्वस्त करेंगे। जब अंग्रेज आकर कहते हैं कि हमें हवाई अड्डा बनाने के लिए इन किसानोंको अमुक स्थानसे हटाना ही होगा और इन्हें आज ही यहाँसे हट जाना होगा तो मैं कहता हूँ कि "आपने यह बात कल क्यों नहीं सोची थी, ताकि इन गरीबोंको कहीं जाने का समय मिल जाता। वे जहाँ जायें, ऐसी जगहें आप क्यों नहीं ढूँढ़ते?"

लु० फि० : यदि आप चाहते हैं कि ऐसे मामलोंपर भारतीयोंका नियन्त्रण रहे तो मुझे विश्वास है कि जनरल वेवल इन्हें युद्ध-संचालनमें हस्तक्षेप मानते।

गां० : अंग्रेज हमें कैंटीन चलाने और लेखन-सामग्री छपवाने-जैसे कम महत्त्वके काम देना चाहते थे। यद्यपि मैं कोई रणनीतिज्ञ नहीं हूँ, फिर भी मेरा खयाल है कि हम कुछ ऐसे काम भी कर सकते थे जो युद्धमें सफलता दिलाने में अधिक सहायक होते। सुदूरपूर्वमें अंग्रेजोंकी इतनी खराबी हुई है कि हमारी मदद उनके काम आ सकती है।

लु० फि० : तब तो स्पष्ट है कि आपका असली जोर प्रतिरक्षापर था।

उन्होंने इस बातपर सहमति प्रकट की।

क्या नेहरू और कांग्रेसके अन्य नेताओंकी भी यही राय है?

गां० : मुझे आशा तो ऐसी ही है। मुझे उम्मीद है कि नेहरूकी भी यही राय होगी और मौलाना साहबकी भी यही दृष्टि होगी।

लु० फि० : दूसरे शब्दोंमें, क्रिप्सके प्रस्तावोंमें आपको कुछ भी अच्छा दिखाई नहीं दिया?

गां० : मुझे खुशी है कि आपने मुझसे यह सीधा और स्पष्ट सवाल पूछा। मुझे उन प्रस्तावोंमें कुछ भी अच्छा दिखाई नहीं दिया।

लु० फि० : क्या आपने क्रिप्ससे ऐसा कहा?

गां० : हाँ, मैंने क्रिप्ससे कहा कि "रूसमें तो आपने चमत्कार कर दिया था।"

लु० फि० : आपने ऐसा क्यों कहा? युद्धमें रूसको शामिल करनेवाले सर स्टैफर्ड क्रिप्स नहीं बल्कि एडोल्फ हिटलर नामक एक सज्जन थे।

गां० : लेकिन मेरा तथा हजारों भारतीयोंका यह विश्वास था कि वह चमत्कार क्रिप्सने ही किया।

लु० फि० : जब आपने ऐसा कहा तो क्या क्रिप्सने उसका विरोध नहीं किया?

गां० : नहीं, उन्होंने इस प्रशंसाको स्वीकार किया। हम लोगोंका खयाल था कि स्टालिनने रूसपर आक्रमण होने से पूर्व ब्रिटिश सहायता माँगी थी।

लु० फि० : नहीं, यह गलत है। आक्रमणके बाद रूसको मदद मिली और अब यह अमेरिका और ब्रिटेनसे अधिकाधिक मदद प्राप्त कर रहा है। लेकिन आक्रमणसे पहले स्टालिन, हिटलरके डरके कारण, ब्रिटेन या क्रिप्सके प्रति मित्रता नहीं दिखा सकता था।

गां० : बहरहाल, मैंने क्रिप्ससे यहाँ भी चमत्कार करने के लिए कहा, लेकिन वैसा करना उनके बसकी बात नहीं थी।

लु० फि० : मेरे खयालसे, इंग्लैण्डकी जनतामें एक व्यापक हलचल है। पिछली गर्मियोंमें मैं इंग्लैण्ड गया था और वहाँ नौ सप्ताह ठहरा था। वहाँके आम लोग यह निश्चय कर चुके हैं कि जिस प्रकारके लोगोंने युद्धके पूर्व उनपर शासन किया और उन्हें इस युद्धमें फँसाया, वैसे लोगोंका शासन युद्धके बाद उनपर नहीं चलेगा। क्रिप्स इस जन-विरोधकी अभिव्यक्ति व मूर्तरूप बन सकते हैं। अतः उनका पदारूढ़ होना उत्साह बढ़ानेवाली बात है।

गां० : हाँ, और उत्साह कम करनेवाली भी। क्योंकि मुझे इस बारेमें शक है कि क्रिप्समें कोई बड़े राजनेताके गुण हैं। हमें इससे बड़ी निराशा हुई है कि जो व्यक्ति जवाहरलालका दोस्त है और भारतीय मामलोंमें दिलचस्पी लेता रहा है, वह ऐसा मिशन लेकर यहाँ आया।

लॉर्ड सैंकीने एक बार मुझसे कहा था कि मुझे अपना खयाल रखना चाहिए। इसपर मैंने उनसे कहा कि "यदि मैंने अपना खयाल न रखा होता तो क्या आप समझते हैं कि मैं इस उम्रतक पहुँच पाता?" यह मेरा एक दोष है।

लु० फि० : मैं तो समझता था कि आपमें कोई दोष है ही नहीं।

गां० : नहीं, मुझमें बहुत दोष हैं। यहाँसे जाने से पहले ही आपको मेरे सैकड़ों दोषोंका पता लग जायेगा, और अगर न लगे तो उन्हें देखने में मैं आपकी मदद करूँगा। अब मैं आपको एक घंटा तो दे चुका हूँ।

लु० फि० : प्रथम विश्वयुद्धके समय आपने ब्रिटिश फौजमें सैनिकोंकी भरतीमें मदद दी थी। जब यह युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब आपने कहा था कि आप अंग्रेज सरकारको परेशान करनेवाला कोई काम नहीं करना चाहते। साफ है कि अब आपका वह दृष्टिकोण बदल गया है। ऐसा क्यों?

गां० : प्रथम विश्वयुद्धके दिनोंमें मैं दक्षिण आफ्रिकासे लौटा ही था। मेरे पैर जम नहीं पाये थे। मुझे अपनी स्थितिका ठीक पता नहीं था। इसका अर्थ यह नहीं है कि अहिंसामें मेरे विश्वासमें कोई कमी थी। लेकिन उसे हालातके मुताबिक विकसित होना था, और मुझे अपनी स्थितिका ठीक पता नहीं था। दोनों युद्धोंके बीच हमें अनेक अनुभव हुए। फिर भी सितम्बर १९३९ में वाइसरायके साथ थोड़ी बातचीतके बाद मैंने यह घोषणा कर दी थी कि कांग्रेसका आन्दोलन इस युद्धमें बाधा उत्पन्न नहीं करेगा। मैं कांग्रेस नहीं हूँ। असलमें तो मैं कांग्रेसमें भी नहीं हूँ। इस दलका न तो मैं सदस्य हूँ और न ही कोई पदाधिकारी। कांग्रेस मुझसे अधिक ब्रिटिश-विरोधी और युद्ध-विरोधी है, और कांग्रेसकी युद्ध-प्रयत्नमें हस्तक्षेप करने की इच्छाओं पर मुझे अंकुश रखना पड़ा है। अब मैं कुछ निष्कर्षोंपर पहुँचा हूँ। मैं अंग्रेजोंको

नीचा नहीं दिखाना चाहता। लेकिन अंग्रेजोंको यहाँसे चले जाना चाहिए। मेरा कहना यह नहीं है कि अंग्रेज जापानियोंसे बदतर हैं।

लु० फि० : बल्कि ठीक इससे उल्टा।

गां० : नहीं, मैं ठीक इससे उल्टा भी नहीं कहूँगा। लेकिन मैं एक मालिकके बदले दूसरा मालिक स्वीकार करना नहीं चाहता। इंग्लैण्डवाले यदि स्वेच्छासे और सुव्यवस्थित ढंगसे वापस लौट जायें तो इंग्लैण्डको इससे नैतिक लाभ प्राप्त होगा।

५ जून, १९४२

गांधी अन्दर आये और अभिवादन करके अपने बिस्तरपर लेट गये।

गां० : मैं आपके प्रहार लेटे-लेटे ही झेलूंगा।

एक मुसलमान स्त्रीने उनके पेटपर चढ़ाने के लिए गीली मिट्टीकी एक पट्टी दी। वे बोले :

यह मेरे भविष्यसे मेरा सम्पर्क स्थापित कर देती है। लगता है, आप मेरी बात समझे नहीं।

लु० फि० : ऐसा नहीं कि मैं समझा नहीं, लेकिन सोचा कि आप अभी इतने बूढ़े नहीं हुए कि मिट्टीमें मिल जाने का विचार करें।

गां० : क्यों नहीं, आपको, मुझे और हम सबको — कुछको एक सौ बीस वर्ष बाद ही सही, लेकिन सबको देर-सवेर मिट्टीमें मिलना ही है।

लु० फि० : जब मैं भविष्यके लिए किसी व्यवस्थाके बारेमें कोई सुझाव सुनता हूँ तो यह सोचने की कोशिश करता हूँ कि यदि वास्तवमें उसपर अमल किया गया तो वह कैसी रहेगी। मुझे भरोसा है कि आपका जो यह सुझाव है कि अंग्रेजोंको भारतसे हट जाना चाहिए उसके सिलसिलेमें आपने भी इसी तरह कुछ सोचकर रखा होगा। तो अंग्रेजोंकी क्रमिक वापसीकी आपके मनमें क्या तसवीर है?

गां० : पहले तो देशी नरेशोंको ही लीजिए। उनके पास अपनी-अपनी सेनाएँ हैं। वे लोग झंझट खड़ी कर सकते हैं। मैं भरोसेके साथ नहीं कह सकता कि अंग्रेजों के हट जाने के बाद यहाँ व्यवस्था रहेगी ही। अव्यवस्था भी फैल सकती है। मैंने कहा है कि "अंग्रेज सुव्यवस्थित तरीकेसे हट जायें और भारतको भगवानके भरोसे छोड़ दें।" आपको ऐसी काल्पनिक भाषा शायद अच्छी न लगे। आप उस स्थितिको अव्यवस्था ही कह लीजिए। बुरेसे-बुरा यही तो हो सकता है। लेकिन हम उसे रोकने की कोशिश करेंगे। शायद अव्यवस्था फैले ही नहीं।

लु० फि० : क्या भारतीय लोग एकदम कोई सरकार स्थापित नहीं कर सकते?

गां० : जी हाँ, यहाँकी राजनीतिक स्थितिमें तीन घटक हैं — देशी नरेश, मुसलमान लोग और कांग्रेस। ये सब मिलकर अस्थायी सरकारका निर्माण कर सकते हैं।

लु० फि० : सत्ता और पदोंका विभाजन किस अनुपातसे होगा?

गां० : कह नहीं सकता। सबसे अधिक शक्तिशाली इकाई होने के कारण कांग्रेस शायद सबसे बड़े भागका दावा करे। लेकिन इस बातका फैसला आपसी सहमतिसे किया जा सकता है।

लु० फि० : मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेजोंके लिए पूरी तरह भारत छोड़कर चले जाना सम्भव नहीं है। इसका अर्थ होगा भारतको जापानको भेंट कर देना। इसके लिए इंग्लैण्ड कभी राजी नहीं होगा और न संयुक्त राज्य अमेरिका इसे कभी पसन्द करेगा। यदि आपकी माँग यह है कि अंग्रेज अपना बोरिया-बिस्तर समेट-कर चले जायें तो आप एक असम्भव चीज माँग रहे हैं। यह निरर्थक प्रलाप है। कहीं आपका यह अभिप्राय तो नहीं है कि वे अपनी सेनाएँ भी हटा लें?

गां० : आप ठीक कहते हैं। मेरा ऐसा कोई अभिप्राय नहीं है। ब्रिटेन और अमेरिका तथा अन्य देश भी यहाँ अपनी सेनाएँ रख सकते हैं और भारतीय भूमिका उपयोग फौजी कार्रवाइयोंके अड्डेकी तरह कर सकते हैं। मैं जापानकी जीत नहीं चाहता। मैं युद्धमें धुरी शक्तियोंकी जीत नहीं चाहता। लेकिन मुझे विश्वास है कि जबतक भारतीय जनता आजाद नहीं हो जायेगी तबतक इंग्लैण्ड नहीं जीत सकता। जबतक ब्रिटेन भारतपर शासन करता रहेगा, तबतक वह अपेक्षाकृत कमजोर रहेगा और अपनी नैतिक स्थितिका बचाव नहीं कर सकेगा। मैं इंग्लैण्डको अपमानित नहीं करना चाहता।

लु० फि० : लेकिन, यदि मित्र-राष्ट्रोंको भारतका इस्तेमाल फौजी अड्डेकी तरह करना है तो उसमें और भी बहुत-सी बातें समाई हुई हैं। सेनाएँ हवामें नहीं रहा करतीं। उदाहरणार्थ, मित्र-राष्ट्रोंको रेलमार्गोंके अच्छे संगठनकी आवश्यकता होगी।

गां० : हाँ, हाँ, वे रेलोंका संचालन कर सकते हैं। वे बन्दरगाहोंमें भी, जहाँ उनकी रसद उतरेगी, व्यवस्था चाहेंगे। वे नहीं चाहेंगे कि बम्बई और कलकत्तामें दंगे-फसाद हों। इन मामलोंमें सहयोग और सम्मिलित प्रयासकी आवश्यकता होगी।

लु० फि० : क्या इस पारस्परिक सहयोगकी शर्तें मैत्रीके किसी सन्धिपत्रमें शामिल की जा सकती हैं?

गां० : हाँ, इंग्लैण्डके साथ हमारा लिखित इकरारनामा हो सकता है।

लु० फि० : अथवा ब्रिटेन, अमेरिका और दूसरे देशोंके साथ? आपने यह बात अभीतक क्यों नहीं कही? मैं कबूल करता हूँ कि जब मैंने सविनय अवज्ञा आन्दोलनके आपके इरादेके बारेमें सुना तो वह मुझे अच्छा नहीं लगा। मेरा विश्वास था कि इससे युद्ध-संचालनमें बाधा पड़ेगी। मेरा खयाल है कि इस लड़ाईको लड़ना और जीतना जरूरी है। यदि धुरी-राष्ट्र जीत गये तो मुझे संसारमें पूर्ण अन्धकार दिखाई देता है। मेरा खयाल है कि यदि हम जीत जायें तो एक बेहतर दुनिया बनाने का अवसर उपस्थित होगा।

गां० : इस बातसे मैं सहमत नहीं हो सकता। ब्रिटेन अकसर पाखण्डका आवरण ओढ़े रहता है। वह ऐसे वादे करता है जिन्हें बादमें नहीं निभाता। लेकिन यह बात मैं मानता हूँ कि यदि लोकतान्त्रिक राष्ट्र जीत जायें तो बेहतर मौका सामने आयेगा।

लु० फि० : यह इसपर निर्भर है कि युद्धके बाद शान्तिका स्वरूप क्या होता है।

गां० : यह इसपर निर्भर है कि आप युद्धके दौरान क्या करते हैं।

लु० फि० : मैं आपको यह बताना चाहूँगा कि अमेरिकी राजनेताओंको भारतकी आजादीके प्रति भारी सहानुभूति है। संयुक्त राज्य अमेरिकाकी सरकारने चर्चिलको वह भाषण देने से रोकने की काफी कोशिश की थी जिसमें उन्होंने यह घोषणा की थी कि अटलांटिक चार्टर भारतपर लागू नहीं होता। वाशिंग्टनमें कुछ महत्त्वपूर्ण लोग इस इरादेसे काम कर रहे हैं कि एक पैसिफिक चार्टरकी भी घोषणा की जाये। लेकिन उन्होंने मुझे बताया कि वे इस सम्बन्धमें ज्यादा प्रगति नहीं कर पाये हैं, क्योंकि इस तरहके चार्टरका प्रथम सिद्धान्त साम्राज्यवादका अन्त होगा, और जबतक भारतपर ब्रिटेनका आधिपत्य है, हम उस सिद्धान्तकी घोषणा कैसे कर सकते हैं?

गां० : भविष्यके लिए किये गये वादोंमें मेरी दिलचस्पी नहीं है। युद्धके बाद दी जानेवाली स्वाधीनतामें मेरी दिलचस्पी नहीं है। मैं तो अभी स्वाधीनता चाहता हूँ। उससे इंग्लैण्डको युद्ध जीतने में मदद मिलेगी।

लु० फि० : आपने अपनी यह योजना वाइसरायतक क्यों नही पहुँचाई है? वाइसरायको यह मालूम होना चाहिए कि मित्र-राष्ट्रोंकी फौजी कार्रवाईयोंके लिए अड्डेके रूपमें भारतका उपयोग किये जाने पर अब आपको कोई आपत्ति नहीं है।

गां० : किसीने मुझसे पूछा ही नहीं। अपने प्रस्तावित सविनय अवज्ञा आन्दोलनके बारेमें मैंने जनताको उसके लिए तैयार करने के उद्देश्यसे लिखा है। अगर इस बारेमें आप लिखित रूपसे कुछ प्रत्यक्ष प्रश्न पूछना चाहते हैं तो उनका जवाब मैं 'हरिजन' में दूंगा। प्रश्न संक्षेपमें ही पूछिएगा।

लु० फि० : यदि आप मेरे लेखनके बारेमें जानते तो आपको मालूम होता कि मैं हमेशा संक्षिप्त, प्रत्यक्ष और सार लिखने की ही कोशिश करता हूँ।

गां० : आपके आने से पहले जवाहरलालने आपके बारेमें मुझे बताया था। उनका कहना था कि आप ईमानदार हैं और आपका कोई निजी स्वार्थ नहीं है। आपके पास एकसाथ बहुत-से काम नहीं हैं। उन्होंने कहा था कि आप ठोस आदमी हैं और यह बात मैं आपको देखकर समझ सकता हूँ।

लु० फि० : हाँ, कमसे-कम शारीरिक रूपसे तो ठोस हूँ ही।

गां० : मैंने आपके साथ बेझिझक और खुलकर बात की है। मेरा खयाल है कि आप साहिब लोक हैं।

लु० फि० : क्या आपने "साहिब-ब्लोक" कहा? यह अंग्रेजी शब्द ब्लोक[1] तो नहीं है?

गां० : नहीं, "लोक" है। कुमारी कैथरिन मेयो यहाँ आई थीं। मैं उनके साथ अच्छी तरह पेश आया था, लेकिन बादमें उन्होंने केवल भद्दी बातें ही लिखीं। आप जानते हैं मैंने उन्हें क्या नाम दिया है?

लु० फि० : जी नहीं।

गांधी : नाली-निरीक्षक।[2]

१. स्पष्ट ही लुई फिशरने बातचीतमें इस शब्दकी अंग्रेजी वर्तनी बताई होगी।
२. देखिए खण्ड ३४, "नाली-निरीक्षककी रिपोर्ट", पृ० ५८४-९४।

लु० फि० : मैं एक बहुत गरीब परिवारमें पैदा हुआ हूँ। मैं जानता हूँ कि भूखे रहने का मतलब क्या होता है। मुझे दीनों और दलितोंसे हमेशा सहानुभूति रही है। बहुत-से अमेरिकी लोगोंके मनमें भारतके प्रति भारी दोस्तीकी भावना है। अतः मेरे खयालसे आपने हाल ही में अमेरिकाके बारेमें जो अमित्रतापूर्ण बातें कही हैं, वह बहुत दुःखद हैं।

गां० : वह जरूरी था। मैं उन्हें सदमा पहुँचाना चाहता था। मेरा खयाल है कि बहुत-से अमेरिकी लोगोंके मनमें मेरे प्रति स्नेहभाव है, और मैं उन्हें यह बताना चाहता था कि यदि वे दौलतकी पूजा करते रहेंगे तो बेहतर दुनियाका निर्माण नहीं कर पायेंगे। इस बातका खतरा है कि लोकतान्त्रिक देश धुरी-राष्ट्रोंको हराकर खुद ही जापान या जर्मनीकी तरह बुरे बन सकते हैं।

लु० फि० : बेशक, यह खतरा तो है। लेकिन कई लोग कहते थे कि यदि इंग्लैण्ड युद्धमें शामिल होगा तो वह फासिस्ट हो जायेगा। लेकिन वास्तवमें अब इंग्लैण्ड उससे भी अधिक लोकतान्त्रिक हो गया है जितना युद्धके पूर्व था।

गां० : नहीं, भारतमें तो हम यही देख रहे हैं कि ऐसी कोई बात नहीं है।

लु० फि० : कमसे-कम इंग्लैण्डमें तो है।

गां० : इंग्लैण्डमें हो और साम्राज्यमें न हो, ऐसा नहीं हो सकता। आपकी भावी नेकीपर भरोसा करके मैं नहीं चल सकता। मैं भारतकी आजादीके लिए दशकोंसे जद्दोजहद करता आ रहा हूँ। अब हम और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकते। फिर भी मुझे विश्वास है कि लोगोंमें हमारे प्रति सद्भावना मौजूद है।

भारतमें इंग्लैण्ड बारूदकी एक जिन्दा सुरंगपर बैठा हुआ है और वह सुरंग कभी भी विस्फोट कर सकती है। ब्रिटेनके खिलाफ यहाँ ऐसी तीव्र घृणा और रोष है कि उसे अपने युद्ध-प्रयत्नके लिए यहाँसे कोई मदद नहीं मिल सकती। भारतीय ब्रिटिश फौजमें इसलिए भरती होते हैं कि उन्हें रोटी चाहिए, लेकिन उनके दिलोंमें ऐसी कोई भावना नहीं है जिससे वे इंग्लैण्डकी मदद करने की इच्छा रखें।

लु० फि० : आपने भारतमें समस्याको हल करने के बारेमें आज जो सुझाव दिये हैं उन्हें यदि सार रूपमें पेश करने की अनुमति दें तो कहूँगा कि आपने क्रिप्सके प्रस्तावको उलट दिया है। क्रिप्सने आपको कुछ चीजें देने की पेशकश की और बाकी इंग्लैण्डके लिए रख छोड़ा। आप इंग्लैण्डके लिए कुछ चीजें देने को तैयार हैं और शेष भारतके लिए रख रहे हैं।

गां० : यह बिल्कुल ठीक है। मैंने क्रिप्सके प्रस्तावको उलट दिया है।

उनकी घड़ीपर मेरी नजर पड़ी तो पाया कि एक घंटा समाप्त होनेवाला है। मैंने कहा कि मैं आपसे अपनी पुस्तक 'मैन एण्ड पॉलिटिक्स', जो देवके पास है, पढ़ने के लिए कहने का साहस तो नहीं कर सकता, लेकिन आशा है आप उसके पन्ने उलट लेंगे। एक सचिवने मुझसे पूछा कि "पन्ने उलटने" से आपका क्या मतलब है।

गां० : इसका मतलब है सबसे पहले आखिरी पृष्ठ देखना, फिर पहला पृष्ठ और बादमें बीचका एक पृष्ठ।

लु० फि० : और फिर किताबको एक तरफ पटक देना और कहना कि बहुत अच्छी किताब है। अब मैं आपका घंटे-भरका समय, जो तय हुआ था, ले चुका हूँ।

गां० : हाँ, वह तो आप ले चुके हैं। तो अब जाकर टबमें बैठिए।

६ जून, १९४२

मैंने गांधीजी से पूछा कि आपके साप्ताहिक मौन-दिवसके पीछे कौन-सा सिद्धान्त निहित है।

गां० : सिद्धान्तसे आपका क्या मतलब है?

लु० फि० : मेरा मतलब है, उसके पीछे हेतु क्या है?

गां० : यह तब हुआ जब मेरी बड़ी दुर्दशा हो रही थी। मैं कठिन परिश्रम कर रहा था, लगातार सख्त गरमीमें रेलगाड़ियोंमें सफर करता था, अनेक सभाओंमें बोलता था, रेलमें तथा अन्य स्थानोंमें हजारों लोग मेरे पास आते थे, जो सवाल पूछते थे, अपनी बातें कहते थे और मेरे साथ प्रार्थना करना चाहते थे। मैं सप्ताहमें एक दिन आराम करना चाहता था। इसलिए मैंने एक मौन-दिवस तय कर लिया। यह सच है कि बादमें मैंने इसमें तरह-तरहके गुण बताये और उसे आध्यात्मिक जामा पहना दिया। लेकिन वास्तवमें हेतु सिर्फ यही था कि मैं एक दिनकी छुट्टी चाहता था।

मौनसे बहुत आराम मिलता है। वैसे अपने-आपमें मौन आरामदेह नहीं है, लेकिन जब आपको बातचीत करने की आजादी हो और आप बातचीत न करें तो उससे बड़ी राहत मिलती है—और चिन्तनका समय भी मिलता है।

मैंने गांधीजी से राजाजी द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमके बारेमें पूछा।

गां० : मैं नहीं जानता कि उनके प्रस्ताव क्या हैं। मेरे खयालसे यह दुःखद बात है कि वे मेरे खिलाफ दलील दें और मैं उनके साथ बहस करूँ। इसलिए मैंने यह कह दिया है कि हम लोगोंके बीच बहस स्थगित हो जानी चाहिए। लेकिन असलमें मुझे मालूम ही नहीं है कि राजाजी के क्या प्रस्ताव हैं।

लु० फि० : उनका कार्यक्रम सार रूपमें क्या यह नहीं है कि हिन्दू-मुसलमान आपसमें सहयोग करें और साथ-साथ कार्य करते हुए सम्भवतः शान्तिमय सहयोगका तरीका खोज निकालें।

गां० : हाँ, लेकिन यह असम्भव है। जबतक तीसरी शक्तिके रूपमें इंग्लैण्ड यहाँ मौजूद है, तबतक साम्प्रदायिक मतभेद हमें परेशान करते ही रहेंगे। बहुत पहले लॉर्ड मिंटोने जो उस समय वाइसराय थे, यह घोषणा की थी कि अंग्रेजोंको भारतमें अपना आधिपत्य बनाये रखने के लिए हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक-दूसरेसे अलग रखना होगा।

मैंने गांधीजी से कहा कि मैंने मिंटोका वह कथन पढ़ा है।

गां० : तबसे अंग्रेजी शासनका यही सिद्धान्त रहा है।

लु० फि० : मुझे बताया गया है कि १९३७, १९३८ और १९३९ में जब प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंका शासन था तब उन लोगोंने मुसलमानोंके खिलाफ भेदभाव करता था।

गां० : उन प्रान्तोंके अंग्रेज गवर्नरोंने यह साक्षी दी है कि बात ऐसी नहीं थी।

लु० फि० : लेकिन क्या यह सत्य नहीं है कि संयुक्त प्रान्तमें चूँकि कांग्रेसको, अपनी जीतका भरोसा नहीं था, इसलिए उसने मुसलमानोंके साथ चुनाव समझौता किया और बादमें भारी विजय प्राप्त करने पर उसने मुसलमानोंके साथ संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनाने से इनकार कर दिया?

गां० : नहीं, संयुक्त प्रान्तमें कांग्रेस द्वारा गठित सरकारमें चार मुसलमान मन्त्री थे। उसमें मुस्लिम लीगका कोई प्रतिनिधि नहीं था, किन्तु मुसलमान थे। हमने हमेशा मुसलमानोंके साथ मिलकर काम करने की कोशिश की है। कहा जाता है कि मौलाना हमारे हाथकी कठपुतली हैं। सचाई यह है कि वे कांग्रेसके अधिनायक हैं। वे उसके अध्यक्ष हैं। लेकिन क्रिप्सके प्रस्तावोंने हिन्दुओं और मुसलमानोंको आपसमें पहलेसे भी अधिक विभाजित कर दिया है। ब्रिटिश सरकारकी मेहरबानीसे दोनों कौमोंके बीचकी खाई और भी चौड़ी हो गई है।

लु० फि० : यह भी दुःखकी बात है कि कांग्रेसी नेता और मुस्लिम लीगी नेता क्रिप्ससे बातचीत करने दिल्ली आये और इन नेताओंने क्रिप्ससे तो बातचीत की, लेकिन आपसमें एक-दूसरेसे नहीं की।

गां० : यह केवल दुःखद ही नहीं, बल्कि शर्मनाक बात थी। लेकिन इसमें दोष मुस्लिम लीगका था। युद्ध छिड़ने के कुछ ही दिन बाद वाइसरायने हमें मिलने के लिए दिल्ली बुलाया था। मैं और राजेन्द्रप्रसाद कांग्रेसके प्रवक्ता बनकर गये थे और श्री जिन्ना मुस्लिम लीगके। मैंने जिन्नासे कहा था कि वाइसरायसे मिलने के पहले हम आपसमें सलाह-मशविरा कर लें ताकि हम एक होकर अंग्रेज सरकारका सामना कर सकें। दिल्लीमें मिलने की बात तय हो गई, लेकिन जब मैंने यह सुझाव रखा कि हम दोनों भारतकी आजादीकी माँग करें तो वे बोले, "मैं आजादी नहीं चाहता।" हम लोगोंमें सहमति नहीं हो सकी। मैंने अनुरोध किया कि हम वाइसरायके यहाँ एक साथ जाकर कमसे-कम एकताका प्रदर्शन तो करें। मैंने उनसे कहा कि आप मेरी कारमें चल सकते हैं या मैं आपकी कारमें। उन्होंने अपनी कारमें मेरा जाना मंजूर किया। लेकिन हम वाइसरायके सामने अलग-अलग स्वरोंमें बोले और हमने अपने जुदा-जुदा नजरिये रखे।

वास्तविक जीवनमें हमें दो राष्ट्रोंमें विभाजित करना असम्भव है। हम दो राष्ट्र नहीं हैं। अपने परिवारके काफी पीछेके इतिहासकी ओर देखने पर हर मुसलमान को अपना हिन्दू मूल मिल जायेगा। यहाँका हर मुसलमान हिन्दू है, जिसने इस्लाम ग्रहण कर लिया है। धर्म-परिवर्तनके कारण राष्ट्रीयताका निर्माण नहीं हो जाता। यदि कोई प्रभावशाली ईसाई पादरी हम सबको ईसाई बना ले तो यदि हम वास्तवमें दो राष्ट्र हों तो हम एक राष्ट्र नहीं बन जायेंगे। इसी प्रकार भारतमें दो धर्म होने से दो राष्ट्रीयताएँ नहीं बन जातीं। यूरोप ईसाई धर्म अनुयायी है, लेकिन जर्मनी और इंग्लैण्डकी भाषा और संस्कृतिमें इतनी समानता होने के बावजूद दोनों देश एक-दूसरेकी जानके गाहक बने हुए हैं। भारतमें हमारी एक समान संस्कृति है। उत्तरमें हिन्दी और उर्दू हिन्दू-मुसलमान दोनों जातियोंके लोग समझते हैं। मद्रासके हिन्दू और मुसल-

मान तमिल बोलते हैं, और बंगालके बंगाली। वे न तो हिन्दी बोलते हैं और न उर्दू। जब भी साम्प्रदायिक दंगे होते हैं तो वे हमेशा गाय या धार्मिक जुलूसोंको लेकर उठी वारदातोंके कारण होते हैं। इसका मतलब यही है कि हमारी पृथक् राष्ट्रीयताओंके कारण नहीं बल्कि हमारे अन्ध-विश्वासोंके कारण झगड़े पैदा होते हैं।

लु० फि० : कैरो[1] और जेंकिन्सने[2] मुझे बतलाया था कि गाँवोंमें कोई साम्प्रदायिक मतभेद नहीं हैं, और मैंने अन्य लोगोंसे भी सुना है कि गाँवोंमें दोनों कौमोंके बीच सम्बन्ध शान्तिपूर्ण हैं। यदि ऐसा ही है तो यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है, क्योंकि भारतके नब्बे प्रतिशत लोग गाँवोंमें ही रहते हैं।

गां० : बात ऐसी ही है, और इसीसे सिद्ध होता है कि लोग विभाजित नहीं हैं। इससे सिद्ध होता है कि राजनीतिज्ञ हमें विभाजित करते हैं।

लु० फि० : नई दिल्लीमें मेरे होटलके बारके एक मुसलमान नौकरने — हालाँकि वह मुस्लिम लीगका सदस्य और पाकिस्तानका हिमायती है — मुझे बताया कि कौमी दंगे हमेशा वहीं शुरू होते हैं जहाँ मुसलमान अल्पसंख्यक हैं और जहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक हैं वहाँ दंगे कभी नहीं होते।

गां० : फिशर, आप बहुत थोड़े समयसे यहाँ हैं। आप हर चीजको देख-समझ नहीं सकते। लेकिन यदि छानबीन करने पर आपको मालूम हो कि हम गलतीपर हैं या दोषी हैं तो यह बात पूरे जोरसे कहिएगा।

ये मेरे मरीज हैं। यह मेरी एक सबसे अच्छी मरीज है।

लु० फि० : क्या इसे डॉक्टरपर छोड़ देना बेहतर नहीं होगा?

गां० : नहीं, इस सबमें नीम-हकीमी बहुत ज्यादा है। यह मेरी मरीज नहीं, मेरा दिल बहलाने का साधन है। इस बच्चीका पिता ब्रिटिश सेनामें सार्जंट था और पश्चिमोत्तर सीमापर तैनात था। वहाँ उसे भारतीयोंपर गोली चलाने का आदेश दिया गया। उसने गोली चलाने से इनकार कर दिया। इस कारण उसे सोलह वर्षकी कैद की सजा दी गई। उसने छः वर्ष तक सजा भुगती। लेकिन उसकी रिहाईके लिए इतनी अधिक याचिकाएँ पेश की गईं कि दो वर्ष पूर्व उसे छोड़ दिया गया। आजकल वह हमारे साथ यहीं रह रहा है।

फिशर, मुझे अपना कटोरा दीजिए। आपको थोड़ी-सी भाजियाँ दूँ। आपको भाजियाँ अच्छी नहीं लगतीं?

लु० फि० : इन भाजियोंका स्वाद मुझे अच्छा नहीं लगता।

गां० : अच्छा तो इसमें खूब नमक और नींबू मिला लीजिए।

लु० फि० : आप चाहते हैं कि मैं स्वाद मार दूँ?

गां० : नहीं, मैं तो चाहता हूँ कि आप उसे बढ़ायें।

लु० फि० : आप इतने अहिंसक हैं कि स्वादको भी मारना नहीं चाहते हैं।

१. ओल्फ कर्कपैट्रिक कैरो, विदेश विभागके सचिव, जिन्होंने कई वर्ष पंजाबमें ब्रिटिश सरकारके अधिकारीके रूपमें भी काम किया था।

२. सर इवन जेंकिन्स, आपूर्ति विभागके सचिव

गां० : यदि लोग केवल इसी चीजको मारते तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होती।

मुझे पसीना आ रहा था, सो मैंने कहा : अगली बार जब मैं भारतमें आऊँ... तो आप या तो सेवाग्राममें वातानुकूलनकी व्यवस्था करवाकर रखें या वाइसरायके भवनमें रहें।

गां० : बहुत अच्छा।

आज तीसरे पहर गांधीजी के साथ अपनी भेंट-वार्त्ता मैंने उन्हें इस उद्धरणको[1] पढ़कर सुनाने के साथ आरम्भ की। मैंने कहा कि यह चीज आज सुबहके आपके इस कथनकी पुष्टि करती है कि अलगावमें मुसलमान जनताकी रुचि अपने नेताओंकी अपेक्षा बहुत कम है।

गां० : बेशक।

लु० फि० : लेकिन मुसलमान नेताओंके भयमें कितनी सचाई है? शायद वे मुसलमान जनताकी अपेक्षा यह बात अधिक अच्छी तरह समझते हों कि हिन्दू लोग अपना प्रभुत्व जमाना चाहते हैं। क्या आप बिलकुल निष्पक्ष दृष्टिसे यह कह सकते हैं कि हिन्दुओंने हावी होने की कोशिश नहीं की है?

गां० : जहाँ-तहाँ कुछ व्यक्ति शायद ऐसे अयोग्य विचार दिलमें रखते हों। लेकिन मैं यह कह सकता हूँ कि कांग्रेसी आन्दोलन और आम हिन्दूमें प्रभुत्व जमाने की वृत्ति नहीं है। प्रान्तोंको व्यापक स्वायत्तता मिलनी चाहिए। मैं खुद हिंसा और प्रभुत्वके खिलाफ हूँ। मैं ऐसी शक्तिशाली सरकारमें विश्वास नहीं रखता जो अपने नागरिकोंका या अन्य राज्योंका उत्पीड़न करे। फिर भला मैं प्रभुत्व जमाने की इच्छा कैसे कर सकता हूँ? इस तरहका आरोप तो नेताओं द्वारा अपने लोगोंपर अधिक प्रभाव कायम करने के लिए ईजाद किया गया एक नारा ही है।

लु० फि० : ऊँचे स्थानोंपर आसीन अंग्रेजोंने मुझे बताया है कि कांग्रेस बड़े-बड़े व्यापारियोंके हाथोंमें है और बम्बईके मिल-मालिक गांधीको सहायता देते हैं और गांधी जितना धन माँगते हैं उतना वे उन्हें दे देते हैं। इन बातोंमें कहाँतक सचाई है?

गां० : दुर्भाग्यवश यह बात सच है। कांग्रेसके पास अपना काम चलाने के लिए काफी पैसा नहीं है। शुरूमें हमने सोचा था कि प्रत्येक सदस्यसे चार आना वार्षिक चन्दा वसूल करके काम चलायें, परन्तु इससे काम नहीं चला।

लु० फि० : कांग्रेसके बजटका कितना अंश धनवान भारतीयोंसे मिलता है?

१. 'इंडियन स्टैच्युटरी कमीशन रिपोर्ट', जिल्द १ से, जिसमें लिखा था : सिन्धके हिन्दू अल्पसंख्यकोंमें ऐसी भावना है कि ब्रिटिश कमिश्नरको बहुत ज्यादा आजादी दी गई है जब कि मुसलमानोंकी ओरसे बम्बईसे अलग कर दिये जाने की जगजाहिर माँग पेश की जा रही है। इस माँगको आम मुसलमानोंके घरों या सिन्धके मुसलमान किसानोंसे उतनी ताकत नहीं मिल रही है जितनी कि देश-भरके मुसलमानोंके विचारको दिशा देनेवाले उन नेताओंसे मिल रही है जिन्हें बलूचिस्तान, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और पंजाबके मुसलमान-बहुल प्रान्तोंसे लगे एक नये मुसलमान प्रान्तके गठनका विचार स्वभावतः इस दृष्टिसे बहुत जँचता है कि हिन्दुओंके प्रभुत्वके खतरेके खिलाफ वह एक दुर्गका काम करेगा।

गां० : लगभग पूराका-पूरा। उदाहरणके लिए, इस आश्रममें ही हम आजकी अपेक्षा बहुत अधिक गरीबीसे रह सकते थे और कम पैसा खर्च कर सकते थे। परन्तु ऐसा नहीं होता और इसके लिए पैसा हमारे धनवान मित्रोंके पाससे आता है।

लु० फि० : कांग्रेसको पैसा धनवान लोगोंसे मिलता है, इसका असर क्या कांग्रेस की राजनीतिपर नहीं पड़ता? क्या इससे धनवानोंके प्रति उसका एक तरहका नैतिक दायित्व नहीं बन जाता?

गां० : इससे एक अनकहा ऋण तो बन जाता है, लेकिन वास्तवमें धनवानोंके विचारोंसे हम बहुत कम प्रभावित होते हैं। ये लोग पूर्ण स्वाधीनताकी हमारी माँगसे कभी-कभी डर जाते हैं।

लु० फि० : पिछले दिनों 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में इस आशयका एक समाचार मैंने पढ़ा था कि बिड़लाने जीवन-निर्वाहके बढ़े व्ययकी आपूर्तिके लिए अपनी कपड़ेकी मिलों में वेतन बढ़ा दिये हैं। समाचारपत्रमें आगे लिखा है कि अन्य किसी मिल-मालिकने इतना अधिक नहीं किया है। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' तो कांग्रेसका समाचारपत्र है।

गां० : नहीं, बिड़ला पूरी तरह उसके मालिक हैं। मैं जानता हूँ, क्योंकि मेरा सबसे छोटा पुत्र उसका सम्पादक है। ये तथ्य सही हैं, लेकिन उनका कांग्रेससे कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर भी आप ठीक ही कहते हैं कि धनवान संरक्षकोंपर कांग्रेसकी निर्भरता 'दुर्भाग्यपूर्ण' है। मैंने 'दुर्भाग्यपूर्ण' शब्दका प्रयोग किया है। उससे हमारी नीतिमें कोई विकृति नहीं आती।

लु० फि० : क्या इसका एक परिणाम यह नहीं है कि सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओंको लगभग छोड़ दिया गया है और सारा जोर राष्ट्रीयतापर ही दिया जा रहा है?

गां० : नहीं, कांग्रेसने समय-समयपर, खासकर पण्डित नेहरूके प्रभावमें, आर्थिक नियोजनके लिए प्रगतिशील सामाजिक कार्यक्रमों तथा योजनाओंको अपनाया है। मैं उन्हें इकट्ठा करवाकर आपको दूँगा।

लु० फि० : लेकिन क्या यह सही नहीं है कि ये सब सामाजिक परिवर्त्तन उस वक्तके लिए सोचे गये हैं जब आजादी मिल चुकी होगी?

गां० : नहीं। जब प्रान्तोंमें कांग्रेसका शासन था (१९३७-३९ में), उन दिनों कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंने कई सुधार आरम्भ किये थे, जिन्हें बादमें ब्रिटिश शासनने रद्द कर दिया है। हमने गाँवों, स्कूलों तथा दूसरे क्षेत्रोंमें भी सुधार आरम्भ किये थे।

लु० फि० : मुझे बताया गया है और मैंने साइमन रिपोर्टमें ऐसा पढ़ा भी है कि भारतका एक बड़ा अभिशाप यहाँके गाँवका साहूकार है, जिसके कर्जमें किसान अकसर जिन्दगी-भर डूबा रहता है। यूरोपीय देशोंमें परोपकारी लोगोंने और सरकारने ऐसी स्थितिमें सूदखोर साहूकारोंको समाप्त करने के लिए भूमि बैंक स्थापित किये हैं। क्यों नहीं आपके कुछ धनवान मित्र शुद्ध व्यावसायिक आधारपर भूमि बैंक खोल देते? फर्क सिर्फ इतना ही होगा कि उन्हें सालाना चालीससे सत्तर प्रतिशतके बजाय दो या तीन प्रतिशत ब्याज मिलेगा। उनका धन सुरक्षित रहेगा, वे थोड़ा-बहुत लाभ

भी कमा लेंगे और अपने देशवालों की सहायता भी करेंगे।

गां० : यह असम्भव है। बिना सरकारी कानूनके ऐसा नहीं किया जा सकता।

लु० फि० : क्यों?

गां० : क्योंकि किसान कर्जकी रकम वापस नहीं लौटायेंगे।

लु० फि० : लेकिन किसान यह तो समझेगा कि अपनी सारी जिन्दगी साहूकारके हाथ गिरवी रखने के बजाय तीन प्रतिशत ब्याजपर लिया गया पैसा चुका देना बेहतर है?

गां० : साहूकारीकी प्रथा प्राचीन कालसे चली आ रही है और गाँवोंमें इसकी जड़ें गहरी जमी हुई हैं। आप जो बात कह रहे हैं वह हमारी आजादीसे पहले नहीं की जा सकती।

लु० फि० : स्वतन्त्र भारतमें क्या होगा? किसानोंकी दशा सुधारने के लिए आपका क्या कार्यक्रम होगा?

गां० : किसान लोग भूमि ले लेंगे। हमें उनसे लेने को कहना नहीं पड़ेगा। वे अपने-आप ले लेंगे।

लु० फि० : क्या जमींदारोंको मुआवजा दिया जायेगा?

गां० : नहीं, आर्थिक दृष्टिसे यह असम्भव होगा। आप देख ही रहे हैं कि अपने करोड़पति मित्रोंके प्रति हमारी एहसानमन्दी हमें इस तरहकी बातें कहने से नहीं रोकती। गाँव अपना जीवन अपने तरीकेसे जीनेवाली एक स्वशासी इकाई बन जायेगा।

लु० फि० : लेकिन एक राष्ट्रीय सरकार तो अवश्य होगी।

गां० : नहीं।

लु० फि० : लेकिन रेलमार्गों और टेलीग्राफ आदिका संचालन करने के लिए राष्ट्रीय प्रशासनकी आवश्यकता तो जरूर होगी।

गां० : यदि भारतमें रेलमार्ग न रहें तो मुझे कोई दुःख नहीं होगा।

लु० फि० : लेकिन उससे किसानोंको कष्ट पहुँचेगा। किसानको शहरी मालकी जरूरत पड़ती है और उसे अपना उत्पादन देशके अन्य भागोंमें तथा विदेशोंमें भेजना होगा। गाँवोंमें बिजली तथा सिंचाईकी आवश्यकता है। कोई भी अकेला गाँव जल विद्युत तापघर या सिन्धके सक्खर-बाँध जैसी सिंचाई प्रणाली तैयार नहीं कर सकता।

गां० : और उससे भारी निराशा ही हाथ लगी है। उस बाँधके कारण सारा प्रान्त कर्जमें डूब गया है।

लु० फि० : यह तो मुझे मालूम है, लेकिन उससे बहुत सारी नई जमीनपर पैदावार होने लगी है। वह बाँध जनताके लिए वरदान साबित हुआ है।

गां० : मैं जानता हूँ कि मेरी ऐसी रायके बावजूद केन्द्रीय सरकार बनेगी। लेकिन मैं पश्चिममें स्वीकृत लोकतान्त्रिक शैली और उसमें निहित सांसदोंके चुनावके लिए सार्वजनीन [वयस्क] मताधिकारकी प्रणालीमें विश्वास नहीं करता।

लु० फि० : आप भारतमें क्या चाहेंगे?

गां० : भारतमें सात लाख गाँव हैं। हर गाँवकी व्यवस्था उसके नागरिकोंकी इच्छाके अनुरूप सबके मत लेकर की जायेगी। तब ४० करोड़के बजाय सात लाख

मत होंगे। दूसरे शब्दोंमें हर गाँवको एक मत प्राप्त होगा। कई गाँव मिलकर जिला स्तरके प्रशासनका चुनाव करेंगे, जिला स्तरके प्रशासन प्रान्तीय प्रशासनका निर्वाचन करेंगे और ये प्रान्तीय प्रशासन अपना एक प्रधान चुनेंगे, जो मुख्य राष्ट्रीय कार्यकारी होगा।

लु० फि० : यह तो बहुत-कुछ सोवियत पद्धति-जैसा होगा।

गां० : यह मुझे नहीं मालूम था; लेकिन हो तो उसपर मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

लु० फि० : श्री गांधी, अब मैं आपसे कांग्रेसके विषयमें एक दूसरा प्रश्न पूछूंगा। कांग्रेसपर यह आरोप लगाया गया है कि वह एक सर्वसत्तावादी संस्था है। शुस्टर और विंट नामक दो अंग्रेजोंकी लिखी एक नई पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसका नाम है 'इंडिया एण्ड डेमोक्रेसी'। उसमें यह आरोप लगाया गया है कि १९३९ में प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलोंने अपना त्यागपत्र अपनी इच्छासे नहीं, बल्कि जिलों [साधन-सूत्रानुसार] के कांग्रेसी अधिनायकोंके आदेशसे दिया था।

गां० : यह बकवास है। क्या आप सोचते हैं कि सारे सवाल कॉमन्स सभामें तय किये जाते हैं, या कि दलकी बैठकों और लन्दनके क्लबोंमें फैसले किये जाते हैं? कांग्रेसके सदस्य अपने अधिकारियोंका चुनाव करते हैं और मन्त्रिगण, जो कांग्रेसके सदस्य होते हैं, कांग्रेसके सिद्धान्तोंका पालन करते हैं। ब्रिटेनमें लोकतन्त्र किस प्रकार कार्य करता है, इस बारेमें सर सैम्युअल होरने मुझे कुछ बातें बताई हैं।

लु० फि० : लगता है, वे आपके प्रिय अंग्रेज राजनेता हैं।

इसपर हम लोग खूब हँसे।

गां० : उनके बारेमें मुझे कमसे-कम इतना तो मालूम रहता है कि उनकी स्थिति क्या है? संसदीय लोकतन्त्र भ्रष्टाचारसे मुक्त नहीं होता। यह बात आपको मालूम होनी चाहिए, क्योंकि टैमनी हॉल और शिकागोके मेयरके काण्ड तो आपको याद हैं। मैं यह नहीं समझता कि स्वतन्त्र भारत दुनियाके अन्य देशोंकी तरह ही कार्य करेगा। हमारे पास देने के लिए अपनी अलग पद्धतियाँ हैं।

मैंने सुभाषचन्द्र बोसके बारेमें, जो भागकर धुरी-देशोंमें चले गये हैं, कुछ देर बात करनी चाही। मैंने गांधीसे कहा कि जब मैंने यह सुना कि आपने एक हवाई-दुर्घटनामें बोसकी मृत्यु हो जाने का समाचार पाकर, जो बादमें गलत सिद्ध हुआ, बोसकी माताको संवेदना-संदेश भेजा है तो मुझे काफी धक्का लगा।

गां० : क्या आपको इस बातसे धक्का लगा कि मैंने एक ऐसी खबरपर प्रतिक्रिया व्यक्त की जो बादमें गलत सिद्ध हुई?

लु० फि० : नहीं, बल्कि इस बातसे कि आपने एक ऐसे आदमीकी मृत्युपर शोक प्रकट किया जो फासिस्ट जर्मनी जाकर उसके साथ मिल गया।

गां० : मैंने वैसा इसलिए किया कि बोसको मैं देशभक्तोंका सिरमौर मानता हूँ। वे गुमराह हो सकते हैं। मेरे खयालसे वे गुमराह हो भी गये हैं। मैंने अकसर बोसका विरोध किया है। दो बार उन्हें कांग्रेसका अध्यक्ष नहीं बनने दिया। अन्तमें वे अध्यक्ष बने, हालाँकि मेरे विचार उनके विचारोंसे अकसर भिन्न रहे। लेकिन मान लीजिए वे भारतके लिए सहायता माँगने अमेरिका या रूस चले जाते तो यह क्या कुछ बेहतर होता?

लु० फि० : जी हाँ, अवश्य होता। आप मददके लिए किसके पास जाते हैं, इससे फर्क तो पड़ता ही है।

गां० : मैं भारतको आजाद कराने के लिए किसीकी मदद नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि भारत अपना बचाव स्वयं करे।

लु० फि० : इतिहासके पूरे दौरमें राष्ट्रों और व्यक्तियोंने बाहरी राष्ट्रोंकी मदद की है। ब्रिटेनसे आजादी हासिल करनेमें अमेरिकाको मदद देने लाफायेत फ्रान्ससे गये थे। स्पेनके गणतन्त्रको बचाने के लिए हजारों अमेरिकियों और अन्य विदेशियोंने वहाँ अपनी जान दे दी।

गां० : व्यक्तियोंने ऐसा जरूर किया है। लेकिन अमेरिका इंग्लैण्डका मित्र है और इंग्लैण्डने हमें गुलाम बना रखा है। मुझे अभीतक यह भरोसा नहीं हो पाया है कि प्रजातान्त्रिक देश फासिस्ट देशोंको हराकर एक बेहतर दुनियाका निर्माण करेंगे। हो सकता है कि वे भी फासिस्टों-जैसे ही हो जायें।

लु० फि० : जैसा मैंने उस दिन आपसे कहा था कि इसी बातपर हम आपसमें सहमत नहीं हो सकते। जब मैं देखता हूँ कि भारतीय सामाजिक समस्याओंको छोड़कर अपना सारा ध्यान स्वतन्त्रताके सवालोंपर केन्द्रित किये हुए हैं तो मुझे निराशा होती है और दोष नजर आता है। बोस एक युवा पुरुष हैं और उनमें नाटकीय कार्य करने की प्रवृत्ति है। यदि वे जर्मनीमें फासीवादके प्रलोभनमें फँस गये और भारत लौटकर उसे आजादी तो दिला दें, लेकिन साथ ही उसे फासिस्ट बना दें तो मेरे खयालसे आप जिस अवस्थामें ब्रिटिश शासनमें हैं उससे भी बुरी अवस्थामें होंगे।

गां० : ब्रिटिश शासनमें भी फासीवादके प्रबल तत्त्व मौजूद हैं, और इन तत्त्वोंको हम भारतमें हर दिन देखते और महसूस करते हैं। यदि अंग्रेज इस लड़ाईको जीतने के अपने अधिकारको प्रमाण देकर सिद्ध करना चाहते हैं और दुनियाको बेहतर बनाना चाहते हैं तो उन्हें भारतमें सत्ता त्यागकर अपनी शुद्धि करनी चाहिए। आपके राष्ट्रपति चार स्वतन्त्रताओंकी बात करते हैं। क्या इनमें स्वतन्त्र होने की स्वतन्त्रता शामिल है? हमें जर्मनी, इटली और जापानमें प्रजातन्त्रके लिए लड़नेको कहा जाता है। लेकिन जब खुद हमारे पास प्रजातन्त्र नहीं है तब भला हम उसके लिए वहाँ कैसे लड़ सकते हैं?

७ जून, १९४२

गांधीने मुझसे पूछा कि मुझे कैसी नींद आई। मैंने उन्हें बताया कि मुझे बहुत अच्छी नींद आई। मेरे यह पूछने पर कि उन्हें कैसी नींद आई, उन्होंने कहा कि वे प्राय: साढ़े नौ से साढ़े चार बजेतक सोते हैं।

मैंने पूछा : बिना रुकावटके?

गां० : नहीं, बीचमें दो-तीन बार बहुत थोड़ी देरके लिए नींद खुलती है, लेकिन मुझे फिर नींद आने में कोई मुश्किल नहीं होती। फिर मैं हर रोज दोपहर बाद आधे घंटेतक सो लेता हूँ।

मैंने उन्हें बताया कि चर्चिल भी यही करते हैं।

गां० : मैंने सुना है कि यूरोपमें दिनोंदिन इसका अधिकाधिक चलन होता जा रहा है। खासकर वृद्धावस्थामें यह बहुत जरूरी है।

मैंने उन्हें बताया कि कहते हैं, रूजवेल्ट विस्तरमें जाते ही सो जाते हैं। गांधीजी ने मुझसे रूजवेल्टके स्वास्थ्यके बारेमें पूछताछ की और उसके बाद श्रीमती रूजवेल्टके बारेमें बताने के लिए कहा।

गां० : तो अमेरिकी राजनीतिपर उनका प्रभाव है?

नई नीति[1] (न्यू डील)के तहत सामाजिक विधान, मजदूर संघोंके संगठन और सामाजिक विचार-धारामें हुई प्रगतिके बारेमें मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की। मैंने इस बातपर जोर दिया कि अमेरिकी सरकार विदेशी सरकारोंको धन दे रही है और युद्धोपयोगी आन्तरिक उद्योगोंके लिए पैसा दे रही है। इस वित्तीय सहायताकी तुलना मैंने प्रथम महायुद्धके समय विदेशी सरकारों और अमेरिकी उद्योगोंको अमेरिकियों द्वारा निजी तौरपर दी गई वित्तीय सहायतासे की।

गां० : हब्शियोंकी क्या स्थिति है?

मैंने उत्तर और दक्षिणमें रहनेवाले हब्शियोंकी दशाके बारेमें उन्हें बताया। मैंने कहा कि मैं यह तो नहीं कहना चाहता कि हब्शियोंके साथ जैसा व्यवहार किया जाता है वह ठीक है, लेकिन मुझे लगता है कि वह उतना क्रूरतापूर्ण नहीं है जितनी कि भारतमें प्रचलित अस्पृश्यता।

गां० : आप जानते ही हैं कि मैंने कई सालोंसे अस्पृश्यताके खिलाफ लड़ाई लड़ी है। यहाँ आश्रममें हमारे साथ कई अछूत रहते हैं। आश्रममें ज्यादातर काम अछूत ही करते हैं और आश्रममें आनेवाले किसी भी हिन्दूको अछूतों द्वारा दिया गया भोजन स्वीकार करना पड़ता है और उनके साथ रहना पड़ता है।

मैंने पूछा कि अछूतोंके साथ होनेवाले भेदभावमें क्या कुछ कमी आई है।

गां० : अवश्य आई है, लेकिन अभी भी स्थिति बहुत खराब है।

लु० फि० : वरदाचारी[2]-जैसे अत्यन्त विचारशील और अन्य दृष्टियोंसे प्रगतिशील लोगोंने मेरे साथ हुई बातचीतमें इस भेदभावको उचित बताने की कोशिश की है। लगता है, इसका मूल पुनर्जन्ममें विश्वास है, जो स्पष्ट ही हिन्दू धर्मका अंग है। क्या आप पुनर्जन्ममें विश्वास करते हैं?

गां० : अवश्य करता हूँ। मैं यह नहीं कबूल कर सकता कि शरीरके साथ आत्मा भी मर जाती है। जब आदमीका घर नष्ट हो जाता है तो वह दूसरा घर बनाता है। जब उसकी काया नष्ट हो जाती है तब उसकी आत्मा दूसरी काया प्राप्त कर लेती है। इसी तरह मैं इस कल्पनाको भी नहीं मानता कि जब शरीर जमीनमें दफन कर दिया जाता है तब आत्मा अपने गुनाहोंका जवाब देने के लिए कयामतके

१. अमेरिकाको विश्वव्यापी मन्दीसे उबारने के लिए और उसकी लड़खड़ाती सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाको सुदृढ़ करने के लिए रूजवेल्ट द्वारा अपनाई गई नीति

२. भारतके सर्वोच्च न्यायालयके एक न्यायाधीश जो ऊँची ब्राह्मण जातिके थे

दिनतक इंतजार करती रहती है। नहीं, ऐसा नहीं है। वह तत्काल अपना दूसरा निवास ढूँढ़ लेती है।

लु० फि०: स्पष्ट ही यह मनुष्यके अमरत्व-प्राप्तिके शाश्वत प्रयासका ही दूसरा रूप है। क्या यह स्थिति कमजोर मनुष्यके मृत्यु-भयके कारण ही नहीं पैदा होती? टॉल्स्टॉय जबतक वृद्धावस्थामें नहीं पहुँच गये और उन्हें अन्तिम समयका भय नहीं सताने लगा, तबतक वे अधार्मिक रहे।

गां०: मुझे मृत्युका कोई भय नहीं है। मैं तो उसे राहत और सन्तोषकी दृष्टिसे ही देखूँगा। लेकिन मेरे लिए यह सोचना असम्भव है कि मृत्यु ही अन्त है। मेरे पास इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है। लोगोंने यह दिखलाने की कोशिश की है कि मृत मनुष्यकी आत्मा नया शरीर प्राप्त कर लेती है। मैं नहीं सोचता कि इस बातका प्रमाण दिया जा सकता है। लेकिन मैं इसमें विश्वास करता हूँ।

लु० फि०: मेरे खयालसे, हम सभी अमर होना चाहते हैं। फर्क इतना ही है कि कुछ लोग मानते हैं कि वे अपने बच्चोंमें या अपनी कृतियोंमें जीवित रहते हैं और कुछ लोग मानते हैं कि वे देहान्तरित होकर प्राणियोंमें अथवा अन्यथा जीवित रहते हैं। कुछ लोग अधिक समय जीवित रहते हैं, क्योंकि उनकी कृतियाँ अधिक समयतक कायम रहती हैं। लेकिन मैं मानता हूँ कि अमरत्वमें विश्वास — अगर अमरत्व कर्मोंसे भिन्न वस्तु है तो — वास्तवमें मृत्युसे डरना है और एक भ्रम पालकर सान्त्वना ढूँढ़ने का प्रयास है।

इसके बाद गांधीने अपने विचारको अत्यन्त ओजपूर्वक सुष्ठु और प्रवाहयुक्त अंग्रेजीमें दोहराया। वे प्रांजल धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलते हैं और उनका उच्चारण ब्रिटिश विश्वविद्यालयवाला होता है।

मैंने कहा कि विद्यार्थियोंने मुझे बताया है कि भारतमें नई पीढ़ीके लोगोंमें ऊँची जातिके हिन्दुओं और अछूतोंके बीच तथा हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच भेदभाव करने की प्रवृत्ति कम है और उन्हें धर्मके बारेमें अधिक रुचि नहीं है।

गां०: पहली बात सही है। लेकिन हिन्दुत्व कोई धर्म नहीं है। विद्यार्थी लोग धार्मिक क्रियाएँ नहीं करते। लेकिन हिन्दुत्व जीवन है, वह एक जीवन-पद्धति है। औपचारिक धर्मका आचरण न करनेवाले कई लोग उन लोगोंकी अपेक्षा इस जीवन-पद्धतिके अधिक निकट हैं जो औपचारिक धर्मका आचरण करते हैं।

गांधीने आगे कहा कि अस्पृश्यताके कारण मुझे गहरा दुःख होता है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि भारतके स्वतन्त्र होने पर अस्पृश्यताकी समस्या जल्दी हल हो जायेगी। स्वतन्त्रताका उल्लेख उन्हें फिर अपने प्रिय विषयपर ले आया। उन्होंने 'अपनी चुनौती' की बात करते हुए कहा, "अंग्रेजोंसे मैंने चले जाने की जो बात कही है वह एक चुनौती ही है। यदि वे भारतसे चले जाते हैं तो उनका शुद्धीकरण हो जायेगा और वे नई दुनियाका निर्माण करने के लिए अधिक अच्छी तरह सज्जित होंगे। अन्यथा तो उनकी सारी घोषणाएँ एक पाखण्डका चोगा ही हैं।"

लु० फि०: आप क्या ऐसा नहीं सोचते कि भारतकी विविधताओंको देखते हुए आपको यहाँ एक ऐसा संघ बनाने की जरूरत होगी जो देशी नरेशों और मुसलमानोंको सन्तुष्ट कर सके?

गां० : मैं यह बताने की स्थितिमें नहीं हूँ कि हमारे लिए कौन-सी व्यवस्था बेहतर होगी। पहले तो अंग्रेजोंको जाना होगा। बादमें हम क्या करेंगे, यह तो बिलकुल अटकलबाजीकी ही बात है। अंग्रेजोंके वापस लौटते ही धार्मिक अल्पसंख्यकोंका सवाल खत्म हो जायेगा। यदि अंग्रेजोंके जाने के बाद अव्यवस्था फैली तो मैं नहीं बता सकता कि उस अव्यवस्थामें से अन्तमें किस तरहकी व्यवस्था निकलेगी। यदि मुझसे पूछा जायेगा कि मुझे क्या पसन्द है तो मैं केन्द्रीकरण नहीं बल्कि संघके लिए कहूँगा। किसी-न-किसी प्रकारकी संघीय व्यवस्था अवश्य स्थापित होगी। लेकिन आपको मेरे इस उत्तरसे सन्तुष्ट हो जाना चाहिए कि मैं इस समस्याके बारेमें चिन्तित नहीं हूँ कि हमारे यहाँ संघीय सरकार बने या नहीं बने। आपका फौलादी साँचेमें ढला दिमाग शायद इसका मजाक उड़ा रहा हो। शायद आप सोचते हों कि करोड़ों निहत्थे और सदियोंसे विदेशी शासनके अभ्यस्त लोगोंके सहारे हम उस सविनय अवज्ञा आन्दोलनमें सफल ही नहीं होंगे जिसे शुरू करने का मैंने फैसला किया है।

लु० फि० : नहीं, मैं ऐसा नहीं सोचता। मेरा विश्वास है कि इतिहास तेजीसे आगे बढ़ रहा है और वह दिन दूर नहीं है जब आप भी चीनकी तरह एक आजाद देश बन जायेंगे। आपने जो संघर्ष वर्षों पूर्व आरम्भ किया उसका कोई और अन्त नहीं हो सकता।

गां० : मैं चीनकी तरह आजाद नहीं होना चाहता। चीन अब भी असहाय है, च्यांग-काई-शेक जैसे नेताके होते हुए भी। अपनी बहादुरी भी और इस युद्धमें अपना सर्वस्व न्योछावर करने देने की तत्परताके बावजूद चीन अभीतक पूरी तरह स्वतन्त्र नहीं है। चीनमें अमेरिका और इंग्लैण्डसे यह कहने की सामर्थ्य होनी चाहिए कि "हम आपकी सहायताके बिना अपनी आजादीकी लड़ाई अकेले लड़ेंगे।" मैं इसे आजादी कहूँगा।

मैंने गांधीजी से पूछा कि च्यांग-काई-शेकके साथ आपकी लम्बी भेंट-वार्त्ता कैसी रही?

गां० : बहुत अच्छी रही।

लु० फि० : सिवाय इसके कि आप उन्हें नहीं समझे और वे आपको नहीं समझे।

गां० : मैं उन्हें समझ नहीं पाया। हो सकता है कि ऐसा भाषाकी वजहसे हो। हम लोगोंने श्रीमती च्यांगके माध्यमसे बातचीत की। लेकिन मेरा खयाल है सिर्फ यही बात नहीं थी।

लु० फि० : बेशक, चीन पूरी तरह स्वतन्त्र नहीं है, लेकिन स्वतन्त्रता एक दिनमें तो नहीं आ जाती। यदि इस युद्धमें हमारी विजय होती है तो इस युद्धके ही माध्यमसे चीन स्वतन्त्र हो जायेगा। हो सकता है, अब जो शताब्दी आ रही है एशियाकी होगी। सम्भव है, आगामी दशकोंमें भारत और चीन इतिहासकी धाराको बहुत हदतक निर्धारित करें। फिर भी अंग्रेज इस बातको समझ रहे हैं, ऐसे संकेत मुझे नजर नहीं आते। जिस तरह आप कहते हैं, उस तरह तो वे जानेवाले नहीं है। यदि वे सिंगापुर और मलायामें अपने शस्त्रोंसे अपनी रक्षा नहीं कर सके तो वे भारतमें भी अपने दिमागसे अपनी रक्षा नहीं कर पायेंगे।

गां० : मैं चाहूँगा आप यह समझ लें कि मैं चीनकी आलोचना नहीं कर रहा हूँ। मैं तो केवल यह कहना चाहता था कि मेरी इच्छा चीनकी नकल करने की नहीं है। मैं नहीं चाहता कि भारत भी चीनकी तरह विषम स्थितिमें पड़ जाये। इसी कारण मैं कह रहा हूँ कि मैं नहीं चाहता कि यहाँ अंग्रेज और अमेरिकी सैनिक रहें। मैं यहाँ जापानी या जर्मन सैनिकोंको भी नहीं चाहता। जापानी हर रोज रेडियोसे यह प्रसारित करते हैं कि भारतको अपने अधिकारमें रखने का उनका इरादा नहीं है — वे केवल स्वतन्त्रता प्राप्त करने में हमारी सहायता करना चाहते हैं। मैं उनकी सहानुभूति या मदद नहीं चाहता। मैं जानता हूँ कि वे परोपकारी नहीं हैं। मैं भारतके लिए तमाम विदेशी आधिपत्यसे छुटकारा चाहता हूँ। मैं अधीर हो चुका हूँ। अब और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता। हमारा हाल चीन और फारससे भी बदतर है। मैं शायद कांग्रेसको न समझा सकूँ। जो लोग कांग्रेसमें पदोंपर रहे हैं वे शायद वक्तके तकाजेको पूरा न कर पायें। फिर भी मैं तो आगे बढ़ूँगा और सीधे जनतासे अपनी बात कहूँगा। लेकिन चाहे जो हो, हम झुकनेवाले नहीं हैं। हो सकता है हम एक ऐसी नवीन व्यवस्थाका विकास करें जिससे सारा विश्व चकित रह जाये। मैं तो आपसे कहूँगा कि आप अपने पूर्वग्रहोंको छोड़कर सविनय अवज्ञा आन्दोलनके मेरे इस नये विचारके क्षेत्रमें प्रवेश करें और यदि उसमें कोई दोष हो तो वह ढूँढ़ने की कोशिश करें। तब आप हमारे हेतुमें सहायक हो सकते हैं, और यदि इसी बातको उच्चतर धरातलपर रखकर कहूँ तो आप एक लेखककी हैसियतसे अपने प्रति न्याय कर सकेंगे। भारतमें इस समय जो साहित्य तैयार हो रहा है वह निरर्थक और असार है। उसमें से अधिकांशमें तो कोई मौलिक तत्व ही नहीं है। वह साराका-सारा एक बँधे-बँधाये ढर्रेपर लिखा गया होता है। मैं आपसे कहूँगा कि आप उस लीकसे बाहर निकलने की कोशिश कीजिए। मैं चाहूँगा कि आप मेरी भाषाके आवरणको भेदकर मैं जो-कुछ कहने का प्रयास कर रहा हूँ उसके मर्मतक पहुँचिए। मैं जानता हूँ कि यह मुश्किल है। आप अंग्रेजी और अमेरिकी सभ्यताकी सारी शान-शौकत, तेज, संस्कृति और शस्त्र-बलसे आवेष्ठित मानसिकता लेकर यहाँ आये थे। जो चीज आपकी लीकमें ठीक नहीं बैठती या उसके लिए वांछनीय नहीं है उसे समझने को आप तैयार न हों, यह बात मैं समझ जाऊँगा। लेकिन यदि आपका दिमाग उस लीकसे ऊपर ही नहीं उठ सकता तो सेवाग्राममें बिताये आपके दिन बेकार साबित होंगे।

लु० फि० : लेकिन आप जिस नवीन व्यवस्थाकी बात करते हैं, उसे जानने में क्या आप मेरी मदद करेंगे? अपनी नवीन व्यवस्थाके बारेमें मैं खुद इतना आश्वस्त नहीं हूँ कि आपके विचारको बिलकुल अस्वीकार कर दूँ। मेरे खयालसे भारतको बहुत-कुछ देना है। लेकिन आपकी कल्पनामें भविष्यकी क्या रूपरेखा है?

गां० : आप जानते हैं कि इस समय सत्ताका केन्द्र नई दिल्लीमें, कलकत्ता और बम्बईमें, बड़े नगरोंमें है। मैं चाहूँगा कि सत्ता भारतके सात लाख गाँवोंमें बँट जाये। इसका मतलब यह होगा कि कहीं कोई सत्ता है ही नहीं। दूसरे शब्दोंमें, मैं चाहता हूँ कि इंग्लैण्डके इम्पीरियल बैंकमें जमा, समझ लीजिए, सात लाख डालर वहाँसे लेकर सात

लाख गाँवोंमें बाँट दिये जायें। तब हर गाँवके पास अपना एक डालर होगा जो कभी खोयेगा नहीं।

इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडियामें जमा किये सात लाख डालर जापानी वायुयान से गिराये गये एक ही बमसे नष्ट किये जा सकते हैं, लेकिन यदि उन्हें सात लाख हिस्सेदारोंमें बाँट दिया जाये तो उस सम्पत्तिको उनसे कोई भी नहीं छीन सकता। ऐसी हालतमें सात लाख इकाइयाँ आपसमें स्वेच्छासे सहयोग करेंगी और वह नाजी तरीकोंसे प्रेरित सहयोग नहीं होगा। स्वैच्छिक सहयोगसे वास्तविक स्वतन्त्रता और एक ऐसी नवीन व्यवस्था प्राप्त होगी जो सोवियत रूसमें मौजूद नवीन व्यवस्थासे बहुत अधिक श्रेष्ठ होगी। कुछ लोगोंका कहना है कि रूसमें निष्ठुरता बरती जाती है सही, लेकिन ऐसा निम्नतम और निर्धनतम लोगोंके हितमें किया जाता है, इसलिए ठीक है। मुझे तो इसमें बहुत कम अच्छाई नजर आती है। किसी दिनकी क्रूरता ऐसी अव्यवस्था पैदा करेगी जैसी कि हमने पहले कभी नहीं देखी होगी। मुझे विश्वास है कि हमारे यहाँ वैसी अव्यवस्था नहीं होगी। मैं यह कबूल करता हूँ कि भारतका भावी समाज अधिकांशतः तो मेरी समझके बाहर है। लेकिन मैंने जिस व्यवस्थाकी रूपरेखा आपके सामने पेश की है, वह बेशक यहाँ कभी मौजूद थी, हालाँकि निस्सन्देह उसमें दोष भी थे, अन्यथा मुगलों और अंग्रेजोंके समक्ष वह क्षत-विक्षत न हो गई होती। मैं तो मानना चाहूँगा कि उस व्यवस्थाके कुछ अंश शेष रह गये हैं और अंग्रेजी शासनके प्रहारोंके बावजूद उसकी जड़ें बच रही हैं। उन जड़ों और तनेको फिरसे अंकुरित होने के लिए वर्षाकी उन चन्द बूँदोंकी प्रतीक्षा है जो अंग्रेजों द्वारा भारतीयोंको सत्ता हस्तान्तरित किये जाने के रूपमें प्राप्त होंगी। उसमें से पौधा कैसा निकलेगा, यह मैं नहीं जानता। लेकिन आज हमारे पास जैसा-कुछ है उससे वह अत्यधिक श्रेष्ठ होगा। दुर्भाग्यवश अहिंसाके लिए आवश्यक मनोवृत्ति अब यहाँ मौजूद नहीं है, लेकिन मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि एक नवीन व्यवस्था विकसित करने के लिए पचीस वर्षोंसे की जा रही सारी कड़ी मेहनत बेकार चली गई है। नवीन व्यवस्थाका स्वरूप निर्धारित करने में कांग्रेसका प्रभाव महत्त्वपूर्ण होगा, और मुस्लिम लीगका भी अपना कारगर प्रभाव होगा।

लु० फि०: आप इस प्रतीकात्मक सात लाख डालरवाले विचारको कुछ और पल्लवित करें। गाँव उस डालरका क्या करेंगे जो इंग्लैण्डके इम्पीरियल बैंकसे उन्हें वापस मिलेगा?

गां०: एक बात तो होगी। आज हिस्सेदारोंको कोई लाभ नहीं मिलता, उसे बिचौलिये ही हड़प जाते हैं। यदि किसान अपने डालरोंके मालिक बन जायेंगे तो वे उनका जैसा ठीक समझेंगे वैसा उपयोग करेंगे।

लु० फि०: किसान तो अपना पैसा जमीनमें गाड़ देता है।

गां०: वे अपने डालर जमीनमें नहीं गाड़ेंगे, क्योंकि उन्हें उससे गुजारा करना होगा। वे अपना डालर लेकर वापस बैंकमें जायेंगे — उस बैंकमें जो उनका अपना होगा — और जैसा ठीक समझेंगे वैसे प्रयोजनोंके लिए अपनी देखरेखमें उसका इस्तेमाल करेंगे। तब वे पवन-चक्की बना सकते हैं, बिजली पैदा कर सकते हैं या जो

चाहें वह कर सकते हैं। एक केन्द्रीय सरकार भी बनेगी, लेकिन वह जनताकी इच्छाके मुताबिक कार्य करेगी और जनाकांक्षाके व्यापक आधारपर स्थित होगी।

लु० फि० : और तब मेरा अनुमान है कि राज्य और अधिक उद्योगोंका निर्माण करके देशका औद्योगिक विकास करेगा।

गां० : आप ब्रिटिश फौजके बिना एक केन्द्रीय सरकारकी कल्पना कीजिए। यदि ब्रिटिश फौजके बिना वह टिकी रह जाती है तो यह एक नई व्यवस्था होगी। यह ऐसा लक्ष्य है जिसके लिए प्रयास करना होगा। यह कोई असाध्य लक्ष्य नहीं है। यह व्यवहार्य है।

लु० फि० : मैं इस बातसे सहमत हूँ। दस वर्ष पहले शायद मैं ऐसा नहीं मानता, लेकिन रूस तथा अन्य स्थानोंके अपने अनुभवोंके बाद मैं यह महसूस करता हूँ कि विश्वके सामने सबसे बड़ा खतरा सर्वशक्तिसम्पन्न राज्यके उदयका है, जिसमें व्यक्ति-स्वातन्त्र्य असम्भव हो जायेगा। स्पष्ट ही पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाने सरकारके लिए आर्थिक मामलोंमें अधिकाधिक हस्तक्षेप करना जरूरी बना दिया है। इससे राज्यके अधिकार बढ़ जाते हैं। अगली पीढ़ीकी वास्तविक समस्या ऐसे राज्यपर अंकुश-नियन्त्रण रखनेके उपाय ढूंढ़ निकालनेकी होगी। एक सवाल तो यह है: जिस देशमें सरकार सर्वशक्तिमान है उस देशमें क्या हम व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी रक्षा कर सकते हैं? दूसरा सवाल है: क्या किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठनके अन्तर्गत सारे देश आपसमें सहयोग करेंगे, अथवा अन्तर्राष्ट्रीयताकी भावनाको नकारकर हम और भी लड़ाइयोंमें पड़ेंगे?

गां० : मेरा सवाल होगा कि इन महाकाय राज्योंके उदयको कैसे रोका जाये? यही कारण है कि मैं नहीं चाहता कि मित्र-राष्ट्र फासिस्ट राज्योंकी भूमिका अपनायें। इसीलिए मेरा उनसे कहना है कि वे इस बातकी घोषणा कर दें कि भारत जो-कुछ कहता है वह ठीक है। इस तरह एकदम पहल करके वे भारतको आजादी प्रदान करें। और यदि यहाँ रहना जरूरी हो तो जितने दिन रहना हो उतने दिन वे भारतकी शर्तोंके अनुसार रहें। फिर हम देखें कि हमें जनताका स्वतन्त्र सहयोग प्राप्त हो सकता है या नहीं।

लु० फि० : मेरा यह निश्चित मत है कि आपको आजादी मिलनी ही चाहिए। मेरे खयालसे, यह हमारे-आपके सबके लिए अच्छा होगा। यह तो है ही कि अंग्रेजोंने अपने साम्राज्यकी सुरक्षा करने या उसके लोगोंकी सहानुभूति हासिल करने की कोई खास क्षमता नहीं दिखाई है।

गां० : आपको अमेरिकासे ऐसा कहना चाहिए।

लु० फि० : मैं कहूँगा, लेकिन उन शब्दोंमें नहीं। इन दिनों ब्रिटेनको गोला-बारूद खरीदनेका सारा पैसा हम लोग दे रहे हैं। हम लोग इस वर्ष साठ हजार हवाई जहाजोंका निर्माण कर रहे हैं। १९४३ में यह संख्या एक लाख चालीस हजार होगी। जहाँतक भारतमें अमेरिकाकी भूमिकाका सवाल है, यहाँ संकट समयसे जरा पहले खड़ा हो गया है। यदि इस समय हम एक लाख चालीस हजार हवाई जहाज बना रहे होते और मोर्चेपर हमारे बीस लाख आदमी तैनात होते तो भारतके मामले

में हमारे विचारोंकी ओर लन्दन ज्यादा ध्यान देता। अंग्रेज आज नहीं समझते कि भारतमें क्या हो रहा है। अमेरिकी सहायतासे कल शायद वे समझ सकें।

गां० : इसीलिए तो मैं असली बातपर आकर कहता हूँ कि जबतक हम अंग्रेजों के साथ तर्क-वितर्क करके उन्हें अपने प्रस्तावकी न्यायपूर्णता और व्यवहार्यता दिखाते रहेंगे तबतक वे उसे हर्गिज नहीं समझ पायेंगे, लेकिन जब हम कार्रवाई शुरू करेंगे तव वे समझ जायेंगे। यही अंग्रेजोंका इतिहास रहा है। उनपर असर कार्रवाईका होता है और अब हमें कार्रवाई ही करनी है। लेकिन फिलहाल मुझे इस विचारका प्रचार करना है कि भारतीय राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना आज ही की जा सकती है। और साथ ही यह भी बतलाना है कि यह कोई असंगत या काल्पनिक चीज नहीं है। यह विचार अहिंसापर आधारित है, हालाँकि अपने लक्ष्यकी सुसंगति या न्यायपूर्णता सिद्ध करने के लिए मुझे अहिंसाके सिद्धान्तकी आवश्यकता नहीं है। यदि मैं हिंसाकी ओर प्रवृत्त होता तो भी शायद यही लक्ष्य बनता। यदि मैं हिंसाकी ओर प्रवृत्त होता तो भी शायद मैं कहता कि, 'यहाँसे चले जाओ, भारतका सैनिक अड्डेकी तरह इस्तेमाल मत करो।' लेकिन आज मेरा कहना है कि 'भारतको कहीं कोई और न हथिया ले, इस भयसे यदि आपको एक सैनिक अड्डेके रूपमें इसका इस्तेमाल करना ही है तो सम्मानजनक शर्तों पर यहाँ रहिए और इसे कोई नुकसान मत पहुँचाइए।' मैं तो इससे भी आगे बढ़कर यह कहूँगा कि यदि भारत द्वारा बनाई गई केन्द्रीय सरकार फौजी-प्रवृत्तिकी हुई तो अंग्रेज उसकी मदद ले सकते हैं।

लु० फि० : यदि अंग्रेज दबावमें आकर आपका प्रस्ताव मान लेते हैं तो आप अपने सात लाख ग्रामोंवाले गणराज्यका समारम्भ कैसे करेंगे?

गां० : मैं आपके सामने कोई ठोस योजना नहीं रख सकता। मैं उसे आज तैयार नहीं कर सकता। अभी तो वह बिलकुल सिद्धान्तके ही धरातलपर है। वह योजना उस एक व्यक्तिके दिमागकी उपज नहीं होगी जिसे बहुत-से लोग तो सपनोंकी दुनियामें खोये रहनेवाला व्यक्ति मानते हैं। उसे तो प्रतिनिधियोंकी एक संस्था द्वारा तैयार की गई योजनाके रूपमें सामने आना है।

लु० फि० : वैसे मेरा दिमाग किसी खास साँचेमें इस तरह ढला हुआ नहीं है कि मैं हाथकता सूत भी न समझ सकूँ।

गां० : लेकिन सब्जियोंको तो आप नहीं समझते।

लु० फि० : मैं एक ही तरहकी सब्जियाँ हर रोज सुबह-शामके भोजनमें पसन्द नहीं करता।

८ जून, १९४२

मैंने यह कहकर बातचीत आरम्भ की कि भारतकी सबसे बड़ी समस्याका, जिसका समाधान सबसे कठिन है, अबतक हमने जिक्र भी नहीं किया है।

गां० : वह क्या है?

लु० फि० : भारतकी जनसंख्यामें हर वर्ष पचास लाखके हिसाबसे वृद्धि हो रही है। ब्रिटिश सरकारी आँकड़े बताते हैं कि भारतकी जनसंख्या १९३१ में तैंतीस

करोड़ अस्सी लाखसे बढ़कर १९४१ में अड़तीस करोड़ अस्सी लाख हो गई। पाँच करोड़ अधिक लोगोंके लिए भोजन, वस्त्र और आवासकी व्यवस्था करनेकी जरूरत खड़ी हो गई। दस वर्षमें ही पाँच करोड़ लोग बढ़ गये। आप इस समस्यासे कैसे निपटेंगे?

गां० : इसका एक जवाब सन्तति-निरोध हो सकता है। लेकिन मैं सन्तति-निरोधके विरुद्ध हूँ।

लु० फि० : मैं उसके विरुद्ध तो नहीं हूँ, लेकिन भारत-जैसे पिछड़े देशमें सन्तति-निरोध बहुत कारगर नहीं हो सकता।

गां० : तब तो शायद हमें बड़ी-बड़ी महामारियोंकी ही जरूरत हो।

लु० फि० : या किसी बड़े गृह-युद्धकी। लेकिन सोवियत रूसमें अकाल पड़े, महामारियाँ आईं और गृह-युद्ध हुआ, फिर भी जनसंख्या बहुत तेजीसे बढ़ती चली गई। अतः १९२८ में बोल्शेविकोंने कुछ आर्थिक कदम उठाये।

गां० : आप मुझसे यह कबूल करवाना चाहते हैं कि हमें त्वरित औद्योगीकरण की आवश्यकता होगी। मैं ऐसा कभी कबूल नहीं करूँगा। हमारी सबसे पहली समस्या ब्रिटिश शासनसे मुक्ति पाने की है। तब हम भारतके लिए जो आवश्यक होगा वह, बगैर किसी बाहरी नियन्त्रणके, करने के लिए स्वतन्त्र होंगे। अंग्रेजोंको हमें कुछ कारखाने खड़े करने की इजाजत देना ठीक लगा है। लेकिन बाकीके मामलेमें रोक लगा देना भी उन्हें मुनासिब लगा है। जी नहीं। मेरे लिए तो सबसे महती समस्या ब्रिटिश आधिपत्य समाप्त करने की है।

लु० फि० : तो अपने आगामी सविनय अवज्ञा आन्दोलनकी आपकी कल्पनाका ठीक-ठीक रूप क्या है? वह कैसी होगी?

गां० : गाँवोंमें किसान कर देना बन्द कर देंगे। सरकारी प्रतिबन्धके बावजूद वे नमक तैयार करेंगे। वैसे यह एक मामूली बात लगती है; नमक-करसे अंग्रेज सरकारको एक नगण्य राशि ही प्राप्त होती है। लेकिन उसे देने से इनकार करने से किसानोंको यह सोचने का साहस मिलेगा कि उनमें स्वतन्त्र कार्रवाई करने की क्षमता है। उनका दूसरा कदम भूमि छीनने का होगा।

लु० फि० : हिंसाके द्वारा?

गां० : उसमें हिंसा हो सकती है, लेकिन जमींदार सहयोग भी कर सकते हैं।

लु० फि० : आप बड़े आशावादी हैं।

गां० : कहने का मतलब यह है कि शायद वे पलायन करके सहयोग करें।

इसपर मेरी बगलमें बैठे नेहरूने कहा, "वे अपने पैरोंसे जब्तीके हकमें मत दे सकते हैं। आपने अपनी पुस्तक 'मैन एण्ड पॉलिटिक्स' में लिखा है कि लेनिनके शब्दों में, १९१७ में रूसी सिपाहीने अपने पैरोंसे शान्तिके पक्षमें मत दिया — यानी वह मोर्चा छोड़कर भाग खड़ा हुआ। इसी तरह जमींदार भी भागकर अपनी जमीनकी जब्ती के पक्षमें मत दे सकते हैं।"

लु० फि० : या फिर वे हिंसात्मक प्रतिरोध संगठित कर सकते हैं।

गां० : दस-पन्द्रह दिन गड़बड़ी चल सकती है, लेकिन मेरे खयालसे, हम शीघ्र ही उसपर नियन्त्रण पा लेंगे।

लु० फि० : आपका खयाल है कि बिना मुआवजा दिये सम्पत्ति जब्त कर ली जानी चाहिए?

गां० : बेशक, जमींदारोंको मुआवजा देना किसीके लिए भी आर्थिक दृष्टिसे असम्भव होगा।

लु० फि० : यह तो गाँवोंकी बात हुई। लेकिन यही तो सारा हिन्दुस्तान नहीं है।

गां० : जी नहीं। शहरोंमें श्रमिक अपने कारखानोंका बहिष्कार करेंगे। रेलें चलना बन्द हो जायेगा।

लु० फि० : आम हड़ताल होगी। मैं जानता हूँ कि अतीतमें आपको किसानोंसे भारी समर्थन प्राप्त हुआ है, लेकिन आपको शहरके श्रमिक वर्गका उतना समर्थन प्राप्त नही है।

गां० : नहीं, उतना अधिक नहीं। लेकिन इस बारकी कार्रवाईमें श्रमिक भी भाग लेंगे, क्योंकि मुझे देशकी मन:स्थिति ऐसी दिखाई देती है कि यहाँका हर आदमी — हिन्दू, मुसलमान, अछूत, सिख, श्रमिक, कृषक, उद्योगपति, सरकारी नौकर, बल्कि वस्तुतः देशी नरेश भी — आजादी चाहता है। देशी नरेशोंको मालूम है कि एक नई हवा बह रही है। आजतक जैसा चलता रहा है, वैसा आगे नहीं चल सकता। हम एक ऐसे युद्धका समर्थन नहीं कर सकते जो शायद ब्रिटिश आधिपत्यको स्थायी बनाने में सहायक हो। जब भारत लोकतान्त्रिक नहीं है तो जापान, जर्मनी और इटलीमें लोकतन्त्रके लिए हम कैसे लड़ सकते हैं? मैं चीनको बचाना चाहता हूँ। मैं नहीं चाहता कि चीनका कोई नुकसान हो। लेकिन सहयोग करने के लिए हमारा आजाद होना जरूरी है। गुलाम आजादीकी लड़ाई नहीं लड़ते।

लु० फि० : क्या आपका खयाल है कि मुसलमान सविनय अवज्ञा आन्दोलनमें आपका साथ देंगे?

गां० : शायद शुरूमें नहीं। लेकिन जब वे हमें सफल होता देखेंगे तो वे हमारे साथ हो जायेंगे।

लु० फि० : क्या ऐसा नहीं हो सकता है कि आन्दोलनमें हस्तक्षेप करने के लिए या उसे रोकने के लिए मुसलमानोंका इस्तेमाल किया जाये?

गां० : नि:सन्देह, उनके नेता या सरकार इस बातकी कोशिश कर सकतीं हैं। लेकिन लाखों मुसलमान आजादीके खिलाफ नहीं हैं। इसलिए वे उस आजादीको लाने के हमारे उपायोंका विरोध नहीं कर सकते। मुसलमान जनता कांग्रेसके सर्वोपरि लक्ष्य — भारतकी आजादी — के प्रति सहानुभूति रखती है। यही वह ठोस आधार है जिसपर हिन्दू-मुस्लिम एकताका निर्माण किया जा सकता है।

९ जून, १९४२

लु० फि० : मैंने अपने कामके प्रति और दुनियाके प्रति आपके दृष्टिकोणको इतना वस्तुनिष्ठ पाया है कि मैं चाहता हूँ कि आप अपने बारेमें भी वस्तुनिष्ठ

दृष्टिकोणसे ही काम लें। यह कोई व्यक्तिगत नहीं, बल्कि राजनीतिक प्रश्न है: इतने सारे लोगोंपर आपका जो प्रभाव है उसका कारण क्या है?

गां० : जिस भावनासे आप यह सवाल पूछ रहे हैं उसे मैं समझ सकता हूँ। मेरे खयालसे, मेरा प्रभाव इस कारण है कि मैं सत्यके अनुसन्धानमें रत रहता हूँ। वही मेरा लक्ष्य है।

लु० फि० : मैं सत्यकी शक्तिको कम नहीं आँकता। लेकिन यह कारण मुझे अपर्याप्त लगता है। हिटलर-जैसे नेताओंने झूठ बोलकर शक्ति प्राप्त की है। इसका मतलब यह नहीं कि आप सच बोलकर प्रभावशाली नहीं बन सकते। लेकिन इस देशमें या अन्यत्र भी अन्य लोगोंको सत्यसे हमेशा लाभ नहीं पहुँचा है। आपके पास न सत्ताका कोई साधन-उपकरण है और न आपके पीछे सरकार या पुलिसकी ताकत है, आप किसी दिखावे-प्रदर्शनका भी सहारा नहीं लेते, बल्कि यहाँतक कि आपके पास कोई सुगठित संस्था भी नहीं है — क्योंकि मेरे जानते तो कांग्रेस किसी भी अर्थमें कोई अनुशासित और सुसमन्वित संस्था नहीं है — फिर क्या कारण है कि आप इन करोड़ों लोगोंको पूर्णतः प्रभावित करने और अपने सुख-सुविधा और समय ही नहीं, प्राणतक उत्सर्ग करने को प्रेरित करने में सफल रहे हैं?

गां० : सत्यका मतलब केवल सत्य बोलना ही नहीं है। उसका मतलब वास्तव में सत्यको जीवनमें आचरित करना है। यह सच है कि मुझमें योग्यता नहीं है। मैं बहुत अधिक शिक्षित नहीं हूँ। मैं बहुत पढ़ता नहीं हूँ।

लु० फि० : क्या ऐसा नहीं है कि जब आप आजादीकी बात करते हैं तो बहुत-से भारतीयोंके दिलके एक तारको छू देते हैं? संगीतज्ञ अपने श्रोताओंके दिलको ही तो कहींसे छूता है। आप ऐसी धुन छेड़ते हैं जिसे सुनने की भारतीय प्रतीक्षा कर रहे होते हैं। मैंने देखा है कि लोग उन स्वरोंपर सबसे अधिक हर्षध्वनि करते हैं जिन्हें उन्होंने कई बार सुना और पसन्द किया है। व्याख्यान सुननेवाले श्रोता उन विचारोंको सुनकर तालियाँ बजाते हैं जिनसे वे सहमत होते हैं। क्या ऐसा है कि लोग जो-कुछ आपसे कहलवाना या करवाना चाहते हैं, आप वही कहते और करते हैं।

गां० : हाँ, हो सकता है ऐसा ही हो। मैं अंग्रेजोंके मामलेमें राजभक्त था और बादमें विद्रोही बन गया। १८९६ तक मैं राजभक्त था।

लु० फि० : क्या आप १९१४ और १९१८ के बीच भी राजभक्त नहीं थे?

गां० : हाँ, एक प्रकारसे था, लेकिन वास्तवमें नहीं। १९१८ तक तो मैंने कह दिया था कि भारतमें अंग्रेजी शासन विदेशी शासन है और उसे समाप्त होना चाहिए।

आपको बताता हूँ कि यह कैसे हुआ कि मैंने अंग्रेजोंके भारतसे चले जाने की बात कहने का निश्चय किया। बात १९१६ की है। मैं कांग्रेसके कामसे लखनऊ गया हुआ था। एक किसान मुझसे मिलने आया। वह भारतके अन्य किसानोंकी ही तरह दीन-हीन दिखाई दे रहा था। मेरे पास आकर वह बोला, मेरा नाम राजकुमार शुक्ल है। मैं चम्पारनसे आया हूँ और चाहता हूँ कि आप मेरे जिलेमें चलें। उसने वहाँके अपने साथी किसानोंके कष्टोंका वर्णन किया और मुझसे अपने साथ चम्पारन चलने का

अनुरोध किया। यह जगह लखनऊसे सैकड़ों मील दूर थी। वह लगातार इतने आग्रह के साथ अनुरोध करता रहा कि मैंने उसे आने का वचन दे दिया। लेकिन वह मुझसे तारीख निश्चित करवाना चाहता था। मैं तारीख निश्चित करने की स्थितिमें नहीं था। हफ्तोंतक भारतमें जहाँ कहीं मैं जाता था, वहाँ राजकुमार मेरे पीछे लगा रहता। मैं जहाँ ठहरता वह वहीं रुक जाता था। आखिर १९१७ के शुरूमें मुझे कलकत्ता जाना पड़ा। राजकुमार मेरे साथ-साथ वहाँ गया और अन्तमें उसने मुझे अपने साथ कलकत्तासे चम्पारनकी ट्रेन पकड़ने के लिए राजी कर लिया। चम्पारन जिले में नीलकी खेती की जाती है। मैंने निश्चय किया कि मैं हजारों किसानोंसे मिलकर बात करूँगा, लेकिन दूसरे पक्षकी बात जानने के लिए उस क्षेत्रके अंग्रेज कमिश्नरसे भी भेंट करूँगा। जब मैं कमिश्नरसे मिला तो उसने मुझे घौंस दी और तुरन्त चम्पारन छोड़ जाने को कहा। मैंने उनकी बात नहीं मानी और हाथीपर सवार होकर चम्पारनके एक गाँवकी ओर चल पड़ा। पीछेसे पुलिसका एक सन्देशवाहक आ पहुँचा और उसने मुझे चम्पारन छोड़ने का सरकारी आदेश थमा दिया। मैंने पुलिसको जिस घरमें मैं ठहरा हुआ था वहाँतक अपने साथ आने दिया और वहाँ पहुँचकर सविनय अवज्ञा करने का फैसला किया। मैं चम्पारन छोड़ने को तैयार नहीं था। उस घरके आसपास भारी भीड़ जमा हो गई। मैंने भीड़को सँभालने में पुलिसवालों को सहयोग दिया। मेरे और पुलिसके बीच एक प्रकारका मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो गया। चम्पारन में मेरा वह दिन मेरे जीवनका एक चिरस्मरणीय दिवस हो गया। मुझपर मुकदमा चलाया गया। सरकारी वकीलने अदालतसे प्रार्थना की कि मुकदमा मुल्तवी कर दिया जाये। लेकिन मैंने उसे जारी रखवाने का अनुरोध किया। मैं सार्वजनिक रूपसे यह बयान देना चाहता था कि मैंने चम्पारन छोड़ने के आदेशकी अवज्ञा की है। मैंने सरकारी वकीलसे कहा कि मैं यहाँ स्थानीय स्थितिकी जानकारी प्राप्त करने के लिए आया हूँ इसलिए मुझे ब्रिटिश कानूनकी अवज्ञा करनी पड़ी है, क्योंकि मैं एक उच्चतर कानूनका, अपनी अन्तरात्माकी आवाजके आदेशका पालन कर रहा हूँ। अंग्रेजोंके खिलाफ सविनय अवज्ञाकी यह मेरी पहली कार्रवाई थी। मैं यह सिद्धान्त स्थापित कर देना चाहता था कि अपने देशके चाहे जिस भागमें भी मैं शान्तिपूर्ण उद्देश्यसे जाऊँ वहाँसे मुझे चले जाने को कहने का किसी भी अंग्रेजको कोई अधिकार नहीं है। सरकारने मुझसे बार-बार अनुरोध किया कि मैं अपराधकी स्वीकृति वापस ले लूँ। अन्तमें मजिस्ट्रेटने मुकदमा समाप्त कर दिया। सविनय अवज्ञाकी जीत हुई और यह वह तरीका बन गया जिससे भारतको आजाद कराया जा सकता था।

लु० फि० : भारतमें आपकी विशेष स्थिति बनने का शायद यह एक दूसरा कारण है।

गां० : मैंने तो बहुत साधारण-सी बात कही थी। मैंने यह घोषित किया था कि मेरे ही देशमें अंग्रेज मुझपर यह हुक्म नहीं चला सकते कि वहाँ जाओ और वहाँ नहीं जाओ।

लु० फि० : बात तो साधारण-सी थी, लेकिन वैसा करनेवाले आप पहले व्यक्ति थे। यह वही कोलम्बस और अंडेवाला किस्सा हुआ।

गां० : वह क्या है?

लु० फि० : आपने कोलम्बस और अंडेका किस्सा नहीं सुना?

गां० : जी नहीं, सुनाइए।

मैंने उन्हें वह किस्सा सुनाया। सुनकर वे खूब हँसे।

गां० : हाँ, यह तो ठीक ही है। मुझे शान्तिपूर्ण ढंगसे अपने देशमें कहीं भी आने-जाने का अधिकार है — यह कहना एक साधारण-सी बात थी। लेकिन इसके पूर्व यह बात किसीने कही नहीं थी।[1]

गां० : अब शुरू कीजिए गोलियाँ दागनी।

लु० फि० : वह तो हिंसा होगी।

गां० : आपको हिंसापर कोई आपत्ति है?

लु० फि० : लेकिन मैं हिंसाके पक्षमें हूँ या विपक्षमें — इस बारेमें आपने मुझसे कभी एक शब्द भी नहीं सुना है।

गां० : आपको मुझे यह बताने की जरूरत नहीं है। यह तो मैं आपको देखकर जान लेता हूँ।

लु० फि० : यदि आपका आगामी सविनय अवज्ञा आन्दोलन हिंसक रूप धारण कर लेता है — जैसा कि कभी-कभी पिछले वर्षोंमें हो भी चुका है — तो क्या आप आन्दोलन वापस ले लेंगे? ऐसा आप पहले भी कर चुके हैं।

गां० : अपनी आजकी मनःस्थितिमें मेरे लिए यह कहना गलत होगा कि ऐसी कोई परिस्थिति उत्पन्न ही नहीं हो सकती जिसमें मुझे आन्दोलन वापस लेना पड़े। लेकिन यह जरूर है कि अतीतमें मैंने जरूरतसे ज्यादा सावधानीसे काम लिया है। मगर वह खुद मेरे और मेरे सहयोगियोंके भी प्रशिक्षणके लिए आवश्यक था। लेकिन जैसा मैंने अतीतमें किया है वैसा अब नहीं करूँगा।

लु० फि० : अब तो मैं आपके गाँवसे जा रहा हूँ, इसलिए इस विषयमें पूरी तरह आश्वस्त हो लेना चाहता हूँ कि मैंने आपके विचारोंको ठीक समझ लिया है। आप जो-कुछ चाहते हैं और ब्रिटिश सत्ताधारी जो देने को तैयार हैं उसके बीच किसी बिन्दूपर समझौता होने की क्या कोई सम्भावना है? क्या किसी प्रकारका संशोधित क्रिप्स-प्रस्ताव आपको स्वीकार्य हो सकता है?

गां० : नहीं। क्रिप्स-प्रस्तावके ढंगकी तो कोई चीज नहीं। मैं अंग्रेजोंकी पूर्ण और अन्तिम वापसी चाहता हूँ। मैं तत्वतः एक समझौतावादी आदमी हूँ, क्योंकि मैं कभी भी इस विषयमें आश्वस्त नहीं रहता कि मैं सही ही हूँ। लेकिन इस समय मेरे स्वभावका[2] कट्टरपन ऊपर है। अंग्रेजोंकी वापसी और ना-वापसीके बीच कोई मंजिल नहीं है। अलबत्ता, मैं यह नहीं कहता कि यहाँसे एक-एक अंग्रेज चला जाये। लेकिन इस बातका आग्रह जरूर रखूँगा कि अंग्रेज भारतीय जनताको सत्ता सौंप दें।

१. इस समयतक दलके लोग गांधीजी के निवासपर लौट आये थे। फिशर अपनी नियमित भेंट-वार्ताके लिए ३ बजे फिर आये।

२. साधन-सूत्र (अंग्रेजी) में "future" है; शायद यह "nature" होना चाहिए।

लु० फि० : इस काममें लगनेवाले समयके वारेमें आपका क्या कहना है? आपके सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करने पर यदि अंग्रेज आपकी बात मान लेते हैं तो क्या राजनीतिक सत्ता तत्काल हस्तान्तरित करनी पड़ेगी?

गां० : नहीं, अंग्रेजोंको सत्ता दो दिन या दो सप्ताहमें नहीं सौंपनी होगी। लेकिन उस कार्रवाईको अन्तिम और पूर्ण राजनीतिक वापसी होना चाहिए।

लु० फि० : मान लीजिए, अंग्रेज कहें कि हम युद्धके बाद पूरी तरहसे हट जायेंगे?

गां० : नहीं, यह मंजूर नहीं होगा। उस हालतमें तो मेरा प्रस्ताव अपनी बहुत सारी अहमियत ही खो बैठेगा। मैं चाहता हूँ, वे अभी जायें, ताकि मैं चीन और रूसकी मदद कर सकूँ। आज मैं उनके पक्षमें अपने पूरे प्रभावका उपयोग नहीं कर सकता। यह प्रस्ताव मैंने अपनी परमार्थ-वृत्तिसे प्रेरित होकर पेश किया है। फिलहाल भारत मेरी दृष्टिमें नहीं है। मैंने कभी भी केवल भारतकी ही खातिर स्वतन्त्रता की कामना नहीं की है। मैंने कभी भी कूप-मण्डूककी भूमिका नहीं निभानी चाही।

लु० फि० : मगर, श्री गांधी, पहले तो आपका विचार ऐसा नहीं रहा है।

गां० : पूरा विचार मेरे अन्दर विकसित होता रहता है। अंग्रेजोंसे जाने को कहने का मूल विचार मेरे मनमें सहसा ही फूट पड़ा। उसकी प्रेरणा क्रिप्सकी विफलतासे मिली। उनके जाते ही इस विचारने मुझे अभिभूत कर लिया।

लु० फि० : यह विचार आपके मनमें ऐन किस समय पैदा हुआ?

गां० : क्रिप्सके प्रस्थानके शीघ्र बाद। होरेस अलेक्जैंडरके पत्रके उत्तरमें मैंने उन्हें एक पत्र लिखा। उसके बाद यह विचार मेरे मनपर छा गया। फिर शुरू हुआ उसका प्रचार। बादमें मैंने एक प्रस्ताव तैयार किया। मेरे मनमें सबसे पहला खयाल यह उठा कि हमें क्रिप्सकी विफलताका कोई प्रतिकार चाहिए। यदि क्रिप्सके प्रस्तावमें कुछ अच्छी चीजें भी न होतीं तो यह कितनी दुष्टतापूर्ण चीज है। अब अगर मैं अंग्रेजोंसे यहाँसे जाने को कहूँ तो! यह विचार उस कुचली हुई आशासे उत्पन्न हुआ जो हमारे मनमें काफी प्रबल हो चुकी थी। जवाहरलाल और अन्य लोगोंसे भी हमें क्रिप्स के बारेमें कुछ अच्छी बातें मालूम हुई थीं। फिर भी उनका पूरा मिशन धूल-धूसरित हो गया। सो मैंने खुदसे पूछा, इस परिस्थितिका प्रतिकार मैं कैसे करूँ? अंग्रेजोंकी उपस्थिति रास्तेमें दीवार बनकर खड़ी है। यह विचार मेरे मनमें सोमवारको मेरे मौन दिवसपर उठा। उस मौनसे मेरे मनमें इतने सारे विचार उत्पन्न हुए कि मैं मौनसे और उन विचारोंसे भी पूरी तरह अभिभूत हो गया, और मुझे इस बातकी पूरी प्रतीति हो गई कि मुझे रूस और चीनके लिए और भारतके लिए कुछ करना है। चीनके कष्टसे मेरा हृदय आकुल है। च्यांग-काई-शेक और उनकी आकर्षक जीवन-संगिनीके साथ बिताये वे पाँच घंटे मैं भूल नहीं सकता। मेरा मन दुनियाके दुःखसे व्याकुल है।

लु० फि० : यह कार्रवाई युद्धके बाद ही क्यों नहीं की जा सकती?

गां० : क्योंकि मैं कार्रवाई अभी करना चाहता हूँ, ताकि युद्धके दौरान मैं उपयोगी हो सकूँ।

लु० फि० : इस संघर्षको चलाने के लिए क्या आपके पास कोई संस्था है?

गां० : कांग्रेस दल ही वह संस्था है। लेकिन यदि उसने मुझे निराश किया तो मेरी खुद अपनी संस्था तो है ही, और वह संस्था स्वयं मैं हूँ। मैं ऐसा आदमी हूँ जो एक विचारसे पूरी तरह अभिभूत है। ऐसे आदमीको यदि कोई संस्था नहीं मिल पाती है तो वह खुद संस्था बन जाता है।

लु० फि० : क्या आपको देशकी मौजूदा मनःस्थितिपर पर्याप्त भरोसा है? क्या देश आपका अनुगमन करेगा? जनताको इस सविनय अवज्ञा आन्दोलनके लिए भारी बलिदान देना पड़ सकता है? क्या किसीने आपके विचारका विरोध किया है?

गां० : आज मुझे राजगोपालाचारीका पत्र मिला है। अकेले वही इसके विरुद्ध हैं। मुझे उनके विचार मालूम हैं। लेकिन वे मुस्लिम लीगसे यह अपेक्षा कैसे रखते हैं कि वह उनके साथ काम करेगी, जब कि वे पाकिस्तानकी कल्पनाको नष्ट करने के लिए मुस्लिम लीगके साथ काम करना चाहते हैं?

लु० फि० : क्या आपके खयालसे जिन्ना पाकिस्तानके लिए कटिबद्ध हैं? हो सकता है, यह उनकी सौदेबाजीकी चाल हो, जिसे वे शायद उस हालतमें छोड़ दें यदि हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच सहयोगकी स्थिति पैदा की जा सके।

गां० : जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, वे उसे छोड़ेंगे तभी जब अंग्रेज चले जायेंगे और उस प्रकार वह पक्ष ही नहीं रह जायेगा जिसके साथ वे सौदेबाजी कर सकें?

लु० फि० : तो आप अंग्रेजोंको पहले ही यह बता देना चाहते हैं कि आप अपना आन्दोलन कब शुरू करने जा रहे हैं?

गां० : जी हाँ।

लु० फि० : आप उन्हें बहुत पहले न बतायें तो बेहतर हो।

गां० : इसे क्या आपका गुप्त सुझाव मानूं?

लु० फि० : नहीं।

गां० : उन्हें ठीक समयपर मालूम हो जायेगा।

लु० फि० : यदि इसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें देखा जाये तो आप एक अभूतपूर्व और विलक्षण कार्य कर रहे हैं — आप एक साम्राज्यकी समाप्तिका विधान कर रहे हैं।

गां० : यह कार्य तो एक बच्चा भी कर सकता है। मैं लोगोंकी सहज वृत्तियों को प्रेरित करूँगा। हो सकता है, मैं उन्हें जगा पाऊँ।

लु० फि० : हमें यह देखने की कोशिश करनी चाहिए कि दुनिया-भरमें इसकी क्या प्रतिक्रिया हो सकती है। हो सकता है, आपके मित्र, चीन और रूस, ही आपसे सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करने की अपील करें।

गां० : वे मुझसे अपील तो करें। हो सकता है, मैं मान जाऊँ। लेकिन यदि मैं समयपर उनसे अपील कर सकूं तो हो सकता है मैं ही उन्हें अपने विचार का कायल कर लूं। यदि यहाँ आपकी पहुँच उच्च अधिकारियोंतक हो तो उन्हें यह

बता दीजिए। आप बड़े अच्छे श्रोता हैं। आप सीधे और निष्कपट हैं। उनसे बात कीजिए और उन्हें यह दिखाने का मौका दीजिए कि क्या मेरे प्रस्तावमें कोई दोष हैं।

लु० फि० : क्या आपकी ओरसे वाइसरायसे यह कहने का मुझे अधिकार है?

गां० : जी हाँ, आपको मेरी अनुमति है। वे मुझसे बात करें; हो सकता है, मैं उनके विचारोंका कायल हो जाऊँ। मैं विवेकशील आदमी हूँ। मैं ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहूँगा जिससे चीनको नुकसान हो।

लु० फि० : या अमेरिकाको?

गां० : यदि अमेरिकाको क्षति पहुँची तो उससे हरएकको क्षति पहुँचेगी।

लु० फि० : क्या आपकी इच्छा है कि राष्ट्रपति रूजवेल्टको आपके दृष्टिकोणसे अवगत करा दिया जाये?

गां० : जी हाँ। मैं किसीसे अनुरोध तो नहीं करना चाहता, लेकिन यह जरूर चाहता हूँ कि श्री रूजवेल्ट मेरी योजना, मेरे विचारों और समझौतेके लिए मेरी तत्परताको जान लें। अपने राष्ट्रपतिसे कहिए कि मैं चाहता हूँ, मुझे आन्दोलन न करने के लिए समझाया जा सके तो मैं समझने को तैयार हूँ।

लु० फि० : आन्दोलन आरम्भ करने पर क्या आप किसी कड़ी कार्रवाईकी आशा रखते हैं?

गां० : हाँ, मैं आशा रखता हूँ कि किसी भी दिन ऐसी कार्रवाई की जा सकती है। मैं उसके लिए तैयार हूँ। मैं जानता हूँ कि हो सकता है, मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊँ। मैं तैयार हूँ।

[अंग्रेजीसे]

ए वीक विद गांधी, पृ० १४-२०, २४-५, ३०-३७, ४२-५९, ६७-७१, ७६-८५, ८९-९३ और ९६-१०६

परिशिष्ट ६

कांग्रेस कार्य-समिति द्वारा पारित प्रस्ताव[1]

१४ जुलाई, १९४२

दिन-प्रतिदिनकी घटनाओंसे और भारतकी जनता आज जिस अनुभवके दौरसे गुजर रही है उससे कांग्रेसियोंके इस मतकी पुष्टि होती है कि भारतमें अंग्रेजी शासन तुरन्त समाप्त हो जाना चाहिए। ऐसा केवल इसलिए नहीं होना चाहिए कि विदेशी शासन कितना ही अच्छा क्यों न हो, वह अपने-आपमें एक बुराई है और अधीन जनताको सतत हानि पहुँचाता है बल्कि इसलिए भी कि गुलाम भारत अपने देशकी रक्षा करने में और मानव-जातिकी तबाही करनेवाले इस युद्धके रुखको प्रभावित करने में कोई कारगर भूमिका नहीं निभा सकता। इस प्रकारकी स्वतन्त्रता केवल भारतके

१. देखिए पृ० ३१४-१६।

हितके लिए ही नहीं, बल्कि विश्वकी सुरक्षाके लिए और नाजीवाद, फासीवाद, सैन्यवाद तथा अन्य प्रकारके साम्राज्यवाद और एक राष्ट्रपर दूसरे राष्ट्रके आक्रमणके सिलसिले की समाप्तिके लिए भी आवश्यक है। जबसे विश्व-युद्ध छिड़ा है तबसे कांग्रेस अंग्रेजी सरकारको परेशानीमें न डालने की नीतिका पालन विचारपूर्वक करती रही है। अपने सत्याग्रहके निष्प्रभाव होने का खतरा उठाकर भी उसने इस आशासे सत्याग्रहको जान-बूझकर प्रतीकात्मक रूप दे दिया कि परेशानीमें न डालने की इस नीतिका पालन यदि तर्कसंगत सीमातक किया गया तो उसकी ठीक कद्र की जायेगी और वास्तविक सत्ता लोक-निर्वाचित प्रतिनिधियोंको सौंप दी जायेगी, जिससे राष्ट्र मानव-स्वतन्त्रताको, जिसपर आज कुचले जाने का खतरा आ पड़ा है, विश्व-भरमें साकार करने में अपना पूर्णतम योगदान कर सकेगा। उसे यह भी आशा थी कि ऐसा कुछ भी नहीं किया जायेगा जिसका प्रयोजन भारतपर ब्रिटेनकी गिरफ्तको मजबूत बनाना हो।

लेकिन कांग्रेसकी ये आशाएँ चूर-चूर कर दी गई हैं। क्रिप्सके विफल प्रस्तावोंसे बिलकुल स्पष्ट हो गया कि भारतके प्रति ब्रिटिश सरकारके रुखमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। भारतपर ब्रिटेनकी गिरफ्त किसी भी तरह ढीली नहीं की जानेवाली है। सर स्टैफर्ड क्रिप्सके साथ बातचीतमें कांग्रेसके प्रतिनिधियोंने राष्ट्रीय माँगके अनुरूप जो न्यूनतम चीज हो सकती है उसे हासिल करने की पूरी कोशिश की, पर कोई फायदा नहीं हुआ। इस हताशाके फलस्वरूप ब्रिटेनके खिलाफ बड़ी तेजीसे और व्यापक रूपसे दुर्भावना बढ़ी और जापानी फौजकी सफलतापर सन्तोषका भाव बढ़ता जा रहा है।

कार्य-समिति इस स्थितिको गहरी आशंकाकी दृष्टिसे देखती है, क्योंकि इसे यदि रोका नहीं गया तो इसका अवश्यम्भावी परिणाम होगा आक्रमणको मौन स्वीकृति देना। समिति मानती है कि सभी आक्रमणोंका प्रतिरोध किया जाना चाहिए, क्योंकि इसके आगे झुकने का अर्थ भारतीय जनताकी अधोगति और उसकी पराधीनताका जारी रहना होगा। कांग्रेस इस बातके लिए बहुत उत्सुक है कि जो-कुछ मलाया, सिंगापुर और बर्मामें हुआ उसकी पुनरावृत्ति यहाँ न हो और इसलिए वह जापान या किसी भी विदेशी शक्ति द्वारा भारतपर आक्रमण या उसकी भूमिमें बलात् प्रवेशके विरुद्ध प्रतिरोध संगठित करना चाहती है। कांग्रेस ब्रिटेनके खिलाफ मौजूदा दुर्भावनाको सद्भावनामें परिणत कर देगी और दुनियाके राष्ट्रों और लोगोंके लिए आजादी प्राप्त करने के संयुक्त अभियानमें और उस अभियानमें सामने आनेवाली कठिनाइयों तथा मुसीबतोंमें भारतको खुशीसे शरीक होनेवाला हिस्सेदार बना देगी। यह केवल तभी सम्भव होगा जब भारत स्वतन्त्रताकी दीप्ति अनुभव करे।

कांग्रेसके प्रतिनिधियोंने साम्प्रदायिक समस्याका हल निकालने का पूरा प्रयास किया है। लेकिन विदेशी सत्ताकी मौजूदगीके कारण उसे सुलझाना असम्भव हो गया है और विदेशी आधिपत्य तथा हस्तक्षेपकी समाप्तिके बाद ही वर्तमान अवास्तविकताका स्थान वास्तविकता ग्रहण कर सकती है, और भारतके सभी वर्गों और दलोंके लोग परस्पर सहमतिके आधारपर भारतकी समस्याओंका सामना और समाधान कर सकेंगे।

जिन वर्तमान राजनीतिक दलोंका संगठन मुख्यतः ब्रिटिश सत्ताका ध्यान आकर्षित करने और उसपर प्रभाव डालने के विचारसे किया गया है, वे तब सम्भवतः निष्क्रिय हो जायेंगे। भारतके इतिहासमें पहली बार देशमें इस बातका बोध जाग्रत होगा कि राजा-महाराजा, जागीरदार, जमींदार और जायदाद तथा धन-दौलतवाले वर्ग अपनी दौलत और सम्पत्ति खेतों, कारखानों और दूसरी जगहोंमें काम करनेवाले मजदूरोंसे प्राप्त करते हैं और सत्ता तथा अधिकार प्रधानतः उन मजदूरोंके पास होने चाहिए। भारतसे अंग्रेजी शासन हट जाने के बाद देशके जिम्मेदार स्त्री-पुरुष मिलकर एक अस्थायी सरकार बनायेंगे, जो भारतकी जनताके सभी महत्त्वपूर्ण वर्गोंका प्रतिनिधित्व करेगी। यह सरकार बादमें एक ऐसी योजना तैयार करेगी जिसके अनुसार संविधान-सभा बुलाई जायेगी। वह सभा भारतके शासनके लिए एक ऐसा संविधान तैयार करेगी जो जनताके सभी वर्गोंको स्वीकार हो। स्वतन्त्र भारतके प्रतिनिधि और ग्रेट ब्रिटेनके प्रतिनिधि अपने भावी सम्बन्धोंको तय करने के लिए और आक्रमणका सामना करने के समान उद्देश्यमें दोनों देशोंके मित्रवत् सहयोगके लिए परस्पर परामर्श करेंगे।

कांग्रेसकी यह हार्दिक आकांक्षा है कि भारत इस योग्य बने कि वह जनताकी संयुक्त संकल्प-शक्ति और ताकतके बलपर आक्रमणका कारगर ढंगसे मुकाबला कर सके। कांग्रेसने ब्रिटिश शासनके भारतसे हट जाने का जो सुझाव रखा है उसमें उसकी ऐसी कोई मंशा नहीं है कि ग्रेट ब्रिटेन या मित्र-राष्ट्रोंको युद्ध-संचालनमें परेशान किया जाये, अथवा भारतपर आक्रमणको किसी भी तरह प्रोत्साहन दिया जाये, या चीन पर जापानी या धुरी-गुटसे सम्बद्ध किसी अन्य ताकतके दबावको बढ़ाया जाये। कांग्रेस का यह भी इरादा नहीं है कि मित्र-राष्ट्रोंकी प्रतिरक्षात्मक शक्तिको जोखिममें डाला जाये।

अतः कांग्रेस इस बातके लिए सहमत है कि यदि मित्र-राष्ट्र चाहें तो वे जापानी या अन्य किसी आक्रमणको रोकने और उसका प्रतिरोध करने के लिए तथा चीनकी रक्षा और सहायता करने के लिए भारतमें अपनी फौज रख सकते हैं। भारतसे ब्रिटिश सत्ता हटाये जाने के सुझावका मतलब भारतसे सभी अंग्रेजोंको हटा दिया जाना कभी नहीं रहा, और उन लोगोंको हटाने का इरादा तो कदापि नहीं रहा जो भारतको अपना घर बनाना चाहेंगे और यहाँके नागरिक बनकर अन्य लोगोंके साथ समानताके स्तरपर रहना चाहेंगे। ब्रिटिश सत्ता हटाये जाने का काम यदि सद्भावनापूर्वक सम्पन्न होगा तो इसके फलस्वरूप भारतमें एक मजबूत अस्थायी सरकारकी स्थापना होगी और आक्रमणका प्रतिरोध करने और चीनकी मदद करने में उस सरकार और मित्र-राष्ट्रोंके बीच सहयोग कायम होगा। कांग्रेस यह मानती है कि ऐसा मार्ग अपनाने में खतरे हो सकते हैं। लेकिन किसी भी देशको स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए और विशेषकर इस मौजूदा नाजुक घड़ीमें देश और विश्व-भरकी स्वतन्त्रताके अधिक व्यापक ध्येयको कहीं अधिक बड़े खतरों और संकटोंसे बचाने के लिए ऐसे खतरोंका सामना करना ही है। अतः कांग्रेस राष्ट्रीय लक्ष्यको प्राप्त करने के लिए अधीर होते हुए भी जल्दबाजीमें कोई कदम नहीं उठाना चाहती और जहाँतक सम्भव हो ऐसी किसी भी कार्रवाईको टालना चाहती है जिससे मित्र-राष्ट्रोंके लिए परेशानी पैदा हो। यदि

ब्रिटिश सरकार इस अत्यन्त युक्तिसंगत और न्यायोचित सुझावको, जो न केवल भारत के हितमें है, बल्कि ब्रिटेनके हितमें और स्वतन्त्रताके उस ध्येयके हितमें भी है जिसमें मित्र-राष्ट्रोंने अपनी निष्ठाकी घोषणा की है, स्वीकार कर लेगी तो कांग्रेसको प्रसन्नता होगी। लेकिन यदि यह अपील व्यर्थ हो जाती है तो कांग्रेस इस परिस्थितिके जारी रहने को भारी आशंकाकी दृष्टिसे ही देख सकती है, क्योंकि उसके कारण हालत दिनों-दिन बिगड़ रही है और आक्रमणका प्रतिरोध करने का भारतका संकल्प और शक्ति कमजोर होती जा रही है। उस अवस्थामें कांग्रेस अनिच्छापूर्वक उस सारी अहिंसात्मक शक्तिका उपयोग करने को विवश होगी जो राजनीतिक अधिकारों और स्वतन्त्रताकी रक्षाकी अपनी नीतिके अंगके रूपमें १९२० में अहिंसाको अपनाने के बादसे संचित की हो। इस तरहका व्यापक संघर्ष अनिवार्य रूपसे महात्मा गांधीके नेतृत्वमें चलेगा। यहाँ जो सवाल उठाये गये हैं वे भारतीय जनता और मित्र-राष्ट्रोंके लोगोंके लिए अत्यन्त आवश्यक और दूरगामी महत्त्वके हैं। इसलिए कार्य-समिति उनपर अन्तिम निर्णय अ० भा० कांग्रेस कमेटीपर छोड़ती है। इस प्रयोजनसे अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठक ७ अगस्त, १९४२ को बम्बईमें होगी।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द २, पृ० ३८५-८७; **इंडियन ऐनुअल रजिस्टर**, १९४२, जिल्द २, पृ० २०७-९ भी

परिशिष्ट ७

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी तथा अन्य लोगोंका पत्र[1]

मद्रास
१८ जुलाई, १९४२

प्रिय महात्माजी,

१४ जुलाईको वर्धामें कांग्रेस कार्य-समिति द्वारा पारित किये गये प्रस्तावको, जो अगले महीने अ० भा० कांग्रेस कमेटीके समक्ष रखा जानेवाला है, हमने ध्यानपूर्वक पढ़ा है। इस प्रस्तावकी स्वीकृतिको ध्यानमें रखते हुए हम लोगोंको, जो १९२० से ही आपके साथ काम करते आये हैं, लगता है कि इसके सम्बन्धमें अपना सुविचारित मत आपके सामने रख देना हमारा कर्त्तव्य है। भारतकी विदेशी आधिपत्यसे पूर्ण स्वतन्त्रताकी माँगके सम्बन्धमें तो कोई मतभेद हो ही नहीं सकता, किन्तु वर्त्तमान सरकारके हट जाने और उसके स्थानपर दूसरी सरकारके स्वतः ही प्रतिष्ठित हो जाने का विचार सर्वथा असम्भव है। राज्य मात्र ऊपरसे खड़ा कर दिया गया कोई ढाँचा नहीं है, बल्कि वह जनताके हर कार्यकलापसे इतने घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध है कि एक सरकारके हटने

१. देखिए पृ० ३५८।

के साथ ही यदि उसके स्थानपर दूसरी सरकार प्रतिष्ठित नहीं कर दी जाती तो उसके हटने का मतलब राज्य तथा समाजका विघटन होगा। अपनी किसी उत्तराधिकारी सरकारकी सहमतिसे सत्ता सौंपे बिना या जब्रन किसी उत्तराधिकारी सरकार द्वारा अपदस्थ किये बिना किसी भी सरकारके लिए हट जाना अस्वाभाविक है। अस्थायी सरकारका गठन और संविधान-सभाका बुलाया जाना तभी सम्भव है जब राज्यका अस्तित्व सुनिश्चित रहे।

अत: हमारा खयाल है कि हिन्दू-मुस्लिम समझौता चाहे जितना ही मुश्किल हो, जबतक ब्रिटिश सरकार यहाँ रहकर कार्य कर रही है, यह जरूरी है कि देशके प्रमुख राजनीतिक संगठन, यानी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग एक ऐसी अस्थायी सरकारकी संयुक्त योजना तैयार करें जो वर्त्तमान सरकारके हाथोंसे सत्ता ले सके और राज्यका अस्तित्व बनाये रख सके। तभी ब्रिटिश सरकारके हटने की माँग हम औचित्यपूर्वक रख सकते हैं। यदि हम यह मानते हों कि अंग्रेजोंपर नैतिक दबाव डालकर उन्हें बिना शर्त हटने के लिए कभी तैयार किया जा सकता है, तब भी हमें पूरा विश्वास है कि मौजूदा परिस्थितियोंमें उनके हटने के बाद जो अव्यवस्था फैलेगी, उसके कारण वाजिब समयके अन्दर आपकी कल्पनाकी किसी अस्थायी सरकारकी स्थापना सम्भव नहीं होगी।

हम ऐसी माँग तैयार करना जिसकी पूर्तिका परिणाम अनिवार्यत: अराजकता हो या ऐसा कार्यक्रम बनाना जिसमें उस माँगके अस्वीकृत होने पर स्वेच्छापूर्वक व्यापक पैमानेपर कष्ट सहने की बात हो, गलत मानते हैं।

आपका प्रस्ताव है कि असैनिक सत्ता तो हटा ली जाये, लेकिन अंग्रेजोंकी और मित्र-राष्ट्रोंकी फौजें भारतकी अस्थायी सरकार, जिसका बनना संदिग्ध है, के साथ सन्धिकी आशामें यहाँ बनी रह सकती हैं। इसका परिणाम तो यह होगा कि फौजी ताकतें ही सारे सरकारी कामकाजका संचालन करेंगी। चाहे यह केवल उनकी सुरक्षा और प्रभावकारी कार्य-सम्पादनके तकाजेपर ही क्यों न हो। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि स्थानीय सरदार और पीड़ित जनताके आग्रहपर भी वे इस दिशामें अग्रसर हों। इसका मतलब ब्रिटिश शासनको और भी बुरे रूपमें पुन: प्रतिष्ठित करना होगा।

इन आपत्तियोंके बावजूद हम आपके प्रस्तावको और नहीं तो इस बातका खयाल करके मान लेते कि अंग्रेज हटनेवाले नहीं हैं और आन्दोलनकी वास्तविक कार्रवाईका मतलब मौजूदा सरकारके प्रति राष्ट्रव्यापी विरोध होगा, और शायद कालक्रमसे इससे कोई सन्तोषजनक समाधान निकल सके। लेकिन इस नाजुक अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिमें, जिससे भारत प्रत्यक्ष रूपसे सम्बद्ध है, यह निश्चित है कि इस आन्दोलनसे जिस पक्षको तत्काल लाभ होगा वह जापान है। यदि इस आन्दोलन द्वारा जापानी आक्रमणका प्रतिरोध करने में सक्षम राष्ट्रीय सरकार स्थापित करके ब्रिटिश सरकारको हटाना सम्भव होता तो शायद इससे सम्बद्ध सारी जोखिमें उठाना उचित होता। लेकिन इस परिणामकी चूँकि तनिक भी सम्भावना नहीं है, इसलिए इस आन्दोलनका नतीजा

यही होगा कि दमन-चक्र और भी तेजी और व्यापक रूपसे चल पड़ेगा तथा लोग बहुत कष्टमें पड़ जायेंगे। इस सबसे भारतमें जापानके बलात् प्रवेश और इस देशपर उसके कब्जेका रास्ता सुगम होगा।

इस बातकी कोई सम्भावना नहीं है कि सत्ताधारी इस आन्दोलनको केन्द्रीय निर्देशनके अन्तर्गत व्यवस्थित और सीधे ढंगसे आगे बढ़ने देंगे। यदि हम यथोचित नियन्त्रणके अभावमें छिट-फुट तौरपर फूट पड़नेवाली हिंसाकी परवाह न करें तो भी एक अन्य गम्भीर खतरा है। जब जिम्मेदार नेता गिरफ्तार कर लिये जायेंगे और लोगोंको उनका निर्देशन नहीं मिल पायेगा तब शत्रु आसानीसे इस आन्दोलनका फायदा उठा सकते हैं और इसे अपने हकमें एक पंचमाँगी प्रवृत्तिमें परिवर्तित कर सकते हैं।

यदि इस आन्दोलनसे जैसा हमने ऊपर बताया है वैसे परिणाम सम्भावित न होते तो आपके साथ मतभेद होते हुए भी आपके द्वारा आरम्भ किये गये किसी भी आन्दोलनमें हम पूरी वफादारीके साथ शरीक होते। इस सम्बन्धमें हमारा विश्वास इतना दृढ़ है कि उपर्युक्त कारणोंसे सार्वजनिक रूपसे आपके प्रस्तावका विरोध करना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। लेकिन यहाँ ऐसा सोचा जा सकता है कि आपका यह कदम शायद एक अन्तर्राष्ट्रीय अपीलसे युक्त विरोध-प्रदर्शनका काम करे और भारतको सचमुच सीधी कार्रवाईकी गुफामें ढकेले बिना देशके लिए राजनीतिक समाधानका एक नया रास्ता खोल दे। हमारी किसी कार्रवाईके फलस्वरूप यह सम्भावना कम न हो जाये, इसलिए हम अपने विरोधको सार्वजनिक रूपसे व्यक्त नहीं कर रहे हैं, बल्कि यह पत्र भेजकर आपसे ही अनुरोध कर रहे हैं कि आपने जिनका संकेत दिया है वे कार्रवाइयाँ आप न करें।

(ह०) च० राजगोपालाचारी
के० सन्तानम्
एस० रामनाथन्
डा० टी० एस० एस० राजन्

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२, जिल्द २, पृ० २०६-७

परिशिष्ट ८

चक्रवर्ती राजगोपालाचारीका फार्मूला[1]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके बीच समझौतेकी शर्तोंका वह आधार जिसपर गांधीजी और श्री जिन्ना सहमत हैं तथा जिसे वे क्रमशः कांग्रेस तथा लीगसे मंजूर करवाने का प्रयास करेंगे:

१. मुस्लिम लीग भारतकी आजादीकी माँगका अनुमोदन करती है और संक्रमण-कालके लिए अस्थायी अन्तरिम सरकार बनाने में वह कांग्रेसको अपना सहयोग प्रदान करेगी। यह अनुमोदन और समर्थन निम्नलिखित शर्तोंपर होगा।

२. युद्ध समाप्त होने के बाद एक आयोग नियुक्त किया जायेगा, जो भारतके पश्चिमोत्तर और पूर्वी भागोंके आपसमें जुड़े उन इलाकोंका सीमांकन करेगा जहाँ कि मुसलमान आबादीका पूर्ण बहुमत है। इस प्रकार सीमांकित क्षेत्रके सभी निवासियोंका वयस्क मताधिकार अथवा अन्य व्यवहार्य मताधिकारके आधारपर किया गया जन-मत-संग्रह हिन्दुस्तानसे उनके अलगावके प्रश्नका अन्तिम निबटारा करेगा। यदि वहाँकी बहुसंख्यक जनता हिन्दुस्तानसे पृथक् एक प्रभुता-सम्पन्न राज्य बनाने का निर्णय करेगी तो उस फैसलेपर अमल किया जायेगा, लेकिन सीमावर्ती इलाकोंको दोनोंमें चाहे जिस राज्यमें शामिल होने का फैसला करने का अधिकार होगा।

३. जनमत-संग्रहके पूर्व सभी पक्षोंको अपने विचारोंका प्रचार करने की खुली छूट होगी।

४. अलगाव होने पर प्रतिरक्षा, वाणिज्य और संचारकी सुरक्षित व्यवस्था तथा अन्य आवश्यक प्रयोजनोंके लिए आपसी समझौते किये जायेंगे।

५. आबादीका स्थानान्तरण पूर्णतः स्थानान्तरित किये जानेवाले लोगोंकी इच्छा पर निर्भर होगा।

६. ये शर्तें तभी बन्धनकारी होंगी जब ब्रिटेन भारतके शासनका पूरा अधिकार और दायित्व हस्तान्तरित करेगा।

[अंग्रेजीसे]
गांधी-जिन्ना टॉक्स, पृ० ३६

१. देखिए पृ० ३५८।

परिशिष्ट ९

समाचारपत्रोंके लिए जवाहरलाल नेहरूका वक्तव्य[1]

५ अगस्त, १९४२

मैंने अभी-अभी पहली बार वह सरकारी 'विज्ञप्ति' देखी है जिसमें अ० भा० कांग्रेस कमेटीके कार्यालयसे पुलिसके छापेके दौरान प्राप्त कतिपय दस्तावेजोंको प्रकाशित किया गया है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि भारत सरकार कितनी बेहाल हो गई है कि उसे इतनी शर्मनाक और बेईमानी-भरी चालें अपनानी पड़ रही हैं। सामान्य तौरपर ऐसी चालबाजियोंका उत्तर देना जरूरी नहीं होता। लेकिन चूँकि इनसे गलतफहमी पैदा होने की आशंका है, इसलिए मैं कुछ बातोंको स्पष्ट कर देना चाहता हूँ।

हमारे यहाँ कार्य-समितिकी बैठकका ब्योरेवार विवरण रखने का चलन नहीं है। केवल अन्तिम निर्णयोंको ही लिपिबद्ध किया जाता है। इस प्रसंगमें सह-सचिवने स्पष्टतया अपने ही रिकार्डके लिए अनौपचारिक तौरपर संक्षेपमें कुछ बातोंका विवरण लिख लिया। ये विवरण अत्यन्त संक्षिप्त और शृंखलाहीन हैं और ये कई दिनोंकी लम्बी बहसके विवरण हैं। इस दौरान विभिन्न अवसरोंपर मैं दो-तीन घंटे बोला होऊँगा। अपने सन्दर्भोंसे अलग करके केवल कुछ वाक्योंको ले लिया गया था। ऐसे वाक्य अकसर गलत धारणा पैदा करते हैं। हम लोगोंमें से किसीको भी उन विवरणोंको देखने या सुधारने का मौका नहीं मिला। वह विवरण अत्यन्त असन्तोषजनक, अधूरा और इसलिए अनेक स्थलोंपर गलत भी है।

हमारी चर्चामें महात्मा गांधी मौजूद नहीं थे। हमें समस्याके हर पहलूपर पूर्ण रूपसे विचार करना था और प्रस्तावोंके मसौदोंमें प्रयुक्त शब्दों और मुहावरोंके फलितार्थोंपर पूरा गौर करना था। यदि गांधीजी वहाँ होते तो इसमें से बहुत-सी चर्चासे बचा जा सकता था, क्योंकि वे अपना दृष्टिकोण ज्यादा पूर्ण रूपसे हमें बता सकते थे।

उदाहरणके लिए, भारतसे अंग्रेजोंकी वापसीके प्रश्नपर जब विचार किया गया तब मैंने बताया कि यदि सशस्त्र सेना अचानक हटा ली जायेगी तो जापानी सहज ही आगे बढ़कर बिना किसी बाधाके देशमें बलात् प्रवेश कर सकते हैं। इस स्पष्ट समस्याका निराकरण तब हुआ जब गांधीजी ने बादमें यह समझाया कि ब्रिटिश तथा अन्य फौजें हमला रोकने के लिए बनी रह सकती हैं।

गांधीजी को धुरी-राष्ट्रोंकी विजयकी आशा थी, इस कथनमें एक बात छोड़ दी गई है जो इस कथनको महत्त्वपूर्ण रूपसे मर्यादित करती है। जो बात गांधीजी ने

१. देखिए पृ० ४२२-२५।

बार-बार कही है और जिसका मैंने उल्लेख किया है वह है उनका यह विश्वास कि यदि ब्रिटेन भारत तथा अपने औपनिवेशिक क्षेत्रोंके सम्बन्धमें अपनी सम्पूर्ण नीति परिवर्तित नहीं करता तो वह विनाशकी ओर अग्रसर हो रहा है। उन्होंने यह भी कहा कि यदि नीतिमें उचित परिवर्तन कर दिया जाये और यह युद्ध सचमुच सभी देशोंकी जनताकी स्वतन्त्रताका युद्ध बन जाये तो विजयश्री निश्चय ही मित्र-राष्ट्रोंका वरण करेगी।

जापानके साथ समझौता-वार्त्ताके उल्लेख भी गलत तथा अपने सन्दर्भसे पूर्णतया विच्छिन्न हैं। गांधीजी अपने विरोधीके साथ संघर्ष करने के पूर्व हमेशा उसे उसकी सूचना भेज देते हैं। अतः उन्होंने जापानसे न केवल भारतसे दूर रहने का, बल्कि चीन आदिसे हट जाने का भी अनुरोध किया होता। कुछ भी हो, गांधीजी भारतमें हर हमलावरका प्रतिरोध करने के लिए कृत-संकल्प हैं और उन्होंने हमारे देशवासियोंको भी अपने प्राणोंतक की बाजी लगाकर यही करने की सलाह दी। उन्हें हार कभी नहीं माननी है।

यह कहना बिलकुल बेतुका है कि हममें से किसीने जापानको मार्ग देने आदिके बारेमें उसके साथ किसी प्रकारका समझौता करने की बात की। मैंने जो कहा वह यह था कि जापान ऐसा चाहेगा, लेकिन हम इसके लिए कभी सहमत नहीं हो सकते। हमारी समूची नीतिकी बुनियाद सदा आक्रमणका प्रबलतम प्रतिरोध रही है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ५-८-१९४२, और **गांधीजीज कॉरस्पॉण्डेन्स विद गवर्नमेंट, १९४२-४४**, पृ० २०५-६

परिशिष्ट १०

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा पारित प्रस्ताव[1]

[८ अगस्त, १९४२]

कार्य-समितिने १४ जुलाई, १९४२ के अपने प्रस्तावमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके आगे जो विषय रखा है कमेटीने उसपर तथा उसके बादकी घटनाओंपर, जिनमें युद्धकी परिस्थितिका क्रमिक परिवर्तन, ब्रिटिश सरकारके जिम्मेदार प्रवक्ताओंके बयान और भारत तथा विदेशोंमें हुई टीका-टिप्पणियाँ और आलोचनाएँ भी शामिल हैं, बहुत ध्यानसे विचार किया है। कमेटी उस प्रस्तावको स्वीकार करती है, और उसका समर्थन करती है, और उसकी यह राय है कि बादकी घटनाओंसे उसका औचित्य और अधिक सिद्ध हो गया है और यह चीज स्पष्ट हो गई है कि भारतमें ब्रिटिश शासनकी अविलम्ब समाप्ति भारत और संयुक्त राष्ट्रोंके ध्येयकी सफलता दोनोंके लिए अत्यन्त

१. देखिए पृ० ४१७-१८।

आवश्यक है। उस शासनके जारी रहने से भारतकी अधोगति हो रही है, वह दुर्बल हो रहा है और अपनी रक्षा करने तथा विश्व-स्वतन्त्रतामें योग देने की उसकी क्षमता उत्तरोत्तर कम होती जा रही है।

कमेटीको यह देखकर बड़ी निराशा हुई है कि रूसी और चीनी मोर्चोंपर स्थिति बिगड़ रही है। रूसी एवं चीनी लोग अपनी स्वाधीनताके रक्षार्थ जो वीरता दिखा रहे हैं, कमेटी उसकी भूरि-भूरि सराहना करती है। यह उत्तरोत्तर बढ़ता संकट उन सभी लोगोंको जो स्वतन्त्रताके लिए प्रयत्नशील हैं और आक्रमणग्रस्त लोगों से सहानुभूति रखते हैं, इस कर्त्तव्यके लिए बाध्य करता है कि वे मित्र-राष्ट्रों द्वारा अभीतक अपनाई गई नीतिके मूल सिद्धान्तोंकी जाँच करें, क्योंकि वह नीति बार-बार विनाशकारी रूपसे विफल रही है। इस तरहके उद्देश्यों, नीतियों और तरीकोंपर जमे रहने से विफलता सफलतामें नहीं बदली जा सकेगी, क्योंकि पिछला अनुभव यह दिखाता है कि विफलताके बीज उनके भीतर ही मौजूद हैं। इन नीतियोंका आधार स्वतन्त्रताकी अपेक्षा अधीन और औपनिवेशिक देशोंपर अपना आधिपत्य तथा साम्राज्यवादी परम्परा और पद्धतिको जारी रखना ही अधिक रहा है। साम्राज्यको कब्जेमें रखने से शासक-सत्ताकी शक्तिमें कोई वृद्धि नहीं हुई है, उलटे वह उसके लिए एक बोझ और अभिशाप बन गया है। भारत जो आधुनिक साम्राज्यवादकी क्लासिक लीला-स्थली है, आज प्रश्नका मूल बिन्दु बन गया है, क्योंकि भारतकी स्वतन्त्रता से ही ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्रोंको परखा जायेगा और एशिया एवं आफ्रिकाके लोग आशा और उत्साहसे भर उठेंगे।

इस प्रकार इस देशमें ब्रिटिश शासनकी समाप्ति एक ऐसा महत्त्वपूर्ण और तात्कालिक प्रश्न है जिसपर इस युद्धका भविष्य और स्वतन्त्रता तथा जनतन्त्रकी सफलता निर्भर है। भारतके स्वतन्त्र होने से यह सफलता सुनिश्चित हो जायेगी, क्योंकि तब वह अपने सारेके-सारे विपुल साधन स्वतन्त्रताके लिए तथा नाजीवाद, फासीवाद और साम्राज्यवादके विरुद्ध संघर्षमें झोंक देगा। इससे न केवल युद्धका पासा पलट जायेगा, बल्कि सभी अधीन और उत्पीड़ित लोग संयुक्त राष्ट्रोंके पक्षमें हो जायेंगे और इन राष्ट्रोंको, जिनका सहयोगी भारत होगा, विश्वका नैतिक और आध्यात्मिक नेतृत्व प्रदान करेंगे, जब कि पराधीन भारत ब्रिटिश साम्राज्यवादका प्रतीक बना रहेगा, और उस साम्राज्यवादके कलंकका असर सभी संयुक्त राष्ट्रोंके भाग्यपर पड़ेगा।

इसलिए आजके संकटकी यह आवश्यक माँग है कि भारत स्वाधीन हो और ब्रिटिश आधिपत्य समाप्त हो। भविष्यमें पूरी की जानेवाली किसी भी प्रतिज्ञा या गारंटीसे इस स्थितिपर कोई असर नहीं पड़ सकेगा और न इस संकटका मुकाबला ही किया जा सकेगा। उनसे जन-मानसपर आवश्यक मनोवैज्ञानिक प्रभाव नहीं पड़ सकता। अभी मिली स्वतन्त्रता ही अपनी ज्योतिसे करोड़ों लोगोंमें वह शक्ति और उमंग जगा सकेगी जिससे युद्धका नक्शा तुरन्त बदल जायेगा।

अ० भा० कांग्रेस कमेटी इसलिए ब्रिटिश सत्ताको भारतसे हटाने की अपनी माँगको पूरे जोरसे दोहराती है। भारतकी स्वाधीनताकी घोषणाके बाद एक अस्थायी सरकार

बन जायेगी और स्वतन्त्र भारत संयुक्त राष्ट्रोंका सहयोगी बन जायेगा तथा स्वतन्त्रता-संघर्षके संयुक्त अभियानके कष्टों और दुःखोंमें उनका साझी होगा। अस्थायी सरकार केवल देशके मुख्य दलों और समुदायोंके सहयोगसे ही बन सकती है। इस प्रकार वह भारतीय जनताके सभी महत्त्वपूर्ण वर्गोंका प्रतिनिधित्व करनेवाली एक मिली-जुली सरकार होगी। उसका मुख्य कार्य भारतकी प्रतिरक्षा, मित्र-राष्ट्रोंके साथ मिलकर सभी उपलब्ध सैनिक एवं अहिंसक शक्तियों द्वारा आक्रमणका प्रतिरोध तथा खेतों और कारखानोंमें काम करनेवाले लोगोंकी खुशहाली और उन्नतिको प्रोत्साहन देना होना चाहिए, क्योंकि समस्त सत्ता और अधिकार तो बुनियादी तौरपर आखिर उन्हींके होने चाहिए। अस्थायी सरकार एक संविधान सभाकी योजना बनायेगी, जो भारतके शासनके लिए एक ऐसा संविधान तैयार करेगी जो जनताके सभी वर्गोंको स्वीकार हो। कांग्रेसकी रायमें, यह संविधान संघीय होना चाहिए जिसमें संघकी इकाइयोंको अधिकतम स्वायत्तता हो और अवशिष्ट अधिकार उन इकाइयोंको प्राप्त हों। भारत और मित्र-राष्ट्रोंके भावी सम्बन्धोंमें तालमेल बैठाने का काम इन सभी स्वतन्त्र राष्ट्रोंके प्रतिनिधि अपने पारस्परिक लाभके लिए और आक्रमणके प्रतिरोधके समान कार्यमें अपने सहयोगके लिए परस्पर विचार-विमर्श करके करेंगे। स्वतन्त्र हो जाने पर भारत जनताके संयुक्त संकल्प और शक्तिसे आक्रमणका प्रभावशाली ढंगसे प्रतिरोध कर सकेगा।

भारतकी स्वतन्त्रता अन्य सभी एशियाई राष्ट्रोंकी, जो इस समय विदेशी आधिपत्यके अधीन हैं, स्वतन्त्रताका प्रतीक और भूमिका होनी चाहिए। बर्मा, मलाया, इंडो-चायना, डच इंडीज, ईरान और ईराकको भी पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। यह चीज साफ समझ लेनी चाहिए कि इनमें से ज्यादातर देश जिस तरह अब जापान के नियन्त्रण में हैं उसी तरह बादमें किसी अन्य औपनिवेशिक सत्ताके शासन या नियन्त्रणमें नहीं रखे जाने चाहिए।

संकटकी इस घड़ीमें अ० भा० कांग्रेस कमेटीको जहाँ मुख्य चिन्ता भारतकी स्वाधीनता और प्रतिरक्षाकी है, वहाँ कमेटीकी यह भी राय है कि भावी शान्ति और विश्वकी सुरक्षा और सुव्यवस्थित प्रगतिके लिए स्वतन्त्र राष्ट्रोंका एक विश्व-संघ आवश्यक है। आधुनिक जगतकी समस्याएँ किसी और आधारपर सुलझाई ही नहीं जा सकतीं। इस तरहके विश्व-संघसे उसके अंगीभूत राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रता सुनिश्चित हो जायेगी, एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्रपर आक्रमण और उसका शोषण रुक जायेगा, राष्ट्रीय अल्पसंख्यकोंकी रक्षा और सभी पिछड़े इलाकों तथा लोगोंकी प्रगति हो सकेगी, और विश्वके साधनोंको सबकी समान भलाईके लिए एकत्रित किया जा सकेगा। इस तरहका विश्व-संघ स्थापित हो जाने पर निरस्त्रीकरण सभी देशोंके लिए व्यावहारिक हो जायेगा, राष्ट्रीय थल-सेनाओं, नौसेनाओं और वायुसेनाओंकी कोई जरूरत नहीं रहेगी, विश्व-संघकी एक प्रतिरक्षा सेना ही विश्व-शान्ति रखेगी तथा आक्रमणको रोकेगी।

स्वाधीन भारत इस तरहके विश्व-संघमें खुशीसे शामिल होगा और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंको सुलझाने में अन्य देशोंके साथ बराबरीके आधारपर सहयोग करेगा।

इस तरहके संघके द्वार उन सभी राष्ट्रोंके लिए जो उसके मूल सिद्धान्तोंसे सहमत हों, खुले होने चाहिए। फिर भी, युद्धको दृष्टिमें रखते हुए यह संघ आरम्भमें अनिवार्य रूपसे संयुक्त राष्ट्रोंतक ही सीमित हो। यदि अभी इस तरहका कदम उठाया गया तो उसका युद्धपर, धुरी-राष्ट्रोंके लोगोंपर और भावी शान्तिपर बहुत ही जबरदस्त असर पड़ेगा।

परन्तु कमेटी बड़े अफसोसके साथ यह महसूस करती है कि युद्धकी दुःखान्त और अदम्य शिक्षाओं और संसारपर मँडराते खतरोंके बावजूद, किसी भी देशकी सरकार अभी विश्व-संघके लिए यह अनिवार्य कदम उठानेको तैयार नहीं है। ब्रिटिश सरकारकी प्रतिक्रियाओं और विदेशी समाचारपत्रोंकी भ्रान्त आलोचनाओंसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारतकी स्वाधीनताकी स्पष्ट माँग तकका विरोध किया जा रहा है, जब कि यह माँग मुख्य रूपसे मौजूदा खतरेका सामना करने और संकटकी इस घड़ीमें भारतको अपनी रक्षा तथा चीन और रूसकी सहायता कर सकनेके योग्य बनानेके लिए ही रखी गई है। कमेटीको इस बातकी बड़ी फिक्र है कि चीन और रूसकी प्रतिरक्षामें, जिनकी आजादी अमूल्य है और अवश्य कायम रहनी चाहिए, किसी भी तरह बाधा न पड़े और संयुक्त राष्ट्रोंकी प्रतिरक्षा-क्षमताको कोई क्षति न पहुँचे। परन्तु भारत और इन राष्ट्रों, दोनोंके लिए खतरा बढ़ता जा रहा है। इस अवसरपर निष्क्रियता और विदेशी शासनकी अधीनतासे न केवल भारतकी प्रतिष्ठा गिर रही है और अपनी रक्षा तथा आक्रमणका प्रतिरोध कर सकनेकी उसकी क्षमता घट रही है, अपितु इस दिन-प्रतिदिन बढ़ते खतरेका कोई प्रतिकार नहीं हो पा रहा है और संयुक्त राष्ट्रोंके लोगोंकी कोई सेवा भी नहीं हो पा रही है। ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्रोंके नाम कार्य-समितिकी पुरजोर अपीलका अभीतक कोई अनुकूल उत्तर नहीं मिला है, और बहुत-से विदेशी क्षेत्रोंमें उसकी जो आलोचना हुई है वह यही दिखाती है कि भारत और विश्वकी जरूरतोंका उन्हें कोई ज्ञान नहीं है। यही नहीं, कभी-कभी तो उसमें भारतकी आजादीके प्रति द्वेषतक दिखाई देता है, जो आधिपत्य और जातीय अहम्मन्यताकी मनोवृत्तिका द्योतक है। एक गर्वीली जाति, जिसे अपनी शक्ति और अपने ध्येयके औचित्यका एहसास है, इसे कदापि सहन नहीं कर सकती।

अ० भा० कांग्रेस कमेटी, विश्व-स्वतन्त्रताके हितके लिए, इस आखिरी घड़ीमें ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्रोंके नाम अपनी यह अपील फिरसे दोहराना चाहेगी। परन्तु कमेटी यह महसूस करती है कि राष्ट्रको उस साम्राज्यवादी और निरंकुश सरकारके विरुद्ध, जो उसपर आधिपत्य जमाये हुए है और उसे अपने तथा मानवताके हितमें कार्य करनेसे रोक रही है, अपने संकल्पको पूरा करनेके प्रयत्नोंसे रोकना अब और उचित नहीं है। कमेटी इसलिए, स्वतन्त्रता और स्वाधीनताके भारतके अनन्य अधिकारकी स्थापनाके लिए यथासम्भव बड़ेसे-बड़े पैमानेपर एक अहिंसक जन-आन्दोलन छेड़नेकी मंजूरी देनेका निश्चय करती है, ताकि देश पिछले बाईस सालोंके शान्तिपूर्ण संघर्षमें संचित अपनी सम्पूर्ण अहिंसात्मक शक्तिको काममें ला सके। इस तरहके संघर्षका गांधीजीके नेतृत्वमें चलना अनिवार्य है, और कमेटी उनसे जो कदम उठाये जाने हैं उनमें राष्ट्रका नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन करनेकी प्रार्थना करती है।

कमेटी भारतके लोगोंसे अपील करती है कि वे सामने आनेवाले खतरों और कठिनाइयोंका साहस और धैर्यसे मुकाबला करें, गांधीजी के नेतृत्वमें एकजुट हों, और भारतीय स्वाधीनता संग्रामके अनुशासित सैनिकोंकी हैसियतसे उनके आदेशोंका पालन करें। उन्हें यह याद रखना चाहिए कि अहिंसा इस आन्दोलनका आधार है। ऐसा मौका आ सकता है कि आदेश जारी करना या आदेशोंका हमारे लोगोंतक पहुँचना असम्भव हो जाये और कोई भी कांग्रेस कमेटी कार्य न कर सके। ऐसी स्थिति होने पर इस आन्दोलनमें भाग लेनेवाले हर नर-नारीको, सामान्य आदेशोंकी हदवन्दीमें अपने लिए स्वयं काम करना होगा। स्वतन्त्रताके इच्छुक और उसके लिए प्रयत्नशील हर भारतीयको अपना मार्गदर्शक स्वयं होना चाहिए और उस कठिन मार्गपर जो अन्तमें हमे भारतकी स्वाधीनता और मुक्तितक ले जायेगा, अविश्रान्त आगे बढ़ते रहना चाहिए।

अन्तमें, अ० भा० कांग्रेस कमेटी स्वतन्त्र भारतके भावी शासनके सम्बन्धमें अपना दृष्टिकोण व्यक्त कर चुकने के बाद सभी सम्बन्धित लोगोंके आगे यह चीज बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहती है कि जन-संघर्ष छेड़नेमें उसका इरादा कांग्रेसके लिए सत्ता प्राप्त करना कतई नहीं है। सत्ता जब प्राप्त होगी तो वह भारतकी समस्त जनताकी होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२, जिल्द २, पृ० २०९-११। **हरिजन**, ९-८-१९४२ और **ट्रान्सफर ऑफ पॉवर**, जिल्द २, पृ० ६२१-२४ भी

परिशिष्ट ११

चक्रवर्ती राजगोपालाचारीका पत्र[1]

४८, बजलुल्ला रोड
त्यागरायनगर
मद्रास
८ अगस्त, १९४२

प्रिय बापू,

मैं बड़ा उत्पाती हूँ, लेकिन आपको मुझे बर्दाश्त करना ही होगा। आपके पिछले तारमें यह लिखा है कि हर कार्य मेरे द्वारा निर्दिष्ट दिशामें, यद्यपि हू-ब-हू उसी तरह नहीं, किया जा रहा है। उससे मुझे थोड़ी-बहुत राहत मिली है। लेकिन मेरा आग्रह यह है कि शंकायुक्त और कृपणतापूर्ण रुखकी अपेक्षा सीधा-साफ रुख अधिक अच्छा है। शंकायुक्त और कृपणतापूर्ण रुखसे काम लेनेका मतलब तो वही

१. देखिए पृ० ४१८। सी० आर० नरसिंहन्‌के अनुसार यह पत्र ८ अगस्तको हवाई डाकसे बम्बई भेजा गया था, और चूँकि गांधीजी ९ अगस्तको तड़के गिरफ्तार कर लिये गये थे, अतः वे इस पत्रको नहीं पढ़ सके होंगे।

भूल करना है जिस भूलके दोषी, हमारे खयालसे, हमसे व्यवहार करने में अंग्रेज लोग हैं। इस क्षण कायदे-आजम शायद अंग्रेजों द्वारा उपेक्षित महसूस कर रहे हैं। इसलिए उन्हें जो देना है वह सब दे देने का यही सबसे अनुकूल अवसर है। यह मत समझिए कि अंग्रेजोंने उन्हें भुला दिया है या आपके द्वारा उठाये बवंडरके कारण वे महत्त्व-हीन बन गये हैं। दूसरे चाहे ऐसा समझें, लेकिन आपको ऐसा नहीं समझना चाहिए। लोगोंमें झुंझलाहट पैदा करने से बचने के लिए अंग्रेज जान-बूझकर उनके या मुसलमानोंके प्रश्नका जिक्र नहीं कर रहे हैं।[1] मैं आपको अहिंसापर व्याख्यान दूं, यह शायद हास्यास्पद ही होगा। लेकिन न्यूटन-जैसेको भी अपने सबसे नये शिष्यकी बात कभी-कभी सुननी पड़ सकती है और यदि वह सुनने से इनकार करता है, तो उससे भूल भी हो सकती है। जो भी हो, मेरे पास आपका प्रमाण-पत्र तो है ही, और जब आपने मुझे वह दिया तब मेरे मनमें उसके कारण कोई अहंकार भी नहीं जगा। अब मुझे आपसे असहमत होना पड़ रहा है तो मैं समझता हूँ, आप नवाबोंकी भाँति उसे वापस नहीं ले लेंगे।

आप जितना चाहें, अहिंसाका नाम लें और उसपर जोर दें; लेकिन इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं है। आपकी वर्त्तमान चेष्टाकी चालकशक्ति पूर्ण रूपसे — प्रायः पूर्ण रूपसे — धुरी-शक्तियोंकी हिंसा और उससे उत्पन्न अंग्रेजोंकी नाजुक हालत है — न कि आपके प्रस्तावों और योजनाओंमें सहज समाहित अहिंसा या प्रेम। आपकी दृष्टि इतनी वैज्ञानिक है कि आप इस चीजको उतना ही साफ-साफ देख सकते हैं जितना प्रयोगशालामें काम कर रहा कोई रसायनशास्त्री।

मैं समझाना क्या चाह रहा हूँ? वह यह है। अभी आप जो कर रहे हैं वह अहिंसाके क्षेत्रमें कोई साहसिक प्रयोग नहीं है, हालाँकि उसकी वैसी भ्रामक छवि हो सकती है। इसके फलस्वरूप अंग्रेजोंके मनमें तीव्र घृणा पैदा हो रही है, क्योंकि उन्हें लगता है कि इस युद्धके एक अत्यन्त नाजुक दौरमें आप अपने प्रयोजनके लिए दूसरोंकी अहिंसाका उपयोग बहुत निर्ममतापूर्वक कर रहे हैं। इसमें उपवास आदिके लिए कोई गुंजाइश नहीं है। अगर आप उपवास आरम्भ करेंगे तो आपने जो जबर-दस्त घृणा पैदा कर दी है वह अहिंसाकी शक्तियोंको काम करने से रोकेगी। यह विशुद्ध राजनीति है और उसे उसी प्रकार कीजिए जैसे राजनीति की जाती है। आपने अन्तमें कांग्रेससे जो-कुछ मंजूर करवा लिया है या यों कहें कि कांग्रेसने आपसे जो-कुछ स्वीकार करा लिया है उसमें कोई अहिंसा नहीं है। इसमें ऐसी योजनाओंके लिए कोई स्थान नहीं है जो सिर्फ अहिंसाके उपयुक्त हों।

सप्रेम,

राजा

अंग्रेजीकी नकलसे (सी० डब्ल्यू० १०९२५) से। सौजन्य: सी० आर० नरसिंहन्

१. आगेके दो वाक्योंमें साधन-सूत्रमें कुछ शब्द छूटे होने के कारण अर्थ स्पष्ट नहीं है, इसलिए उनका अनुवाद नहीं दिया जा रहा है।

परिशिष्ट १२

भारत सरकारका प्रस्ताव[1]

नई दिल्ली
७ अगस्त, १९४२

अ० भा० कांग्रेस कमेटीने ५ अगस्तको भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी कार्य-समिति द्वारा पारित प्रस्तावकी पुष्टि कर दी है। प्रस्ताव इस बातकी माँग करता है कि ब्रिटिश सत्ता भारतसे तत्काल हटा ली जाये, और वह "यथासम्भव बड़ेसे-बड़े पैमाने पर एक अहिंसक जन-आन्दोलन छेड़ने" की मंजूरी देता है। सपरिषद् गवर्नर-जनरल को पिछले कुछ दिनोंसे इसकी भी जानकारी है कि कांग्रेस पार्टी गैर-कानूनी तथा कहीं-कहीं हिंसात्मक कार्रवाइयोंके लिए खतरनाक तैयारियाँ कर रही है। इन कार्रवाइयोंका उद्देश्य, अन्य बातोंके अलावा, संचार-व्यवस्था तथा जनोपयोगी सेवाओंमें बाधा डालना, हड़तालें करवाना, सरकारी मुलाजिमोंको वफादारीसे विमुख करना और फौजकी भरती आदि रक्षा-सम्बन्धी कार्योंमें विघ्न डालना है।

२. भारत सरकार इस आशासे धैर्यपूर्वक इन्तजार करती रही है कि शायद उन्हें सुबुद्धि आ जाये। लेकिन उसे निराशा ही हाथ लगी है। आज जिस तरहकी चुनौती सामने खड़ी है उसका केवल एक ही जवाब हो सकता है। जिस माँगकी स्वीकृतिसे भारत आन्तरिक अव्यवस्था और अराजकताकी स्थितिमें पड़ जायेगा और मानव-स्वातन्त्र्यके समान ध्येयकी प्राप्तिका उसका प्रयत्न ठप हो जायेगा उसपर चर्चा करना भारत सरकार भारतकी जनताके प्रति अपनी जिम्मेदारी और मित्र-राष्ट्रोंके प्रति अपने दायित्वोंके निर्वाहसे सर्वथा असंगत मानेगी।

३. कांग्रेसके नेताओंकी माँगका कोई औचित्य नहीं है। भारत सरकारकी राय में उस माँगको देखते हुए ऐसा मानना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है कि कांग्रेस पार्टीके नेताओंमें दायित्वकी पूरी भावना है या वे वर्त्तमान स्थितिकी वास्तविकताओंको पूरी तरह समझते हैं। कांग्रेस कार्य-समिति यह स्वीकार करती है कि "इसमें शायद कुछ खतरे समाये हुए हों।" उसका यह कहना ठीक है। प्रस्ताव स्वीकार करने का अर्थ भारतको धुरी-राष्ट्रोंके आक्रमणके लिए खुला छोड़ देना है। ब्रिटिश शासनकी समाप्तिका मतलब देशके भीतर गृह-युद्ध, कानून-व्यवस्थाकी समाप्ति, साम्प्रदायिक दंगों के विस्फोट और आर्थिक जीवनकी अस्तव्यस्तता तथा तज्जनित कठिनाइयोंको बुलावा देना होगा। इसी प्रकार भारत सरकार कांग्रेसके समूचे भारतका प्रवक्ता होने के दावे को भी स्वीकार नहीं कर सकती। कांग्रेस पार्टी भारतीय राजनीतिक जीवनमें काफी

१. देखिए पृ० ४४७।

समयसे अत्यन्त विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थानपर आसीन रही है। आज भी उसका महत्त्व बहुत अधिक है। लेकिन भारत सरकारका यह कर्त्तव्य है कि वह भारतीय विचारधारा और जनमतके सभी वर्गोंके हितोंके प्रति सन्तुलित दृष्टिसे काम ले। और बड़ी-बड़ी कौमों और ठोस आधारोंपर स्थापित हितोंके नेताओं, उदार विचारधाराके बहुत-से नेताओं और धुरी-राष्ट्रोंके आक्रमणके विरुद्ध चल रही लड़ाईमें पूर्ण और अमूल्य समर्थन देनेवाले जनताके विशाल वर्गों द्वारा पिछले चन्द दिनोंके दौरान भी बार-बार प्रकट किये गये विरोधोंको अनिवार्यतः देखते हुए उसका यह विश्वास सुदृढ़ हो गया है कि कांग्रेसके उस दावेका कोई ठोस आधार नहीं है और अब कांग्रेस पार्टी ने जो प्रस्ताव सामने रखे हैं उनकी स्वीकृतिका मतलब निश्चित तौरपर आबादीके उन तमाम बड़े और शक्तिशाली तत्त्वोंका परित्याग होगा जिन्होंने कांग्रेस पार्टी द्वारा सुझाई कार्रवाईकी भर्त्सना की है और जो भारतके युद्ध-प्रयत्नमें और सामान्य जन-जीवनमें उस कार्रवाईकी स्वीकृतिसे सम्भावित व्यापक अस्त-व्यस्ततापर रोष प्रकट करते हैं और उसका प्रतिरोध करते हैं।

४. कांग्रेसी नेता इस बातका भी दावा नहीं कर सकते कि केवल इसी तरह भारतके भविष्यके बारेमें आश्वस्त हुआ जा सकता है। कांग्रेस सारे भारतकी प्रवक्ता नहीं है, फिर भी अपना प्रभुत्व कायम करने के उद्देश्यसे और अपनी सर्वाधिकारवादी नीतिका अनुसरण करते हुए उसके नेता भारतको सम्पूर्ण राष्ट्रत्वकी स्थितिमें लाने के प्रयासोंमें बराबर बाधा डालते रहे हैं। कांग्रेस द्वारा रचनात्मक प्रयासोंका यदि प्रति-रोध न किया गया होता तो भारत आज शायद स्वशासनका उपभोग कर रहा होता। भारतके भविष्यके विषयमें ब्रिटेनकी नीति स्पष्ट है। वह यह है कि युद्धके समाप्त हो जाने पर भारत, निर्णयकी पूर्ण स्वतन्त्रताके साथ और ऐसे आधारपर जिसमें किसी एक ही दलका नहीं बल्कि सबका समावेश हो, अपनी ऐसी शासन-प्रणाली आप ही गढ़ेगा जिसे वह अपनी परिस्थितियोंको देखते हुए सबसे उपयुक्त माने; और इस बीच भारतीय नेता देशके शासनमें और राष्ट्रकुल तथा मित्र-राष्ट्रोंकी मन्त्रणाओंमें पूरा भाग लेंगे। सम्राटकी सरकारने भारतकी जनताको यह आश्वासन दे दिया है कि उसे स्वशासनकी प्राप्तिका पूर्णतम अवसर प्राप्त होगा। सम्राटकी सरकार और ग्रेट ब्रिटेन की जनता द्वारा पूर्णतः स्वीकृत इस आधारपर ही कि भारतकी जनताको स्वशासन प्राप्त करने का पूर्णतम अवसर प्रदान किया जायेगा, विजयका दिन आने पर भारत के संविधानका अन्तिम ढाँचा स्वयं भारतीयों द्वारा खड़ा किया जायेगा। हमारा दृढ़ विश्वास है कि ब्रिटिश संसद और जनता द्वारा दिये गये इन आश्वासनोंको भारतकी जनता स्वीकार करती है। कांग्रेस पार्टीने जो यह संकेत दिया है कि भविष्यके सम्बन्ध में अनिश्चित भारतके करोड़ों लोग, इतने सारे शहीद देशोंके दुःखद दृष्टान्त सामने होनेके बावजूद, अपनेको आक्रमणकारियोंकी बाँहोंमें डाल देने को तैयार हैं उसे भारत सरकार एक महान देशकी जनताकी भावनाका सच्चा चित्रण नहीं मान सकती।

५. कांग्रेस पार्टीके नेताओंने यह दावा किया है कि ब्रिटिश सत्ता हटाये जानेका काम यदि "सद्भावनापूर्वक" सम्पन्न होगा तो "इसके फलस्वरूप भारतमें एक मजबूत

अस्थायी सरकारकी स्थापना होगी और आक्रमणका प्रतिरोध करने और चीनकी मदद करने में उस सरकार और मित्र-राष्ट्रोंके बीच सहयोग कायम होगा।" इन दावोंका कोई औचित्य नजर नहीं आता। साथ ही भारत सरकार इस बातको भी स्वीकार नहीं कर सकती कि मजबूत अस्थायी सरकार ब्रिटिश सत्ता हटाये जाने के एक-दो दिनोंके अन्दर आनन-फानन बना ली जा सकती है। अपने विगत अनुभवके आधारपर उसने खेदपूर्वक देखा है कि इस देशमें गहरे मतभेद विद्यमान हैं, और इन अलग-अलग मतोंके बीच तालमेल बैठाना उन सबका लक्ष्य होना चाहिए जिनके सिर जिम्मेदारी है और वर्त्तमान भारत सरकार इन मतभेदोंको दूर करने की महत्त्वाकांक्षा और आशा रखती है। लेकिन इस बातसे इनकार करना कि भारतके समक्ष आज ये समस्याएँ हैं, तथ्योंसे आँख चुराना होगा और भारत सरकारको पूरा विश्वास है कि ब्रिटिश शासन हटाये जाने और मजबूत अस्थायी सरकारकी स्थापनाके बीचका अन्तराल व्यवस्थाके शत्रुओंपर तथा आबादीके तमाम विरोधी तत्त्वोंको खुला अवसर प्रदान करेगा। भारत सरकारकी रायमें, यह कहना अनुचित न होगा कि कांग्रेस पार्टी द्वारा रखी गई माँगको अभी स्वीकार करने का मतलब भारतके अन्दर या बाहर मित्र-देशोंके साथ घात करना, खास तौरसे रूस और चीनके साथ घात करना, जिन आदर्शोंको भारत सच्चे हृदय और बुद्धिसे इतना अधिक समर्थन देता रहा है और दे रहा है उनके साथ घात करना, भारतके युद्धरत जवानोंके साथ, जिनकी महिमा इतनी महान् है, घात करना और भारतके उन तमाम वफादार और सहयोगी तत्त्वोंके साथ घात करना होगा जो कांग्रेस पार्टीका तो समर्थन नहीं करते, किन्तु जिन्होंने युद्धके संचालन में इतनी सक्रिय और मूल्यवान भूमिका निभाई है।

६. आज भारतमें जो शासन है वह अतीतके किसी भी शासनसे अधिक सुदृढ़ और प्रातिनिधिक है। इस शासनमें भारतीयों और गैर-सरकारी तत्त्वोंकी प्रधानता है। यह शासन युद्धको सफल परिणतितक ले जाने को कटिबद्ध है और उतना ही कटिबद्ध भारतको अपने राजनीतिक लक्ष्यतक ले जाने को है। भारत सरकारको जितना दुःख इतने नाजुक मौकेपर दी गई इस चुनौतीको देखकर हुआ है उतना और किसी बातसे नहीं। लेकिन उसीपर भारतकी रक्षा, युद्ध चलाने की भारतकी क्षमताको कायम रखने, भारतके हितोंको सुरक्षित रखने और यहाँकी जनताके विभिन्न हिस्सोंके बीच, बिना किसी भय या पक्षपातके, सन्तुलन बनाये रखने की जिम्मेदारी है। कांग्रेस पार्टीने भारत सरकारके सामने जो चुनौती रखी है उसके बावजूद वह अपना उपयुक्त कर्त्तव्य स्पष्ट संकल्पके साथ, लेकिन इस बातकी फिक्र करते हुए कि उसकी कार्रवाई दण्डात्मक न होकर युद्ध-प्रयत्नमें डाली जानेवाली बाधाओं तथा उपर्युक्त अन्य खतरोंका विरोध करनेवाली हो, और भारतके प्रति तथा मित्र-राष्ट्रों और सभ्यताके हेतुके प्रति पूर्ण जागरूकताके साथ निभायेगी। उसका कर्त्तव्य साफ है और उसे उसको पूरा करना है, हालाँकि उसे जिस परिस्थितिका सामना करने को विवश होना पड़ा है उसका उसे बहुत दुःख है। वह भारतकी जनतासे आग्रह करती है कि एक दल द्वारा दी गई इस चुनौतीका सामना करने के लिए वह उसके साथ ऐक्यबद्ध

हो जाये। वह उससे अपील करती है कि वह सारे राजनीतिक मतभेदोंको त्याग दे और युद्धके दौरान अन्य सभी बातोंके मुकाबले देशकी प्रतिरक्षा और उन सामान्य लक्ष्योंकी प्राप्तिको प्राथमिकता दे जिनपर न केवल भारतका, बल्कि विश्वके सभी स्वातन्त्र्य-प्रिय राष्ट्रोंका भविष्य निर्भर है।

[अंग्रेजीसे]

ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, जिल्द २, पृ० ६००-३

परिशिष्ट १३

प्यारेलालके साथ मार्क्सवादपर चर्चा

[९ अगस्त, १९४२ के पश्चात्]

. . . पूनामें अपनी पिछली नजरबन्दीके दौरान मार्क्सके साहित्यका व्यापक अध्ययन करने के बाद गांधीजी ने कहा: "यदि मुझमें मार्क्सवाली विद्वत्ता होती तो मैं समझता हूँ, मैं मार्क्सकी लिखी चीजोंको मार्क्ससे बेहतर लिख सकता था, लेकिन मुझमें वह विद्वत्ता है नहीं। मार्क्स सरल चीजोंको भी कठिन बनाकर पेश करने में माहिर है।"

'ए हैण्डबुक ऑफ मार्क्सिज्म' के एक कोरे पन्नेपर उन्होंने लिखा: "प्रत्येकके लिए सभी और सभीके लिए प्रत्येक।" "प्रत्येकसे उसकी क्षमताके अनुसार, प्रत्येकको उसकी आवश्यकताके अनुसार।" . . .

मैंने इस बातकी कोशिश की कि वे मार्क्सवादी दर्शनके कुछ पहलुओंपर अपनी राय बतायें। . . .

मैंने कहा, "मार्क्सने हमें यह बताया कि हमारी विचारधाराएँ, संस्थाएँ, नैतिक मापदण्ड, साहित्य, क़ला, रीति-रिवाज, यहाँतक कि हमारा धर्म भी, सबके-सब हमारे आर्थिक परिवेशकी उपज हैं।"

गां०: मैं यह नहीं मानता कि हमारी विचारधाराएँ, नैतिक मापदण्ड और जीवन-मूल्य सरासर हमारे भौतिक परिवेशकी ही उपज हैं और उसके बाहरके किसी निरपेक्ष आधारसे उनका कोई सरोकार नहीं है। इसके विपरीत, स्थिति तो यह है कि जैसे हम सब हैं वैसा ही हमारा परिवेश होता है।

क्या वर्धाकी बुनियादी तालीमकी योजना इस मान्यतापर आधारित नहीं है कि हाथकी प्रयोजनात्मक क्रिया न केवल हमारे चिन्तनको, बल्कि सम्पूर्ण व्यक्तित्वको एक खास साँचेमें ढालती है? क्या यह चीज बहुत-कुछ मार्क्स द्वारा प्रतिपादित ज्ञानके भौतिकतावादी सिद्धान्तके समान ही नहीं है?

लेकिन मार्क्सवादी मेहनतकश हाथको बिलकुल हटाकर उसके स्थानपर मशीनको प्रतिष्ठित करना चाहता है। हाथका उसके लिए कोई उपयोग ही नहीं है। मार्क्सके अनुसार शरीर-श्रमपर निर्भरता श्रमिककी दुरवस्था और गुलामीका प्रतीक और मूल

कारण है। मुझे इस अवस्थासे मुक्त कराना मशीनका काम है। दूसरी ओर मैं यह मानता हूँ कि मशीन मनुष्यको गुलाम बनाती है और हाथका बुद्धिमत्तापूर्ण इस्तेमाल ही श्रमिकको मुक्ति और सुख दोनों देगा। . . .

मार्क्सवादी तो, मानों, विचारको 'मस्तिष्कका उद्रेचन' और मनको 'भौतिक परिवेशका प्रतिबिम्ब' मानता है। मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता। पदार्थ और मन दोनोंके ऊपर ईश्वर है। यदि मुझमें उस सजीव सिद्धान्तका बोध है तो कोई भी मेरे मनको बाँध नहीं सकता। शरीर भले नष्ट हो जाये, आत्मा अपनी मुक्तिकी उद्घोषणा करेगी। यह मेरे लिए कोई सिद्धान्त नहीं है; यह मेरा अनुभूत तथ्य है।

प्या० : मार्क्सवादी यह मानने को तो तैयार हैं कि व्यक्ति भौतिक परिवेशका अतिक्रमण कर सकता है, लेकिन उनका कहना है कि वर्गका व्यवहार तो तत्त्वतः उसीसे निर्धारित होता है। जबतक आर्थिक परिवेश नहीं बदल दिया जाता तबतक वह नहीं बदल सकता। पूँजीपतिको बदलने के लिए पूँजीवादी व्यवस्थाको नष्ट करना था।

गां० : जो काम व्यक्ति कर सकता है उसे करने को एक सम्पूर्ण जन-वर्गको प्रेरित किया जा सकता है — सवाल सिर्फ सही तरीकेकी तलाशका है। हमारा सम्पूर्ण अहिंसक असहयोग आन्दोलन, जिसका लक्ष्य ब्रिटिश शासक-वर्गका हृदय-परिवर्त्तन है, इसी संकल्पनापर आधारित है। वर्ग-संघर्षका मेरा उपचार ट्रस्टीशिप है।

इसके बाद मैं इतिहासके आर्थिक उत्प्रेरणके मार्क्सवादी सिद्धान्तपर आ गया। मैंने कहा कि युद्ध पूँजीवादी व्यवस्थाके अधीन विद्यमान निजी सम्पत्तिकी रीतिका परिणाम है। गांधीजी ने पहले सिद्धान्तको तो बिलकुल अस्वीकार कर दिया और दूसरी मान्यतासे असहमति व्यक्त की।

गां० : नहीं, केवल आर्थिक तत्त्व ही नहीं है। अन्ततः तो घटनाक्रमका नियमन वह अदृश्य शक्ति करती है — यहाँतक कि उन घटनाओंको सम्भव बनानेवाले मनुष्यों के मनमें भी। यदि मान लें कि हिटलर आज मर जाये तो उससे वर्त्तमान इतिहास की सारी धारा ही बदल जायेगी। इसी प्रकार मान लें कि किसी भूकम्प या किसी अन्य प्राकृतिक आपदाके फलस्वरूप सभी पूँजीपति मिट जायें तो उस हालतमें वर्ग-संघर्षके इतिहासमें ऐसा परिवर्त्तन आ जायेगा जिसकी कि इतिहासकी आर्थिक व्याख्याके प्रतिपादकोंने कल्पना भी नहीं की होगी। यदि चैम्बरलेनके स्थानपर इंग्लैंडका प्रधान मन्त्री कोई अधिक ऊर्जस्वी व्यक्ति होता तो क्या वर्त्तमान युद्धका इतिहास भिन्न नहीं होता? या कि अगर चैम्बरलेनने अन्तिम क्षणमें राजनीतिक साहसके अभावका परिचय न दिया होता?

प्या० : मार्क्सवादियोंका कहना है कि युद्धके उन्मूलनके लिए हमें बस निजी सम्पत्तिकी संस्थाको मिटा देना है। आपने भी यह शिक्षा दी है कि सम्पत्ति अहिंसक जीवन-पद्धतिसे असंगत है।

गां० : यह अंशतः ही सच है। क्या ट्रॉयकी हेलन ट्रोजन युद्धका कारण नहीं थी? क्या राजपूतोंकी लड़ाइयोंका सम्बन्ध निजी सम्पत्तिसे था? नहीं, युद्धके उन्मूलनके लिए हमें इससे अधिक कुछ करना है। हमें अपने हृदयसे परिग्रह, लोभ, वासना और अहंकारको मिटाना होगा। हमें समाजसे युद्धके उन्मूलनके लिए स्वयं अपने अन्दर युद्ध चलाना है।

प्या० : मार्क्स द्वारा बताये गये उपाय बेशक गलत हैं, लेकिन समस्याको ठीकसे समझने और उसका सही उपचार ढूंढ़ निकालने के लिए क्या हमारे समाजको प्रभावित करनेवाले रोगके उसके निदानका उपयोग हम नहीं कर सकते? . . . मेरे कहने का मतलब यह है कि मार्क्सको केवल एक ही प्रभावकारी शक्तिकी — अर्थात् हिंसा, शरीर-बलकी — जानकारी थी। यदि वह अहिंसा या सत्याग्रहकी शक्ति और उसकी प्रभाव-क्षमतासे परिचित होता तो हो सकता है, उसने हिंसाके स्थानपर उसीको अपनाया होता। खुद हमारे जमानेमें भी उद्योगमें परिवर्त्तन हो रहा है और उसमें वाष्पका स्थान तेल और बिजली ले रही है।

गां० : मैंने लोगोंको यह कहते भी सुना है कि पुराने कारखानेको एकसे दूसरी चालक शक्तिके अनुसार बदलवाने से अधिक मितव्ययितापूर्ण तो उसे समाप्त कर देना ही है। इस प्रसंगमें बुनियादी बात अहिंसा और हिंसाके बीचका भेद है। यह तो मार्क्सवादी सिद्धान्तके मूलको ही काट देता है। यदि नींवको बदल दें तो पूरे ऊपरी ढाँचेको बदलना होगा।

प्या० : मैं मानता हूँ, लेकिन आपने अपनी अहिंसा 'गीता' से ली है। मार्क्सवादी विशेषणमें आपके अहिंसक असहयोगके तरीकेके लिए मुझे प्रबल समर्थन दिखाई देता है।

गां० : जो लोग अहिंसामें विश्वास नहीं करते वे 'गीता' की मेरी व्याख्याको अस्वीकार कर देते हैं और जो उसमें विश्वास करते हैं उन्हें तो इसकी जरूरत ही नहीं है। पक्के मार्क्सवादी तुम्हारी व्याख्याको अमार्क्सवादी कहेंगे। यह उन्हें नहीं जँचेगी। . . .

कुछ और चर्चाके बाद गांधीजी ने कहा :

इसे तुम मार्क्सकी अपनी मौलिक व्याख्याकी तरह पेश कर सकते हो। जिनमें आध्यात्मिक पृष्ठभूमिका अभाव है उन्हें यह सत्याग्रहके आचरणके लिए एक बुद्धिसंगत आचार प्रदान कर सकता है। जिस चीजने मार्क्सकी शिक्षाको स्फूर्तिवान बनाया है वह यह है कि वह मनुष्य-जातिको एक मानकर चला और वर्ग-विभाजनोंकी सीमाओंका अतिक्रमण करके विश्वके विपन्न शोषित मेहनतकश लोगोंके हितसे अपना तादात्म्य स्थापित किया। लेकिन ऐसा करनेवाला वह अकेला नहीं है। यही काम और लोगोंने भी किया है।

गांधीजी यह मानने को तैयार नहीं थे कि मार्क्सने अपने-आपमें एक सर्वांगपूर्ण समाज-विज्ञानकी संस्थापना की या सामाजिक गतिविज्ञानके ऐसे नियमोंकी खोज की जिनकी कोई पूर्वसिद्ध निर्वैयक्तिक संगति है। मार्क्सवादी पद्धति एक खास लक्ष्यको, जिसे मार्क्स वांछनीय मानता था, प्राप्त करने के लिए एक औजार गढ़ने का प्रयत्न थी। अन्तमें उन्होंने कहा :

हम मार्क्सकी आलोचना भले करें, लेकिन इस बातसे कौन इनकार कर सकता है कि वह एक महान व्यक्ति था। सामाजिक रोगोंका उसका विश्लेषण या उनके लिए बताये उसके इलाज सही हो सकते हैं या नहीं भी हो सकते। मैं उसके आर्थिक सिद्धान्तोंको स्वीकार नहीं करता, लेकिन इतना जानता हूँ कि गरीब लोग पिस रहे हैं। उसके लिए कुछ करना है। मार्क्सने अपने तरीकेसे यह काम करने का प्रयत्न किया। उसमें योग्यता, विद्वत्ता और प्रतिभा थी।

[अंग्रेजीसे]

महात्मा गांधी — द लास्ट फेज, जिल्द २, पृ० १३६-३९

सामग्रीके साधन-सूत्र

'अमृतबाजार पत्रिका': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'आरोग्यकी कुंजी': मो० क० गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५९।

'(द) इंडियन ऐनुअल रजिस्टर, १९४२', जिल्द २ (अंग्रेजी): सम्पादक: नृपेन्द्रनाथ मित्र, ऐनुअल रजिस्टर आफिस, कलकत्ता।

उप-महानिरीक्षक कार्यालय, कलकत्ता: उप-महानिरीक्षक कार्यालय, प० बंगाल, कलकत्तामें सुरक्षित रेकार्ड।

'कॉरस्पॉण्डेन्स विद मि० गांधी' (अगस्त १९४२—अप्रैल १९४४) (अंग्रेजी): द मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९४४।

'गांधीजीज़ कॉरस्पॉण्डेन्स विद द गवर्नमेंट', १९४२-४४ (अंग्रेजी): सम्पादक: प्यारेलाल, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, १९४५।

'(द) ट्रान्सफर ऑफ पॉवर, १९४२-४७', जिल्द २ और ३ (अंग्रेजी): सम्पादक: निकोलस मैनसर्घ, हर मैजस्टी स्टेशनरी आफिस, लन्दन।

'डेड एनिमल्ज टु टैण्ड लेदर' (अंग्रेजी): एस० सी० दासगुप्त और जी० आर० वालुंजकर, गोसेवा संघ, गोपुरी, वर्धा, १९४२।

'नॉन-वायलेंस इन पीस एण्ड वार', जिल्द १ (अंग्रेजी): मो० क० गांधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, १९४२।

नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।

नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली।

'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद': सम्पादक: काका कालेलकर, जमनालाल बजाज ट्रस्ट, वर्धा, १९५३।

पुलिस कमिश्नर कार्यालय, बम्बई: बम्बईके पुलिस कमिश्नर कार्यालयमें रखे रेकार्ड।

प्यारेलाल पेपर्स: नई दिल्लीमें श्री प्यारेलालके पास उपलब्ध कागजात।

'बापुना पत्रो—२: सरदार वल्लभभाईने' (गुजराती): सम्पादिका: मणिबहन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५२।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती): मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'बापू: मैंने क्या देखा, क्या समझा?': रामनारायण चौधरी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५४।

'बापूकी छायामें': बलवन्तसिंह, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष': हीरालाल शर्मा, ईश्वरशरण आश्रम मुद्रणालय, प्रयाग, १९५७।

'बापूज लेटर्स टु मीरा' (अंग्रेजी): सम्पादिका: मीराबहन, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, १९४९।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'मराठी हरिजन': 'हरिजन' का मराठी संस्करण। गोपालराव काले द्वारा सम्पादित मराठी साप्ताहिक जो पहली बार १ मार्च, १९४२ को प्रकाशित हुआ।

'महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी', जिल्द ६ (अंग्रेजी): डी० जी० तेंदुलकर, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, नई दिल्ली, १९६२।

'राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी': मो० क० गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५६।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्ली: गांधी साहित्य और गांधीजी से सम्बन्धित कागज-पत्रोंका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय।

'सर्वोदय': वर्धासे प्रकाशित और द० बा० कालेलकर तथा दादा धर्माधिकारी द्वारा सम्पादित हिन्दी मासिक।

साबरमती संग्रहालय, अहमदाबाद: गांधीजी से सम्बन्धित पुस्तकों और कागजातका पुस्तकालय तथा अभिलेखागार।

'सुतरने तांतणे स्वराज' (गुजराती): मो० क० गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

'स्टेट्समैन': कलकत्ता और नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हरिजन' (१९३३-५६): हरिजन सेवक संघके तत्वावधानमें तथा गांधीजी की देख-रेखमें प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक। इसका प्रथम अंक ११ फरवरी, १९३३ को पूनासे प्रकाशित हुआ था; इसके बाद २७ अक्टूबर, १९३३ से मद्राससे प्रकाशित होने लगा, १३ अप्रैल, १९३५ से पुनः पूनासे प्रकाशित होने लगा; तदनन्तर अहमदाबादसे प्रकाशित होता रहा।

'हरिजनबन्धु' (१९३३-५६): हरिजन सेवक संघके तत्वावधान तथा गांधीजी की देख-रेखमें प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक। इसका प्रथम अंक १२ मार्च, १९३३ को पूनासे प्रकाशित हुआ था।

'हरिजनसेवक' (१९३३-५६): हरिजन सेवक संघके तत्वावधान तथा गांधीजी की देखरेखमें प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक, जो २३ फरवरी, १९३३ को पहली बार नई दिल्लीसे प्रकाशित हुआ था।

'हितवाद': नागपुरसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'(द) हिस्ट्री ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस', जिल्द २ (अंग्रेजी): डॉ० पट्टाभि सीतारमय्या, पद्मा पब्लिकेशन्स लि०, बम्बई, १९४७।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१ अप्रैल–१७ दिसम्बर, १९४२)

१ अप्रैल : गांधीजी नई दिल्लीमें कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल हुए।

५ अप्रैल : दिल्लीसे सेवाग्रामके लिए रवाना।

६ अप्रैल : सेवाग्राम पहुँचे।

१० अप्रैल : कांग्रेस कार्य-समितिने क्रिप्सके सुझावोंको नामंजूर कर दिया।

११ अप्रैल : गांधीजी ने वर्धामें स्वराज्य भण्डारका उद्घाटन किया।

१ मई : कांग्रेस कार्य-समितिने युद्ध और विदेशी सैनिकोंके प्रति रवैयेको स्पष्ट करते हुए प्रस्ताव पास किया।

९ मई : एण्ड्रयूज स्मारकके लिए चन्दा इकट्ठा करने के उद्देश्यसे गांधीजी सेवाग्रामसे बम्बईके लिए रवाना हुए।

१० मई : बम्बई पहुँचे।

१७ मई : बम्बईसे सेवाग्रामके लिए रवाना।

१८ मई : सेवाग्राम पहुँचे।

२७ मई : जवाहरलाल नेहरूके साथ बातचीत की।

२८ मई : मध्य प्रान्तके राष्ट्रीय युवक संघके सदस्योंसे भेंट की।

२ जून : मृदुला साराभाई और उ० न० ढेबरने गांधीजी से भेंट की।

४ और ५ जून : गांधीजी ने लुई फिशरको भेंट दी।

६ जून : इंटरनेशनल न्यूज सर्विसके चैपलिन, 'टाइम्स' और 'लाइफ'के बेल्डन तथा लुई फिशरको भेंट दी।

७-९ जून : जवाहरलाल नेहरूसे बातचीत की। लुई फिशरको भेंट दी।

१९ जून : क्रिप्सके वक्तव्यके सम्बन्धमें लन्दनकी यूनाइटेड प्रेसको भेंट दी।

२६ जून : चरखा संघके कार्यकर्त्ताओंके साथ बातचीत की। वर्धाके खादी विद्यालयके विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण दिया।

२९ और ३० जून : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीसे बातचीत की।

३ जुलाई : राजेन्द्रप्रसाद और डॉ० प्रफुल्लचन्द्र घोषके साथ बातचीत की।

४ जुलाई : राजेन्द्रप्रसाद और जवाहरलाल नेहरूके साथ बातचीत की।

५ जुलाई : राजगोपालाचारीको लिखे पत्रमें उन्हें कांग्रेस और विधान-सभासे इस्तीफा देने की सलाह दी।

६ जुलाई : कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल हुए।

८-११ जुलाई : कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठकमें शामिल हुए।

१४ जुलाई : कांग्रेस कार्य-समितिने एक प्रस्ताव पास करके ब्रिटिश सरकारको भारतसे चले जाने को कहा।

२६ जुलाई : गांधीजी ने विनोबा भावे, किशोरलाल मशरूवाला और अन्य लोगोंसे बातचीत की।

१ अगस्त : हिन्दुस्तानी तालीमी संघ भवनके उद्घाटनके अवसरपर भाषण दिया।

२ अगस्त : सेवाग्रामसे बम्बईके लिए रवाना।

३ अगस्त : बम्बई पहुँचे।

४ अगस्त : कांग्रेस कार्य-समिति और अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें शामिल हुए।

८ अगस्त : अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें भाषण दिया।

अ० भा० कांग्रेस कमेटीने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास कर दिया।

९ अगस्त : गांधीजी को सुबह-सुबह गिरफ्तार करके पूनाके आगाखाँ पैलेसमें ले जाया गया। कार्य-समितिके सदस्योंको भी गिरफ्तार कर लिया गया और सभी कांग्रेस कमेटियोंको अवैध घोषित कर दिया गया।

१५ अगस्त : आगाखाँ पैलेसमें महादेव देसाईका निधन।

१६ अगस्त : चिमूरमें नेताओंको गिरफ्तार किये जाने के विरोधमें निकाले गये जुलूस पर पुलिस द्वारा गोली चलाने से दंगे शुरू।

२० अगस्त : गांधीजी द्वारा मौन धारण।

२४ अगस्त : गांधीजी ने ९१ घंटे बाद मौन-व्रत तोड़ा।

१२ नवम्बर : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीकी गांधीजी से जेलमें मिलने की प्रार्थना वाइसराय द्वारा अस्वीकार।

चिमूरमें की गई ज्यादतियोंकी जाँचकी माँग करते हुए जे० पी०. भणसाली द्वारा भूख हड़ताल शुरू।

३० नवम्बर : गांधीजी को भणसालीसे बातचीत करने की अनुमति नहीं मिली।

शीर्षक-सांकेतिका

चर्चा: खादी-सेवकोंके साथ, २७९-८१

टिप्पणी: (होरेस) अलेक्जैंडरके पत्रपर, ४०३-४; –[णियाँ], २४-२५, २९-३१, ९२-९४, १३१-३२, १३२-३३, ३२२-२३

तार: अमृतकौरको, १, ३१३; –(रथीन्द्रनाथ) ठाकुरको, ३६४; –बम्बई सरकारके गृह-सचिवको, ४६०-६१; –(मदनमोहन) मालवीयको, ४२४; –मीराबहनको, ६१; –(हसरत) मोहानीको, २१; –(चक्रवर्ती) राजगोपालाचारीको, ४०९, ४१८; –(चिमनलाल न०) शाहको, ४५३; –'सन्डे डिस्पैच' को, १८१-८२; –(पद्मपत) सिंहानियाको, ३३८-३९; –(चुन्नीलाल) सेनको, ९९; –(एगथा) हैरिसनको, ३८४

पत्र: अन्नपूर्णाको, ३४; –अमतुस्सलामको, ११३; –अमृतकौरको, १०६, ११३, ११५, १३०, १३५, १४३-४४, १४६, १५८, १६९, १७१, १७८, १९७, २००, २०४-५, २१०, २२२, २२४, २४०, २५१-५२, २५४-५५, २५८, २६३, २७२, २८५, २९७-९८, २९८, ३०३, ३११, ३३९, ३४१, ३५७, ३८३, ३८७, ३८९-९०, ४१०; –(होरेस) अलेक्जैंडरको, ६७-६८, ३१४, ४०४-५; –(तुफैल) अहमदको, १६०; –(नजीर) अहमदको, ३५६-५७; –आसफ अलीको, ३८०; –(हरिभाऊ) उपाध्यायको, ८५; –एक मुसलमानको, ४२४-२५; –(ग्लैडिस) ओवेनको, ३८५; –(प्रेमा) कंटकको, ४६, ५९, ११५-१६, ३०७, ३६३; –(डॉ० ए० यू०) काजीको, १६९; –(माधवदास गो०) कापड़ियाको, ६३, ६४; –(हरिइच्छा) कामदारको, ४०; –(दत्तात्रेय बा०) कालेलकरको, ८१, ९१, २२२, २२६, ३८६, ३९७; –(जे० सी०) कुमारप्पाको, १९, १६१, ३४१-४२; –कृष्णचन्द्रको, २७, ५०, ९९, १०१, १४७, १६२, १९०, २२४, २२५, २२८, २४१, २५९, २६०, २७७, २९६, ३८६, ३८८; –(एच० ई० बी०) कैटलीको, २८८; –(कस्तूरबा) गांधीको, १११; –(कान्तिलाल) गांधीको, ११-१२, २३, ६३-६४; –(जयसुखलाल) गांधीको, ३८५; –(नारणदास) गांधीको, १११-१२, २६९-७०, २९२-९३; –(पुरुषोत्तम) गांधीको, ४०; –(मणिलाल) और (सुशीला) गांधीको, ३५, १८९; –(लक्ष्मी) गांधीको, १४५; –(इन्दुमती ना०) गुणाजीको, ९२; –गोविन्ददासको, २०; –(अमृतलाल) चटर्जीको, २६, ६९, १४४-४५, १९५, ४०५-६; –चुन्नीलालको, ४३; –(शारदा गो०) चोखावालाको, ८५-८६, ११४; –(बालकृष्ण मार्तण्ड) चौंडेको, ३०४; –(रामनारायण) चौधरीको, २; –च्यांग काई-शेकको, २४७-५०;

–जगदीश और चन्द्रमुखीको, ३१३; –जगन्नाथको, ९, २११; –(विट्ठलदास) जेराजाणीको, १७०, १९५; –जेल-महानिरीक्षकको, ४६१; –(पुरुषोत्तमदास) टण्डनको, २२; –(अमृतलाल वि०) ठक्करको, १८, ४४८; –(रथीन्द्रनाथ) ठाकुरको, १५७, ३३९-४०; –डी० को, ३१२; –(डॉ०) ताराचन्दको, २२८; –तेजासिंहको, ३८७; –तैयबुल्लाको, १४२; –(मथुरादास) त्रिकमजीको, ११२-१३, २६३, २७७; –(सतीशचन्द्र) दासगुप्तको, २१२; –(हेमप्रभा) दासगुप्तको, ६५; –(वान्दा) दीनोवस्काको, ३८८; –(सोहनलाल) दूगड़को, ८७; –(जीवणजी डा०) देसाईको, ६२; –(मगनभाई प्र०) देसाईको, ३९; –(वालजी गो०) देसाईको, २६, २४२; –नागजीभाईको, १९८; –निम्बकरको, २०; –(जवाहरलाल) नेहरूको, ४५, ५९, ७३, १००, २०५, ३२६-२७; –(रामेश्वरी) नेहरूको, ७४; –(विजया म०) पंचोलीको, १८९; –(ए० एस०) पटवर्धनको, ४४; –(वल्लभभाई) पटेलको, ३५-३६, ४१-४२, ६८, १५७-५८, १७२, २०२, २२७, २५०-५१; –(नरहरि द्वा०) परीखको, १६७; –(वनमाला न०) परीखको, १, १२, ७६; –(मूलचन्द) पारेखको, १७; –(मीठूबहन) पेटिटको, ३६; –प्रभावतीको, १०, ८६, १९६, १९७, २५१, २५३, ३६३; –(एफ० ए०) फजलभाईको, २८९; –(मॉरिस) फ्रिडमैनको, ३८१; –(कमलनयन) बजाजको, २५४; –बम्बई सरकारके अतिरिक्त गृह-सचिवको, ४६२; –बम्बई सरकारके गृह-सचिवको, ४५५-५६, ४५६-५७, ४५८-५९, ४५९; –बलवन्तसिंहको, ८६-८७, ११४; –(घनश्यामदास) बिड़लाको, १८-१९, ४४, ४७, २७३; –(पुरातन) बुचको, १६६; –भगवानदासको, ३४२; –भगवानदास हरखचन्दको, २९२; –भारत सरकारके गृह-सचिवको, ४५७-५८; –(बालकृष्ण) भावेको, ३६२, ४१६; –मदालसाको, २५३; –(ना० र०) मलकानीको, १४५-४६, २०३; –(मनुबहन सु०) मशरूवालाको, २१; –(सैयद) महमूदको, ३८२-८३; –(गजानन त्र्यंबक) माडखोलकरको, २८९; –(बाकरअली) मिर्जाको, २१०; –मीराबहनको, २२, ६२, १३५, १५१, १९१-९३, ३६०-६१; –(गोपराजू सत्यनारायण) मूर्तिको, १६६; –(सुरेन्द्रराय) मेढको, ४१; –(मगनलाल प्रा०) मेहताको, ९८-९९; –(प्रतापराय एम०) मोदीको, १६१; –शान्तिकुमार न०) मोरारजीको, ११२, २४०; –(चक्रवर्ती) राजगोपालाचारीको, २३, ४९, १५६, १९८, २००-१, २१९, २२१, २४१, २५०, ३०६, ३२६, ३५८, ४१०-११; –रामनाथनको, २५७-५८; –(मोतीलाल) रायको, १७१; –(फ्रैंकलिन डी०) रूजवेल्टको, २९३-९४; –(सर रॉजर) लमलीको, ४४६-४८; –(लॉर्ड) लिनलिथगोको, २९५, ३७८, ४४८-५३, ४६०; –(एन० एस०) वरदाचारीको, ८१; –(कृष्ण) वर्माको, १५२; –(सैयद जमील) वास्तीको,

२९१-९२; –विद्यावतीको, ३८; –वियोगी हरिको, ७६, ३५९; –(वल्लभराम) वैद्यको, १७८-७९, २२३, २८५-८६; –(मूलजीभाई तु०) शर्माको, १६७; –(हीरालाल) शर्माको, १६८; –(परचुरे) शास्त्रीको, १९, १००, १६३, २११, २९०; –(हीरालाल) शास्त्रीको, ८७, १४६; –(कंचन मु०) शाहको, २७४; –(कृष्णदास) शाहको, ५०; –(चिमनलाल न०) शाहको, १७, ३७, १६२; –(मुन्नालाल गं०) शाहको, ८२, ३६६; –(एस०) सत्यमूर्तिको, ४९; –(तेजबहादुर) सप्रूको, ३८३-८४, ४११; –(अब्दुल वदूद) सरहदीको, २७३; –(अम्बालाल) साराभाईको, २०१; –(रणवीर) सिंहको, ३६१; –(पद्मपत) सिंहानियाको, ६५, ३४०; –(के०) सुब्बारावको, २५९; –(अब्दुल) हकको, १६८, ३८२; –हनुमन्तरावको, १७०

(एक) पुर्जा, ३७, ८५, १६३; –अमृतकौरको, २५२; –(पेरीन) कैप्टेनको, १९३; –बलवन्तसिंहको, ३७८

प्रश्नोत्तर, १०-११, १३-१४, ३१-३२, ५७-५९, ७४-७५, ७७-७८, ९७-९८, १०२-४, १०४-६, १०७-८, १३३-३४, १४७-५१, १५४-५५, १८६-८७, १९९-२००, २०३-४, २३८-४०, २४२-४३, २८३-८४, २८६-८७, २९६-९७, ३०४-५, ३१७-१९, ३४२-४४, ३५०-५१, ३५९, ३७९-८०, ३९१-९२, ४०२

प्रस्तावना, ४५४-५५; –गुप्त सरकारी परिपत्रके लिए, ४१५-१६

प्राक्कथन: 'डेड एनिमल्स टु टैण्ड लेदर' का, ७४

बातचीत: (होरेस) अलेक्जैंडरसे, २७०-७२; –एक आस्ट्रेलियाई पत्रकारसे, २-४; –दान देनेवालोंसे, १२९-३०; –(विनोबा) भावे तथा अन्य लोगोंसे, ३७२-७४; –राष्ट्रीय युवक संघके सदस्योंसे, १७२-७७

भाषण: अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें, ४१९-२३, ४२६-३८, ४३८-४३; –खादी विद्यालयके छात्रोंके समक्ष, २७८-७९; –प्रार्थना-सभामें, ३८९; –स्वराज्य भण्डारके उद्‌घाटनके अवसर पर, २४; –हिन्दुस्तानी तालीमी संघ भवनके उद्‌घाटनके अवसरपर, ३९०-९१

भेंट: अमेरिकी पत्रकारोंको, २१२-१८; –एक पत्रकारको, ३६६-६८; –एसोशिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको, ४१७-१८; –(प्रेस्टन) ग्रोवरको, २२९-३५; –'डेली एक्सप्रेस' के प्रतिनिधिको, ३१९-२०; –'न्यूज क्रॉनिकल' के प्रतिनिधिको, ११६-१७; –बम्बई उपनगरवासी और गुजराती कांग्रेसजनोंको, ११८-२३; –यूनाइटेड प्रेसके प्रतिनिधिको, २६०-६१; –रायटरके प्रतिनिधिको, २६१-६२; –विदेशी पत्रकारोंको, ३३२-३८; –समाचारपत्रोंको, १२३-२९, ३२७-३१, ४२५-२६; –(बर्ट्रम) स्टीवेन्सको, ४-५; –'हिन्दू' के प्रतिनिधिको, ४५-४६, १७९-८१, २३६

वक्तव्य: समाचारपत्रोंको, ४१२-१५; –हिन्दुस्तानीके बारेमें, ८८

(एक) सन्देश, ३३२; –कर्नाटकके लिए, ४४३; –चीनको, ४१९; –'डेली हेरल्ड' को ३७१; –देशके लिए, ४४५-४६, ४४६

विविध

अ० भा० चरखा संघ और इसी तरह की अन्य संस्थाएँ, ३१०-११; अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके लिए प्रस्तावका मसौदा, ७०-७२; अगर सच है तो भयंकर है, १६३-६४; अन्तर क्यों?, १५२; अन्न सुलभ करने का मार्ग, १८७-८८; अपने आलोचकोंसे, ३४८-४९; अमेरिकी मित्रोंसे, ३९९-४०२; अहिंसक आन्दोलनमें उपवासका स्थान, ३५४-५६; अहिंसक व्यायाम संघ, ८४; अहिंसा : धर्म या नीति?, ८-९; अहिंसात्मक प्रतिरोध, ५-७; आश्रमवासियोंको निर्देश, ३९०; उचित प्रश्न, ३२३-२६; उर्दूकी परीक्षा, ३७६-७७; उर्दू 'हरिजन', ८२; एक चुनौती, २५५-५७; एक मौजूं सवाल, ३९५-९६; एक समस्या, २६३-६७; कत्तिनोंकी मजदूरीमें से अधिकाधिक कितनी रकम काटी जाये, १४२-४३; कराड़ीमें खादीका उत्पादन और शिक्षा, १९४; कांग्रेस और युद्ध-सामग्रीके ठेके, ३१७; कांग्रेस कार्य-समितिके प्रस्तावका मसौदा, ३१४-१६; काठियावाड़में खादी, २१९-२०; खादी और ग्रामोद्योग, ४२-४३; खादी पैदा करो, ३९४; गुजरातमें हरिजनोंके लिए पानी, १९४; गुरु गोविन्दसिंह, २९८-३०२; चरखा जयन्ती, ३६१-६२; जरूरी चीज, ९४-९६; जोधपुर, १८५-८६, २८७-८८; जोधपुरमें दारुण स्थिति, २४४-४६; (डॉ०) ताराचन्द और हिन्दुस्तानी, २०८-१०; तिहरी दुःखद स्थिति, १९०-९१; त्रावणकोर, ८३-८४; दस्तकारी द्वारा शिक्षा, २३७-३८; दीनबन्धु एण्ड्रयूज-स्मारक, ६०; दो बातें, २६८-६९; दोस्ताना सलाह, १५३-५४; पण्डित काचरूका निर्वासन, ३५३-५४; पहला शिकार, ३६४-६५; बंगालमें संकट, ३८-३९; बर्माके शरणार्थी, ६१; बादशाह खाँकी लोकप्रियता, २९०-९१; बिचौलियोंसे, ३१२-१३; बिना बलिदानके मुक्ति नहीं, २२१; भारतमें एकता अत्यन्त आवश्यक है, २७-२९; 'मगनदीप', ३९४-९५; मतभेद वास्तविक हैं, १८२-८५; महत्त्वपूर्ण प्रश्न, २०५-७; मारवाड़ लोक-परिषद्की माँगें, ३९७-९९; मुसलमान पत्र-लेखकोंसे, ३०७-९; मुसलमान भाइयोंके लिए, ३५१-५२; मैसूर, १०१-२; राजाओंसे, ३७४-७६; राजाजी, २२०; राजाजी के विषयमें, १५९-६०; राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी दस प्रश्न, ५१-५४; वह अभागा प्रस्ताव, ३२-३४; विचित्र अहिंसा, ७-८; सच हो तो अशोभनीय, ४४४-४५; सत्याग्रहियोंको दिये जानेवाले निर्देशोंका मसौदा, ४०६-९; समझसे काम लीजिए, ३६९-७१; सम्पत्ति-ध्वंसकी नीति, १४-१६; सम्पत्ति-ध्वंसकी नीतिके बारेमें कुछ और, ७९-८०; सरदार पृथ्वीसिंह, १८२; 'सर्वोदय', ३०२-३; सिख भाइयोंके लिए, २७४-७६; सिन्धमें अराजकता, १३६-४१; सूतकी मुद्रा, २०४; सूतकी मुद्राका महत्त्व, ४७-४८; सेनाओंका प्रश्न, २८१-८२; सेवाग्रामके सेवकोंके लिए, ८०; स्वर्गीय डॉ० दत्त, २७०; स्वर्गीय हीरजी जेराम : एक मूक सेवक, १६; हर जापानीसे, ३४४-४८; हर ब्रिटेनवासीसे, १०८-११; 'हरिजन' बन्द किया गया तो, ३२०-२२; हरिजन सेवक संघ, ८८-९१; हिन्दुस्तानमें विदेशी सिपाही, ५५-५६; हिन्दुस्तानी, ३९३; हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, ६६; हिन्दुस्तानी सैनिक क्या पागल हो गये हैं?, १६४-६६; हुल्लड़बाजी, २८३

सांकेतिका

अ

अंग्रेज/जों, —और जापानी, ६, ९६, १५४; —और देशी नरेश, ५६; —कायरोंकी कौम नहीं, ४२२; —के प्रति घृणा नहीं, ४२१, ४२५; —को एशिया और आफ्रिकासे हटने की सलाह, १०८; —को परेशान न करने की नीति, २१४, २३१; —को भारत छोड़ने की सलाह, ६८, ७४-७५, ९६, १०६, १०९, ११६-१९, १२४, १२६, १३२, १३४, १४७, १५५, २३४, २४२-४३, २६०-६१, २६७, २७१-७२, २९३, ३१५-१६, ३१८-१९, ३४६; —को भारतमें मित्रके नाते रहने की सलाह, २१५; —गांधीजी के मित्र, १३२; —से मुक्ति पाने के लिए किसी विदेशी ताकतकी मदद नहीं, ५७

अंग्रेजी, —विश्व-भाषाके रूपमें, ५४

अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू, ३७७, ३८२

अकाल, —बंगालमें, ३८-३९; —हिसारमें, और कताई, २५

अखण्डानन्दजी, स्वामी, ४५३

अखिल भारत देशी राज्य प्रजा दिवस, —त्रावणकोरमें, ८३

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, देखिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस महासमिति

अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ, ४२, २५७ पा० टि०, ३९४; —का कांग्रेसकी या दूसरी राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं, ३१०-११

अखिल भारतीय चरखा संघ, २५, ४८, २७९, २८०, ३६१, ३६२, ४५५; —अहिंसाका प्रतीक १४३; —एक पारमार्थिक संस्था, १४२; —और सूतकी मुद्रा, २०४; —का कांग्रेसकी या दूसरी राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं, ३१०-११; —को नागजीभाई द्वारा इमारत भेंट, १९८

अग्रवाल, श्रीमन्नारायण, देखिए श्रीमन्नारायण

अटलांटिक चार्टर, १२३

अतुलानन्द, २५५ पा० टि०

अनटु दिस लास्ट, ४००

अन्नपूर्णा, ३४

अन्याय, —का सामना सत्ता हथियाने के उद्देश्यसे नहीं, १४८

अफीम, —का व्यसन, राजपूतानेमें, ९३, ९४

अमतुस्सलाम, ११३, १९६

अमृतकौर, १, १०, १०६, ११३, ११५, १३०, १३५, १४३, १४६, १५८, १७८, १९६, १९७, २००, २०४, २१०, २२२, २४०, २५१, २५२, २५४, २५८, २६३, २७२, २८५, २९७, २९८, ३०३, ३११, ३१४ पा० टि०, ३३९, ३४१, ३५७, ३८३, ३८७, ३८९, ४१०; —की वाइसरायसे भेंट, १६९, १७१

अमेरिका, —और "भारत छोड़ो" प्रस्ताव, ३३५-३६, ३९९-४०२; —और विश्वयुद्ध, ४५, ५५, १२९, २३०; —की अहिंसामें आस्था नहीं, २६७; —की महानता,

१८२; –के प्रति गांधीजी की शुभकामनाएँ, २९३; –को ब्रिटेनकी मदद न करने की सलाह, २१८; –में गुलामी की प्रथाका अन्त, ११०; –में नीग्रो समस्या, २९४; –में ब्रिटेन द्वारा हिन्दुस्तानके खिलाफ सुसंगठित प्रचार, २३२
अमेरिकी, –और कांग्रेसका स्वतन्त्रता सम्बन्धी प्रस्ताव, ३९९-४०२; –और स्वराज्यकी प्राप्तिमें उनकी मदद, २१४; –लक्ष्मीके उपासक, १२८
अमेरिकी तकनीकी मिशन, २१६
अय्यर, सी० पी० रामस्वामी, ४२४ पा० टि०
अराजकता, –अंग्रेजी शासनसे अधिक श्रेष्ठ, १२६, १३२, १७७, २६२; –की स्थिति में उपद्रवी तत्त्वों द्वारा सत्तापर कब्जा, १४८; –को समाप्त करने के लिए गांधीजी का प्रण, २०४; –खुर्जामें, १६३-६४; –में से अहिंसाका उदय, २१८, २४२-४३
अली, शरफ अथर, ११८ पा० टि०
अली-बन्धु, ३०१, ४२८
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, –और साम्प्रदायिकता, ३१
अलेक्जैंडर, ऑलिव, ६७
अलेक्जैंडर, होरेस, ६७, २७०, २७२; –और "भारत छोड़ो" प्रस्ताव, ४०३-५; –की गांधीजी से भेंट सरकारको अस्वीकार, ३१४
अल्लाबख्श, खान बहादुर, १७२; –को विधान-सभासे त्याग-पत्र देने की सलाह, १४०, १४१
असहयोग, ५८, ६८; –जापानियोंके खिलाफ, ७१-७३, ९६, ११७, १२५, २१३, ३५९; –ब्रिटेनियोंके खिलाफ, ११८-१९, १२५-२६
असहिष्णुता, –से बचने का अनुरोध, १८५
अस्पृश्यता, –और कांग्रेसी, ८९; –और ग्राम, ३४३; –का निवारण, १३१; –का पालन गुनाह, ३५०; –गुजरातमें, १९४
अस्सनदास, –और हूरोंके बलवेसे सम्बन्धित रिपोर्ट, १३६
अहमद, तुफैल, १६०
अहमद, नजीर, ३५६
अहिंसक व्यायाम संघ, ८४, १५७, १८२
अहिंसा, ४, ५७, १४७, २१३, २३६, २४८, ४४२, ४४५; –अतिशय क्रियाशीलताका सिद्धान्त, २५७; –अत्याचारीसे भी प्रेम करना सिखाती है, १७६; –और ईश्वर, २५७; –और कांग्रेस, ३, ८, १३, ३९६; –और निःशस्त्रीकरण, ४२३; –और निष्क्रमण, ७५; –और "भारत छोड़ो" प्रस्ताव, ४१९-२३; –और रचनात्मक कार्यक्रम, ७; –और विश्वसंघ, ३९१-९२; –और शारीरिक प्रशिक्षण, ८४; –और हिंसा, १०५, २५५, २६८, ४२२; –का उदय अराजकतामें से, २१८, २४२-४३; –का ध्येय विरोधीका विनाश नहीं बल्कि उसकी शुद्धि, २०३; –का पालन सांसारिक मामलोंमें, ३५६; –के साधकोंके सामने काम, ६; –को नीतिके रूपमें अपनाने की अपील, २३९, ४२३; –में ईमानदारीकी अपेक्षा, २६६; –से जापानी सेनाका मुकाबला, १९९-२००; –से ही सच्चे लोकतन्त्रकी स्थापना, ४३१

आ

आजाद, अबुल कलाम, ४६, ५९, ६८, ७३, १००, १०२, १२१, १७८, १८०, २०४, २०५, २२२, २२४, २२७,

२४०, २५१, २५२, ३११, ३१४ पा० टि०, ३२३, ३२५, ३४१, ३६१, ३८३, ३९६, ४१०, ४२४, ४२७, ४२९, ४३३, ४३७; –की मुस्लिम लीगको पेशकश, ३६९-७०, ४३२;–के साथ गांधीजी के मतभेद, ३२७, ३९२
आत्मरक्षा, –अधिकारियोंसे, डाकुओंसे तथा जापानियोंसे, १४८; –की कला सीखना आवश्यक, २५६
आत्महत्या, –मौतका सम्मानपूर्ण तरीका नहीं, ३१७-१८
आन्ध्र, –और प्रान्तोंका पुनर्विभाजन, २५, ३०५
आफ्रिका, –से अंग्रेजोंको हटने की सलाह, १०८
आबिद साहिब, १६८
आयुर्वेद, –और एलोपैथी, २२३, २८५-८६; –और वैद्य, १७८-७९; –में गांधीजी का विश्वास, ५०
आरोग्यकी कुंजी, –की प्रस्तावना, ४५४-५५
आर्नल्ड, सर एडविन, ३४४
आर्म्स ऐक्ट, १३६ पा० टि०
आर्यनायकम्, आशादेवी, ११५, २३७
आलोचना, –अज्ञानपूर्ण, आलोचक तथा ध्येयके लिए हानिकारक, ७८
आशा, १५१
आसफ अली, ३४१, ३८०, ४४४
आसर, लीलावती, २४०, २४१
आस्ट्रेलिया, –और भारतीय प्रवासी, ४

इ

इंटरनेशनल न्यूज सर्विस, २१२ पा० टि०
इंडियन ओपोनियन, ४१, ४५४
इंडियन सिविल सर्विस, ३३७
"इमर टेम्पल" पुस्तकालय, ३२०
इमर्सन, २९३
इवनिंग न्यूज, ४४७
इस्लाम, ४३२-३३; –और हिन्दू-धर्म, २८; –की हिदायत, ४२९; –धर्म ग्रहण करनेवालोंमें अस्पृश्यता, ८९-९०

ई

ईडन, २५० पा० टि०
ईश्वर, –और अहिंसा, २५७; –की वाणी, जनताकी वाणी, ४१६; –को अभिमान नापसन्द, ४३०; –को समर्पणमें ही श्रेय, ३७; –में विश्वास और निर्भयता, ६३; –सत्य है, ३९०, ४००
ईस्ट इंडिया कम्पनी, २७९

उ

उड़ीसा, –में साम्यवादी और फॉरवर्ड ब्लॉक-वाले, ४२, ४५
उपवास, –२१ दिनका, आत्म-शुद्धिके लिए, ३७२; –का स्थान अहिंसक आन्दोलन में, ३५४-५६
उपाध्याय, हरिभाऊ, ८५
उर्दू, –और हिन्दी, ६६, ८८, १९३; –और हिन्दू-मुस्लिम एकता, ५१-५२; –का प्रचार, ८२, १०३, ३७७, ३८२
उर्दू 'हरिजन', ८२, १०७
उर्दू 'हिन्दुस्तान' (लखनऊ), ८२, १०७

ए

एकता परिषद्, २७०
एण्ड्रयूज, सी० एफ०, ६७, १३२, २७०, २७२, ३१४, ३८४, ३८५, ४३९, ४४०; –और अफीमचियोंकी समस्या, ९४
एन, लेडी, ४३९
एमनी, स्टुअर्ट, ३३२ पा० टि०, ३३३, ३३४, ३३७

एमरी, लियोपोल्ड, ११८ पा० टि०, १२७, १६९ पा० टि०, २१४, ३३१, ३६० पा० टि०, ४१२ पा० टि०, ४५७ पा० टि०, ४६०
एलफिंस्टन कालेज, ४६०
एलोपैथी, –और आयुर्वेद, २८५-८६; –एक वर्धमान विद्या, २२३
एशिया, –से अंग्रेजोंको हटने की सलाह, १०८
एसोशिएटेड प्रेस ऑफ अमेरिका, २२९ पा० टि०

ओ

ओवेन, ग्लैडिस, ३८५

औ

औपनिवेशिक दर्जा, –और कांग्रेस, ३२; –और गांधीजी, २३४

क

कंचन, ४३
कंटक, प्रेमा, ४६, ५९, ११५, २५२, ३०७, ३६३
कटेली, खान बहादुर, ४५६
कताई, १४२, ३३२, ३४४, ४३३, ४३४; –और हिसारका अकाल, २५; –पैसेके लोभसे नहीं बल्कि कपड़ेकी तंगी मिटाने के लिए, २०४; –यज्ञार्थ, २७९
कतैये, –और उनकी मजदूरीमें वृद्धि, १४२-४३
कबीर, २०८
कमला, २९७, ३११
कमाल पाशा, ३००, ३०१
कराड़ी, –में खादीका उत्पादन और शिक्षा, १९४
कवीश्वर, सरदार शार्दूलसिंह, ३०, २७५
कांग्रेसजन, –और युद्ध-सामग्रीके ठेके, ३१७; –और व्यक्तिगत प्रतिरोध, १४८; –और हरिजन, ३५१; –और हरिजन सेवक संघ, ८९; –और हिन्दीका प्रचार, ३७६
कांजीलाल, सुशील, १६५
काका, देखिए कालेलकर द० बा०
काचरू, डॉ० द्वारकानाथ, २४४, २८८; –का मेवाड़से निर्वासन, ३५३-५४
काजी, डॉ० ए० यू०, १६१
काटजू, डॉ० कैलाशनाथ, –की अहिंसापर पुस्तक, ८, ९
काठियावाड़; –में खादी, २१९-२०
काठियावाड़ना खादी-कामनो हेवाल, २१९
कानजी, पुरुषोत्तम, ८४
कापड़िया, कृष्णा, ६३, ६४
कापड़िया, माधवदास गो०, ६३, ६४
कामदार, हरिइच्छा, ४०
कायरता, –का त्याग, २६८
कारलाइल, ४२३
कालेलकर, द० बा०, १८, ८१, ९१, १५२, २०८, २२६, ३०२, ३८६, ३९३, ३९७; –और हिन्दुस्तानीका काम, २२२
कालेलकर, बालकृष्ण, १८
किदवई, रफी अहमद, –की गिरफ्तारी, १९०-९१
कुमारप्पा, जे० सी०, १९, ६२, १६१, २९७, ३४१
कुमारप्पा, भारतन, १६१, ३९४
कुरान, ३७३
कुलकर्णी, गोपालराव, १५७
कृपलानी, जे० बी०, ४१, ४५
कृपलानी, सुचेता, ११५
कृपाण, –का धर्मके अंगके रूपमें धारण करना गांधीजी को नापसन्द, २७६

कृष्ण, भगवान, ३००, ३९७
कृष्णचन्द्र, २७, ५०, ९९, १०१, १४७, १६२, १६३ पा० टि०, १९०, २२४, २२५, २२८, २४१, २४४, २५९, २६०, २७७, २९६, ३८६, ३८८
केदारनाथ, १५७
कैटली, एच० ई० बी०, २८८
कैप्टेन, पेरीन, १९३
क्रान्तिकारी आन्दोलन, –का विरोध, २९९-३०१
क्रिकेट, –में साम्प्रदायिकता अनुचित, ३१
क्रिप्स, सर स्टैफर्ड, ९ पा० टि०, ३२, ३३, ४१, ६७, ७०, १२०, १२७, १३२, १३३, २०० पा० टि०, २६२; –का फार्मूला कांग्रेस और मुस्लिम लीग द्वारा अस्वीकार, २७; –के बयानका गांधीजी द्वारा विरोध, २६०-६१
क्रिप्स-मिशन, २९४; –की विफलता, १०५, २४८
क्षमा, –वीरस्य भूषणम्, १७६

ख

खाँ, खान अब्दुल गफ्फार, १४४; –की लोकप्रियता, २९०-९१
खादी, –और ग्रामोद्योग, ४२-४३, ४७; –कराड़ीमें, १९४; –का उत्पादन करने की अपील, ३९४; –काठियावाड़में, २१९-२०
खादी-कार्यकर्त्ता, ४२, ४३
खादी-जगत्, १४२
खादी-प्रतिष्ठान, ३६४, ३६५
खादी विद्यालय, –के छात्र, २७८-७९
खिलाफत आन्दोलन, –और गाय, ४२८
खुदाई खिदमतगार-आन्दोलन, –के विरुद्ध मिथ्या प्रचार, २९०-९१
खुर्जा, –में अराजकता, १६३-६४
खुशाल, १७
खुसरो, अमीर, २०८
खेर, बा० गं०, ११८ पा० टि०, १२१, २९७

ग

गल्ले, –का व्यापार और बिचौलिये, ३१२-१३
गांधी, इन्दिरा, ४५, १००
गांधी, कनु, २६, ६९, १११, ११६, १४४, १४५, २७०, ४०५
गांधी, कस्तूरबा, ११, २६, ३५, ३६, ३८, ४१, ४६, ४९, ६३, ६४, ८६, १००, १०६, १११, १४४, १७१, १९६, २९७, ३०३, ३११, ३८५; –को चावल खाने की मनाही, २४१
गांधी, कान्तिलाल, ११, २३, ६३
गांधी, जमना, १११
गांधी, जयसुखलाल, १३५, ३८५
गांधी, देवदास, १२, २३, ६४
गांधी, नारणदास, २६ पा० टि०, ४० पा० टि०, १११, ११६ पा० टि०, १४५, २१९, २६९, २९२, ३६२, ४०५
गांधी, परमानन्द, ४०
गांधी, पुरुषोत्तम, ४०
गांधी, फिरोज, ४५, १००
गांधी, मगनलाल, ३९५
गांधी, मणिलाल, ३५, १८९
गांधी, मनु, १३५ पा० टि०, ३८५
गांधी, मो० क०, –अंग्रेजोंके मित्र, ९५; –अपनेको धर्मगुरु नहीं मानते, २७६; –और अबुल कलाम आजादके बीच मतभेद, ३२७, ३९२; –और राजाजी के बीच मतभेद, १८४-८५, १९८, २०५, २३५; –और रेडियो तथा सिनेमा, ३; –और सुभाषचन्द्र बोसके बीच मतभेद, २३९; –का २१ दिनका उपवास, २७०; –का मनुष्य-स्वभावकी संवेदनशीलतामें

अटूट विश्वास, ३४७; –की गिरफ्तारी, ४४५-४६; –की जर्मन आक्रमणपर लन्दनवासियोंसे हमदर्दी, ३२०; –की हिटलरके साथ तुलना, सत्यका उपहास, ३४८; –के अहिंसक आन्दोलनका नेतृत्व करने के बारेमें बी० बी० सी० द्वारा शंका, ३२२; –के हिन्दुत्वमें सभी धर्मोंका समावेश, ३५२; –द्वारा गृहस्थ-जीवनका त्याग, ४५५; –द्वारा डकैतोंके खिलाफ लाठीका उपयोग करने की सलाह, २५०-५१; –द्वारा देशके बँटवारेका विरोध, २८; –द्वारा मुसलमान या मुस्लिम हितकी कभी कुसेवा नहीं, ३०७; –पर जापानको हिन्दुस्तान बुलाने का आरोप, २३०; –पूर्ण स्वतन्त्रताके सिवाय किसी चीजसे सन्तुष्ट होनेवाले नहीं, ४३४; –मुस्लिम समाचारपत्रोंकी दृष्टिमें भारतमें इस्लामके सबसे बड़े शत्रु, २३६; –में 'तुष्टीकरण' की प्रवृत्ति नहीं, ४२५; –युद्ध-मात्रके विरोधी, ४५, ६७, १०९, २९३
गांधी, रामदास, २९६
गांधी, लक्ष्मी, १२, १४५, १५६, २००
गांधी, शान्ति, २३
गांधी, सरस्वती, ११, २३
गांधी, सुशीला, ३५, १८९
गांधी, हरिलाल, ११ पा० टि०, १२, २१ पा० टि०, २३, ६४; –का मुसलमान बनना, ४३२
गांधी-अर्विन समझौता, १४९, २६८
गांधी जयन्ती, देखिए चरखा जयन्ती
गाडोदियाजी, १८
गाय, –का मांस और ब्रिटिश तथा अमेरिकी सैनिक, २९५; –की पूजा और खिलाफत आन्दोलन, ४२८; –दुधारू, और उनसे हल जोतने का काम, ९७
गिडवानी, चोइथराम, १७२
गुजरात, –में अस्पृश्यताका भयानक रूप, १९४; –में डकैतियोंका जोर, २५१
गुणाजी, इन्दुमती ना०, ९२
गुरुदेव-स्मारक, ६०, १३१, २०१
गैरीबाल्डी, ३००
गोकीबहन, देखिए रलियातबहन
गोखले, गोपालकृष्ण, ४४०
गोपनीयता, –में गांधीजी को विश्वास नहीं, १८०
गोपबाबू, १५१
गोपालन, २४२
गोलमेज परिषद्, ३८३; –[–२] के लिए डॉ० दत्तका कार्य, २७०
गोवर्धन संस्था, २९७
गोविन्ददास, सेठ, २०
गोविन्दसिंह, गुरु, ३८७ पा० टि०; –और हिंसा, २७४-७६, २९८-३०२
गोसेवा संघ, ८६, २९६
ग्राम-उद्योग पत्रिका, ३९४
ग्राम-पंचायत, ३४३
ग्राम-स्वराज्य, –की गांधीजी की कल्पना, ३४२-४४
ग्रामोद्योग, –और खादी, ४२-४३, ४७
ग्रेग, रिचर्ड बी०, ९
ग्रेडी, डॉ० हेनरी, २१६
ग्रोवर, प्रेस्टन, २२९, २३१, २३२, २३४

घ

घनश्याम, प्रो०, –की हूरोंके बलवेसे सम्बन्धित रिपोर्ट, १३६-४१
घृणा, –की प्रकृति, १५५
घोष, प्रफुल्लचन्द्र, २९७

च

चटर्जी, अमृतलाल, २६, ६९, १४४, १९५, ४०५

चटर्जी, आभा, २६, ६९, १४४, १४५, १९५, २००, ४०५
चटर्जी, धीरेन्द्र, १०१, ४०५
चटर्जी, वीणा, २६, १४४, १४५, १९५, ४०५
चन्द्रमुखी, ३१३
चन्द्रशेखर, २९६
चन्द्रसिंह, १००, १०१, २७७
चरखा, देखिए कताई
चरखा जयन्ती, ३६१-६२
चरखा संघ, देखिए अखिल भारतीय चरखा संघ
चर्चिल, १७४
चाँदीवाला, ब्रजकृष्ण, ७६, २५५, ३११
चीन, –और अहिंसा, ३३६; –की रक्षाका प्रश्न, २३०, २३५, २६१, २८१, ४१९; –की सेना भाड़ेकी सेना नहीं है, १२३; –के प्रति भारतका बन्धु-भाव, ३२६; –पर जापानी हमला और भारत, १७८-७९, २४९, ३४४
चीनी/नियों, –के गुण, २४७; –द्वारा विश्व-युद्धमें कुर्बानियाँ, १२४
चीनी, –मिलकी, और आश्रममें उसके प्रयोगकी मनाही, २४१
चुन्नीलाल, ४३
चोखावाला, आनन्द, ८५, ११४
चोखावाला, शारदा गो०, ८५, ११४
चौंडे, बालकृष्ण मार्तण्ड महाराज, –और मुर्दार चमड़ेका उपयोग, २९६-९७, ३०४
चौधरी, रामनारायण, २
च्यांग काई-शेक, ६०, १२१, २४७, २५०, ४४२
च्यांग काई-शेक, श्रीमती, ६०, २४७, २४९, ४४२

छ

छापामार युद्ध, –और जवाहरलाल नेहरू, ५७-५८

ज

जगदीश, ३१३
जगन्नाथ, लाला, ९, १८, २११
जगमोहनदास, २०
जनता, –की वाणी ईश्वरकी वाणी, ४१६
जमीन-महसूल, –की ना-अदायगी, और "भारत छोड़ो" प्रस्ताव, ४०८-९
जयकर, मु० रा०, ११९
जयन्ती, २९२
जयप्रकाश नारायण, १०, १९६, २५१, ३६३
जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड, २३१
जागीरदार, –और उनके स्वेच्छाचारपर अंकुश आवश्यक, २८७; –और राजपूतानेकी रियासतोंके राजा-महाराजा, ९३
जाजू, श्रीकृष्णदास, २०३, २५७
जापान, –और सशस्त्र प्रतिरोध, ३३६; –का भारतपर हमलेका खतरा, ३८, १०५, ११८-१९, १२१, १८३, १९१-९३, २१७, ३१९, ३२३-२६, ३४९, ३७०; –का युद्ध ब्रिटिश साम्राज्यके विरुद्ध, भारतसे नहीं, ७०; –की हिमायत करने का गांधीजी पर आरोप, १७९-८०, २३०; –के विरुद्ध छापामार युद्ध, ३६ पा० टि०, ५७-५८, ७९-८०; –के साथ अहिंसक प्रतिरोध, ५-७, ६१, १९२, १९९-२००, २१४, २३३, २८१-८२, ३५९; –द्वारा चीन और द० पू० एशियापर आक्रमण, २४८-४९, ३४४-४७, ४२१-२२; –विश्व-बन्धुत्वकी

स्थापनामें बाधक, ३४४; –से मानवताके नामपर अपील, ३४४-४८
जिन्ना, मु० अ०, १५६, १५८, २१७, ३२०, ३५६, ३५८, ४१०, ४१८ पा० टि०, ४२२, ४२५, ४२९, ४३०, ४३१, ४३२; –और पाकिस्तानकी माँग, ११९-२०, ३५१-५२; –और "भारत छोड़ो" प्रस्ताव, ४०९; –और राजगोपालाचारी, २०१
जीन्स, सर जेम्स, ३५६
जुलू, १०४
जेन, रिचर्ड, ३३२ पा० टि०, ३३६, ३३७
जेराजाणी, विट्ठलदास, १७०, १९५
जोगेन्द्र, ३८
जोधपुर, –की सरकार और मारवाड़ लोक परिषद्, ३९७-९९; –के दरबारका पण्डित काचरूके सम्बन्धमें आदेश, ३५३; –में उत्तरदायी सरकारके लिए आन्दोलन, १८५, २४४-४६, २८७; –में जनता का दमन, ९३; –में श्रीप्रकाश द्वारा सुलहकी कार्रवाई, २८५, २८७-८८, २९७
जोशी, कनुभाई, २०४
जोशी, पूरणचन्द्र, ११८
ज्योत्स्ना, २७७ पा० टि०

ट

टण्डन, पुरुषोत्तमदास, २२, ६६, ३३८; –कांग्रेसके हिन्दुस्तानी-सम्बन्धी प्रस्तावके जनक, ३७६; –हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्राणदाता, ३४०
टाइम्स (लन्दन), २६२
टाटा, १२९; –और न्यासित्वका सिद्धान्त, १०
टॉल्स्टॉय, लियो, ४००
टेम्पल चर्च, –पर बम-वर्षा, ३२०
ट्रैवल्स ऐंड ऐडवेन्चर्स (सीदी अली रैस), ७

ठ

ठक्कर, अमृतलाल वि०, १८, ७४, ८९, ९१, ४४८
ठाकरसी, लेडी, ३५५
ठाकुर, रथीन्द्रनाथ, १५७, २०१, ३३९, ३६४
ठाकुर, रवीन्द्रनाथ, १२८-३१, १५७ पा० टि०, २०१, ४३९

ड

डी' वेलेरा, ३००, ३०१
डेड एनिमल्स टु टैण्ड लेदर, ७४
डेली एक्सप्रेस, ३१९
डेली हेरल्ड, ३७१; –द्वारा कांग्रेसकी आलोचना, ३६९
"डयूटी ऑफ सिविल डिसओबीडियंस" (सविनय अवज्ञाका कर्त्तव्य), ४००

ढ

ढेबर, उ० न०, १९७, २२६; –और लीमड़ीका समझौता, २९२; –और लीमड़ी प्रजा-मण्डल आन्दोलन, २०२

त

ताराचन्द, डॉ०, १६८; –और हिन्दुस्तानी (खड़ी बोली), २०८-९, २२८
तिलक विद्यालय, ४४ पा० टि०
तेजासिंह, ३८७
तेलुगु, –निजाम राज्यमें, १०३
तैयबुल्ला, १४२
तोजो, ४१५ पा० टि०
त्रावणकोर, –में दमन-कार्य, ८३-८४, ९२
त्रावणकोर राज्य कांग्रेस, ८३, ९२ पा० टि०

थ

थोरो, हेनरी डेविड, २९३, ४००

द

दत्त, डॉ०, —की मृत्युपर समवेदना-सन्देश, २७०
दत्त, शम्भुनाथ, १६५
दत्त, श्रीमती, २०७
दस्तकारी, —द्वारा शिक्षा, २३७-३८
दादाजन, भाई, ४७
दास, डी० सी०, ४१६
दास, रतन, १६५
दास, शशांक, १६४
दास, हरिचरण, १६४
दासगुप्त, क्षितीशचन्द्र, ३६५
दासगुप्त, सतीशचन्द्र, ३८, ३९, ६५, २१२; —की गिरफ्तारी, ३६४; —की राष्ट्रके प्रति सेवाएँ, ३६५
दासगुप्त, हेमप्रभा, ६५
दीनबन्धु एण्ड्रयूज स्मारक, ६०, १००, ११२, १३१, २०१, ४५५
दीनोवस्का, वान्दा, ३८८
दीवानजी, दिलखुश, १९४
दूगड़, सोहनलाल, ८७
दे, सुरेशचन्द्र, १६४
देव, शंकरराव, ४६, ६८, ११५, ३०७
देवनागरी, —और फारसी लिपि, ५१; —का प्रयोग सब प्रान्तीय भाषाओंके लिए, १४
देशी नरेश/शों, —और अधीश्वरी सत्ता, १५२, ४२०-२१; —और जागीरदार, राजपूतानेमें, ९३; —को न्यासी बनने की सलाह, ३७४-७६, ४३५-३६; —पर गांधीजी या कांग्रेस कार्य-समितिका कोई प्रभाव नहीं, ३३४; —ब्रिटिश सरकारकी देन, ४२०
देसाई, जीवणजी डा०, ६२, ४५४ पा० टि०
देसाई, दुर्गा, ४५३, ४५६
देसाई, भूलाभाई, ११८ पा० टि०, १२१
देसाई, मगनभाई प्र०, ३९
देसाई, महादेव, २, ४ पा० टि०, १०, १२, ३५, ६२, ७६, ११२, ११६, १२३ पा० टि०, १२९ पा० टि०, १५१, १८१ पा० टि०, २१०, २१२ पा० टि०, २२९ पा० टि०, २३६ पा० टि०, २५०, २५१, २६३, २७० पा० टि०, २७८ पा० टि०, २७९ पा० टि०, २९८, ३०६, ३२७ पा० टि०, ३३२ पा० टि०, ३५३, ३६६ पा० टि०, ४१५, ४३९, ४५५, ४५६; —का देहान्त, ४५३; —की गिरफ्तारी, ४४६
देसाई, महेन्द्र वा०, १ पा० टि०
देसाई, मोरारजी, ११८ पा० टि०
देसाई, वालजी गो०, २६, २४२
दोशी, नागरदास, २१९, २२०

ध

धर्मप्रकाश, ४४८
धर्माधिकारी, दादा, ३०२
धुरी-राष्ट्रों, —की विजयका हिमायती होने के आरोपका गांधीजी द्वारा खण्डन, ३६६-६८; —से सुलहके लिए अपील, २८२
ध्रुव, आचार्य आनन्दशंकर, —को श्रद्धांजलि, २९-३०

न

नई तालीम, २३७
नमक, —कर, ४३४; —कानूनको शिथिल करने की सलाह, १४९
नरेन्द्रदेव, आचार्य, ४६, ७३, १९६, २९८, ३२७

नवजीवन, –के हिन्दी संस्करणकी माँग, ३९३
नवजीवन प्रेस, ४५९ पा० टि०
नाका, ऋषिकेश, १७८
नागजीभाई, १९८
नागरदास, १६
नागरिक, –द्वारा अपने पड़ोसीकी मदद करना धर्म, २५६
नाजी, २१८, ४२६
नाजीवाद, ४००, ४५२; –का भारत द्वारा विरोध, ३४५; –के विरुद्ध लड़ाई और अंग्रेजोंकी वापसी, १०८; –पर नेहरूका वक्तव्य, २५८ पा० टि०; –साम्राज्यवादकी उपज, ९६
नानक, गुरु, –के भजनोंका आश्रमकी प्रार्थना में स्थान, २७६
नानाभाई, देखिए भट्ट, नृसिंहप्रसाद
नानावटी, अमृतलाल टी०, ३९, ८१, २१०, २२२
नायडू, सरोजिनी, ४४६
नायर, सर सी० शंकरन, ३८३
निम्बकर, २०
निःशस्त्रीकरण, –और अहिंसा, ४२३
नीरो, –के साथ गांधीजी की तुलना, ३०४-५
नेताओं, –में शुद्ध मतभेद प्रायः प्रगतिके शुभ-चिह्न, ३२
नेपाल, –भारतकी स्वतन्त्रताके बाद भारत का एक सम्मानित और स्वतन्त्र पड़ोसी, ३९२
नेवटिया, केशवदेव, ८४
नेशनल हेरल्ड, १९०
नेहरू, जवाहरलाल, ३१, ३६, ४५, ५९, ६७, ७० पा० टि०, ७३, १००, १२१, १७१-७२, १७९, १८०, १९०, २०४, २०५, २१३, २२२, २२४, २४०, २५०, २५१, २५२, २६८, २९७, ३११, ३१४ पा० टि०, ३२६, ३४१, ३५३, ३६१, ४१४, ४२२, ४२३, ४२७, ४३७, ४४१; –और छापामार युद्ध, ४५, ५७-५८; –और पाकिस्तानकी माँग, १२०; –का चीनके प्रति प्रेम, २४७; –का फासीवाद और नाजीवादके प्रति विरोध, २५८; –का सशस्त्र प्रतिरोधमें विश्वास, ३९६; –के अहिंसा-सम्बन्धी विचार गांधीजी से भिन्न, ३९२; –के विचार स्वतन्त्र भारतमें नरेशोंके विशेषाधिकारोंके सम्बन्धमें, ४३५; –को कांग्रेस कार्य-समितिसे त्यागपत्र देने की सलाह, ३२७; –गांधीजी के मापदण्ड, ४५२; –गांधीजी के वारिस, ५७-५८; –द्वारा खादीको आजादीकी वर्दीकी संज्ञा, २८०; –से प्रेरणा, विदेशी मामलोंकी, ४१३
नेहरू, रामेश्वरी, ७४
नैयर, प्यारेलाल, ११६, २६९, ३४१, ३५७, ३६१, ३६३, ३७३, ४४६ पा० टि०, ४५५
नैयर, मोहनलाल, २६९
नैयर, सुशीला, ७६, ११६, १९६, १९७, २१०, २२२, २५१, २५४, ३५७, ३६१, ३६३, ४५३, ४५४ पा० टि०
नौरोजी, खुर्शेदबहन, १०, २३, १७८, १९७, २२४, २७२, २८५, ३११
नौरोजी, दादाभाई, १० पा० टि०, ४४१
न्यासित्व, –का सिद्धान्त, १०-११
न्यूज क्रॉनिकल, ११६

प

पंचोली, विजया म०, १८९
पकल, फ्रेडरिक, ४३५, ४३६; –का गुप्त परिपत्र, ४१५-१६, ४३३
पटवर्धन, ए० एस०, ४४

पटेल, मणिबहन, ४४७
पटेल, वल्लभभाई, १०, ३५, ४५, ११८ पा० टि०, १३१, १५७, १७२, २५०, ३११, ४२२, ४४७, ४५६; —और लीगकी माँग स्वीकार करने से सम्बन्धित राजगोपालाचारीका प्रचार-कार्य, ३०६; —और लीमड़ीके मामले, २०२, २२७; —को अहिंसक असहयोगका प्रस्ताव स्वीकार न होने पर कांग्रेस छोड़ने का, आदेश, ६८; —गांधीजी के अनुयायी, ५८
पण्डित, वसुमती, १९६, २००
पण्डित, विजयलक्ष्मी, १७८
पण्ड्या खादी कार्यालय, चलाला, १६, २१९-२०
पत्र-सम्पादक/कों, —और मित्र-राष्ट्रोंको सहायता देने से सम्बन्धित वर्धा-प्रस्ताव, ४०२; —से स्वतन्त्रता आन्दोलनमें कांग्रेसके साथ सहयोग करने की अपील, ४३५
परीक्षितलाल, १९४
परीख, नरहरि द्वा०, १ पा० टि०, १६६, १६७
परीख, वनमाला न०, १, १२, ३६, ४२, ७६
पाकिस्तान, —की माँग और गांधीजी, ३०७-८; —की माँग और पटेल तथा नेहरू, ११९-२०; —की माँग और मुसलमान, ३५१, ४३१; —की माँग और मुस्लिम लीग, २७, १५९-६०, १८४-८५, २०१, ३०५, ३५६; —की माँग और साम्प्रदायिक सम्बन्ध, १२३-२४
पाटिल, एल० एम०, ४२, ६८
पारनेरकर, वाई एम०, ८५; —द्वारा सेप्टीक टैंकका निर्माण, २४१
पारेख, मूलचन्द, १७
पार्कर, डॉ०, ३२०
पियर्सन, डब्ल्यू० डब्ल्यू०, ९४, ४४० पा० टि०
पिल्लै, ताणु, १९, ६४, ८३, ९२
पीर पगारो, १८०; —नागपुरमें नजरबन्द और उनके मकानकी तलाशी, १३६
पुष्पा, ४३
पृथ्वीसिंह, ८४, १५७, १५८; —के गांधीजी के साथ सम्बन्ध, १८२
पेटिट, मीठूबहन, ३६
पोद्दार, रामेश्वरदास, २०१
प्रताप, १०१
प्रताप, महाराणा, २९९, ३००
प्रभावती, १०, ८६, १९६, १९७, २५१, २५३, ३६३, ४१०
प्रान्तों, —की हदबन्दीका सही आधार भाषा, २४-२५, ३०५
प्रान्तीयता, —संकीर्ण, और उससे बचने का अनुरोध, ७७
प्रावदा, २५५
'प्रिंस ऑफ वेल्स', एच० एम० एस०, —का डूबना, ३७३

फ

फजलभाई, एफ० ए०, २८९
फतेहसिंहजी, —और लीमड़ी-समझौता, २२७, २७०
फॉरमन क्रिश्चियन कालेज, २७०
फॉरवर्ड ब्लॉक, ४२, १२१
फासीवाद, ४००, ४५२; —और जापान, ३१५; —और साम्राज्यवाद, ९६, ४१४, ४४३; —के नाशके लिए अंग्रेजोंकी वापसी जरूरी, १०८; —पर जवाहरलाल नेहरूका वक्तव्य, २५८ पा० टि०
फिरंगी महल, ४२८
फिशर, बिशप, १२८, ४००
फिशर, लुई, २०५, २१२, २९४
फील्ड, सर डोनाल्ड, २४५
फेनी, —में अव्यवस्था, ७३, ७९-८०

फ्रान्स, –की क्रान्ति, ४२३
फ्रिडमैन, मॉरिस, ९२, ३८१
फ्रैंको, जनरल, ३९६
फ्रैंड्स एम्बुलैंस यूनिट, –भारतमें, २७०

ब

बंगलोर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, १२९
बंगाल, –में अकाल, ३८-३९; –में अन्य प्रान्तोंके व्यापारी, ७७; –में गृह-कलह और जापानी हमलेका खतरा, २८६; –में भारतीय सैनिकों द्वारा गोलीबारी, १६४-६६; –में हल्की नौकाओंपर सरकारका कब्जा, ११०
बंगाल केमिकल वर्क्स, ३६५
बजाज, कमलनयन, १५६, २२१, २५४, ३१३
बजाज, जमनालाल, १८, ४४, ७४, २७३, ३४०; –और न्यासित्वका सिद्धान्त, १०-११
बजाज, जानकीदेवी, ५९, १००, १६३, ३१३, ३७४
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, २९ पा० टि०
बर्मा, –के शरणार्थी, ६१; –से ब्रिटिश सत्ताकी वापसी, २४८, २७१-७२
बलवन्तसिंह, ८५, ८६, १०६, ११४, ३७८, ३८९
बलिदान, –के बिना मुक्ति नहीं, २२१
बावला, देखिए देसाई, नारायण
बाबू, १७
बाबू महात्मा, –एक ठग, १७
बॉम्बे क्रॉनिकल, ४२३, ४५९, ४६१
बारी, मौलाना, ४२८
बारीखाँ, ११३
बिड़ला, घनश्यामदास, १८, ४४, ४७, ८८, ८९, १३१, २७३
बिड़ला, रामेश्वरदास, ८४
बिड़ला-परिवार, –और न्यासित्वका सिद्धान्त, १०
बियन्तसिंह, १३८
बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे, ३०
बीसा, बालमुकुन्द, –की मृत्यु, २८७, २८८, ३५४, ३९९
बुच, पुरातन, १६६
बुद्ध, महात्मा, २०९
बुनियादी तालीम, –और गाँव, ३४३
बृहस्पति, ८५
बेल्डन, २१२ पा० टि०
बैंकर, शंकरलाल, २८६
बोस, नन्दलाल, १२९
बोस, ब्रजमोहन, १६५
बोस, रबीन, देखिए अगली प्रविष्टि
बोस, रवीन्द्रनाथ, १६४, १६५
बोस, शशीन्द्र, १६४
बोस, सुभाषचन्द्र, १२१; –और गांधीजी के बीच मतभेद, २३९, ३६६-६८; –और जापान तथा जर्मनीके साथ सन्धि, ३२३-२६; –का त्याग, ३३८
ब्रजभाषा, –और हिन्दुस्तानी, २०८-९
ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन, –की गांधीजी द्वारा अहिंसक आन्दोलनका नेतृत्व करने के बारेमें शंका, ३२२
ब्रिटिश युद्ध-मन्त्रिमण्डल, ७०
ब्रिटेन, –और जापान, ११८-१९; –और भारतकी सुरक्षा, ५५-५६, ६८, ७०; –और रूसकी मदद, १२२; –किसी पर निर्भर नहीं, १२३; –की अहिंसा में आस्था नहीं, २६७; –को कोई नैतिक समर्थन नहीं, १२७; –द्वारा भारतका ही नहीं, आफ्रिकाका भी शोषण, २९४; –भारतमें अराजकता के लिए जिम्मेवार, २६२

भ

भगवद्गीता, ४५३
भगवानदास, डॉ०, २२५, ३४२, ३७७
भगवानदास हरखचन्द, २०२; –और लीमड़ीका समझौता, २९२
भट्ट, नृसिंहप्रसाद, २१९
भणसाली, ज० प्र०, ३८९; –का अनशन, ४६०-६२
भागीरथी, १००
भाट, –अनुरक्षकके रूपमें, ७-८
भारत, –और चीन, ५५, ३३६-३७; –और जापान, ५७, २३३; –और ब्रिटेन, ५६, १२८, ३४६; –और मित्र-राष्ट्र, ६८, ७२, २०६, २३१; –और मित्र-राष्ट्रोंकी सेनाएँ, २३०, ३२३-२६; –का बँटवारा, २८-२९, ७८; –की प्रस्तावित सरकारका रूप, ३९६; –की कोई साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा नहीं, ३९२
भारत छोड़ो प्रस्ताव, ४२६; –अहिंसा द्वारा प्रजातन्त्रकी स्थापनाके लिए, ४१७, ४१९; –और अमेरिकी, ३३५, ३९९-४०२; –और मित्र-राष्ट्र सेनाओंकी भारतमें कार्यवाही, ४२५-२६; –और सत्याग्रहियोंको निर्देश, ४०६-९
भारत रक्षा कानून, ९९ पा० टि०, १३६ पा० टि०, ३५३
भारत सरकार (अस्थायी), ३२९; –का उद्देश्य चीन और रूसकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करना, ४५२; –का प्रस्ताव, ४४८-५२; –का संवैधानिक ढाँचा, ३३७
भारत सरकार अधिनियम, १९३५, ३३७, ४१२
भारतानन्दजी, देखिए फ्रिडमैन, मॉरिस
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, १२०, २१४, ३०८; –एक राष्ट्रीय संस्था, २८, ३४८, ४१२, ४२०, ४३२; –और औपनिवेशिक दर्जा, ३२; –और पाकिस्तानकी माँग, ३५२, ३५६, ४३१; –और मित्र-राष्ट्र, ३१६, ४४९; –और मुस्लिम लीग, १०२, १३२, १३३, २३६, ३०९, ३५२; –और युद्ध-सामग्रीके ठेके, ३१७; –और विद्यार्थी, ४३७; –और सरकारी कर्मचारी, ४३६-३७; –और साम्प्रदायिक एकता, १८४, ४३१; –और सिख, २७४; –और सैनिक, ४३७; –और स्थायी सरकारका गठन, ३३७; –और स्वराज्य, २३६, ४३८-४३; –और हिन्दुस्तानी, ५१, ५३, ८८; –का स्वतन्त्रता-सम्बन्धी प्रस्ताव और अमेरिकी, ३९९-४०२; –की ग्रेट ब्रिटेनसे साम्राज्यवाद छोड़ने की अपील, ४५१; –की नीति गांधीजी से प्रभावित, ५८; –की ब्रिटेनको परेशान न करने की नीति, २९४, ४४२; –की सदस्यताका गांधीजी द्वारा त्याग, ३; –के विरुद्ध सरकार द्वारा हिंसाका आरोप, ४४८-५३; –को विश्व संघकी दिशामें ले जाने का प्रयास, ३८१; –द्वारा क्रिप्स-फार्मूला अस्वीकार, २७; –पर लगाये आरोपकी निन्दा, ४५०; –में अहिंसाको धर्मके रूपमें नहीं, कार्य-नीतिके रूपमें स्थान, ८, १३, ३९६, ४५७
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कमेटियाँ, –दिल्ली प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी, ४४४; –बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी, १६४; –महाराष्ट्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी

११५ पा० टि०; –सिन्ध प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी, १७२
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कार्य-समिति, –का भारत छोड़ो प्रस्ताव, ३१४-१६, ३२७-२८, ३३५, ३६९, ३९५, ३९९, ४०२, ४१७-२३, ४२६; –की बैठक, ३२२-२३, ३४८; –से गांधीजी का मतभेद, ३
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस महासमिति, ६१ पा० टि०, ११५ पा० टि०, ३०६, ३२७-२८, ४४९; –और अहिंसक असहयोग, ५८; –का बम्बईमें अधिवेशन, ३४१; –का लाहौर प्रस्ताव, २७५; –के कार्यालयोंकी तलाशी, १९०-९१; –के कार्यालयोंकी तलाशीकी निन्दा, ४१२
भारतीय सेना, –किसी भी अर्थमें राष्ट्रीय सेना नहीं, २४८
भार्गव, डॉ० गोपीचन्द, २५, ८२, १४६
भावे, बालकृष्ण, ११५, १५८, ३६२, ४१६
भावे, विनोबा, ३७२, ३७४; –द्वारा सूत-मुद्राकी शुरुआत, २४
भाषाएँ, –और उनका अभ्यास एक कला, १०४

म

मंगलसिंह, सरदार, २७४
'मगनदीप', ३९४-९५
मथुरादास त्रिकमजी, ११२, ११६, २६ २७७
मथुरानाथ, ९९
मदन, २५४
मदालसा, ५२, २५३
मनहरजी, १००
मयूरभंज –में दमन, २५४
मराठी 'हरिजन' (वर्धा), १०७
मलकानी, ना० र०, १४५, २०३
मलाया, –से ब्रिटिश-सत्ताका हटना, २४८, २७२
मशरूवाला, किशोरलाल, ८, ३५, १५१, १५७, ३०२, ३७३, ३७४, ३८९
मशरूवाला, डॉ० मंजुबहन, २७४
मशरूवाला, नानाभाई इ०, ३५ पा० टि०
मशरूवाला, मनुबहन सु०, २१
महमूद, सैयद, ३८२
महाराष्ट्र, –के विभागोंकी एकता, २८९
महावीर, भगवान, २०९
महिलाएँ, –और उनके प्रति आदर भाव, २५९
माडखोलकर, गजानन त्र्यंबक, २८९
माध्वी, १००
मारवाड़ लोक परिषद्, –की माँग उत्तरदायी सरकारके लिए, १८५, २४४-४६, २८७, ३९७-९९
मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी, –और खाद्य-सामग्रीके अपव्ययके विरुद्ध अभियान, १८८
मार्शल लॉ, २३१
मालवीय, मदनमोहन, २९, ८९, ३७७, ४२४
मित्र-राष्ट्रों, २०७, २३३, ३३३; –और नीग्रो तथा आफ्रिकी जातियोंकी दासता, २३१; –और भारतके बीच सन्धिका प्रश्न, २६१-६२; –और स्वतन्त्र भारत, ३३१, ४४२-४३; –की युद्धके दौरान सैनिक कार्यवाही और कांग्रेस की स्वीकृति, ३४९, ४२६; –की सेनाएँ और जापानी आक्रमण, २६२, २६६; –की सेनाएँ भारतमें, ५५-५६, १२९, २८१, २८४, २९४, ३२४-२६, ३४७, ३७०-७१; –के प्रति भारतका रुख, २६३-६७, ३७९-८०

मिर्जा, बाकरअली, २१०
मिस्त्री, हीरजी जेराम, –को श्रद्धांजलि, १६
मीराबहन, २२, ६१, ६२, ७० पा० टि०, ७३, १३५, १५१, १७८, १९३ पा० टि०, ३११, ३५७, ३६०, ३६१, ४१०, ४१३, ४४६
मुंजे, डॉ०, ४३१
मुखर्जी, पाचू गोपाल, १६४
मुखर्जी, विजयकुमार, १६५
मुखर्जी, श्रीपाद, १६५
मुखर्जी, सुदर्शन, १६५
मुन्शी, कन्हैयालाल मा०, १४५, २५०
मुसलमान, –और भारतका बँटवारा, ३३-३४, ७७-७८, १२३-२५, १५९-६०; –और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, ४४४-४५; –और स्वतन्त्रता-संग्राम, ३०७-९, ४३१; –और हिन्दी तथा देवनागरी लिपि, ५१; –और हिन्दू, २८, २९, ३३; –के प्रति गांधीजी की नीयत खराब नहीं, ४२९
मुसोलिनी, ४१५ पा० टि०
मुस्लिम लीग, ३०६ पा० टि०, ३०७, ३७०, ४३२, ४५०; –और पाकिस्तानकी माँग, १५९-६०, २००-१; –और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, १०२, १३२, १३३, ३०९, ४२४-२५; –और साम्प्रदायिक एकता, १८४-८५; –और स्थायी सरकारका गठन, ३३७; –और स्वराज्य, २३६; –द्वारा क्रिप्स-फार्मूला अस्वीकार, २७; –पर गांधीजी का या कांग्रेस कार्य-समितिका कोई प्रभाव नहीं, ३३४
मुहम्मद, हजरत, ४२९, ४३०
मुहम्मद अली, मौलाना, ३५५
मूर्ति, गोपराजू सत्यनारायण, १६६
मेढ़, सुरेन्द्रराय, ४१
मेस्केरीन, ६३
मेहता, चम्पा, ३७, ९९
मेहता, जी० जी०, ४४७
मेहता, प्रभाशंकर, ३७
मेहता, फीरोजशाह, ४४१
मेहता, मंजुला, ११३
मेहता, मगनलाल प्रा०, ९८
मेहता, रतिलाल, ३७ पा० टि०, ९९, १११
मेहताब, हरेकृष्ण, ३११
मैंचेस्टर गार्जियन, –की वर्धा-प्रस्तावपर टिप्पणी, ३९५, ३९६
मैक्डॉनल्ड-निर्णय, –के विरुद्ध उपवास, ३५५
मैथ्यू, ६३, १३५
मैसूर, –में दमन, ९२, १०१-२
मोदी, प्रतापराय एम०, १६१
मोरारजी, शान्तिकुमार न०, ४७, ११२, २४०
मोहनसिंह, २९६
मोहानी, हसरत, २१

य

यंग इंडिया, २७४, २९८, ३९३
यूनाइटेड प्रेस, लन्दन, २६०, ३७९ पा० टि०
यूनिटी चर्च ऑफ न्यूयॉर्क, ३९९

र

रंग-भेद, –की नीति, १८१
रंगस्वामी, १०६
रचनात्मक कार्यक्रम, ३४३, ४३४; –और अहिंसा, ७; –और स्वराज्य, २४, ७२
रणजीतसिंह, २९९
रणवीरसिंह, ३६१
रलियातबहन, २६९
रसिकलाल, २९२
रस्किन, ४००
राजगोपालाचारी, चक्रवर्ती, २३, ३१, ४९, ८१, १२१, १५५, १५६, १९८,

२१९, २२१, २३५, २४१, २५८, ३५८, ४०९, ४१०, ४१८, ४३०, ४५८ पा० टि०; —अहिंसा मार्गसे च्युत, ५८; —और गांधीजी में मतभेद, ११९, १२०, १३३-३४, १५९-६०, १८२-८५, २०५, २२०, २३४; —और फौजी प्रशिक्षण, ५७; —और मु० अ० जिन्ना, २००-१; —का कांग्रेससे त्यागपत्र, ३०६, ३२६; —की माटुंगावाली सभामें हुल्लड़बाजी, २८३; —के विचार पाकिस्तान बनाने के सम्बन्धमें, १२३-२४, १३४

राजनीति, —में धर्मका कोई स्थान नहीं, ४४४

राजनीतिक बन्दियों,—की भूख-हड़ताल, २८७

राजपूताना रियासत, —और मारवाड़ लोक परिषद्, ९३

राजवाड़े, प्रो०, २९०

राजाराव, २९६

राजेन्द्र प्रसाद, १०, ६८, ७० पा० टि०, ८८ पा० टि०, १९६, २८५, २९५; —के विचार नमकके बारेमें, १४९-५०

रानड़े, न्यायमूर्ति, ४२६

राम, —निर्बलके बल, १७६

रामकुँवर, ८५

रामकृष्ण, ७६

रामचन्द्रन, जी०, ६४, ८३, ९२

रामजी, ३८८

रामनाथन, २५०, २५७

रामनाम, २५९

रामप्रकाशजी, २२४

रामानन्द, २५१

रामायण, ४०

राय, प्रफुल्लचन्द्र, ३६५

राय, मोतीलाल, १७१

राष्ट्रभाषा, —और हिन्दुस्तानी, ५४, ८८, ३७६; —का प्रचार प्रान्तीय लिपिके द्वारा, ५२; —के लिए हिन्दी और उर्दूको तथा देवनागरी और फारसी लिपिको एक-जैसा स्थान, ५२; —राजनीतिक मसला नहीं, ६६

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, ६६, ३३८, ३३९

राष्ट्रीय युवक संघ, —के सदस्योंको गांधीजी की सलाह, १७२

राष्ट्रीय सरकार, —का उपयोग विश्व-शान्तिकी स्थापनाके लिए, २०७

राष्ट्रीय सुरक्षा, —और चुने हुए प्रतिनिधि, ७०

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, —एक साम्प्रदायिक संस्था, ४४४, ४४५

रिचर्डसन, २७२

रीजेन्सी कौन्सिल, २०२ पा० टि०

रूजवेल्ट, फ्रैंकलिन डी०, २३२, २९३

रूस, —और ब्रिटिश सहायता, १२२

रूसियों, —द्वारा विश्व-युद्धमें कुर्बानी, १२४

रूसी क्रान्ति, —सच्चे लोकतन्त्रके लिए नहीं, ४२३

रेंटिया जयन्ती, २१९

रेडियो, —गांधीजी ने कभी नहीं सुना, ३

रेल-यात्रा, —में कमी करने का सुझाव, ३०-३१

रैस, सीदी अली, ७

रोमन लिपि, —हिन्दुस्तानी लिपियोंका स्थान नहीं ले सकती, १४

रौलट अधिनियम, २३१

ल

लक्ष्मीपति, २२३

लमली, सर रॉजर, ४४६

लिनलिथगो, लॉर्ड, ९५, ११८, २९५, ३३३, ३३७, ३६०, ३७०, ३७८, ४१२ पा० टि०, ४१७, ४३३, ४३६, ४३९, ४५७, ४५८ पा० टि०,

४६१ पा० टि०; —और कांग्रेसकी माँगोंको अस्वीकार करने से सम्बन्धित सरकारका प्रस्ताव, ४४८-५३; —की अमृतकौरके साथ भेंट, १६९
लिपि, —फारसी और देवनागरी, १४; —फारसी और हिन्दू-मुस्लिम एकता, ५१; —रोमन, विश्व-लिपिके रूपमें, ५४
लिबरल दल —और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, ३४८
लीमड़ी, १५८; —समझौता, २०२, २९२ पा० टि०
लेथवेट, ३६०
लेनिन, ३००, ३०१
लेबर पार्टी, —द्वारा कांग्रेसकी आलोचना, ३६९
लोकतन्त्र, —का अभिप्राय, ४२३

व

वरदाचारी, एन० एस०, ८१
वर्धा प्रस्ताव, देखिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
वर्धा शिक्षा योजना, देखिए बुनियादी शिक्षा
वर्मा, कृष्ण, १११, १५२, २२६
वाइसरायकी कार्यकारी परिषद्, २१५, ४१२ पा० टि०, ४२४ पा० टि०; —का कांग्रेसकी माँगको अस्वीकार करनेवाला प्रस्ताव, ४४८-५३
वाडिया, —और न्यासित्वका सिद्धान्त, १०
वाशिंगटन, जॉर्ज, ३००
वास्ती, सैयद जमील, २९१
विजय आनन्द, महाराजकुमार सर, २४; —के विचार आन्ध्रके पृथक्करणके सम्बन्धमें, ३०५
विद्या, १७
विद्यार्थी, —और भारत छोड़ो आन्दोलन, ४०८, ४३७
विद्यावती, २०
विद्यावती, रानी, ३८
वियोगी हरि, ७६, ३५९
विलिंग्डन, लॉर्ड, २६९
विवेकानन्द, स्वामी, —का अमेरिकियोंपर प्रभाव, १२८
विश्वभारती, ६०
विश्वयुद्ध [प्रथम], १५३; —और रंगरूटोंकी भरतीका काम, ३३४; —[द्वितीय], —के परिणाम, १८६-८७; —में मित्र-राष्ट्रोंकी विजय और भारत की स्वतन्त्रताका प्रश्न, २३०; —में हिंसा, १७४
विश्वसंघ, —और अहिंसा, ४३१; —की स्थापनाके लिए भारतकी स्वतन्त्रता अनिवार्य, ३९१-९२; —की स्थापना सेवाग्राम द्वारा, ३८१
विश्वामित्र, ऋषि, २६८
वुड, पीटर, —की मृत्यु, ४६०
वेस्टकोट, डॉ०, ४४०
वेस्टमिन्स्टर एबी, —पर बम-वर्षा, ३२०
वैद्य, वल्लभराम, १७८, २२३, २८५
वैद्यों (आयुर्वेदिक), —से गांधीजी अप्रसन्न, २२३; —की क्षमतामें शंका, ५०
वैम्बेरी, ए०, ७
व्यास, जयनारायण, १८५, २४४, ३५३, ३९९

श

शंकरलाल, लाला, —के साथ जेलमें असभ्य बरताव, ३०
शमशेरसिंह, कुँवर, १७१, १७८, २२२, २८५, २९८, ३११, ३३९, ३५७, ३८७, ३८९, ४१०

शर्मा, मूलजीभाई तु०, १६७
शर्मा, हीरालाल, १६८
शान्तिनिकेतन, ६०, ९४ पा० टि०, १२९, १३१, २०१, ४५५; –एक 'मधुर काव्य', १३०
शास्त्री, परचुरे, १९, १००, १६३, २११, २९०, ३७३, ३७४
शास्त्री, हीरालाल, ८७, १४६
शाह, कंचन मु०, २७४, ३६६
शाह, कृष्णदास, ५०
शाह, चिमनलाल न०, १७, ३७, १६२, ४५३
शाह, मुन्नालाल गं०, ८२, २७४, ३६६, ३८९
शिकागो डेली न्यूज, ३३२ पा० टि०
शिक्षा, –आधुनिक, और उसमें कमियाँ, २७८-७९; –दस्तकारी द्वारा, २३७-३८
शिवाजी, २९९, ३००
शेठ, रायबहादुर वीरजी, ४७
श्रद्धानन्दजी, स्वामी, ४१५
श्रीनिकेतन, ६०
श्रीप्रकाश, २५०, २५५, २८५, २९७; –द्वारा जोधपुरमें सुलह-कार्य, २८७-८८; –द्वारा बालमुकुन्द बीसाकी मृत्युके कारणोंकी छानबीन, ३५४
श्रीमन्नारायण, ९१, २२६, २५३, ३७७
श्रीवास्तव, मुरलीधर, २०८

स

संडे डिस्पैच, १८१, १८६
संस्कृत, –और प्रान्तीय भाषाएँ, ५२
सत्य, –ईश्वर है, ३९०, ४००
सत्यन, ३९५
सत्यमूर्ति, एस०, ४९, २१९
सत्यवती, २९७, ३११
सत्याग्रह, १२०, ४३३; –अंग्रेजोंके खिलाफ, ११८-१९; –और उपवास, ३५४-५६; –का शास्त्र, ३०२-३; –जोधपुरमें, २४४-४६
सत्याग्रही/हियों, ४४६; –को निर्देश, सविनय प्रतिरोधके लिए, ४०६-९; –से अपनी वाणीका संयम बरतनेका अनुरोध, २८८
सन्तोषनाथ,–सैनिकोंकी निर्दयताके शिकार, १६५, १६६
सप्रू, तेजबहादुर, ११९, ३८३, ४११
सम्पत्ति-ध्वंस-नीति, १४-१६, ६८, ७९-८०; –और अहिंसक असहयोग, १२५
सरकार, डॉ० तुलसीदास, १६४
सरयू, १७
सरस्वती, ६३
सरहदी, अब्दुल वदूद, २७३
सरोज, २२२
सर्वोदय, ३०२, ३०३
सविनय अवज्ञा, –और सशस्त्र युद्ध-प्रयत्न, ३३१; –के माध्यमसे अंग्रेजोंको हिन्दुस्तान छोड़नेकी सलाह, ११८
सहस्रबुद्धे, अन्नासाहब, ४४ पा० टि०
साउथबी, पैट्रिक एच० जे०, २९५
साबरमती आश्रम, ४६०
साम्प्रदायिक समस्या, २८, २९; –अंग्रेजोंके भारतसे हटने पर ही सम्भव, १२४, १५५, २३८; –और अहिंसा, ९२; –और युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव, ४२१; –और विश्वविद्यालय, ३१
साम्राज्यवाद, ३३, ९६, २६२; –और जापान, ३१५; –और फासीवाद, ४१४, ४४३
साराभाई, अम्बालाल, २०१
साराभाई, मृदुला, १९७, २९७, ३११
सावरकर, वि० दा०, ३२०, ४३१

सिंगापुर, –से ब्रिटिश सत्ताका हटना, २४८, २७१
सिंहराज, २९६
सिंहानिया, पद्मपत, ६५, ३३८, ३४०
सिखों, ३०९; –का कांग्रेस कार्य-समितिमें प्रतिनिधित्व, २७४-७५; –द्वारा कृपाण धारण करना गांधीजी को नापसन्द, २७६
सिनेमा, –की बुराई, ३
सिन्ध, –में हूरोंका आतंक, १३६-४१, १८०-८१, २५५-५७
सिमंड्स, रिचर्ड, २७०, २७२, ३१४
सीतलदास, सेठ, १४१
सीता, १६१
सुब्बाराव, के०, २५९
सुरेन्द्रनारायण, २५३
सूत-मुद्रा, –का उपयोग अ० भा० चरखा संघ द्वारा, २०४; –का महत्त्व, ४६-४८; –की शुरुआत, २४
सूरदास, २०८
सेन, क्षितिमोहन, १२९
सेन, गणनाथ, २८६
सेन, चुन्नीलाल, ९९
सेन, संतीन, ९९ पा० टि०
सेना, –और हरिजन लड़के, ९०; –की नौकरी जीविकोपार्जनके लिए, २८७
सेमूर, एच०, २५० पा० टि०
सेलिसबरी, लॉर्ड, ४४१
सेवाग्राम आश्रम, २५६, ४६०; –और विश्व संघ, ३८१; –के सेवकोंको निर्देश, ८०; –में ग्राम-स्वराज्यकी कल्पना साकार करने का प्रयत्न, ३४४; –में चोरी, १६७
सैन्यवाद, –और जापान, ३१५; –का संशोधित रूप और राष्ट्रीय नीति, २३९
सोरेन्सेन, ४५८ पा० टि०
सोहनलालजी, १४६
स्टालिन, २५५
स्टील, ३३२ पा० टि०, ३३६
स्टीवेन्स, बर्ट्रम, ४
स्वतन्त्रता-संग्राम, ३०५, ३०९, ३१६, ३२९, ३३२-३३; –और चरखा संघ, ग्रामोद्योग संघ तथा हिन्दुस्तानी तालीमी संघके सदस्य, ३१०-११; –और जापानी हमला, ३१९; –और मित्र-राष्ट्रोंके चीन-सम्बन्धी प्रयत्न, ३३०; –और मुसलमान, ३०७-९; –का गांधीजी द्वारा अहिंसक नेतृत्व करने के सम्बन्धमें बी० बी० सी० की शंका, ३२२
स्वराज्य, २३४, ४३४, ४४५; –और अहिंसा, २३८-३९; –और रचनात्मक कार्यक्रम, २४, ७२, १६६; –और शस्त्र-निर्भरता, ३२३-२६; –और हिन्दू-मुस्लिम एकता, ३३, १८४-८५, २३६; –सब प्रकारके भयको मिटानेवाला, १३४
स्वराज्य भण्डार, –का उद्घाटन, २४

ह

हंसराज, लाला, १५८
हक, अब्दुल, ३७७, ३८२; –और हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, २२८; –की हिन्दुस्तानीके बारेमें योजना, १६८
हठीसिंह, गु० प्र०, १२२
हड़तालें, –अहिंसक हो सकती हैं, २१६
हनुमन्तराव, १७०
हब्शी/शियों, –की स्वतन्त्रता और ब्रिटेन, १२३; –पर अत्याचार, २३५; –समाजके उच्च वर्गोंसे बहिष्कृत, ११०
हमीद, ४१
हरिजन/नों, –और सेना, ९०; –के लिए चन्दा, १३१-३२; –के लिए सुरक्षित सीटोंका प्रश्न, ३५०-५१

हरिजन, ८, १४, २९ पा० टि०, ४१, ५९, ६१ पा० टि०, ६५, ८१, ८२, ८९, ९२, ११३, १३१, १३५, १४५, १५१, १६८, १७२ पा० टि०, १८६, २०२, २०५, २०८, २२१, २२८, २३०, २४३, २५०, २५५, २८२, ३०२, ३२७ पा० टि०, ३४२, ३५४, ३५७, ३६४, ३८०, ४०५, ४१३, ४१४, ४५९ पा० टि०; –का प्रकाशन और सरकार, १०७-८, ३२०-२२

हरिजनबन्धु, २९ पा० टि०, २६९

हरिजन-सेवक, ६६, २३७ पा० टि०, ३०२

हरिजन-सेवक संघ, १९४; –कांग्रेसका भाग नहीं, ८९; –की उत्पत्ति, ८९, ९०

हाउस ऑफ कॉमन्स, ४५७ पा० टि०, ४५८ पा० टि०

हिंसा, –और अहिंसा, १०५; –का डर, जन-आन्दोलनोंमें, १७६

हिटलर, एडोल्फ, १७४, २५५, ३४८, ४१५ पा० टि०

हिदायतुल्ला, सर गुलाम हुसेन, –के पुत्रकी मृत्यु, १४१

हिन्दी, –और उर्दू, ५१, ५३, ८८, १९३

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, २२ पा० टि०, ३४०, ३७६, ३७७; –आरम्भसे ही हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनाने के पक्षमें, ६६; –में हिन्दीकी व्याख्यामें फारसी लिपिको स्थान, ५१

हिन्दुस्तानी, –और ब्रजभाषा, २०८-१०; –कांग्रेसकी व्याख्याके अनुरूप, ५३; –का प्रचार, ३९३; –के सम्बन्धमें अब्दुल हककी योजना, १६८; –राष्ट्रभाषाके रूपमें, ५४, ९८, ३७६; –हिन्दी-उर्दूका मिला-जुला रूप, ८८

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, –का कांग्रेसकी या दूसरी राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं, ३१०-११

हिन्दुस्तानी तालीमी संघ भवन, –और वर्धा शिक्षा पद्धति, ३९०

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, ६५, ८८, ९१, पा० टि०, १९३, २२८, ३४०, ३८२; –और उर्दूका प्रचार, ८२, ३७६-७७; –और हिन्दीका प्रचार, ३९३; –हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी विरोधिनी नहीं, ६६

हिन्दू, ४५, १२३ पा० टि०, १७९, २३६, ३२७ पा० टि०, ३२८ पा० टि०, ३२९ पा० टि० ३३०, ३३१, ४६१

हिन्दू, –और अस्पृश्यता-निवारण, ८१; –और भारतका बँटवारा, २७, ३४; –और मुसलमान २८, २९, ३३

हिन्दू-धर्म, –और इस्लाम, २८; –और गुरु गोविन्दसिंह, ३०१

हिन्दू महासभा, १२५, ३७२

हिन्दू-मुस्लिम एकता, ४९, १२०, २७३; –और फारसी लिपि ५१; –और स्वराज्य, १३४, ४२७-३३; –की स्थापना भारतमें ब्रिटिश सत्ताकी समाप्तिपर, २३६; –के लिए २१ दिनका उपवास, ३५५, ३७२

हूरों, –का आतंक, सिन्धमें, १३६-४१, २५५-५७

हेमचन्द्र, २०९

हैदराबाद, –में उर्दू, १०३

हैलेट परिपत्र, ४१५-१६

हैरिसन, एगथा, ६७, ६८, २७०, ३८४

हैलीफैक्स, लॉर्ड, ४६०

होप, लेडी एन, २९५

होम्स, डॉ०, ३९९, ४००